श्री अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ

आधुनिक राजनीति के शिल्पी

प्रथम खण्ड



Data Entry Complete
26921 REFERENCE BOOKS General
Kr owledge
CAREER COLLEGE
ACC.No.....
Book No.....
Date.....
BHOPAL

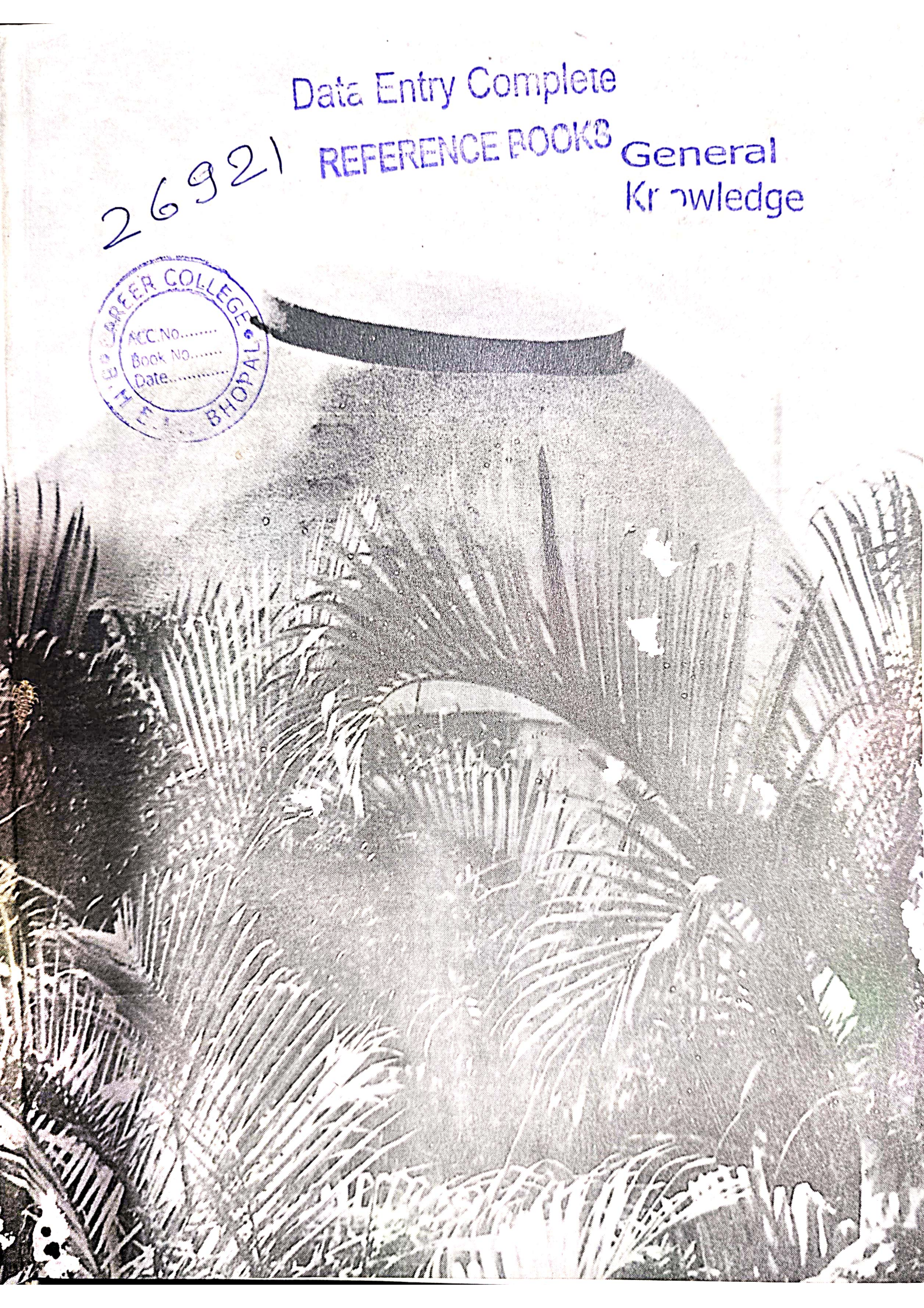


General
Knowledge
CAREER
BHOPAL
2692L

श्री अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ

आधुनिक राजनीति के शिल्पी

(प्रथम खण्ड)

CAREER COLLEGE
ACC.No.....
Book No.....
Date.....
B.H.E.L., BHOPAL
26921

संयोजक
मुरारीलाल अग्रवाल

सम्पादक
विष्णु राजोरिया

संयोजन
इण्डियन रायटर्स एसोसिएशन, कोलकाता
प्रकाशन
श्री अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, भोपाल

श्री अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ

प्रथम खण्ड : आधुनिक राजनीति के शिल्पी

CAREER COLLEGE
ACC.No.....
Book No.....
Date.....
H.E.L., BHOPAL

संयोजन : इण्डियन रायटर्स एसोसिएशन, कोलकाता

प्रकाशन : श्री अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ समिति,
4/1, इन्दिरा प्रेस परिसर, महाराणा प्रताप नगर,
भोपाल-462011

26921

☐ प्रथम आवृत्ति
☐ कार्तिक कृष्ण अष्टमी, विक्रम संवत् 2061, 5 नवम्बर, 2004
☐ © लेखकों के सौजन्य से संपादक

☐ प्रस्तुति दिग्दर्शक : आशीष
☐ मुद्रण निदेशक : मनीष

कम्पोजिंग : आकृति फोटोटाइपसेटर्स एण्ड प्रोसेसर्स
मुद्रण : आदर्श प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स
4/1, इन्दिरा प्रेस परिसर, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल-462 011
☎ : (0755)2555442, 2550291

श्री अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ समिति

General Knowledge

खुशवन्त सिंह
सैय्यद हैदर रज़ा
प्रो. के. अयप्पा पणिकर
प्रो. कल्याणमल लोढ़ा
जिया फरीदुद्दीन डागर
प्रोफेसर डॉ. धनंजय वर्मा
दिग्विजय सिंह
डॉ. बिन्देश्वर पाठक
विष्णु खरे
कमलाकर सोनटके
मदनमोहन जोशी
प्रो. प्रेमशंकर रघुवंशी
अजीत जोगी
प्रभात गांगुली
राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल
सुभाष यादव
झुमकलाल भेड़िया
बी.आर.यादव

26921

राजेन्द्र सिंह
महेन्द्र सिंह चौहान
बंशीलाल धृतलहरे
प्रताप सिंह बघेल
श्रीमती उर्मिला सिंह
मोहम्मद अकबर
कांतिलाल भूरिया
चरणदास महन्त
डॉ. आर.के. बिसार्य
सत्यनारायण शर्मा
दीपचंद यादव
मोहम्मद युनुस
बी.एल. सिंह
भूपेन्द्र गुप्ता
मुरारीलाल अग्रवाल
पी.सी. पाठक
प्रो. आशिस सान्याल
छतरसिंह
विष्णु राजोरिया

इंडियन रायटर्स एसोसिएशन

संरक्षक

महाश्वेता देवी
डॉ. प्रतापचन्द्र चन्द्र
नीरेन्द्रनाथ चतुर्वेदी
अमिताभ चौधरी
सेवाब्रत गुप्ता
तरुण सान्याल
डॉ. प्रभा खेतान
डॉ. सुरभि बन्दोपाध्याय
नीतिश बिस्वास
डॉ. एस. घोष
एस. कृष्णमूर्ति
गौतम प्रसाद बरुआ
डॉ. नलिन पटेल
एस.ए.मलिहाबादी
विश्वम्भर नेवार
डॉ. उज्जल कुमार मजुमदार
होसेनुर रहमान
देवूलाल बनर्जी
गणेश प्याने
सुचित्रा मित्रा
देवांजन चक्रवर्ती
सुधांशु शेखर डे
के.सी. धर
संकर मण्डलोई
समित सरकार

कार्यसमिति

प्रेसिडेंट

प्रो. कल्याणमल लोढ़ा
कुलपति, जोधपुर विश्वविद्यालय

उपाध्यक्ष

डॉ. के.सी. भुनया
उड़िया लेखक
गीतेश शर्मा
हिन्दी आलोचक

जनरल सेक्रेटरी

प्रो. आशिस सान्याल
बांग्ला लेखक

मुख्य सलाहकार

मुरारी लाल अग्रवाल

कोषाध्यक्ष

प्रो. श्री शंकर झा
हिन्दी-अंग्रेज़ी लेखक

सदस्य

सचिन दास
बांग्ला लेखक
कल्याण गंगोपाध्याय
बांग्ला लेखक
डॉ. ज़रीना ज़रीन
उर्दू शायर - आलोचक
प्रणब बरुआ
असमी कवि
ज्योर्तिमय दास
बांग्ला लेखक
सोमेन्दु गंगोपाध्याय
बांग्ला लेखक
डॉ. इन्दु जोशी
हिन्दी लेखिका

General Knowledge

CAREER COLLEGE
ACC.No.....
Book No.....
Date.....
E.T.C., BHOPAL
26921

संपादन सलाहकार
पद्मभूषण डॉ. बिन्देश्वर पाठक
प्रोफ़ेसर डॉ. धनंजय वर्मा
डॉ. उज्जल कुमार मजुमदार
डॉ. अवधेश प्रसाद पाण्डेय
माधव शुक्ल मनोज
प्रो. प्रेम शंकर रघुवंशी
मदनमोहन जोशी
प्रो. आशिस सान्याल
संपादन सहयोगी
पंकज शर्मा
संजय द्विवेदी
डॉ. हरिकृष्ण दत्त
अहद प्रकाश
मोहम्मद युनुस
उत्पल बैनर्जी
ज्योतिष जोशी
सहायक संपादक
मनोहर चौरे
संपादक
विष्णु राजोरिया



श्री अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ

प्रथम खण्ड

कहाँ-क्या

पुरोवाक्

हृदय की शल्यक्रिया से पूर्व श्री अर्जुनसिंह द्वारा लिखा पत्र

संस्कृति विरासत का स्मरण

1	मध्यप्रदेश में कला और संस्कृति युगे-युगे	शम्भुदयाल गुरु	41

कला मर्मज्ञ राजपुरुष

2	मेरी कल्पना साकार हुई	इंदिरा गाँधी	77
3	इंदिराजी के ही समान हैं अर्जुनसिंह	पुपुल जयकर	81
4	वे नेहरू परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं	जगदीश स्वामीनाथन	85
5	सर्वगुण सम्पन्न अद्वितीय राजनेता	यामिनी कृष्णमूर्ति	87
6	एक जौहरी जो जवाहर है	शानी	89
7	कला मर्मज्ञ राजपुरुष	सीताकांत महापात्र	93
8	Institution Maker	U.R. Ananthamurthy	95
9	कलाकारों की स्वतंत्रता के पक्षधर	पद्मभूषण हबीब तनवीर	96
10	स्वस्थ, सम्पन्न रहते हुए सबका भला करें	बिरजू महाराज	97
11	अर्जुनजी पर नज़र लगी है	अमज़दअली ख़ान	99
12	गुरु-शिष्य परम्परा के पोषक	उस्ताद ज़िया फरीदुद्दीन डागर	101
13	कला के विकास को उद्दीप्त करने की आकाँक्षा	मणि कौल	103
14	यादों के झरोखे से मुस्कुराता हुआ अर्जुन	राजेन्द्रनाथ	105
15	कला के पावन तीर्थ निर्माता	ए.के. हंगल	108
16	कवि कलाकारों के स्वप्नदृष्टा	अक़बर पदमसी	110
17	वे अतुलनीय हैं	मनजीत बावा	111
18	जितना मैंने उन्हें जाना	विजयमोहन सिंह	113
19	महाराज भोज की परम्परा का अभिषेक	शंकरदयाल सिंह	116
20	राष्ट्र के शिखर पुरुष	डॉ. चन्द्रप्रकाश वर्मा	119
21	संस्कृति शिल्पी : कुछ अविस्मरणीय प्रसंग	प्रोफ़ेसर डॉ.धनंजय वर्मा	124
22	सुसंस्कृत व्यक्तित्व	हरिशंकर परसाई	133

23	साहित्यिक संस्कार के धनी	पद्मश्री डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे	135
24	परहित बस जिनके मन माहीं	प्रो. अवेशप्रसाद पाण्डेय	137
25	वे पॉज़िटिव थिंकिंग के आदमी हैं	अख़्तरुल ईमान	140
26	महान् भारत-भवन के निर्माता श्री अर्जुनसिंह	गुरिन्दरसिंह	142
27	व्यापक सरोकारों वाले साहसिक राजनेता— अर्जुनसिंह	कन्हैयालाल नन्दन	144
28	अर्जुनसिंह : राजनीति के हस्ताक्षर	बसंतकुमार तिवारी	148
29	एक मौन महाकाव्य के महानायक	रमेश नैयर	151
30	महानता की कसौटी पर खरे श्री अर्जुनसिंह	त्रिलोक दीप	155
31	अर्जुनसिंह : एक अद्‌भुत आभामंडल	बबनप्रसाद मिश्र	159
32	संकल्पवान राजनेता और कुशल प्रशासक	टी. जगत्पति	162
33	संस्कृतिधर्मी राजनीतिज्ञ	डॉ. प्रभातकुमार भट्टाचार्य	165
34	कमज़ोर, वंचित और सर्वहारा वर्ग के मसीहा	डॉ. म.ला. शहारे	171
35	एक मृदुभाषी अहेरी	उदयन शर्मा	176
36	भावी इतिहास का एक पात्र	आलोक तोमर	179
37	संसदीय संस्कृति के शिल्पी	विश्वेन्द्र मेहता	182
38	विचारवान और कर्मशील राजनीतिज्ञ	वीणा वर्मा	185

प्रखर राजनैतिक व्यक्तित्व

39	अपराजेय श्री अर्जुनसिंह	मदनमोहन जोशी	191
40	आज अर्जुनसिंह होने का अर्थ	विष्णु खरे	196
41	निर्दलीय विधायक से केन्द्रीय नेतृत्व तक	मायाराम सुरजन	199
42	हम दोनों दिलवाले हैं	बसंत साठे	224
43	संजीदगी से दायित्वों का निर्वहन	मोतीलाल वोरा	225
44	श्री अर्जुनसिंहः मेरी नज़र में	सत्यप्रकाश मालवीय	227
45	उनके व्यक्तित्व में धैर्य, सरलता और सहनशीलता का समन्वय है	दिग्विजय सिंह	229
46	वे पूरी सद्‌भावना के साथ काम करते हैं	श्यामाचरण शुक्ल	232
47	नमन करता हूँ श्री अर्जुनसिंह को	आरिफ़ नसीम ख़ान	233
48	मैं उन्हें नम्बर एक पर देखना पसन्द करूँगा	बाबूलाल गौर	235
49	उनकी राजनीतिक क्षमता अद्वितीय है	कैलाशनारायण सारंग	237
50	वे राजनीतिक विरोधियों को भी देते हैं सम्मान	लखीराम अग्रवाल	239
51	कुशल रणनीतिकार हैं श्री अर्जुनसिंह	नंदकुमार साय	241
52	बौने नेताओं के बीच एक विराट व्यक्तित्व	रघु ठाकुर	243

53	चिड़िया की आँख पर रहती है उनकी नज़र	बृजमोहन अग्रवाल	246
54	शहरी ग़रीब वर्ग में बनाया काँग्रेस का आधार	तरुण चटर्जी	248
55	ग्वालियर के कैंसर अस्पताल में उनका भरपूर योगदान है	शीतला सहाय	250
56	राजनीति में वे कुछ उद्देश्यों को लेकर काम करते हैं	गौतम शर्मा	252
57	निरन्तर कर्मशील व्यक्तित्व	श्रीनिवास तिवारी	254
58	पहले से भी अधिक अडिग और सुदृढ़	यमुनाप्रसाद शास्त्री	256
59	उनमें तुरंत निर्णय लेने का गुण है	कृष्णपाल सिंह	257
60	उनके लिए राजनीति एक निरन्तर प्रक्रिया है	सुभाष यादव	259
61	नये मध्यप्रदेश की राजनैतिक घटनाओं के बीच	राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल	261
62	मेरे गुरु और पितातुल्य हैं वे	श्रीमती गंगा पोटाई	269
63	छत्तीसगढ़ में विकसित किया नया नेतृत्व	बी.आर.यादव	271
64	वे आदर्श हैं मेरे	सत्यनारायण शर्मा	273
65	उन्होंने दिया खरसिया का उत्तराधिकार	नंदकुमार पटेल	276
66	वे प्रशासनिक कुशलता के धनी हैं	रामानंदसिंह	278
67	छत्तीसगढ़ की विभूतियों को दिलाई पहचान	केयूर भूषण	280
68	नीचे के कार्यकर्ता को काफ़ी महत्त्व देते हैं	जगतपाल सिंह	283
69	वे सबकी सुनते हैं	मुनिप्रसाद शुक्ल	285
70	कमज़ोर तबके में उन्होंने आत्मविश्वास जगाया है	झुमकलाल भेड़िया	287
71	अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर उनके विचार स्पष्ट हैं	बालकृष्ण गुप्त	289
72	संसदीय परम्पराओं के संरक्षक	धीरेन्द्र कुमार सिंह	291
73	प्रतिबद्धता– श्री अर्जुनसिंह की राजनीति की बुनियाद	अजीत जोगी	293
74	काश! ये कुछ साल पहले हुए होते	विष्णुदत्त नागर	298
75	श्री अर्जुनसिंह एक राजनीतिक चिंतक	ललित श्रीवास्तव	301
76	बहुआयामी व्यक्तित्व और प्रेरक नेता	दीपचन्द यादव	304
77	अनवरत संघर्ष की धारा	अशोक तरंगी	308
78	भारत के लोकप्रिय नेता	डालचन्द जैन	316
79	हर दिल अज़ीज कुँवर साहब	फख़रुद्दीन	318
80	चिन्तनशील राजनीतिज्ञ	हनुमानप्रसाद वर्मा	320

बुद्धिजीवियों से बातचीत

81	कला संबंधी निर्णय सत्ता नहीं लेगी	साहित्यकार शानी की मुलाक़ात	329
82	तनाव घटाने की कोशिश हर क्षेत्र में रही	पत्रकार राजेन्द्र माथुर से साक्षात्कार	333
83	ग़रीबों के लिए हमारी प्राथमिकताएँ और नीतियाँ निर्धारित हैं	पत्रकार एन.के. सिंह की बातचीत	336

84	हमने शुरुआत की और आगे बढ़ गये	इवान फैरा की बातचीत	342
85	हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी कि हर ख़्वाहिश पे दम निकले...	पत्रकार त्रिभुवन यादव की बातचीत	347
86	एक छोटी-सी चर्चा	डॉ. देवव्रत जोशी	353
87	लोगों के सामने : श्री अर्जुनसिंह की प्रदेश के नागरिकों से बातचीत		355

परिवार और स्नेही परिजन

88	चुरहट : इतिहास के झरोखे से	मोहम्मद युनुस	379
89	बचपन की लकीरें	मोहम्मद युनुस	385
90	उन्हें देखता हूँ खुश होता हूँ	के.सी. चतुर्वेदी	395
91	एक संस्मरण	गुरुप्रसाद श्रीवास्तव	398
92	यशस्वी पुरुष	रघुवीर सहाय	400
93	एक गाँव की पीड़ा में साझेदारी	शिवकुमार झालानी	404
94	मेरे पति: जिनकी आँखें बोलती हैं...	श्रीमती सरोजसिंह	406
95	न दैन्यं न पलायनम्	शिवमंगलसिंह सुमन	409
96	जैसा मैंने देखा	शिवमोहन सिंह	416
97	श्री अर्जुनसिंह	रण बहादुरसिंह	421
98	कामना करता हूँ कि उनका भविष्य उज्ज्वल हो	डॉ. सज्जनसिंह	422
99	मुझे गर्व है कि वे मेरे पिता हैं	श्रीमती वीणासिंह	424
100	करुणा के सागर हैं अर्जुनसिंह	बी.पी. सिंह	430
101	यश और गौरव के कीर्ति स्तम्भ	अभिमन्युसिंह	434
102	हर पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक अलौकिक व्यक्तित्व	श्रीमती सुनीतिसिंह	436
103	एक अनुकरणीय आदर्श पिता : श्री अर्जुनसिंह	अजयसिंह	440

कुछ आत्मीय उद्‌गार

104	मानवीय गुणों से संपन्न व्यक्तित्व	प्रोफ़ेसर कल्याणमल लोढ़ा	449
105	यह एक पड़ाव है, विराम नहीं	मुरारीलाल अग्रवाल	452
106	श्री अर्जुनसिंह : एक अनन्य व्यक्तित्व	आशिस सान्याल	455
107	जो बचेगा, कैसे रचेगा?	सरला मिश्र	458
108	तुम सलामत रहो	ममनून हसन ख़ान	461
109	लक्ष्य को सफल बनाने में सिद्धहस्त	देवेन्द्र उपाध्याय	463
110	ख़्वाज़ा के अक़ीदतमन्द श्री अर्जुनसिंह	दीपक शर्मा	465
111	दीन-दु:खियों की भलाई ही सच्ची ईश्वर सेवा	डॉ. हेमचन्द्र पाण्डेय	468

112 वे किसी का चेहरा और नाम नहीं भूलते	डॉ. आर.के. बिसार्या	470
113 वे देश के गौरव पुरुष हैं	रामगरीब मिश्र	474
114 संवेदनशील सांस्कृतिक छवि	पद्मनाभ तैलंग	479
115 वे ग़रीबों के काम पहले करते हैं	नागेन्द्र सिंह	482
116 ग़रीब नवाज़ जनाब श्री अर्जुनसिंह	साज़िद अली	485
117 उदारमना व्यक्तित्व	कैलाश अग्रवाल	489
118 शिक्षासेवी श्री अर्जुनसिंह	जी.पी. गुप्ता	492
119 सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ इच्छाशक्ति के प्रतीक अर्जुनसिंह	डॉ. रामधनी मिश्र	494
120 विन्ध्यप्रदेश का विकास उन्हीं के कारण हुआ	लक्ष्मणप्रसाद मिश्र	496
121 सिंधी समाज के उद्धारक	गुरुमुखदास खानचन्दानी	497
122 उनका हृदय और आँखे हमेशा पार्टी कार्यकर्ताओं की ओर रहती हैं	मकरन्दसिंह	499
123 वे सबका मनोबल बढ़ाते हैं	गनपतसिंह राजपूत (ललन)	502
124 युवापीढ़ी के प्रेरक मार्गदर्शक	एस.के. माहेश्वरी	504
125 वे प्यार का बादल हैं	शब्बीर मास्टर	509
126 याददाश्त	इक़बाल अहमद	511
127 धर्मनिरपेक्षता और लोकतांत्रिक समाजवाद में गहरा विश्वास	डॉ. कु. नुज़हत शाहीन	515
128 स्मृति के बिखरे मोती	मुकुन्ददास माहेश्वरी	516
129 श्री अर्जुनसिंह इस युग की ज़रूरत	मंजर भोपाली	518
130 एक अलौकिक व्यक्तित्व के धनी श्री अर्जुनसिंह	बी.एन. श्रीवास्तव	521
131 कुछ आत्मीय उद्‌गार		525

श्री अर्जुनसिंह : शब्द, सत्ता और संवेदना

132 प्रदेश की जनता के नाम पहला संदेश	533
133 आम आदमी का विश्वास अर्जित करें	537
134 लोक प्रशासन का दायित्व	544
135 इस क़दम का उद्देश्य दुर्बल न हो जाए	551
136 विधायकों के सरकारी अधिकारियों के साथ संबंध	555
137 सभी को विकास के समान अवसर मिलें	558
138 हमारी यात्रा में कोई विराम नहीं हैं	561
139 बियाबान में नए संसार की रचना	564
140 प्रतिभा की पहचान का परिवेश बने	567
141 पूज्य मदर टेरेसा : मूर्तिमान करुणा के सामने	569

142 हम किसी के मोहताज़ न रहें 571
143 ग़रीबों को घर और ज़मीन का अधिकार सौंपने का क्षण 574
144 किसी बलिदान को बड़ा नहीं मानूँगा 576
145 राष्ट्रीय विकास परिषद् से लोगों के हित में आग्रह 578
146 कोई भी ऐसा नहीं जिसके लिये हमने कुछ न किया हो 581
147 सविनय निवेदन है कि 584
148 पंचायत प्रतिनिधियों को बधाई 586
149 विकास और पर्यावरण का सह-अस्तित्व बनाए रखना होगा 588
150 हमेशा से अधिक हमें उनके स्नेह और धूप की आवश्यकता है 590
151 अंधकार में प्रकाशित कुछ शब्द 592
152 आस्था को फिर से स्थापित करना है 594
153 शिक्षा : स्वाधीनता, स्वराज्य, संस्कृति और समता के लिए 595
154 समकालीन भारत की समस्याएँ और इतिहास 599
155 श्री शेख अब्दुल्ला को याद करते हुए 602

लिख-लिख भेजी पाती

156 मंत्रिपरिषद् के सहयोगियों को पत्र 609
157 जनप्रतिनिधियों के नाम पत्र 611
158 शासकीय कर्मचारियों के नाम पत्र 613
159 किसानों के लिये चिट्ठी 616
160 सिर्फ़ चाहने भर से उद्देश्य पूरा नहीं होता 618
161 भारत-भवन के आजीवन न्यासी पद से त्यागपत्र 623

पुरोवाक्

काँग्रेस एक छाता है जिसके अन्दर सब आकर ज़माने की बौछार से बचना चाहते हैं। एक दिन ऐसा आयेगा जबकि उनकी संख्या इतनी बढ़ जायेगी कि उन्हें बौछार से बचना मुश्किल हो जायेगा और उस छीना-झपटी में वह छाता भी नष्ट हो जायेगा और जो छींटे पड़ेंगे वे सबके ऊपर ही पड़ेंगे और उससे कोई बच न सकेगा।

12 मार्च 1958

काँग्रेस की स्थापना खोये हुए ***स्वराज्य*** *को पाने के लिए हुई थी। सभी विचारों के लोग काँग्रेस के झण्डे तले इकट्ठे हुए थे। गुलाम भारत में काँग्रेस उन सबकी राष्ट्रीयता की पहचान का प्रतीक थी। उन दिनों काँग्रेस का उदय एक ऐसी मातृशक्ति के रूप में हुआ जिसे भारत देश में बसने वाले विभिन्न धर्मों के लोगों ने अपना-अपना स्वराज्य भाव देकर स्वतंत्रता के महाभाव के रूप में प्रकट किया और उस महाशक्ति को अहिंसा के अस्त्र से सुशोभित किया। इस शक्ति की विजय सुनिश्चित थी। आख़िरकार ब्रिटिश हुकूमत को भारत छोड़कर जाना ही पड़ा।*

भारत के इतिहास में संकट के समय शक्ति के आह्वान के अनेक रूप मिलते हैं। काँग्रेस शक्ति की आधुनिक अवतार थी। अवतार युगानुरूप ही होते हैं। वे संकट का निवारण करके शक्ति के उन्हीं अंशों में विलीन हो जाते हैं जिनका वे पुँजीभूत रूप थे। तभी तो महात्मागाँधी ने कहा था कि अब काँग्रेस का लक्ष्य पूरा हुआ, उसे विघटित कर देना चाहिए। उनकी बात किसी ने नहीं मानी। शक्ति का वह अंश जो भारत की जनता ने स्वराज्य के लिए समर्पित किया था वह उसे लौटाया नहीं जा सका; बल्कि उसका उपयोग सत्ता प्राप्ति के अस्त्र के रूप में किया जाने लगा।

सत्ता की होड़ विभाजन को जन्म देती है। पंडित जवाहरलाल नेहरू के जीवनकाल में ही काँग्रेस में मतभेद उभरने लगे थे। आज जितने भी राजनैतिक दल हैं सामान्यतः

उन सबकी माता काँग्रेस ही है। वे वहीं से अपना-अपना हिस्सा लेकर अलग हुए हैं। उनके झण्डों को देखो तो वे केसरिया, सफ़ेद और हरे रंगों को ही अपनाये हुए हैं। किसी के झण्डे में केसरिया अधिक है तो किसी में हरा। पर काँग्रेस के झण्डे में तीनों रंग बराबर हैं और राष्ट्र के झण्डे के अनुरूप हैं। विभिन्न दलों के चेहरे पर उनकी माता के नाक-नक्श इन रंगों के रूप में आज भी हैं, सिर्फ़ स्वराज का भाव खो गया है। सत्ता प्राप्ति ही सबका लक्ष्य है। जब भी अवसर आता है और उनकी स्मृति जागती है तो वे अपनी माता की ओर ही भागते हैं, उसी में समा जाना चाहते हैं— कभी अंश रूप में कभी पूरे के पूरे।

राष्ट्रपिता काँग्रेस की इस कोशिश से अत्यंत पीड़ित थे कि वह महज़ पार्लियामेन्ट्री क़िस्म का स्वराज्य ही चाहती है। उनके मन का स्वराज्य तो वह था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वधर्म में रहना सीख ले। जहाँ राष्ट्र के महाभाव में खो जाने वाली सबकी अपनी-अपनी प्रार्थना हो, सबके लिए खुले आकाश, पवित्र जल और उज्ज्वल धूप की कामना हो। पंडित नेहरू इस प्रार्थना की स्मृति को लेकर जिये थे धीरे-धीरे यह स्मृति भी खोती गई।

जहाँ एक ओर भारतीय सनातन चिन्तन मनुष्य को जीवन के विश्वभाव से संयुक्त करता है, वहीं दूसरी ओर भारत की राजनीति दिनों-दिन धर्म, वर्ण, वर्ग और जाति के नाम पर क्षेत्रीय होती गई है। छोटे राज्यों की माँग छोटे-छोटे राजनैतिक दलों की राज करने की इच्छा के कारण ही उठ रही प्रतीत होती है। वे भारत की जनता को उसकी उस शक्ति केन्द्र की तरह काबिज़ बने रहना चाहते हैं।

श्री अर्जुनसिंह हमारे समय में एक ऐसे राजनेता के रूप में प्रतिष्ठित हैं जिन्हें उस भाव सम्पदा का आज भी स्मरण है जो इस देश की जनता ने सौ साल पहले काँग्रेस को सौंपी थी और जो लोकमंगल से ओत-प्रोत थी जिसमें हर नए आगमन को आत्मसात् करने वाले सनातन गुण आज भी मौज़ूद हैं। वे ऐसे राजनेता हैं जो आज़ादी के बाद राजनीति के बीहड़ों में भटकती भारत की जनता को उसका निवास देना चाहते हैं। वे पंडित जवाहरलाल नेहरू की परम्परा के राजनीतिक वंशज हैं, संस्कारधर्मी राजनीतिज्ञ हैं।

श्री अर्जुनसिंह ने 1957 में एक निर्दलीय सदस्य के रूप में मध्यप्रदेश की राजनीति में प्रवेश किया। वे एक ऐसे प्रतिभाशाली और होनहार समाज सेवक के रूप में सार्वजनिक जीवन में आए जो चिन्तन, मनन और सेवा में विश्वास करता है। खोजी वृत्ति और तर्कशील संवाद शैली के कारण वे मध्यप्रदेश की विधानसभा और जनता के बीच जल्दी ही प्रतिष्ठित हो गए। प्रारंभ से ही उनके मन में यह बेचैनी दिखाई देती है कि जिस आधुनिक प्रजातंत्र को हमने अपनाया है उसकी भारतीय शैली क्या हो?

श्री अर्जुनसिंह प्रारंभ से ही इस प्रश्न पर विचार करते रहे हैं कि भले ही हमें

एक लिखित संविधान मिल गया हो, पर जब तक राष्ट्र के प्रति व्यक्तिगत समर्पण की भावना न होगी तब तक आधुनिक प्रजातंत्र का मानवीय स्वरूप प्रकट नहीं होगा। महज़ लिखित बातों की दुहाई देते रहने से उत्तरदायित्व पूर्ण नहीं हो जाता, उसके लिए जीवन के दृष्टान्त चाहिए। आज़ादी के बाद प्रारंभिक दिनों में ही सभी महापुरुषों ने जोर देकर यही कहा था कि **ब्रिटिश हाउस ऑफ कामन्स** के आचार-विचार हर समय हमारे लिए उपयुक्त नहीं होंगे जबकि हमारा संविधान वहीं से आधारभूत विचार सम्पदा लेकर रचा गया है। हमारे भीतर यह आकाँक्षा होना चाहिए कि हम अपने देश के संस्कृति बहुल जीवन से उनकी श्रेष्ठ मान्यताओं को जोड़कर अपनी प्रजातांत्रिक पद्धति विकसित कर सकें।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उनकी प्रतिभा को 1960 में ही पहचान लिया था। वे श्री अर्जुनसिंह की राजनैतिक निष्ठा पर मुग्ध हुए और उन्हें काँग्रेस में शामिल होकर देश सेवा के लिए प्रेरित किया। इन्हीं दिनों उनका श्रीमती इंदिरा गाँधी से परिचय हुआ। श्री अर्जुनसिंह 1960 में ही काँग्रेस में शामिल हो गये। चवालीस साल बीत गये हैं। मध्यप्रदेश की और देश की राजनीति में अनेक उतार-चढ़ाव आए हैं और उनकी निष्ठा परखी गई है। उनके अनेक राजनैतिक साथियों के क़दम अक़सर डगमगाए हैं पर श्री अर्जुनसिंह सचमुच काँग्रेस के सच्चे सिपाही सिद्ध हुए हैं और आज उनका कद एक राष्ट्रीय राजनेता का है।

श्री अर्जुनसिंह का जन्म 5 नवम्बर 1930 को मध्यप्रदेश में चुरहट के एक राज परिवार में हुआ। उनके पिता राव साहब शिवबहादुर सिंह रीवा रियासत की चुरहट जागीर के जागीरदार थे। यह जागीर सीधी जिले में सोन नदी के दोनों ओर फैली हुई थी। राव साहब अल्पभाषी और प्रभावी व्यक्तित्व के धनी थे। तत्कालीन विन्ध्यप्रदेश में कप्तान अवधेश प्रताप सिंह के मंत्रिमण्डल में वे मंत्री रहे। उनकी जागीर की कोठियाँ चुरहट, रीवा और इलाहाबाद में थीं।

राव साहब शिवबहादुर सिंह के चार पुत्रों और पाँच पुत्रियों में श्री अर्जुनसिंह पाँचवें हैं। उनकी आरंभिक शिक्षा इलाहाबाद के सेन्ट मेरी कान्वेंट और बनारस के उदय प्रताप कॉलेज में हुई। यहीं इनके भाई भी पढ़ते थे। श्री अर्जुनसिंह ने मार्तण्ड हाईस्कूल, रीवा से मैट्रिक और दरबार कॉलेज, रीवा से इन्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की और 1950 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। आप 1952 में दरबार कॉलेज संघ रीवा के अध्यक्ष भी रहे। 1953 में आगरा विश्वविद्यालय से क़ानून की उपाधि प्राप्त करने के बाद आपने 1954 में रीवा में वक़ालत शुरू की। जब ये विश्वविद्यालय को पढ़ाई कर रहे थे तभी इनका विवाह श्रीमती सरोजसिंह से हुआ।

आपकी पढ़ाई के दौरान दरबार कॉलेज रीवा में बुद्धिजीवियों का एक सम्मेलन हुआ था जिसमें तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ.राधाकृष्णन पधारे थे। श्री अर्जुनसिंह ने उनका सान्निध्य

ग्रहण किया और इस सम्मेलन में अंग्रेजी में दिए गए अपने प्रभावी भाषण से डॉ.राधाकृष्णन का मन मोह लिया। उपराष्ट्रपति ने इन्हें देश सेवा के ध्येय से राजनीति में आने के लिए प्रोत्साहित किया। यह इनके लिए अत्यन्त परिवर्तनकारी घटना थी।

1937 में श्री अर्जुनसिंह इलाहाबाद के सेन्ट कान्वेंट में जब पढ़ाई कर रहे थे तभी इन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी और पंडित जवाहरलाल नेहरू के दर्शन किए थे। इनके हिन्दी के शिक्षक पंडित, ब्रजवासीप्रसाद इन्हें गाँधी और नेहरू के दर्शन करवाने ले गये थे। कान्वेन्ट में अंग्रेज़ी शिक्षा ही दी जाती थी और पिता को चिन्ता थी कि कहीं पुत्र हिन्दी और हिन्दुस्तान के संस्कारों से दूर न हो जाय, इसलिए उन्होंने पंडित ब्रजवासीप्रसादजी को इनकी हिन्दी शिक्षा के लिए नियुक्त किया था, जिन्होंने श्री अर्जुनसिंह का परिचय भारत की बहुवाचकता से करवाया।

श्री अर्जुनसिंह की माता अत्यंत सहिष्णु, सौम्य और परोपकार में रुचि रखने वाली नारी थीं। इनके व्यक्तित्व निर्माण में उनका बहुत बड़ा योगदान है। इसी कारण उनके मन में ग़रीब और असहाय लोगों के प्रति उदार भावना पैदा हुई और वे समाजवादी विचार की ओर मुड़े। उन्होंने तत्कालीन विंध्यप्रदेश में समाजवादी आंदोलन में योगदान भी दिया। पिता इनकी विचारधारा से पूरी तरह सहमत तो नहीं थे पर पुत्र के निर्भीक और अडिग व्यक्तित्व को पहचानकर उन्होंने कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

1957 के दूसरे आम चुनाव के समय डॉ.सुशीला नैयर ने श्री अर्जुनसिंह को काँग्रेस का टिकट देने की पेशकश की थी; किन्तु इन्होंने उस समय टिकट लेने से इनकार कर दिया था जबकि उन दिनों काँग्रेस का टिकट विधानसभा में प्रवेश के लिए एक आसान रास्ता था। वे तो निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में चुनाव लड़े। उनका यह निर्णय उनके दृढ़ निश्चयी और संकल्पवान् व्यक्तित्व का परिचायक है। अकेले जूझने की शक्ति उनमें प्रारंभ से ही रही है। वे अपनी प्रतिष्ठा और लाभ के लिए हमेशा आसान रास्तों को ठुकराते रहे हैं।

1957 में श्री अर्जुनसिंह ने जब निर्दलीय सदस्य के रूप में मँझोली चुनाव क्षेत्र से विजयी होकर मध्यप्रदेश की विधानसभा में प्रवेश किया था तब उस सभा का रूप भी अत्यंत गरिमामय था। वह तपोनिष्ठ स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों और राष्ट्र के लिए समर्पित वरिष्ठ और निर्भीक नेताओं की सभा थी। उसमें डॉ.कैलाशनाथ काटजू जैसे संत प्रकृति के मुख्यमंत्री आसीन थे। प्रत्येक विषय पर बहस गरिमामय और प्रेरक हुआ करती थी। व्यर्थ की बयानबाज़ी का वहाँ अवसर ही नहीं था। बिना अध्ययन और तैयारी के उस सदन में चर्चा में हिस्सेदारी संभव नहीं थी।

श्री अर्जुनसिंह विधानसभा में प्रश्नों, संकल्पों और प्रस्तावों के प्रति हमेशा सजग रहे। वे सिर्फ़ अपने द्वारा पूछे गए प्रश्नों के प्रति ही नहीं अन्य साथी सदस्यों के प्रश्नों

के प्रति भी हमेशा उत्सुक रहे हैं। प्रति-प्रश्न पूछने की उनकी क्षमता भी अद्वितीय है। मध्यप्रदेश विधानसभा की कार्रवाइयों को देखकर उन क्षणों को याद किया जा सकता है, जब उन्होंने अनेक अवसरों पर प्रश्न पूछकर शासन सत्ता को सही जगह पर टोका है। वे अपने संशोधन प्रस्ताव भी पूरे अध्ययन, मनन और चिन्तन के बाद ही प्रस्तुत करते रहे हैं। उनकी तर्कशैली अद्वितीय है और प्रमाणों के आधार पर ही वे अपनी बात कहने के हिमायती के रूप में जाने गए हैं। उनके चिन्तनशील व्यक्तित्व की सराहना मुख्यमंत्री श्री कैलाशनाथ काटजू, तत्कालीन विधानसभा अध्यक्ष पंडित कुंजीलाल दुबे और सभा के अन्यान्य सदस्य करते थे। विधानसभा में स्वतंत्र विधायकों का एक गुट था जिसके वे नेता चुने गए थे।

मध्यप्रदेश विधानसभा में 1959 के बजट अधिवेशन में श्री अर्जुनसिंह ने यह सुझाव प्रस्तुत किया कि सभी विधानसभा सदस्य अपनी सम्पत्ति और आमदनी का लेखा-जोखा विधानसभा में पेश करें। इस सुझाव का कुछ सदस्यों ने मज़ाक भी उड़ाया। पर श्री अर्जुनसिंह ने सबसे पहले खुद विधानसभा अध्यक्ष को एक पत्र लिखकर अपनी सम्पत्ति और आमदनी का विवरण प्रस्तुत कर दिया। जब अध्यक्ष ने उसे सदन में पढ़कर सुनाया तो अनेक सदस्यों ने उसे कार्रवाई से निकाल देने तक की माँग की। स्वयं मुख्यमंत्री डॉ.काटजू ने इस कार्रवाई का समर्थन नहीं किया।

इस घटना से क्षुब्ध होकर श्री अर्जुनसिंह ने प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू को पत्र लिख भेजा। पंडित नेहरू ने तुरन्त ही उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। वे सपत्नीक दिल्ली गए और यह आत्मीय आश्वासन लेकर लौटे कि सम्पत्ति का विवरण देना सभी के लिए अनिवार्य किया जा रहा है। उसी साल **अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी** ने प्रस्ताव पारित करके काँग्रेस के सभी मंत्रियों और विधायकों को अपनी सम्पत्ति का ब्यौरा देने के निर्देश दे दिये। इस घटना के पहले श्री अर्जुनसिंह काठमाण्डू में पंडित नेहरू से पशुपतिनाथ के मंदिर में मिल चुके थे। पंडित नेहरू आज़ाद भारत के निर्माण में शक्ति और कल्पना के रचनात्मक संयोग पर बल देते थे। श्री अर्जुनसिंह भी इसी मार्ग पर जाते दिखाई देते हैं। बीती सदी के नवें दशक के पूर्वार्द्ध में उन्होंने कहा था—

यदि केवल शक्ति हो और कल्पनाशीलता एवं आदर्शों का अभाव हो तो एक प्रकार की निर्मम ताक़तें जन्म लेती हैं, जो लोगों की भावनाओं का निर्दयतापूर्वक हनन करती हैं और यदि केवल कल्पनाशीलता हो और शक्ति का अभाव हो तो केवल एक दिवास्वप्न जन्म लेता है जो आँखें खुलते ही अदृश्य हो जाता है। जब शक्ति और कल्पनाशीलता दोनों का संगम होता है तब राष्ट्र आगे बढ़ता है।

श्री अर्जुनसिंह इसी साँचे में अपनी राजनीति के शिल्प को ढालते आए हैं और इस पारम्परिक साँचे की रक्षा के प्रति न्योछावर होने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। यह

हमें दिया गया उसे ऐसी सरकार बनाकर ही पूरा किया जा सकता है जो आम आदमी के दुःख-दर्द से जुड़ी हुई, सभी वर्गों और धर्मों के हितों के लिए काम करने वाली हो और जो हर स्तर पर ग़रीबों की हालत सुधारने, पिछड़े वर्गों को आगे बढ़ाने और समाज में आर्थिक समता और सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए बिना थके काम करने वाली हो। आज हमें ऐसे प्रशासन की ज़रूरत है जो शक्तिशाली और सम्पन्न के आगे झुके नहीं और जिसके दरवाज़े और दिल-दिमाग़ ग़रीब और शोषित के लिए हमेशा खुले हों। जात-पाँत, वर्ग भेद और बदले की भावना से ऊपर उठकर हम एक ऐसा वातावरण बनाने में सहयोग चाहते हैं जिसमें प्रजा और तंत्र के बीच कोई टकराव न हो और दोनों ही अपनी स्थिति की ठीक समझ रखते हों। हम ऐसी नीति लागू करेंगे जिनसे प्रजातंत्र और उसकी संस्थाएँ समाज के सबसे वंचित वर्गों और पिछड़े तत्त्वों के लिए सच्ची और सार्थक बन सकें।''

श्री अर्जुनसिंह का उपर्युक्त संकल्प फलीभूत हुआ। श्रीमती इंदिरा गाँधी की प्रेरणा और उनके बीस सूत्री कार्यक्रम को लक्ष्य बनाकर वे मध्यप्रदेश को जीवन और प्रकृति के क्षेत्र में विकास के पथ पर ले गए। उन्होंने प्रदेश के नैसर्गिक स्रोतों और वन सम्पदा का योजनाबद्ध दोहन किया। उपज की वाज़िब कीमत दिलाने तथा किसानों को खाद, बीज, पानी, बिजली की भरपूर सुविधाएँ उन्होंने दीं। उन्होंने सार्वजनिक वितरण प्रणाली को इस तरह सुदृढ़ किया कि प्रदेश के दूर देहातों में भी आवश्यक वस्तुएँ वाज़िब दाम पर नागरिकों को मिल सकीं। किसान सूखे और कम वर्षा का सामना करने में समर्थ हो सकें, इसकी चिन्ता उन्हें हमेशा रही और उन्होंने फसल बीमा योजना लागू की। किसानों को ऋणों से भी मुक्त किया।

शहरों की झुग्गी बस्तियों में हो रहे जीवन के निर्मम नाटक को वे देख रहे थे। वे इस बात से दुःखी थे कि जो हज़ारों लोग दूसरों के लिए सुख-सुविधाएँ जुटाते हैं; शहरों में आलीशान इमारतें बनाते हैं, उन्हें खुले आसमान के नीचे रहने की जगह कब नसीब होगी। झुग्गीवासियों के इस कष्ट से वे इतने आहत हुए कि एक ही दिन में एक क़ानून बनवाकर उन्हें इस कष्ट से मुक्ति दिलवाई। 17 अप्रैल, 1984 को विधानसभा में वे एक विधेयक लाए। उन्होंने उसी दिन सदस्यों से विशेष आग्रह कर विधेयक पारित करवाया, महामहिम राज्यपाल महोदय से निवेदन कर हस्ताक्षर करवाए और उसी दिन अधिसूचना का प्रकाशन मध्यप्रदेश राजपत्र में करवाया और झुग्गीवासी ग़रीब-गुरबों के हक़ में एक नये मानवीय क़ानून ने जन्म लिया। और 18 अप्रैल 1984 की सुबह प्रदेश के 40 लाख झुग्गीवासी उसी जगह के मालिक हो गए जिस पर वे रह रहे थे और चाहे जब खदेड़े जाते थे। इसी तरह प्रदेश के लाखों खेतिहर मज़दूर जो अस्थाई रूप से गाँव-

पहाड़ों में घर बनाकर रहते थे उनके बार-बार उजाड़े जाने की चिन्ता भी उन्हें थी और उन्हें भी रहने का ठौर दिया गया।

आदिवासी किसानों की ज़मीनें दूसरे लोग छल-कपट से छीन लेते थे। वे ज़मीनें उन्हें वापस मिलें इसके लिए एक क्रान्तिकारी क़ानून बनाया गया। उन्हें उनकी ज़मीनें वापस दिलाई गईं। पिछड़ा वर्ग आयोग की स्थापना हुई। उनका जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए रचनात्मक उपाय किए गए। गाँवों के बेरोज़गार युवकों को रचनात्मक कामों में सहभागी बनाने के उद्देश्य से भूमि सेना का गठन किया गया और इस सेना ने प्रदेश के अनेक पिछड़े इलाक़ों में निर्माण के कार्य किए। बेघर लोगों को घर देने के लिए मुफ़्त ज़मीन दी गई और ग्रामीण आवास योजना का सूत्रपात हुआ। भूमिहीनों को भूमि मिली। शहर के रिक्शा चालकों ने राहत की साँस ली। सभी रिक्शा चालक अपने-अपने रिक्शे के मालिक हो गए। तेन्दूपत्ता तोड़ने वालों के जीवन में जो क्रान्तिकारी आर्थिक परिवर्तन आया उसके लिए श्री अर्जुनसिंह हमेशा याद किए जायेंगे। यह वनवासी ग़रीबों के हित में बहुत बड़ा आन्दोलन था।

प्रशासन तंत्र के प्रति नागरिकों के संदेहों पर उन्होंने हमेशा कड़ी नज़र रखी है। उन्होंने पहली बार मध्यप्रदेश में लोकायुक्त की नियुक्ति की और उसके दायरे में मुख्यमंत्री, मंत्रिगणों और प्रशासन तंत्र सभी को ला दिया। उन्होंने इस दायित्व का पूरी तरह निर्वाह किया है कि— "जो अपने अधिकारों के लिये लड़ नहीं सकता, उसके अधिकार सुरक्षित रहें, इसकी ज़िम्मेदारी हम पर है।" वे प्रशासन के सर्वोच्च अधिकारियों के साथ जनता का हित-चिन्तन करते हुए एक बेचैन जन-नायक की तरह कह उठते हैं—

"आज भी कभी-कभी जनता की आवाज़ और न्याय की उसकी पुकार लोकशाही की ऐन्द्रजालिक व्यवस्था में दबा दी जाती है। मैं यह कहने के लिए विवश हूँ कि ये कुण्ठित एवं बेबस आवाज़ें अभी भी सत्ता के चमकते गलियारों में गूँजती हैं। मैं यह सोच नहीं पाता हूँ कि जनता, जिसके नाम पर यह सब कुछ किया गया, वह क्यों उठ नहीं खड़ी होती और राजनीतिक और प्रशासनिक दोनों ही नेताओं से जवाब-तलब क्यों नहीं करती?"

श्री अर्जुनसिंह के व्यक्तित्व और कार्यशैली को देखकर प्रायः सभी ने यह अनुभव किया है कि वे प्रादेशिक सीमाओं में बँधकर नहीं रह सकते। उन्हें तो जैसे भारत माता पुकार रही है और उनसे किसी बड़े योगदान की माँग कर रही है। आख़िरकार यही हुआ। उन्हें भारत के हृदय के अनमोल और अशान्त टुकड़े पर शान्ति का अभिनव राग लेकर उपस्थित होना पड़ा। श्री अर्जुनसिंह जहाँ भी जाते हैं उसी माटी की गंध से भर उठते हैं, सिहर उठते हैं। यह भारत की वही माटी है जिसमें उनके महान् राजनैतिक पूर्वजों का देहांश घुला हुआ है। वे पंजाब गये तो पंजाब के हो गए और संत लोंगोवाल के सान्निध्य

में बैठकर शान्ति की कामना की। उसे स्थापित करने के नए उपकरण ढाले, विधियाँ खोजीं, विधान रचे। वे अशान्त पंजाब को उस मोड़ पर ले आए जहाँ से जीवन का उज्ज्वल पथ प्रारंभ होता है। पर हमारा दुर्भाग्य है कि उस मोड़ पर आकर पंजाब अभी भी ठिठका हुआ है।

हम याद करें तो श्रीमती इंदिरा गाँधी, राजीव गाँधी और यहाँ तक कि श्री नरसिंहराव के दिनों में भी श्री अर्जुनसिंह की भूमिका संकटमोचन की है। 1985 से आज तक उन्हें भारतीय राजनीति में अनेक पदों पर आसीन किया गया है। उन्हें बार-बार चुनाव भी लड़ना पड़े हैं और विजयी हुए हैं। इन सब घटनाओं के बीच उनके राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वी उनके पराभव की कल्पनाएँ भी करते रहे हैं। पर राष्ट्र जानता है कि श्री अर्जुनसिंह ने जिस पद को सुशोभित किया उस पद की गरिमा बढ़ गई। उनकी विश्वसनीयता कभी संदिग्ध नहीं रही। यही कारण है कि हर बार उन्हें बड़ी से बड़ी ज़िम्मेदारी सौंपी जाती रही। आज श्री अर्जुनसिंह हमारे बीच एक ऐसे राष्ट्रीय राजपुरुष के रूप में उपस्थित हैं जिनकी ओर पूरा राष्ट्र गहरी उम्मीद से देख रहा है।

इस संस्कृति बहुल और बहु-भाषा-भाषी राष्ट्र में मतान्ध साम्प्रदायिकता सिर उठा रही है जिसकी अंतश्चेतना हिंसा से संचालित हो रही है। अहिंसा का मूलमंत्र जैसे भुला दिया गया है। भारत में सम्प्रदाय एक पवित्र शब्द था। मध्यकाल में ही कितने धार्मिक सम्प्रदायों ने जन्म लिया जिनके ईश्वर साक्षात्कार के अपने-अपने मत थे। प्रत्येक सम्प्रदाय से उसी एक सत्य तक पहुँचने की राह फूटती थी जो संसार के समग्र जीवन पर छाया हुआ है जिसमें सब जातियाँ, वर्ग, वर्ण और सबकी प्रार्थनाएँ समाई हुई हैं। वहाँ कोई भेदभाव नहीं है, घृणा नहीं है। बस प्रेम ही प्रेम है। सबके लिए अपने-अपने विश्वासों में जीने की खुली जगह है। दिनों दिन संकीर्ण होते जा रहे माहौल में श्री अर्जुनसिंह चिंतित हो उठे हैं और सबके आगे आकर उन्होंने इस नई साम्प्रदायिकता के ख़िलाफ़ जेहाद छेड़ दिया है। वे राजनीति में कबीर की भूमिका निभा रहे हैं।

उनके मन में यह चिन्ता उस समय भी गहरी थी जब वे दिल्ली के एस्कॉर्ट हॉस्पिटल में अपने हृदय की बीमारी से जूझ रहे थे। उन्हें डॉक्टरों ने ऑपरेशन की सलाह दी थी और वे ऑपरेशन के ठीक एक दिन पहले सायंकाल में अपने राम, रहीम और ईसा को खोज रहे थे—

आज इन क्षणों में, इसके पूर्व कि बेहोशी दे दी जाय मुझे, मैं केवल राम, रहीम और ईसा को खोजना चाहता था और पूछना चाहता था कि कहाँ हो! जो मेरा प्यारा देश बिना पतवार के नाविक के सहारे इतिहास के भँवर की ओर तेज़ी से बढ़ता जा रहा है।

वे उस शाम अपने गुरु पंडित बृजवासीलाल पाण्डे की उस शिक्षा को याद करते

रहे जो क़रीब 45 साल पहले उन्हें मिली थी। उनके गुरु ने कहा था—

प्रत्येक धर्म आस्था, विश्वास और कर्मठता का सुन्दर समन्वय है। हिन्दू धर्म आस्थाओं का पुँज है, ईसाई धर्म विश्वासों की कसौटी पर खरा उतरने का अलौकिक अवसर है और इस्लाम धर्म कठिन से कठिन परिस्थितियों में कर्मठता का प्रमाण देने का माध्यम है— इस घटना को हुए 45 वर्ष बीत गये, लेकिन आज भी एक-एक शब्द और उसका अर्थ मेरे हृदय पटल पर केवल अंकित ही नहीं है, मैंने इसी को अपनी समृद्ध विरासत व धरोहर मानकर जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव पार किए। मंदिर हो, मस्ज़िद हो, गिरजाघर हो या गुरुद्वारा, कहीं भी परमात्मा के दयालु, करुणामय व स्थिति प्रज्ञ दर्शन करने में मुझे कोई दिक्क़त महसूस नहीं हुई।

श्री अर्जुनसिंह राजनीति में आस्था, विश्वास और कर्मठता के पक्षधर हैं। उनकी राजनीति संस्कृतिधर्मी है और आध्यात्मिक दृष्टि सम्पन्न है। पंडित नेहरू के बाद भारत में कलाओं की स्वायत्तता और गुरु-शिष्य परम्परा की रक्षा के लिए उनका योगदान अद्वितीय है। भोपाल में स्थापित साहित्य और कलाओं का राष्ट्रीय केन्द्र ***भारत-भवन*** *इसका अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसके निर्माता श्री अर्जुनसिंह हैं और जिसके अन्तः बाह्य प्रसार को देश और दुनिया के हज़ारों लेखकों-कलाकारों ने अपनी सृजनधर्मी चेतना और भावऊर्जा से समृद्ध किया है। वे राष्ट्र के चिन्तनशील मानस को साथ लेकर चलने वाले संस्कृतिधर्मी राजपुरुष हैं।*

आधुनिक भारतीय राजनीति के शिल्पी श्री अर्जुनसिंह का हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

श्री अर्जुनसिंह को अभिनन्दन ग्रंथ भेंट करने की आकाँक्षा बीस साल पहले से है; किन्तु कुछ आकस्मिक परिस्थितियों के कारण यह अनुष्ठान सम्पन्न न हो सका। आज उन्हें यह अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता है। इस बात का संतोष भी है कि हमने जो संकल्प किया था, वह आज पूरा हो रहा है।

श्री अर्जुनसिंह का कर्मठ राजनैतिक जीवन पिछले पचास सालों में फैला हुआ है। इस जीवन में अनेक विस्मयकारी घटनाएँ घटी हैं। वे प्रत्येक चुनौती का सामना करते हुए निष्ठापूर्वक यह जीवन जीते आए हैं। वे भारतीय राजपुरुषों की परम्परा में आज हमारे सामने एक श्रद्धेय व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

श्री अर्जुनसिंह जैसे गुणी और संघर्षशील राजपुरुष का मूल्यांकन कुछ पृष्ठों पर संभव नहीं है। उनका मूल्यांकन तो भावी इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर ही अंकित होगा और आने वाली पीढ़ियाँ उससे प्रेरणा प्राप्त करेंगी। श्री अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ समिति ने अपने हर संभव प्रयत्नों के फलस्वरूप इस अभिनन्दन ग्रन्थ को सँवारा है और जो भी

मूल्यवान विचार हम उपलब्ध कर सके उन्हें यहाँ स्थान दिया है। श्री अर्जुनसिंह के प्रशंसकों और समर्थकों की संख्या इस देश में इतनी है कि उनके प्रति सभी के विचारों को स्थान देना अत्यंत दुर्लभ कार्य है।

श्री अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ आठ खण्डों में विभाजित है। पहला खण्ड **आधुनिक राजनीति के शिल्पी** नाम से अभिहित है। इस खण्ड में देश के सुप्रतिष्ठित बुद्धिजीवियों, लेखकों, कलाकारों, राजनेताओं, पत्रकारों और अनेक कार्यकर्ताओं के विचार संग्रहीत हैं जिनके माध्यम से श्री अर्जुनसिंह की संस्कृतिधर्मी राजनीति और उनके संस्कारशील व्यक्तित्व को गहरी आत्मीयता प्राप्त हुई है। योग्य प्रशासक, चिंतनशील राजनीतिज्ञ, ग़रीबों और असहायों के पक्षधर, साम्प्रदायिक शक्तियों को खुलकर चुनौती देने वाले योद्धा, सुयोग्य दल संगठक, भारत की बहुवाचकता के रक्षक और संस्कृति संस्थाओं के निर्माता के रूप में उन्हें सच्चे मन से सराहा गया है। उनके परिवारजनों और मित्रों ने भी अपने उद्‌गार प्रकट किए हैं।

इस अभिनन्दन ग्रन्थ का दूसरा खण्ड **विधायक का मर्म** नाम से अभिहित है। इस खण्ड में 1957 से 1963 तक उनके विधायक जीवन का प्रकाशन है। सर्वविदित है कि आप 1957 में निर्दलीय विधायक के रूप में चुने गंए थे और फिर 1960 में पंडित नेहरू की प्रेरणा से काँग्रेस दल में शामिल हुए। यह सात वर्षों का उनका जागरूक विधायक जीवन इस खण्ड में प्रकाशित मध्यप्रदेश विधानसभा की चुनी हुई कार्रवाइयों में देखा जा सकता है। वे प्रारंभ से ही एक कर्तव्यनिष्ठ और चिन्तनशील संसदवेत्ता के रूप में सामने आते हैं। सदन में उनके द्वारा पूछे गए प्रश्न, प्रति-प्रश्न, प्रस्तावों पर उनकी बहसें राजनीति में प्रवेश कर रही समकालीन युवा राजनेताओं की पीढ़ी के लिए निश्चय ही मार्गदर्शक सिद्ध होंगी।

ग्रन्थ का तीसरा खण्ड **पक्ष-प्रतिपक्ष** नाम से अभिहित है। इस खण्ड में 30 सितम्बर 1963 से — जब से उन्होंने पहली बार पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र के मंत्रिमंडल में कृषि राज्यमंत्री का दायित्व संभाला, तबसे 1979 तक की अवधि की मध्यप्रदेश विधानसभा की चुनी हुई कार्रवाइयाँ प्रकाशित की जा रही हैं। आप इसी अवधि में मध्यप्रदेश के योजना-विकासमंत्री और शिक्षामंत्री भी रहे। इसी काल में 1977 से 1979 के बीच मध्यप्रदेश में **जनता सरकार** बनी और श्री अर्जुनसिंह ने काँग्रेस (इ) की ओर से प्रतिपक्ष नेता की भूमिका निभाई। कार्रवाइयों में तो देखा ही जा सकता है, पर उन दिनों जो सदस्यगण विधानसभा में थे और जिन पत्रकार-बुद्धिजीवियों ने श्री अर्जुनसिंह को विरोधी दल के नेता की भूमिका निभाते हुए देखा है, वे उनकी ऐतिहासिक भूमिका को याद करते हुए कहते हैं कि इतना सबल और संवादशील प्रतिपक्षी नेता आज तक उन्होंने दूसरा नहीं देखा। वे यह भी कहते हैं कि उन दिनों श्री अर्जुनसिंह ने काँग्रेस में नई संजीवनी शक्ति का संचार किया।

चौथा खण्ड **प्रथम सेवक** नाम से अभिहित है। इसमें 1980 से आपके मुख्यमंत्रित्वकाल की उन सभी उपलब्धियों का दर्शन होता है जो उनकी संवेदनशीलता, कर्मठता, प्रशासकीय क्षमता एवं राजनीतिक दूरदर्शिता को रेखांकित करता है। पाँचवाँ खण्ड **राजनीति के कबीर** शीर्षक से है। इसमें 1983 से 1991 तक का राजनीतिक घटनाचक्र प्रकाशित किया गया है।

कबीर ने जिस तरह फक्कड़पन से इस देश की धर्मान्धता, कट्टरपंथ और ढकोसलों के ख़िलाफ़ अलख जगाकर जन-चेतना जगाई थी, वही कार्य श्री अर्जुनसिंह ने राजनीति के क्षेत्र में कर दिखाने की सतत पहल की है। साम्प्रदायिकता की विष बेल के ख़िलाफ़ आप बराबर लोहा लेते रहे। साम्प्रदायिक शक्तियों को ललकारने में आप कबीर के साथ खड़े दिखाई देते हैं। समाज के कमज़ोर वर्ग के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक उत्थान के लिए आपने स्वयं अपने मुख्यमंत्रित्वकाल में वह सब कर दिखाया जो कभी बाबा साहेब अम्बेडकर, महात्मा गाँधी, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, पंडित नेहरू, श्री जगजीवनराम, श्रीमती इंदिरा गाँधी और श्री राजीव गाँधी ने सोचा या करना चाहा था। इन सभी महान् नेताओं ने जो भी सपने संजोये थे उन्हें श्री अर्जुनसिंह ने ही पूराकर दिखाया।

जिस देश में सुई की नोंक बराबर भी ज़मीन देने से इनकार करने पर महाभारत जैसा युद्ध हो गया था, उसी देश में आपने एक ही दिन में एक कानून बनवाकर मध्यप्रदेश के लाखों झुग्गी-झोपड़ी वालों को उनके भूखण्ड का मालिकाना हक़ राज-कर्मचारियों द्वारा इस दीन-हीन दुर्बल वर्ग के द्वार पर जाकर वितरित करवा दिया। सायकल रिक्शा चलाने वालों को मालिकाना हक़ दे दिया गया। कोटवार, सहायक शिक्षक, सहायक वनपाल और साधारण सिपाही जैसी सबसे छोटी सरकारी इकाइयों को वेतनमान और पदनाम का उपहार देकर इस ग़रीबों के मसीहा ने वही सब कर दिखाया जिसकी तड़प कबीर की वाणी में सुनाई देती है। इसी भावना से इस खण्ड का शीर्षक **राजनीति के कबीर** रखा गया है।

छठवाँ खण्ड **संसदीय मर्मज्ञ** शीर्षक से है जिसमें विविध विषयों पर संसद में दिए गए भाषणों का समावेश किया गया है। राज्यसभा और लोकसभा में जब कभी ज्वलन्त प्रश्नों पर चर्चा हुई है उनमें आपने सजगता एवं सक्रियता से हस्तक्षेप करते हुए अपने संसदीय नेतृत्व के गुणों को राष्ट्रीय मंच पर स्थापित करने में सफलता पाई है।

सातवाँ खण्ड **अनुभूति और अभिव्यक्ति** शीर्षक से है, जिसमें विभिन्न सभा समारोहों में दिये गए भाषण चर्चा, फ़ीचर्स, समाचार पत्रों-पत्रिकाओं के संवाददाताओं को दिये गए साक्षात्कार आदि को समाहित किया गया है।

आठवाँ खण्ड **नेहरू गाँधी परम्परा के पोषक** शीर्षक से आपके राजनीति में

प्रजातांत्रिक आस्था, जन विश्वास और पीड़ित दलित वर्ग के प्रति सेवक की भावनामय कर्मठता से परिपूर्ण, संस्कृतिधर्मी स्वप्नों के साकारकर्ता व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचालक है। संत लोंगोवाल-राजीव गाँधी समझौते के सूत्रधार श्री अर्जुनसिंह की भूमिका को इसमें विस्तार से रेखांकित किया गया है। नेहरू-गाँधी परिवार के अडिग सिपाही के समर्पण, निष्ठा और कर्तव्य परायणता पर विस्तार से इस खण्ड में प्रकाश डाला गया है। जम्मू-कश्मीर हमारे देश का ज्वलन्त प्रश्न है जिस पर आपकी चिन्ता, अविभाज्य अंग मानने की दृढ़ता, कश्मीर को अमन का चमन बनाने की उत्कट अभिलाषा के साथ ही आतंकवादी शिविरों के निकट जाकर सभाओं में जनसामान्य को सम्बोधित करने के आन्तरिक साहस का इसमें हमें सही परिचय मिलता है।

राष्ट्रनायक जननेता श्री अर्जुनसिंह का बहुविध व्यक्तित्व इतना विराट है कि उसे कुछ हज़ार पृष्ठों में भी समेटा नहीं जा सका है। यह आपके यशस्वी जीवन के अमृत महोत्सव वर्ष में आपके समर्थकों-प्रशंसकों और अनुयायिओं का एक विनम्र प्रयास है। इसमें जो कुछ भी संयोजित, सम्पादित, प्रकाशित किया जा सका है, वह स्नेहीजनों, बुद्धिजीवियों, समाजसेवियों, साहित्यकारों, कलाकारों, पत्रकारों और रंगकर्मियों का योगदान है। जो कुछ हम प्रस्तुत नहीं कर सके, वह हमारी अपनी क्षमताओं की कमी ही मानी जानी चाहिए; किन्तु निष्ठा में नहीं। आप शतायु हों। राष्ट्र के दीनहीन-दुर्बल वर्ग के उत्थान में आपका योगदान निरन्तर बना रहे; साहित्य, शिक्षा, संस्कृति के क्षेत्र में भारतीय राष्ट्रीय परम्परा और प्रयोग को इक्कीसवीं सदी के उस सपने को पूरा करने में आप सतत गतिशील रहें, जो सपना नेहरूजी ने, इंदिराजी और राजीवजी ने कभी देखा था। राष्ट्र की अखण्डता, अस्मिता, आदर्शों और उपलब्धियों को नए आयाम देने के लिए हर दिन, हर घण्टे, हर पल आप सतत जागरूक गतिशील रहें। नित नूतन कीर्तिमान स्थापित करते हुए भारत के भाल पर राष्ट्रीय नेतृत्व की चमक को बनाए रखने में आपका अप्रेतिम योगदान बना रहे, इस सद्भावना के साथ प्रभु से प्रार्थना है, आप स्वस्थ रहें— आप शतायु हों।

Arjun Singh

PRESIDENT
M.P. CONGRESS COMMITTEE (I)

SHIVAJI NAGAR BHOPAL.

ॐ

और ईशा

मेरे राम, रहीम, तुम कहां हो ?

राम तुम्हारी काया का प्रयास तो सब से पहले अपनी मां की गोद में हुआ, तुम्हारे गुणों से — प्रेम, करुणा, वात्सल्य, अनुशासन और कर्तव्यपरायणता और आसुरी शक्तियों से संघर्ष करने की प्रेरणा प्रसीदित सादर से — तस्वीर तो पांच छः वर्ष की उम्र में देखी जब संत तुलसीकृत रामायण देखने और सुनने का अवसर मिला। बाल राम, युवा राम और योद्धा राम — तीनों मूर्तियों का ओज और आत्मबल समान था और देश के करोड़ों हिंदुओं की भांति मेरे भी मानसपटल में सदैव सदैव के लिये अंकित हो गई लेकिन मां के गोद में अवगत हुये गुणों से उन्हें कभी अलग नहीं कर सका।

सात बरस की उम्र में शिक्षा के लिये प्रयाग के सेंट मेरिस कैथोलिक कान्वेंट में बोर्डर के हैसियत से भरती होने पर दिनचर्या के रूप में प्रातः गिरजाघर जाना और प्रार्थना करनी पड़ती थी। वहां

आश्चर्य हुआ भगवान ईसा मसीह को क्रास पर टंगे देख कर और कुछ दुख भी हुआ कि जिसे भगवान का एकलौता पुत्र मानते हैं उन्हें ऐसी यातना क्यों सहनी पड़ी भगवान जो सर्वशक्तिमान हैं उन्होंने अपने पुत्र की रक्षा क्यों नहीं की - धीरे धीरे ज्ञात हुआ कि ईसा मसीह भी क्रास पर उन्हीं गुणों के पालन व रक्षा के लिये चढ़ाये गये जिनके अनवरत पालन से राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया। भावना व भक्ति का अटूट मिश्रण हुआ और आत्मबल का प्रादुर्भाव हुआ।

इस्लाम धर्म के बारे में उर्दू पढ़ाने वाले मौलवी सा. से जानकारी मिली लेकिन जब उन्होंने ने कहा कि मैं आपको अल्ला ताला की कोई तस्वीर नहीं दे सकता तो मुझे लगा किसके नाम या प्रकार के सहारे पवित्र कुरान शरीफ पढ़ा जा सकता है। उन्होंने मुझसे कहा आप एक दफे इस्लाम की कुछ मौलिक बातें पढ़िये तो। गुरु की आज्ञा समझ कर मैंने पढ़ा - ज्यों ज्यों आगे बढ़ता गया लगा यह सब तो वही है जो राम व ईसा से जुड़ी बातें हैं गुण हैं। मौलवी सा. से तो मैंने यह बात नहीं कही इस संकोच में कि कहीं उन्हें नागवार न गुजरे लेकिन

जो हमारे निजी गार्जियन पं. बृजबासीलाल पांडे जी थे (जो दुर्भाग्य से अब नहीं हैं) उनसे मैंने जरूर कहा कि इस्लाम धर्म के प्रति श्रद्धा व समर्पण की भावना कैसे जागृत की जा सकती है जब उस धर्म के आदिपुरुष का मानवीय स्वरूप ही देखने को नहीं मिलता। पं. जी ने जो उत्तर दिया उसने मुझे अपनी भारतीय विरासत का विराट दर्शन कराया और धर्म क्या है उसको सही रूप में समझने का अवसर दिया। उन्होंने कहा प्रत्येक धर्म आस्था, विश्वास और कर्मठता का सुंदर समन्वय है। हिन्दू धर्म आस्थाओं का पुंज है, ईसाई धर्म विश्वासों के कसौटी पर खरा उतरने का अलौकिक अवसर है और इस्लाम धर्म कठिन से कठिन परिस्थितियों में कर्मठता का प्रमाण देने का माध्यम है। कोई भी व्यक्ति अपनी निजी मान्यताओं व आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये चाहे जो गठता या बुनता रहे लेकिन इनके बाहर जाकर धर्म का पालन नहीं कर सकता है - यही उन्होंने कहा गीता में भगवान कृष्ण का अंतिम उपदेश है। इस घटना को हुये ४५ वर्ष बीत गये - लेकिन आज भी

एक एक शब्द और उसका अर्थ मेरे हृदय पटल पर केवल अंकित ही नहीं है इसी को अपनी समृद्ध विरासत व धरोहर मान कर जीवन के अनेकों उतार चढ़ाव पार किये। मंदिर हो, मसजिद हो, गिरजाघर हो या बुरुद्वारा हो कहीं भी परमात्मा के दयालु, करुणामय व स्थितप्रज्ञ दर्शन करने में मुझे कभी दिक्कत महसूस नहीं हुई।

आज इस समृद्ध विरासत के बिखरने का खतरा उत्पन्न हो गया है - विडंबना यह है वह खतरा उन्हीं धर्मों के माध्यम से पैदा किया जा रहा है जिनके पाक सिद्धांतों से यह सदियों में निर्मित हुआ था। युग पुरुष महात्मा गांधी के चरण स्पर्श करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था, राष्ट्रनायक पं. नेहरू के तेजस्वी हाथों ने मेरे कंधों को स्पर्श करके संघर्ष और बलिदान से उत्पन्न अनेक उष्णा स्थानांतरित किया था जिसके बल व प्रेरणा से राष्ट्रमाता श्रीमती इंदिराजी के संघर्षशील नेतृत्व में कई उत्तेजक क्षणों का अनुभव करने का अवसर मिला और आज भी देश की महान

सस्था कांग्रेस में राजीवजी के प्रनुशासित सिपाही के हैसियत से सेवा व संघर्ष के प्रनवरत प्रयियान लगे रहने की शक्ति मिली।

सहसा दिन- 5 प्रक्टूबर को मध्यान्ह इस सब पर विराम लगता दिखा - लेकिन प्रभु कृपा से ऐसा हुआ नहीं। आज सुबह मुझे बताया गया कि मेरे हृदय की शल्य चिकित्सा करनी पड़ेगी। कोई भी शल्य क्रिया चिंता का विषय बना जाती है फिर हृदय की शल्य चिकित्सा तो होनी ही चाहिये। हर मनुष्य के नाते मुझे भी थोड़ी चिंता है लेकिन मुझे अंदर से प्रेरणा मिली कि कुछ जीवन का लेखा जोखा भी तो कर डालो - एक तो व्यक्तिगत लेखा जोखा होता है उसमें मेरी दिलचस्पी बिलकुल नहीं है उसे करने वाले दोस्त व दुश्मन दोनों काफी है इसलिये सही ही होगा।

आज इन क्षणों में - इसके पूर्व कि बेहोशी देदी जावे मुझे मैं केवल राम, रहीम और ईशा को खोजना चाहता था और पूछना चाहता था कि कहां हो जो मेरा प्यारा देश बिना पतवार के नाविक के

~~सहारे~~ सहारे इतिहास के भंवर की ओर तेजी से बढ़ता जा रहा है। राम, तुम्हारे भक्तों की संख्या तो असंख्य है इसमें निशादराज भी है - शबरी भी है और संत तुलसीदास भी है - आज के भक्तों के ये लोग आदर्श नहीं रहे - आज तो भगवन इन विख्यात भक्तों ने यह भी नहीं सोचा कि आप ने तो आसुरी शक्तियों के भयंकर प्रतीक रावण को बिना रथ पर बैठे ही संग्राम करके पराजित किया - आधुनिक भक्तों ने तो आपके नाम से रथ बना कर उस पर विराजमान होकर दिग्विजय के लिये निकल पड़े हैं - और वह भी विजय किसी आसुरी शक्ति के ऊपर नहीं अपने ही देशवासियों के ऊपर। उन्हें कौन बताये कि संत तुलसी को रामचरितमानस रचने के पश्चात इनाम के बतौर सम्राट अकबर ने मनसबदारी और बहुत सा धन उपहार में भेजा था - संत तुलसी का अकबर को उत्तर था -

" हय चाकर रघुवीर के पटो लिखो दरबार
तुलसी अब क्या होयंगे नर के मनसबदार "

परंतु प्रभु आज के राम भक्त तो नर

क्या पिशाचों की भी मनसबदारी करने को तत्पर है"

मेरे प्रल्लाह प्रज्ञ कर्तव्य की कर्मठता की कसौटी पर उतरने को बेताब होने वाले तुम्हारे यत्न अपनी प्रवाज की बुलंदगी को नाप रहे हैं - शायद कबीर के उस दोहे से वे परिचित नहीं हैं - "चींटी के पग घुंघुरू बाजे तो तेरा मालिक सुनता है उपर चढ़ कर बांग लगाये क्या तेरा ~~मालिक~~ मालिक बहरा है" - प्रवाज की बुलंदगी नहीं उसकी गहराई की वकत होनी चाहिये।

मेरे ईशा मसीह अपनी असीमित करुणा और विश्वास से उपजा दृढ़ संकल्प का अथाह सागर मेरे भारत में उड़ेल दो ताकि घृणा और द्वेष की धधकती ज्वाला शांत हो जाये और हम अपने गोरवमयी इतिहास की यात्रा निरंतर जारी रखें।

कोई भी धर्म व विश्वास राष्ट्र धर्म के ~~आगे~~ पीछे आता है यह हमारी परंपरा रही। बाणों की शय्या में लेटे

भीष्म पितामह ने अपने आखिरी उपदेश में
यही तो कहा था कि जब कभी देश के बटवारे
का सवाल आजाये तो राष्ट्र धर्म का पालन
करने के लिये कुरुक्षेत्र में आना ही
पड़ेगा। मुश्किल यह है कि आज पांडवों व कौरवों
की सेना अलग अलग नहीं मिल जुल गई है -
कौन लड़ेगा जब हर आंगन को कुरुक्षेत्र बनाने
पर लोग तुले हुये हैं।

केवल राम, रहीम और ईशा की
सयुक्त कृपा ही यह सम्भव कर दिखा सकती है।
भगवन राम मैं भी बजरंग दल का एक अकिंचन
सदस्य हूं लेकिन उस बजरंग दल का नहीं
जो त्रिशूल और नंगी तलवारों से माताओं व
बहनों को आंतकित करते हैं - मैं आपके अनन्य
भक्त बजरंग बली के दल का हूं जिनका एक मात्र
आदर्श था - "राम काज कीन्हे बिना मोहि
कहां विश्राम" - इन्हीं शब्दों को स्मरण करते
हुये बेहाशी में जाऊंगा और अगर तुम्हें

इस अकिंचन सेवक से और कुछ काम लेना श्रेयस्कर दिखे तो वापस बुला लेना — वर्ना जीवन में जो कुछ तुम्हारी कृपा से कर सका हूं — मेरे लिये पर्याप्त है —

[signature]

22.10.50
६.१५ बजे
सांय.

Escorts Hospital
Intensive Care Unit.

पुनश्च:—

भगवन आपकी प्रेरणा से सतत्तुलसीदास ने आपकी महिमा का वर्णन करके सभी प्राणियों के लिये एक प्रेरणास्रोत के रूप में रामचरित मानस दिया — इतनी कृपा और कर देते तो इस देश पर आपत्ति के बादल आज नहीं मंडराते यदि सत तुलसी ने अयोध्याजी में आपके जन्म स्थान पर निर्मित

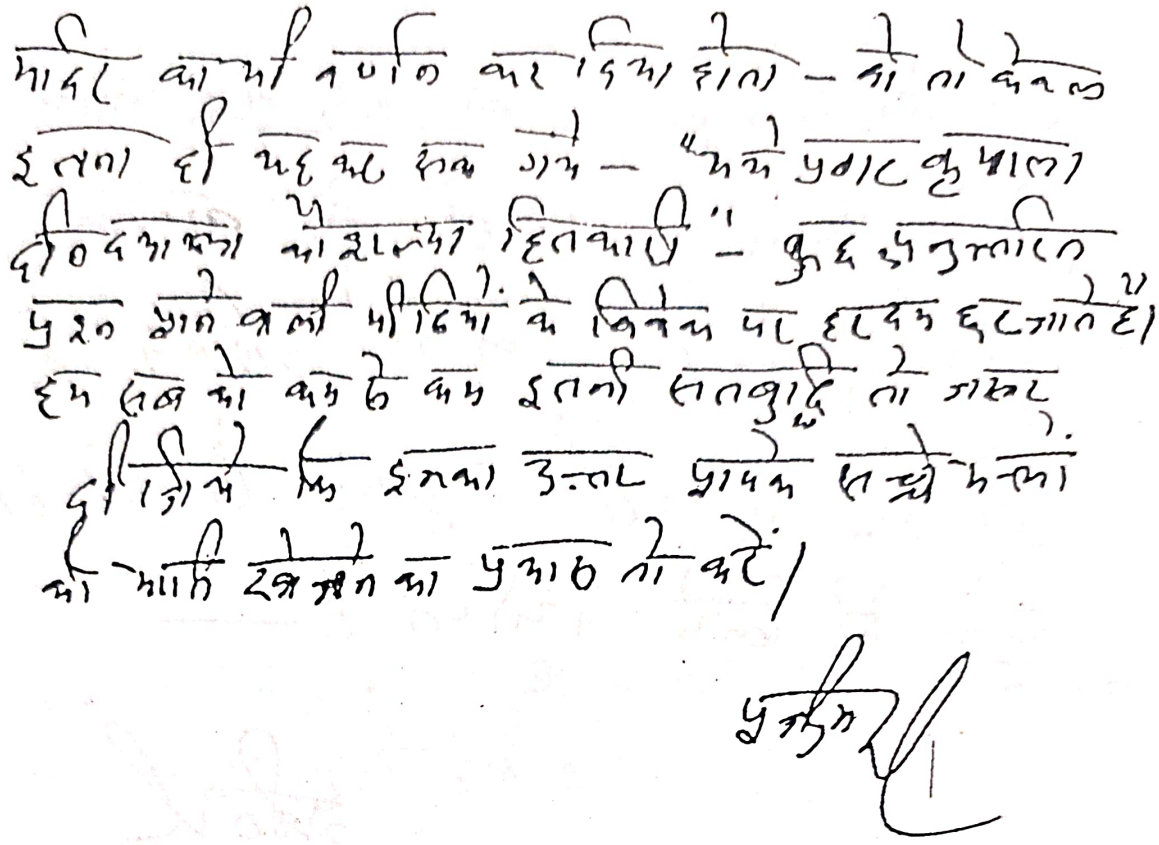

हृदय की शल्य-क्रिया से पूर्व श्री अर्जुनसिंह द्वारा लिखा पत्र

यह है वह पत्र जो 22 अक्टूबर 1990 को एस्कॉर्ट हास्पिटल में, हार्ट ऑपरेशन के लिये ऑपरेशन थिएटर में ले जाने और ऐनिस्थिशिया दिये जाने से पूर्व श्री अर्जुनसिंह ने स्वयं अपनी क़लम से लिखा था। हृदय की शल्य-क्रिया के पूर्व मनुष्य की क्या मानसिकता होती है, मनःस्थिति होती है, यह लिख पाना संभव नहीं है। आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं। ऐसे समय जब मरीज़ प्रभुसे स्वयं का जीवनदान माँगता है, प्रभु से परिजनों का कल्याण चाहता है, अपनी पत्नी, पुत्र, पुत्रियों, परिजनों को अश्रुपूरित नयनों से निहारते हुए जीवन-मृत्यु के बीच के हिंडोले में डगमगाते आत्मविश्वास से जीने की कामना में प्रभु से प्रार्थना करता है, ऐसे समय श्री अर्जुनसिंह ने यह मार्मिक पत्र लिखा। यह पत्र श्री अर्जुनसिंह के जीवन, विचार, कल्पना, साधना, तपस्या, राष्ट्रभक्ति, समाजकल्याण, धर्म, पंथ, पूजा और प्रभु के प्रति उनकी साधना और भावना क़ा दर्पण है।

यह पत्र एक बार नहीं, कई बार पढ़िये। हर बार इसमें श्री अर्जुनसिंह का एक नया चेहरा प्रतिबिम्बित होता दिखाई देगा। यह पत्र पर्याप्त है उन्हें जानने, पहचानने, पढ़ने और समझने के लिये। हम आभारी हैं नई दिल्ली के प्रखर पत्रकार भाई पंकज शर्मा के, जिन्होंने हमें श्री अर्जुनसिंह के पत्र की यह प्रति उपलब्ध करवाई। हम अपने पाठकों को यह पत्र भेंट कर रहे हैं। यही है सच्चा अभिनन्दन! जो ग्रंथ है, वह तो कुछ ग्रंथियाँ खोलेगा, बाँधेगा। ग्रन्थ में जो भी कुछ है, इस पत्र में लिखित शब्दों को वह मात्र सार्थकता प्रदान करने का विनम्र प्रयास भर है। यह पत्र है जिसे हम अर्जुन वाणी कह सकते हैं, अर्जुन दर्पण कह सकते हैं, अर्जुन दर्शन कह सकते हैं, अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रंथ कह सकते हैं।

—संपादक

सांस्कृतिक विरासत का स्मरण

मध्यप्रदेश में कला और संस्कृति युगे-युगे

शम्भुदयाल गुरु
(पुरातत्व विश्लेषक वरिष्ठ लेखक)

मध्यप्रदेश, भारत का विशालतम राज्य है। यहाँ की भूमि शस्य-श्यामला, रत्नगर्भा है। पुरातत्व और नेतृत्व की दृष्टि से मध्यप्रदेश अत्यंत सौभाग्यशाली है। राज्य के सभी भागों में मानव सभ्यता के आदिकाल से लेकर निकट अतीत तक की बहुमूल्य सामग्री विपुल मात्रा में उपलब्ध है। साँची, विदिशा, भरहुत, उज्जयिनी, माहिष्मती, पद्मावती, त्रिपुरी, दशपुर सिरपुर बारसूर, बाघ, खजुराहो, भौरमदेव, उदेश्वर, पाली, माण्डू, ग्वालियर, धार, आदि के नामोल्लेख मात्र से मध्यप्रदेश की संस्कृति और सभ्यता की अटूट परम्परा का इतिहास मानस पटल पर उभर आता है।

मध्यप्रदेश ने इतिहास प्रसिद्ध राज्यों और राजवंशों का उत्कर्ष और पतन देखा है। मौर्य, शुंग, सातवाहन, नागर, वाकाटक, गुप्त, राष्ट्रकूट, प्रतिहार, परमार, चंदेल, कलचुरि, कार्दमक, पाण्डु, शरभपुरी, गौंड, कच्छपघात, तोमर, मालवा के सुल्तान मुगलों, मराठों, आदि राजवंशों ने अलग-अलग क्षेत्रों में और अलग-अलग समय में अपना आधिपत्य बनाए रखा है। इसमें से हर एक ने मध्यप्रदेश की संस्कृति और सभ्यता पर अपनी छाप छोड़ी है।

कुछ अर्थों में, मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक परम्पराएँ अप्रतिम हैं। एक बड़ी संख्या में प्राचीन स्मारक जिनमें वैभवशाली मंदिर, भव्य और आकर्षक प्रासाद, अजेय दुर्ग, विशाल मस्जिदें, स्थापत्य और शिल्प के अद्वितीय नमूने प्रस्तुत करते हैं। अपनी केन्द्रीय स्थिति के कारण मध्यप्रदेश अनादि काल से कला और संस्कृति, स्थापत्य और शिल्प के चरम विकास का संगम स्थल रहा है। इतिहास की गरिमा से मंडित मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक परम्पराएँ इसे मानव सभ्यता के आदिम युग से जोड़ती है।

शैलाश्रयों और शैल-चित्रों के मामले में मध्यप्रदेश, देश का सबसे समृद्ध राज्य है। देश के लगभग दो तिहाई शैलाश्रय नये मध्यप्रदेश के 25 ज़िलों में देखे जा सकते हैं। इन चित्रित शैलाश्रयों में 21 ज़िलों के शैलाश्रय विंध्याचल की पहाड़ियों पर हैं और 4 ज़िलों के शैलाश्रय सतपुड़ा पर्वत श्रेणियों पर। वर्तमान 45 में से अधिकांश जिलों में शैलचित्रों के माध्यम से आदिकाल की सभ्यता से लेकर तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दी ईसवी तक की सभ्यता के प्रमाण उपलब्ध हैं। अब 16 नए जिलों के गठन की प्रक्रिया जारी है। ज़ाहिर है कि कुछ ज़िलों की संख्या बढ़ेगी तो शैलाश्रय वाले जिलों की संख्या भी बढ़ेगी।

आज से 112 वर्ष पहले, 1880 में कैमोर की पर्वत श्रेणियों में आर्ची बाल्ड कारलेले और जॉन काफबर्न ने सबसे पहले शैल-चित्र खोजे थे। उसके बाद तो अनेक विद्वानों ने इस दिशा में कार्य किया। स्वतंत्रोत्तर काल में भी अनेक पुरातत्वविदों और विद्वानों ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। इनमें स्वर्गीय विष्णु श्रीधर वाकणकर का निष्ठापूर्ण कार्य सर्वोपरि महत्व का है। डॉ. एस.के. पांडे और डॉ. शंकर तिवारी ने भी इस कार्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। वाकणकर को सबसे बड़ा श्रेय भीम बैठिका समूह के शैलाश्रयों और शैल-चित्रों को खोजने का है। भीम बैठिका में कुल 740 चित्रित शैलाश्रय है और जावरा-फिरंगी-राजबंध क्षेत्र के 'एस बेल्ट' में, जो कि बेतवा के

उद्गम क्षेत्र में है, सैकड़ों चित्रित शैलाश्रय हैं। दुनिया के किसी भी देश के एक छोटे से क्षेत्र में इससे अधिक शैलाश्रय नहीं पाये गये।

अज्ञात कलाकारों ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस प्रदेश के वनप्रान्तरों में स्थित शैलाश्रयों में निवास किया है और इन्हें सजा-सँवारकर अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति को उजागर किया है। मनुष्य में अपने परिवेश के सौन्दर्यीकरण की स्वाभाविक चाह और लगन रही है। आदि मानव से लेकर ऐतिहासिक युग के मानव ने इन चित्रों में लोक-कलाओं की सशक्त अभिव्यक्ति की है। शैलाश्रयों की दीवारों और छतों पर असंख्य चित्र बनाए गए हैं। अनेक स्थानों पर चित्रों की एक परत के ऊपर बाद के समय में, दूसरे चित्र बनाए गये हैं।

यह कहना मुश्किल है कि शैलकला के जनक कौन लोग थे। प्रत्येक युग में चित्रों के विषयों में तत्कालीन समय की सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति, उपयोग में आने वाले औज़ारों, कार्यकलापों, वेशभूषा आदि की जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिये परवर्ती प्रस्तर युग तथा मध्यकालीन प्रस्तर युग की कलाकारी में शिकारी युग की सभ्यता का प्रतिबिम्ब मिलता है, जबकि ताम्राश्म युग के चित्रों में खेती-किसानी के जीवन की झलक मिलती है। चित्रों में तत्कालीन समय के जानवरों की आकृतियों का समावेश भी बड़ी संख्या में किया गया है। उदाहरण के लिये नर्मदा घाटी के शैलाश्रयों में हाथी और गेंडा हाथी के चित्र हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि जब ये चित्र बनाये गये होंगे तो कलाकारों ने उन्हें इस क्षेत्र में विचरते हुए देखा होगा। इन चित्रों में शिकार और नृत्य के दृश्य काफ़ी बड़ी संख्या में हैं। पक्षियों, स्त्री-पुरुषों, उपासना पद्धति, धार्मिक प्रतीकों के चित्र भी पूर्व में रायगढ़ जिले से लेकर पश्चिम में मन्दसौर जिले तक और उत्तर में ग्वालियर से लेकर दक्षिण में बैतूल तक सर्वत्र पाये गये हैं।

चित्रों को देखने से प्रतीत होता है कि आदि मानव एकायामी रेखीय आकृतियाँ बनाता था और इनमें एक निरन्तरता है। शिकारी दल के मुखिया को शिकार के दृश्य में विशेष आभूषणों, पंखों आदि से अलंकृत कर दल के अन्य सदस्यों से ऊँचा स्थान देने का कलाकार का जो प्रयास शैल-चित्रों में दिखायी देता है, वही प्रयास हमें मालवा, पहाड़ी, मुगल, राजस्थानी और अजंता के भित्ति-चित्रों में भी दृष्टिगोचर होता है। इनसे प्रारंभिक प्रस्तर युग का ऐतिहासिक युग से एक शृंखलाबद्ध जोड़ का भी ज्ञान होता है। शैल-चित्रों की आकृतियाँ आज भी थोड़े से अंतर के साथ, गोंड, भील, बैगा, कोरकू तथा अन्य आदिवासियों के निवासों की भित्तियों और द्वारों के अलंकरण में विद्यमान हैं। ऐसे रेखांकन बड़ी संख्या में हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि चित्रकारों का प्रकृति में विश्वास भी था और वे उससे भय भी खाते थे। शैलाश्रय के चित्रकार क्या अपने शरीर को चित्रित करते थे? चित्रों से प्रतीत होता है कि वे ऐसा करते रहे होंगे। आज भी आदिवासी, विशेषकर महिलाओं में यह प्रथा जारी है।

इस प्रश्न पर पर्याप्त मत-मतान्तर हैं कि शैल-चित्र कब बनाये गये। कुछ विद्वान उनका प्रारंभ पुरापाषाण युग से मानते हैं, परन्तु इसमें एक लाख वर्ष से लेकर पचास हज़ार वर्ष तक ईसा पूर्व में शुरुआत का अनुमान है। अधिक प्रामाणिक यह मत है कि शैल-चित्रों का प्रारंभ मध्यपाषाण युग याने क़रीब 10,000 ई. पूर्व में हुआ और 13वीं-14वीं सदी तक जारी रहा है। चित्रों की काल गणना में उन रेखानुकृतियों का भी सहारा लिया जाता है जो कि लुप्त जानवरों की हैं। उदाहरणार्थ मध्यपाषाण कालीन चित्रों में हाथी के चित्रों में कान, अफ्रीकी हाथी की तरह सिर की रेखा के ऊपर हैं, परंतु आज हाथी के कान इस रेखा के नीचे होते हैं। रायसेन, भीम बैठिका, गाँधी सागर आदि में ऐसे ही हाथी हैं। गेंडा हाथी मालवा के जंगलों में ताम्राश्म युग तक पाया जाता था। वाकणकर की मान्यता थी कि शुतुरमुर्ग हमारे राज्य में मध्यपाषाण काल तक पाया जाता था। पचमढ़ी, कठोतिया कराड़ और भीम बैठिका में पाये गये चित्रों को वे शुतुरमुर्ग के मानते हैं, जबकि शंकर तिवारी उन्हें सारस मानते हैं। कठोतिया में अब तक पाया गया पक्षी का सबसे बड़ा चित्र है, जो लाल रंग में है और चोंच से पंजे तक क़रीब 7 फीट है तथा उसकी चोंच 9 इंच लम्बी है।

शैल-चित्रों में हरे, गहरे लाल, गेरुआ, नीले, काले, पीले और सफेद रंगों का प्रयोग किया गया है। चित्रकार ने शैलाश्रयों के आसपास पायी जाने वाली सामग्री का उपयोग किया है। प्रतीत होता है कि प्रारंभिक चित्रों में हरे रंग का प्रयोग किया गया है। कभी-कभी पीले रंग का भी इस्तेमाल हुआ है। भीम बैठिका राखा ज्वार, जावरा, फिरंगी, कठोतिया और बागवानी में हरे के साथ लाल रंग का भी उपयोग हुआ है। भीम बैठिका के उत्खनन में ऐसे मृदभांड मिले हैं जिन पर ताम्राश्म युग की चित्रकारी शैल-चित्रों की चित्रकारी के अनुरूप है। इससे पाषाणकालीन सभ्यता और ताम्राश्म युगीन सभ्यता के सम्मिलन की महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध हुई है।

मौर्यकालीन कला : साँची के स्तूप एवं बौद्ध धर्म से संबंधित अन्य स्मारक भारतीय बौद्धकला का सम्पूर्ण और भव्य उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। शताब्दियों तक विस्मृति के गर्त में पड़े हुए इन अतुलनीय स्मारकों का उद्धार संयोगवश 1818 में ही हुआ। इसके पुनः प्रतिष्ठापन, असंख्य खण्डहरों के उत्खनन और पुनर्निर्माण का श्रेय सर जान मार्शल को है। उन्होंने उनका पूर्व रूप लाने का पूरा प्रयास किया। अशोक का विवाह विदिशा के श्रेष्ठी की देवी नामक कन्या से हुआ था। अतः स्वाभाविक ही अशोक के लिये यह क्षेत्र महत्वपूर्ण था। उसी रानी के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा धर्मोपदेश के लिये लंका जाते हुए चैत्यगिरि याने साँची आये थे।

साँची की पहाड़ी पर मुख्य तीन स्तूप हैं। एक बड़ा स्तूप और दो उससे छोटे। बड़े स्तूप का व्यास 120 फीट और गुम्बज क़रीब 54 फीट ऊँचा है। अशोक के समय में यह स्तूप ईटों का बना हुआ था। परन्तु एक शताब्दी के बाद, जबकि इसमें जालीदार घेरा और तोरण बनाये गये, उसका आकार दो गुना करके उसमें पत्थर जड़ दिये गये।

साँची का मुख्य आकर्षण तो बड़े स्तूप के चारों ओर निर्मित भव्य तोरण द्वार है। इन द्वारों पर ऊपरी हिस्से में तीन मेहराबें बनी हुई है। ये मेहराबें दो चौकोर स्तम्भों पर बनी है। सबसे ऊपर धर्मचक्र है जो बौद्ध धर्म का प्रतीक है। स्तम्भों और मेहराबों पर जातक कथाएँ, बुद्ध के जीवन के दृश्य और बौद्ध धर्म के इतिहास की प्रमुख घटनाओं के चित्र उकेरे गये हैं। इसमें उल्लेखनीय बात यह भी है कि तोरण पर अशोक को गया में बोधि वृक्ष की यात्रा के लिये जाते हुए दिखाया गया है। अशोक के चित्र और किसी बौद्ध स्मारक में नहीं पाये गये।

पूर्वी तोरण पर गौतम बुद्ध का अपने पिता के महल से विदाई का दृश्य है। पश्चिमी तोरण में बुद्ध के सात अवतार दर्शाए गए हैं। बीच की मेहराब पर बुद्ध को पहला धर्मोपदेश देते हुए दिखाया गया है। शिल्पकार की कुशल छैनी ने अपनी सीधी-सादी किन्तु अभिव्यक्तिपूर्ण शैली में बौद्ध धर्म की सारी कहानी कह दी है। शिल्पकार की अनुभूति और सहज सच्चाई ने इन मूर्तियों को जीवन्त बना दिया।

महान स्तूप के उत्तर-पूर्व में एक छोटे आकार के स्तूप में जनरल कनिंघम ने 1852 में बुद्ध के दो शिष्य सारिपुत्त और महामोदगलथन के अवशेष खोज निकाले थे और उन्हें लंदन ले गया था। ठीक एक शताब्दी के बाद, 1952 में तृतीय विश्व बौद्ध सम्मेलन के अवसर पर उन शिष्यों की अस्थियाँ वापिस लायी गयीं और साँची के नवनिर्मित बिहार में रखी गयीं। साँची के आसपास भी अनेक स्तूप हैं। सोनारी में आठ, शतधारा में दो। साँची में चैत्य भवन और तीन प्राचीन बिहार के खण्डहर भी हैं। गुप्तकालीन एक मंदिर भी यहाँ स्थित है।

सम्राट अशोक द्वारा स्थापित ऐतिहासिक स्तम्भ के टूटे हुए खण्डहर भी साँची में हैं। स्तम्भ के ऊपरी भाग में चार शेर बने हुए हैं जिनके पृष्ठ भाग आपस में मिले हुए हैं। यह स्तम्भ साँची के महान स्तूप दक्षिण तोरण के निकट बना हुआ है। इस स्तम्भ पर अंकित अशोक की एक घोषणा ऐतिहासिक महत्व रखती है, इसमें अशोक ने किसी भी प्रकार का धर्मभेद पैदा न करने के लिये अत्यंत प्रभावपूर्ण शब्द कहे थे। स्तम्भ का चमकदार रंग और उसके पॉलिश की चिकनाई उसे विशिष्ट कलात्मक दर्ज़ा प्रदान करती है।

मौर्यकालीन प्रस्तर स्तंभ जो 50 टन वजनी होते थे, कला के क्षेत्र में उत्कृष्ट उपलब्धि के प्रतीक थे। इन विशाल स्तंभों का निर्माण, स्थापना स्थल तक ले जाना और स्थापित करना अशोक कालीन क़ारीग़रों की कुशलता का द्योतक है। कलाकार ने इन स्तंभों को तराशने और पालिश करने में जो भी तरीका उपयोग में लाया हो, उनकी चमक और चिकनाई बेजोड़ है। भ्रम होता है मानो स्तंभ प्रस्तर के नहीं धातु के बने हों। सारनाथ के स्तंभ की मूर्तियों को जॉन मार्शल स्टाइल और तकनीक की दृष्टि से प्राचीन भारत की सर्वश्रेष्ठ कृति मानते थे। भारत का राष्ट्र चिन्ह सारनाथ स्तंभ का शीर्ष ही तो है। रूपनाथ (जबलपुर), गुर्जा (दतिया) और पान-पुराड़िया (सीहोर) में अशोक के शिलालेख है।

बेसनगर के उत्खनन में, जो कि हेलियोडोरस के गरुड़ ध्वज के पास किया गया था, महेश्वरी दयाल खरे ने एक दीर्घवृत्ताकार या अण्डाकार मंदिर की खोज की थी। उसका निर्माण चौथी-तीसरी सदी ई. माना जाता है। अपनी तरह का भारत में यह पहला मंदिर है। उसमें गर्भगृह, प्रदक्षिणापथ (दोनों अण्डाकार है), अन्तराल और मण्डप है। एक दीर्घवृत्ताकार मंदिर के एक हिस्से का उत्खनन डी.आर. भण्डारकर ने नगरी (राजस्थान) में किया था। बेसनगर के मंदिर की खोज अत्यधिक धार्मिक, ऐतिहासिक, पुरातात्विक और स्थापत्य के महत्व की है। कुमारस्वामी के अनुसार ईसाइयों के चर्च की प्रारंभिक वृत्ताकार एवं अर्द्धवृत्ताकार योजनाओं का मूल भारतीय भी हो सकता है। इसकी पुष्टि पर्सी ब्राउन ने भी की है। उसने लिखा है, "वैदिक झोपड़ी के विकासक्रम में, बाद में गोलाकार योजना को अण्डाकार योजना में लंबायमान कर दिया गया, जिसमें मुड़े हुए बाँसों पर घास-फूस का छप्पर था।" वह स्थापत्य क्रम प्रारंभिक काल का था, अतः संभव है कि दो बड़ी योजनाओं याने गोलाकार व आयताकार को मिलाकर अण्डाकार योजना विकसित की गयी हो। जिस क्षेत्र में वह मंदिर बना था वह 8.10 मीटर वर्गाकार था। इस मंदिर की छत घास-फूस और लकड़ी से निर्मित की गयी थी। केवल नींव के निर्माण में ईंट की एक पर्त का उपयोग किया गया था। वह मंदिर विष्णु का रहा होगा क्योंकि उसके निकट ही हेलियोडोरस का द्वितीय सदी ईसा पूर्व का गरुड़ ध्वज है।

बेसनगर का वह दीर्घवृत्ताकार मंदिर बाढ़ से नष्ट हो गया था। उस स्थल का उपयोग विष्णु मंदिर बनाने के लिए पुनः किया गया था। परन्तु मंदिर निर्माण के पहले उस स्थल पर एक प्लेटफार्म बनाया गया था जिसकी रक्षा के लिये चारों ओर अनगढ़े पत्थरों-कंकड़ों से दीवारें बनायी गयी थीं। 1965-66 के उत्खनन में गरुड़ ध्वज के पास सात और स्तंभों के अवशेष उजागर हुए।

हेलियोडोरस स्तंभ : बेसनगर में ही दीर्घवृत्ताकार मंदिर के सामने ही तक्षशिला के ग्रीक राजा ने विदिशा की शुंग सभा में अपने राजदूत हेलियोडोरस को भेजा था। उसने भागवत धर्म स्वीकार कर लिया था और वासुदेव की भक्ति में गरुड़ ध्वज स्थापित किया। स्तंभ पर उसने अंकित कराया है कि वह हिन्दू धर्म का अनुयायी हो गया था।

शुंग कालीन कला : सतना जिले में, ऊचेहरा रेल्वे स्टेशन से सात किलोमीटर दूर भरहुत है। नवम्बर 1873 में कन्धिम को भरहुत में स्तूप की खोज का श्रेय है। स्तूप ध्वंस अवस्था में था। वह उसके अवशेष उठाकर, कलकत्ता संग्रहालय ले गया, जहाँ वे आज भी प्रदर्शित हैं। इलाहाबाद के संग्रहालय में भी काफ़ी अवशेष सुरक्षित है। कुछ अवशेष देश और विदेश के संग्रहालयों में भी हैं।

भरहुत स्तूप का निर्माण ईसा पूर्व दूसरी सदी में किया गया था। पाटलिपुत्र से उज्जयिनी माहिष्मती होते हुए भारूकच्छ (भड़ोंच) के राजपथ पर स्थित होने के कारण भरहुत की स्थिति भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थी। शुंगकाल में तोरण, वेदिका आदि दान से निर्मित किये जाने का उल्लेख उत्कीर्ण लेखों में मिलता है। स्तूप के निर्माण में उसकी भूमिका प्रमुख प्रतीत होती है, परन्तु यह कहना संभव नहीं है कि वह मथुरा का राजा था, या कि कोशाम्बी का। परन्तु

अब कोशाम्बी में धनभूति की सील मिलने के बाद यह निश्चितप्राय है कि वह कोशाम्बी का राजा था। वह मघ वंश का था, जिसका राज्य दक्षिण कौशल तक था।

साँची की तरह भरहुत, स्तूप, तोरण आदि का निर्माण विभिन्न समय में किया गया। स्तूप का निर्माण संभवतः मौर्यकाल में किया गया था, फिर शुंगकाल में प्रस्तुर वेदिका, स्तूप पर प्रस्तर की पर्त, तोरण बनाये गये। भरहुत के स्तूप, वेदिकाओं और तोरणों में शुंग युगीन कला और जीवन के अनेक पक्षों की भावपूर्ण अभिव्यक्ति है, भरहुत के कलाकार के भावपक्ष और कलापक्ष समान रूप से प्रबल थे। आनंद, उल्लास, क्रोध, तप अथवा भोग इन सभी को भरहुत स्तूप के दृश्यों में अत्यंत कुशलता से उकेरा गया है। इनमें एक ओर जहाँ जीवन का धार्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण प्रकट होता है वहीं जीवन के विभिन्न प्रसंगों का दिग्दर्शन भी होता है। संक्षिप में यह कहा जा सकता है कि भरहुत के कलाअंकनों में जीवन के संपूर्ण कार्यकलापों का समावेश है।

भरहुत में बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित मुख्य चार घटनाओं– जन्म, सम्बोध, धर्मचक्रप्रवर्तन तथा परिनिर्वाण– का अंकन मिलता। उनके जीवन से संबंधित अन्य प्रसंगों जैसे जैतवन दान, श्रावस्ती में चमत्कार का अंकन भी है। परंतु बुद्ध का मानवीय रूप उनमें नहीं मिलता। उन्हें केवल प्रतीकों के रूप में दर्शाया गया है। यहाँ जातक कथाओं का विपुल भंडार है। भरहुत के अंकनों में नागों और पशु-पक्षियों के अंकन हैं। शैली की दृष्टि से भरहुत की कला का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। जीवन के विविध पक्ष भी यहाँ कलाकार ने दर्शाए हैं। इसमें राजाओं और कुलीनों और सामान्य व्यक्तियों का अंकन, स्त्रियों का अंकन और उनकी वेशभूषा, मनोरंजन के दृश्य, कुछ भी तो छूटा प्रतीत नहीं होता।

नृत्य, गायन आदि का भी तत्कालीन समाज में विशेष महत्व था। देवताओं की सभा के उत्सव में नृत्य मंडली की नृत्य मुद्राओं का अंकन है। उनमें विभिन्न वाद्ययंत्र जैसे वीणा, ढोल, डमरू, शंख, तुरही आदि दर्शाए गए हैं। दो दृश्यों में नृत्य के हाव-भाव संगीत एवं वाद्ययंत्रों का समावेश है।

गुप्तकालीन कला-वैभव : गुप्त सम्राटों के शासनकाल की कला मुख्य रूप से हिन्दू धर्म से प्रभावित है। प्रतापी गुप्त सम्राटों के अंतर्गत भारत के अधिकांश क्षेत्र राजनीतिक रूप से एकीकृत और देश की धमनियों में नया स्पंदन था। परिस्थितियाँ रचनात्मक, सांस्कृतिक आंदोलनों के लिये पूरी तरह अनुकूल थीं। स्थापत्य के क्षेत्र में गुप्तकाल में एक नयी पद्धति की शुरुआत हुई। पहली बार तराशे हुए पत्थरों से मंदिरों का निर्माण प्रारंभ हुआ। वास्तव में हिन्दू मानस सज-धज वाले स्थापत्य का समर्थक नहीं था। **शतपथ ब्राह्मण** में हिन्दू पूजा घर का वर्णन किया गया है, जिसमें दो छप्पर हैं जो कि घरों और बल्लियों से बने हैं और चटाई से ढके हुए हैं। पहले निरंकार देवता की कल्पना थी। परंतु फिर भगवान को साकार रूप में पूजने की जनआकांक्षा प्रबल हो गयी। इसलिये मूर्ति की स्थापना के लिये पूजागृहों का निर्माण आवश्यक हो गया।

इस प्रकार हिन्दू मंदिर का आकार क्रमिक रूप से परिवर्तित होता रहा। पहले पत्तों का मण्डप, फिर सरकंडों की झोपड़ी और फिर लकड़ी तथा ईटों से बनी हुई एक कोठरी और अंततः गुप्त शासनकाल में पत्थर से निर्मित गर्भगृह अस्तित्व में आ गया। इसमें एक छोटा-सा कमरा होता था, जिसके भीतर मूर्ति प्रतिष्ठित की जाती थी। इसमें केवल एक द्वार होता था ताकि भीतर के अंधकार से ध्यान करने में सहायता मिले। भीतरी दीवारें अलंकरण से मुक्त होती थीं परन्तु मंदिर की बाह्य भित्तियों का अलंकरण और मूर्तियों का अंकन प्रारंभ हुआ। इसी प्रकार गर्भगृह के द्वारों के भव्य मनोहारी अलंकरण की शुरुआत हुई।

विश्राम के लिए द्वार के बाहर एक छप्पर का निर्माण भी प्रारंभ हुआ जो कि गुप्तकाल में ही चार स्तम्भों वाले मण्डप के रूप में प्रकट हुआ। इन मंदिरों के साथ-साथ पहाड़ में खोदी गयी गुफाएँ भी अस्तित्व में आयीं, जैसे उदयगिरि की गुफाएँ।

गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य में क्रमिक विकास इस छोटे से रूप से शुरू हुआ और फिर उसका स्थान सपाट छत और स्तम्भों वाले मण्डप ने ले लिया। यह सुखद आश्चर्य का विषय है कि स्थापत्य के इस रूप का दर्शन गुप्तकालीन जिन मंदिरों में होता है वे सब के सब मध्यप्रदेश में विद्यमान हैं। इनमें जबलपुर ज़िले में तिगवा का मंदिर, ऐरण (सागर) ज़िला में नृसिंह मंदिर और अन्य मंदिर, नचना का पार्वती मंदिर, भूमरा का शिव मंदिर, उदयगिरि (ज़िला विदिशा) और मढ़िया (कटनी के निकट) के मंदिर प्रमुख हैं। ललितपुर ज़िले का दशावतार मंदिर भी गुप्तकाल का है।

उपर्युक्त मंदिरों में से गुप्तकालीन मंदिरों की विशिष्टताओं से युक्त सबसे प्रमुख तिगवा का विष्णु मंदिर है। यह जबलपुर से क़रीब 66 कि.मी. दूर है। यह मध्यप्रदेश के प्राचीनतम स्मारकों में एक है और ऐरण के स्मारकों का समकालीन है। यह पत्थरों से बना वर्गाकार छोटा मंदिर है, जिसकी छत गुप्तशैली के अनुसार सपाट है। इस मंदिर की संरचना ऐरण के मंदिर, उदयगिरि के गुफा मंदिरों तथा साँची के मंदिर से बहुत मिलती-जुलती है। इसकी एक विशेषता यह है कि गर्भगृह का द्वार अलंकृत है और उस पर कच्छप पर यमुना और मगर पर गंगा की प्रतिमाएँ हैं। लेकिन यह प्रतिमाएँ शीर्ष के निकट हैं, जैसा कि अजंता की गुफाओं में है और यह गुप्तकाल की प्रारंभिक शैली है। बाद में इन देवी प्रतिमाओं का अंकन द्वार पर नीचे किया जाने लगा और बाद के काल में वे पूर्णत: लुप्त हो गयीं। इसमें मण्डप के स्तंभों का रूपांकन बैसनगर के प्रसिद्ध हेलियोडोरस स्तंभ की तरह है। इस स्तंभ में एक विशाल शीर्ष फलक है जिस पर सिंह हैं और शीर्ष कलश या उल्टे कमल के समान है।

गुप्तकाल के स्तंभ शीर्षों का मुख्य लक्षण पूर्ण कलश है जो कि पुष्प और फूलदान का प्रतीक है। ऐरण का प्रमुख आकर्षण बराह की विशाल प्रतिमा है और गुप्तकाल का एक विशाल स्तम्भ है। यह विशाल स्तंभ बुध गुप्त के राजकाल में विष्णु और उसके भाई धन्यविष्णु ने स्थापित करवाया था। 47 फुट ऊँचा यह विशाल स्तंभ एक ही शिला से बना है। यह 20 फुट की ऊँचाई तक वर्गाकार है और उसके ऊपर का 8 फीट अष्टकोणीय है। स्तंभ शीर्ष का निचला भाग झालरदार घंटाकृति का है। शीर्ष फलक पर दो सिंह बैठे हुए हैं। यह स्तंभ 484 ईसवी का है।

भूमरा का शिव मंदिर और नचना का पार्वती मंदिर सन् 500 के पहले ही बनाये गये थे। इन मंदिरों में एक विशिष्ट लक्षण जुड़ गया है और वह है धार्मिक जुलूसों के लिये पथ का प्रावधान। इनके द्वार विशिष्ट गुप्त शैली के हैं। भूमरा मंदिर अलंकृत शिल्पकला, अलंकृत द्वार, सुंदर पद्मक, कीर्तिमुख और छत पर पत्तियों और लताओं के रूपांकन के लिये उल्लेखनीय हैं उसकी चैत्य खिड़कियों में जो पद्मक हैं उनमें देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ हैं। देवगढ़ के मंदिर में गर्भगृह पर एक पिरामिडीय शिखर है। वास्तव में यह मंदिरों में शिखर निर्माण के प्रारंभ का सूचक है।

मूर्तिकला : गुप्तकाल में मूर्तिकला का प्रतिनिधित्व दो शैलियाँ करती हैं। मथुरा शैली और बनारस शैली। मथुरा प्राचीन शैली थी और उसमें कुषाण-गांधार परंपराओं की निरंतरता मिलती है। मथुरा शैली की मूर्तियाँ चुनार के बलुआ पत्थर से बनी हुई हैं और उनके नैन-नक्श विदेशी प्रभाव से पूर्णतः मुक्त हैं।

इस काल में शैव और वैष्णव मूर्तियाँ, अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बड़ी संख्या में निर्मित की गयीं। भूमरा के मंदिर में एक मुख शिवलिंग स्थापित है। भूमरा और उदयगिरि में भी एकमुख शिवलिंग प्राप्त हुई है। भूमरा और खोह के एक मुख शिवलिंग में से उदयगिरि की वीणा गुफा के शिवलिंग की तुलना की जाये तो ज्ञात होता है कि यह सबसे प्राचीन है इसके मुख की सौम्य-शांत मुद्रा अत्यंत आकर्षक है। मंदसौर में प्राप्त हुआ अष्टमुख शिवलिंग बहुत प्रसिद्ध है क्योंकि अष्टमुख शिवलिंग देश में और कहीं प्राप्त नहीं हुआ है। कालिदास ने **मालविकाग्निमित्र** और **अभिज्ञानशाकुन्तल** के मंगलाचरणों में शिव की इस अष्टमुखी मूर्ति का उल्लेख किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि ये मूर्तियाँ नागकालीन हैं।

गुप्तकालीन स्मारकों में विष्णु की आराधना का भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व है। उदयगिरि की गुफा नम्बर 5 में दीवारों पर विष्णु की बराह अवतार की भव्य प्रतिमा है। चट्टान पर उकेरी गयी विशाल प्रतिमा में सिर बराह का है और

शरीर मनुष्य का। इसमें वराह द्वारा निर्बल पृथ्वी को अपने दाँतों से ऊपर उठाया हुआ है और अपने बायें पैर से दुष्ट नागराजा को कुचलते हुए दिखाया गया है। यह मूर्ति अत्यंत सशक्त वराह प्रतिमा मानी गयी है। पठारी (जिला विदिशा) में कृष्ण को एक शिशु के रूप में माँ के बाजू में लेटे हुए दिखाया गया है। ढोगलर इस चित्र को भारतीय मूर्तिकला के श्रेष्ठतम और विशालतम शिल्पों में से एक मानता है। भूमरा के मंदिर में सूर्य की एक प्रतिमा है जिसको मथुरा संग्रहालय की कनिष्क की मूर्ति की तरह वस्त्र धारण कराये हुए दिखाया गया है।

बौद्ध-धर्म ने शिल्प के रूप में गुप्तकाल की कला के श्रेष्ठ नमूने प्रस्तुत किये हैं। प्रारंभिक कला में बुद्ध की मूर्तियाँ नहीं बनायी जाती थीं, वरन् उन्हें प्रतीकों के रूप में दर्शाया जाता था। गुप्तकाल में महायान के प्रभाव में यह बंधन हट चुका था। अतः गुप्तकाल में बुद्ध की मूर्तियाँ बड़ी संख्या में निर्मित की गयीं। गुप्तकालीन बौद्ध शिल्प की एक और विशेषता यह थी कि उस काल में बोधिसत्वों की मूर्तियों का निर्माण बहुतायत से होने लगा था। इसमें मैत्रेय और अवलोकितेश्वर की अनेक मूर्तियाँ बनायी गयीं।

चित्रकला– बाघ की गुफाएँ : प्राचीन भारत की स्वर्णिम युग की अद्वितीय देन हैं। धार जिले में धार नगर से क़रीब 96 कि.मी. दूर ये गुफाएँ निर्मित की गयी हैं। विंध्य-पर्वत श्रेणी के दक्षिणी ढाल पर, बाघ नदी से करीब डेढ़ सौ फीट की ऊँचाई पर बाघ की गुफाएँ बनायी गयी हैं। बाघ में कुल नौ गुफाएँ हैं जिनका मुख उत्तर-पश्चिम की ओर है। इनका निर्माण चौथी सदी में प्रारंभ होकर पाँचवीं सदी तक चलता रहा। बाघ में उस स्वर्णिम युग की चित्रकला और मूर्ति कला के एक साथ दर्शन होते हैं।

स्थापत्य-कला : बाघ की गुफाएँ पहाड़ को तराश कर बनायी गयी हैं। पहली गुप्त गृह गुफा के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें 23 फुट लम्बा और क़रीब 24 फुट चौड़ा एक कक्ष है जिसमें चार स्तंभ हैं। दूसरी गुफा पाण्डव गुफा कहलाती है। यह सब गुफाओं में सर्वाधिक बड़ी है। इसके बीच में एक बहुत बड़ा मण्डप है जिसके तीनों ओर कोठरियाँ बनी हैं। मण्डप के सामने खम्बों पर सधी एक दालान है और पीछे की ओर स्तूप हैं। मण्डप की छत 20 खम्बों पर सधी है। तीसरी गुफा हाथीखाना कहलाती है। इसमें भी भिक्षुओं के रहने की कोठियाँ बनी हैं। वे अधिक सुसज्जित हैं तथा उन पर भित्ति-चित्र बने हैं।

चौथी गुफा, तीसरी गुफा से ढाई-सौ फीट की दूरी पर है। यह गुफा रंगमहल कहलाती है क्योंकि यह एक महान चित्रबीथी है। इस गुफा का सभा मण्डप 98 फुट का वर्गाकार कमरा है। इसकी छत 38 खम्बों पर आधारित है। पाँचवीं गुफा में 98 फुट लम्बा और 44 फुट चौड़ा आयताकार मण्डप है। इसमें 8-8 स्तम्भों की दो पंक्तियाँ हैं। प्रतीत होता है कि गुफा नम्बर 4, 5 और 6 एक समूह में थीं। गुफा नम्बर 6, 44.6 फीट का वर्गाकार मण्डप है। इसमें अष्टभुजी चार स्तंभ हैं। गुफा 5 और 6 एक बड़े कक्ष द्वारा सम्बद्ध हैं। सातवीं गुफा मात्र 5 मीटर दूर है, इसका सभामण्डप 86.6 फीट वर्गाकार है जिसमें 20 स्तम्भ हैं। मण्डप के चारों ओर 18 कोठरियाँ और एक पूजागृह है। इसके सामने क़रीब 88 फीट लम्बा और 10 फीट चौड़ा द्वार मण्डप है। आठवीं गुफा, गुफा नम्बर 7 से जुड़ी है परन्तु यह नष्टप्राय है। नौंवीं गुफा तो विलुप्त ही हो चुकी है। चित्रकला का गुप्तकाल में व्यापक प्रसार था। लोककला के रूप में रंगोली के उल्लेख मिलते हैं। मालविकाग्निमित्र में संगीतशाला के साथ चित्रशाला का उल्लेख है। मृच्छकटिक में बसंतसेना के भवन में गणिकाओं के हाथों में चित्रफलक होने का उल्लेख चित्रकारी का स्पष्ट संकेत है। यहाँ चित्रकला का विधिवत शिक्षण होता था, जो चित्रकला के आचार्यों द्वारा प्रदान किया जाता था। अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त को चित्र बनाते हुए दर्शाया गया है।

मूर्तिशिल्प : भगवान बुद्ध ने अपनी मूर्ति अथवा चित्र के अंकन का निषेध किया था। बौद्ध विहारों में वे नारी चित्रों के अंकन के भी संभवतः पक्ष में नहीं थे। परंतु कला-प्रेमी मानव और प्रकृति के सौन्दर्योपासक भारतीय

कलाकारों ने स्तूपों और विहारों को मानव तथा प्रकृति की आकृतियों से भी जी भर कर सजाया सँवारा। यक्षी, शालभंजिका मानव की रूप रानी होकर पत्थरों पर, दीवारों पर और पटों पर थिरक उठीं। बुद्ध की मूर्ति निर्माण का निषेध, महायान के प्रभाव में, कनिष्क ने गांधार में तोड़ा था। फिर इसका प्रभाव सारे भारत पर फैल गया और बुद्ध की मूर्तियाँ बनने लगीं।

बाघ की गुफाओं में हीनयान और महायान प्रभाव का संगम दिखाई पड़ता है। इन गुफाओं के सभा मण्डपों के ठीक सामने गर्भगृह बने हैं और उसमें पूजा के लिये स्तूप बने हुए हैं। इसके साथ ही बाहर दोनों ओर गौतम बुद्ध की मूर्तियाँ हैं जो कि बोधिसत्वों से घिरे हैं। गुफा क्रमांक दो में 10 फुट 4 इंच ऊँची बुद्ध की प्रतिमा है और उनके दोनों ओर दो बोधिसत्व बने हैं। स्तूप-मंदिर के द्वार के दोनों तरफ़ क़रीब 9 फुट ऊँचे द्वारपाल बने हैं। बौद्ध धर्म में नाग और यक्ष पूजा को भी अपना लिया गया। गुफा क्रमांक दो में बनी नाग की मूर्ति इसका प्रमाण है। बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियाँ त्रिभंग मुद्रा में हैं। चौथी गुफा के अलंकृत द्वारों पर नदी देवियाँ बनी हैं। दोनों मकर पर खड़ी हैं। इसप्रकार की मूर्तियाँ गुप्तकालीन मंदिरों की विशेषता है।

प्राचीन भारत में कला जीवन में व्याप्त हो चुकी थी। बाघ के कलाकारों ने पूरी तल्लीनता और समर्पण भाव से बाघ की गुफाओं में चित्रकारी की है। दुर्भाग्य है कि अजंता की तरह, इनकी रक्षा नहीं हो सकी। गुफाओं के अधिकांश चित्र नष्ट हो गए हैं और जो शेष बचे हैं वे अत्यंत अस्पष्ट हैं या धुंधले पड़ गये हैं। वर्षों पहले प्रसिद्ध कलाकारों से उसकी प्रतिलिपियाँ करा ली गयी थीं, जिससे इन महान कलाकृतियों की जानकारी हमें उपलब्ध हुई। ये प्रतिलिपियाँ ग्वालियर के गूजरी महल संग्रहालय तथा ब्रिटिश म्यूज़ियम लंदन में सुरक्षित हैं।

गुफा क्रमांक दो में पद्मपाणि बुद्ध का चित्र है। यह हमारा सौभाग्य है कि इसका एक बड़ा भाग अक्षत् है। यह सुन्दर चित्र आभूषणों से अलंकृत और पुष्पों से सुसज्जित है। गुफा क्रमांक 3 में बुद्ध और बोधिसत्वों के अनेक चित्र अभी तक सुरक्षित हैं। चित्रों के आस-पास पुष्प राशि की प्रचुरता है। इसी गुफा में एक चामर ग्राहिणी का सुन्दर चित्र है।

गुफा क्रमांक 4 और 5 के सामने की 220 फीट लम्बी दालान की भित्ति पर लगातार 6 दृश्यों की मनोहारी चित्रावलि बनी हुई है। इनमें स्त्रियों, पुरुषों, राजघराने की महिलाओं, सामान्य जनों, गायन, वादन, नृत्यों के दृश्यों, अश्वारोही सैनिक दलों, हाथियों आदि के सुन्दर चित्र हैं। यह गुफा 'रंगमहल' के नाम से विख्यात है जो कि उसकी मनोहारी चित्रकारी के कारण सर्वथा उपयुक्त है।

बाघ के कलाकार ने प्रकृति का सजीव चित्रण उन्मुक्त होकर किया है। कहीं सुन्दर पुष्प राशि और पल्लवों के बीच गाय और बृषभ की जोड़ी खड़ी कर दी है, कहीं कमल और कुमुदनी के बीच हंस दृष्टिगोचर हो रहे हैं और कहीं काले-कजरारे बादलों के नयनाभिराम दृश्य हैं।

प्रकृति का यह सहज, मनोरम और प्रचुर अंकन बाघ की गुफाओं की अपनी विशिष्टता है। इन अर्थों में यह अजंता की चित्रकारी से भिन्न है। अजन्ता का चित्रकार जहाँ जातक कथाओं में बंधा है वहाँ बाघ के चित्रकार की दृष्टि अधिक व्यापक और सर्वग्राही है। उसने बुद्ध, बोधिसत्व, भिक्षु-भिक्षुणी, धार्मिक परिचर्चा, शोक, करुणा, नृत्य, गीत, प्रकृति सबका तन्मयता से चित्रण किया है। बाघ के गुफा चित्रों में प्रकृति एवं मानव जगत परस्पर आलिंगन किये हुए प्रतीत होते हैं। वास्तव में अजंता और बाघ प्राचीन भारतीय चित्रकला के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। बाघ की गुफाओं के विषय में सर जॉन मार्शल ने लिखा था– "यह चित्र जिस शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं वह एक ऐसा स्रोत और केन्द्र स्थल था जहाँ से एशिया की आधी कला ने प्रेरणा प्राप्त की...। उनकी तुलना माइकेल ऐंजिलो तक यूरोप में जो कुछ श्रेष्ठ किया गया उनसे की जा सकती है।"

नाग राजवंश का काल : कुषाण राज्य के अंत के साथ-साथ नव नागों का अभ्युदय हुआ। विष्णु पुराण के अनुसार इन नव नागों ने पद्मावती, कांतिपुरी तथा मथुरा में राजधानियाँ बनाकर एक बड़े क्षेत्र पर राज्य किया। पद्मावती में इन्होंने सबसे पहले राज्य स्थापित किया। ग्वालियर जिले में पवाया नाम का गाँव ही प्राचीन पद्मावती है। नागों की जानकारी साहित्य अभिलेखों तथा हज़ारों सिक्कों से मिलती है। कांतिपुरी अब कुतवार (जिला मुरैना) कहलाती है। इनका विदिशा में भी बड़ा प्रभाव क्षेत्र था। नाग राजवंश ने ईसा की प्रथम सदी से चौथी सदी तक इस क्षेत्र में राज्य किया।

स्थापत्य-कला : पद्मावती के नाग राजा भारशिव थे अर्थात् वो शिवलिंग कंधे पर लेकर चलते थे। वे मूलतः बुंदेलखण्ड के निवासी थे और वहीं से वे गंगा के मैदान की ओर फैले। पद्मावती के नाग राजा द्वारा बनवाये गये विष्णु मंदिर से उनके स्थापत्य कला की जानकारी मिलती है। उत्खनन से यह मंदिर प्रकाश में आया। मंदिर का चबूतरा करीब 93 फीट वर्गाकार का है और उसके ऊपर का चबूतरा 53 फुट वर्गाकार का है। पद्मावती के विजेताओं ने नागों के दो चबूतरों के ऊपर 140×143 फीट चबूतरे का निर्माण करके, इन दोनों चबूतरों को ढक दिया। इस मंदिर के पास एक विशाल प्रतिमा प्राप्त हुई है और इसी के पास एक नागराज की मूर्ति मिली है। इनसे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पद्मावती का नाग राजाओं का यह मंदिर विष्णु को समर्पित था। मंदिर के पास ही 12 फुट लम्बा एक तोरण प्राप्त हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि नागकालीन दोनों चबूतरों के ऊपर कोई भव्य मंदिर रहा होगा।

विष्णु मंदिर के पास ही ताड़-स्तम्भ शीर्ष प्राप्त हुआ है। भूमरा (जिला सतना) का शिव मंदिर भी नागों द्वारा निर्मित किए जाने का अनुमान है। भरहुत में भार मुक्ति, अर्थात् भारशिव नागों का प्रदेश का अपभ्रंश है। वास्तव में यह क्षेत्र कभी भारशिव नागों की समृद्धि का क्षेत्र था। भूमरा के मंदिर में ताड़ वृक्ष के तने के द्वार स्तम्भ प्राप्त हुए हैं, साथ ही अनेक स्थानों पर ताड़ पत्रों के अलंकरण बने हुए हैं। ताड़ नागों का राज-चिन्ह था। इससे प्रतीत होता है कि यह मंदिर पद्मावती के भारशिवों ने बनवाया था, न कि उनके बाद आये गुप्त सम्राटों ने।

मूर्तिकला : नाग राजाओं का भारतीय मूर्तिकला के विकास में विशिष्ट योगदान रहा है। नागकालीन मूर्तियों में केवल गंगा की मूर्तियाँ मिलती हैं जो कि अपने मकर वाहन के साथ दर्शायी गयी हैं। द्वारों पर गंगा-जमुना की जोड़ी का प्रदर्शन गुप्त काल में प्रारम्भ हुआ। आरम्भ में द्वार के दोनों ओर मकर वाहिनी गंगा की मूर्ति बनायी जाती थी, जैसे उदयगिरि और बाघ के गुफा द्वार पर अंकित है। गंगा को भी नाग राजाओं ने अपना राज-चिह्न बनाया था। उनके सिक्कों पर कलश लिये हुए गंगा की आकृति है। इसलिये शिव भक्त नागों ने अपने शिव मंदिरों को सजाने के लिये गंगा की मूर्ति का उपयोग किया।

इसी प्रकार ताड़ भी नागों का राज-चिह्न था जो कि मुद्राओं पर भी मिलता है। पद्मावती की तरह विदिशा में भी ताड़ स्तम्भ मिले हैं। नागकालीन मूर्तियों की तीसरी विशेषता यह है कि नागों की मुद्राओं और मूर्तियों में नागछत्र मिलते हैं। नागों ने सर्प को भी अपने राज-चिह्नों में शामिल किया था। पद्मावती के विष्णु मंदिर के पास बड़ी संख्या में पकी मिट्टी की मृण मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो बहुत सुन्दर है। सम्भवतः इनका उपयोग मंदिर को सजाने में किया जाता था।

साँची के पास एक नागमूर्ति प्राप्त हुई थी जिसका मूर्तिशिल्प अत्यंत उच्च श्रेणी का है। साँची के पास ही फीरोजपुर ग्राम में राजा-रानी की दो मानवाकार से ऊँची प्रतिमाएँ मिलीं। इनके निकट एक स्तम्भ शीर्ष भी प्राप्त हुआ था जिस पर नाग राजा तथा रानी की प्रतिमाएँ हैं। इन सब पर अलग-अलग नागछत्र हैं। ये मूर्तियाँ अत्यंत सुंदर हैं। विश्वास किया जाता है कि ये मूर्तियाँ किसी नाग पूजक सम्प्रदाय की न होकर, नाग राजाओं की मूर्तियाँ हैं, जिनका निर्माण

तीसरी सदी के अंत में हुआ है। पिछली शताब्दियों में भारतीय शिल्पकार ने जो प्रवीणता एवं कौशल अर्जित किया था उसका चरमोत्कर्ष इन प्रतिमाओं में प्रदर्शित है। पद्मावती में नागछत्र युक्त एक नाग राजा की मूर्ति विष्णु मंदिर के पास ही प्राप्त हुई है।

संगीत : नागों, शुंगों सातवाहनों और वाकाटकों के यज्ञस्थलों में सामगान के स्वर गुंजरित होते थे। **गुणाढ्य** ने कहा है कि अपना अध्ययन समाप्त कर जब वह गाँव में आया, तो उसे सबसे पहले सामवेद के स्वर सुनाई दिये। सामगान का नाद सम्पूर्ण मध्यप्रदेश में सुनायी देता था। भगवान भाष्यकार से यह सूचना मिलती है। शुंगवंशी सामवेदी ब्राह्मण थे। भारतीय संस्कृति की अटूट परम्परा आगे की पीढ़ियों को मिलने तथा उसके संरक्षण एवं उन्नयन का सारा श्रेय सामगान की नूतन स्वर साधना को है जो साम्प्रदायिक घेरे से निकलकर राष्ट्रीय गान बन गयी थी।

लौकिक संगीत की जानकारी भी तत्कालीन साहित्य से मिलती है। तब संगीत पद्धतिबद्ध कला थी। **मालविकाग्निमित्र** से ज्ञात होता है कि एक पूर्व परम्परा जिसमें गीत, नृत्य और वाद्यों के प्रयोग का सूक्ष्म निरूपण था। उसका विधिवत शिक्षण होता था। **मृच्छकटिक** के तीसरे अंक के छठवें श्लोक में राग का स्पष्ट उल्लेख है। जनश्रुति दीपक राग के आविष्कार का श्रेय विक्रमादित्य को देती है। **मृच्छकटिक** में उस युग में प्रचलित वाद्यों का उल्लेख भी मिलता है। उसके चौथे अंक में मृदंग, कांस्यतालों अर्थात् झाँझ, बाँसुरी तथा वीणा, पाँचवें अंक में सप्तछिद्र बांसुरी और सप्ततंत्री वीणा का वर्णन है। कालिदास की रचनाओं में भी वीणा, वेणु, पुष्कर (मृदंग), शँख दुंदुभी, तूर्य आदि का उल्लेख मिलता है। मृदंग इस युग का सबसे अधिक लोकप्रिय वाद्य था।

नृत्य : उस युग में नृत्यकला भी बहुत लोकप्रिय थी। नाट्य शास्त्र में नृत्य का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। विभिन्न नृत्यों के संकेत साहित्य, मूर्तिकला और चित्रकला में मिलते हैं। बाघ के एक भित्ति-चित्र में एक मण्डल नृत्य का दृश्य है। इसमें एक नृतक बीच में नृत्य करता है और उसके चारों ओर वाद्य वादक घेर कर नृत्य करते हैं। यह रास नामक लोक नृत्य की पूर्व परम्परा है। **मालविकाग्निमित्र** नाटक से गणिकाओं के गीत गाकर नृत्य करने और अन्य युवतियों को वाद्य बजाकर राज्याश्रित शिक्षा ग्रहण करने की जानकारी मिलती है।

मृच्छकटिक की बसन्तसेना की सम्पन्नता, नागरिकों की संगीत परायणता तथा नृत्य प्रेम का ही परिणाम थी। पद्मावती में प्राप्त तोरण के प्रस्तर खण्ड में गीत-नृत्य का अनुपम दृश्य अंकित है। यह प्रस्तर खण्ड दो फुट वर्गाकार का है। इसमें एक स्त्री बीच में खड़ी भावपूर्ण नृत्य कर रही है। नृत्यांगना वस्त्र-अलंकारों से अत्यंत सुरुचिपूर्ण ढंग से सजी हुई है। उसके चारों ओर नौ स्त्रियाँ गद्दियों पर बैठी हुई दो तारों के वाद्य बजा रही हैं, जिनमें वीणा, ढपली, मंजीरा, मृदंग और वेणु दिखाई दे रहे हैं।

विक्रमादित्य के नवरत्न : उज्जयिनी के साथ विक्रमादित्य का नाम अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। वे किवदंती के नायक हैं और उन्हें बहुत प्रतापी, दानी, न्यायप्रिय और साहित्य संस्कृति का महान आश्रयदाता माना जाता है। विक्रमादित्य का राज्यकाल स्वर्ण युग के रूप में विख्यात है। अनेक विद्वान गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमादित्य मानते हैं।

जो भी हो **ज्योतिर्विद्याभरण** नामक ग्रंथ के अनुसार विक्रमादित्य की सभा में नवरत्न थे। ये थे– सर्वश्रेष्ठ वैद्य धनवन्तरि, ज्योतिषशास्त्र के विद्वान क्षपणक, **अमरकोष** के रचयिता अमरसिंह, शिक्षाचार्य शंकु, बेतालपच्चीसी और सिंहासन बत्तीसी में विक्रमादित्य से जुड़े नीतिशास्त्री और मंत्रविद्यानिपुण बेताल भट्ट **नीतिसार** और **धटखर्पर** काव्य के रचयिता धटखर्पर, कविकुलगुरु कालिदास, प्रकाण्ड ज्योतिषी और **वृहत्संहिता**, **वृहज्जातक**, **पंचसिद्धान्तिका** के रचयिता वराहमिहिर और व्याकरणाचार्य वररुचि। इनमें से अनेक ऐसे हैं जिनके विक्रमादित्य के समकालीन होने पर विवाद है।

परमार राज्यकाल साहित्य : परमार राजवंश का शासन काल (सन् 818 से 1305 तक) मालवा का स्वर्ण युग था। परमारों के अंतर्गत मालवा ने सुख-समृद्धि, वैभव और महानता की नयी ऊँचाइयों को छुआ। इस काल में साहित्य, कला, स्थापत्य कला, मूर्तिकला, का चरमोत्कर्ष हुआ। वास्तव में परमारों के समय में, साहित्य के जो जाज्वल्यमान नक्षत्र मालवा भूमि में अवतरित हुए, उत्तर भारत का कोई भी जन्म क्षेत्र उसकी बराबरी नहीं कर सकता। परमार शासक केवल महान योद्धा और विजेता ही न थे, वरन् साहित्यकारों और विद्वानों के महान आश्रयदाता भी थे।

परमार शासकों ने साहित्यकारों और कलाविदों के सत्कार और राजाश्रय का ऐसा प्रतिदर्श स्थापित किया, आसपास के समकालीन राजवंश जिसके अनुरूप कार्य करने का भरसक प्रयास करते थे। यहाँ तक कि कमज़ोर परमार शासकों की अवधि में भी उन्होंने बौद्धिक श्रेष्ठता का केवल इस आधार पर भेदभाव नहीं किया कि बुद्धिजीवी वैष्णव थे कि शैव, शक्त या जैन।

परमार शासक साहित्यकारों और विद्वानों के संरक्षक तो थे ही, साथ ही उनमें से अनेक उच्चकोटि के कवि और लेखक थे। वाक्पति द्वितीय, जो कि मुंज के नाम से विख्यात हुआ, परमार-वंश का एक अत्यंत प्रतापी शासक था। उसने पृथ्वीवल्लभ, श्रीवल्लभ, नरेन्द्र आदि उपाधियाँ धारण की थीं। उदयपुर प्रशस्ति में मुंज की प्रशंसा करते हुए लिखा गया है कि वह एक ऐसा शासक था– "जिसने भाषण कला और उच्चकोटि की कविता पर अधिकार स्थापित किया और शास्त्रों के नियमों पर पूर्णता प्राप्त की।" यद्यपि मुंज की कोई कृति उपलब्ध नहीं है, फिर भी समकालीन रचनाकारों की कृतियों में उनके पदों के उल्लेख से उनके कवि होने का प्रमाण मिलता है। उनको पद्मगुप्त ने कविबंधु और कविमित्र की संज्ञा से सम्बोधित किया है।

कवि धनंजय, भट्ट हलायुध, धनिक, पद्मगुप्त, अमितगति जैसे कवि मुंज के दरबार की शोभा बढ़ाते थे। धनंजय दशरूप के लेखक थे, जबकि उनके भाई धनिक ने **दशानविलोक** नामक टीका की रचना की थी। मुंज का पुत्र सिंधुराज भी साहित्यकारों और विद्वानों का संरक्षक था। उसके समय में पद्मगुप्त परिमल जैसा उच्चकोटि का रचनाकार राजाश्रय में था। उसने **नवसाहसांकचरित्** नामक उच्चकोटि के ऐतिहासिक काव्य की रचना की थी। वास्तव में सिंधुराज की एक उपाधि नवसाहसांक थी और पद्मगुप्त ने अपने आश्रयदाता राजा के जीवन चरित्र और उसकी उपलब्धियों की अपनी पुस्तक में मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। उसमें सिंधुराज और नागकन्या शशि प्रभा से विवाह का वर्णन भी है।

भोजदेव, परमार वंश का सर्वाधिक प्रतिष्ठित और प्रतिभा सम्पन्न शासक था। प्राचीन भारत के महानतम राजाओं में उनकी गणना होती है। उनके नाम ने इतनी ख्याति अर्जित की है कि वे किंवदन्ती बन गये हैं। भोज ने सन् 1000 से 1055 तक 55 वर्ष की अवधि तक शासन किया। युद्ध के क्षेत्र में और शांति के क्षेत्र में, दोनों में ही भोजदेव की उपलब्धियाँ असाधारण तथा सुविख्यात है।

एक लेखक के रूप में भोज की इतनी ख्याति थी कि देश के विद्वानों ने उन्हें 84 उपाधियों से विभूषित किया था। इनमें से आयुर्वेद सर्वस्व, युक्ति-कल्पतरु, समरांगण सूत्रधार, सरस्वती कंठाभरण आदि कुछ उपाधियाँ थीं। कहा जाता है कि भोज ने प्रत्येक उपाधि के शीर्षक के अन्तर्गत एक कृति की रचना की थी। भोज विविध विषयों के प्रामाणिक और अधिकारी ज्ञाता थे उन्होंने विविध विषयों पर ग्रंथों की रचना कर आज तक सबको चकित कर रखा है। उनकी कृतियों में **शृंगार प्रकाश, समरांगणसूत्रधार, युक्ति-कल्पतरु, सरस्वतीकण्ठाभरण** (साहित्य), **सरस्वतीकण्ठाभरण** (व्याकरण), **राजमार्तण्ड, तत्वप्रकाश, भुजबलभीम राजमृगान्क, व्यवहार मंजरी, चम्पूरामायण** अधिक प्रसिद्ध हैं।

सरस्वतीकंठाभरण संस्कृत व्याकरण की एक महत्वपूर्ण कृति है और इतना महत्व प्राप्त है कि उसे पाणिनि की अष्ठाध्यायी के बाद स्थान प्राप्त है। शृंगार प्रकाश काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र पर एक शोध प्रबंध है। भोज ने सब

रसों में शृंगार-रस को सबसे ऊँचा माना है। सरस्वतीकंठाभरण अलंकार शास्त्र पर प्रमाणिक ग्रंथ है। राजमार्तण्ड, पातन्जलि, के **योगसूत्र** पर एक टीका है। राजमृगान्क एक चिकित्सा ग्रंथ है। तत्वप्रकाश आगणिक शैव सम्प्रदाय की नियमावली है और भुजबलभीम ज्योतिषशास्त्र का ग्रंथ है।

भोज का **समरांगणसूत्रधार**, नगर योजना घरों और मंदिरों की स्थापत्य कला, मूर्तिकला तथा चित्रकला पर एक वृहद् ग्रंथ है। कहा जाता है कि भोज ने संगीत और नृत्यकला पर भी एक ग्रंथ की रचना की थी। महाराणा कुम्भा ने अपनी पुस्तक संगीतराज में भोज का संगीत के एक अधिकारी विद्वान के रूप में उल्लेख किया है। उनका दरबार देश के 500 से अधिक चुने हुए विद्वानों का संरक्षण स्थल था। परवर्ती काल में मुस्लिम इतिहासकारों ने भी भोज की उपलब्धियों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। फरिश्ता ने लिखा है कि राजा भोज वर्ष में दो बार महाभोज आयोजित करता था, जो 40 दिन तक चलते थे। इस दौरान हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध गायक और नृत्यकार धारानगरी में एकत्र होते थे। भोज ने धारानगरी में, भोजशाला या सरस्वती बिहार में जो विश्वविद्यालय स्थापित किया था, कवि और रचनाकार वहीं एकत्र होते थे और पुरस्कार पाते थे। भोजशाला में ही भोज की साहित्यिक रचना **कूर्माशतक**, जिसमें दो प्राकृत कविताएँ हैं, उत्कीर्ण है।

संभव है कि वे सब कृतियाँ जिनका श्रेय भोज को दिया जाता है, स्वयं भोजदेव की लेखनी से उद्भुत न हुई हों। उनमें से कुछ की रचना दरबार में संरक्षण प्राप्त विद्वानों ने की होगी, परन्तु इतनी महत्वपूर्ण कृतियों के सम्पादन और उनमें अपनी विशिष्ट शैली और विद्वत्ता की छाप के कारण एक हज़ार सालों के बाद भी, विद्वत्जन भोज की विद्वत्ता के समक्ष नतमस्तक हैं।

परमार राजा नरवर्मन भी कवि था और उसे सुकविबंधु के नाम से सम्बोधित किया जाता था। सुप्रसिद्ध नागपुर प्रशस्ति का रचनाकार उसे ही माना जाता है। प्रशस्ति एक उच्चकोटि की साहित्यिक कृति है जिससे नरवर्मन की कल्पना शक्ति की गरिमा का पता चलता है। महाकालेश्वर मंदिर, उज्जैन के सर्पबंध अभिलेख का रचनाकार भी नरवर्मन माना जाता है। उसमें कवि ने अनुप्रास और काव्यमय अलंकरणों का अत्यंत प्रभावी उपयोग किया है।

परमार राजा अर्जुनवर्मन भी एक अच्छा कवि था। उसका एक उत्कीर्ण काव्य, **पारिजात मंजरी** धार की कमाल मौला मस्जिद में देखा जा सकता है। उसकी दूसरी कृति **रसिक संजीवनी** भी **अमरूशतक** पर बहुत अच्छी टीका है। उसके अभिलेखों में मुंज की प्रशंसा में लिखा गया है कि वह काव्य और गायन में पारंगत था और उसने सरस्वती से उनकी पुस्तक और बांसुरी छीन ली थी।

साहित्यकारों, कवियों और लेखकों की एक लम्बी शृंखला है जिनको परमार राजाओं के यहाँ संरक्षण और सम्मान मिला और विद्वानों को संरक्षण तथा सम्मान देने की परंपरा किसी एक या दो राजाओं तक सीमित नहीं थी, वरन् अजस्र प्रवाह की तरह निरंतर सम्पूर्ण शासन काल में बहती रही। मालवा की संस्कृति को समृद्ध और सुभाषित करती रही।

हलामुध राष्ट्रकूट शासक कृष्ण तृतीय के संरक्षण में मन्याखेत में निवास कर रहा था। परंतु परमारों की ख्याति सुनकर और उज्जयिनी की सांस्कृतिक-साहित्यिक परंपराओं से आकर्षित होकर वह उज्जैन आ गया, जहाँ वाक्पति मुंज का उदार संरक्षण उसे प्राप्त हुआ। उसकी कृतियों में काव्यशास्त्र पर लिखी गयी कवि-रहस्य, एक शब्द कोश **अभिधानरत्न माला** और **मृतसंजीवनी**, जो पिंगल छन्दशास्त्र पर टीका है, ज्ञात है। पद्मगुप्त परिमल को मुंज तथा सिन्धुराज दोनों का संरक्षण प्राप्त था। उसके द्वारा रचित **नवसाहसांक चरित** का उल्लेख किया जा चुका है। धनंजय मुंज का दरबारी कवि था। **नाट्यशास्त्र** पर उसकी कृति **दशरूप** की रचना मालवा में, दसवीं सदी के अंत में की गयी थी। वह कृति भरत के नाट्यशास्त्र के सिद्धांतों पर आधारित है। धनंजय का भाई, धनिक, अहिछत्र याने उत्तरप्रदेश के बरेली क्षेत्र का निवासी था और सन् 974 के पहले मालवा आकर बस गया था।

उवट, राजा भोज के शासनकाल में परमार दरबार के संरक्षण में था। वह बहुत बड़ा वैदिक विद्वान था। उसने

मंत्रभाष्य नामक अपनी रचना अवन्ति में रहकर लिखी थी। पंडित छित्तप संस्कृत के महान विद्वान थे। वे विदिशा क्षेत्र के निवासी थे और भोज के दरबारी कवि थे। बिल्हण तीन परमार राजाओं के समय रक्षामंत्री थे। साथ ही वे चोटी के विद्वान और साहित्यकार थे। पंडित आशाधर ने उन्हें कवियों का राजा कहा है। सुल्हण नामक एक और कवि, राजा विन्ध्यवर्मन के दरबार में माण्डू में निवास करते थे। राजा अर्जुन वर्मा के गुरु, मदन अपनी विद्वता और काव्य प्रतिभा के कारण बाल सरस्वती कहलाते थे। इनकी एक नाटिका **पारिजात मंजरी** प्रकाश में आयी है। पद्मगुप्त ने सीता नामक एक कवयित्री का उल्लेख किया है लेकिन वह किस परमार राजा के समय हुई यह निश्चित रूप से कहना मुश्किल है।

परमार वंश का शासनकाल धार्मिक सहिष्णुता का युग था। यद्यपि वे ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे, फिर भी उन्होंने उदारतापूर्ण जैन धर्म और साहित्य को संरक्षण प्रदान किया। दरबार में जैन विद्वानों को वही सम्मान प्राप्त था जो कि ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों को प्राप्त था। परिणामतः, परमारों के समय में जैन साहित्य की पर्याप्त श्रीवृद्धि हुई। देवसेन ने धार में रहकर दर्शनसार की रचना की। धनपाल तीन परमार राजाओं यथा, सीयक द्वितीय, मुंज और भोज का समकालीन था। मुंज ने उसे सरस्वती की उपाधि प्रदान की थी। वे संस्कृत और प्राकृत में पूर्णतः निष्णान्त थे। उन्होंने राजा भोज की जिज्ञासा शांत करने के लिये संस्कृत में **तिलक मंजरी** की रचना की थी। उसमें तत्कालीन समय की सामाजिक-धार्मिक और राजनैतिक सूचनाओं का समावेश है। महासेन भी राजा भोज का दरबारी कवि था। अमितगति को मंजु, सिंधु राजा और राजा भोज ने सम्मानित किया था। उन्होंने संस्कृत भाषा में, विभिन्न विषयों पर पुस्तकें लिखी थीं।

भोज और जयसिंह के समय में प्रभाचन्द्र, धारानगरी के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने जैनदर्शन, न्याय आदि अनेक विषयों पर रचनाएँ टीकाएँ लिखी थीं। श्रीचन्द्र, भोज का दरबारी कवि था। उसने **पुराणसार** और अन्य ग्रंथों की रचना की। कवि बीर, नैमीचन्द्र, नैनन्दी, जिनबल्लभ, राजा नरवर्मन के समकालीन थे। पंडित आशाधर राजा विन्ध्यवर्मन के शुभस वर्मन, अर्जुनवर्मन, देवपाल और जयतुगीदेव के समकालीन थे। तेरहवीं सदी के प्रथम अर्द्धांश का यह साहित्यिक नक्षत्र व्याकरणाचार्य के रूप में विख्यात था। उसकी सबसे प्रसिद्ध रचना **धर्मामृत** है।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि परमारों के अंतर्गत मालवा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश, तीनों भाषाओं में उच्चकोटि का साहित्य रचा गया। किसी काल में किसी देश की वास्तविक पहचान उसकी संस्कृति से होती है। उन अर्थों में, मालवा के सांस्कृतिक उत्थान का श्रेय निश्चित रूप से परमारों को प्राप्त है।

स्थापत्य-कला : परमार शासक कवि, लेखक और विद्वानों के संरक्षक के साथ-साथ महान निर्माता भी थे। उनके शासनकाल में मंदिर स्थापत्य-कला उत्कृष्टता के चरम बिन्दु पर पहुँची। उदयेश्वर, ऊन, महीदपुर, जामली (धार) मीनल (चित्तोड़) भोजपुर, निमाड़, नीमावर के मंदिर, स्थापत्य कला की श्रेष्ठता का ज्वलंत प्रमाण है। प्रारंभिक मध्यकाल की स्थापत्य-कला के वे श्रेष्ठतम उदाहरणों में से एक हैं।

इस क्षेत्र के परमार मंदिर, योजना, डिज़ाइन और अलंकरण में गुप्त और प्रतिहार विरासत की झलक देते हैं, फिर भी इनकी अपनी विशिष्टताएँ हैं। मंदिर निर्माण की भूमिज शैली, जो परमार कालीन मंदिरों में परिलक्षित होती है, स्थापत्य-कला को मालवा की देन है। यहीं इस शैली का जन्म हुआ और मालवा से ही भूमिज शैली पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण में अपनायी गयी। मालवा के बाद सबसे अधिक भूमिज शैली का मंदिर स्थापत्य महाराष्ट्र में मिलता है। मध्यकाल में मंदिर निर्माण की शैलियों में यह एक महत्वपूर्ण शैली हो गयी थी।

भूमिज का अर्थ है 'भूमि से उपजी' या 'ग्राम्य क्षेत्र में जन्मी'। इस शैली के मुख्य लक्षण है शिखर और चार **लाट**, जो कि केन्द्रीय रथों पर **चैत्य** तोरणों से अलंकृत होते हैं। साथ ही, चार लाटों के बीच में लघु शिखरों (सूर

सेनकों) की घटती ऊँचाई के समूह रहते हैं। शिखर के सामने की ओर सुकनास होता है, जो अत्यंत अलंकृत होता है।

भूमिज शैली का सबसे अलंकृत, सुन्दर और पूर्णतः प्राप्त मंदिर विदिशा जिले में, उदयपुर ग्राम के निकट उदयेश्वर मंदिर है। परमार राजा उदयादित्य ने इसे 1059 से 1080 के बीच निर्मित कराया था। मंदिर एक वृहदाकार चौगान में स्थित है और सात लघुमंदिरों से घिरा हुआ है। गर्भगृह में विशाल शिवलिंग स्थापित है। मंदिर में सभा, मण्डप, तीन प्रवेश मण्डप और अंतराल है। बाहरी दीवार पर विभिन्न हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। उदयेश्वर मंदिर के सौन्दर्य का मुख्य केन्द्र उसका उन्नत शिखर है, जो कि सात-सात मंदिरों की पाँच खड़ी पंक्तियों में लघु शिखरों से घिरा हुआ होने के कारण अपनी भव्यता का अद्वितीय प्रभाव छोड़ता है।

ऊन (पश्चिम निमाड़) में, जो कि परमार काल में एक समृद्ध नगर था, कभी 99 भव्य मंदिर थे, जिनमें अब मात्र एक दर्जन के क़रीब मंदिर ही शेष हैं। उत्तर भारत में खजुराहों के सिवाय ऊन ही वह स्थान था, जहाँ मंदिरों का इतना बड़ा समूह था। ऊन परमार युग की धार्मिक सहिष्णुता को भी उजागर करता है, क्योंकि वहाँ हिन्दू और जैन मंदिर साथ-साथ बने हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण और बड़ा है चौबारा डेरा क्रमांक एक मंदिर है। इन मंदिरों की आयोजना तथा शिखर डिजाइन उदयेश्वर मंदिर की तरह ही है, किन्तु कम अलंकृत है। नीमावर का सिद्धेश्वर मंदिर (जिला देवास) भी उत्तर भारत के सुन्दरतम मंदिरों में से है। भोजपुर का शिवमंदिर, अपनी ऊँची वेदिका और विशाल शिवलिंग के लिए विख्यात है।

परमार शासकों ने अनेक नगर बसाये और अनेक विशाल जलाशयों का निर्माण करया। मुंज ने मुंजपुरा बसाया तथा मुंजसागर खुदवाया, भोज ने भोजपुर बसाया और तत्कालीन भारत में विशालतम मानव निर्मित झील बनवायी, उदयादित्य ने उदयपुर और देवपाल ने देवपालपुर (देपालपुर) बसाया और देपाल सागर खुदवाया। भोज ने **समरांगण सूत्रधार** में नगर योजना पर एक अध्याय लिखा है। भवन-निर्माण की विधियों का विशद् वर्णन भी उसमें है। उसकी **प्रमाण मंजरी** में समाज के विभिन्न वर्गों के लिये गृह निर्माण के नियम है। गृह स्वामियों के लिये जाति और समाज में स्तर के आधार पर मंजिलों की संख्या दर्शायी गयी है। साथ ही न्यायशाला, विद्याभवन, कूप, बापी, तड़ाग, आदि सार्वजनिक उपयोग के निर्माणों के लिये प्रमाण दिये गये हैं। राजभवन और प्रासाद निर्माण के नियमों का उल्लेख भी है।

मूर्तिकला : स्थापत्य-कला के साथ ही अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ था मूर्तिकला का विकास। परमार काल में मूर्तिकला भी सम्पूर्ण रूप से पल्लवित और पुष्पित हुई। उसने उत्कृष्टता के नये सोपान चढ़े। पश्चिमी मध्यप्रदेश के मंदसौर जिले में, हिंगलाजगढ़ से 500 से अधिक प्रतिमाएँ प्राप्त की गयी हैं। इनमें से अधिकांश इंदौर के पुरातत्व संग्रहालय में प्रदर्शित और संग्रहीत हैं—और कुछ भोपाल और अन्य संग्रहालयों में पहुँच चुकी है।

हिंगलाजगढ़ की परमार कालीन मूर्तियाँ मिलने के बाद यह साफ़ दिखाई देने लगा है कि परमार काल की मूर्तिकला, चन्देल मूर्तिकला से बहुत हीन और पीछे नहीं थी। परमार काल में शिव और विष्णु की पूजा समान रूप से लोकप्रिय थी, इसलिये दोनों से सम्बन्धित मूर्तियाँ, हिंगलाजगढ़ और अन्य क्षेत्रों में बहुतायत से मिली हैं। हिंगलाजगढ़ में शाक्त प्रतिमाएँ भी बड़ी संख्या में उपलब्ध हुई हैं। इससे स्पष्ट होता है कि परमार काल में हिंगलाजगढ़ शक्ति पूजा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण केन्द्र था, हिंगलाजगढ़ के कलाकारों ने अपनी कला का सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन उमा-महेश्वर की मूर्तियाँ गढ़ने में किया है। युगल प्रेमी के रूप में उमा-महेश्वर की मूर्तियाँ सम्पूर्ण देश की शिल्प-कला के क्षेत्र में अपना उन्नत भाल लिए मध्यप्रदेश के विभिन्न संग्रहालयों में पूरे गर्व से प्रदर्शित हैं। कलाकार ने शिल्पशास्त्र के सिद्धांतों का पालन करते हुए उमा की मूर्तियों में उनकी केश-सज्जा, आभूषण-अलंकरण, मुकुट, कर्णफूल, और अलंकरण तथा मुख के

हाव-भाव में ऐसे सौन्दर्य और लावण्य की सृष्टि की है कि दर्शक चित्र-लिखित-सा देखता ही रह जाता है।

इन मूर्तियों के मुख्य लक्षण हैं गोल चेहरा, कुछ आगे को निकली ठुड्डी, सीधी नासिका, पतले होंठ और चौड़ा वक्षःस्थल। महिला मूर्तियों में थोड़ा-सा परिवर्तन यह है कि होंठ मुस्कुराते हुए, कमानीदार भौंहें और पतली कटि होती थी। हिंगलाजगढ़ की मूर्तियों में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ विविध रूपों में मिली हैं। इनमें भिक्षाटन, शिव, गौरी, अम्बिका, हनुमान, लकुलीश, बामन, योगिनी, अभिसारिका, आदि की प्रतिमाएँ अपनी विशिष्टताओं के साथ तराशी गयी हैं। परमार काल की एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतिमा है, भोजदेव के समय की, वाग्देवी की या सरस्वती की प्रतिमा। यह मूर्ति सन् 1030 में शिल्पकार मनण्ठल द्वारा निर्मित की गयी थी। देवी अभंग मुद्रा में है। वे मुकुटधारण किये हैं और उनके कर्णफूल कंधे तक झूल रहे हैं। देवी ध्यान मुद्रा में हैं। उनके कुछ अलंकरण द्रविड़ शैली में और कुछ बंगाल और उड़ीसा की शैलियों से प्रभावित हैं। कला समीक्षा के प्रकाण्ड पंडित श्री सी.शिवराममूर्ति ने कहा है कि भोज से संरक्षण प्राप्त परमार शासनकाल की प्रतिमाओं में यह सबसे श्रेष्ठ कृतियों में से है। दुर्भाग्य से यह मूर्ति ब्रिटिश संग्रहालय में है यद्यपि उसे भारत वापिस लाने के निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं। परमारों के समय की असंख्य मूर्तियाँ हैं जो परमारकालीन शिल्प सौन्दर्य को प्रदर्शित करती हैं। इनमें से कुछ उत्कृष्ट मूर्तियों का उल्लेख ही संभव है। इनमें से एक है भूरे बलुआ पत्थर की नृत्यरत दुर्गा की प्रतिमा जो कि राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में है। पार्वती की एक प्रतिमा धार में प्राप्त हुई थी। इस मूर्ति का अलंकरण भोज की सरस्वती प्रतिमा की तरह ही है। उसमें पार्वती पंचाग्निसाधना में लीन हैं। मूर्ति पर राजा उदयादित्य का सन् 1081 का उत्कीर्ण लेख है। शिव की एक प्रतिमा उज्जैन में मिली थी जो ग्वालियर संग्रहालय में प्रदर्शित है।

शिव की एक प्रतिमा, जिसकी दस भुजाएँ हैं, कोटा में प्राप्त हुई है और अष्टभुजी प्रतिमा झालरापाटन में मिली है। झालरापाटन की प्रतिमा विलक्षण है। उसमें चार देवताओं - शिव, विष्णु, ब्रह्मा और सूर्य की संयुक्त मूर्ति है। परमार काल में सौर-सम्प्रदाय का अंकन लोकप्रिय था। इसलिये मालवा में अनेक स्थानों पर सूर्य या उनसे सम्बन्धित अन्य देवताओं का शिल्प सौन्दर्य देखने को मिलता है।

JAIPUR COLLEGE, BHOPAL
Book No.....
Date.....
26921

चित्रकला : परमार शासनकाल की चित्रकला के नमूने प्राप्त नहीं हुए हैं, लेकिन तत्कालीन साहित्यिक कृतियों से जानकारी मिलती है कि चित्रकारी समाज के उच्च वर्गों में पर्याप्त लोकप्रिय थी। भोज के **समरांगणसूत्रधार** में चित्रकारी पर एक पूरा अध्याय है। इसी प्रकार धनपाल की **तिलकमंजरी** में इस कला की तकनीकी शब्दावली के बहुत दिलचस्प संदर्भ दिए गए हैं। राजकुमार और राजकुमारियाँ चित्रकला में पारंगत होती थीं और चित्रकार अपने चित्र राजकुमारों के पास उनकी सम्मति और प्रशंसा के लिये ले जाते थे। पुस्तक में राजकुमार द्वारा चित्रशास्त्र में पारंगत और चित्र विद्योपाध्यायों से चर्चा का उल्लेख भी है। धनपाल ने चित्रशालाओं का उल्लेख किया है और लिखा है कि उनमें चन्दन से लिपाई की जाती थी। चित्रकार किस तरह चित्रकारी करते थे और किन साधनों द्वारा इसका भी उल्लेख है। राजघरानों में चित्रकारी की शिक्षा देने के लिये चित्रकार नियुक्त किए जाते थे। काशीप्रसाद जायसवाल और याजदानी का मत था कि एलोरा की गुफाओं में युद्ध के कुछ चित्र परमार राजा उदयादित्य द्वारा बनवाए गए थे परंतु यह मत सर्वमान्य नहीं है।

26921

चन्देल कालीन कला-वैभव : जैजाकभुक्ति याने बुंदेलखंड के चन्देल शासक भारत के महानतम निर्माताओं में एक थे। नौवीं शताब्दी के चतुर्थांश में, कन्नौज के चन्देल सामन्तों ने बुन्देलखण्ड में एक स्वतंत्र तथा समृद्ध राज्य की स्थापना की। उन्होंने क़रीब 500 साल तक इस भू-भाग पर शासन किया। उनके आश्रय में स्थापत्य और शिल्प कला का उनकी राजधानी खजुराहो में अद्‌भुत और विलक्षण विकास हुआ। उनके द्वारा निर्मित 85 मंदिरों में से मात्र इक्कीस मंदिर शेष हैं। स्थापत्य और शिल्पकला के वे ऐसे बेजोड़ प्रतिमान है, कि उनमें से यदि एक भी शेष रहे तो भी विश्व की महानतम धरोहरों में उसकी गणना की जाती रहेगी।

26921

अधिकांश मंदिरों का निर्माण काल 950 ईसवी से 1050 ईसवी के बीच माना जाता है। कुछ का यह भी विश्वास है कि इनका निर्माण 12वीं शताब्दी तक होता रहा। जो भी हो इतना तो निर्विवाद है कि खजुराहो के मंदिर स्थापत्य कला की अप्रतिम ऊँचाइयों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिये ताजमहल और वाराणसी के बाद सम्भवतः खजुराहो ही विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का सबसे बड़ा केन्द्र है। ये मंदिर काव्यमय पाषाण के रूप में प्रसिद्ध हैं। प्राचीन भारत की हिन्दू स्थापत्य कला के सर्वाधिक सृजनात्मक एवं सर्वोत्कृष्ट उदाहरण के रूप में खजुराहो के मंदिर अपनी स्वीकृति के लिये किसी कृपावन्त अनुशंसा के मोहताज नहीं हैं। खजुराहो के मंदिर तीन समूहों में विभाजित हैं। पश्चिमी समूह के मंदिर, पूर्वी समूह के मंदिर और दक्षिणी समूह के मंदिर। इनमें पश्चिमी समूह के मंदिर सर्वोत्कृष्ट माने जाते हैं। इनमें चौंसठ योगिनी का मंदिर, कंदरिया महादेव का मंदिर तथा चित्रगुप्त, विश्वनाथ और लक्ष्मण मंदिर शामिल हैं। कंदरिया महादेव मंदिर खजुराहो के मंदिरों में सबसे विशाल तथा अपने ढंग का अनूठा है। इस मंदिर की ऊँचाई 31 मीटर (101 फुट) है। खजुराहो के मंदिर "नागर" या "इण्डोआर्यन" शैली में निर्मित है।

प्रत्येक मंदिर ऊँचे और पक्के चबूतरे पर अवस्थित है और उसके चारों ओर कोई दीवार या परकोटा नहीं है। मंदिरों में अर्द्धमण्डप, मण्डप याने सभागार, अन्तराल और गर्भगृह की योजना है। गर्भगृह में उस देवी-देवता की प्रतिमा स्थापित है जिन्हें मंदिर समर्पित है। बड़े मंदिरों में महामण्डप भी है। अनेक मंदिर पंचायतन शैली के हैं। अर्थात् मुख्य मंदिर के चार कोनों पर भी चार छोटे-छोटे मंदिर निर्मित किये जाते थे। लेकिनं अब अनेक ऐसे मंदिर नष्ट हो चुके हैं।

अधिक विकसित कला शैली के मंदिरों में प्रदक्षिणा पथ भी है। मूल मंदिर एक ऊँचे अधिष्ठान पर निर्मित है जिनमें जंघा है। इनके शिखरों का उत्तरोत्तर उत्कर्ष है। प्रत्येक शिखर आमलक से युक्त है। मंदिर में मण्डपों तथा प्रदक्षिणा पथ में बड़े झरोखे हैं। जो मंदिर के भीतर प्रकाश और अंधकार का एक ऐसा मिश्रित वातावरण पैदा करते हैं जो अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता। प्रदक्षिणा-पथ तथा मंदिर की भीतरी तथा बाहरी भित्तियाँ जीवन्त मूर्तियों से अत्यधिक अलंकृत हैं। मूर्तियों की संख्या इतनी अधिक है कि प्रतीत होता है कि कलाकार ने एक इंच जगह भी बिना अलंकरण के नहीं छोड़ी। सभामण्डपों तथा मुख्य मण्डपों की छतों पर किया गया खुदाई का काम, वर्णनातीत है। अनेक छतों पर चित्ताकर्षक ज़्यामितीय आकृतियाँ निर्मित हैं। छत से लगे हुए स्तम्भ शीर्षों पर भी कला शिल्प के सुन्दर नमूने उत्कीर्ण है। इन मंदिरों में प्रवेश द्वार तोरण अत्यंत भव्य और अलंकृत हैं। चौसठ योगिनी के मंदिर को छोड़कर शेष मंदिर बलुआ पत्थर से बनाये गये हैं। चौंसठ योगिनी का मंदिर ग्रेनाइट पत्थर का बना हुआ है।

चन्देल शासक अत्यधिक सहिष्णु और उदार थे इसलिये खजुराहो में शैव और वैष्णव मंदिर तो हैं ही क्योंकि चन्देल उन्हीं के उपासक थे। वहाँ जैन मंदिर भी है। परन्तु धार्मिक भिन्नता के बावजूद उनकी शैली में एकरूपता है। यदि मुख्य मूर्ति को गर्भगृह से हटा दिया जाये तो यह कहना कठिन है कि उनमें शैव, वैष्णव या जैन मंदिर कौन-सा है।

चन्देल राजाओं के संरक्षण में सैकड़ों वर्ष तक असंख्य कलाकार, छैनी-हथौड़ा लिए अपनी साधना में लीन रहे। यह कार्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी निरंतर चलता रहा किन्तु स्थापत्य में ऐसा सामंजस्य और एकरूपता है, मानो एक ही व्यक्ति ने एक साथ ही इन अलौकिक और आकर्षक मंदिरों का निर्माण किया हो। चन्देल शासकों ने स्थापत्य और शिल्पकला के मर्मज्ञों को जो संरक्षण और प्रोत्साहन प्रदान किया, वह बेमिसाल है।

शिल्पकला : खजुराहो के मंदिरों की शिल्पकला, भारतीय शिल्पकला का एक अत्यंत मोहक-मोड़क बिन्दु है। इन मंदिरों के पहले तक मंदिरों की स्थापत्यकला पर ही सर्वत्र ध्यान केन्द्रित दिखायी पड़ता है। परन्तु चन्देलों के

संरक्षण में खजुराहो में शिल्प इतना प्रभावशील हो जाता है कि पूरा मंदिर ही एक विशालकाय तलाशी हुई कलाकृति की तरह दिखायी देने लगता है।

खजुराहो में उपलब्ध बहुसंख्यक मूर्तियों को छः वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग में देवी-देवताओं की मूर्तियाँ है, दूसरे में परिवार या पार्श्व देवता दिक्पाल आते हैं, तीसरे वर्ग में सुर-सुन्दरी या अप्सराएँ हैं, चौथे में घरेलू दृश्य, नर्तक, वादक आदि शामिल हैं, पाँचवें वर्ग में पशु-पक्षियों की प्रतिमाएँ आती हैं और छठें में मिथुन मूर्तियाँ आती है जो खजुराहो की मूर्तिकला का विलक्षण आयाम है।

नारी-देह का सौंदर्य महोत्सव खजुराहो के शिल्पियों ने जिस निपुणता, आत्मीयता, तल्लीनता और उन्मुक्तता से मनाया है, वैसे अन्यत्र देखने में नहीं आता है, वहाँ नारी का बाह्य रूप ही सुन्दर नहीं है उसका अंतर भी निर्मल है। वे अपार सुन्दरी, अचल यौवना, शृंखला प्रिया तथा अनंग उपासिका हैं। उनकी शृंखला भी उनके सौन्दर्य के अनुरूप है। खजुराहो के मंदिरों के गर्भगृह और बाह्य भित्तियों पर नारी विविध रूपों में अंकित है। संगीत और नृत्य ईश्वरोपासना के मुख्य अंग हैं। स्त्रियाँ संगीत और नृत्य के विभिन्न आयोजनों में, अनेक मुद्राओं में प्रदर्शित हैं। उनकी भाव-भंगिमाएँ तथा अंग-प्रत्यंग की मुद्राएँ देखते ही बनती हैं। मादकतापूर्ण नर्तन करती हुई, संगीत लहरियों को साकार करती हुई, आनन्दोल्लासों के क्षणों को आत्म-विभोर होकर जीती हुई ये पाषाण प्रतिमाएँ मांसल, मुखर, प्यार की स्पंदनशील चरम सीमाओं को मूर्त करते हुए कला जगत की धरोहर है। कभी वह पैरों में घुँघरू बाँधती हुई, कभी पुरुषों के साथ नृत्य करती, कभी वीणा, एकतारा, बांसुरी की तान छेड़ती और शंख फूँकती अपनी उपस्थिति दर्ज करती हैं।

यहाँ की नारी सुशिक्षिता है। नृत्य एवं संगीत की पंडिता है और विभिन्न वाद्ययंत्र बजाने में पारंगत है। कभी वह पत्र लिखती, पत्र-पढ़ती और तो कभी विचारमग्न है। कभी पैरों में महावर रचाती हुई, काँटा निकालती हुई, नेत्रों में अंजन लगाती और होठों पर लाली लगाती और कभी अपने ही सौन्दर्य पर रीझती-इठलाती रूपगर्विता, दर्पण निहारती दिखायी देती है। चित्रकारी में तल्लीन नारियों के अंकन से ज्ञात होता है कि वह चित्र-कला प्रवीणा भी थी। मिथुन मूर्तियाँ उत्तान शृंखला का प्रदर्शन हैं, जो वाममार्गियों से प्रभावित होने के कारण हैं। यों कला समीक्षकों ने अनेक कारण गिनाये हैं। इतना निश्चित है कि खजुराहो में पाषाण, कलाकारों की हथेलियों की ऊष्मा पाकर पिघल गया है, मोम बन गया है और कला यात्री उन्हें अपलक, विमुग्ध, ठगा-सा देखता ही रह जाता है।

कलचुरि काल : कलचुरि शासकों ने मध्यप्रदेश के विशाल क्षेत्र पर, अलग-अलग समय में, विभिन्न स्थानों पर सात सदियों तक राज्य किया। पहले उन्होंने माहिष्मती राजधानी से राज्य किया फिर उनकी एक शाखा ने पहले कालिंजर फिर त्रिपुरी को राजधानी बनाया। त्रिपुरी शाखा ने रतनपुर और रायपुर में राजधानियाँ बनायीं। कलचुरि प्रतापी शासक थे। वे निर्माता और साहित्यकारों के उदार आश्रयदाता भी थे। उनके शासनकाल में साहित्य, कला, स्थापत्य-कला, शिल्पकला का बहुत विकास हुआ। उनके उदार आतिथ्य के कारण देशभर के कवि उनके दरबार में खिंचे चले आते थे।

साहित्य : कलचुरियों के यहाँ कालिंजर के समय से ही साहित्यिक गतिविधियाँ आरंभ हो गयी थीं। मामुराज को राजशेखर ने कलचुरि कवि की संज्ञा प्रदान की है। मामुराज ने **उदात्तराघव** नामक एक संस्कृत नाटक लिखा था। उदात्तराघव रामकथा पर आधारित है और उसमें राम के जीवन को उदात्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। जलहण की सूक्ति मुक्तावली में उसके दो पद दिये गये हैं। कालिंजर का एक कलचुरि राजा, संभवतः भीमट ने पाँच नाटकों की रचना की थी। इनमें **स्वप्नदशानन** सर्वश्रेष्ठ था। राजा शंकरगण द्वितीय भी कवि था। राजशेखर का पूर्वज कवि सुरानंद

उसका आश्रित था।

कलचुरि शासनकाल का सबसे प्रतिष्ठित साहित्यकार था राजशेखर। महाराष्ट्र में वत्सगुल्म माने अकोला जिले का वाशिभ उसके पूर्वजों का मूल स्थान था। उसके चार-पूर्वज— अकाल जलद, सुरानन्द, तरल एवं कविराज थे। ये सभी उत्कृष्ट कवि थे। राजशेखर ने उनका उल्लेख किया है। **सूक्ति मुक्तावली** में राजशेखर ने कहा है कि कवि रूपी चकोरों द्वारा नित्य पान किये जाने पर भी अकालजलद रूपी चन्द्रमा की हृद्य वचन रूपी ज्योत्स्ना क्षीण नहीं हुई।

अपने आरंभिक काल में राजशेखर प्रतिहार दरबार की समृद्धि से आकृष्ट होकर कन्नौज चला गया। कन्नौज जाने से पहले वह छह प्रबंधों की रचना कर चुका था। इसके कारण उसे 'बालकवि' की पदवी प्राप्त हो चुकी थी। प्रतिहार राज्यसभा में उसे असाधारण सम्मान मिला और सम्राट महेन्द्रपाल ने उसे 'कविराज' की पदवी से विभूषित किया। जहाँ राजशेखर ने सम्राट महीपाल के शासनकाल में **बाल-रामायण, बाल-भारत** अथवा **प्रचण्डपाण्डव** तथा **कर्पूर-मंजरी** नामक तीन नाटकों की रचना की। इनमें से प्रथम दो संस्कृत में और अंतिम प्राकृत में है। कर्पूर-मंजरी का मंचन उसकी पत्नी अवन्ति सुन्दरी के आग्रह पर हुआ था।

बाद में युवराजदेव प्रथम के राजत्वकाल में राजशेखर त्रिपुरी राजसभा के आश्रय में आ गया। त्रिपुरी में उसने **विद्धशालभंजिका** नामक नाटक की रचना की जिसका मंचन युवराजदेव की कर्नाट सेनाओं पर विजय के उपलक्ष्य में किया गया। वहीं उसने काव्यशास्त्र पर **काव्य मीमांसा** की रचना की। काव्य मीमांसा में राजशेखर के सभी संस्कृत ग्रंथों के उदाहरण पाये जाते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि वह उसका अंतिम ग्रंथ था। काव्य मीमांसा वस्तुतः विभिन्न विषयों पर ज्ञान का भण्डार है। हेमचन्द्र ने राजशेखर के **हरविलास** नामक काव्य का उल्लेख किया है, परन्तु वह उपलब्ध नहीं है। संभवतः राजशेखर युवराजदेव द्वितीय के राजत्वकाल के आरंभिक वर्षों तक कलचुरि राजसभा में रहा। वहाँ उसका इतना आदर और प्रभाव था कि अन्य कवि उसका अनुसरण करने और उसकी प्रशंसा प्राप्त करने में गौरव का अनुभव करते थे। राजशेखर की रचनाएँ चेदि देश में लम्बी अवधि तक लोकप्रिय बनी रहीं और उसके श्लोक अभिलेखों में उद्धृत किये जाते रहे। बिलहरी शिलालेख से प्रतीत होता है कि युवराजदेव द्वितीय भी एक श्रेष्ठ कवि था।

कलचुरि नरेश कर्ण एक महान विजेता, कुशल प्रशासक और साहित्य का उदार संरक्षक था। उसकी राजसभा में तत्कालीन भारत के प्रसिद्ध कवियों का जमावड़ा था। उसका राजकवि विद्यापति था। अन्य प्रसिद्ध कवियों में विल्हण, गंगाधर, बल्लण, नाचिराज और कर्पूर के नाम गिनाये जा सकते हैं। अपनी यात्रा के दौरान कश्मीरी कवि विल्हण कर्ण की राजसभा में वाराणसी आया था। कर्ण की राजसभा में अन्य राजकवि गंगाधर को एक कवि-गोष्ठी में विल्हण ने पराजित कर दिया था। उसने कर्ण को अपनी कविता से आनन्दित किया था। बल्लण एक अच्छा कवि था। उसकी कविताएँ **कवीन्द्रवचन समुच्चय, सदुक्तिकर्णामृत, सूक्तिमुक्तावली** जैसे संग्रहों में मिलती है। नाचिराज और कर्पूर की जानकारी मेरुतुंग की **प्रबंध चिन्तामणि** से ज्ञात होती है। एक श्लोक में कर्पूर ने कर्ण की प्रशंसा में कहा है कि मुंज और भोज के बाद वही भारती का एकमात्र संबल था। प्रतीत होता है कि कर्ण की सभा में समस्यापूर्ति की प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती थीं जो कवि समस्याओं को सफलतापूर्वक पूरी कर लेते थे, उन्हें उदारता से पुरस्कृत किया जाता था।

अनेक संस्कृत शिलालेखों से स्पष्ट होता है कि उनके रचनाकारों में उच्चकोटि की काव्य प्रतिभा थी। वे शिलालेख अलंकृत काव्य शैली के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। कर्ण प्राकृत भाषा के कवियों का भी आश्रयदाता था। अपभ्रंश साहित्य के विकास में भी कलचुरियों का उल्लेखनीय योगदान है।

दक्षिण कौशल के कलचुरि, जिनके राज्य की राजधानी रतनपुर में थी, संस्कृत और प्राकृत कवियों के आश्रयदाता थे। इनमें एक कवि था नारायण जिसने गोपालदेव के पुजारी पाली प्रस्तर अभिलेख की रचना की थी। उसने एक काव्य

रामाभ्युदय की रचना की थी।

स्थापत्य-कला : स्थापत्य-कला के विकास के आधार पर कलचुरियों द्वारा निर्मित मंदिरों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग के मंदिरों का निर्माण चार कलचुरि राजाओं के कार्यकाल में किया गया। ये थे युवराजदेव प्रथम, लक्ष्मणराज, शंकरगण द्वितीय तथा युवराजदेव द्वितीय। द्वितीय वर्ग में केवल एक कलचुरि शासक, कर्णदेव के समय बने मंदिरों की गणना होती है और तृतीय वर्ग में नरसिंहदेव, जयसिंहदेव तथा विजयसिंह देव के समय के देवालयों का समावेश है। वास्तव में तृतीय वर्ग के मंदिर, कलचुरि वास्तुकला के ह्रास के द्योतक हैं।

चौसठ योगिनी मंदिर (भेड़ाघाट, जबलपुर जिला) कलचुरि कालीन मंदिरों में सबसे प्राचीन याने प्रथम वर्ग में आता है। परन्तु उसके बीच में निर्मित गौरीशंकर मंदिर तृतीय वर्ग का है। योगिनी मंदिर 50 फीट ऊँची गोल पहाड़ी पर, खुली छत का वृत्ताकार मंदिर है। इसमें योगिनियों की 64 मूर्तियाँ हैं। प्रतिमाओं की पादपीठ पर उनके नाम अंकित हैं। लिखावट से इस मंदिर का निर्माण काल दसवीं सदी का उत्तरार्द्ध मानना युक्तिसंगत है। गौरी-शंकर मंदिर का निर्माण नरसिंहदेव की माता अल्हण देवी ने बारहवीं सदी के मध्य में वैद्यनाथ मंदिर के नाम से कराया था। नाम बदल गया है परंतु मंदिर यही प्रतीत होता है।

कलचुरि कालीन स्थापत्य कला के दर्शन चंद्रेह, महसोन, बैजनाथ, मारीबाघ, मड़ई, खजुआ, अमरकण्टक, पटरौरा, सोहागपुर, देवतलाब, नौहटा आदि मंदिरों में किये जा सकते हैं। महसोन और चन्द्रेह के शिव मंदिरों में गोलाकार गर्भगृह, आयताकार अंतराल और मण्डप हैं। इनमें अधिष्ठान, जगती, जंघा और मध्यकालीन मंदिरों की भांति शिखर इनका वैशिष्ट्य है। इन मंदिरों में नागर तथा द्रविड़ शैलियों का सम्मिश्रण दिखायी देता है। इनकी शिखर-रचना द्राविड़ शैली की और आमलक तथा कलश नागर शैली के सूचक हैं।

मूर्तिकला : कलचुरि शासनकाल में मूर्तिकला का अत्यधिक विकास हुआ। त्रिपुरी शैली की मूर्तिकला की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। उदाहरणार्थ, परमार कालीन गोल चेहरे से भिन्न, कलचुरियों के समय की मूर्ति का चेहरा अण्डाकार रहता है। ठुड्डी कुछ उभरी और नुकीली रहती है। यही नुकीलापन भौहों, पलकों और नासिका के गढ़ने में भी परिलक्षित होता है। ओंठ, वक्षःस्थल कटिप्रदेश का अंकन भी सुरुचिपूर्ण है। परिधान और आभूषणों के अंकन में भी कलाकार ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। आदर्श प्रतिमानों के साथ-साथ शिल्पी ने डाहल मण्डल की नारी को भी अपनी कला का विषय बनाया है। एक विशिष्ट बात यह है कि यहाँ की मूर्तिकला में गुप्तकालीन मूर्तिकला का स्पष्ट प्रभाव झलकता है। इसका कारण यह है कि डाहलप्रदेश गुप्तकाल में मूर्तिकला का एक प्रमुख केन्द्र था।

मूर्तियाँ अनेक प्रकार की हैं। मुख्यतः देवी-देवताओं की मूर्तियाँ तराशी गयी हैं। परंतु जीवन से सम्बन्धित विषयों को कलाकार ने नज़रअंदाज नहीं किया है। पशु-पक्षियों, नृत्य-संगीत जैसे लौकिक विषयों का भी अंकन उपलब्ध है। चौसठ योगिनी मंदिर स्थित गौरी-शंकर मंदिर की मुख्य मूर्ति उमा-महेश्वर की है, जो कि नन्दी पर आरूढ़ कल्याण-सुन्दर प्रतिमा है। यह मूर्ति त्रिपुरी कला की श्रेष्ठतम मूर्तियों में से एक है। इस मंदिर के गर्भगृह में नृत्य-गणेश की प्रतिमा कलात्मक दृष्टि से अत्यंत भव्य है।

कलचुरि काल की अनेक श्रेष्ठ प्रतिमाएँ प्राचीन त्रिपुरी (तेवर) में देखी जा सकती हैं। खेरभाई नामक स्थल पर अनेक देवी-देवताओं, शिल्पपट्ट की मूर्तियों का अंकन मनोहारी है। गुर्गी के ध्वस्थ शिव मंदिर का विशाल तोरण, जो रीवा में राजमहल के सामने स्थापित है, मूर्तिकला के अनुपम प्रमाण समेटे है। उसमें दो अष्टकोणीय स्तम्भ हैं, जिसमें चार आड़ी हैं। वे शिल्पशास्त्रों में उल्लेखित उत्तरांग वर्ग के तोरण हैं। शिव की बारात का दृश्य, जिसमें शैव साधु सन्यासी, देवता, योद्धा और संगीतज्ञ शामिल हैं का अंकन है।

कलचुरि मंदिरों में नृत्यरत और मिथुन मूर्तियाँ बहुतायत में पायी जाती हैं। उदाहरण के लिये विश्वनाथ मंदिर

(मोरीबाघ) विराटेश्वर (सोहागपुर) वैद्यनाथ (बैजनाथ) मड़ई मंदिर और रीवा-तोरण। कलचुरि अवशेषों पर हाथी, घोड़ा, मकर, सिंह आदि पशुओं की मूर्तियाँ पायी जाती हैं। कर्ण, यशःकर्ण, जयसिंह आदि कलचुरि शासकों की मुद्राओं पर राजलक्ष्मी की आकृतियाँ बनी हुई हैं। अमरकंटक के मंदिरों में भी गज की मूर्तियाँ हैं। भारतीय कला में गज के साथ ही अश्व को भी महत्त्व दिया गया है। कलचुरि कला में अश्व का प्रतिनिधित्व बहुत ही कम है। यद्यपि, समकालीन चन्देल और चालुक्य कालीन मंदिरों में अश्व का अलंकरण पाया जाता है। मोरीबाघ के शैव मंदिर में घुड़सवार और घोड़े का अंकन है। इसी प्रकार भारतीय शिल्प में सिंह का अंकन हाथी के अंकन के समान ही पुराना है। अधिकांश कलचुरि मंदिरों में जैसे, विराटेश्वर और मड़ई के मंदिर व्याल (सिंह) की मूर्तियों से अलंकृत हैं। लक्ष्मीनारायण की मूर्तियाँ, बिल्हारी, उमरिया, तेवर आदि में देखी जा सकती हैं। विष्णु और उनके अवतारों की मूर्तियाँ, लकुलीश, भैरव, त्रिमूर्ति, गणपति, कार्तिकेय आदि की मूर्तियाँ भी विभिन्न मंदिरों में देखी जा सकती हैं।

गढ़ा-मण्डला राजवंश : भारत के दूसरे राजवंशों की तरह गढ़ा-मण्डला के गोंड राजवंश ने महाकौशल के विशाल क्षेत्र पर, कलचुरियों के बाद सदियों तक राज्य किया। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा था संग्राम शाह, जिसने भोपाल से लेकर बिलासपुर तक अपने राज्य का विस्तार किया, रानी दुर्गावती इसी की पुत्रवधू थीं। अपने शौर्य, पराक्रम और आत्मोत्सर्ग के लिये रानी इतिहास प्रसिद्ध हैं। गोंड, शासक साहित्य और साहित्यकारों के आश्रयदाता थे। इस वंश के काल में हिन्दी और संस्कृत में अनेक ग्रंथों की रचना की गयी। कुछ गोंड शासक अच्छे कवि और साहित्यकार थे।

साहित्य : गढ़ा-मंडला राज्य में, राजसभा को सुशोभित करने के लिये मिथिला से अनेक विद्वान निरन्तर आमंत्रित किये जाते थे। मैथिलों के अतिरिक्त अन्य विद्वान भी राजसभा में थे। संग्राम शाह भी एक अच्छा साहित्यकार था। उसने संस्कृत भाषा में रसरत्नमाला नामक एक काव्यग्रंथ की रचना की थी। इसमें नवरसों का उल्लेख तो है ही अनेक राजवंशों के नाम, राज्य की व्यवस्था अच्छे शासक की योग्यता आदि विविध विषयों पर जानकारी का समावेश है। करमवेलकर जरनल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल में उस पुस्तक को लघु विश्वकोष की संज्ञा दी है।

संग्राम शाह के समय में ही मिथिला के प्रसिद्ध विद्वान दामोदर ठाकुर द्वारा दो पुस्तकों की रचना की गयी। इनमें से एक थी **संग्रामसाहीय विवेकदीपिका** और दूसरी थी **दिव्य निर्णय**। संग्राम शाह के पुत्र दलपति शाह और पुत्रवधू रानी दुर्गावती के समय महेश ठाकुर नामक मिथिला के एक विद्वान् थे। उन्होंने संस्कृत में अनेक पुस्तकों की रचना की इनमें से कुछ हैं **आलोकदर्पण, सिद्धान्तसुधा, कीर्तिलता, प्रायश्चित प्रकाश** आदि। दलपति शाह के समय में ही लवगासी ने **नृसिंहचम्पू मीमांसार्थ प्रकाश, न्यायचंद्रिका** तथा दो और ग्रंथों की रचना की। इनमें से पहले दो की रचना गढ़ा में की गयी। दुर्गावती के आश्रय में पद्मनाभ भट्टाचार्य ने **दुर्गावती विलास** की रचना की। उसने दुर्गावती के पुत्र वीरनारायण के नाम पर **वीर चम्पू** की रचना की। दीक्षित परिवार की तीन पीढ़ियाँ— पिता अनन्त, पुत्र विट्ठल और पौत्र केशव दीक्षित संस्कृत के कवि थे। वे तीनों संस्कृत विद्वान दलपति शाह, दुर्गावती, चन्द्रशाह और मधुकरशाह के समकालीन थे। प्रेमशाह की राजसभा में विष्णु दीक्षित नामक एक कवि थे। हृदयशाह के राज्य शासन में रामनगर का शिलालेख उत्कीर्ण किया गया। इसकी रचना संस्कृत के श्रेष्ठ कवि जयगोविन्द ने की थी। राजा हृदयशाह संगीत का बड़ा प्रेमी और आश्रयदाता था। वह स्वयं भी संगीत का अच्छा जानकार था। उसने संगीत पर **हृदय कौतुक** और **हृदय प्रकाश** नामक दो ग्रंथों की रचना की थी। महाराज शाह के समय में हरि दीक्षित नामक एक कवि थे जो कि हृदयशाह के समय विद्यमान दीक्षित परिवार के वंशज थे। वे महाराज शाह को पुराण सुनाया करते थे। हरि दीक्षित के पुत्र लक्ष्मीप्रसाद भी कवि थे। उन्होंने **गजेन्द्र मोक्ष** की रचना की और उसे 1759 में अपने आश्रयदाता निजामशाह को

भेंट किया। **गजेन्द्र मोक्ष** काव्य में 407 श्लोक हैं और वह संस्कृत का श्रेष्ठ काव्य है। गढ़ा-मंडला राज्य के अंतिम समय में कवि रूपनाथ झा विद्यमान थे। उन्होंने **रामविजय महाकाव्य** और **गढ़ेशनृपवणनम्** की रचना गढ़ा-मंडला राज्य के अवसान के बाद की।

वास्तुकला एवं मूर्तिकला– गोंड राजवंश ने एक विशाल क्षेत्र पर लम्बी अवधि तक राज्य किया परन्तु यह आश्चर्यजनक है कि उनके निर्माण के जो भी अवशेष विद्यमान हैं, उनमें कोई विशिष्टता या सौन्दर्य दिखाई नहीं देता। गोंड राजवंश ने उसी क्षेत्र में राज्य स्थापित किया था, जहाँ उनसे पहले उनसे भी बड़े क्षेत्र में कलचुरियों ने राज्य किया था। इसीलिए यह समझ में नहीं आता कि कलचुरियों की समृद्धि कला-परम्परा का तनिक भी प्रभाव परवर्ती काल की कला पर क्यों नहीं पड़ा?

गोंड राजाओं द्वारा निर्मित इमारतों के अवशेष मुख्यतः गढ़ा में , जो राज्य की राजधानी था और अब जबलपुर शहर का एक मोहल्ला है। गढ़ा में बाजना मठ (भैरव मंदिर) संग्राम सागर के बीच में स्थित आम–खास और गजशाला, मदन महल और पंचमठा के मंदिर हैं। इनमें से केवल मदन महल ही पहाड़ी पर बना होने के कारण आकर्षण का केन्द्र है। यह आमोद-प्रमोद के लिये बनवाया गया प्रतीत होता है। गजशाला की मेहराबें आकर्षक हैं, शेष इमारतें काफ़ी दुरावस्था में हैं। पंचमठा के मंदिर ऊँचे चबूतरे पर बने हैं, उनमें गुम्बद हैं, जिनके नीचे शिवलिंग स्थापित है। गुम्बद के कोनों पर विभिन्न संख्या में छतरियाँ भी हैं और अनेक मंदिरों में बड़े गुम्बद के सामने एक मण्डप है। इनमें कुछ मण्डप लाल पत्थर से निर्मित हैं और सुन्दर हैं। नरसिंहपुर में बरमान में एक मंदिर है जो रानी दुर्गावती द्वारा बनाया माना जाता है।

चौरागढ़ (नरसिंहपुर), सिगोरगढ़ (दमोह) और मण्डला के दुर्गों की वास्तुकला में कुछ भी उल्लेखनीय नहीं हैं। रामनगर जो कि मण्डला शहर से 16 कि.मी. दूर है, के महल और इमारतें अवश्य आकर्षक और महत्वपूर्ण हैं। इनमें विशाल मोती महल सबसे सुन्दर है। बघेला रानी का महल, भागवत राम का महल, रानी सुन्दर देवी द्वारा निर्मित करवाया मंदिर भी अच्छे हैं। रामनगर में हृदयशाह का वह शिलालेख है, जिसमें गोंड राजाओं की वंशावली है। हृदयशाह ने 17वीं सदी के मध्य में रामनगर को राजधानी बनाया था। गोंड कालीन मूर्तियाँ बहुत ही साधारण हैं। रामनगर के मंदिर में विष्णु, शिव तथा अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। परन्तु ये उल्लेखनीय नहीं हैं।

सल्तनत कालीन मालवा : सन् 1401 ईसवी में दिलावर खाँ घूरी ने मालवा को स्वतंत्र घोषित कर मालवा में सल्तनतकाल की नींव डाली। घूरी के बाद मालवा में खलमी सुल्तानों ने राज किया। दिलावर खाँ ने अपनी राजधानी माण्डू को बनाया और उसे शादियाबाद याने आनन्दनगरी का नाम दिया जो कि उस सुरम्य स्थान के लिए सर्वथा उपयुक्त नाम है। मालवा के सुल्तानों ने, गुप्त सम्राटों से राजा भोज तक की समृद्धि सांस्कृतिक परम्पराओं को न केवल बरकरार रखा बल्कि उनमें वृद्धि भी की। भिन्न धर्म का अनुयायी होने के बावजूद उन्होंने राज्य के सांस्कृतिक विकास में गहरी दिलचस्पी ली और अपने उदार संरक्षण से उसे समृद्ध किया। उन्होंने साहित्य, वास्तुकला, चित्रकारी, संगीत आदि सब क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य किया।

साहित्य : यद्यपि राजकाज़ की भाषा फारसी थी फिर भी हिन्दी और संस्कृत साहित्य के विकास को कोई आँच नहीं आने दी। सुल्तान महमूद खिलजी एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति था और हिन्दी भाषा पर उसका अच्छा अधिकार था। उसने तैमूर के पौत्र और खुरासान के शासक अबू-सईद मिर्ज़ा को जो तोहफ़े भेजे थे उनके सिवाय, फरिश्ता के अनुसार एक हिन्दी कविता भी भेजी थी। मिर्ज़ा ने उस कविता को सबसे कीमती तोहफ़ा माना। संस्कृत साहित्य को भी महमूद द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया। इसका प्रमाण वह जैन कल्पसूत्र है जिसका अनुवाद महमूद खिलजी के आश्रय में पूरा हुआ था और सन् 1439 में सुल्तान को समर्पित किया गया।

इसी के शासनकाल में संग्राम सिंह सोनी ने **बुद्धि सागर** की रचना की थी। नैतिक शास्त्र पर लिखी हुई यह पुस्तक लेखक पैठन ने पूरी की थी जहाँ वह मालवा के सुल्तान के साथ दक्षिण के अभियान पर गया था।

गियातशाह के शासनकाल में हिन्दी और संस्कृत भाषाओं का संरक्षण ज़ारी रहा। यह इस तथ्य से प्रमाणित है कि पुंजराज ने संस्कृत व्याकरण की **सारस्वत** नामक पुस्तक की एक टिप्पणी मांडू में लिखी थी। एक और जैन विद्वान ने प्राकृत अपभ्रंश में **प्रमेष्टि प्रकाश** सार और **हरिवंश पुराण** की रचना की थी। नासिरशाह (1500-1510 ईसवी) के शासनकाल में हिन्दी और संस्कृत भाषाओं को उदारता से संरक्षण प्रदान किया गया। इसके फलस्वरूप हिन्दी और संस्कृत ग्रंथों की बड़ी संख्या में रचना की गयी। ईश्वर सूरी ने दशंपुर (मंदसौर) में रहकर **ललितांगचरित्र** की रचना की थी। प्रशस्ति में नासिरशाह का नामोल्लेख बहुत स्नेह और आदर के साथ किया गया है। उसमें कहा गया है कि नासिर बादशाह बहुत बलशाली, गुणवन्त, समर्थ, साहसी और धीर था। उसी के शासनकाल में विष्णुपुराण की प्रतिलिपि तैयार की गयी और उसमें उसके नाम का उल्लेख आया है। संस्कृत विद्वान, नासिर का बहुत आदर करते थे क्योंकि सुल्तान विद्वानों का उदार आश्रयदाता था। नासिरशाह के समय में ही रसायन शास्त्र पर **नासिरशाहीकंकाली** ग्रंथ की रचना की गयी थी। पुस्तक हिन्दी भाषा में है और साथ ही उसमें अधिकांशतः उन संस्कृत पुस्तकों के उद्धरण हैं जो पहले ही लिखी जा चुकी थीं। जिन पुस्तकों के उद्धरण दिये गये हैं उनमें रस प्रदीप, भास्कर और **भावप्रकाश** शामिल हैं। पारे को शुद्ध करने की विधि उसमें दी गयी है। उपेन्द्रनाथ डे ने अपनी पुस्तक **मिडीवल मालवा** में पुस्तक की कुछ पंक्तियाँ दी हैं, जिनसे उस समय प्रचलित हिन्दी का अनुमान होता है।

बाज़बहादुर के शासन काल में हिन्दी लोकप्रिय हुई। इसका कारण यह था कि बाज़बहादुर और रूपमती दोनों ही हिन्दी में कविताओं की रचना करते थे। रूपमती ने एक ऐसी परम्परा छोड़ी जिसे मालवा के संगीतकारों ने अपने कण्ठों में ढाल लिया। बाज़बहादुर संगीत का बहुत प्रेमी था। सल्तनत काल में मालवा की राजभाषा फारसी थी। तैमूर के आक्रमण के परिणामस्वरूप दिल्ली की राजसत्ता छिन्न-भिन्न हो गयी। इसका एक सीधा परिणाम यह हुआ कि कलाकार, साहित्यकार और विद्वान अन्य राज्यों की राजधानियों में एकत्र होने लगे। इनमें माण्डू भी एक था। सुल्तान होशंगशाह ने खुले दिल से विद्वानों को आश्रय दिया जिससे उलेमा और फारसी के विद्वान बड़ी संख्या में माण्डू में एकत्र हो गये। महमूद ख़िलजी ने अपनी राजधानी में शिक्षा की उच्च संस्थाएँ खोलीं। इनमें बड़ी संख्या में विद्यार्थी आये, जिन्हें वजीफ़े दिये जाते थे। ख़्वाज़ा निजामुद्दीन ने **तबकाते-अकबरी** में लिखा है कि महमूद के समय में मालवा, शिराज और समरकन्द की ईर्ष्या का केन्द्र बन गया था। इसी दौरान ऐतिहासिक पुस्तकों के लेखन पर ज़ोर रहा। इतिहास पर दो महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी गयीं। एक है **माथिर-ए-महमूद शाही**, जिसके लेखक थे शिहब हकीम। यह महमूद प्रथम के शासन काल में सुल्तान के आग्रह पर लिखी गयी थी। दूसरी है **तारीख़-ए-नासिरशाही** जो नासिरशाह के समय लिखी गयी। गियाथशाह के शासनकाल में शेख़ अबदुल्ला शत्तारी ने **लतैंप-ए-धैबिआह** लिखी। गियाथशाह के समय में संस्कृत की कई पुस्तकों का फारसी में अनुवाद किया गया। इनमें एक थी **सालिहोत्र**, जो कि पशु चिकित्सा विज्ञान पर थी। नासिरशाह के शासन काल में उसके दरबारी कवि दाऊद अल्बी 'शादियावादी' ने फारसी शायर अनवरी तथा **खक्कनी दीवान** पर टिप्पणियाँ लिखी थीं। नासिर के शासन काल में ही नीयत नामा की रचना की गयी।

चित्रकारी : मालवा में जैन धर्मावलम्बियों ने कल्पसूत्रों को चित्रकारी से अलंकृत करने की शैली विकसित कर ली थी। सन् 1439 में महमूद ख़िलजी के संरक्षण में माण्डू में एक कल्पसूत्र पर चित्रकारी की गयी थी। माण्डू कल्पसूत्र में घोड़ों की चित्रकारी में फारसी प्रभाव दिखायी देता है। उसमें बनाये गये चित्रों में पश्चिमी क्षेत्र के जैनों की पाण्डुलिपियों में पाये जाने वाले चित्रों की साम्यता है। लेकिन कल्पसूत्र की तरह की चित्रकारी आम आदमी को उपलब्ध

नहीं थी, केवल संपन्न वर्ग ही उसका व्यय उठा सकता था। शादी आश्रय में प्रारंभ होने के कारण माण्डू कल्पसूत्र ने मालवा में चित्रकारी की एक नयी शैली के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। इसका प्रभाव उन पाण्डुलिपियों में मिलता है जो महमूद के पुत्र गियाथशाह और पौत्र नासिरशाह के समय में चित्रित किये गये। यह उल्लेखनीय है कि महमूद एक उदार शासक था। उसकी उदार नीति के परिणामस्वरूप हिन्दुओं और मुसलमानों में मैत्रीभाव का वातावरण निर्मित हुआ और इसके कारण मुस्लिम (फारसी) और भारतीय (जैन) शैलियों के सम्मिश्रण की स्थितियाँ निर्मित हुई। इसका परिणाम **नीमत नामा** में स्पष्ट झलकता है। उनमें शिराज का प्रभाव तो है, परन्तु वे चित्र मूलतः भारतीय हैं। इस सबका सुखद परिणाम यह हुआ कि चित्रकारी की एक नई शैली विकसित हुई जिसे मालवा चित्रकारी कहा जा सकता है। सन् 1536 और 1561 के बीच मालवा चित्रकारी की परंपराओं से उसकी सबसे सशक्त और महानतम शैली का उद्‌भव हुआ। यह शैली संस्कृत के प्रणय-काव्य **चौरापंचाशिका** जो कि अवधी प्रणय गाथा **लौरचंदा** का ही एक रूपान्तर है। एक रागिनी चित्रकारी में अवशिष्ट है यह शैली फारसी **नीमत नामा** और जैनों की धार्मिक कथाओं की परम्पराओं से सर्वथा भिन्न विषय की ओर मुड़ जाती है। वह विषय है रूपानी प्रणय अभिव्यक्ति। मालवा की यह नई शैली इतनी सशक्त और जीवंत थी कि अधिक सशक्त और समृद्ध मुगल चित्रकारी के समक्ष अपनी अस्मिता अक्षुण्य बनाये रही और राजनीतिक पराभाव और विघटन के बावज़ूद, मालवा की चित्रकारी विभिन्न केन्द्रों में जीवंत बनी रही।

मालवा की चित्रकारी का प्रभाव दूर-दूर तक फैला। प्रणय-गीतों को चित्रित करने में इसका प्रभाव अहमदनगर तथा रागिनी चित्रकारी में जौनपुर और उदयपुर के पास चावण्ड में देखा जा सकता है। इस प्रकार मालवा की चित्रकारी ने भारतीय कला एवं संस्कृति के लिये अमूल्य धरोहर प्रदान की है। डब्ल्यू.जी. आर्चर के शब्दों में "बाज़बहादुर के साथ जुड़ी शैली, कमनीय रूमान की सबसे प्रौढ़ अभिव्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार की चित्रकारी ने ही मेवाड़ की राजपूत चित्रकारी की नींव डाली।" सुल्तान महमूद ने दीवारों और भवनों पर चित्रकारी को ही प्रोत्साहित किया। शिहाब हक़ीम ने लिखा है कि उसने अपने महल की दीवारों और छतों पर चित्रकारी करवायी थी।

स्थापत्य-कला : मालवा के सल्तनतकालीन स्थापत्य की शैली का मूल सार हिन्दू और मुस्लिम प्रभावों का संपूर्ण समन्वय और सामन्जस्य है। मालवा का स्थापत्य मालवा की शस्य श्यामला भूमि की उपज है। बाह्य दृष्टि से उसके अनेक रूप, अलंकरण और निर्माण शैली तुगलक और लोदी वंशों की साम्राज्यी शैली के अनुरूप प्रतीत होते हैं। परन्तु उसके गहन अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि दिल्ली की मुस्लिम शैली का स्थानीय शैली के साथ समन्वय से वास्तव में एक नयी मालवा शैली का विकास हुआ है। उसकी अपनी अलग ही विशिष्टता है, अलग लक्षण हैं।

स्थापत्य की मालवा शैली का विकास सर्वप्रथम धार और माण्डू के पुरावशेषों में देखा जा सकता है। सबसे पहले चरण में मस्जिदों का निर्माण हुआ। इनमें धार की कमाल मौला मस्जिद सन् 1395 में, लाट मस्जिद और दिलावर खाँ की मस्जिद 1405 में और मलिक मुगीक की मस्जिद सन् 1452 में माण्डू में निर्मित की गयीं। लाट मस्जिद और दिलावर खाँ की मस्जिद में हिन्दू-मुसलमान समन्वय साफ़ दिखायी देता है। जहाँ खम्बों के बीच में मेहराबें बनायी गयी हैं। निर्माण का दूसरा चरण माण्डू के राजधानी बनने पर शुरू हुआ क्योंकि तब कलाकार को नैसर्गिक सौन्दर्य और मनोरम प्राकृतिक दृश्यावलि सूरज और चंदा के उगने और डूबने से वातावरण के बदलते रंगों तथा परिदृश्यों से माण्डू की सरजमीं को परीलोक में बदलते हुए देखने की अविस्मरणीय अनुभूति हुई। माण्डू जैसे नैसर्गिक सौन्दर्य स्थल में कलाकार की कल्पना को पंख लगना ही थे। माण्डू के निर्माता हमारी प्रशंसा के सर्वथा पात्र हैं। उन्होंने निर्माण के लिये जल की विस्तृत चादर या हरा-भरा परिवेश चुना जिसने उनके भवनों के लिये आकर्षक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की।

निर्माण के दूसरे दौर में जामा मस्जिद बनी जो होशंगशाह ने शुरू की और महमूद ने 1554 ई. में पूरी की। यह 15 फीट ऊँची नींव पर बनायी गयी है। नींव की यह ऊँचाई चंदेल मंदिरों से प्रभावित प्रतीत होती है उसको उपदेशमंच के ब्रेकिट तथा वेदिकाएँ नवमीं एवं दसवीं सदी के हिन्दू मंदिरों की शैली में हैं। इबादत ख़ाना के आलों में हिन्दू डिज़ाइन उकेरी गयी हैं। पूरी मस्जिद में हिन्दू उत्तलों तथा मुस्लिम अवथलों का ऐसा सधा हुआ उपयोग किया है कि जो पूरी इमारत को अनूठापन प्रदान करते हैं। इसी प्रकार होशंगशाह द्वारा शुरू की गयी तथा महमूद द्वारा पूरी की गई दूसरी इमारत है, स्वयं होशंगशाह का मक़बरा। वह देश का पहला मक़बरा है जो कि पूरी तरह सफेद संगमरमर से निर्मित किया गया। उपेन्द्रनाथ के शब्दों में "होशंगशाह का मक़बरा, जिसमें हिन्दू और मुस्लिम रूपों का पूरी तरह समन्वय किया गया है, दो संस्कृतियों के समन्वय के प्रतीक का ज्वलंत प्रमाण है। हिन्दू शैली की स्तंभावली की उपस्थिति सुल्तान की भावना प्रतिबिम्बित करती है, जिसके लिये उसकी हिन्दू और मुस्लिम प्रजा में कोई भेदभाव का भाव नहीं था।"

महमूद की अन्य प्रसिद्ध इमारतों में जो माण्डू में बनायी गयीं अशफी महल, हिंडोरा महल, जहाज महल उल्लेखनीय हैं। जहाज महल में स्थापत्य-कला के हिन्दू तथा मुस्लिम रूप मिलकर ऐसे एकाकार हो गये है कि मानों सारी दुनिया के सामने उद्घोषणा कर रहे हों कि इसमें हिन्दू या मुस्लिम कुछ भी नहीं है, यह सब मालवी है। नासिरशाह का बनवाया हुआ बाज़बहादुर का महल, उसकी प्रेयसी और रानी रूपमती का महल, नीलकंठ महल, चिश्ती खाँ महल आदि अन्य स्मारक दर्शनीय है। मालवा स्थापत्य की माण्डू शैली चंदेरी के बाहर कुशल महल, चंदेरी की जामा मस्जिद में देखी जा सकती है। इससे ज्ञात होता है कि स्थापत्य की नयी मालवा शैली माण्डू तक सीमित नहीं थी, वरन संपूर्ण मालवा क्षेत्र में उसका प्रसार हो गया था और पुरातात्विक तथा कलामर्मज्ञ एम.के. सरस्वती का यह कथन एकदम सही है कि मालवा के स्मारकों को दिल्ली की नकल कहना गलत है। साम्राज्यीय शैली के विभिन्न चरणों के लक्षणों का कुशलता के साथ एकीकृत और संतुलित, विशिष्ट और श्रेष्ठ रूप ही मालवा शैली में प्रकट हुआ है।

संगीत, नृत्य : सल्तनत काल में मालवा की समृद्ध संगीत परम्परा अक्षुण्ण बनी रही। **माथिर-ए-महमूदशाही** में शिहाब हकीम ने लिखा है कि शादी के समय गायक और संगीतज्ञ अपने मधुर और कर्णप्रिय कंठों के साथ आये और बजर एवं फानी और डफ एवं चंग के साथ सुर-ताल मिलाकर गाया। बरबत पर जो धुन बजायी गयी उसकी चंग पर संगति की गयी। गायकों की मधुर लय और वाद्य यंत्रों की संगति से उपजा गायन इतना मधुर था कि उसने मुर्दों में भी जान फूँक दी। गियाथशाह का हरम बहुत बड़ा था और उसने संगीत की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया। **तबकाते-ए-अक़बरी** में अंकित किया गया है कि उसने सब दिशाओं से संगीतज्ञ एकत्र किये और ऐसी व्यवस्था की कि हरम की महिलाओं को गायन, नृत्य या बाँसुरी वादन सिखाया जाये। इससे संगीत के विकास में निश्चित ही सहायता मिली होगी। नासिरशाह के शासन काल में संगीत का संरक्षण और विकास ज़ारी रहा। यह तथ्य **नीमतनामह** नासिरशाह के उन चित्रों से मिलता है जिसमें सुल्तान को वाद्यों का संगीत सुनते दिखाया गया है। महमूद ख़िलजी के हरम में भी बड़ी संख्या में गायक और संगीतज्ञ थे। हिन्दू राजा और दरबारी भी बड़ा हरम रखते थे और इनमें प्रशिक्षित गायक-संगीतज्ञ शामिल रहते थे। बाज़बहादुर के समय संगीत और गायन की सर्वाधिक उन्नति हुई। उसे संगीत से बेहद लगाव था। ऊमरी के वर्णन से संगीत के प्रति बाज़बहादुर की लगन एवं समर्पण भावना का पता चलता है। ऊमरी के अनुसार बाज़बहादुर ने चारों दिशाओं से महिला और पुरुष संगीतकारों व गायकों को जो बीन रबाब, नाई, सरनाई, सारंगी और तम्बूरा बजाते थे एकत्र कर लिया था और वह उन्हीं की संगति में समय गुजारता था। मालवा में स्थानीय परम्परा है कि उसने ख़याल गायकी में एक नयी तर्ज जोड़ी जो **बाज खानी ख़याल** कहलाया। एक संगीतकार के रूप में बाज़बहादुर की अहमियत अक़बर के नवरत्नों में से एक अबुल फज़ल ने स्वीकारी थी। **आइन-ए-अक़बरी** में उसने अक़बर के

दरबार के 36 संगीतज्ञों का नाम लिखा है परन्तु उनमें केवल दो को बहुत सम्मान दिया है– तानसेन को और बाज़बहादुर को। बाज़बहादुर के बारे में लिखा है– "एक बेजोड़ गायक।"

ऊमरी के अनुसार रूपमती भी कवियित्री और संगीतज्ञ थीं। **लेडी ऑफ 5 लोटस** में क्रम्प्स ने लिखा है कि "रूपमती को कवियित्री एवं संगीतज्ञ के रूप में अभी भी याद किया जाता है और उसे **भूप कल्याण रागिनी** के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है।"

रियासतों में कला संस्कृति : मुगल साम्राज्य के विघटन के बाद देश के विभिन्न हिस्सों में स्थित अन्य रियासतों की राजधानियाँ विभिन्न कलाओं और संस्कृतियों के संरक्षण, प्रोत्साहन और संगठन की केन्द्र बन गयी। भारत में अंग्रेज़ों का राज्य स्थापित होने और रियासतों में उनके द्वारा संधियाँ थोपने के बाद भारतीय राजा-महाराजा एवं नवाब, सुरा-सुन्दरी, नाच-गाना, अखाड़ेबाजी, खेलकूद आदि में व्यस्त हो गये। अब क्योंकि युद्ध का कोई ख़तरा नहीं था इसलिये नरेशों को फुर्सत-ही-फुर्सत थी। सौभाग्य से राजाओं, नवाबों पर थोपे गये निठल्लेपन का एक सुखद परिणाम हुआ। उनकी रुचि के अनुसार विभिन्न कलाओं के कलाकारों और विशेषज्ञों को रियासतों का पूरा संरक्षण मिला। देश भर की प्रतिमाएँ विभिन्न रियासतों की राजधानियों में आश्रय पाकर कलाओं के उन्नयन में तल्लीन हो गयीं। जब कभी राजा स्वयं कवि, लेखक, गायक वादक या नृत्यकार होता था तो सोने पे सुहागा हो जाता था। इसलिये रियासतों के संरक्षण की चर्चा किये बिना आधुनिक काल का कोई भी सर्वेक्षण सही और पूरा नहीं माना जा सकता। जिन रियासतों में कलाकारों को विशेष रूप से आश्रय का माहौल मिला उनमें ग्वालियर, इंदौर, रीवा, रायगढ़, मैहर, ओरछा, देवास, धार, दतिया, रतलाम आदि उल्लेखनीय है।

रायगढ़ रियासत : छत्तीसगढ़ के उत्तरी क्षेत्र में स्थित रायगढ़ रियासत जो कि आज़ादी के बाद रायगढ़ जिले का हिस्सा बन चुकी है, संगीत, नृत्य, कला और साहित्य के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका की हक़दार थी। उल्लेख मिलता है कि रायगढ़ रियासत के संस्थापक राजा मदन सिंह संगीत प्रेमी थे। अनेक पीढ़ियों के बाद राजा घनश्याम सिंह (1862-1890 ईसवी) के समय में संगीत का उल्लेखनीय विकास हुआ। वे संगीत के एक अच्छे जानकार और मृदंगवादक थे। बनारस भेजकर उन्होंने अपने एक पुत्र को पखावज और मृदंग में पारंगत किया, उनके उत्तराधिकारी राजा भूपदेवसिंह (1890-1917) संगीत में विशेष रुचि रखते थे। उनके समय में चुन्नीलाल, नत्थूलाल, सीताराम, भण्डे खाँ, हाज़ी मुहम्मद, नन्हें बाबू, इनायत खाँ, राजा लक्ष्मण सिंह जैसे प्रसिद्ध संगीतज्ञ रायगढ़ दरबार की शोभा बढ़ा रहे थे। अतः चक्रधर सिंह को संगीत के प्रति रुचि अपने पिता-भूपदेवसिंह से विरासत में मिली थी। चक्रधर सिंह के चाचा पीललाल और लालनारायण सिंह तबला और पखावज में पारंगत थे।

सन् 1924 में गद्दी सम्हालने के बाद राजा चक्रधर सिंह ने राज-काज़ के कार्य कुशलता से निपटाने के बाद सारा ध्यान संगीत, नृत्यकला और साहित्य के उन्नयन की साधना में लगाया। संगीत के मर्मज्ञ होने के साथ ही वे उच्च कोटि के संगीतज्ञ और नर्तक थे। उनके दरबार में संगीतज्ञों, साहित्यकारों, नर्तकों तथा अन्य विधा के कलाकारों का जमघट लगा रहता था। वास्तव में उन दिनों रायगढ़ एक कला-राजधानी के रूप में देश में विख्यात हो गया था। वे एक श्रेष्ठ तबलावादक भी थे। वे एक प्रतिभाशाली साहित्यकार भी थे। उन्हें संस्कृत, बृजभाषा, उर्दू, अंग्रेज़ी और खड़ी बोली का अच्छा ज्ञान था।

राजा चक्रधरसिंह ने संगीत पर दुर्लभ ग्रंथों की रचना की। ये ग्रंथ हैं–**तालतोयनिधि** और **रागरत्न मंजूषा**। ताल तोम निधि अनूठा संगीतग्रंथ है। इसमें एक से लेकर 380 मात्रा तक के तालों का रंगीन चक्रों सहित वर्णन है। इसका वज़न क़रीब 32 किलोग्राम है। इसके लिये बड़े-बड़े उस्तादों से दुर्लभ बोल प्राप्त किये जिसके लिए उन्हें बड़ी राशियाँ खर्च करना पड़ीं। **रागरत्नमंजूषा** में 1200 रागनियों का वंशवृक्ष सहित वर्णन है। इनके लेखन में पं. भूषण

महाराज संगीताचार्य, पं. डिलदास, पं. सदाशिव महाराज और पं. भगवान दास से सहायता ली।

कथक नृत्य पर **नर्तन सर्वस्वम्** पहला शास्त्रीय और प्रामाणिक ग्रंथ है। इसका वज़न 6 किलो है और इसी के आधार पर कथक का रायगढ़ घराना अस्तित्व में आया। इसके लेखन में पं. जयलाल और अच्छन महाराज का सहयोग मिला। **मुरज वर्ण पुष्पाकर** नामक नृत्य पर एक प्रामाणिक ग्रंथ है, जिसमें नृत्य के संपूर्ण अंगों का सचित्र वर्णन है। इसके सिवाय चक्रधरसिंह ने दो उपन्यास **बैरागढ़िया राजकुमार** एवं **अलकापुरी**, हिन्दी में एक काव्य **रम्य रास** और एक नाटक **बैरागढ़िया राजकुमार**, संस्कृत में दो काव्य **रत्न मंजूषा** एवं **रत्नहार**, ब्रजभाषा में **काव्य कानन** नामक एक काव्य और उर्दू में दो काव्य संग्रह **जोशे फरहत** और **निगोरे फरहत** की रचना की।

कथक नृत्य के रायगढ़ घराने की प्रसिद्धि का सारा श्रेय राजा चक्रधरसिंह को है। उनके दरबार में नर्तकों, गायकों और वादकों की भीड़ थी। नर्तकों में थे पं. जयलाल, अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, ढंडे खाँ, चुन्नीलाल, नन्हेलाल, शिव नारायण, हनुमान प्रसाद, चिरंजीलाल, सीताराम, मोहनलाल, सोहनलाल, मोतीराम, ज्योतिराम के नाम उल्लेखनीय हैं। उन्होंने कथक के प्रमुख नर्तक कार्तिकराम, कल्याण दास, महन्त फिरतू महाराज और बर्मन लाल नामक चार प्रमुख शिष्यों को तैयार किया, जिन्होंने राष्ट्रीय ख़्याति प्राप्त की। ये लोग गम्मत, नाचा, कर्मा आदि छत्तीसगढ़ी नृत्यों में भी निष्णांत थे। राजा चक्रधर सिंह स्वयं ऐसा ताण्डव नृत्य प्रस्तुत करते थे कि लोग देखते ही रह जाते थे।

रायगढ़ दरबार में सम्मान और आश्रय पाने वालों में देश के प्रख्यात पखावज वादक ठाकुर प्रसाद, पर्वतसिंह, लक्ष्मण सिंह, ठाकुर जगदीश सिंह दीन, पं. वासुदेव आदि प्रमुख थे। तबला वादकों में अहमदजान थिरकवा, कादर बक्श यहाँ बरसों रहे। मुनीर खाँ, जमाल खाँ, करामत हुसैन खाँ, सादिक हुसैन खाँ भी रायगढ़ आये। राजा चक्रधर सिंह ने उपर्युक्त कलाकारों से गायन-वादन-नृत्य की शिक्षा ग्रहण की। साथ ही वे स्वयं भी एक योग्य संगीताचार्य, नर्तक और गायक थे। उनके शिष्यों में कार्तिकराम, कल्याण दास, फिरतू दास, बर्मन लाल, रामलाल (नृत्य), कृपाराम (तबला) पं. बनवारी लाल (गायन) प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार रायगढ़ रियासत संगीत, नृत्य और साहित्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण केन्द्र बनी रही।

रीवा रियासत : रीवा के बघेल शासनकाल में रीवा रियासत में अनेक महाराजा न केवल स्वयं उच्चकोटि के कवि और साहित्यकार थे वरन् साहित्यकारों के अत्यधिक उदार आश्रयदाता थे। महाराजा वीरभानुदेव (1540-55 ई.) के दरबार में माघ अथवा माधव नाम का उच्चकोटि का साहित्यकार था। वीभानुदेव महात्मा कबीर के प्रधान शिष्यों में थे। उन्होंने बांधवगढ़ में कबीर के नाम पर **कबीर चौरा** बनवाया था। उन्होंने **वीर भानुट्यकाव्यम्** नामक एक संस्कृत काव्य की रचना की। वीरभानुदेव का पुत्र रामचन्द्र भी साहित्यकारों का बेजोड़ आश्रयदाता था। वह अकबर का समकालीन था। संगीत सम्राट तानसेन इन्हीं के दरबार की शोभा बढ़ा रहे थे। संभवतः बांधवगढ़ में रहकर ही तानसेन ने **संगीतसार** नामक ग्रंथ की रचना की थी। इनमें ध्रुपद गीत और राग-रागिनियों का विवेचन था। तानसेन की प्रसिद्धि सुनकर सम्राट अकबर ने उन्हें अपने दरबार में भेजने की माँग की और महाराजा रामचन्द्र को मजबूरन तानसेन को मुग़ल दरबार में भेजना पड़ा।

जनश्रुति है कि अकबर के दरबारी हरिनाथ अर्थाभाव के कारण महाराज रामचन्द्र के दरबार में उपस्थित हुए उन्होंने महाराजा को एक कवित्त सुनाया जिससे महाराजा इतने प्रसन्न हुए कि उसे एक लाख रुपये का पुरस्कार दिया। महाराजा साहित्य और कला का बहुत आदर करते थे और स्वयं भी साहित्य-संस्कृति के परम् विद्वान थे। कहते हैं कि उन्होंने रहीम कवि को एक दोहे के लिये एक लाख रुपये का पुरस्कार भी भेजा था। दोहा इस प्रकार है–

''चित्रकूट में राम रहे, रहिमन अवध नरेश
जाको विपदा परति है, सुआवत यही देश''

महाराजा रामचन्द्र के पुत्र महाराज वीरभद्रदेव (1592-93) भी स्वयं उच्चकोटि के साहित्यकार और विद्वानों के आश्रयदाता थे। उन्होंने संस्कृत भाषा में दो ग्रंथों की रचना की थी— **कन्दर्पचूड़ामणि** और **दशकुमार पूर्वकथासागर**। उनके दरबार में मिथला के प्रसिद्ध विद्वान पद्मनाथ मिश्र को जिन्होंने **वीरभद्रदेव चम्पू** नामक ग्रंथ की रचना की थी, संरक्षण प्राप्त था। महाराजा विक्रमादित्य विद्वानों के आश्रयदाता थे। घनश्यामदास इनके दरबारी कवि थे। विक्रमादित्य के पुत्र महाराजा अमरसिंह एक विद्वान शासक थे। कवि घनश्यामदास के पुत्र भूपतिराय इनके दरबारी कवि थे। इन्हीं के दरबार में रहकर कवि नीलकण्ठ ने **अमरेष-विलास** नामक ग्रंथ की रचना की थी। महाराजा अवधूत सिंह (1700-55) के समय में कवि मनिराम भूषण दरबार में आये थे और उसने वीररस के छन्द महाराज को सुनाए थे।

रीवा में साहित्य के उन्नयन और साहित्यकारों को आश्रय प्रदान करने की अटूट परम्परा बनी रही। महाराजा अजीतसिंह (1755-1809 ई.) की साहित्य में गहरी अभिरुचि थी। इनके दरबार में चार प्रसिद्ध कवि थे। अजीत फतह नामक ग्रंथ के रचनाकार दुर्गादास, घनश्यामदास शुक्ल, केशव राय तथा आतायी। महाराजा जयसिंह संस्कृत और हिन्दी भाषा के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने 31 ग्रंथों की रचना की थी जिनमें कुछ अनुदित थे। उनके द्वारा रची पुस्तकों में **हरिचरित्र चंद्रिका** प्रसिद्ध हैं। इनके बाद के दो महाराजाओं के समय में साहित्य की अत्यधिक उन्नति हुई। जयसिंह देव के पुत्र महाराजा विश्वनाथ सिंह (1833-54) संस्कृत और हिन्दी भाषा के धुरन्धर विद्वान और साहित्यकारों के आश्रयदाता थे। वे संगीत शास्त्र के पंडित भी थे। संगीत की शिक्षा उन्होंने अपने प्रसिद्ध दरबारी संगीतज्ञ मोहम्मद खाँ से प्राप्त की थी। महाराजा रघुराज सिंह ने हिन्दी और संस्कृत में 50 से अधिक ग्रंथों की रचना की जिनसे उनकी बहुमुखी प्रतिभा ज्ञात होती है। वे हिन्दी के प्रथम नाटककार भी माने जाते हैं। हिन्दी के प्रथम नाटक **आनन्द रघुनन्दन** के लेखक वे ही थे। उन्होंने संगीतशास्त्र पर भी लिखा। **उत्तम काव्यप्रकाश, गीतावली, आनन्द रामायण** और **रसधुनी** इनके श्रेष्ठ काव्य-ग्रंथ हैं।

महाराजा विश्वनाथ सिंह के पुत्र महाराज रघुराज सिंह (1854-1880) दानवीर, धार्मिक वृत्ति के और हिन्दी संस्कृत तथा फारसी तीनों भाषाओं के विद्वान थे। ये कुल 38 पुस्तकों के रचयिता माने जाते हैं। इनमें **रामरसिकावली, रुक्मणी परिणय, यदुराजविलास** और **रामस्वयंवर** प्रसिद्ध हैं। संस्कृत भाषा में भी उन्होंने 8 काव्यग्रंथ लिखे। उनकी सभा में कवियों और साहित्यकारों की अपार भीड़ थी। उनके मंत्री रामनाथ प्रधान ने काव्य की 12 पुस्तकें लिखीं। वक्सीसमनसिंह, संत कवि तुलाराम चौबे, जुगलदास जिन्होंने **विश्वनाथ सिंह चरित्र** की रचना की। हरप्रसाद, हरिचन्द्र गोविन्द कवि, गयाप्रसाद, गोविन्द पाण्डे, माधव, फेरन, रसिक, सुमति आदि उनके दरबार के प्रसिद्ध कवि थे। इसी समय एक गायक सन्त मधुरअली गोविन्दगढ़ में आश्रय पाये हुए थे।

ओरछा रियासत : महाराज रुद्रप्रताप ने सन् 1531 में ओरछा नगर की नींव डाली। तब से लेकर ओरछा रियासत के सम्पूर्ण अस्तित्व काल तक ओरछा कवियों, साहित्यकारों, कलाकारों का तीर्थस्थल बनी रही। रुद्रप्रताप की साहित्य में रुचि थी। पं. कृष्णदत्त मिश्र, जो मेवाड़ के राजा संग्रामसिंह के दरबार में थे। जब राणा सांगा की बाबर के विरुद्ध युद्ध में पराजय हो गयी तब महाराजा रुद्रप्रताप ने उन्हें राजाश्रय प्रदान किया। पं. कृष्णदत्त केशवदास के पूर्वज थे और पौराणिक पंडित थे। रुद्रप्रताप के पुत्र और उत्तराधिकारी भरतीचंद (1531-54) भी कवियों के आश्रयदाता थे। गुलाब कवि और मुनसाराम सिद्ध, खेमराज और कृपाराम ने उनके आश्रय में रहकर अनेक ग्रन्थों की रचना की।

ओरछा राज्य में साहित्य की रचना भरतीचंद के उत्तराधिकारी महाराज मधुकरशाह (1554-92) के शासनकाल में बहुत हुई। मधुकरशाह स्वयं कवि थे। कृष्णदत्त के पौत्र बलभद्र उन्हें पुराण सुनाया करते थे। महात्मा हरिराम

व्यास उनके गुरु थे। वे कृष्ण भक्त थे और उनकी भक्ति रचनाओं का पाठ आज भी ब्रज-भूमि में लोकप्रिय है। पुराणों के पंडित होने के कारण व्यास उपनाम से प्रख्यात हो गये। मधुकरशाह उन्हें गोस्वामी सम्बोधित करते थे। उनकी दो काव्य रचनाएँ ज्ञात हैं— **व्यास-वाणी** और **रागमाला**। मधुकरशाह के एक अन्य आश्रित कवि थे मोहनलाल मिश्र। उन्होंने दो ग्रंथों की रचना की थी। महाराजा के दरबार की गणिकाएँ भी काव्य-रचना में प्रवीण थीं। तीन गणिकाओं ने काव्य लिखे। वे थीं—तानतरंग, मधुरअली और विचित्रनयना। मधुकरशाह के ज्येष्ठ पुत्र रामशाह (1592-1605) भी भक्त कवि थे। रामशाह के दो अन्य भाई होरलदेव और इन्द्रजीत भी कवि थे। होरलदेव का **प्रीत-जग्य** ज्ञात है। महाराज रामशाह अकबर के दरबार में रहते थे अतः उनकी ओर से उनके छोटे भाई, इन्द्रजीत, ओरछा का राजकाज सम्भालते थे। वे धीरज नरेन्द्र के नाम से कविताएँ लिखते थे। इन्हीं इन्द्रजीत के समय में महाकवि केशवदास दरबार की शोभा में चार चाँद लगा रहे थे। हिन्दी के उत्कृष्टतम् कवियों में उनकी गणना की जाती है। रस रीति के वे प्रथम आचार्य माने जाते हैं। केशवदास के बड़े भाई बलभद्र का उल्लेख किया जा चुका है। जिन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे थे। केशवदास 8 ग्रंथों के रचनाकार थे इनमें **रामचंद्रिका वीरसिंहदेव चरित, रसिक-प्रिया** और **कवि-प्रिया** अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। महाराज इन्द्रजीत की प्रेयसी और राजनर्तकी प्रवीणराय भी कवियित्री थी। कहते हैं केशवदास की प्रेरणा प्रवीण राय ही थीं। यह भी कहा जाता है कि प्रवीण राय के सौन्दर्य की चर्चा सुनकर सम्राट अकबर ने उसे अपने दरबार में बुलवा लिया था। पर प्रवीण के प्राण तो ओरछा में रमे-बसे थे। उसने अकबर को यह दोहा सुनाया जिसे सुनकर अकबर ने उसे वापिस ओरछा लौटा दिया—

बिनती राय प्रवीण की, सुनिए शाह सुजान।
जूठी पातर भखत हैं, बारी, बायस, स्वान।।

महाराजा पहाड़सिंह (1641-53) के राजाश्रित गोविन्द कवि, पर्वते कवि, राघवदास और सुखदेव ने अनेक ग्रंथों की रचना की। सुजान सिंह (1653-72) के शासनकाल में मेघराज प्रधान ने दो काव्य ग्रंथों की रचना की। उस युग के अन्य रचनाकार थे— प्रवीण कवि बंसी, सुदर्शन वैद्य, परमेश्वर और रामजू महाराज इन्द्रमणि स्वयं कवि थे। इनके दरबारी कवि विष्णुदास अनेक ग्रंथों के रचयिता थे। इसी प्रकार महाराजा जसवन्त सिंह, महाराजा उदोत सिंह और महाराजा नरेश देवी सिंह तीनों कवि थे। जसवन्त सिंह की महारानी भी कवियित्री थीं।

जसवंत सिंह की राजसभा में महाकवि केशवदास के वंशज, हरिसेवक मिश्र राजकवि थे। इनके दो काव्यग्रंथ लिखने का उल्लेख मिलता है। उन्हीं के समय में खंगराय, धनराम, दिग्गज कवि और कृष्ण कवि हुए। इन सभी ने ग्रंथों की रचना की। महाराजा पृथ्वी सिंह के समय में गोप कवि, रतन कवि, बल्लभ कवि, दरबार में थे और सबने काव्यग्रंथों की रचना की।

ऐसा प्रतीत होता है कि ओरछा के महाराजाओं को सरस्वती का वरदान प्राप्त था। महाराजा भारतीचन्द्र द्वितीय तथा महाराजा विक्रमाजीत दोनों कवि थे। भारतीचन्द्र ने रस-शृंगारग्रंथ लिखा तथा विक्रमाजीत ने तीन काव्यग्रंथ लिखे। शिवराम और सर्वसुख इनके दरबारी कवि थे। एक और महापंडित का उल्लेख आवश्यक है क्योंकि उनके बिना ओरछा की बेजोड़ साहित्य कीर्ति गाथा अधूरी रह जाएगी। इस महापंडित का नाम था मित्र मिश्रा। उन्होंने धर्मशास्त्र पर **वीरमित्रोदय** नामक ग्रंथ की रचना की जो कि आज भी सम्पूर्ण भारत में प्रामाणिक माना जाता है। दूसरे ग्रंथ का नाम है— **आनन्दकन्दचम्पू**। अक्षर अनन्य को जन्म देने का श्रेय भी ओरछा की भूमि को है।

स्थापत्य-कला : चन्देल राजाओं के पश्चात्, बुन्देलखण्ड के इतिहास में, निर्माता के रूप में वीरसिंह देव का नाम सर्वाधिक विख्यात है। वीरसिंह देव ने दतिया में वीरसिंह देव महल, मथुरा में केशवदेव मंदिर, आगरा में बुन्देला महल और बुन्देला बाग, वृंदावन में अनेक घाट, मंदिर और बगीचे, काशी में विश्वेश्वर मंदिर, वृंदावन में वनखण्डी

महादेव मंदिर, बरसाने में राधारानी मंदिर आदि अनेक निर्माण करवाये। अनेक जलाशय बनवाने का श्रेय भी उन्हें प्राप्त है। वास्तव में सर्वाधिक वैभवशाली निर्माण कार्य तो ओरछा के लिये सुरक्षित था। यहाँ निर्मित, जहाँगीरमहल, राजा महल, लक्ष्मीमंदिर, चतुर्भुजमंदिर और शीशमहल सुन्दर और दर्शनीय है। जहाँगीरमहल वर्गाकार इमारत है, जिसके चारों कोनों पर चार बुर्ज हैं। महल की प्रत्येक भुजा 220 फीट है। ऊँचे स्थान पर बना होने के कारण महल का सुदृढ़ और शक्तिशाली होने का प्रभाव पड़ता है। महल का सामने का हिस्सा अलंकृत है। इसमें जाली का काम भी अत्यंत दर्शनीय है। मुख्यद्वार पर पाँच-मंजिला बालकनी है। इसमें चित्रकारी भी है। वास्तव में जहाँगीरमहल, स्थापत्य-कला की विकासधीर मध्यकालीन धारा का चरमोत्कर्ष है।

राजामहल भी वर्गाकार है। यद्यपि यह एक हिन्दू मंदिर है परन्तु कमानीदार प्रवेश द्वारों और पत्थर की जाली का काम मुगल वास्तुकला से प्रभाव सिद्ध करता है। यहाँ दीवाने आम भी है। लक्ष्मणमंदिर भी वर्गाकार में है। उसका निर्माण वीरसिंह देव ने किया था और पृथ्वी सिंह ने उसका जीर्णोद्धार कराया। यहाँ नयनाभिराम चित्रकारी है। रामराजा मंदिर अपनी विशालता और खम्भायुक्त मेहराबों के लिए चंदेरी के कौशकमहल का स्मरण कराता है। वास्तव में यह रनिवास था जिसे एक किवदंती के अनुसार, रामराजा ने अपना निवास बना दिया। चतुर्भुज मंदिर तीन खण्डों में है। योजना में वह आयताकार है। मुख्यमंदिर में जिसमें मूर्तियाँ स्थापित हैं सबसे ऊँचा शिखर है। बाहर से यह मंदिर और महल स्थापत्य कला का मिश्रित रूप प्रदर्शित करता है। यहाँ के मकबरे भी मंदिरों की तरह निर्मित किये गये हैं। केवल वीरसिंह देव का मकबरा महल-नुमा है। ओरछा की स्थापत्य-कला में विभिन्न शैलियों का समागम है। कला पारखी पर्सी ब्राउन ने कहा है कि "ओरछा में असमान शैलियों को सुसम्बद्ध एवं संगति अनुसार एक विस्तृत एकीकृत शैली में पिरो दिया गया है।"

चित्रकला : ओरछा-बुन्देलखण्ड की चित्रकला सम्पदा भी अत्यंत गौरवमयी है। ओरछा में चित्रकला की झाँकी राजामहल, जहाँगीरमहल, लक्ष्मीमंदिर, प्रवीणरायमहल, चतुर्भुजमंदिर, शंकरजी मंदिर और मक़बरों में देखी जा सकती है। ओरछा की भित्ति चित्रकारी के मुख्य चार विषय हैं। धार्मिक, आंग्ल-मराठों के युद्ध एवं उस काल की घटनाएँ, नायक-नायिकाओं, राग-रागनियों, दरबार के दृश्यों और फूल-पत्तियों की डिज़ाइन। धार्मिक विषय में कृष्ण और राम के जीवन से सम्बन्धित दृश्य, **रामायण, महाभारत, भागवत, पुराणों, रामचरित मानस, रामचंद्रिका** और साहित्यिक कृतियों आदि में वर्णित कथाओं के दृश्य हैं। विभिन्न देवी-देवताओं के दृश्य भी बड़ी संख्या में हैं। चर्चाओं, युद्धों, शिकार, सेनाओं के अभियानों-जुलूसों, दरबारों, महलों, नायक-नायिका विभेदों, राग-रागनियों आदि के दृश्यों की भी अनोखी छटा है। रंग मालाओं बिहारी सतसई और रसिकप्रिया के सैकड़ों चित्र यहाँ की चित्रकला के वैभव को स्थापित करते हैं। ओरछा-बुन्देलखण्ड क्षेत्र की यह चित्रकारी **बुन्देलाकलम** के नाम से प्रख्यात है। इस पर नि:संदेह राजपूत तथा मुगल चित्रकला शैलियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। फिर भी बुन्देलाकलम की अपनी विशिष्ट शैली है, जिसमें स्थानीयप्रभाव प्रधान है और उसमें बुन्देलखण्ड की माटी की सुगंध है। बुन्देला चित्रकला की रचनाएँ सरल-सहज हैं और राजस्थानी शैली से भिन्न, इसके दृश्यों में घटनाएँ अपने संपूर्ण रूप में चित्रित हैं, खण्ड-खण्ड में नहीं है।

संगीत : तानसेन की परम्परा के हस्सू खाँ, बीनकार, किसी कारणवश ग्वालियर से ओरछा दरबार के आश्रय में आ गये थे। उनकी शिष्य परम्परा में भुजबल जसौदी उनके पुत्र जमुना जसौदी, नजीम खाँ, लाल झल्ली के नाम उल्लेखनीय है। जसौदी पिता-पुत्र ध्रुपद और धमार की गायकी परम्परा में उल्लेखनीय हैं। ध्रुपद गायक सीताराम और उनके पुत्र राधेश्याम ने बड़ी कलात्मकता से इस गायकी में श्री वृद्धि की है। शास्त्रीय गायन में श्रीमती असग़री बाई सागर वाली का नाम अत्यंत आदरणीय है। वे ओरछा के कला-मर्मज्ञ शासक वीरसिंह देव के दरबार की राज-गायिका रही हैं। उनका गायन लयकारी, शास्त्रीयता तथा माधुर्य का अद्भुत संगम-सामंजस्य प्रस्तुत करता है। उनकी

धमार प्रसिद्ध है। ख़याल, ठुमरी, दादरा, ग़जल, लेद और लोक संगीत में भी वे निष्णांत थीं।

साहित्यिक तीर्थ कुण्डेश्वर : एक समय ऐसा भी आया जब टीकमगढ़ जिलान्तर्गत कुण्डेश्वर को साहित्यिक तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध होने का गौरव प्राप्त हुआ। ओड़छेश महाराज वीरसिंह देव द्वितीय के आग्रह पर पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी 13 अक्टूबर 1937 को कुण्डेश्वर पहुँचे और आगामी साढ़े चौदह वर्ष तक वहीं निवास किया। उनकी उपस्थिति ने बुन्देलखण्ड के इस छोटे से कस्बे, कुण्डेश्वर को साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र स्थल बना दिया, जहाँ सारे देश के साहित्यिक महारथी खिंचे चले आते थे। पं. चतुर्वेदी के आग्रह पर श्री यशपाल सिंह भी 1940 में कुण्डेश्वर पहुँच गये और वहाँ छह वर्ष रहे।

इस दौरान उच्चकोटि की दो पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ किया गया। इनमें एक थी **मधुकर** और दूसरी थी **लोकवार्ता**। मधुकर (पाक्षिक) ने बुन्देलखण्ड के लोक-साहित्य, संस्कृति, इतिहास, प्राकृतिक वैभव आदि की पहचान समूचे हिन्दी जगत से कराने में महती भूमिका निभायी। पं. बनारसी दास चतुर्वेदी की ही प्रेरणा से श्री कृष्णानंद गुप्त ने लोक-साहित्य और लोक-संस्कृति के वैज्ञानिक अध्ययन के लिये **लोकवार्ता** (त्रैमासिक) का प्रकाशन किया, जिसके मात्र 6 अंक ही निकल सके। परन्तु उसमें इतनी श्रेष्ठ सामग्री प्रकाशित हुई कि वहाँ लोक-संस्कृति के वैज्ञानिक अध्ययन की कसौटी बन गयी।

ग्वालियर रियासत : संगीत को नाद ब्रह्म की संज्ञा दी गयी है। गायन-वादन और नृत्य तीनों कलाओं का ग्वालियर रियासत के क्षेत्र में सम्पूर्ण विकास हुआ। ग्वालियर गायन की ध्रुपद-शैली का केन्द्र है। इस गायन शैली के प्रवर्त्तक ग्वालियर के राजा डूंगरसिंह तोमर थे। जिनका शासन काल पंद्रहवीं सदी में सन् 1424 से 1455 था। डूंगरसिंह असाधारण योग्यतासम्पन्न शासक था।

यद्यपि ध्रुपद-शैली का प्रारम्भ डूंगरसिंह तोमर ने किया था तथापि उनकी महत्ता को स्थापित करने का सम्पूर्ण श्रेय ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर और उनके दरबारी गायक बक्शू को जाता है। मानसिंह संगीत के रसिक थे। उनके कारण ग्वालियर संगीत और कला के धाम के रूप में प्रसिद्ध हो गया था। तोमर शासक ने संगीत पर **मानकुतुहल** नामक ग्रंथ की रचना की थी, जिसमें राग-रागिनियों का विषद् वर्णन है। नायक बक्शू के बाद ध्रुपद गायक संगीत सम्राट तानसेन हुए। तानसेन ग्वालियर के पास बेहर गाँव के थे। वे ग्वालियर के निकट ही स्वामी हरिदास के शिष्य हुए और उसके बाद ग्वालियर के मोहम्मद गौस के शिष्य बने। बाद में तानसेन रीवा दरबार के आश्रय में रहे और जब उनकी कीर्ति भारतवर्ष में फैली तो सम्राट अकबर ने उन्हें अपने दरबार में बुलाकर नौरत्नों में स्थान दिया। बामन बुआ ध्रुपदिये जयाजीराव सिंधिया (1843-1886) के दरबार में प्रतिष्ठित गायक थे। चिंतामणि मिश्र भी श्रेष्ठ ध्रुपद रचकर देवपूजा में अर्पित करते थे। ध्रुपद के साथ-साथ उसकी हल्की शैली धमार की रचना हुई।

ग्वालियर, गायन की ख़याल शैली का भी एक प्रसिद्ध केन्द्र था। इस शैली के आरम्भकर्ता अमीर खुसरो माने जाते हैं। ख़याल शैली का विकास और संरक्षण मुख्य रूप से दिल्ली, अवध, रामपुर और जौनपुर के मुसलमानी दरबारों में हुआ अठारहवीं सदी के अंतिम दशक में दौलतराव सिन्धिया (1794-1827) के दरबार में अवधि के प्रसिद्ध ख़याल गायक मोहम्मद खाँ ने आश्रय पाया। इसके बाद ग्वालियर दरबार में हद्दू खाँ, हस्सू खाँ तथा नत्थू खाँ दरबारी गायक रहे। उनका समय ख़याल गायकी का स्वर्ण युग माना जाता है। सारे देश के संगीत प्रेमी संगीत के प्रशिक्षण के लिये ग्वालियर खिंचे चले आते थे। हद्दू खाँ और हस्सू खाँ के समय में ख़याल गायकी अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुँची और ग्वालियर को संगीत का घर बनने का गौरव प्राप्त हुआ। हाँ, यह अवश्य है कि ग्वालियर की ख़याल शैली पर ध्रुपद शैली का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। खाँ बन्धुओं की गायन शैली को ग्वालियरी ख़याल घराने की गायन शैली कहा जाता है।

ख़याल गायकी में श्री शंकरराव पंडित और उनके पुत्र कृष्णरावशंकर पंडित का योगदान भी महत्वपूर्ण है। श्री शंकर पंडित ने बड़े बालकृष्ण बुवा और उस्ताद हस्सू खाँ से शिक्षा प्राप्त की थी बाद में उस्ताद नत्थू खाँ से तालीम पायी। श्री कृष्ण राव शंकर पंडित ने उस्ताद निसार हुसैन खाँ से गायन की शिक्षा प्राप्त की। उस्ताद नत्थू खाँ के स्वर्गवास होने के पश्चात् सन् 1884 में उस्ताद निसार हुसैन खाँ को ग्वालियर राज्य के राजगायक का पद दिया गया। पंडित कृष्णराव शंकर पंडित संगीत के गौरव-पुरुष और ग्वालियर घराने में अग्रगण्य थे। उनकी गायन शैली में हस्सू खाँ, हद्दू खाँ और नत्थू खाँ की गायन परम्परा जीवित रही। उम्रदराज होकर वे दिवंगत हुए हैं। लेकिन यह कम आश्चर्यजनक नहीं है कि अपने जीवन के अंतिम पड़ाव तक उनका गायन बराबर जारी रहा। पंडित जी सन् 1907 से सम्मान, उपाधियाँ और प्रशस्तियाँ पाते रहे। सरदार वल्लभ भाई पटेल से उन्हें **गायक शिरोमणि** की उपाधि मिली और मुलतान संगीत सभा में **संगीत शिरोमणि** पटियाला दरबार ने **ताल सम्राट** और ग्वालियर दरबार ने **संगीत रत्नालंकार** की उपाधियों से उन्हें सम्मानित किया। सुरसिंगार संसद बम्बई ने उन्हें सुर विलास की उपाधि दी। भारत शासन ने उन्हें पद्मभूषण की उपाधि से विभूषित किया। अपने पूज्य पिता की स्मृति में पं. कृष्णराव शंकर ने गांधर्व महाविद्यालय की ग्वालियर में स्थापना की। ग्वालियर दरबार के आश्रित और निसार हुसैन खाँ की संगीत परम्परा के एक और गायक थे बालाभाऊ उमड़ेकर। ख़याल शैली के एक और प्रसिद्ध गायक थे श्री गंगाप्रसाद पाठक। ग्वालियर के अन्य गायकों में श्री एकनाथ-सारोलकर, श्री राजाभैया पूंछवाले जो कि पंडित कृष्णराव के शिष्य थे आदि के नाम लिये जा सकते हैं। ग्वालियर में ठुमरी गायन का भी अपना एक अलग महत्व था। श्री गणपतराव भैया शिन्दे ठुमरी गायन के लिये देश भर में प्रसिद्ध थे।

वाद्य संगीत : विदिशा और पद्मावती से प्राप्त पुरावशेषों से यह प्रमाणित होता है कि तीसरी शताब्दी ई. पूर्व में तंतुवाद्यों का इस प्रदेश में विकास हो चुका था। अवशेषों में जो आकृतियाँ मिली हैं उनसे जानकारी मिलती है कि सुरभार, सुरमंडल, बाँसुरी और पखावज का प्रचलन था। ग्वालियर के श्री गोपाल सिंह को इस वाद्य में प्रवीणता के उपलक्ष्य में ग्वालियर दरबार ने सम्मानित किया था। सितारवादन में हुसैन खाँ, मुराद अली खाँ और मसीद खाँ बहुत प्रसिद्ध थे। ग्वालियर दरबार में अत्यधिक प्रसिद्ध सरोद वादकों को आश्रय प्राप्त था। ग्वालियर में नन्हें खाँ और फिर उनके पुत्र उस्ताद हाफ़िज अली खाँ प्रख्यात सरोद वादक थे और अब उस्ताद हाफ़िज अली खाँ के योग्य पुत्र अमज़द अली खाँ सुप्रसिद्ध सरोद वादक हैं। सरोद एक ईरानी वाद्य है, जिससे उस्ताद हाफ़िज अली खाँ के पूर्वज पहले रीवा लाये और फिर वहाँ से वह ग्वालियर पहुँचा।

चित्रकला : सन् 1857 में झाँसी पर अंग्रेजों के आधिपत्य के बाद वहाँ के अनेक चित्रकार ग्वालियर में आकर बस गये थे। उनके निवास के कारण ग्वालियर का वह मोहल्ला चितेराओली के नाम से प्रसिद्ध हो गया। **जयाजीराव** सिंधिया के समय की चित्रकारी ग्वालियर के मोतीमहल में देखी जा सकती है। मोतीमहल में रंगीन काँच के जड़ाव का काम और अनेक भित्ति-चित्र बने हुए हैं। ये चित्र पुराण की कथाओं और विभिन्न राग-रागिनियों के हैं। चित्रों का निर्माण "नागपुरवाला" नामक चित्रकार के नेतृत्व में किया गया था। इन पर मुगल, पाश्चात्य, दक्षिणी तथा बुन्देली शैली का मिला-जुला प्रभाव है। कम्पू के सरस्वती महल के मुख्य प्रकोष्ठ में उस युग की चित्रकारी देखने को मिलती है। श्री मुकुन्दराव सखाराम भांड ने भी चित्रकारी में बहुत प्रसिद्धि पायी। उनके चित्रों का विषय राजा-रानी, देवी-देवता न होकर साधारण मानव होता था। उनकी बनायी अनेक कलाकृतियाँ समाज की विकृतियों पर करारी चोट करती हैं और करुणा जगाती हैं।

एक अन्य कलाकार थे श्री त्रयम्बकराव नानाजी यावलकर, वे मन्दसौर जिले के सुवासरा नामक स्थान में निवास करते थे। वे प्रसिद्ध चित्रकार और शिल्पकार थे। ग्वालियर के राजाश्रय में श्री रुद्रहंजी एक प्रसिद्ध चित्रकार और शिल्पकार

थे। उन्होंने चित्रकला और मूर्तिकला की शिक्षा शांति-निकेतन में प्राप्त की थी, उनकी "नटी" रवीन्द्रनाथ की गीति नाटिका "नटीर" पूजा पर आधारित है और उसमें अजन्ता और चीनी चित्रकला का सम्मिश्रण है। उनकी अन्य प्रसिद्ध कलाकृतियों में "तूफान" "रागाधिराज" और "कश्मीर" उल्लेखनीय है। श्री रुद्रहंजी जिन्हें आदर और प्रेम से लोग रुद्रप्पा कहते थे, मूलतः मूर्तिशिल्पी थे। खुले आकाश के नीचे मूर्ति शिल्प रचने की प्रेरणा उन्हें शांति-निकेतन में राम किंकर से मिली। इसीलिये अपने गुरू रामकिंकर की तरह उन्होंने भी सीमेंट कांक्रीट को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया। वे ग्वालियर के पद्मा विद्यालय से जुड़े रहे। पद्मा विद्यालय में उन्होंने तथागत बुद्ध, तीन कन्याएँ, सरस्वती, रूपगर्विता, मज़दूर, गाँधी जी की दाण्डी यात्रा आदि मूर्तियों का निर्माण किया। सुप्रसिद्ध इतिहासकार और साहित्यकार पं. हरिहरनिवास द्विवेदी के निवास पर नटराज की भव्य प्रतिमा रुद्रहंजी की उंगलियों का कमाल है।

स्थापत्य : ग्वालियर के विशाल और भव्य किले में प्राचीन और मध्यकाल के स्मारक बड़ी तादाद में आज भी देखे जा सकते हैं। इनमें तीन प्राचीन मंदिर अपने सौंदर्य के लिये प्रसिद्ध हैं। इनमें दो मंदिर हैं— सास-बहू मंदिर। बृहत् मंदिर का निर्माण 1093 में किया गया था और यह अत्यंत अलंकृत मंदिर विष्णु को समर्पित था। छोटा मंदिर भी अलंकृत शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। तीसरा दर्शनीय मंदिर तेली का मंदिर कहलाता है। यह किले के स्मारकों में सबसे ऊँचा— क़रीब 100 फुट है। यह 9वीं सदी का प्रतिहारकालीन विष्णु-मंदिर है। इसका शीर्ष द्रविड़ शैली का और शेष भारतीय शैली का है। इस प्रकार द्रविड़ और उत्तर भारत की आर्य शैली के सम्मिश्रण ने उसे मंदिर स्थापत्य- कला का रोचक उदाहरण बना दिया है।

ग्वालियर के किले में छह महल हैं। इनमें सबसे अधिक गौरवशाली स्मारक राजा मानसिंह का महल "मान-मंदिर" है। मान मंदिर को फर्गुसन ने "भारत में प्रारंभिक काल में निर्मित हिन्दू प्रासादों में अत्यंत भव्य एवं आकर्षक उदाहरण" माना है। इसकी दो मंजिलें ज़मीन के नीचे और दो ऊपर है। महल आयताकार है, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई 300×160 फीट है। पत्थर की दीवार के सिरे पर रंगीन टाइल की चित्रवल्लरी है और दीवार पूरी-की-पूरी नीले, हरे, सुनहरे रंग के टाइल्स तथा मोजेक से अलंकृत है। मानव, हाथी, मयूर, सिंह तथा वृक्षों की अनेक परंपरागत आकृतियाँ भी बनी हैं। अपनी रानी मृगनयनी के लिए बनाया गया "गूजरीमहल" भी भव्य और सुंदर है।

दो रास्ते किले को जाते हैं— एक पूर्वी और दूसरी पश्चिमी ओर से। पूर्व के रास्ते में पाँच दरवाज़े हैं। इस रास्ते में विशालकाय जैन मूर्तियाँ हैं जो पत्थर से काटकर बनायी गयी हैं। तीर्थंकरों की मूर्तियों में सबसे बड़ी 57 फुट ऊँची आदिनाथ की मूर्ति है। ग्वालियर नगर के पूर्व में मुहम्मद गौस का मक़बरा है जो प्रारंभिक मुगल स्थापत्य-कला का अत्यंत सुंदर उदाहरण है। चारों ओर घनी और बारीक डिज़ाइन की उत्कीर्ण की हुई पत्थर की जालियाँ हैं। उनकी डिज़ाइन देखते ही बनती है। मुहम्मद गौस के मक़बरे के पास ही तानसेन का सादा मक़बरा है। यहाँ अब प्रतिवर्ष तानसेन समारोह आयोजित किया जाता है जिसमें देश के चोटी के गायक और संगीतज्ञ भाग लेते हैं।

क़रीब एक सौ बीस साल पूर्व निर्मित जयविलासमहल अपनी विशालता और सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध है। सिन्धिया महाराजाओं के निवास के लिये इसे 19 लाख रुपये की लागत से सन् 1872-74 में बनाया गया था। महल का क्षेत्रफल 12,40,77 वर्ग फुट है। माइकेल फीलोज़ इसका वास्तुविद् था और यह इटली के प्लाजों के आधार पर बनाया गया है। इसके निर्माण में तीन स्थापत्य शैलियों का सम्मिश्रण है— हस्कन, इतालवी और कोरिन्थिमन। ग्वालियर में कलात्मक भवनों में स्वर्गीय राजाओं की छत्रियाँ हैं। इनमें उत्कीर्ण स्तम्भों, जालियों तथा शिखरों का निर्माण किया गया है। रेतीले पत्थर से निर्मित इस शानदार इमारत पर ऐसी चमकदार सफेदी की गयी है कि देखने पर संगमरमर का भ्रम पैदा करती हैं। जयविलासमहल का दरबार कक्ष बहुत ही सुन्दर है 197.8 फुट लम्बा, 50 फुट चौड़ा तथा 41 फुट ऊँचा यह

कक्ष विशाल फानूसों, कालीनों आदि से सज्जित दरबार हाल सौंदर्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। मोतीमहल कभी मध्यभारत का सचिवालय था। उसके कुछ कमरों में सुन्दर रंगीन काँच के जड़ाव का काम है और अनेक भित्ति चित्र बने हुए है।

ग्वालियर से क़रीब 16 कि.मी. दूर स्थित नरेसर में 11वीं-12वीं सदी के 20 मंदिर शैव सम्प्रदाय के हैं और जो एक रमणीक घाटी में प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच स्थित हैं। ग्वालियर से क़रीब 64 किलोमीटर दक्षिण में, सिंध और पार्वती नदी के संगम पर स्थित पवाया, पुरातात्विक और साहित्यिक साक्षों के आधार पर प्राचीन पद्मावती नगरी माना जाता है। यहाँ भारशिव नागवंशी राजाओं की राजधानी थी। भवभूति के **मालती माधव** और बाणभट्ट के **हर्ष चरित** में इसका उल्लेख है। यहाँ मणिभद्र की आदमकद प्रतिमा है, जो 8वीं सदी की मानी जाती है।

ग्वालियर से 116 कि.मी. दक्षिण-पश्चिम में स्थित शिवपुरी राष्ट्रीय उद्यान और विशाल जलाशय के लिये प्रसिद्ध है, ही। सिन्धिया राजवंश की दो दर्शनीय छत्रियाँ भी यहाँ विद्यमान हैं। इनमें एक है स्व. महाराजा माधवराव सिन्धिया की और दूसरी है उनकी माता साख्या राजा की। साख्या राजा की छत्री बाहर से सादे पत्थर की परन्तु भीतर से संगमरमर की है। स्व. माधवराव की छत्री संगमरमर से बनी है और बाहर-भीतर रंगीन बहुमूल्य रंगीन पत्थरों के बेल-बूटों की पच्चीकारी है, जो ताजमहल और एतमादुद्दौला की याद दिलाती है।

इंदौर रियासत : स्वर्गीय नासिरुद्दीन खाँ इंदौर दरबार के अत्यंत प्रसिद्ध गायक थे। उस्ताद अमीर खाँ इंदौर की विलक्षण विभूति थे। ख़याल गायकी के क्षेत्र में उनका स्पष्ट और सबसे बड़ा योगदान था। उनकी विशेष साधना ख़याल शैली में तान की थी। उन्होंने कला प्रवीणता का प्रदर्शन कभी भी सिर्फ़ प्रदर्शन के लिये नहीं किया, परंतु अपने राग की मूल भावना पर अपने को केन्द्रित किया। लोक रंजन की मांगों के आगे उन्होंने कभी भी अपने को समर्पित नहीं किया और हल्की चीजों को गाने से सदैव इन्कार किया। उनका संगीत ऐसा था, जिसमें ध्रुपद का भव्य अभिजात और ख़याल का अलंकृत चमकीलापन था। संगीत के क्षेत्र में सबसे अधिक संख्या में अनुयायी उन्हीं के थे। दक्षिण मध्यभारत क्षेत्र के प्रसिद्ध गायकों में श्री आबिद हुसैन खाँ जंजीर वाले और गणपतराव देवासकर के नाम उल्लेखनीय हैं।

चित्रकला : चित्रकला के क्षेत्र में इंदौर का योगदान उल्लेखनीय है। देश के कुछ शीर्षस्थ चित्रकार इंदौर की देन हैं। इंदौर रियासत में चित्रकारों को अपेक्षाकृत अधिक राजाश्रय दिया गया। नाना जी भुजंग और रामचंद्रराव, प्रताप राव के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इंदौर के भारत प्रसिद्ध चित्रकार हैं– दत्तात्रय दामोदर देवलालीकर, मक़बूल फ़िदा हुसैन, जयशंकर, नारायण श्रीधर बेन्द्रे, मनोहर जोशी, देवकृष्ण जोशी, विष्णु चिंचालकर, मुलगाँवकर, राजपूत आदि। देवलालीकर परम धार्मिक थे। अजन्ता शैली का उन पर प्रभाव था। रामायण, महाभारत तथा पौराणिक कथाओं पर आधारित उनके चित्रों में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और रवि वर्मा दोनों शैलियों का सम्मिश्रण है। देवकृष्ण जटाशंकर जोशी खुद अपनी ही गाथा बन गये। उनकी तूलिका ने मालवा अंचल के भील आदिवासी जीरन की अद्वितीय झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। मालवा का ग्राम-जीवन भी उनके चित्रों से अमर हुआ है।

मैहर बैंड : उस्ताद अलाउद्दीन खाँ को याद करना वास्तव में भारत की संपूर्ण संगीत परम्परा को स्मरण करना है। वे एक ऐसे स्वप्नदृष्टा थे जिनके समान कोई एक व्यक्ति कई सदियों के बाद जन्म लेता है। संगीत उनके लिये व्यवसाय से कहीं बहुत महत्वपूर्ण चीज थी। उनके लिये संगीत श्रद्धा का प्रतीक था, जिसमें भारतीय परम्परा में प्रतिष्ठित गुरु-शिष्य परम्परा का सार तत्व साकार था। बंगाल में जन्मे इस संगीत पिपासु ने एक बावरे की तरह संगीत गुरुओं की खोज की और उनके चरणों में बैठकर एक लम्बी और कठिन संगीत साधना की। उनके अंतिम गुरु थे उस्ताद बजीर खाँ। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ को कष्ट, दुःख और अवमानना के कठिन दौर से गुज़रना

पड़ा, परन्तु संगीत के प्रति अपनी अटूट निष्ठा, अध्ययन, साहस और आत्मविश्वास के बलबूते वे भारत के शीर्षस्थ और पूजनीय संगीतज्ञ के रूप में समादरित हुए। सन् 1962 में उनके देहावसान से भारतीय संगीत के एक युग पुरुष का अंत हो गया। वे एक महान संगीतज्ञ के साथ ही एक महान् आत्मा भी थे।

बुन्देलखण्ड-बघेलखण्ड सीमा पर स्थित एक छोटी-सी रियासत मैहर के तत्कालीन राजा के आग्रह पर उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने इस सदी के तीसरे दशक की शुरुआत में मैहर को अपना घर बना लिया। अनाथ बालकों को लेकर उन्हें संगीत का प्रशिक्षण देकर उन्होंने सुप्रसिद्ध मैहर बैण्ड का गठन किया। मैहर बैण्ड अपनी श्रेष्ठता के कारण भारत प्रसिद्ध हो गया। उनके विषय में यह विलक्षण तथ्य ज्ञात है कि भारत का ऐसा कोई भी वाद्य नहीं था जिसे बजाने में उस्ताद पारंगत न हों।

संगीत की बहुमुखी प्रतिभा के धनी महान संगीतज्ञ उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की श्रेष्ठता के दर्शन उनके कला-मर्मज्ञ शिष्यों में होती है। उनके शिष्यों में पुत्र अली अकबर खाँ (सरोद), पुत्री अन्नपूर्णा देवी- पत्नी रविशंकर (सुरबहार), दामाद रविशंकर (सितार), पन्नालाल घोष (बाँसुरी), निखिल बैनर्जी (सितार) के नाम प्रमुख हैं।

देवास : उस्ताद रजब अली खाँ हिन्दुस्तानी संगीत के गौरव पुरुष थे। रजब अली खाँ अपने पिता मुगल खाँ के साथ नरसिंहगढ़ रियासत से देवास बड़ी पांती के महाराजा कृष्णाजी राव पवार के दरबार के आश्रय में आ गये। यहाँ रजब अली प्रख्यात बीनकार बन्दे अली खाँ साहब के शागिर्द हो गये। इस समय रजब अली के तीनों मामा-मगन खाँ, बबुले खाँ तथा यामीन खाँ भी देवास में थे। सुप्रसिद्ध बीनकार उस्ताद बन्दे अली खाँ भी जयपुर, ग्वालियर, इंदौर होते हुए देवास आ पहुँचे थे। इस तरह देवास संगीत का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गया था। रजब अली खाँ मुख्यतः ख़याल गायक थे। उनका संगीत पत्थर को मोम बनाने में सक्षम था। उनकी तान रंजकता में जितनी संवेदनशीलता थी, ताल में वह उतनी ही पक्की थी। संगीतकार के रूप में रजब अली खाँ ने अपने आपको एक संस्था बना लिया था। वे संगीत साधना का मूलाधार ओंकार उच्चारण को मानते थे और स्वयं उसकी साधना करते थे और ऐसा करने का उपदेश भी अपने शिष्यों को देते थे। उनका मत था कि ओंकार एक सम्पूर्ण स्वर है।

देवास में 30 जनवरी 1948 को कर्नाटक से आकर बसे शिवपुत्र सिद्धरामय्या कोमकली **कुमार गंधर्व** जो हाल ही में दिवंगत हुए हैं, देश के शीर्षस्थ संगीतकारों में एक थे। उन्हें जनता की जो प्रशंसा प्राप्त हुई, उसकी सानी नहीं थी। वैसी प्रसिद्धि शायद ही किसी और समकालीन संगीतकार को मिली हो। परंतु वे एक रूढ़िमुक्ति, विद्रोही संगीतकार थे। शास्त्रीय तथा लोक-संगीत के मिश्रण एवं समन्वय पर आधारित उनके स्वनिर्मित राग और भक्ति काव्य की सांगीतिक तथा कल्पनाशील प्रस्तुति विस्मयकारी और आह्लादकारी है। उन्होंने किसी भी घराने के आधिपत्य को अस्वीकार कर दिया था। उनके मुँह से कबीर की रचनाओं को सुनकर शब्दों के जो प्रभाव और अर्थ उभरते हैं उनकी अनुभूति अद्वितीय है। वे नये संगीत के अग्रदूत थे। वे नये संश्लेषण और नयी पद्धति के जनक थे और इसीलिये विवादास्पद थे।

☐ *शम्भुदयाल गुरु — वरिष्ठ पत्रकार, साहित्यकार। अनेक पुस्तकों के लेखक। म.प्र. शासन के प्रथम श्रेणी अधिकारी। म.प्र. के गजेटियर विभाग के अवकाश प्राप्त संचालक। साहित्य, कला, संस्कृति के सशक्त हस्ताक्षर। आपके अथक प्रयासों से प्रदेश के अनेक ज़िलों के गज़ेटियर प्रकाशित हुए हैं। सम्प्रतिः स्वतन्त्र लेखन।*

कला मर्मज्ञ राजपुरुष

मेरी कल्पना साकार हुई

इंदिरा गाँधी

राज्यपाल जी, मुख्यमंत्री जी, हमारे देश के वरिष्ठ कलाकार, मंत्रीगण, बहनों और भाइयों,

हमारे लिये यह बहुत गौरव का दिन है। हमें अपनी प्राचीन कला पर गौरव है, लेकिन आजकल की कला और कलाकारों पर उससे कम गौरव नहीं है। भारत की जो एक परम्परा रही है, एक लगातार, बिन टूटे हुए एक तागे की तरह हमारे इतिहास में रही है, जिसमें कला, संगीत सब चीज़ें बंधी रही हैं, वह स्वाभाविक है कि आज़ादी के बाद उसको एक नयी शक्ति और नयी प्रेरणा मिलती। आज हम यहाँ जमा हैं और शायद ही कभी पहले इस प्रकार का सम्मेलन हुआ होगा जब इतने बड़े कलाकार भारत के, कुछ बाहर के, यहाँ पर जमा हुए हैं। **भारत-भवन** का उद्घाटन हुआ है।

बहुत दिन पहले भी मेरी कल्पना थी कि इस प्रकार के भवन हर प्रदेश में बनें, जिससे कि इस देश में जो योग्यता हैं, गाँव-गाँव में है, पहाड़ों में है, जंगलों में है, रेगिस्तान में है, उसको किस प्रकार से हम निकलने का फूलने का अवसर दे सकें। किसी प्रकार से वे लोग जो शहरों में हैं, अपने को शिक्षित समझते हुए अपनी जड़ों से मिला सकें। कोई देश, कोई समाज अगर अपनी जड़ों से उखड़ जाता है तो वह जीवित नहीं रह सकता। भारत का एक यह सबसे बड़ा गुण रहा है कि वो जड़ें मज़बूत रहीं और हमारे लंबे इतिहास में कुछ भी ऊँच-नीच हुआ हो, उन जड़ों को हमने सूखने नहीं दिया है। कभी शिक्षण के द्वारा या जो बाहर की विचारधारा से प्रभावित होते हैं उनके मन में यह ख्याल आया कि वे कुछ दूसरों से कम हैं। वास्तव में दुनिया में कोई न कम, न ज्यादा होता है। हरेक में कुछ गुण, कुछ कला, होती है, कुछ लोग उसको प्रकट कर सकते हैं और कुछ के भीतर दबा रहता है। जो बाहर निकाल सकते हैं, केवल अपने विचार नहीं, बल्कि समाज के विचार, देश के विचार, उस जमाने के विचार, वे बड़े कलाकार होते हैं।

हमेशा ही जितनी अलग-अलग कलाएँ हैं, उनका एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध रहा है। जब हम आज़ाद हुए, हमें लगा कि हमारे बहुत से लोग बाहर की तरफ़ देख रहे हैं और उनके विचारों से ज़्यादा प्रभावित हो रहे हैं। लेकिन हमारे गाँव में देखिए, हमारे पुराने लोकचित्र इत्यादि देखिए तो बहुत-सी वे ही बातें दिखलाई पड़ेंगी जो हम समझते थे कि आधुनिक कला में ही है। कभी-कभी मैं सोचती हूँ कि यह भारत लोगों का एक महासागर जैसा है। यूरोप, अमेरिका, इत्यादि में कोई भी विचार, कोई भी फैशन आते रहे हैं, उनमें से कौन-सा है जिसका कोई हिस्सा यहाँ पर नहीं मिलेगा। कभी देहात में या शहर में या हमारे आदिवासियों में हमारे गाँव वालों में, हरेक चीज़ में कुछ न कुछ उसका एक हिस्सा हमेशा मिलता है। किस हिस्से को हम बढ़ाना चाहें, यह हमारे हाथ में है।

पहले जब राजदरबार होते थे तो कलाओं का संरक्षण करते थे। केवल जो लोक-कला थी वह आम जनता के आधार पर थी। वह उसको प्रोत्साहन देते थे और उनकी रुचि के कारण वह जीवित रहती थी। अब राजा-महाराजा चले गये और यह सारा बोझ लोगों पर ही आया है। सरकार थोड़ा-बहुत कर सकती है और जितना भी कर सके,

अवश्य करना चाहिए। मैं यहाँ के मुख्यमंत्री और मध्यप्रदेश की सरकार और उनके जो अधिकारीगण हैं उनको धन्यवाद दूँगी, जिन्होंने इस काम को हाथ में लिया और इतने सौंदर्य से पूरा किया। वे पूरा नहीं कर सकते थे अगर देश के इन बड़े-बड़े कलाकारों को यहाँ पर न लाते और उनको इसके लिये उत्साहित नहीं कर पाते। यह भी एक बड़ा गुण है कि वे ऐसा वातावरण यहाँ पैदा कर सके कि ये लोग दूर-दूर से आये और जैसा कि मुख्यमंत्रीजी ने कहा कि रात-दिन एक करके, सबने काम करके इतनी लाजवाब चीज़ यहाँ खड़ी की है, जो सारे भारत के लिये एक उदाहरण है और मेरी आशा है कि दूसरे प्रांतों में भी ऐसा हो। अभी तक तो दिल्ली में भी ऐसा कुछ नहीं है। मध्यप्रदेश में भोपाल कला की राजधानी बन रही है लेकिन मेरी आशा है कि यह पदवी उससे दूसरे प्रान्त भी खींचने की कोशिश करेंगे। यहाँ भी, यहाँ इसके माने नहीं कि यहाँ कम हो, यहाँ के काम को तो बढ़ाना ही है लेकिन अपने-अपने प्रांतों में, चाहे राजधानी में, चाहे दूसरे किसी शहर में अगर इस प्रकार काम हो तो देश को उससे शक्ति ही मिल सकती है।

मैंने कहा कि सरकार थोड़ी-बहुत मदद कर सकती है, लेकिन पूरी मदद सरकार नहीं कर सकती है और न ही उचित है उसका करना, क्योंकि सरकारी मदद से यह किस दिशा में जाये यह हम कह नहीं सकते हैं और दिशा तो कलाकार को ही चुनना है। उसके हृदय में, उसके मन में क्या-क्या स्वप्न हैं, क्या उसके विचार हैं उनको उन्हें प्रकट करना है। संग-संग यह भी देखना है कि वही कला जीवित रहती है, एक-दो साल नहीं, सदियों तक जो लोगों के जीवन से कुछ संबंध रखती है। इसके माने नहीं कि जीवन की ही तस्वीर होनी चाहिए, बल्कि जिसको देखकर उस चीज़ से चाहे वह पेटिंग हो, चाहे वह गीत हो या जो हो, उनके हृदय से उसका जवाब कुछ आये, वही चीज़ बच सकती है, तो उसमें उसके बीच में सरकार नहीं आ सकती है। वहाँ तो कलाकार और आमलोग इन्हीं दो का संबंध बनता है और वहीं हमें मज़बूत करने की कोशिश करनी है। अगर हम चाहे कि साधारण लोग कला को प्रोत्साहन दें, तो ज़ाहिर है कि उनका उस कला से परिचय होना चाहिए और मेरे ख़्याल से भारत-भवन की सबसे बड़ी चीज़ यही होगी कि यहाँ के लोगों को परिचय करने का अवसर मिलेगा और इससे एक रुचि फैलेगी। सबको कौन चीज़ अच्छी है और कौन बुरी है कोई पैदाइशी पहचान नहीं होती है। अच्छी चीज़ देखते-देखते समझ पड़ती है कि कौन चीज़ अच्छी है और कौन चीज़ अच्छी नहीं है। कभी-कभी एक चीज़ देखने की आदत हो जाती है, तो चाहे वह बहुत ऊँची कला न भी हो तो भी लगती है कि वही है। इसीलिए इन लोगों को अलग-अलग विचारधारा कला में और संगीत में और हर एक चीज़ में देखने का, सुनने का मौक़ा मिलना चाहिए।

हम अक्सर कहते हैं कि आर्थिक क्षेत्र में सब देश एक दूसरे पर निर्भर है, लेकिन बहुत हद तक अब आजकल की दुनिया में दूसरे विचारों का भी वही है। हम ज़रूर चाहते हैं कि हमारी जड़ें मज़बूत रहें और हम अपनी परंपरा को, पारंपरिक शैलियों को मज़बूत रखें। हमें उन्हें खोना नहीं है। लेकिन संग-संग नये प्रयोग, नये अभ्यास भी हमें करने हैं और नये विचारों के लिये रास्ता खोलना है। जीवन में हर समय, हर क़दम पर चुनना होता है क्या अच्छा है, क्या बुरा है, किधर क़दम उठायेंगे हम। किसी भी देश को ऊँचे उठने के लिये जितना कि हमें अनाज की आवश्यकता है, जितनी हमें दूसरी चीज़ों की आवश्यकता है, आवश्यक वस्तु जिन्हें कहते हैं उतनी ही आत्मा की शक्ति के लिये कला, संगीत इन सब चीज़ों की आवश्यकता है। हिस्सा अगर अलग-अलग हो जाये, उससे हम वंचित रहे तो देश बढ़ नहीं सकता है, न देश की ताक़त बढ़ सकती है। इस देश को हमें हर दिशा में आगे बढ़ाना है और एक क़दम आज मध्यप्रदेश ने उठाया है, एक बड़ा क़दम उठाया है और मुझे तो पूरा विश्वास है कि इससे न केवल मध्यप्रदेश के कलाकारों को जो और बड़े-बड़े दूसरे कलाकार यहाँ आये हैं उनको प्रेरणा मिलेगी, बल्कि जो कलाकार अभी खुले में नहीं आये, कुछ लोगों के नाम तो हमें मालूम होते हैं लेकिन बहुत से लोगों के नाम हमें मालूम नहीं है, उनको भी मिलेगा। देहात में, अपने-अपने गाँव में कर रहे हैं, अपने-अपने घर में कर रहे हैं, क्या-क्या उनकी आशाएँ हैं, उनके आदर्श हैं या चीज़ें हमसे छुपी हुई हैं, हमें उनको भी मौक़ा देना है। हमें अपने आदिवासियों की कला पर भी

गौरव है। केवल कला पर नहीं बल्कि उनके जीवन की जो भावना है, जिस प्रकार से अनेक कठिनाइयाँ होते हुए, दरिद्रता होते हुए, हर चीज़ की कमी होते हुए वे गाते हैं, नाचते हैं और जो केवल उनका मनोरंजन नहीं है लेकिन एक प्रकार से सारे देश का उत्साह उससे बढ़ता है। हमें देखना है कि उनकी यह भावना खो न जाये। आजकल की शिक्षा से जो मतभेद है वह इसलिये है कि अक्सर शिक्षा इन सब भावनाओं को दबा देती है।

अब किस प्रकार की शिक्षा हो, यह कहना बहुत मुश्किल है क्योंकि हम यह भी देखते हैं कि शिक्षा में ख़ामियाँ होते हुए ख़राबियाँ होते हुए भी बहुत ऊँचे दर्जे के लोग इससे पैदा हुए हैं, उन्होंने लाभ उठाया है और हर दिशा में स्वयं भी ऊपर उठे हैं और देश को भी उठाया है। इसलिये देखते हैं कि केवल शिक्षा की ज़िम्मेदारी नहीं है, और बहुत-सी चीज़ें हैं। लेकिन हमारी आशा है कि अगर इस प्रकार **भारत-भवन** में भावना फैलेगी मध्यप्रदेश में और दूसरे प्रदेश में, उससे शायद शिक्षा पर भी प्रभाव पड़ सकता है। कोई एक दिशा में बढ़ता है, कोई दूसरी दिशा में बढ़ता है लेकिन संपूर्णता बहुत कम लोगों में होती है। उसी से लोगों को ज़्यादा संतोष भी मिल सकता है और इस संतुलन से वह अपना काम भी कर सकते हैं। हमारी तो आशा है कि लोकनृत्य, लोक वस्त्र ये सब चीज़ें जो हैं इनको भी हमारी आजकल की युवा पीढ़ी, शहर में रहने वाले लोग अपनायें।

मुझे दो-तीन दिन पहले बहुत खुशी हुई थी, आपने सुना होगा कि स्वीडन के प्रधानमंत्री आये और उनके लिये मैंने एक दावत दी थी। उनकी पत्नी और उनके उद्योग मंत्री की पत्नी दोनों उस मौक़े पर प्राचीन कपड़े पहन के आये, न कि ऐसे कपड़े जो सब जगहों पर आजकल के फैशन के होते हैं। इस प्रकार से हम चाहते हैं कि हमारे देश में भी यह रहे। हमारा सौभाग्य है कि हमारी साड़ी एक बहुत सुंदर चीज़ है, लेकिन जो दूसरे लोक-वस्त्र हैं, अलग-अलग प्रांतों के अलग-अलग जातियों के वो कम सुंदर नहीं हैं। हमें ऐसा वातावरण नहीं बनाना चाहिये कि एक ही प्रकार के लोग होने चाहिए, एक प्रकार के कपड़े पहने, एक ही प्रकार के खाने खायें। यह भारत की विशेषता है कि हमने हमेशा विभिन्नता अपने समाज में रखी है और मेरी आशा है कि चाहे कला, चाहे संगीत हो, चाहे दूसरी बाते हों, इसमें हमेशा रखेंगे।

आज यहाँ हमारे कुछ बड़े कलाकारों का सम्मान हुआ है। अब मैं तो इनको क्या बधाई दूँ हम इनको सम्मानित कर रहे हैं। हम इनके लिये कोई बहुत ज़्यादा कर नहीं रहे हैं क्योंकि इन्होंने तो जो करके दिखाया उससे देश का मान बड़ा ऊँचा उठा है। हमारे समाज को एक प्रकार से एक नयी दिशा मिली है, लेकिन तब भी मैं उनको बधाई देती हूँ और शुभकामनाएँ देती हूँ और यही आशा है कि इस प्रकार से मध्यप्रदेश के **भारत-भवन** और दूसरे प्रदेशों के जब बनेंगे तो उनमें भी ऐसा अवसर सबको मिलेगा। किस प्रकार से यह प्रभाव शहरों में पहुँचे, इस पर विचार करने की भी ज़रूरत है क्योंकि अक्सर शहर के लोग थोड़ी-सी ऊपरी चमक में इतने प्रभावित हो जाते हैं कि बहुत-सी बाहर की चीज़ें अपनाने की कोशिश करते हैं। गहराई से अपना नहीं सकते क्योंकि उस चीज़ में गहराई नहीं होती और अपनी संस्कृति में जिसकी जड़ न हों, वह दूसरे की संस्कृति भी मुश्किल से समझ सकता है। कहीं जड़ मज़बूत होनी चाहिए, लेकिन हर तरफ की हवा के लिये तैयार रहना चाहिए। उसमें कुछ अच्छा हो, लाभदायक हो तो उसको अपनाना चाहिए, लेकिन बाहर से आजकल तो बहुत-सी हवाएँ हर प्रकार की आती हैं, हर दिशा से आती हैं और उससे हमारे पैर कभी-कभी लड़खड़ाते हैं– विशेषकर युवा पीढ़ी के। तो उसमें कोई हर्ज नहीं है, यह स्वाभाविक है, लेकिन देखना है कि हमारे पैर उखड़ न जायें। हम अपने पैर, अपनी धरती पर जमा करके मज़बूती से रखें, लेकिन हवा से हम लाभ उठायें, कुछ परिवर्तन करना हो तो परिवर्तन से भी न डरें, पुरानी चीज़ों में अच्छाई है तो उससे भी न डरें। असल में सबसे ज़रूरी चीज़ है कि निडर बनें चाहे कलाकार हो, चाहे राजनीति में हो, चाहे कोई दूसरा काम करें। अगर हम सच्चाई की खोज में रहे तो जो भी हम काम करेंगे वह ऊँचे दर्जे का होगा और यही हमारी आशा है कि यह भावना, यह सबक एक प्रकार से इस **भारत-भवन** से आयेगा और इसकी रोशनी दूर-दूर तक पहुँचेगी और ख़ासतौर से

कि अपनी संस्कृति में गौरव रखना इसको हमें लोगों को सिखाना है। इसके माने नहीं कि कोई बुरी बातें आ गयी हैं तो उनको भी हम चिपकाकर रखेंगे, उनको तो हटाना ही है, जैसे घर में अगर धूल और मिट्टी आती है तो उसको झाड़ू से बाहर कर देते हैं लेकिन राष्ट्रीय गौरव नहीं होगा तो कुछ अपना व्यक्तित्व कम हो जाता है। और जैसे मैने पहले कहा कि बाहर से भी लेने में हममें वह मज़बूती या वह क्षमता नहीं रहती है।

मैं फिर धन्यवाद देना चाहती हूँ कि मुख्यमंत्रीजी और दूसरों को जिन्होंने इस मौक़े पर मुझे यहाँ शरीक़ होने का अवसर दिया। मेरी आशा तो थी कि कुछ ज़्यादा समय तक रह सकूँ और ज़्यादा देख सकूँ लेकिन ऐसा जीवन है कि हर काम जल्दी-जल्दी में ही होता है। तो फिर से मैं धन्यवाद देती हूँ उन सबको जो लोग इससे संबंधित हैं, जिन्होंने इसको बनाया। जो यहाँ आगे काम करेंगे और आज काम कर रहे हैं उन सबको अपनी शुभकामनाएँ देती हूँ। मुझे **भारत-भवन** का उद्घाटन करते हुए बहुत खुशी है।

☐ *इंदिरा गाँधी—* *भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री भारतरत्न श्रीमती इंदिरा गाँधी ने भोपाल में स्थापित भारत भवन का उद्घाटन किया। कला, साहित्य, संस्कृति के इस संगम के उद्घाटन अवसर पर अपने सारगर्भित भाषण में आपने भारत भवन स्थापना के लिये श्री अर्जुनसिंह की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए भोपाल को भारत की सांस्कृतिक राजधानी निरूपित किया था।*

भोपाल में निर्मित कला समवाय भारत-भवन का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री का भाषण- 13 फरवरी 1982

इंदिराजी के ही समान हैं अर्जुनसिंह

पुपुल जयकर
(संस्कृति विदुषी)

मैं हमेशा ही राजनीति की देहरी पर रही हूँ। मैंने राजनीति को खुलते हुए देखा है लेकिन मैं कभी भी राजनैतिक प्रक्रिया में शामिल नहीं रही हूँ। इसलिये मैं जब भी अर्जुनसिंहजी के बारे में बोलूँगी तब मैं उनकी राजनीति के विषय में नहीं बोलूँगी क्योंकि मैं इसके लिये सक्षम नहीं हूँ और मेरा उनकी राजनीति पर बात करना ग़लत भी होगा।

यह बात लोग समझते नहीं है कि मैं सार्वजनिक जीवन में लगभग 50 साल पहले आयी थी। मैं जिस संस्था से पहले-पहल जुड़ी थी वह थी **राष्ट्रीय योजना समिति** जिसके अध्यक्ष पंडितजी (पंडित जवाहर लाल नेहरू) थे। मृदुला साराभाई उस समिति की सचिव थीं और मैं उनकी सहायक। फिर हम कस्तूरबा ट्रस्ट में काम करने लगे। वहाँ भी मृदुला साराभाई सचिव थीं और ठक्कर बापा अध्यक्ष थे। दरअसल मुझे मृदुला साराभाई और ठक्कर बापा ने ही प्रशिक्षित किया है। मेरे कहने का आशय यह है कि वह संस्कृति से बहुत दूर की बात थी। इसके बाद मैं इंडस्ट्रियल को-ऑपरेटिव्स से सम्बद्ध हो गई क्योंकि इसमें पंडितजी की गहरी दिलचस्पी थी। इसके बाद मेरी गहरी दिलचस्पी हाथकरघा में हो गई। इससे जुड़ने के बाद का एक बेहद दिलचस्प वाक्या है। एक बार मुझे मृदुला साराभाई सेवाग्राम लेकर गईं। मैं सेवाग्राम पहली बार जा रही थी। गाँधीजी हमारे परिवार को जानते थे। मेरी बहन हंसा मेहता ने कुछ समय पहले नमक आन्दोलन में सत्याग्रह किया था। हमारा परिवार भी जाना-माना गुजराती परिवार था। मैं गाँधीजी से मिलने गई। वे मुझे देखकर मुस्कुराये और बोले, तुमने खादी क्यों नहीं पहन रखी है। मैंने जवाब दिया, बापू हाथकरघा में मेरी गहरी दिलचस्पी है इसलिए मैं खादी नहीं पहनती। मैं हैंडलूम के ही कपड़े पहनती हूँ। गाँधीजी मुस्कुराकर बोले, तुम कम-से-कम ईमानदार तो हो। मैं जानता हूँ कि बहुत से लोग जो मुझसे मिलने आते हैं, वे सेवाग्राम के स्टेशन पर आकर खादी के कपड़े पहन लेते हैं।

दिल्ली आकर मैं इंदिराजी के गहरे सम्पर्क में आयी। मैं काफ़ी समय उन्हीं के निवास पर गुज़ारती। जब मैं इंदिराजी के साथ थी तब मैंने काफी लोगों को जानना शुरू किया। कई तरह के लोग उनसे मिलने आया करते थे। कई बार मैं उनके बीच उपस्थित रहती। कई बार नहीं रहती। उनसे मिलने आने वालों में से अनेक को मैं जानने लगी और वे मुझे। मेरी दिलचस्पी हाथकरघा, ग्रामशिल्प में रही और उनकी भी दिलचस्पी इन सारे क्षेत्रों में थी और जब वे वापस सत्ता में आयीं 1980 में, तब मैं ऑल इंडिया हैंडीक्राफ्ट बोर्ड की अध्यक्ष थी और भी कई संस्थाओं से मैं तब जुड़ी थी। उन्होंने मुझे कई चीज़ें प्रस्तावित कीं लेकिन मैं उनमें से कुछ भी स्वीकार नहीं करना चाहती थी क्योंकि मैं राजनीति में प्रवेश करना नहीं चाहती थी।

यह जानकर कि मेरी दिलचस्पी संस्कृति में है उन्होंने मुझे तब भारत-महोत्सवों का अध्यक्ष बनाया और मैं यह मानती हूँ कि इन उत्सवों का विदेशों में अद्‌भुत प्रभाव पड़ा है। जहाँ तक मुझे याद है मेरी अर्जुनसिंहजी से मुलाक़ात श्रीमती गाँधी के घर पर ही हुई थी। वे बोलीं– क्या तुम अर्जुनसिंह जी से पहले कभी मिली हो। ये उन बिरले राजनीतिज्ञों

में से हैं जिनके मन में संस्कृति के प्रति गहरा सम्मान है और जो उसकी फ़िक्र करते हैं, तुम्हें इनसे मिलना चाहिए। भारत भवन 1982 में बना और यह बात लगभग तभी की है। इंदिराजी ने मुझे उसके न्यास में भारत-शासन के प्रतिनिधि के रूप में रख दिया। तभी से मैं अर्जुनसिंहजी को जानती हूँ। मैं भोपाल जाया करती थी और उनसे मिलती भी। वे और उनकी पत्नी बहुत अच्छे मेज़बान हैं। मैं उनसे दो-तीन बार भोपाल में मिलने उनके घर पर गई।

मेरी दिलचस्पी विभिन्न स्थितियों में लोगों को सक्रिय होते देखने में रही है। मैंने बहुत-से राजनेता देखे हैं, बहुत-सी स्थितियों में उन्हें काम करते देखा है। मुझे अर्जुनसिंहजी को एक विशुद्ध सांस्कृतिक संस्था के अध्यक्ष के रूप में काम करते देखकर गहरा आश्चर्य हुआ था। वे एक ऐसी संस्था के अध्यक्ष थे जिसके न्यास में महान कलाकार और संस्कृतिकर्मी थे। मैंने कभी भी उन्हें कोई राजनीतिक मंशाएँ न्यास के माध्यम से पूरी करते हुए नहीं देखा। उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि फलाँ को समर्थन दो क्योंकि वह हमारी पार्टी का है या उसे मदद मत करो क्योंकि वह हमारी पार्टी का नहीं है। ऐसा एक भी वाक्या नहीं है जब अर्जुनसिंहजी ने ऐसा कुछ किया हो। कभी भी उन्होंने किसी भी सलाहकार समिति आदि पर दबाव डालने की कोई कोशिश नहीं की। मैं इससे बेहद प्रभावित हुई क्योंकि मैं अनेक राजनेताओं को देख चुकी थी।

मैं ज़ोर देकर कहना चाहती हूँ कि यह बात इंदिराजी में थी। उन्होंने कभी भी राजनीति को संस्कृति के क्षेत्र में दख़लअंदाजी करने की छूट नहीं दी। इसलिये 80 के दशक में संस्कृति का विस्फोट-सा हुआ। उन्होंने साहित्य, लोक और आदिवासी कलाओं आदि के क्षेत्र में तो प्रोत्साहन दिया ही लेकिन विशुद्ध संस्कृति और उसकी विविध अभिव्यक्तियों के क्षेत्र में भी उनका बड़ा गहरा प्रोत्साहन रहा है। अगर उन्हें कभी यह बताया जाता कि कोई बहुत अच्छी फिल्म बनी है तो वे उसे देखने का समय किसी भी तरह निकाल ही लेतीं, अगर विदेश से कोई महत्वपूर्ण संस्कृतिकर्मी आया है तो वे उससे मिलने का समय निकाल ही लेती थीं। मैं कहना यह चाहती हूँ कि मैंने अर्जुनसिंहजी में संस्कृति के प्रति यही लगाव और सम्मान देखा है। वे सीखने के लिये, संस्कृतिकर्मी से सीखने के लिये तैयार दिखाई देते थे। वे उन्हें सुनते है। ऐसे बहुत थोड़े-से राजनेता हैं, जो सुनते हैं। अर्जुनसिंहजी सुनते हैं। उन्होंने संस्कृतिकर्मियों के बीच शायद ही कभी कोई राजनैतिक हस्तक्षेप किया है। मुझे पक्का विश्वास है कि अर्जुनसिंहजी जैसे राजनेता के होते वह सब नहीं होता जो बाद में वहाँ हुआ। मैंने वहाँ के मुख्यमंत्री (श्री सुंदरलाल पटवा) से मुलाक़ात की तो मुझे बेहद दुःख हुआ। मेरी उनसे क़रीब आधे घंटे बात हुई। वे बोले, आपके लिये बहुत सम्मान है, इसके लिये बहुत सम्मान है लेकिन आप तो जानती हैं कि वह राजनीति है और जब तक अर्जुनसिंहजी वहाँ होंगे तो तब तक...। तो मैंने कहा, अर्जुनसिंहजी ने तो इस्तीफ़ा दे दिया है और साल भर से तो अध्यक्ष मैं हूँ। आपको अब क्या मुश्किल है। वे बोले, अब तो कोई मुश्किल नहीं है। मैंने उनसे कहा, आप हम लोगों के बीच आइए, हम लोगों से बात करिए और अपने मुँह से हम सब से कहिए कि राजनीति का संस्कृति में कोई हस्तक्षेप नहीं होगा। वे इस बात से सहमत हो गए थे। इसके कुछ दिन बाद ही मुझे पता चला कि वे लोग तो विधानसभा में एक ऐसा अधिनियम ला रहे हैं जिससे वे **भारत-भवन** का संविधान मूलभूत स्तर पर ही बदलने वाले हैं। तब मैंने कहा कि हमें इसका विरोध करना चाहिए। और तब फिर वह न्यास की बैठक हुई।

आज श्री अर्जुनसिंह भारत सरकार का संस्कृति विभाग संभाले हैं। दूसरे तमाम तथ्यों के बीच रखकर यदि उनका प्रदर्शन देखा जाए तो वह अब तक बहुत ही अच्छा रहा है। लेकिन यदि आज कोई मुझसे यह पूछे कि संस्कृति के क्षेत्र में क्या किया जाना चाहिए तो मैं एक ही सलाह दूँगी कि उसे शासन से मुक्त हो जाना चाहिए। आज वहीं उसी सरकार में एक बेहतर आदमी होगा तो सब ठीक चलेगा, कल कोई ग़लत आदमी वहाँ आ जाएगा तो फिर दिक़्क़त

पैदा होनी शुरू हो जाएगी। इसलिये संस्कृति को शासन से अपने को मुक्त कर लेना चाहिए। इसे बचाकर का सिर्फ़ एक रास्ता है कि इसे राजनीति से अलग रखा जाए।

हमारे देश में मुश्किल यह होती जा रही है कि हमारे बीच ऐसे लोग लगातार कम हो रहे हैं जिनमें अपनी बात कहने का साहस हो। मुझे इस बात को कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि अर्जुनसिंहजी ने संस्कृति के क्षेत्र में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मुझे इससे क्या फ़र्क पड़ता है कि इस बात को अमुक पसंद करे या अमुक पसंद न करे। मुझे इन सबसे क्या मतलब है। अगर मैं ऐसा मानती हूँ कि जैसा कि मैं मानती हूँ तो मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं है। राजनीति को संस्कृति से अपना संबंध इस तरह नहीं बनाना चाहिए कि वे उसे निर्देशित करने लगे। यह सच है कि संस्कृति के क्षेत्र में शासन अनुदान आदि देता है लेकिन इसके लिये भी शासन को चाहिए कि वह संस्कृति के क्षेत्र के मूर्धन्य लेखकों-कलाकारों को संगठित करे, उन्हें निर्णय लेने की स्वतंत्रता दे। इंदिराजी के समय में एक ऐसी सलाहकार समिति गठित हुई थी जिसमें बहुत से अशासकीय लोग थे, लेखक-कलाकार थे जो सलाह दिया करते थे लेकिन तब के बाद से वह समिति ख़त्म हो गई।

मैं दुनिया भर की कला दीर्घाओं में गई हूँ और मुझे पता है कि उनमें से एक में भी राष्ट्रीय प्रदर्शन जैसी कोई बात नहीं होती। हर दीर्घा में कुछ महत्वपूर्ण कलाकारों को चुनते हैं और उनकी कृतियाँ प्रदर्शित करते है। वे कभी दो कलाकार को चुनते हैं कभी तीन को और उन्हें बेहतर ढंग से प्रदर्शित करते हैं। हमारे यहाँ ऐसा होना अब तक शुरू नहीं हुआ है। हम ढेर से कलाकारों की एक-एक, दो-दो कृतियाँ लेकर उन्हें प्रदर्शित करने के चक्कर में कुछ भी नहीं कर पाते। जापान, अमरीका और इस तरह के कुछ देशों में संस्कृति को पैसा विभिन्न फाउन्डेशन, समाचार-पत्र और प्राइवेट कॉरपोरेट तक देते हैं और वे संस्कृति के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करते। कुल मिलाकर बात यही है कि अगर संस्कृति के प्रति सम्मान नहीं है तो कल राजनीति की जगह अगर हम व्यावसायिक घराने को भी ले जायें तो वे भी उसके साथ वही सलूक करेंगे जो राजनीति करती है, जो संस्कृति के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है।

मैं अपने जीवन में दो या तीन ही राजनेताओं से मिली हूँ जो संस्कृति के क्षेत्र में अपने राजनैतिक पूर्वाग्रहों को छोड़कर जा सकते हैं। मैं यह कह रही हूँ कि अर्जुनसिंहजी ठीक रास्ते पर जा रहे थे। उन्होंने एक संस्था बनायी, उसे पैसा दिया और उसे संचालित करने के लिये बड़े कलाकारों-लेखकों का एक न्यास बनाया। यह बिल्कुल ठीक रास्ता था लेकिन दुर्भाग्य से हमारे चारों ओर आख़िर ऐसे कितने राजनेता हैं। आख़िर ऐसे कितने लोग अब बाक़ी हैं जिनकी संस्कृति में, संस्कृति की ख़ातिर ही दिलचस्पी है। अब संस्कृति इतनी महत्वपूर्ण हो गई है कि अनेक राजनेता उसे अपना हथियार बनाकर नष्ट करने की चेष्टा करने में लगे हैं।

मैं अभी कुछ लोगों से गंभीरता से बात कर रही थी कि जब तक अर्जुनसिंहजी मानव संसाधन विकास मंत्री हैं हमें लेखकों-कलाकारों आदि का एक संगठन बनाना चाहिए। हम उनसे कुछ अनुदान माँगें एक ऐसी समिति बनाने के लिये जो संस्कृति को स्वायत्त रूप से संचालित करे और जब तक वे वहाँ पर हैं तब तक शायद यह करना संभव भी है। मैं जानती हूँ कि बहुत से प्रान्तों में लोग **भारत-भवन** बनाना चाहते थे। राजस्थान, उत्तर प्रदेश और अन्य बहुत से प्रदेशों में **भारत-भवन** बनाने के इच्छुक थे लेकिन अगर वह मध्यप्रदेश में बन सका तो इसलिये कि वहाँ राजनीतिक पार्टी से असहमत कई कलाकार, जो कि अपने क्षेत्र की महान विभूतियाँ हैं, काम कर सकते थे।

एक बार **भारत महोत्सव** के दौरान लगभग 55 सांसदों ने दस्तख़त करके किसी नर्तकी को कार्यक्रम दिलाने का प्रस्ताव भेजा। मैंने वह प्रस्ताव श्रीमती इंदिरा गाँधी को दिखाया। लेकिन उन्होंने इस कारण मुझ पर या सलाहकार समिति पर कोई दबाव डालने की कोशिश नहीं की। ऐसे व्यक्ति के साथ काम करना सार्थक होता है जो आपके काम की इज़्ज़त कर सके। मैं इसी कारण अर्जुनसिंहजी का बहुत सम्मान करती हूँ कि उन्होंने **भारत-भवन** में सभी महत्वपूर्ण

कलाकारों-लेखकों को अपने तरह से अपना काम करने का अवसर दिया। यही नहीं चित्रकला और लोक और आदिवासी चित्रकलाओं आदि में उनकी गहरी रुचि भी है। यही नहीं कि उन्होंने **भारत-भवन** में कोई राजनैतिक हस्तक्षेप नहीं किया बल्कि बात यह भी है कि भारत-भवन का वैसा बनना जैसा वह है, सम्भव ही नहीं था अगर वे इन सब चीज़ों में खुद गहरी दिलचस्पी नहीं लेते होते।

☐ *पुपुल जयकर— भारत की सांस्कृतिक छवि को उज्ज्वल बनाने की दिशा में सक्रिय योगदान देते हुए पूर्व प्रधानमंत्री पंडित नेहरू एवं इंदिराजी की निकटतम सहयोगी। राष्ट्रीय योजना समिति की सदस्या। भारत-भवन में भारत सरकार की मनोनीत प्रतिनिधि। गाँधीवादी विचारधारा की पोषक विदुषी।*

वे नेहरू परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं

जगदीश स्वामीनाथन
(सुप्रतिष्ठित अन्तर्राष्ट्रीय चित्रकार)

अर्जुनसिंहजी से मेरी पहली मुलाक़ात तब हुई थी, जब वे मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री थे। यह 73-74 की बात है। यह वह अवसर था जब अशोक वाजपेयी ने मध्यप्रदेश कला-साहित्य परिषद् की तरफ़ से श्री अरविन्द साहित्य पर एक परिसंवाद आयोजित किया था। मैं पहली बार गया था। अर्जुनसिंहजी से उसी गोष्ठी में थोड़ी देर के लिये मुलाक़ात हुई थी। वे सभी से सहज भाव से मिल रहे थे। उस समय उनकी सहजता ने मुझे प्रभावित किया था।

जब वे 1980 में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री हुए तब उन्होंने अखिल भारतीय स्तर पर एक सांस्कृतिक सलाहकार समिति का गठन किया। उस समिति में मैं भी था। समिति की पहली बैठक में ही उन्होंने दूसरे स्तर पर मुझे प्रभावित किया। वह स्तर था 'विचारों का खुलापन'। नये विचारों के प्रति खुलापन, घिसे-पिटे रास्ते से अलग साहसपूर्ण, उत्साहपूर्ण रवैया वे अपनाते थे। उस समय मैंने एक सुझाव दिया था कि प्रदेश के ऐसे वृद्ध कलाकार, जो शहरी या ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, उनके लिये मासिक रूप से वज़ीफ़ा तय किया जाये। शासन की वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए उन्होंने पाँच सौ रुपये मासिक वज़ीफ़ा तय कर दिया। मिठ्ठी बाई का ध्यान मुझे इसलिये आया कि अभी मुझे कुछ समय पहले उससे पता चला कि पटवा सरकार ने उसका वज़ीफ़ा बन्द कर दिया है। उनके समय में नौकरशाही की कोताही से कुछ ऐसी वैसी बात हो भी जायें, तो पाँच मिनिट भी नहीं लगता था उन्हें उसे ठीक करने में। बैठक में जो भी मुद्दे उठाये जाते थे, उसे वे बहुत ध्यान से सुनते थे। जब आधुनिक कला संग्रह की बात उठी और मैंने उसमें जीवंत लोक और आदिवासी परंपरा को शामिल करने का सुझाव दिया, तो उन्होंने उसका समर्थन किया।

मैं **भारत-भवन** में ललित कलाओं को देखता था, जब भी किसी बात की ज़रूरत होती थी, दो बार नहीं कहना पड़ता था। एक ख़ास बात की तरफ़ मैं ध्यान दिलाना चाहूँगा। सलाहकार समिति आदि की बैठक में कहीं भी, जब कोई राजनेता आता है, तो लोग खड़े हो जाते हैं। यहाँ उल्टा होता था। हम लोगों के सामने अर्जुनसिंहजी खड़े हो जाते थे। इस तरह अनायास ही वे मन जीत लेते थे। अपने सहयोगियों का कितना ध्यान रखते थे, इसका एक उदाहरण मैं देना चाहूँगा। जब मध्यप्रदेश के सुदूर गाँवों में, लोक-आदिवासी क्षेत्रों में, वहाँ की कलाओं के संग्रह के लिये मैं घूम रहा था, उस समय एक अद्भुत अनुभव मुझे हुआ। अगर मैं किसी क्षेत्र से 25 किलोमीटर दूर हूँ तो वे पता रखते थे कि मैं उस समय कहाँ हूँ? वहाँ के कलेक्टर से लगातार सम्पर्क बनाए रखते थे कि मैं वहाँ पहुँचा कि नहीं पहुँचा? जब मैं पहुँच जाता था, तो जितने दिन उस क्षेत्र में रहता था, वहाँ के कलेक्टर से पूछते रहते थे कि स्वामीनाथन को कोई तकलीफ़ तो नहीं है। इस देश में ऐसा कोई राजनेता नहीं है, कम से कम मेरे अनुभव में नहीं है, जो साहित्यकारों-कलाकारों की इतनी परवाह करता हो। जब तक वे **भारत-भवन** के अध्यक्ष रहे, तब तक हमें यह नहीं लगा कि उन्होंने अपनी बात मनवाने की कोशिश भी की हो। **भारत-भवन** के संविधान के तहत जो स्वायत्तता की बात उठायी गयी है, उसके वे संरक्षक ही नहीं थे, स्वायत्तता का जो कुछ भी अर्थ है उसकी प्रतिमूर्ति थे।

इस संदर्भ में, मैं उन्हें नेहरूजी की परंपरा में देखता हूँ।

आर्थिक और राजनैतिक परेशानियों से जूझते हुए साहित्य, कला और संगीत का सम्मान करना बड़ी बात है। और इस संदर्भ में वे बहुत ही उदार और साहसपूर्ण क़दम उठाते थे।

आज यह बहुत दुःख और सोच की बात है कि पटवाजी ने **भारत-भवन** को अपनी निजी सम्पत्ति बना लिया है। उन्होंने हमारे ऊपर, अर्जुनसिंहजी के ऊपर यह आरोप लगाया था कि हम लोगों ने, अर्जुनसिंहजी ने उसे निजी संपत्ति बना लिया है। जबकि ऐसा बिलकुल नहीं था। **भारत-भवन** तो पूरी तरह से स्वायत्त था। हाँ, पटवाजी ने ज़रूर उसकी स्वायत्तता को समाप्त कर निजी सम्पत्ति बना लिया है।

अर्जुनसिंहजी बहुत ही मितभाषी और सहिष्णु हैं। अगर तलाश की जाये कि देश के राजनेताओं में किसके पास अखिल भारतीय कला दृष्टि है और अगर कुछ लोग मिल भी जायें, तो अर्जुनसिंहजी उसमें प्रमुख होंगे।

राजीव-लोंगोवाल समझौते में सब जानते हैं कि अर्जुनसिंहजी का इसमें प्रमुख हाथ था। समझौते की सफलता पर मैंने उन्हें बधाई संदेश भेजा। तो उनका 'टेलीग्राम' आया कि यह सब तुम्हारी 'आकाश में उड़ने वाली चिड़िया' का कमाल है। इससे यह पता चलता है कि वे हर कलाकार से उसकी भाषा में ही बात करना उचित समझते हैं। आज हम बड़े ही संक्रामक काल से गुज़र रहे हैं। इस समय वे मानव संसाधन विकास मंत्री हैं। शिक्षा मंत्रालय उन्हीं के पास है। इसलिये साहित्य, कला और संगीत के विकास के लिये वे ज़रूर सोच रहे होंगे। जब तक वे हैं, एक सार्थक किस्म की संभावना तो हमें करनी ही चाहिए। ख़ासकर उस समय जब **भारत-भवन** का उदाहरण हमारे सामने हो।

उनके स्वभाव को लेकर मैं एक अंतिम बात कहना चाहता हूँ। यह उदाहरण दो राजनेताओं के स्वभाव के अंतर को स्पष्ट कर देगा। एक बार क्या हुआ, एक समय पटवाजी मुख्यमंत्री हो गए थे, वे लालकृष्ण आडवानी को **भारत-भवन** दिखाने के लिये ले आए। आमतौर पर यह होता था कि जब अर्जुनसिंहजी किसी राजनेता को **भारत-भवन** दिखाने के लिये ले आते थे, तो वे मुझसे कहते थे कि स्वामीनाथनजी, इन्हें बताइए कि ये चीज़ें कहाँ की हैं। पटवाजी ने खुद आडवानी जी को बताना शुरू किया— 'यह संग्रह जो आप देख रहे हैं, यह गढ़वा का है।' मैंने कहा— 'पटवाजी, यह गढ़वा का न होकर **भारा जाति** का है। पहली बार **भारत-भवन** में भारा जाति के काम को ढूँढ निकाला है। तो यह था दो राजनेताओं के स्वभाव का अन्तर। अर्जुनसिंहजी का कद स्वतः ही बहुत बड़ा दिखने लगता है।

किसी भी कलाकार या राजनेता को अपनी क्षमता और मर्यादा को जानना बहुत ज़रूरी है। अर्जुनसिंहजी इस अर्थ में, राजनेताओं में सबसे सक्षम उदाहरण हैं। जब तक हम **भारत-भवन** में थे और वे मुख्यमंत्री थे, हमारी राजनैतिक आज़ादी में, स्वतंत्रता में उनका कोई हस्तक्षेप नहीं था। अर्जुनसिंहजी आज भी यह समझते हैं कि आदमी अगर समझदार है, तो उसके विचार की, लियाक़त की क़द्र करना मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है।

☐ *जगदीश स्वामीनाथन— अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित भारत के शीर्षस्थ चित्रकार श्री जगदीश स्वामीनाथन भारत भवन की ललित कला इकाई के निदेशक रहे हैं। आपने अनेक कला प्रदर्शनियों, गोष्ठियों, सेमिनारों आदि का आयोजन कर भारत भवन की गरिमा को नई ऊँचाईयाँ प्रदान कीं। एक दशक पूर्व लिखा गया यह आलेख तत्कालीन परिस्थितियों का ही प्रतिबिम्ब है।*

सर्वगुण सम्पन्न अद्वितीय राजनेता

यामिनी कृष्णमूर्ति
(ख्यातिनाम नृत्यांगना)

भारत-भवन जैसी संस्था का निर्माण अपने आप में एक कीर्तिमान है। मुझे याद है कि जब इसका उद्घाटन स्व. श्रीमती इंदिरा गाँधी ने किया था तो उस समय देश भर के मशहूर कलाकार यहाँ आये थे। यह उद्घाटन इतना भव्य रहा कि उसकी स्मृति भुलाए नहीं भूलती। यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि **भारत-भवन** का निर्माण राजधानी दिल्ली जैसी जगह में न होकर मध्यप्रदेश की प्रादेशिक राजधानी भोपाल में हुआ। इसमें अर्जुनसिंहजी की भूमिका निर्माता की थी। इस निर्माण से वर्षों से उपेक्षित पड़े कलाकारों में नए उत्साह का संचार हुआ। उन्हें पुरस्कृत करके उनका और कला का गौरव बढ़ाया गया। इस क़दम से देश भर के संस्कृति कर्मियों में ख़ुशी की लहर दौड़ गई और वे दोहरी शक्ति से भारत की गौरवशाली परंपरा को और समृद्ध करने में लग गये।

भारत-भवन की स्थापना के दो-तीन वर्ष बाद का समय बहुत महत्वपूर्ण था। दूसरी गतिविधियों के अतिरिक्त इस बीच बहुमूल्य पेंटिंग्स की कई प्रदर्शनियाँ हुई। मैं तो **भारत-भवन** की न्यासी थी ही, इसलिये इन आयोजनों में मेरी भी गहरी रुचि थी और वहाँ वही लगातार हो रहा था, जिसे सारे लोग दिल से चाहते थे। निश्चित रूप से अर्जुनसिंहजी ने संस्कृति के लिये अद्वितीय काम किया है, यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं है। अर्जुनसिंहजी की इस कामयाबी में तत्कालीन संस्कृति सचिव और कवि-आलोचक श्री अशोक वाजपेयी की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण रही है। अर्जुनसिंहजी की रुचि और गहरी दिलचस्पी में श्री वाजपेयी ने अपनी निष्ठा और सक्रियता दिखाकर वास्तु, शिल्प, आदिवासी कलाओं तथा दूसरी कलाओं के विकास में दिनानुदिन बढ़ोतरी की। अर्जुनसिंहजी ने वही किया जो इंदिराजी ने चाहा बल्कि यह कहिए कि एक पूरी भारतीय परंपरा की गौरवमयी संस्कृति को उन्होंने नया जीवन दिया।

फिलहाल तो मैं बहुत नहीं जानती, पर केन्द्रीय मंत्री होने के बाद भी उन्होंने कोई अनुदान बन्द नहीं किया है, सब चला रहे हैं और ज़रूरी पड़ने पर बढ़ा भी रहे हैं।

अर्जुनसिंहजी तो मानते हैं कि मनुष्य और समाज के विकास में संस्कृति सबसे मुख्य तत्व है। वे बहुत नेक और नम्र आदमी हैं। वे प्रकृति से ही ऐसे हैं कि लोगों की मदद के लिये उनमें हमेशा उत्सुकता रहती है। उन्होंने अपनी इसी प्रकृति से संस्कृति का विस्तार किया है। उन्होंने जनता को विश्वास में लेकर उनकी संस्कृति और उनकी बुनियादी अमानत को बढ़ावा दिया है। यह एक राजनेता के लिये बहुत बड़ी बात है। आज कोई ऐसा राजनेता दिखाई नहीं देता जिसमें ये सारे गुण मौज़ूद हों।

उन्होंने हर कला को बढ़ावा दिया है। नृत्य, संगीत और नाटक सबको। सबमें उनकी गहरी रुचि रही है और इसीलिए सबके विकास में वे सदा प्रयत्नशील रहे हैं। वे नेता भी हैं तो अच्छे गुणों के। वे सबसे मधुर संबंध बनाए रखने के कायल हैं। जनता का व्यापक समर्थन भी उनके साथ रहा है। वे समर्पित नेता और मंत्री रहे हैं और आज भी हैं। वे शांत स्वभाव और विवेकपूर्ण व्यवहार की प्रतिमूर्ति है। चाहे मसला कितना ही पेचीदा और जटिल क्यों न

हो वे व्यक्तिगत पहलक़दमी से उसे हल करते रहे हैं।

भारत-भवन की न्यासी होने के बाद मुझे उनसे बात करने का सुअवसर मिला था। मैंने बातचीत करने और मिलने के बाद पाया कि वे गंभीरता से सबकी बात सुनते हैं और तब काफ़ी सोच-समझ के बाद उस पर निर्णय देते हैं। उनका सान्निध्य बड़ा सुखद रहा। इतने वर्षों में कभी भी ऐसा अवसर नहीं आया जब उनका व्यवहार कठोर हो गया हो या साहित्य, कला और संस्कृति से उनकी सोच विरत हुई हो।

अभी उनसे ढेर सारी उम्मीदें हैं। अभी तो वे साल भर से ही केन्द्रीय मंत्री हैं। आगे वे बहुत कुछ करेंगे, न केवल मध्यप्रदेश बल्कि पूरे देश के लिए। कला, संस्कृति और साहित्य के लिये उनकी उपस्थिति एक सुखद अहसास है। सच मानिए, जब वे मानव-संसाधन विकास मंत्री बनाए गए तो हमें बड़ी ख़ुशी हुई। ख़ुशी इसलिये अधिक हुई कि वे साहित्य, कला और संस्कृति की गहरी समझ रखते हैं और कलाकारों की इज़्ज़त करना जानते हैं। उनसे मैं व्यक्तिगत उम्मीद करती हूँ कि उनसे अभी बहुत कुछ होना बाक़ी है। अभी क्या कहा जाये, अभी तो उन्हें राजनीतिक झंझटों से फ़ुर्सत ही नहीं मिली है, फ़ुर्सत मिलती है तो वे ज़रूर कर दिखाएँगे। लेकिन जो कर दिया है उन्होंने, वही उनको अमर करने के लिये बहुत है।

कहने को तो बहुत जी करता है पर शब्द पकड़ में नहीं आ रहे। इसीलिए इस कथन में निरंतरता नहीं आ पाई है। पिछली बातों में कुछ और जोड़ रही हूँ—मुझे बैठकों के समय उनकी भीतरी गहराई का पता चला। वे बहुत गहरे चरित्र के व्यक्ति हैं। वे सबकी भलाई चाहते हैं जो उनके महान व्यक्तित्व का लक्षण है। दूसरों का कष्ट देखकर द्रवित हो जाना और तत्काल उनकी मदद करना आज किसे आता है? यह अर्जुनसिंहजी के पास ही है। कहने को आज बहुत सारे राष्ट्रीय राजनेता हैं पर उनका सानी कोई नहीं है। एक ऐसा नेता, जिसका हर पक्ष शुद्ध भारतीय हो—अर्जुनजी के अलावा कोई नहीं है। मध्यप्रदेश का थोड़े ही समय के कार्यकाल में विकास देख आइए, पंजाब समस्या का सूत्र किसने दिया, काँग्रेस की उच्च कमान को किसने सही रास्ता दिया जिससे लोग डर गए! अर्जुनसिंह ने! और क्या कहें, संक्षेप में सब आ गया।

अब उनसे आशा और उम्मीद की बात। उन्हें अब सांस्कृतिक प्रतिष्ठानों से ध्यान हटाकर कलाकारों की बिगड़ती दशा पर ध्यान देना चाहिए। इसे गंभीरता से लिया जाना चाहिए। यह काम उन्हें करना है। हम उनसे यह उम्मीद करते है। अस्तित्व और पहचान के लिये यह संघर्ष उनका भी है, हमारा भी और हमारे प्यारे भारत का भी।

☐ *यामिनी कृष्णमूर्ति — भारत ही नहीं, अमरीका, कनाडा, यूरोप, सोवियत संघ, आस्ट्रेलिया, आदि अनेक देशों में क्लासिकल डांस के लिये जानी पहचानी जाने वाली श्रेष्ठ नृत्यांगना यामिनी कृष्णमूर्ति भारत के सांस्कृतिक मंच पर स्थापित महान् कलाकार हैं। आप भारत भवन न्यास की सदस्य रही हैं।*

एक जौहरी जो जवाहर है

शानी
(सुप्रतिष्ठित लेखक)

अर्जुनसिंहजी के नाम से मैं 35 वर्षों से परिचित हूँ। यह परिचय उस समय का है जब मैं भोपाल में नहीं था। उन दिनों अर्जुनजी पंडित द्वारिका प्रसाद मिश्र की सरकार में कृषि राज्यमंत्री थे। उन दिनों मंत्रियों और राजनेताओं के लिए धोती-कुर्ता और गाँधी टोपी पहनने का रिवाज़ था, पर अर्जुनसिंहजी नौजवान थे और सूरत तथा तेवर में सबसे अलग। वे उस जमाने में भी पैन्ट-बुशर्ट ही पहनते थे।

अर्जुनसिंह लिबास और तेवर में सबसे अलग होकर मंत्री नहीं लगते थे वरन् ऐसा महसूस होता था कि वे कोई नौकरशाह या राजकुमार हों। तब मैं राजनेताओं को जानता नहीं था और यह भी नहीं कि नेताओं से रूबरू होना पड़ेगा। लेकिन ज़िंदगी ने मार-पीटकर वहाँ पहुँचा दिया जहाँ मुझे दो-चार होना ही पड़ा। यह बात बहुत दिनों पहले की है जब मैं भोपाल में आया और मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् का सचिव बना। तब मुझे उनको जानने का, रूबरू होने का और साथ-साथ काम करने का (भले ही थोड़े समय के लिये) मौक़ा मिला। तब वे शिक्षामंत्री थे। आज सामने वे हैं यह अहसास पाकर दूरी नहीं रहती।

आप जब भी किसी मंत्री या राजनेता से बात करते हैं, अगर आपके पास मर्दुमशिनाख़्त नज़र है तो आप जानते हैं कि सामने वाला सत्ता के भारीपन के अलावा कितना भारी है, चुनांचे एक ख़ास तरह की दूरी बराबर रहती है। ऐसे भी आप अगर थोड़े से संवेदनशील हों तो यह पहचानने में बहुत देर नहीं लगती कि जिससे आप रूबरू हो रहे हों वह राजनेता है या काजनेता। जब भी उनसे मैंने मुलाक़ात करना चाहा, मिला, कोई दिक्क़त नहीं हुई। उनसे मिलकर लगा कि वे काज-नेता पहले हैं राजनेता बाद में। उनमें मैंने राजनीतिक रूप भी देखा जिसमें एक राजपुरुष के संस्कार थे। एक सामान्य पुरुष के संस्कार थे। एक सामान्य पुरुष के संस्कार के साथ-साथ जो उन्हें घुट्टी में मिले हैं और ये मैं समझता हूँ, पिछले वर्षों में इसमें उनका राजनीतिक रूप बाधक नहीं बना बल्कि साधक बना। कोई भी समस्या हो—साहित्यिक (मैं मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् का सचिव था और वे अध्यक्ष) राजनीतिक या कोई और, मैंने देखा कि राजपुरुष जैसी फ़राख़दिली (उदारता) के साथ समस्याओं की तह में जाने की वे कोशिश करते थे।

अब जो मैं ख़ास तौर पर अर्जुनसिंहजी के बारे में कहने जा रहा हूँ वो ये हैं कि आमतौर पर राजनेता मिठबोला और बड़बोला होता है। अर्जुनसिंहजी इसके बरक़्स हैं। वे मिठबोले हैं और शब्दों की मितव्ययिता से काम लेते हैं, न सिर्फ़ अपना बल्कि दूसरों से भी और शायद यही कारण है कि उनकी छवि धीरे-धीरे सारे राजनेताओं से अलग हटते-हटते आज सबसे उज्ज्वल और बड़ी हो गई है। यह सब स्वभावतः बना है और आज यह स्थिति आ पड़ी है कि उनको चुनौती देना आसान नहीं रह गया है।

जब वे मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री थे तब मैं जब भी उनके पास लेखकों की समस्याओं को लेकर मिलने गया,

उन्होंने मिलने में कभी कोई कोताही नहीं की बल्कि वे वक़्त के इतने पाबंद थे कि अगर 5 बजे मिलने को कहते थे तो 5 बजकर 1 मिनट भी नहीं होने देते थे। इसका एक उदाहरण दूँ। उर्दू के एक कवि, जो बहुत, अभावग्रस्त ही नहीं, बल्कि बहुत वृद्ध होकर लाचार-सी स्थिति में रह रहे थे। उन्हें आर्थिक सहायता दिलवानी थी। जब मैंने उनके सामने यह प्रस्ताव रखा तो न केवल उन्होंने पल भर में वह प्रस्ताव माना बल्कि यह पहल ख़ुद भी की कि जहाँ कहीं भी ऐसे शायर रहते हों, वे व्यक्तिगत रूप से उनसे मिलना चाहेंगे। यह आर्थिक सहायता वे किसी जिलाधीश से भिजवा सकते थे जो आमतौर पर होता है। लेकिन उन्होंने व्यक्तिगत रुचि लेकर बड़प्पन का परिचय दिया था। उन्होंने अगले दिन पाँच बजे का समय रखा और कहा कि आप आ जाइएगा, चले चलेंगे। मुझे किसी कारणवश केवल दो मिनट की देर हो गई। जब मैं पहुँचा तो उनकी पत्नी श्रीमती सरोजजी मिलीं और कहा कि आपने तो देर कर दी, वे तो आपका इंतज़ार कर रहे हैं। ज़ाहिर है कि दो मिनट की देरी के लिये शर्मिन्दा था लेकिन उन्होंने उसे मुस्कुराकर टाल दिया। मेरी दृष्टि में ये बहुत महत्वपूर्ण मानवीय पक्ष है जो आमतौर पर राजनेताओं के चरित्र में नहीं होता। मुझे व्यक्तिगत रूप से उनसे बौद्धिक चर्चा करने का या उनकी प्रखर मेधा को वैयक्तिक रूप से जाँचने-परखने का सुअवसर तो मिला ही पर उनसे अलग उनके भाषणों और उनके व्यक्तिगत आचरणों में लेखकों-कलाकारों के लिये सम्मान भावना नज़र आई।

इसी तरह लेखकों-कलाकारों के सम्मान के लिये, उनके अभिनंदन के लिये या उनसे संबंधित किसी भी कार्यक्रम के लिये उन्होंने वक़्त देने में कभी कोई कोताही नहीं की। जब भी और जहाँ भी जाने का प्रस्ताव उनके सामने रखा गया, चाहे वह रायगढ़ जैसी दूर की जगह, जहाँ मुकुटधर पाण्डेय का होना था या रायपुर जैसी जगह में आयोजित **कबीर समारोह**। वे हमेशा पहुँचते रहे और न केवल वे पहुँचे बल्कि अपनी उपस्थिति को हर दृष्टि से न्यायसंगत भी बना दिया। वे तौलकर बोलते थे लेकिन हर बोल का मोल अच्छी तरह जानते थे क्योंकि वे जानते थे कि शब्द किसी भी कला का आदि ही नहीं, उसका अंत भी है। रायपुर में आयोजित कबीर समारोह के दौरान जहाँ भारत के कुछ चुने हुए हिन्दी के विद्वान और कबीर के विशेषज्ञ मौज़ूद थे, उन्होंने कबीर को न केवल उनके समय में बल्कि आज के संदर्भों में भी जिस तरह व्याख्यायित किया, वह कबीर साहित्य का या साहित्य में गहरी दृष्टि रखने वाला व्यक्ति ही कर सकता था। इसका श्रोताओं पर ही नहीं, विद्वानों पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। अजीब दिलचस्प बात यह है कि समारोह के समापन के बाद कुछ मित्र लेखकों में से, जिनमें कुछ विद्वान भी थे, भौचक्के स्वर में मुझसे कह बैठे– 'भई, तुम्हारा ये शिक्षामंत्री तो मंत्री ही नहीं लगता।' मैंने कौतूहलवश और यों ही पूछ लिया– 'कैसे'? जवाब मिला– 'न तो लिबास से, न मिज़ाज से और न अदबो-आदाब से।' उस समारोह में अर्जुनसिंहजी ने कबीर के क्रांतिकारी चरित्र को, धर्मनिरपेक्ष चरित्र को बहुत गंभीरता से सामने रखा था जो आज भी प्रासंगिक है।

उनकी बौद्धिक प्रखरता का एक और प्रमाण जो मेरे स्वयं देखने में आया था वह मेरे लिये भूलने की चीज़ नहीं है। तब तत्कालीन काँग्रेस शासन में श्री प्रकाशचन्द्र सेठी मुख्यमंत्री थे। इसी समय **मध्यप्रदेश कला परिषद्** के कार्यक्रम को लेकर एक भयंकर वितंडावाद आरंभ हो गया था, जहाँ तक मुझे याद हैं, यह राजनीति प्रेरित था और लगभग 70-75 विधायकों ने एक ज्ञापन श्री सेठी को दिया था ताकि वे इसमें हस्तक्षेप कर सकें। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस पर अर्जुनसिंहजी ने स्वयं अपने ही हाथ से लगभग 14-15 पृष्ठों की अंग्रेज़ी में जो टिप्पणी दी थी वह अपने आप में एक स्वतंत्र और महत्वपूर्ण ऐसा निबंध हो सकता है जिसमें उन्होंने कला की स्वायत्तता और सत्ता या शासन की भागीदारी की हदों या सरहदों की अद्‌भुत व्याख्या की थी। यह दस्तावेज़ आज भी मध्यप्रदेश शासन में मौज़ूद हैं।

अपने मुख्यमंत्रित्व काल में उन्होंने **भारत-भवन** के स्वप्न को अशोक वाजपेयी, जगदीश स्वामीनाथन, ब.व. कारंत आदि लेखकों-कलाकारों के सहयोग से जो मूर्त रूप दिया उसके बारे में मेरी टिप्पणी इसलिये कोई अर्थ नहीं रखती कि वह जगज़ाहिर है। यह अर्जुनसिंहजी का ही मुख्यमंत्रित्व काल था, जब **भारत-भवन** का उद्घाटन करने के लिये देश की तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गाँधी स्वयं पहुँची थीं यह उन्हीं का उत्साहवर्द्धन एवं सहयोग था कि **भारत-भवन** ने न केवल देश में बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कीर्ति अर्जित की।

कोई भी राजनेता, चाहे जितना स्वप्नदर्शी हो मगर अपने स्वप्नों को साकार करने के लिये सही और संवेदनशील लोगों को लेकर अपने साथ नहीं चलता तो कोई सपना कभी साकार नहीं हो सकता। लिहाज़ा यह संयोग नहीं है कि उन्होंने अगर अपने साथ चलने के लिये जिन प्रशासनिक अधिकारियों का चुनाव किया, वे सामान्य प्रशासनिक अधिकारी ही नहीं थे बल्कि संवेदनशील कवि और राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त साहित्यकार भी थे।

मैं जो ख़ास तौर पर कहना चाहूँगा वो ये कि इधर चूँकि आप साहित्य के विद्यार्थी और पाठक भी हैं जो अच्छी तरह जानते हैं कि समाज में सांप्रदायिकता और उसका प्रतिरोध मेरे लेखन की चिंता या केन्द्रीय विषय रहा है। आज ही से नहीं बल्कि तीस वर्षों से, जो हिन्दी के पाठक बख़ूबी जानते हैं। आज जबकि साम्प्रदायिकता का ज़हर दूर-दूर तक और हर जाति की जड़ों तक पहुँचने लगा है। साम्प्रदायिक विरोध को बाक़ायदा जुझारू रूप दिया जाना चाहिए। जो मैंने उनके एक लेख में पिछले दिनों पढ़ा था और वे इस दिशा में काम भी करते रहे हैं और कर रहे हैं। मुझे एक साधारण नागरिक और लेखक की तरह यह देखकर बहुत तसल्ली होती है कि वे नेहरूजी जैसे इतिहासवेत्ता और कवि भले न हों, लेकिन उनके पास नेहरूजी और लोहियाजी की इतिहासदृष्टि मौज़ूद हैं और जिस राजनेता के पास भी यह दृष्टि होगी वह समस्या को सत्ता के लिये उलझाएगा नहीं बल्कि सुलझाएगा। मैं एक लेखक की तरह एक ऐसे समय में जबकि साहित्य दिन-ब-दिन हाशिए में पड़ता जा रहा हो बहुत आशावान हूँ और उम्मीद लगाए हूँ कि आने वाले दिनों के हालात शायद आज से बेहतर हों। वरना आपको बताने की ज़रूरत नहीं है कि हालात कितने ख़राब हो गए हैं।

अर्जुनसिंहजी संयमी और हर स्तर पर दृढ़ व्यक्ति रहे हैं। उन्हें कोई भी समस्या कभी विचलित नहीं कर पायी है। इसी प्रसंग में कुछ बातें और...

जब वे विरोधी पक्ष के नेता थे तो भी उनसे अक्सर फोन पर बातचीत सीधे होती थी और एकाध बार उनके बंगले पर भी जाने का मौक़ा मिला था। मैं उनकी व्यक्तिगत लायब्रेरी (इंतज़ार के दौरान) में यह देखकर हतप्रभ रह गया था कि जो पुस्तक अभी बाज़ार में उपलब्ध नहीं थी, वो नई से नई पुस्तकें भी उनके यहाँ थीं। जैसे उसी जमाने में एक नई-नई चर्चित और विवादास्पद **फ्यूचर शॉक** या एलेक्स हेले का **रूट्स**। ये दोनों क़िताबें मैंने उदाहरण स्वरूप रखीं। इससे मुझे उनका वह बौद्धिक पक्ष दिखाई दिया जिससे वे हमेशा अपने आप को लैस रखते थे। यह मैंने भोपाल में देखा और दिल्ली आने के बाद नवभारत टाइम्स में रविवार्ता का संपादक था—तब भी। मैंने उन्हें हमेशा एक रूप में एक-सा देखा और पाया।

बेशक, अर्जुनसिंहजी उन विरले व्यक्तियों में हैं जो भले हार जायें मगर जिनकी बाज़ी कभी मात नहीं होती। आज तो हर ओर से अंधेरा ही दिखाई देता है। सारे नैतिक और जीवन मूल्य नष्ट हो रहे हैं। लोगों पर एक-दूसरे की हत्या और विद्वेष का भूत सवार है। ऐसे समय में जीना दूभर हो गया है। अर्जुनसिंहजी हमारे बीच में हैं, यही

भरोसा है कि आने वाला समय ऐसा नहीं रहेगा बकौल फ़ैज—

जौहरी बंद किए जाते हैं बाज़ार-ए-सुखन
हम किसे बेचने अलमा-सो-ग़ोहर जाएँगे।

□ *शानी—* *पूर्व सचिव, शासन साहित्य परिषद् (अब मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी), 'साक्षात्कार' के संस्थापक सम्पादक; साहित्य अकादमी, नई दिल्ली की पत्रिका 'समकालीन हिन्दी साहित्य' के पूर्व सम्पादक। हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित कथाकार, उपन्यासकार श्री शानी आज हमारे बीच नहीं है। परलोकवासी होने से कुछ सप्ताह पूर्व ही आपने यह आलेख देकर इस प्रयास की सराहना करते हुए उलाहना भी दिया था— इतनी देर क्यों कर दी। शानी के साहित्य में आदिवासी अंचल की माटी की गंध मन को मोह लेने वाली है।*

कला मर्मज्ञ राजपुरुष

सीताकांत महापात्र
(उड़िया कवि)

अर्जुनसिंहजी से मेरी भेंट 1983 में हुई जब वे **भारत-भवन** के उद्घाटन में इंदिरा जी के साथ थे। इसके पहले उनसे हल्की देखा-देखी भारत-भवन न्यास के समय हुई थी। यह वह समय था जब 'ऑनर्स ऑफ इंडियन पोयटरी' नामक संस्था बनाई गई थी जिसमें मैं सलाहकार था। इसकी बैठकों में मैं अर्जुनसिंह जी से काफ़ी प्रभावित हुआ। मैं **भारत-भवन** के **वागर्थ** का भी सलाहकार रहा जिसमें मेरा काम उड़िया की प्राचीन और आधुनिक कविता पर सलाह देना था। इसमें उड़िया **महाभारत, भागवत** और आज की कविता का क्षेत्र शामिल था। इसमें क्षेत्रीय भाषाओं के बहुत से कवि बुलाए गये थे। इस अवसर पर मैं अर्जुन जी के साथ रहा और पाया कि वे कला के आदमी हैं, उनमें सबके प्रति आदर का भाव है।

उनसे मैं इस बात के लिए भी प्रभावित हुआ कि लोगों को जानने और समझने का भाव उनमें ख़ूब था। इतना बड़ा व्यक्ति और सामान्य व्यक्तियों के प्रति इतनी कृतज्ञता तो मैंने कहीं देखी ही नहीं। हालांकि **वागर्थ** और कई दूसरे सम्मेलनों में मैं जा नहीं पाया, फिर भी वहाँ कई अवसरों पर गया और उनसे सम्पर्क में रहा। मेरे ख्याल से पूरे भारत में **वागर्थ** अपने स्तर का पहला समारोह था जिसमें समूची भारतीय कविता एक मंच पर आई और दुनिया भर की मुख्य भाषा की कविता से जुड़ी। इस आयोजन के पीछे अर्जुनसिंहजी की ही समझ थी जो पूर्णतया सफल हुई। मुझे याद है कि इंदिराजी ने कहा था– 'भोपाल भारत का सांस्कृतिक केन्द्र बनेगा' और वह बना इसमें अर्जुनसिंहजी की व्यक्तिगत दिलचस्पी और लगन ही काम आई। उनके पास व्यक्ति को पहचानने की अद्भुत क्षमता रही है। इसका प्रमाण **भारत-भवन** न्यास से लेकर **रूपंकर** तक की शृंखला देखी जा सकती है। अर्जुनसिंहजी ने विश्वविख्यात चित्रकार जे. स्वामीनाथन को यह काम सौंपा था। मेरी समझ की सीमा यह है कि मैं कई कलाकारों की अंदरूनी स्थिति नहीं समझ पाया। बेशक, आदिवासी कलाओं को मैं समझता हूँ और इसमें ख़ूब विकास हुआ। **भारत-भवन** के विभिन्न निकायों में भारत के लोग शिखर लग रहे हैं और यह चयन अर्जुनसिंहजी की समझ का ही परिणाम रहा है। सलाहकार समितियों में तो इतने अच्छे लोग रहे हैं कि आश्चर्य होता है, ऐसा कैसे हो पाया।

मेरी जितनी जानकारी है उसमें मुझे लगता है बाद में अर्जुनसिंहजी व्यस्त होते गए। लेकिन पढ़ना और लोगों से मिलना जारी रहा। वे राजनीतिक व्यक्ति हैं। व्यस्तता तो रहती ही है। वे इसके बावज़ूद, जहाँ तक हो पाया लगातार काम करते रहे हैं।

वागर्थ में और फिर संस्कृति मंत्रालय में उनके साथ काम करता रहा हूँ और वे हमेशा मुझे प्रभावित करते रहे हैं। जनता से लेकर साहित्यकारों तक समान राग आज किसे आता है। अर्जुनसिंहजी एक उदाहरण रहे हैं। संस्कृति मंत्रालय में मैं डेढ़ साल तक रहा। मंत्री का काम उसे बढ़ावा देना होता है सृष्टि करना नहीं। वह विकास में मदद करता है। संस्कृति विभाग के माध्यम से अर्जुनसिंहजी ने ऐसा किया है। सांस्कृतिक संस्थाओं को विकास के अवसर देना और

उनकी स्वतंत्रता बहाल रखना, वे हमेशा चाहते रहे और और ऐसा ही किए भी हैं। संस्कृति तो अपने आप में ही एक व्यापक नाम है। जो संस्कृति को विकसित करना चाहते हैं उन्हें तो पहले संस्कृति से जीवन जोड़कर चलना होता है। अर्जुनसिंहजी ने यही संदेश दिया है और इसी सूत्र पर लोगों की सहमति से व्यापक काम अंजाम दिये। अर्जुनसिंहजी दूसरे राजनीतिज्ञों से बहुत भिन्न हैं। वे सहज, मृदुभाषी, सच्चे इन्सान और सबको सम्मान देने वाले जनप्रिय नेता हैं। कहना न होगा कि इस स्तर पर वे देश भर में अकेले ठहरते हैं। अंतर्विरोध तो हर आदमी में होता है, इससे कौन बच पाता है। फिर भी बड़े लोगों में तो यह स्वाभाविक रूप से होता है। नासमझ लोगों में भी अंतर्विरोध देखे जाते हैं। अर्जुनजी के बारे में कुछ लोग ऐसी धारणा रखते हैं, पर मैं इससे बहुत सहमत नहीं रहा हूँ।

अर्जुनसिंहजी ने संस्कृति और साहित्य के लिये बहुत कुछ किया है और यह भारत का सौभाग्य है कि उन जैसा नेता आज उसके बीच है। **भारत-भवन** के माध्यम से उन्होंने न केवल भारतीय प्रादेशिक संस्कृति और साहित्य को एक मंच पर लाकर उसे आगे बढ़ने का रास्ता दिया बल्कि समूची विश्व कविता और कला को उसके सामने रखा और प्रतियोगिता करने की चुनौती भी दी। मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री के रूप में भी उनका योगदान अमूल्य है। पंजाब के राज्यपाल, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री, कांग्रेस के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष आदि के पदों पर रहते हुए उनकी क्षमता और योगदान को कौन भूला सकता है।

अब वे केन्द्र में आए हैं और वह सब करेंगे जो उनके लिए संभव है, इसमें संदेह नहीं है। वे जो करते हैं उस पर विवाद होता है, यह कहा जाता है। पर जो कुछ करेगा ही नहीं, उस पर क्या विवाद होगा। अर्जुनसिंहजी के बारे में बहुत कुछ कहना शेष रह गया है पर अब शब्द नहीं आ रहे हैं।

☐ *सीताकांत महापात्र— उड़िया कवि श्री सीताकांत महापात्र उड़ीसा के सर्वाधिक सम्मानित कवि साहित्यकार हैं। आप* ***भारत-भवन*** *की इकाई वागर्थ के सलाहकार रहे हैं। क्षेत्रीय भाषाओं, साहित्य, कलाओं के विकास में किये गये महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उपलब्धियों में श्री सीताकांत महापात्र का अप्रतिम योगदान है।*

Institution Maker

U.R. Ananthamurthy
(Kannad Writer)
Chairman : Sahitya Academy

There was a time for many of us Indian writers when **Bharat-Bhavan** of Bhopal was the capital of Indian culture. Ideally, every capital in the States of India could have become such places of integration but only Bhopal became such a place. Our man for such a meeting of minds from all over India was Ashok Vajpeyi. No other bureaucrat has been able to create such an institution. We all knew that the man behind him who made such an institution possible was Shri Arjun Singh. I met him a few times in Bhopal when he was Chief Minister and I never got a feeling that he considered himself a man apart from us. There was absolutely no political interference in the activities of **Bharat-Bhavan**. Genuine artists are of an independent mind and they have a streak of anarchist tendencies without which they can never be truly creative. **Bharat-Bhavan** was in that sense both a retreat and a forum for creative people. Such autonomy for an institution is rarely achieved in actuality in our country, and a great democracy like ours needs such institutions so that diversities of talents can be nurtured. State intervention of whatever ideological instance, whether of the right or of the left, can kill creativity by imposing a pre-determined uniformity. In this sense Shri Arjun Singh is one of the few in our country who helped to build a great instituion. All of us writers and artists hope that as Minister in the centre in charge of education and culture, he will set a new tradition of such autonomous institutions which cannot be destroyed.

☐ *यू.आर. अनन्तमूर्ति— साहित्य अकादमी के अध्यक्ष रह चुके श्री यू.आर. अनन्तमूर्ति कन्नड़ के महान् साहित्यकार हैं। श्री अर्जुनसिंह जब पहली बार केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री बने थे उस समय आपने यह आलेख प्रकाशनार्थ प्रेषित कर श्री अर्जुनसिंह के साहित्यानुरागी व्यक्तित्व के विषय में अपने विचार लिखे थे।*

कलाकारों की स्वतंत्रता के पक्षधर

पद्मभूषण हबीब तनवीर
(सुप्रतिष्ठित रंगकर्मी)

अर्जुनसिंह जी को मैं 1973 से जानता हूँ जब वे मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री थे। शिक्षामंत्री के रूप में उन्होंने संस्कृति को आगे बढ़ाने का बड़ा काम किया। उस समय मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री जनाब प्रकाशचन्द्र सेठी थे। मुझे याद है कि उसी समय मैंने रायपुर में लोक-उत्सव आयोजित किया था। उस उत्सव में अर्जुनसिंहजी मुख्यमंत्री को लेकर आये थे। शिक्षामंत्री की हैसियत से उनका अदब, तहज़ीब और फ़न के सोबे में किया गया काम कभी भुलाया न जा सकेगा।

उनके मुख्यमंत्रित्व काल में **भारत-भवन** की तामीर और उसके जरिए बुनियादी तहज़ीब का इजाफ़ा कौन भूल सकता है। उन्होंने वहाँ सबकी आज़ादी का ख्याल रखा। **भारत-भवन** में ट्रस्टी रहे लोग और दूसरे कलाकार उस ज़माने में जितनी स्वतंत्रता प्राप्त कर सके, वह अब असंभव है। वे **भारत-भवन** के अध्यक्ष तो थे पर अपनी ओर से उन्होंने कुछ भी नहीं थोपा। वे हर सभा में जाते रहे— ज़्यादातर सुनते रहे, बोलते बहुत कम। वे कलाकारों को बोलने देते थे। यह मिसाल है।

मैं उनकी तमाम व्यस्तताओं के बावज़ूद उनसे मिला और वे मुस्कुराते हुए मिले। मेरे निर्देशित नाटकों और अन्य नाटकों में उन्हें पूरे समय तक बैठे हुए देखा। रंगमण्डल और दूसरी मण्डलियों के नाटकों में भी उन्हें पूरे समय तक देखा गया। यह संस्कृति में उनकी गहरी रुचि का प्रमाण है और एक मुख्यमंत्री के लिये यह बहुत बड़ी बात हो जाती है।

मैं अर्जुनसिंहजी और उनकी पत्नी को व्यक्तिगत तौर पर जानता हूँ। वे सबसे सहज होकर मिलते हैं उनसे कोई भी मिल ले, प्रतिबंध नहीं पाया हमने। वे कम बोलने के आदी हैं, गंभीर बोलते हैं। मृदुभाषिता के कारण मैं उनसे गहरे स्तर पर प्रभावित रहा हूँ।

दिल्ली में चूँकि वे नए आए हैं इसलिये अभी अंदाजा लगाना मुश्किल है कि क्या होगा। फिर भी, उनके पुराने काम को देखकर यह सहज़ उम्मीद बनती है कि वे कुछ करेंगे। बतौर बोर्ड के सदस्य, मैं देख रहा हूँ कि नयी-नयी योजनाएँ आ रही हैं जिनसे संस्कृति के विकास का रास्ता साफ़ हो रहा है। कुल मिलाकर अर्जुनसिंहजी ने बहुत काम किया है और अभी बहुत कुछ करेंगे। अच्छे व्यक्ति हैं, विद्वान राजनेता हैं, उनसे तो हम संस्कृतिकर्मियों सहित पूरे देश की जनता को अभी बहुत उम्मीदें हैं। ऐसे लोग अब कहाँ हैं जिनसे उनकी तुलना की जाये।

☐ *हबीब तनवीर— भारतीय नाट्य मंच के कलाकार, लेखक, निदेशक श्री हबीब तनवीर रंगमंच की दुनिया में अत्यंत प्रतिष्ठित कलाकार हैं। आपने श्री अर्जुनसिंह को निकट से देखा-परखा और सच्चा कलाप्रेमी पाया है। आप आज भी रंगमंच से सक्रियता से जुड़े हुए हैं।*

स्वस्थ सम्पन्न रहते हुए सबका भला करें

बिरजू महाराज
(विश्वप्रसिद्ध कथक नृत्यकार)

अर्जुनसिंहजी पहले कलाकार हैं, बाद में राजनीतिज्ञ। यह बात औरों को अच्छी नहीं लग सकती लेकिन मैं तो यही मानता हूँ। कला, साहित्य, संस्कृति के लिये इतनी गहरी सोच और इतनी तत्परता तो कोई कलाकार भी नहीं रखता फिर अर्जुनजी तो इतने बड़े राजनेता हैं। अपनी राजनीतिक व्यस्तताओं में से व्यक्तिगत अवकाश निकालकर वे अपना समय कलाकारों को देते रहे हैं। प्रत्येक कलाकार प्रत्येक कला के लिये आर्थिक सहायता से लेकर हरसंभव सहायता करना उनके स्वभाव में शामिल रहा है। चाहे वे विधायक रहे हों, शिक्षामंत्री, मुख्यमंत्री, राज्यपाल, काँग्रेस के उपाध्यक्ष और या फिर केन्द्रीय मंत्री। अर्जुनजी का दरबार सबके लिये खुला है।

अपनी मृदुभाषिता, सद्व्यवहार और सबके प्रति आत्मीयता बरतने के कारण ही उन पर कई विवाद भी हुए। मध्यप्रदेश जैसे अत्यंत पिछड़े प्रदेश को किसी ने अगर राष्ट्रीय गरिमा दिलायी है तो वे अर्जुनसिंहजी ही हैं।

सुनने में आता है कि अर्जुनजी जब पहले-पहल नेता हुए उस समय गाँधी टोपी व धोती-कुर्ता का रिवाज़ था। लेकिन अर्जुनजी ऐसे नेता नहीं थे जो पारंपरिकता के मोह में आधुनिकता का तेवर छोड़ते। उस ज़माने में सैकड़ों टोपियों के बीच पैंट-शर्ट पहने वह कल के भारत का जननायक दूर से ही पहचान में आ जाता था। शिक्षामंत्री के रूप में अर्जुनसिंहजी ने मध्यप्रदेश में बहुत काम किए। मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि कुछ वर्षों के शिक्षा मंत्रित्व में अर्जुनसिंहजी ने कला और संस्कृति के लिये जितना काम किया उतना अन्य किसी ने नहीं किया। आश्चर्य होता है कि मध्यप्रदेश का यह शिक्षामंत्री नाटक या नृत्य देखने की पहली पंक्ति में मौज़ूद होता था। साहित्य की बड़ी से बड़ी सभाओं में जहाँ बड़े-बड़े विद्वान अपनी ही जटिलताओं में फंसते चले जाते थे, वहाँ मध्यप्रदेश का यह मंत्री उनकी गुत्थियाँ सुलझा देता और साहित्य के उद्भट मन ही मन अर्जुनसिंहजी का लोहा मान लेते।

जब वे मुख्यमंत्री हुए तो **भारत-भवन** जैसी राष्ट्रीय संस्था बनी और जिसके माध्यम से नृत्य से लेकर संगीत, साहित्य और दूसरी कलाओं का काफ़ी विकास हुआ। मुझे याद है कि उसका उद्घाटन करने गयी तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने कहा था कि इस संस्था के माध्यम से भोपाल भारत की सांस्कृतिक राजधानी बनेगा और अर्जुनसिंहजी ने एक सीमा तक ऐसा किया था।

उनसे मेरा व्यक्तिगत सम्पर्क न के बराबर रहा है फिर भी वे मेरे काम में रुचि लेते रहे हैं और परोक्ष रूप से ही सही वह मुझे हमेशा प्रोत्साहित करते रहे हैं। कथक केन्द्र कला के लिए समर्पित केन्द्र हैं और यह प्रत्येक कलाकार को सम्मान देता है, कला प्रेमी, कला संरक्षक को सम्मान देता है। केन्द्रीय मंत्री होने के नाते उनसे हम जैसे कलाकार उम्मीद करते हैं कि वे हम लोगों की विवशताओं को समझें, तकलीफ़ों को जानें और कोई ऐसा रास्ता निकालें जिससे कलाकार कभी कला सेवा से विमुख न हों। कला के विभिन्न क्षेत्रों में अधिक से अधिक आर्थिक सहायता की ज़रूरत है। इस दिशा में जनता को भी जागरूक बनाने की ज़रूरत है। प्रस्तावित संस्कृति नीति संभव है इस ओर क़दम उठायेगी।

अर्जुनजी का लम्बा भविष्य है। देश की उम्मीद अब उन्हीं पर है। हम भी देश की उम्मीद के साथ हैं और आश्वस्त भी हैं कि अर्जुनजी स्वस्थ, प्रसन्न रहते हुए सबका भला करेंगे।

☐ *बिरजू महाराज— भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के पोषक। विश्वप्रसिद्ध कथक नृत्यकार बिरजू महाराज भारत ही नहीं विश्व के कथक नृत्य प्रेमियों का चिरपरिचित नाम हैं। बिरजू महाराज स्वयं एक व्यक्ति नहीं संस्था हैं। कथक के क्षेत्र में अनेक राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त बिरजू महाराज भारतीय नृत्य परम्परा के ध्वजवाहक महान कलाकार हैं।*

अर्जुनजी पर नज़र लगी है

अमज़द अली ख़ान
(विश्वप्रसिद्ध सरोद वादक)

मध्यप्रदेश एक ऐसी जन्मभूमि है जहाँ संस्कृति और इतिहास नस-नस में भरा हुआ है। अनेक महान विभूतियाँ इस प्रांत से ऊपर आई और सेवा की। एक महान संगीतकार का जन्म भी मध्यप्रदेश के ग्वालियर में हुआ, जहाँ आज उनकी समाधि है। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं भी उसी मध्यप्रदेश का रहने वाला हूँ। मेरा यह भी सौभाग्य रहा है कि अर्जुनसिंहजी को मैं तब से जानता हूँ जब वे विधायक थे और विभिन्न पदों पर रह के उन्होंने साहित्य और संस्कृति को बढ़ावा दिया। 1973 में, जब वे मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री थे, उन्होंने **उत्सव** नामक महोत्सव की शुरुआत की थी। इस महोत्सव में लेखकों, कलाकारों आदि को सम्मानित किया गया। सम्मानित होने वालों में कई बड़े-बड़े संगीतकार शामिल थे—जिनमें पं. कृष्णराव शंकर, पं. रविशंकर, उस्ताद अमीर खाँ साहब और मैं स्वयं भी था। इसके बाद यह **उत्सव** हर साल होता रहा। इस समारोह से यह प्रमाणित हुआ कि अर्जुनसिंह साहब हिन्दुस्तानी संगीत से गहरे स्तर पर जुड़े हुए हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने कार्यकाल में संस्कृति, साहित्य व शास्त्रीय संगीत के अनेकों कार्यक्रम कराए।

हिन्दुस्तानी संगीत में उनकी गहरी रुचि का ही परिणाम है कि मध्यप्रदेश शासन ने **कालीदास, तानसेन, लता मंगेशकर** आदि के नाम पर पुरस्कार शुरू हुए जिससे विभिन्न संगीत प्रेमियों को सम्मानित किए जाने का सिलसिला अभी तक बरकरार है।

मुख्यमंत्री के रूप में अर्जुनसिंहजी ने भारतीय कला और संस्कृति को बढ़ावा देने के लिये **भारत-भवन** जैसी राष्ट्रीय संस्था का निर्माण कराया। कहने की ज़रूरत नहीं है कि **भारत-भवन** ने कई मायनों में राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय गरिमा की संस्था बनने का गौरव प्राप्त किया। **भारत-भवन** के ही कारण भोपाल देश की सांस्कृतिक राजधानी बन गया। साहित्य व कलाओं के विभिन्न आयोजन, साहित्य की अच्छी पत्रिकाओं का प्रकाशन तथा दूसरे क्षेत्रों में **भारत-भवन** की गतिविधि बहुत महत्वपूर्ण रही है।

अर्जुनसिंहजी मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री व मुख्यमंत्री रहने के साथ-साथ पंजाब के राज्यपाल व काँग्रेस के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष भी रहे हैं। इन पदों पर रहते हुए अर्जुनसिंहजी ने जो काम किया वह देश का प्रत्येक नागरिक जानता है। मैं तो कलाकार हूँ और कलाकार होने के नाते मेरे मन में उनके प्रति सिर्फ़ प्रशंसा का भाव ही है। इसलिए कि कला के क्षेत्र में जो काम उन्होंने किया वह काम कोई भारतीय राजनेता नहीं कर सका। वे कलाकारों का दु:ख-दर्द जानते हैं। सबसे प्यार से मिल के, सबकी बातें सुनना, उनकी सहायता करना और उन्हें कला के प्रति प्रेरित करने का काम बख़ूबी करते रहे है। स्वभाव से मृदुभाषी, व्यवहार में नम्र, गम्भीर राजनीतिज्ञ और जनता के सच्चे हिमायती के रूप में अर्जुनसिंहजी आज मध्यप्रदेश के ही नहीं, भारत भर में लोकप्रिय हैं।

केन्द्र में मानव संसाधन विकास मंत्री के रूप में अर्जुनजी अभी बहुत कुछ नहीं कर पाए हैं फिर भी उन्होंने

कलाकारों के लिए ज़्यादा से ज़्यादा धन देने की व्यवस्था की है और देश को एक राष्ट्रीय संस्कृति नीति देने की बात सोची है जिससे लुप्त होती हुई संस्कृति सुरक्षित करके देश के विभिन्न संस्कृतियों को एक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य दिया जा सके। अर्जुनजी की वह जगह नहीं है जहाँ वे हैं उन्हें बहुत आगे जाना है लेकिन मंजिल उनके बहुत क़रीब है। हम खुदा से दुआ करते हैं कि अर्जुनजी जल्दी ही देश का नेतृत्व करें जिससे देश में खुशहाली भी आवे और कला अपनी चरमोपलब्धि प्राप्त करे। एक कलाकार के रूप में अर्जुनजी से मेरी यही अपेक्षा है कि कलाकारों, साहित्यकारों के लिए उनके दिल में पहले ही की भाँति जगह बनी रहे और वे हमेशा उनकी ओर नज़र फेरे रहें।

☐ *अमज़द अली खान— विश्वप्रसिद्ध सरोद वादक श्री अमज़द अली खान मूलतः मध्यप्रदेश के ही हैं। आपने भारत ही नहीं लगभग विश्व के सभी देशों में सरोद वादन कर अपनी कालजयी कला का परिचय दिया है। आप अर्जुनसिंहजी से लगभग तीस वर्षों से परिचित स्नेही हैं। देश-प्रदेश के उन सभी कला उत्सवों-कार्यक्रमों में उनकी सहभागिता रही है जहाँ कहीं भी अर्जुनसिंहजी उस आयोजन से जुड़े नज़र आये हैं।*

CAREER COLLEGE
ACC.No.....
Book No.....
Date.....
E.L., BHOPAL
26921

गुरु-शिष्य परम्परा के पोषक

उस्ताद ज़िया फरीदुद्दीन डागर
(ध्रुपद के सुप्रतिष्ठित गायक)

ध्रुपद केन्द्र भोपाल में गुरु के पद पर रहते हुए पिछले दस-बारह वर्षों से अर्जुनसिंहजी को देख रहा हूँ—कभी पास से और कभी दूर से। वे कुशल राजनीतिज्ञ तो हैं ही पर उन्होंने एक राजनेता के रूप में संस्कृति पर ध्यान देना आवश्यक माना है और कला साधकों के लिये साधना स्थलों का निर्माण किया है, उनका मान बढ़ाया है। **भारत-भवन** तो बाद में बना उससे पहले ही वे अनेक छोटी-छोटी संस्थाओं की स्थापना कर चुके थे जिनमें उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादमी भी है।

मध्यप्रदेश ने देशभर के संगीतकारों का गौरव बढ़ाया है इसके लिये अर्जुनसिंहजी हमेशा याद किये जायेंगे। सिर्फ़ इतना ही नहीं उन्होंने गुरु-शिष्य परम्परा को फिर से विकसित करने के लिये भोपाल में ध्रुपद की शिक्षा के लिये ध्रुपद केन्द्र और कथक नृत्य की शिक्षा के लिये चक्रधर नृत्य केन्द्र स्थापित किये। कथक का रायगढ़ घराना तो मध्यप्रदेश का ही है। उसी के एक प्रतिष्ठित गुरु पंडित कार्तिकराम को अर्जुनसिंहजी ने सम्मानित कर चक्रधर नृत्य केन्द्र में गुरु के पद पर आसीन किया।

देश में आज ऐसा कोई केन्द्र नहीं है जहाँ चार-पाँच वर्षों की अवधि में ही प्रतिभाशाली संगीतकार सामने आ सके हों। ध्रुपद केन्द्र और चक्रधर केन्द्र के माध्यम से संगीत-नृत्य की शिक्षा पाने वाले ऐसे शिष्य तैयार हो गये हैं जिनकी आज अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति है। यह सब उस परिवेश के कारण संभव हुआ जिसे अर्जुनसिंहजी जैसे सजग राजनेता और श्री अशोक वाजपेयी जैसे कर्मठ लोगों ने रचा। इसी कारण उन्हें देशभर के रचनाशील लोगों का स्नेह भी प्राप्त हुआ।

संगीत शैली ध्रुपद की प्रतिष्ठा के लिये उन्होंने कई काम किये हैं। ध्रुपद केन्द्र तो स्थापित हुआ ही, हर साल ध्रुपद समारोह भी शुरू हुए। 1983 में जब वे **भारत-भवन** न्यास के अध्यक्ष थे उन्होंने डागर घराने के सात गुरुओं को एक साथ **भारत-भवन** बुलाकर डागर सप्तक का आयोजन किया। सभी गुरुओं के एक साथ भोपाल में इकट्ठे होने का यह दुर्लभ संयोग देश में चालीस-पचास साल बाद घटित हुआ था।

उन्होंने अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादमी के माध्यम से संगीत की दुर्लभ शैलियों को विकसित करने और उनकी शिष्य परम्परा बढ़ाने के लिये भी गुरुओं और शिष्यों के लिये ज़रूरी सुविधाएँ जुटायीं। हर साल होने वाला दुर्लभ वाद्य विनोद समारोह पूरे देश में अनूठा है। अब इन पुराने वाद्यों को फिर नये साधकों ने छुआ है, वे फिर बज उठे हैं। **भारत-भवन** में आयोजित ऐतिहासिक सारंगी मेला जिसमें देश के सौ सारंगी वादक शामिल हुए, हमेशा याद किया जायेगा।

अर्जुनसिंहजी ने इस बात को अच्छी तरह पहचाना कि संगीत की स्कूली शिक्षा व्यर्थ साबित हो रही है। नये शिष्य-साधक वहाँ से नहीं आ रहे हैं और निश्चय ही यह चिन्तनीय बात है। उन्होंने उस वातावरण का निर्माण किया

और चोखे साधक जुटाये जिनके बीच साधना फलती-फूलती है। आज वे राष्ट्रीय राजनेता के रूप में हमारे सामने हैं और सौभाग्य से भारत सरकार का संस्कृति विभाग भी उन्हें के ज़िम्मे आया है। हम उम्मीद किये हुए हैं कि अब सिर्फ़ मध्यप्रदेश ही नहीं देश के हर प्रान्त में संगीत की गुरु-शिष्य परम्परा का विकास होगा और पिछले एक डेढ़ साल से मध्यप्रदेश की कला संस्थाओं में जो राजनैतिक प्रदूषण फैल रहा है वह भी दूर होगा।

मैं अर्जुनसिंहजी को हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ। भारत में कलाओं की स्वायत्तता के लिये किये गये उनके रचनात्मक प्रयत्न कला जगत और रसिक समुदाय कभी भुला नहीं पायेगा।

☐ *उस्ताद ज़िया फ़रीदुद्दीन डागर*— ध्रुपद के क्षेत्र में उस्ताद ज़िया फ़रीदुद्दीन डागर का अपना स्थापित नाम है। ध्रुपद गायन में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त गायक श्री डागर अर्जुनसिंहजी की कलाप्रियता के प्रशंसक हैं। **भारत-भवन** न्यास के अध्यक्ष के रूप में श्री अर्जुनसिंह ने 1983 में डागर सत्रक का आयोजन किया था।

कला के विकास को उद्दीप्त करने की आकाँक्षा

मणि कौल
(सुप्रसिद्ध फिल्म निर्माता)

श्री अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रन्थ के लिये नीचे अंकित विचार प्रस्तुत करने की मुझे प्रसन्नता है :—

एक कलाकार अपने भीतर एक ध्वनि केन्द्र खोजता है और फिर उसके निकटवर्ती लगावों को अनुभव करता है या उन क्षेत्रों की ओर निकल जाता है जो उस केन्द्र से कहीं दूर स्थित हैं। ऐसा करके वह उन दूरस्थ अनुगूँजों में सम्बन्धों की शुरुआत करता है जो लयहीन होने की कगार पर रहती है।

कुल मिलाकर, यह एक नये सम्पूर्ण को समकालीन अनुभव को साकार करने का प्रयास है। इस प्रयास में एक कलाकार लय की उन पूर्व धारणाओं को सहज ही छोड़ दे सकता है जो ज़रूरत से ज़्यादा टिकी रह गयी हैं। ये घिसीपिटी पूर्व धारणाएँ बने-बनाये संकेतों की तरह उपयोग में लायी जाती हैं और अपने होने मात्र से अनुभव की नयी व्याख्या में अड़चनें उत्पन्न करती हैं।

कला संस्थानों की नियति है कि वे कला को समर्थन दें और इसीलिए संस्कृति का सम्बन्ध कलात्मक संघर्ष से है। कला संस्थानों को एक विशेष उद्देश्य से निर्मित किया जाता है : कला में नये अनजाने विकास को उद्दीप्त करने। जब ये विकास किसी विशेष कलाकार के रूप में सामने आते हैं जो अपनी कला के माध्यम से हमारे भीतर के अकथनीय जीवन को सार्वजनिक बनाते हैं, तब ये संस्थानिक संरचनाएँ अपने ऊपर ख़तरा महसूस करने लगती है। राज्यसत्ता के दुर्भाग्य से, कला लोगों के लिए उस परस्पर विश्वास की भावना उपलब्ध करती है जिसमें लोगों के बीच के अनौपचारिक सम्बन्ध पहले से निहित हैं। यह संदेहरहित विश्वास कला की सफलता और निष्फलता, दोनों ही स्थितियों में प्रत्यक्ष हो जाता है, (सच्ची) कला के होने मात्र से। यह विश्वास युवा को निर्भीक बनाता है और पुराने बने-बनाये वैयक्तिक या सार्वजनिक मानस को विचलित कर देता है।

शब्दाडंबर (अपने विचारधारात्मक विस्तार में) और उपभोक्तावाद (संस्कृति के वितरण को नियंत्रित करने वाली शक्ति के रूप में) कुछ ऐसा दिखावा करते हैं कि उन्हें कला की आवश्यकता ही नहीं है। आइडियोलॉग (विचारधारा का पिछलगुआ) और धंधेबाज दोनों ही इस विषय पर एक-सा सोचते हैं— जल्दी ही या कुछ देर से दोनों को ही यह साफ़ समझ में आ जाता है कि कला स्पष्ट या साफ़तौर पर समझ में आने वाला कोई भी कार्य नहीं कर सकती। अगर कला 'शिक्षण' या 'मनोरंजन' नहीं कर सकती तब निश्चय ही वह इन दोनों की नज़र में मूल्यहीन हो जाती है। उसका व्यापार संभव नहीं। एक कला संस्थान निष्फल नहीं हो सकता। कला हो सकती है। सिनेमेटोग्राफ़ी के मेरे अपने क्षेत्र में, मेरा ऐसे बहुत-से आलोचकों से सामना हुआ है जो पिछले दस-बारह सालों से उस सिनेमा की मृत्यु की घोषणा करते रहे हैं जिसे वे 'समानांतर सिनेमा' के नाम से पुकारते रहे हैं। यहाँ भी कला की महज़ शक्ति और उसकी पुनर्सृजन की क्षमता मात्र ही कलाविहीन मीडियाकारों को ईर्ष्या से भर देती है क्योंकि अगर वह उस समय छिपी भी है तब भी कला फिर-से सामने आयेगी, उन लोगों के सामने जो उसकी समृद्धि को सहन नहीं कर पाते।

कला निःशुल्क उपलब्ध होनी चाहिए। मेरा आशय है बिना टिकट के।

यह अकल्पनीय है कि लोग कला के बिना और इस तरह खोज के बिना, चाहना के बिना जीवन बिताने की सोचें।

यह जानते हुए भी कि कला में राज्यसत्ता का शत्रु बनने की क्षमता है, राज्यसत्ता को कला के साधकों को संरक्षण देने का प्रयास करना चाहिए। अपने विलगाव और अकेलेपन में भी आधुनिक भारतीय कला लोकतांत्रिक बुनावट की समर्थक रही है, क्योंकि हमारे युग में कला से अधिक सेक्युलर और कुछ नहीं है (सेक्युलर अभिव्यक्तियाँ अपने आप में ही फण्डामेन्टेलिस्ट प्रवृत्तियों का प्रबल निषेध है)।

सेक्युलरिज़्म, उपभोक्तावाद, जनसंख्या, पर्यावरण आदि समस्याओं को संभालने में संस्थानों को कठिनाई होती है। यह सामान्य बात है कि संसाधन कलाकारों को घटिया उपदेशात्मक सामग्री तैयार करने पर मज़बूर करते हैं।

संस्थान आवश्यक है। उन पर, कम से कम आज भारत के कला संस्थानों पर हमले हो रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है कि उन्हें धीरे-धीरे नष्ट करके बाज़ार की ओर धकेला जा सकता है। हमें यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि उपभोक्तावाद का केवल एक घर है : अमेरिका, ठीक इसलिए क्योंकि अमरीकियों ने अपने रहन-सहन में एक-से-पन का लगभग असम्भव और विलक्षण काम कर दिखाया है। आप उस देश में कहीं भी चले जायें आपको ठीक वही हेम्बर्गर, ठीक वही हॉट-डॉग हर जगह मिलेगा। उन्होंने यह भावना योरोप में फैलायी और सुदूर पूर्व के देशों में भी। सुनते हैं कि वे यहाँ भी आ रहे हैं। भारत का उच्छृंखल शाकाहार उनके आड़े आ रहा है।

भारतीय महाद्वीप में अनेकताओं के लिये स्थान है बल्कि वह इसे प्रोत्साहित करता है।

सार्वजनिक उद्यम (संस्कृति) उपभोक्तावाद और विचारधारात्मक शब्दाडंबर के विरुद्ध अपने संघर्ष को पुनर्नवा करना होगा, कला को निःशुल्क उपलब्ध करवाकर।

अर्जुनसिंहजी को, जिन्होंने कलाकारों और कलाओं पर विश्वास करने का निःसंदेह जोखिम उठाया, मेरी शुभकामनाएँ।

☐ *मणि कौल—* *भारतीय कला फ़िल्म क्षेत्र में मणि कौल एक परिचित प्रतिष्ठित नाम है जिससे सभी परिचित हैं। श्री मणि कौल द्वारा निर्मित फ़िल्मों में नये प्रयोग नये तेवर और नये संदेश देखने को मिले हैं। आप परम्परा के विरुद्ध प्रयोग करने वाले, लीक से हटकर लीक गढ़ने वाले कलाकार हैं।*

यादों के झरोखे से मुस्कुराता हुआ अर्जुन

राजेन्द्रनाथ
(प्रसिद्ध फिल्म कलाकार)

आमतौर से मुझे लोग एक फिल्मी कलाकार परन्तु हँसने-हँसाने वाले कामेडियन के रूप में ही जानते हैं। यहाँ मैं आपको यह बात बताते हुए प्रसन्नता और गौरव अनुभव कर रहा हूँ कि मुझे केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री अर्जुनसिंहजी के साथ हँसने-बोलने, पढ़ने-लिखने और रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह भी उस समय जब नौजवानी की दस्तकें, उसकी अठखेलियाँ हमें कुछ करने को उकसाती थीं। वे पढ़ने-लिखने, खेलने-कूदने और मस्ती करने के दिन थे।

मेरे पिता स्वर्गीय राय साहब कर्तारनाथजी पुलिस में आला अफसर थे। उन दिनों राजा-महाराजाओं की हुकूमत थी। क्या ज़माना था, क्या दिन थे। यादों की ठंडी और ख़ुशगवार महक, बीते हुए ख़ूबसूरत पल में सब कुछ आँखों से छू रहा हूँ।

अभी जो मध्यप्रदेश है वह पहले सी.पी. कहलाता था—मतलब सेन्ट्रल प्रोविंसेस। रीवा में मेरे पिताजी आई.जी. होकर पहुँचे। मरे पिताजी के बहुत ट्रांसफर होते थे। हम उनके साथ रायपुर, बिलासपुर, नरसिंहपुर, अमरावती सभी जगह ख़ूब घूमे। मुझे घूमने में ख़ूब मज़ा आता था। रीवा में ही हमारी अर्जुनसिंहजी के परिवार से घनिष्ठता हुई। रीवा के दरबार कॉलेज में हम लोग पढ़ते थे। मैं साइंस स्टूडेंट था। उनके बड़े भाई रणबहादुर सिंहजी मेरे साथ थे। हम एफ.एस.सी. में पढ़ते थे। मैं पढ़ने में कोई ख़ास नहीं था। बस घर वाले पढ़ाते थे तो पढ़ता था। शुरू से ही मनचला, मस्ताना, दीवाना रहा हूँ तो ज़ाहिर है अपनी एक अलग किस्म की छवि थी। ख़ूब हँसता-हँसाता— दिल्लगी करने वाला स्टूडेंट था। कॉलिज में अपना जलवा था। बहुत मज़ेदार समय था। बेफिक्री थी। हालाँकि घर में काफ़ी स्ट्रिक्ट माहौल था। पिताजी का मैं लाड़ला था मगर उनका अनुशासन तो था इसलिये शरारतें होती तो थीं मगर मंदगति से।

डैडी कहा करते थे—बेटा अख़बार ज़रूर पढ़ा करो और मुझसे बीच का पन्ना पढ़वाकर सुनते थे। अख़बार पढ़ने की आदत मेरी आज भी वैसी ही है। अर्जुनसिंहजी के बारे में ढूँढ-ढूँढ कर पढ़ता हूँ, बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ता हूँ। दो-दो बार पढ़ता हूँ। अच्छा लगता है, कोई अपना है जिसके बारे में पढ़ रहा हूँ।

हाँ तो मैं आपको बता रहा था कि मैं रीवा के दरबार कॉलेज में हुआ करता था। पढ़ने में कम और शैतानी में ज़्यादा मन लगता था। अब मै अपने बारे में यूँ कहूँ तो ग़लत नहीं होगा कि मैं बड़े बाप का बिगड़ा हुआ शैतान बेटा था।

डैडी तो मुझ पर नज़र रखते थे और हमेशा बोलते थे पढ़ो-लिखो और कुछ बनो। मगर हम तो ठहरे कलाकार और आ पहुँचे बम्बई, जहाँ हमारे बड़े भाई साहब हीरो थे। हमारे भाई साहब प्रेमनाथजी 1944 में बम्बई आए थे उन दिनों पृथ्वी थियेटर्स की देश भर में धूम थी। यह थियेटर नए कलाकारों के लिये ट्रेनिंग सेंटर था। प्रेमनाथजी ने स्व. पृथ्वीराज कपूर के साथ काफ़ी लम्बे समय तक काम किया। उन्हीं से प्रेरित हो मैं भी बम्बई पहुँचा। उस ज़माने में बड़े-बड़े कामयाब नाटक खेले जाते थे और थियेटर एक शहर से दूसरे शहर में जाया करते थे। कलाकारों को ख़ूब घूमने-

फिरने का मौक़ा मिलता था।

मुझे याद है एक नाटक के सिलसिले में हम लोग इलाहाबाद गए थे। यह घटना 1951 की है। वहाँ मेरी मुलाक़ात इत्तेफ़ाकन अर्जुनसिंहजी, रामपाल दुबे, बागेश्वरी बेजल और माथुर से हुई। यह सभी मेरे पुराने रीवा के मित्र थे। वहाँ मुझे उन लोगों से मिलकर बहुत खुशी हुई। मैं शुरू से ही डायरी लिखता था। यह बात मैंने अपनी डायरी में नोट की और उस मोर पंखी खुशी को अपनी डायरी में रख दिया। यह डायरी मेरे जज़्बात मेरे दिल की धड़कनों, मेरे आत्मीय लगाव को अभिव्यक्त करती है।

इंडियन राइटर्स एसोसिएशन म.प्र. अर्जुनसिंहजी पर एक अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित करने जा रही है और मुझ नाचीज से भी अनुरोध किया गया है कि मैं भी माननीय अर्जुनसिंहजी के बारे में कुछ कहूँ, कुछ लिखूँ। तो मैं इस आत्मीय अनुरोध के लिये समिति का आभारी हूँ और आपको बताना चाहता हूँ कि मेरे मित्र अर्जुनसिंहजी बहुत ही सोबर, बहुत ही योग्य, राष्ट्र और समाज के हितैषी राजनीतिज्ञ हैं। दरबार कॉलेज रीवा में वह मेरे साथ पढ़ते थे। शुरू से ही वह अत्यंत प्रतिभा सम्पन्न एवं होशियार छात्र थे। उनकी एक अलग तरह की छवि थी, आभा थी। वह काफ़ी समझदार और सीरियस विद्यार्थी थे। उस ज़माने में जब मैं बिल्कुल फैशनेबुल हुआ करता था वह खादी का कुर्ता पज़ामा पहनते थे दीगर विद्यार्थियों में काफ़ी लोकप्रिय और चहेते थे। मैं दूसरे शब्दों में यूँ कहूँ तो ग़लत नहीं होगा कि वह हमारे दरबार कॉलेज के हीरो थे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

जब वह मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे तब मैं उनसे मिला था। बहुत ही आत्मीयता से मिले। पुराने दिनों की याद दिलाई। हालचाल पूछे। अभी चार माह पहले दिल्ली में भी उनसे मुलाक़ात हुई। मुझे यह कहते हुए गर्व की अनुभूति होती है कि उनकी पत्नी भी मेरी छोटी बहन निर्मल के साथ महारानी हाईस्कूल में पढ़ती थीं। हम लोगों के परिवारों में काफ़ी मेल-जोल और घनिष्ठता थी। इस समय यह मेरे देश का सौभाग्य है कि हमारे प्रधानमंत्री श्री नरसिंहरावजी भी बहुत योग्य व्यक्ति हैं और उनके साथ यहाँ मैं अर्जुनसिंहजी, मनमोहनसिंहजी और माधवराव सिंधियाजी की विशेष रूप से प्रशंसा कर रहा हूँ।

मेरी दृष्टि में ये लोग देश की ज्वलंत समस्याओं के बारे में बेहतर निदान ढूँढने वाले और ख़ूब अच्छा सोचने वाले लोग हैं। मुझे पूरी उम्मीद है ये अपनी नीतियों के माध्यम से देश का और हमारे समाज का हर संभव भला करेंगे।

मैंने भोपाल स्थित **भारत-भवन** के बारे में भी बहुत कुछ सुना है। सांस्कृतिक गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने और लेखकों-कवियों-कलाकारों को बेहतर मंच देने की गर्ज से उन्होंने वहाँ जो काम किए हैं उससे हर कलाकार का खुश होना स्वाभाविक है। कलाकारों को खुला और साफ़ आकाश मिलना चाहिए। **भारत-भवन** के माध्यम से जो वहाँ कलाकारों को सम्मान दिया गया उसके लिये मैं हृदय से उनकी प्रशंसा करता हूँ।

वह विविध कलाओं के बढ़िया पारखी, कलाकारों के हृदय से प्रशंसक और कलाओं में दिलचस्पी लेने वाले साहित्य रसिक राजनेता हैं। ऐसे कला मर्मज्ञ राजनीतिज्ञ देश के क्षितिज पर विरले ही हैं। शुरू से ही मैंने देखा था कि उनकी राष्ट्र और समाज के प्रति एक अलग तरह की साफ़ सुथरी दृष्टि है। उनमें गज़ब की पहचान क्षमता है।

यहाँ जब मैं समाचार पत्रों, पत्रिकाओं में उनके विचार-वक्तव्य पढ़ता हूँ तो लगता है कि उनके फैसले राजनीति प्रेरित न होकर सामाजिक बदलाव प्रेरित होते हैं। वह ग़रीबों क हितैषी, समन्वयवादी, विभिन्न धर्मों में एकता के पक्षधर हैं। उनके स्टेटमेंट्स बताते हैं कि वह देश में बढ़ती सांप्रदायिकता के घोर विरोधी हैं। शुरू से ही वह श्रीमती गाँधी के हिमायती रहे। स्वर्गीय राजीवजी की नज़रों में भी वह अत्यंत प्रतिभायुक्त और योग्य व्यक्ति रहे। हमारे मौज़ूदा प्रधानमंत्री श्री नरसिंहराव भी उनका बहुत आदर करते हैं।

ग़रीबों, हरिजनों, अल्पसंख्यकों के दिलों में उनके लिये अपार स्नेह है जैसा कि अख़बार वाले लिखते हैं कि वह ग़रीबों के मसीहा और उनके लोकप्रिय नेता हैं तो मुझे बहुत अच्छा लगता है। देश के इन ग़रीब लोगों के लिये काम किया जाना चाहिए। मुझे बहुत खुशी होती है कि उन्होंने बहुत काम किया है, तभी तो इतना प्यार करते हैं लोग उन्हें, इतना प्यार और सम्मान देते हैं।

लेखक-पत्रकार-अख़बार उनके सौम्य स्वभाव के प्रशंसक हैं। मेरे दोस्त का जब इतना बड़ा क़द देखता हूँ तो मेरा सीना गर्व से फूल जाता है। यादों के फूल खिल उठते हैं। मेरी आँखों में वह अर्जुन मुस्कुरा उठता है जो अपनी गहरी आँखों में ग़रीबों का दर्द लेकर उन्हें दूर करने के सपने देखा करता था। उनके मन में जो ग़रीबों के प्रति सहानुभूति प्रेम और उनका जीवन स्तर ऊँचा उठाने की उम्मीद थी वह उम्मीद साकार हो रही है।

☐ *राजेन्द्रनाथ—* *हिन्दी फिल्मों में कभी कॉमेडी किंग माने जाने वाले राजेन्द्रनाथ अर्जुनसिंहजी के सहपाठी रहे हैं। कहाँ धीर गम्भीर अर्जुनसिंहजी और कहाँ मनमौजी-मसखरे राजेन्द्रनाथ। आपने* ***फ़िल्मी दुनिया में मनोरंजन*** *प्रसंगों के हीरो के रूप में अपना स्थान बनाया है।*

कला के पावन तीर्थ निर्माता

ए.के. हंगल
(सुप्रसिद्ध फ़िल्म कलाकार एवं साहित्यकार)

मैं बहुत बरस पहले प्रगतिशील लेखकों की कांफ्रेंस में जबलपुर गया था। वहाँ मेरी मुलाक़ात चंद मशहूर लोगों से हुई। परसाईजी, ज्ञानरंजनजी, अमृतरायजी और गुलाम रब्बानी ताबाँ से, बहुत अच्छा वक़्त गुज़रा। जबलपुर में ही मेरी मुलाक़ात अर्जुनसिंहजी से भी हुई उनकी बातचीत और ख़यालात से मैं काफ़ी मुत्तासिर हुआ। मैंने देखा वह साहित्यकारों-कलाकारों की इज़्ज़त करते हैं उनको सुनते हैं और साहित्य-नाटक में समान रुचि लेते हैं। मैंने सांस्कृतिक कामों में उनकी गहरी दिलचस्पी देखी। वहाँ पर नाटक भी हुए थे। इस सम्मेलन में मुझे नाटकों के उद्घाटन करने के सिलसिले में बुलाया गया था। जबलपुर में ही मेरी मुलाक़ात हबीब तनवीरजी से भी हुई। जबलपुर के इस पूरे सम्मेलन में मैंने अर्जुनसिंहजी को सांस्कृतिक कार्यों में व्यस्त पाया। उनकी कला में गहरी रुचि है। यह बात मुझे जबलपुर में हीं पता लगी। मुझे उनसे मिलकर काफ़ी अच्छा लगा। दोबारा जब मैं मध्यप्रदेश गया तो भोपाल भी गया, वहाँ मैंने **भारत-भवन** देखा। देखकर दंग रह गया। काफ़ी ख़ूबसूरत और काम की चीज़ बनाई है कलाधर्मियों, साहित्य कर्मियों के लिये। तो यह पावन तीर्थ है और मुझे पता लगा कि इसके पीछे अर्जुनसिंहजी का दिमाग़ है तो और भी अच्छा लगा। मैं तहेदिल से **भारत-भवन** को बनाने वालों को मुबारक़बाद देता हूँ। मैं इस सिलसिले में स्वामीनाथनजी और अशोक वाजपेयीजी को भी मुबारकबाद पेश करता हूँ। इन लोगों ने **भारत-भवन** बनाकर बहुत बड़ा काम किया है। **भारत-भवन** में मध्यप्रदेश के कलाकारों की जो कलाकृतियाँ संग्रह करके रखी गई हैं, वह अद्भुत हैं नि:संदेह **भारत-भवन** देश का सर्वश्रेष्ठ कला संग्रहालय है। यह जानकर मुझे मज़ीद ख़ुशी हुई कि यहाँ **भारत-भवन** को भारत के असंख्य कलाकारों और लेखकों का व्यापक समर्थन प्राप्त है। पूरे देश का कला समुदाय इसे अपने घर जैसा मानते हैं। परन्तु अब मैं सुन रहा हूँ क़रीब दो साल से कि पूरे के पूरे इंतज़ाम को तब्दील किया जा रहा है। **भारत-भवन** में सरकार ने हस्तक्षेप शुरू कर दिया है जो कि पहले नहीं था। सच तो यह है कि कला के क्षेत्र में न तो बाबूगिरी की दख़लअंदाज़ी हो और न सरकार की। मैंने तो यह भी सुना है कि पूरी की पूरी इतिहास की क़िताबें नये सिरे से लिखवाई जा रही है जिनमें से राष्ट्रपिता तक का नाम निकाला जा रहा है।

न सिर्फ़ यह कि हिन्दू-मुस्लिम एकता की तरफ़ बिलकुल ध्यान नहीं दिया जा रहा बल्कि हिन्दुत्व के नाम पर बड़े छुपे-छुपे तरीक़ों से नफ़रत फैलाने की कोशिश की जा रही है। यह जानते हुए कि हिन्दुस्तान किसी एक धर्म का देश नहीं है। किसी एक संस्कृति का भी देश नहीं है, किसी एक भाषा का भी देश नहीं है। अगर यहाँ कोई एक धर्म या एक भाषा बोलने वाला दूसरे धर्म या भाषा को डॉमीनेट करने की बात करता है तो अलगाववाद पैदा हो जाने का डर है। हमारे यहाँ कुछ सिरफिरे लोग कहते हैं यह हिन्दू मेजॉरिटी वाला देश है। इसलिये इसको हिन्दू राष्ट्र कहना चाहिए और ऐसा करने से सब समस्याएँ हल हो जाएँगी तो यह बड़ी बेवकूफ़ी की बात है। क्योंकि मुस्लिम राष्ट्र बनाने वालों ने कौन-कौन सा सुख पा लिया है। हमारे पड़ोस में आए दिन मज़हब के नाम पर झगड़े होते रहते हैं। तो मेरी विनती

है तमाम अमन पसंद लोगों से कि इस धोखे में न आएँ बल्कि जो आदमी की बुनियादी समस्याएँ हैं उनका हल ढूँढने में एक दूसरे की मदद करें। कौमी एकता बनाने का यही बेहतर रास्ता है। इस सिलसिले में अर्जुनसिंहजी के कार्यों की मैं सराहना करता हूँ। इस तरफ़ वह बहुत संजीदगी से काम कर रहे हैं।

मेरे ख्याल में मंदिर-मस्जिद का जो झगड़ा है वह सिर्फ़ वोट लेने के लिए है। कलाकार होने के नाते मैं अपने क्षेत्र की एक बात बताता हूँ जिसे आप सुनकर दंग रह जाएँगे। मैंने क़रीब दो साल पहले पढ़ा कि हिन्दुस्तानी संगीत दरअसल हिन्दुस्तानी संगीत नहीं है बल्कि हिन्दू संगीत का बलात्कार है। अब इस तरह के वक्तव्य छपवाने से लोगों का क्या तात्पर्य है। मेरी नज़र में यह एक किस्म का सांस्कृतिक प्रदूषण है। हमारे यहाँ शास्त्रीय संगीत के बड़े-बड़े महारथी मुसलमान हैं।

इन सब बातों को देखते हुए हमारी केन्द्रीय सरकार पर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। उन्हें हमारी एक बेहतरीन सांस्कृतिक नीति तय करना चाहिए। नीति पर सारे हिन्दुस्तान में बहस करवाना चाहिए जिससे कि हमारी सेक्यूलर पॉलिसी बरकरार रहे। कला और साहित्य की आज़ादी बनी रहे। यह सही है कि हर राज्य को चाहिए अपनी शिक्षा नीति तय करे, उसे बेहतर बनाए लेकिन सेक्यूलरइज़्म पर आँच नहीं आना चाहिए। यह तो हमारे संविधान की आत्मा है। मज़हब का नाम लेकर लोगों को भड़काना और दंगे करवाना मेरी दृष्टि में सबसे बड़ा जुर्म है। इससे फासिज़्म पैदा होता है जैसा कि जर्मनी में हुआ। जनता को यह बात खुद समझ लेना चाहिए क्योंकि जनता का जागरूक होना बहुत ज़रूरी है। हमें यह समझना चाहिए कि हमारी समस्याएँ आख़िर हैं क्या? हमारी जो मूलभूत समस्याएँ हैं रोज़गार की, महँगाई और आवास कीं। उसके ख़िलाफ जागरूकता आना चाहिए।

आप तो जानते हैं मेरा संबंध भारतीय जन नाट्य संघ से है जो इप्टा के नाम से भी मशहूर है और जिन बातों पर मैंने अपनी राय प्रकट की है—कौमी एकता वग़ैरा के सिलसिले में, हम अमली तौर पर बढ़-चढ़कर इन कार्यों में भाग लेते थे।

दु:ख की बात यह है कि आज हमारे देश की शांति भंग हो गई है और हम कलाकार ऐसी व्यवस्था में कला की रचना नहीं कर सकते जबकि सर पर साम्प्रदायिकता की छुरी लटक रही है। कलाकारों और कलाओं की आज़ादी को ख़तरा पैदा हो रहा है।

श्री अर्जुनसिंहजी के समय-समय पर प्रकाशित वक्तव्यों को मैं पढ़ता हूँ बहुत साफ़ और जनहितैषी विचार हैं उनके। मैंने अभी-अभी सुना है कि अर्जुनसिंहजी ने कोई सांस्कृतिक नीति के संबंध में वक्तव्य जारी किया है तो मैं उनसे विनम्र अनुरोध करूँगा कि कौमी एकता और कला भी स्वायत्तता के लिए साम्प्रदायिकता विरोधी शक्तियों को एक करें और एक व्यापक बहस का अवसर दें जो यह तय कर सकें कि कैसे हम संस्कृति के ज़रिए मुल्क को शांति और अमन का गहवारा बना सकें।

☐ *ए.के. हंगल— विगत अर्धशती से भारतीय फिल्म जगत में अपनी उपस्थिति, अभिनय क्षमता और कलाकार को प्रदर्शित करते रहने वाले ए.के. हंगल इस देश की तीन पीढ़ियों के परिचित फ़िल्म कलाकार एवं साम्यवादी विचारक लेखक हैं। प्रगतिशील लेखकों के बीच एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में प्रतिष्ठित हैं।*

कवि कलाकारों के स्वप्नदृष्टा

अकबर पदमसी
(अंतर्राष्ट्रीय चित्रकार)

श्री अर्जुनसिंह मूलतः राजनीति से प्रतिबद्ध हैं और उन्होंने भोपाल में **भारत-भवन** जैसी संस्था निर्मित करने में जो योगदान दिया वह उल्लेखनीय है। कोई और राजनेता यह करने में समर्थ नहीं है। वे कवि-कलाकारों के स्वप्न को समझ सके और उसमें विश्वास कर सके, यह बड़ी बात है।

हम तो रचनात्मकता को समर्थन दे रहे हैं और हमें पूरा भरोसा है कि **भारत-भवन** का काम व्यर्थ नहीं जायेगा क्योंकि यह काम करके दिखाया गया है। देश के सभी प्रान्तों पर इसका प्रभाव पड़ा है और ऐसा काम कर दिखाने की हिम्मत सबमें आयी हैं। ज़मीन में बीज पड़ गये हैं।

यह सबने देखा कि लोग अपना-अपना काम छोड़कर **भारत-भवन** से आ जुड़े। देश और दुनिया के हज़ारों कवि-कलाकारों का उसे रचनात्मक सहयोग मिला और कलाकारों की एक संगठित शक्ति बनी और श्रेष्ठ कला का गौरव बढ़ा, सच्चे कला साधक ही सम्मानित हुए।

1982 से 90 के बीच नौ सालों में हम सबने जो रचनात्मक काम किया वह बड़ी राहत देता है पर अब सब जान रहे हैं कि 1990 के बाद **भारत-भवन** में क्या हो रहा है? यह चिन्ता का विषय है और हमसे फ़िर नये योगदान की माँग करता है। इसे पुनर्जागृत करने में श्री अर्जुनसिंह की भूमिका फ़िर महत्वपूर्ण होगी क्योंकि वे इस अधूरे स्वप्न के मूल्य को समझते हैं।

☐ *अकबर पदमसी— भारत में और भारतीय सीमाओं के पार जिन चित्रकारों ने अपना नाम स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है उनमें अकबर पदमसी एक प्रमुख चित्रकार हैं। हाल के दिनों में जिन भारतीय कलाकारों के चित्र लाखों रुपयों में बिकने शुरू हुए हैं उनमें आप भी शामिल हैं। कला के क्षेत्र में आप आदर्श-अनुकरणीय हैं।*

वे अतुलनीय हैं

मनजीत बावा
(अंतर्राष्ट्रीय चित्रकार)

अर्जुनसिंहजी को नौ-दस सालों से जानता हूँ। **भारत-भवन** बनने से पहले उन्हें बहुत कम जानता था। **भारत-भवन** बना और उनसे पहली मुलाक़ात हुई। दरअसल वे एक बड़े नेक और शांत स्वभाव के आदमी हैं। आठ-नौ साल तक मेरा उनसे सरोकार रहा, लेकिन कभी उन्होंने हमारे काम में हस्तक्षेप नहीं किया, जो ग़ौरतलब बात है। मैं कार्यकारिणी में भी था। हर आदमी की पसंद-नापसंद होती है कला और चित्रकला के प्रति, चाहे वो मंत्री हो या कोई व्यक्ति हो। वह अपने पसंद की कला को ही बढ़ावा देने का प्रयास करता है। लेकिन, एक बड़ी ख़ूबसूरत बात थी कि कभी उनकी ओर से दबाव नहीं पड़ा कि किस तरह की चित्रकला बने और न बने। उन्होंने कला की बात कलाकारों पर ही छोड़ रखी थी। यहाँ तक कि श्री अशोक वाजपेयी ने भी ठीक यही नीति अख़्तियार कर रखी थी। वे स्वयं कलाकार, कवि हैं : इसलिये वे बेहतर रूप से जानते थे कि क्या करना चाहिए। न अपनी तरफ़ से, न मंत्रालय की तरफ़ से, न मुख्यमंत्री की तरफ से ही कोई हस्तक्षेप के रूप में आदेश आया। ईमानदारी की एक अच्छी मिसाल यह थी कि सभी लगी हुई चित्रकलाओं की एक सूची हमारे पास थी। कभी यह नहीं कहा गया कि एक चित्रकला हमारे घर पहुँचा दी जाए। सारी चित्रकलाएँ जहाँ की तहाँ पड़ी रहीं और जो चीज़ हमें चाहिए थीं, वो मौज़ूद थीं। सभी कलाकारों को समय से भुगतान भी किया गया। जहाँ तक छूट की बात थी तो वह कलाकारों की ओर से ही आया था। इस तरह की दूरदर्शिता असाधारण आदमी के पास ही होती है और अर्जुनसिंहजी उसी कोटि में आते हैं। उस समय इतने सांस्कृतिक कार्यक्रम होते थे कि क्या कहा जाये। मध्यप्रदेश तो सांस्कृतिक केन्द्र ही बन गया था। हिन्दुस्तान के इतिहास में इस संदर्भ में उनका काम उल्लेखनीय रहेगा। कई बार मेरे जेहन में उतरता है, जैसा कि अकबर ने अपने दरबार में नवरत्न रखे थे, उसी तरह की सभा उन्होंने भी बना रखी थी वहाँ। भारत के चुने हुए कवि, कलाकार, लेखक, चिंतक, चित्रकार और अभिनेता वहाँ जमा हुए थे। हमें जानना चाहिए कि **भारत-भवन** सारी दुनिया में अच्छे म्यूजियमों में एक स्थान रखता है। यह बहुत बड़ी उपलब्धि है भारत के लिए, उसमें भी संस्कृति, कला के लिये अनुदान न के बराबर ही उपलब्ध कराया जाता है और यह उपलब्धि अर्जुनसिंहजी के बिना संभव नहीं थी।

अर्जुनसिंहजी का इस समय भी पूरा प्रयास है कि मध्यप्रदेश की तरह भारत को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लाया जाये। मुझे ऐसा लगता है कि केन्द्र थोड़ा अनुदानों में कटौती कर रहा है लेकिन इस पर समुचित ध्यान दिया जाये तथा केन्द्र में शांति बनी रहे और कॉंग्रेस सरकार बनी रही या बहुमत के साथ दूसरे चुनाव में सत्ता में आयी तो इस क्षेत्र में एक बहुत बड़ा कीर्तिमान स्थापित होगा। अर्जुनसिंहजी का 'विज़न' बहुत आगे है। वे बहुत धर्म के साथ सोचते-समझते हैं।

मेरे पास मिसाल है कि आज तक जितने भी मंत्री रहे, जिनका संस्कृति से ताल्लुक़ात था, ऐसा 'विज़न' किसी के पास नहीं था। मैं यह बात काफ़ी क़रीब रहने की वजह से कह पा रहा हूँ। इस संदर्भ में उनकी तुलना और किसी से नहीं की जा सकती है।

☐ *मनजीत बावा— भारत-भवन जिन चित्रकारों की उपस्थिति में अलंकृत हुआ— गौरवान्वित हुआ, इनमें मनजीत बावा का नाम उल्लेखनीय है। विश्व स्तर पर अपनी पहचान स्थापित कर चुके मनजीत बावा वर्षों भारत-भवन से सक्रिय रूप से जुड़े रहे कलाकार हैं।*

जितना मैंने उन्हें जाना

विजयमोहन सिंह
(कथा आलोचक-सम्पादक)

मुझे माननीय अर्जुनसिंहजी को लगभग पिछले 35 वर्षों से जानने का सौभाग्य प्राप्त है किन्तु इस जानने में 'मिलना' इतने लम्बे-लम्बे अंतरालों के बाद और इतने कम समयों के लिये होता रहा है कि यह 'जानना' किसी भी प्रकार की आत्मीयता अथवा अंतरंगता का दावा नहीं कर सकता किन्तु इस व्यतिक्रम में मुझे उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्षों की झलक पाने का सुयोग अवश्य मिलता रहा। इनमें से कुछ किंचित दिलचस्प तथा बिरल सुयोग भी रहे हैं।

....संभवतः वह 1963 का वर्ष था जब मुझे पहली बार उनसे मिलने का मौक़ा प्राप्त हुआ था। वह किसी पारिवारिक विवाह का अवसर था और अब सोचने पर सुखद आश्चर्य ही होता है कि उस अवसर विशेष पर सहसा मैंने पाया कि मुझे उन्हीं के साथ एक ही कमरे में ठहराया गया था। तब वे मंत्री नहीं थे, पर विधायक अवश्य हो गये थे और अपने समय के सबसे कम उम्र विधायकों में से थे। स्पष्टतः तब वे और अधिक आकर्षक किन्तु आज की भांति ही मृदुभाषी तथा मितभाषी थे किन्तु उन संक्षिप्त संवादों में ही मुझे उनके तेजस्वी व्यक्तित्व और बौद्धिक प्रखरता का पता चल गया था।

शायद यह प्रसंग मेरी स्मृति में इसलिये भी अटका रह गया है कि विवाहोत्सव के उन हल्के-फुल्के परिहासपूर्ण वातावरण में मुझे उनसे उन दिनों का अत्यंत लोकप्रिय गीत— जो तब लगभग राष्ट्रगीत जैसा बन गया था ... (लता मंगेशकर द्वारा गाया गया) 'ऐ मेरे वतन के लोगों, ज़रा आँख में भर लो पानी'— सुनने का दुर्लभ संयोग प्राप्त हुआ था।

.... मिलने के सुयोग ऐसे ही लम्बे-लम्बे अंतरालों के बाद आते रहे।

.... 1983 के अगस्त में, मैं जब मध्यप्रदेश शासन के 'संस्कृति विभाग' में 'विशेष कर्त्तव्यस्थ अधिकारी' के रूप में तथा **भारत-भवन** के साहित्य प्रभाग **वागर्थ** का प्रभारी अधिकारी होकर भोपाल गया तो पहली बार तथा एक तरह से लगातार वहाँ के तत्कालीन मुख्यमंत्री माननीय अर्जुनसिंहजी के संस्कृति अनुराग का ही नहीं, उनके संस्कृति संरक्षक व्यक्तित्व तथा कार्यप्रणाली से परिचित होने का मौक़ा मिला। सामान्यतः 'शासन' या सत्ता का संस्कृति या कला से प्रायः प्रतिकूल अथवा तनावपूर्ण रिश्ता ही बनता रहा है। सत्ता के द्वारा संस्कृति का संरक्षण अपने आप में प्रायः विनाशकारी या संस्कृति के लिए आत्महंता सिद्ध होता आया है। यह एक सामान्य तथा परम्परागत आस्थाबोधक मूल्य बन रहा है।

... मुझे भोपाल में इसका कम से कम प्रत्यक्षतः विपरीत पक्ष परिलक्षित हुआ— **भारत-भवन** के माध्यम से ही मेरे पुराने मित्र तथा कवि समीक्षक श्री अशोक वाजपेयी वहाँ संस्कृति तथा शिक्षा सचिव थे तथा **भारत-भवन** के सचिव भी। **भारत-भवन** की परिकल्पना के मूल में उनकी ही केन्द्रीय भूमिका थी, पर यह 'शहर सम्भावना' भी नहीं बन पाता यदि तत्कालीन मुख्यमंत्री अर्जुनसिंहजी द्वारा कला तथा संस्कृति को पूर्णतः सत्ता और शासन के हस्तक्षेप

से मुक्त न कर दिया गया होता। **भारत-भवन** को उन्होंने देश के महान तथा सर्व-स्वीकृत कलाकर्मियों के हाथों सुपुर्द तथा स्वतंत्र कर अपने को प्रायः अपरिलक्षित ही रखा था, यद्यपि उसकी प्रत्येक गतिविधि पर न केवल उनकी दृष्टि रहती थी, बल्कि उसकी हर आहट को वे 'पहले से ही जान जाते थे' अथवा जानते रहते थे।

... **भारत-भवन** का सम्भव होना आज नहीं तो कल इतिहास में एक आश्चर्यजनक उपलब्धि के रूप में जाना जाएगा। 1982 में जन्म लेता हुआ यह संस्थान महज आठ-नौ वर्षों में 1990 तक कितना कुछ उपलब्ध कर चुका था, इसका हिसाब-किताब पूछना हो तो श्री अर्जुनसिंहजी तथा अशोक वाजपेयीजी से पूछना चाहिए। जे. स्वामीनाथन और बी.वी. कारंत से भी।

.... इन सभी संभावनाओं और अंततः उपलब्धियों की ऊर्जा के स्रोत थे अर्जुनसिंहजी। वरना उनके परिदृश्य से हटते ही ये सारा शिराज बिखर नहीं जाता। भारत भवन 'एक स्वर्ग के खंडहर में' तब्दील नहीं हो जाता।

... यह संभवतः मैं ही नहीं, इस देश के सारी विधाओं के सभी महत्वपूर्ण कलाकार जानते हैं किन्तु क्या इस मौक़े का फ़ायदा उठाता हुआ पूछ सकता हूँ कि इस देश में कलाकारों की पुकार का क्या अर्थ है? या कोई अर्थ है भी?

... विचारों तथा विचारधाराओं की बहुलता और उसकी अभिव्यक्ति **भारत-भवन** का केन्द्रीय लक्ष्य था और इसके सबसे प्रबल पक्षधर ही नहीं, प्रवक्ता थे— श्री अशोक वाजपेयी। **रंगमंडल** के नाटकों, **वागर्थ** में आयोजित होने वाली अनेकों संगोष्ठियों, काव्य सभाओं में जिस तरह के विचार जिस उन्मुक्तता से व्यक्त किये जाते थे उन्हें किसी भी प्रकार से सत्ता के लिये हमेशा अनुकूल प्रतीत होने वाला नहीं कहा जाएगा। प्रायः स्थानीय अख़बारों में उन पर टीका-टिप्पणियाँ भी होती थीं लेकिन मुझे ऐसा कोई भी अवसर स्मरण नहीं है, जब अर्जुनसिंहजी की ओर से उन पर किसी प्रकार का अंकुश तो दूर, ऐसा भी कोई संकेत मिला हो जब प्रशासन ने ऐसी अभिव्यक्तियों के प्रति अपनी नापसंदी का इज़हार किया हो। ऐसी दो घटनाओं का मुझे स्मरण है। उन दिनों प्रख्यात रंगकर्मी तथा रंगमंडल के निर्देशक बी.वी. कारंत ने नाट्य क्षेत्र में एक अपूर्व प्रयोग किया था : उन्होंने ब्रेस्ट के 'काकेशियन चॉक सर्किल' का बुंदेली में रूपांतरण कराया था और उसका निर्देशन कर रहे थे— फ्रिट्स वेनेविट्स। दो-तीन दिनों के बाद एक विशेष विचारधारा के युवा कार्यकर्ताओं द्वारा उनके कुछ संवादों पर अश्लीलता का आरोप लगा और खासा हंगामा हुआ। इस सबके बीच जो रोचक और शायद महत्वपूर्ण तथ्य यह भी समझ में आया कि यदि तत्कालीन मध्यप्रदेश शासन ने विधानसभा में सर्वसम्मति से विधेयक पारित कर **भारत-भवन** को एक स्वायत्त न्यास का दर्ज़ा दे दिया था तो उसकी एक तर्कसंगत परिणति यह भी थी कि वह बिना किसी शासकीय हस्तक्षेप के अपनी अधिकांश समस्याओं का समाधान भी स्वयं ही करे। वरना होता यह भी है कि अनुकूल परिस्थितियों में तो स्वायत्तता, स्वतंत्रता का पर्याय बन जाती है किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में वह शासन की मुखापेक्षी हो जाती है। उस अवसर पर शासन ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया तथा **भारत-भवन** और रंगमंडल को उस परिस्थिति से स्वयं ही निपटना पड़ा। मेरे ख्याल में एक प्रौढ़ तथा परिपक्व निर्णय था— शासन का हस्तक्षेप न करना।

... एक दूसरा अवसर याद आता है, जब अर्जुनसिंहजी अखिल भारतीय कॉंग्रेस पार्टी के उपाध्यक्ष थे और स्वाभाविक रूप से अधिकतम व्यस्त व्यक्तियों में थे। तभी वह दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी जो लम्बे अरसे तक देशव्यापी 'स्कैंडल' बनायी जाती रही। रंगमंडल की वरिष्ठ तथा श्रेष्ठ अभिनेत्री विभा मिश्रा एक अग्नि-दुर्घटना में बुरी तरह जख़्मी हो गईं। डॉक्टरों के अनुसार—जख़्म 70 प्रतिशत से ज़्यादा थे और जीने की आशा न्यूनतम। पुलिस ने पता नहीं कैसे इसके लिये बी.वी. कारंत को जिम्मेदार ठहराया और उन्हें अचानक गिरफ़्तार कर लिया। विडम्बना यह थी कि उन दिनों श्री अशोक वाजपेयी भारतीय कवियों का एक प्रतिनिधि मंडल लेकर अमरीका में थे और प्रख्यात चित्रकार तथा भारत

भवन न्यास के न्यासी रूपंकर के निदेशक जे. स्वामीनाथन दिल्ली में बीमार पड़े थे। दुर्भाग्य से इस पूरे घटनाक्रम का साक्षी केवल मैं वहाँ मौजूद था। उस रात प्रायः एक बजे सूचना मिली कि पुलिस बी.वी. कारंत से यातनापूर्ण व्यवहार कर रही है। स्पष्टतः इससे मैं तथा उस घटना के परिदृश्य के साक्षी **भारत-भवन** परिवार के सभी सदस्य अत्यंत मर्माहत, व्यथित तथा उत्तेजित थे। किसी ने सुझाया अर्जुनसिंहजी को फोन पर सूचना दी जाये। आख़िर वे **भारत-भवन** के अध्यक्ष भी तो हैं। लेकिन क्या वे उपलब्ध भी होंगे, आख़िर वे देश के एक व्यस्ततम नेता हैं। मुझे यह दायित्व दिया गया और पहले से ही इस प्रयास की निरर्थकता समझते हुए जब मैंने रात को एक बजे किसी तरह भोपाल से दिल्ली का फोन मिलाया तो पता चला कि वे विश्राम करने चले गये हैं लेकिन जब मैंने अपनी उत्तेजना में पूरी घटना बयान की तो उत्तर आया कि मैं थोड़ी देर रुकूँ और कुछ क्षणों बाद ही फ़ोन पर आवाज़ आई– 'मैं अर्जुनसिंह बोल रहा हूँ।' मैंने उस स्थिति के बारे में उतनी देर में जो कुछ बतला सकता था, बताया। उन्होंने कहा मैं अभी पता करता हूँ, आप आधे घण्टे बाद पुनः सम्पर्क करें। आधे घंटे बाद फिर सम्पर्क किया गया, उन्होंने कहा 'पहले एक मुस्तैद वकील कर लें, कारंतजी के साथ कोई यातनापूर्ण व्यवहार नहीं किया जाएगा।' तीसरे-चौथे दिन वे भोपाल तथा **भारत-भवन** में थे। उन्होंने पूरी घटना तथा स्थिति का जायजा लिया फिर घटना प्रक्रिया की न्यायिक स्थिति समझते हुए उसका सूत्र सम्हाल लिया। संभवतः यह घटना किसी और तथ्य की ओर संकेत न भी करती हो तो यह तो बताती ही है कि ऐसे मानवीय पक्षों की ओर उनका ध्यान हमेशा से कितना अधिक रहता आया है। वरना कितना सहज या आसान होता इस पूरी घटना को अनदेखा कर जाना या उसे अपनी प्राथमिकताओं से परे ही रखना।

.... मैंने उन्हें जितना जाना, हमेशा इसी रूप में पाया है। यह किसी राजनेता की स्तुति नहीं, एक मनुष्य को उसकी सम्पूर्ण मानवीयता के संदर्भ में समझने का विनम्र प्रयास है।

☐ *विजयमोहन सिंह— मध्यप्रदेश-शासन के संस्कृति विभाग के विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी, भारत-भवन वागर्थ के प्रभारी अधिकारी-साहित्यिकार श्री विजयमोहन सिंह शासकीय सेवा में रहते हुए भी साहित्यानुरागी होने के कारण भारत-भवन और श्री अर्जुनसिंह के निकट रहे हैं। आपने संकट के पलों में मानवीय संवेदना के सचेत प्रहरी के रूप में अर्जुनसिंहजी सम्बन्धी संस्मरण प्रस्तुत किये हैं।*

महाराज भोज की परम्परा का अभिषेक

शंकरदयाल सिंह
(राजनीतिज्ञ– चिन्तक)

इतिहास में धार के राजा भोज ही एक मात्र ऐसे शासक दिखाई देते हैं, जिन्होंने वाग्देवी को अधिष्ठात्री देवी के रूप में प्रतिष्ठित किया तथा **सरस्वती कंठाभरण** जैसे ग्रंथ की रचना करके यह सिद्ध किया कि राजपद से कहीं बढ़कर विद्वता का अभिषेक है। जहाँ अन्य राजाओं-महाराजाओं-शासकों और राज प्रमुखों को उनके राज्य की परिधि में ही जाना गया या केवल राजप्रसाद की शोभा बढ़ाते रहे, वहीं महाराज भोज का उल्लेख सरस्वती के वरद-पुत्र के रूप में किया जाता है।

इस प्रसंग में भोज और कालिदास की यह कथा सर्वविदित है– महाराज भोज की कामना थी कि कालिदास उनके संबंध में एक ऐसा पद कहें जिसका अर्थ यह हो कि महाराज भोज नहीं रहेंगे तो इस धरती का क्या होगा? कालिदास ने भोज की यह बात नहीं मानी और राजधानी छोड़कर जंगल में चले गए। कुछ दिनों बाद भोज फ़कीर का वेष बदलकर स्वयं उन्हें खोजते हुए जंगल में पहुँचे और उन्हें ढूँढ निकाला। कालिदास ने उस फ़कीर से राजधानी का हाल-चाल पूछा तो उन्होंने कहा– "महाराज भोज तो रहे नहीं, राजधानी का हाल बेहाल है।"

इस पर कालिदास के मुँह से निकला–

अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती।
पंडिताः खंडिताः सर्वे भोजराजः दिवम् गतः।।

इस श्लोक को सुनते ही महाराज भोज ने अपना नकली चेहरा उतार दिया और मुस्कराने लगे। इस पर कालिदास ने दूसरा श्लोक कहा–

अद्य धारा सदाधारा सदालम्बा सरस्वती।
पंडिताः मंडिताः सर्वे भोजराजाः भुवम् गते्।।

श्री अर्जुनसिंह जब मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री हुए और उन्होंने जब **भारत-भवन** की स्थापना की, **कालिदास महोत्सव** राष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित-प्रसारित किया, तानसेन जयंती जैसी सांगीतिक परंपरा की नींव डाली तो पूरा देश उनकी ओर उन्मुख हुआ कि राजनीतिक द्वन्द्वता, उठा-पटक तथा कालचक्र के बीच साहित्य, कला, संगीत और स्थापत्य की चर्चा करने वाला यह कौन मुख्यमंत्री देश के मानचित्र पर प्रकट हुआ? जिन लोगों के कान हल्के-फुल्के गाने सुनते-सुनते बहरे हो गए थे तथा आँखों की ज्योति फिल्मी दृश्यों की चकाचौंध में क्षीण हो गई थी– उनमें एक नई चेतना का संचार हुआ, आशा की सुनहली किरण झाँकने लगी। प्रांतों की राजधानियों तथा अन्य कोनों से प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्रों में छोटी-मोटी राजनीतिक ख़बरें ही प्रमुखता से मुख पृष्ठों की शोभा बढ़ाती हैं, वहीं अब मध्यप्रदेश के अख़बारों

में कला-साहित्य-संस्कृति संगीत की खबरें प्रमुखता पाने लगीं, तब देश के कलाप्रेमियों एवं बौद्धिकों का ध्यान भोपाल, इंदौर, ग्वालियर, जबलपुर की ओर आपसे आप मुड़ा—निश्चय ही वहाँ कुछ हो रहा है। कला की चेतना सुगबुगा रही है। साहित्य के नए संदर्भ-चर्चा के विषय बन रहे हैं। संगीत की बिखरी तानें केन्द्रित हो रही हैं। राजनीति के धुंधलकों के बीच साहित्य,संगीत, कला और चित्रकारी की विद्युतरेखा कौंधती नज़र आई। कौन है वह चितेरा, जिसने अनगढ़ तूलिका से यह सब गढ़ने का दुस्साहस किया है? जवाब में जो नाम लोगों की ज़बान पर थिरका—वह नाम था अर्जुनसिंहजी का। उन दिनों देश की विभिन्न संगोष्ठियों में जब भी इन प्रसंगों की चर्चा चली और अर्जुनसिंहजी का नाम आया, मेरे मन में अनायास ही यह भाव अवतरित हुआ—राजा भोज की परम्परा का अभिषेक।

धार के राजा भोज मेरे लिए संवेदना, गौरव और कलात्मकता के प्रतीक पुरुष रहे हैं— इसका कारण सार्वजनिक न होकर व्यक्तिगत भी हो सकता है—अपनी वंशगत परम्परा का गौरव। मैं भी तो उसी सूत्र का एक अक्षर हूँ, वह अक्षर 'ब्रह्म' का आकार ले, तो इससे बड़ी बात और क्या होगी।

यों अर्जुनसिंहजी को जानने का, क़रीब से देखने का, उन्हें समझने का, मुझे विगत 20-25 वर्षों से मौक़ा मिलता रहा है। 1966 में पहली बार मैं जब अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी का सदस्य चुना गया उसी समय से उनसे मिलने का क्रम जारी रहा। 1969 में बंगलोर में जब काँग्रेस का विभाजन हुआ तो हम लोग सभी इंदिराजी के साथ रहे। संघर्ष के उन दिनों में निकटता आगे बढ़ी। 1971 में मैं लोकसभा का सदस्य चुनकर आया तथा उसी वर्ष काँग्रेस की केन्द्रीय चुनाव समिति का सदस्य चुना गया। अर्जुनसिंहजी उन दिनों मध्यप्रदेश में शिक्षामंत्री थे। मैं जब भी भोपाल जाता, उनसे अवश्य मिलता था तथा वे भी जब दिल्ली आते थे यदा-कदा मिला करते थे। बीच में समय ने करवट ली। राजनीति छिन्न-भिन्न हो गई—हम दोनों दो खेमों में बँट गए, मिलना-जुलना कुछ कम हो गया। लेकिन 1990 में मेरे राज्यसभा में आने के बाद और उनके 1991 में केन्द्रीय मंत्रिमंडल में शामिल होने के बाद उन्हें और निकट से देखने का मौक़ा मिला। सौभाग्यवश भारत सरकार की शिक्षा और संस्कृति संबंधी अनेक कमेटियों के सदस्य होने के नाते भी उन्हें क़रीब से परखने का मुझे अवसर मिलता रहता है।

इस बीच मैंने पाया कि केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री के रूप में उनका सतत् प्रयास रहा है कि शिक्षा और संस्कृति जैसे महत्वपूर्ण विषय को त्रिशंकु की तरह लटकाकर नहीं छोड़ा जाए, वरन् उसे सही दिशा निर्देश मिले। इस क्रम में नई शिक्षा नीति का प्रतिपादन और संस्कृति संबंधी राष्ट्रीय नीति का दस्तावेज़ प्रस्तुत करके उन्होंने मात्र अपने दायित्व का परिचय ही नहीं दिया, वरन् दिशा-संकेत का मार्ग प्रशस्त किया है। शिक्षा, संस्कृति, कला तथा खेल-कूद संबंधी विविध विषयों की जड़ता और फायलीय परम्परा से हटकर उन्होंने इन विषयों को व्यापकता प्रदान करने की कोशिश की है। मध्यप्रदेश में इन क्षेत्रों में किए गए कार्यों का विशद अनुभव उनके पास है, जिनका भरपूर लाभ आज देश को मिल रहा है।

अर्जुनसिंहजी के समान सुलझा व्यक्तित्व, गूढ़ राजनीतिज्ञ तथा सक्षम मंत्री भी मुझे कोई दूसरा नहीं दिखाई देता। मंत्री के रूप में उनके कार्य का तरीक़ा तथा संसद का सामना करने की उनकी क्षमता औरों से अलग है। चाहे किसी दल का कोई सांसद हो उसके मन में उनके प्रति आदर है वह उनका प्रशंसक बना देता है।

देश में इस समय दो ही ऐसे व्यक्ति मुझे नज़र आते हैं जिन्हें विशाल सामाजिक, शैक्षणिक और राजनीतिक अनुभव प्राप्त हैं। ये दोनों मध्यप्रदेश के हैं, पूरा देश उन्हें अच्छी तरह जानता भी है। पहले हैं राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा और दूसरे हैं श्री अर्जुनसिंह। दोनों का विपुल अनुभव लगभग हर क्षेत्र का है—विधानसभा सदस्य, मंत्री, मुख्यमंत्री,

काँग्रेस के प्रान्तीय अध्यक्ष, राज्यपाल, विरोधी दल के नेता, संसद सदस्य, केन्द्रीय मंत्री, काँग्रेस के अध्यक्ष तथा साहित्य-कला-संस्कृति से अद्‌भुत लगाव। इस रूप में इन दोनों का व्यक्तित्व सही अर्थ में राष्ट्र की धरोहर है।

डॉ. शंकरदयाल शर्माजी राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर पहुँच गए यह राष्ट्र का गौरव है, लेकिन अर्जुनसिंहजी को अभी कुछ और भी मंज़िलें तय करनी हैं, जो मुझे दूर नहीं दिखाई देतीं।

☐ *शंकरदयाल सिंह—श्री शंकरदयाल देश के वरिष्ठ राजनीतिज्ञ, सांसद, लेखक, चिंतक, विचारक और वक्ता के रूप में जाने जाते रहे हैं। आपका हिन्दी, अंग्रेज़ी, संस्कृत आदि भाषाओं पर एक जैसा अधिकार रहा है। संसद में संसदीय वक्ता के रूप में आप अग्रणी सांसद माने जाते रहे हैं। अनेक संसदीय प्रतिनिधि मंडल के साथ आपने विश्व के अनेक देशों की यात्राएँ की है।*

राष्ट्र के शिखर पुरुष

डॉ. चन्द्रप्रकाश वर्मा
(साहित्यकार)

श्री अर्जुनसिंह की कार्यक्षमता को निकट से देखने का सौभाग्य मुझे तब मिला, जब वे प्रदेश के शिक्षामंत्री थे। अपनी अप्रतिम सूझ-बूझ से उन्होंने शिक्षा विभाग को नवीन गतिविधि प्रदान की थी। सिद्धांत और व्यवहार में उनके प्रशासनिक मानक अत्यंत सुदृढ़ हैं। उनकी मान्यता है कि जिसप्रकार मस्तिष्क के बिना आँख ज्योतिहीन होगी, उसी भाँति विकास की कोई भी योजना, जो लोक-कल्याण से संबद्ध न होगी, अर्थहीन होगी। औषधि का नाम मात्र ले देने से रोग-मुक्ति नहीं होती, दीपक कह देने भर से प्रकाश नहीं फैलता, इसीप्रकार प्रशासनिक व्यवस्था की जड़ में जो रोग पैदा हो गया है, उसका दृढ़ता से निराकरण करने पर ही लोक-जीवन स्वस्थ और सुखी हो सकेगा। इस महान् परिवर्तन के लिए हमें अपनी सारी शक्ति लगा देनी होगी। केवल आकस्मिक भावावेशों की क्षणिक शक्ति के सहारे हम किसी महान् समाज या राज्य-व्यवस्था की सृष्टि कैसे कर सकेंगे? श्री सिंह ने एक बार अपने एक भाषण में कहा था– "सामाजिक और प्रशासनिक ढाँचे में केवल परिवर्तन के लिए परिवर्तन लाने की प्रक्रिया वाँछनीय नहीं। इसलिए किसी भी योजना का लक्ष्य उस समाज के निर्माण का होना चाहिए, जो सब प्रकार से शोषण-मुक्त होगा। हमारी तरुण पीढ़ियों पर भविष्य का बड़ा उत्तरदायित्व है। भावी राष्ट्र-निर्माण उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।"

उनके ये शब्द स्पष्टत: उनके अंतर की उस विकलता का परिचय देते हैं, जो विकलता किसी भी आदर्श नेता के भाव-जगत में निरन्तर कर्म का पुनीत मंगलाचरण पढ़ती रहती है। ऐसी ही कर्म-विकलता दुखियों के आँसू पोंछती है, पीड़ित को त्राण देती है, निराशा में आशा का संचार करती है।

श्री सिंह के छात्र-जीवन का प्रारम्भिक काल जन-जीवन की गतिविधियों से परिचय का काल है। उनकी प्रकृति में वे सारे तत्त्व आरंभ से सन्निहित थे, जो किसी व्यक्ति को सफल नेतृत्व की क्षमता देते हैं। जन्म से ही नियति उन पर कृपालु थी। उनके सहज गुणों की सूची लम्बी है— उच्च वंशानुक्रम, अभिजात्य, कुलीनता, सुंदर व्यक्तित्व, सुगठित देह-यष्टि, पुष्ट मस्तिष्क, एक संजीदा सजगता और एक उत्फुल्ल कल्पना-शक्ति।

श्री सिंह उन दर्शकों में नहीं, जो जीवन का खेल तट से देखते हैं। उनका जीवन-क्रम एक सुनियोजित निबंध की भाँति विकसित हुआ और उसमें निहित सिद्धांतों को उन्होंने व्यवहार रूप में अपनी दृढ़ संकल्प शक्ति के सहारे परिवर्तित कर दिया। पंद्रह वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने अपने एक मित्र को जो पत्र लिखा था वह उनके मस्तिष्क और विचारों की प्रौढ़ता का परिचायक है। उनके ये प्रारंभिक विचार-सूत्र ही उनके अनन्तर जीवन की पूर्व-भूमिका बन गए। वे वाक्यांश थे– "हम समय की अनवरत और स्पष्ट पुकार की अवहेलना तथा उपेक्षा नहीं कर सकते। राष्ट्र की अपेक्षाएँ हमारे जीवन में सर्वोपरि होनी चाहिए।"

श्री सिंह अपने छात्र-रूप में ही अत्यंत मेधावी और प्रभावशील थे। कम उम्र उनके प्रौढ़ चिन्तन में बाधक नहीं थी और तब भी वे समस्याओं का समाधान उनके गुण-दोष के आधार पर विवेक-सम्मत ढंग से ही करते थे। पर एक

बार जब वे किसी निर्णय के औचित्य के संबंध में आश्वस्त हो जाते, तब वे उसे दृढ़ता से कार्यरूप में परिणत करने में पीछे नहीं हटते थे। उनकी इस चारित्रिक विशेषता को स्पष्ट करने वाली एक घटना उनके कॉलेज-जीवन में घटित हुई जब वे इन्टरमीडिएट कक्षा के छात्र थे। उन्होंने महाविद्यालय में होने वाले चुनावों के समय छात्र-यूनियन के अध्यक्ष पद के लिए चुनाव लड़ने का निश्चय किया। यह पद उस समय तक कुछ परम्परा ऐसी थी कि केवल स्नातकोत्तर सीनियर छात्रों के लिए ही सुरक्षित समझा जाता था। श्री सिंह के इस निर्णय से कॉलेज के छात्र-वर्ग में एक हलचल-सी मच गई। सीनियर छात्रों की ओर से उन पर प्रचंड दबाव डाला गया, पर श्री सिंह अपने निर्णय पर अडिग रहे। उनकी मान्यता थी कि कॉलेज के इन स्वतंत्र चुनावों में छात्रों पर किसी भी प्रकार का प्रतिबंध लगाना एक अनौचित्यपूर्ण कार्य है। किसी भी पद पर किसी विशिष्ट छात्र-वर्ग का एकाधिकार अच्छी परम्परा नहीं है व्यक्ति स्वातंत्र्य पर आघात उन्हें स्वीकार न था। कोई भी परम्परा, चाहे वह कितनी ही पुरानी हो, यदि विवेक की कसौटी पर खरी नहीं उतरती, तो उसे समाप्त कर देना ही श्रेयस्कर होता है। इस घटना में श्री सिंह के निर्भीक स्वतंत्र चिन्तन की एक झलक हमें स्पष्टतः देखने को मिलती है। उनमें संकल्प और क्रिया के इस संगम ने ही उनके व्यक्तित्व को गरिमा और एक असाधारणता प्रदान की है।

श्री सिंह ने अपने कॉलेज-जीवन में उन समस्त गुणों की प्राप्ति हेतु साधना की, जो गुण सामाजिक जीवन में सफलता प्राप्ति के सोपान बनते हैं। वे प्रारंभ से ही एक बहुत अच्छे वक्ता रहे हैं और डिबेट आदि में उनके तर्कपूर्ण अकाट्य शाब्दिक प्रहार विरोधी को निरुत्तर बना देते थे। दरबार कॉलेज, रीवा में उनकी वक्तृत्व-कला की धाक् थी। इसी अवधि में उन्होंने विभिन्न विषयों पर गहन अध्ययन भी किया और अपने ज्ञानक्षितिज को अत्यंत व्यापक बनाया। उनका पुस्तक-प्रेम इसी अवधि की देन है। वे एक अत्यंत निष्णात लेखक हैं और उनकी लेखनी का एक अपना प्रभाव और आकर्षण है। विचारपूर्ण लेखन अपनी विशिष्टता है। श्री सिंह के पास एक कवि का हृदय और एक वैज्ञानिक का मस्तिष्क है। हृदय और मस्तिष्क के इन गुणों के प्रकाश में उनका सार्वजनिक मंच पर अवतरण एक अवश्यम्भावी संभावना बन चुकी थी और ऐसे क्षणों में सार्वजनिक कर्मक्षेत्र से विलग होना कर्म-गंगा को विपुल प्रसार से उद्गम की ओर ले जाना ही होता। इस जीवन-बिन्दु पर सार्वजनिक जीवन से विराग एक विडम्बना ही सिद्ध होती है। यह स्वयं के व्यक्तित्व के प्रति अपना ही असहयोग होता। संभावनाओं से भरी हुई भावी ने ऐसा नहीं होने दिया और श्री सिंह को राजनीतिक चक्रवात में कूदने का अवसर शीघ्र मिल गया, जबकि वे मझौली चुनाव क्षेत्र से राज्य विधानसभा की सदस्यता के लिए एक स्वंतत्र उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए। वे विजयी हुए और नवनिर्मित विधानसभा में स्वतंत्र विधायक दल के नेता निर्वाचित किये गए, जिस पद पर बड़ी कुशलता से उन्होंने तीन वर्ष तक कार्य किया। 1960 में हमारे प्रिय नेता स्व. पं. जवाहरलालजी नेहरू के निर्देशानुसार वे काँग्रेस पार्टी में सम्मिलित हो गए।

प्रदेश के सार्वजनिक जीवन में श्री अर्जुनसिंह का योगदान स्तुत्य है। वे इस क्षेत्र में किसी अंतःप्रेरणावश ही प्रविष्ट हुए। विश्वविद्यालयीन शिक्षा समाप्त कर उनकी स्वप्नदर्शी आँखों के आगे एक उज्ज्वल कैरियर का लुभावना आकर्षण था। उनका छात्र-जीवन अंतःप्रतिभा से आलोकित था। अतः उनके आसपास उनके आई.ए.एस. में प्रविष्ट होने के परामर्श आने लगे। यह चर्चा एक चपल भावना-तरंग-सी उनके समीप कुछ काल तरंगित हुई पर इसे उन्होंने अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति के सहारे दूर ठेल दिया। राष्ट्र-सेवा का पुनीत संकल्प जिसके हृदय-स्पंदन में समा गया था, वह केवल प्रशासनिक सेवा की सीमाओं के भीतर अपने आपको कैसे आबद्ध करता। जिसे जीवन-व्यापी संघर्ष पल-पल पर निमंत्रण दे रहा था, वह महाप्राण केवल सुख-सुविधाओं के क्षेत्र में अपना जीवन-शिविर कैसे तान देता। जिसकी दृष्टि में सुख का आकर्षण धूमिल बन चुका था और जिसे संघर्ष का दुःख अब सहज और अपना लगने लगा था, उसके जीवन-समाधान के सत्र की परिभाषा और व्याख्या कौन करता। संघर्ष के सातत्य का आकर्षण कितनों को लुभा पाया है।

श्री सिंह के अंतर्जगत् की संघर्षरत भावनाओं का सही चित्र उनके एक पत्र की कुछ पंक्तियों में देखने को मिलता है, जो पत्र उन्होंने अपने एक मित्र को उस मन:स्थिति में लिखा था– "कितने लम्बे एकाकी वर्ष व्यतीत हो गए, मैं अपने विचारों को काल रूपी पात्र में संघर्ष की ज्वाला में उबालता रहा हूँ और धैर्य से उन क्षणों की प्रतीक्षा करता रहा हूँ, जबकि विचारों का यह तपा हुआ कंचन व्यवहार की कसौटी पर कसा जा सकेगा। दुर्निवार बाधाएँ मेरे मार्ग में आयी हैं, पर मैं उन सब पर विजय पाता गया। मैं यह तो नहीं कह सकता कि मेरी यह सफलता अपने आप में पूर्ण थी, पर इतना मैं अवश्य विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि मुझे अपने जीवन की कर्म-परम्परा से कहीं कोई शिकायत नहीं। मेरे हृदय में कहीं कोई पश्चाताप नहीं। जीवन-यापन कठिन नहीं, कठिन होता है कुछ आदर्शों के प्रति पूर्ण समर्पित होना।" इस प्रकार सार्वजनिक जीवन एक अति पवित्र धरोहर के रूप में उनके पास आया, जिस धरोहर की रक्षा पूर्ण पवित्रता और संकल्प-निष्ठा से अब तक वे करते आ रहे हैं। सार्वजनिक जीवन की आराधना उनके जीवन में ईश्वर-आराधना का ही दूसरा स्वरूप थी।

विधानसभा में प्रवेश के बाद महत्त्वपूर्ण कमेटियों में उन्होंने उल्लेखनीय योगदान दिया। पब्लिक एकाउन्ट्स और स्पेशल प्रिविलेज इसके उदाहरण हैं। 1962 में चीनी आक्रमण के समय, जबकि समस्त देश पर चिन्ता की सघन मेघमाला उमड़ आई थी, उन्होंने विधानसभा में अपने उस ऐतिहासिक अशासकीय प्रस्ताव को स्वीकृत कराया, जिसके फलस्वरूप विधानसभा सदस्यों को भी सेना में प्रवेश लेने की स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी। श्री सिंह की अखंड देशभक्ति, उनकी मातृभूमि के लिए सर्वस्व त्याग की महती अभिलाषा, उनकी उद्दाम संकल्प और कर्म-महिमा उन क्षणों में प्रकट हुई, जबकि प्रस्ताव स्वीकृत करा देने मात्र से उन्हें संतोष नहीं हुआ, पर सेना में कमीशन हेतु उन्होंने अपना आवेदन-पत्र भी भेज दिया। पर कुछ व्यवहार-नियमों की बाधा के फलस्वरूप वे उस सैन्य जीवन का बाना उल्लासपूर्वक धारण न कर सके, वास्तव में जो उनका अभिलाषित था। यह समर-रूपी प्रलय की दिशा में उनका बढ़ा हुआ क़दम था और सृष्टि की दिशा में उनका उठा हुआ क़दम वह था, जब विधायक के रूप में रिहंद बाँध द्वारा प्रदेश की विद्युत्-प्रदाय की योजना का अशासकीय प्रस्ताव भी उन्होंने विधानसभा में अपनी विलक्षण विधायक-प्रतिभा द्वारा स्वीकृत कराने में सफलता प्राप्त की।

श्री सिंह की आंतरिक रुचि उन समस्त गतिविधियों में है, जो सामाजिक प्रगति को नवीन सोपान देती हैं। उनका कार्यक्षेत्र विविधता की एक परिपूर्णतामयी झाँकी है। कॉसमोपॉलिटन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक अफेयर्स, भोपाल, के संस्थापक अध्यक्ष के रूप में उन्होंने सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति के क्षेत्र में जो मूल्यवान योगदान दिया, वह चिरस्मरणीय है। 1965 से 1970 तक वे मध्यप्रदेश में यूथ काँग्रेस के संयोजक रहे और संस्था को उन्होंने नित्य नवीन शक्ति-उर्जा से मंडित किया।

1964 में श्री अर्जुनसिंह ने मॉस्को के यूथ फेस्टिवल में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के उप-नेता के रूप में भाग लिया। 1969 में उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्रवाई में भारतीय सद्भावना मंडल के सदस्य के रूप में भाग लिया। 1970 में उन्होंने बेलग्रेड में मानव अधिकार पर आयोजित कॉन्फ्रेंस में भारत का प्रतिनिधित्व किया। अपने विदेश-प्रवास के दौरान श्री सिंह ने विश्व में प्रवाहित उन सभी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक विचारधाराओं का इस देश के साथ तुलनात्मक परीक्षण करते हुए गहन अध्ययन किया, जो विचारधाराएँ विश्व गतिविधि को प्रभावित कर रही थीं। उनका यह अध्ययन भारत के साथ तुलनात्मक परीक्षण के रूप में था, जिससे राष्ट्रीय प्रगति की नवीन संभावनाओं का सही-सही आंकलन किया जा सके।

1963 तक सार्वजनिक क्षेत्र में उनकी कर्मसाधना पर्याप्त प्रतिष्ठा अर्जित कर चुकी थी और उन्हें राज्य के मंत्रिमंडल में कृषि राज्य मंत्री के रूप में सम्मिलित होने का आमंत्रण मिला। एक कर्मठ मंत्री के रूप में उनकी ख्याति फैलने लगी। उनकी कार्य-प्रणाली में प्रशासनिक समस्याओं की गहरी पकड़ और उनका द्रुत समाधान निहित था। प्रश्नों से जूझना

उनका आत्म-सुख था। उनका स्थगन उन्हें स्वीकार न था। 1967 में वे योजना और विकास विभाग में केबिनेट मंत्री बने। इस विभाग में कार्य करते हुए वे प्रादेशिक साधनों को राष्ट्रीय प्रगति के साथ एक रेखा में ले आये। प्रदेश की जनता की सर्वांगीण प्रगति उनका एकमात्र लक्ष्य था। श्री सिंह की दृष्टि में विकास का अर्थ था एक नवीन शोषणहीन सामाजिक व्यवस्था का उदय, जिसमें आर्थिक आधार पर सामाजिक वर्गभेद के अंतर को मिटाने का अथक प्रयास था।

1972 के आम चुनाव में वे पुन: राज्य विधानसभा के लिए निर्वाचित हुए। उनकी यह विजय इस अर्थ में ऐतिहासिक थी कि उन्होंने अपने विरोधी को चुनाव के क्षेत्र में उतरे सभी काँग्रेस प्रत्याशियों की तुलना में सर्वाधिक मतों से पराजित किया था। लोकतंत्रवादी श्री सिंह की यह अभूतपूर्व विजय प्रदेश की प्रतिक्रियावादी शक्तियों को एक पाठ-सा पढ़ा गई।

श्री सिंह इस विशाल प्रदेश के शिक्षामंत्री भी बने। यह एक चुनौती भरा उत्तरदायित्व था। यह वह वातायन था, जिसके माध्यम से जीवन क्षितिज पर बिखरे हुए समस्त प्रकाश और अंधकार की समीक्षा संभव थी। उन्होंने तम का उन्मूलन करते हुए ज्ञान के पूँजीभूत आलोक को सब दिशाओं में बिखराने का पुण्य-आयोजन आरंभ कर दिया। वे शिक्षा के सिद्धांत और उसके व्यवहार को बहुत समीप ले आये और शिक्षा के द्वारा नवीन सामाजिक व्यवस्था के निर्माण की समस्त संभावनाएँ एक साथ ही क्रियाशील हो उठीं।

शिक्षामंत्री के रूप में सर्वप्रथम उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में समस्याओं का गहन अध्ययन किया और फिर सुव्यवस्थित ढंग से उनके निराकरण की प्रक्रिया प्रारंभ की। समस्याएँ अपने आकार-प्रकार में विविधरूपा थीं। श्री सिंह की सौम्य-शांत-सुस्थिर प्रकृति के समक्ष हर समस्या समाधान की देहरी पर अपना समर्पण करती रही। छात्र-समस्या और उनके विविध आंदोलन उन दिनों शिक्षा-व्यवस्था पर एक प्रश्न चिन्ह-से बन गए थे इसलिए सर्वप्रथम श्री सिंह ने अपने प्रति छात्र-वर्ग का विश्वास अर्जित किया। अपने विश्वास में लेकर उन्होंने प्रथम बार छात्रों को शिक्षण संस्थाओं में उनसे संबंधित क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व देने की योजना को रूप दिया। यह एक साहसिक क़दम था। सूझ-बूझ भरा निर्णय था। छात्र-वर्ग में समाधान और संतोष की एक कृतज्ञ भावना एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ गई। शैक्षणिक सुधार के इस प्रथम चरण में श्री सिंह को आशातीत सफलता प्राप्त हुई। शिक्षित युवकों की बेरोज़गारी, हर शैक्षणिक स्तर पर शिक्षा की नवीन संरचना, पाठ्य पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण, परीक्षा प्रणाली में सुधार, पाठ्यक्रम में संशोधन, शोधकार्य को प्रोत्साहन, ग्रामीण शिक्षा, वैज्ञानिक प्रगति, प्रदेश में सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों का नवोन्मेष ये सब कुछ ऐसे प्रश्न थे, जिनके समाधानकारी उत्तर दिए गए। श्री सिंह व्यवस्था की उस रूपान्तरण प्रक्रिया में विश्वास रखते हैं, जो अधिक-से-अधिक समय तक अधिक-से-अधिक मानव-समुदाय को कल्याणकर सिद्ध हो। उनकी दृष्टि में शिक्षा की प्रक्रिया सत्य, शिव और सुन्दर का ही पर्याय है।

1977 में श्री सिंह पुन: जीते और वे काँग्रेस (आई) पार्टी नेता निर्वाचित हुए। जनता पार्टी का शासन-काल था और इस बार विधानसभा में उनकी भूमिका विरोधी दल के नेता की थी, जिसका निर्वहन उन्होंने अत्यंत प्रभावी ढंग से किया। उन्होंने अवसर पाने पर व्यवस्था के सुधार हेतु अपनी गिरफ़्तारी दी तथा रीवा जेल में भूख हड़ताल की। उन्होंने कठिन-से-कठिन समय में अपनी पार्टी के मनोबल को बनाए रखा और स्वत: अनेक आपदाओं, विघ्न-बाधाओं को अपनी सहज शान्त प्रकृति से झेलते रहे।

1980 में वे पुन: चुरहट क्षेत्र से बहुत बड़े बहुमत से जीते और निर्विरोध काँग्रेस (आई) विधानसभा दल के नेता मनोनीत होकर इस विशाल प्रदेश के मुख्यमंत्री के गरिमामय पद पर आसीन हुए। एक नई सुबह का अरुणिम प्रकाश जीवन-क्षितिज पर बिखर गया और प्रदेश की जनता ने सुदूर अंचलों तक में यह अनुभव किया कि भविष्य उज्ज्वल संभावनाओं से भर गया है। मुख्यमंत्री पद को ग्रहण करते ही श्री सिंह ने अपनी पार्टी के सदस्यों को सम्बोधित

करते हुए कहा– "पिछड़ापन हमारे प्रदेश की सबसे बड़ी समस्या है, पर जन-प्रतिनिधियों के निरन्तर सहयोग से मुझे पूर्ण आशा है कि हम अभावग्रस्त जनता के अभावों को दूर कर उसे सुखी बना सकेंगे।"

श्री अर्जुनसिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में प्रदेश के इतिहास में विकास और सुधार के गौरवपूर्ण अध्याय लिखे गए। मुख्यमंत्री का कार्यभार बहुत बढ़ जाता है। एक साथ अनेक महत्त्वपूर्ण विभागों को नियमन और प्रशासनिक समन्वय एक अनिवार्यता बन जाता है। गोमुखी गंगा विशाल गंगासागर में परिणत हो जाती है। जिस भाँति सूर्यदेव अपने सप्तवर्णी ज्योतिरथ को पूरे दिनमान में गगन-पथ पर एक साथ समता और संतुलन से चलाते हैं, उनके करों में समस्त वल्गाएँ तनी रहती हैं और प्रकाश का व्यापक विभामंडल चतुर्दिक खिंचा रहता है, कुछ उसी भाँति प्रदेश के मुख्यमंत्री का दायित्व रहता है। यही अभिलाषित रहता है कि प्रदेश के विकास की बहुमुखी गंगा का पथ-निर्देश भागीरथ के समान ही होता रहे।

श्री सिंह बीस सूत्रीय कार्यक्रम को चरम महत्ता देते हुए प्रशासन में कसाव लाये, जिससे इस कार्यक्रम का क्रियान्वयन उत्तम ढंग से हो सके। क़ानूनी व्यवस्था को सुधारा गया और समस्याग्रस्त भू-खण्डों में शांति स्थापित की गई। राज-रोग की तरह फैली हुई डाकू-समस्या के उन्मूलन में शासन को आशातीत सफलता मिली और नागरिक तथा ग्रामीण क्षेत्रों में उसके शुभ परिणाम सर्वत्र परिलक्षित होने लगे। कृषि, भूमि-सुधार, सिंचाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, उद्योग, विद्युत-ऊर्जा, आदिवासियों, जनजातियों, हरिजनों तथा अल्पसंख्यकों के हित-संरक्षण के प्रयासों ने सफलता की नवीन ऊँचाइयों को स्पर्श किया।

किसी भी जाति या समाज के अभ्युदय में उस प्रदेश की सांस्कृतिक चेतना का विकास एक मापदंड की तरह कार्य करता है। राष्ट्र के अन्तराल में शाश्वत रूप से प्रवाहित होने वाली विचारधारा कालान्तर में सामूहिक रूप से सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। सांस्कृतिक जागरूकता हर समाज की जीवन-संजीवन बनती है। देह की सुविधाएँ अनेक हो सकती हैं, पर आत्मा की भूख के निवारण का भी कोई उपाय होना चाहिए और श्री सिंह का ध्यान जीवन की इस आधारभूत आवश्यकता की ओर भी गया और उन्होंने शासकीय स्तर पर संस्कृति विभाग की स्थापना कर दी। संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में प्रदेश के संस्कृति विभाग ने अनेक कीर्तिमान स्थापित किए। संस्कृति अभ्युत्थान ने सफलता का एक गौरवमय इतिहास बनाया। भोपाल में **'भारत-भवन'** प्रदेश की गहरी सांस्कृतिक चेतना का पूर्ण प्रतीक बनकर स्थापित हुआ, सुधी वर्ग द्वारा भोपाल को भारत की सांस्कृतिक राजधानी माना जाने लगा। क्या ये उपलब्धियाँ प्रदेश के इतिहास की स्वर्णिम भाग्य लिपियाँ नहीं?

☐ *डॉ. चन्द्रप्रकाश वर्मा— प्राध्यापक, लेखक सुकोमल छायावादी कवि डॉ. चन्द्रप्रकाश वर्मा मध्यप्रदेश में भाषा विभाग के संचालक भी रहे। आपके अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। काव्यमय भाषा के आलेख भी प्रकाशित होते रहे। आपके मार्गदर्शन में अनेक युवक-युवतियों ने* **डॉक्टरेट** *की उपाधि प्राप्त की। चिर विश्राम के क्षणों तक आप कविताएँ लिखते रहे।*

संस्कृति शिल्पी : कुछ अविस्मरणीय प्रसंग

प्रोफ़ेसर डॉ.धनंजय वर्मा

पूर्व कुलपतिः डॉ.हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश

"संस्कृति का क्षेत्र निश्चय ही अत्यंत संवदेनशील है और समान्यतः सरकारें, इस भय से कि कहीं कला जगत में प्रायः तीक्ष्ण रूप से अनुकूलित संवेदनशीलता को चोट न पहुँचे, इससे अपने को दूर रखती हैं। इसके बावजूद हर सभ्य समाज और राज्य का एक कलात्मक स्वभाव होता है और उन कलात्मक अभिव्यक्तियों को, जिनके समवाय से यह स्वभाव बनता है, प्रोत्साहित, सुरक्षित और संशोधित करने का प्रयत्न, हर समाज और राज्य करता ही है। ऐसे राज्य, जहाँ इस तरह का प्रयत्न न हो या जहाँ कलात्मक अभिव्यक्ति को दबाने का सचेत प्रयत्न किया जाये, एकदलवादी होते हैं और वहाँ राज्य के हितों और कुछ समय के लिए सत्तासीन विशिष्ट वर्ग के हितों को एक मान कर, उन्हें ही पूरी बेरहमी के साथ प्रोत्साहित और सुरक्षित किया जाता है। सौभाग्य से हमारे देश में ऐसी स्थिति नहीं है और मेरी उम्मीद और प्रार्थना है— कभी नहीं होगी...."

आपको शायद आश्चर्य होगा, मुझे तो पहली बार पढ़कर सचमुच हैरत हुयी थी कि यह उद्धरण उस अंग्रेज़ी-वक्तव्य के एक हिस्से का अनुवाद है, जो किसी कलाकार-साहित्यकार, बुद्धिजीवी या संस्कृतिकर्मी ने सांस्कृतिक चेष्टा और रचनाकर्म की स्वतंत्रता और स्वायत्तता में अपनी एकान्त निष्ठा का उद्घोष करते हुए नहीं दिया था; बल्कि यह उस नोट का हिस्सा है जो सरकारी नोटशीट के लगभग दो पृष्ठों में अपने हाथ से, बिना किसी काँट-छाँट के एकबारगी ही मध्यप्रदेश शासन के तत्कालीन शिक्षामंत्री श्री अर्जुनसिंह ने लिखा था— जब मध्यप्रदेश कला परिषद् की गतिविधियों को लेकर राजनीतिक हलकों में गहमागहमी थी और सम्भवतः विधानसभा में कोई हंगामा भी हुआ था।

इस वक्तव्य को इतने बरसों बाद याद करने और उसे रेखांकित करने का कुल मक़सद सिर्फ़ इतना है कि जिस संस्कृति विभाग की गतिविधियाँ पूरे देश में चर्चा का विषय बनीं, जिसे लोगों ने एक मॉडल के रूप में स्वीकार किया, वो एक दिन में, आनन-फानन, किसी सरकारी हस्तक्षेप या संस्कृति के सरकारीकरण की मंशा से नहीं बन गया। उसके पीछे कला और संस्कृति की प्रकृति और प्रक्रिया की जानिब एक सुचिन्तित दृष्टि थी, एक दर्शन था, एक 'विज़न' था, एक नीति थी, एक संकल्प था, एक योजना थी। उसी वक्तव्य में आगे कहा गया है:

"मध्यप्रदेश में संस्कृति के क्षेत्र में सरकार को किस सीमा तक भूमिका हम निभाने दें, मेरे विनम्र मत से इस प्रश्न पर विचार, विवेक, संयम और गहरे उत्तरदायित्व के भाव से किया जाना चाहिए। मेरी राय में सरकार को संस्कृति के क्षेत्र में सक्रिय होने से सिर्फ़ इस आधार पर पीछे नहीं हटना चाहिए कि उसमें चीज़ों को मन चाहे मोड़ अख़्तियार करने दिये जायें और न ही इस आधार पर कि इस प्रक्रिया में कुछ न्यस्त स्वार्थ विचलित अनुभव करेंगे। ज्यों ही सरकार संस्कृति के क्षेत्र में उदार और आगे की ओर देखने वाली प्रगतिशील नीति अपनाती है, उसकी वजह से अनेक नयी पहलें सामने आयेंगी....।"

दरअसल संस्कृति के क्षेत्र में सक्रिय होने के नतीजतन निश्चय ही अनेक पहलें सामने आयीं और उनका सिलसिला मध्यप्रदेश शासन में संस्कृति विभाग के गठन के भी बरसों पहले शुरू हो चुका था जिसके केन्द्र में थी, मध्यप्रदेश कला परिषद्।.... राज्य पुनर्गठन की वजह से ग्वालियर स्थित मध्यभारत कला परिषद् भोपाल आ गई थी और मध्यप्रदेश कला परिषद् के नाम से साहित्य, कला और संगीत की छिट-पुट गतिविधियों का केन्द्र थी। वह शिक्षा विभाग के अन्तर्गत थी। उसके अध्यक्ष भी शिक्षामंत्री ही थे। श्री अशोक वाजपेयी उसके सचिव हो गए और धीरे-धीरे उन्होंने उस पर पूरा नियंत्रण कर लिया। उन्होंने न केवल उसका पुनर्संस्कार किया, वरन उसे इतना सक्रिय भी बना दिया कि वह प्रदेश ही नहीं, पूरे देश की सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र हो गयी। संगीत सभायें हों या नृत्य उत्सव, कविता की कर्मशाला हो या थियेटर वर्कशाप, कला-प्रदर्शनी हो या नाट्य-समारोह, साहित्य संगोष्ठी हो या काव्य पाठ की सुबह-शाम-या-रात, व्याख्यानमालायें हों या लोक-उत्सव, सालाना कला-समागम हो या साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक कार्यक्रम..... उन दिनों लेखक-कवि, संगीतकार, रंगकर्मी, मूर्तिकार, चित्रकार, छायाकार, नर्तक, अभिनेता, नाट्य-निर्देशक, कला-आलोचक, पत्रकार— सबके रास्ते कला परिषद् या उसके आयोजन स्थल रवीन्द्र-भवन की ओर जाते थे। पूरब और पच्छिम, उत्तर और दक्षिण से आने वाली ट्रेनों या बसों में-से कंधे पर थैला लटकाए, कुरता-पैजामा पहने, चप्पल चटकाता, कलाकार-लेखक कवि-अभिनेता-नुमाँ हर व्यक्ति मध्यप्रदेश कला परिषद् का पता पूछता हुआ आता और उसका मेहमान होता। दिल्ली और बनारस, इलाहाबाद और लखनऊ के हिन्दी कवि-लेखक आये दिन भोपाल-प्रवास पर होते और अपनी कविताएँ सुनाते या फिर अपने गुरु-गम्भीर भाषणों से भोपाल के दर्शकों और श्रोताओं का मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन करते।

कला परिषद् के आयोजनों में भाग लेने, आयोजनों की रिपोर्ट लिखने, लेखकों-कवियों से साक्षात्कार लेने या नृत्यांगनाओं, संगीतकारों से बातचीत करने के लिए मुझे नरसिंहपुर से अक्सर ही भोपाल बुलाया जाता था। ऐसे ही किसी भोपाल प्रवास में एक शाम मैं और शानी श्री अशोक वाजपेयी के चौहत्तर बंगले वाले बंगले की लान पर बैठे थे। शाम भींगने लगी थी। मन की एक मौज़ और तरंग में श्री अशोक वाजपेयी ने ख़ासे आत्मीयता भरे अंदाज़ में मुझसे कहा:—

— "मित्रवर, यह आप मुझसे 'आप' क्यों कहते हैं? और अशोक जी सम्बोधन भी क्यों? आप तो मुझसे 'सीनियर' हैं। 'तुम' और सिर्फ़ अशोक से भी तो काम चल सकता है।"

— "आपकी इनायत का शुक्रिया" — मैंने कहा— "मैं आभारी हूँ कि आप मुझे अपना मित्र और सीनियर समझते हैं। मैं आपसे छह बरस पहले पैदा ज़रूर हो गया हूँ और सागर विश्वविद्यालय में आपसे चार बरस पहले मैंने एम.ए. भी कर लिया है लेकिन सीनियर तो अब आप ही हैं इसलिए 'आप' और 'जी' वाले सम्बोधन ही उचित हैं। मैं हूँ एक सरकारी कॉलेज का मुदर्रिस और आप हैं एक आला अफ़सर। कल आप शिक्षा विभाग के भी सचिव हो सकते हैं। तब मेरा 'तुम' और 'अशोक' सम्बोधन क्या उचित होगा? फिर बहुत अनौपचारिक होने में एक ख़तरा और भी है। बातचीत या बहस-मुबाहसे में कहीं-कभी, जाने-अनजाने मुझसे कोई बेअदबी या कुछ गुस्ताख़ी हो गयी तो उसका ख़मियाजा भी तो आख़िरकार मुझे ही भुगतना पड़ेगा।"

बात आयी-गयी, हो गयी। हालाँकि मेरे दो-एक विद्यार्थियों से श्री अशोक वाजपेयी के रिश्ते तू-तड़ाक के बने लेकिन मैंने हमेशा एक मर्यादा भरसक बनाए रखी।

फिर एक शाम यह तय हुआ कि "मित्रवर धनंजय वर्मा अब भोपाल आ जायें।"..श्री अशोक वाजपेयी शिक्षा विभाग में उपसचिव हो गये थे। शिक्षामंत्री श्री अर्जुनसिंह थे ही।...प्रस्ताव बना, अनुमोदित हुआ और लगभग

एक सप्ताह बाद, एक दिन तबादला आदेश लेने के लिए उन्होंने मुझे वल्लभ भवन बुलाया। मैं पहुँचा। लिफ्ट में ही श्री अशोक वाजपेयी ने पूछा —

— "ये पीएनएसटी कौन है?"

— "वो डीकेटी के छोटे भाई हैं। मेरे विद्यार्थी हैं और हमीदिया कॉलेज में हिन्दी के लेक्चरर हैं" मैंने कहा।

— "मैंने कल शाम ही फ़ाइल अवरसचिव को आपके तबादला आदेश जारी करने के लिए दे दी थी, लेकिन उन्होंने बताया कि तब तक कर्मचारी जा चुके थे। आदेश टाइप नहीं हो पाए।... आज मैंने पूछा तो अवर सचिव ने बताया कि देर शाम राजभवन से फ़ोन आया था कि पीएनएसटी का प्रमोशन होना है इसलिए उस पद पर किसी की पोस्टिंग न की जाय और जो आदेश होने वाले हैं उन्हें रोक दिया जाय। कल रात ही शिक्षामंत्री जी भी दिल्ली चले गए हैं। अब आप वापस चले जायें। उनके आने पर ही कुछ हो सकेगा।" श्री अशोक वाजपेयी ने स्थिति स्पष्ट की।

फिर उन्होंने ही बताया कि शिक्षामंत्री जी के दिल्ली से वापस आते ही उन्होंने इस आशय का एक लम्बा नोट बनाया कि जिसका स्थानान्तरण प्रस्तावित है वो एक लेखक और सीनियर सहायक प्राध्यापक हैं, प्रदेश की सांस्कृतिक गतिविधियों में उनकी सक्रिय भागीदारी रही है, भोपाल के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में उनकी उपयोगिता है और जिसके लिए प्रस्ताव (आदेश) रोका गया है वो उनके विद्यार्थी और सिर्फ़ एक लेक्चरर हैं। इस नोट के साथ शिक्षामंत्री जी राजभवन गए। महामहिम को वस्तु स्थिति बताई। पता चला कि किसी व्याख्याता या सहायक प्राध्यापक के तबादले या पोस्टिंग में महामहिम की क़तई कोई दिलचस्पी नहीं है। वो तो किसी निजी सहायक ने अवर सचिव से फ़ोन पर कह दिया होगा।... बहरहाल, मेरा तबादला हो गया। मैं दुबारा भोपाल आ गया। अपनी मुदर्रिसी के अलावा मध्यप्रदेश कला परिषद् की सांस्कृतिक गतिविधियों में अपनी यत्किंचित, यथा-अपेक्षा, बल्कि यथा-आदेशित भूमिका निभाता रहा।

एक सुबह मैं शिक्षामंत्री जी के बंगले पर पहुँचा। उनके स्टाफ़ में मेरे एक परिचित मिल गए। मैंने अपना प्रयोजन बताया। उन्होंने मंत्री महोदय से मेरी मुलाक़ात तय करवा दी। अपनी बारी आने पर मैं श्री अर्जुनसिंह के सामने खड़ा हो गया।

— "आपकी विशेष कृपा से मेरा तबादला हो गया है और मैं भोपाल आ गया हूँ। अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करने आया हूँ। प्रतीक स्वरूप अपनी यह नयी और चौथी पुस्तक आपको सादर भेंट करता हूँ—" मैंने कहा।

पुस्तक उन्होंने ली। उसे उलट-पुलट कर देखा और पास में खड़े सहायक को देकर बोलेः

- "आपके बारे में सुना है। धन्यवाद।"

सुना था कि श्री अर्जुनसिंह बड़े मितभाषी हैं। उस दिन प्रत्यक्ष देख और अनुभव भी कर लिया।

उनके मितभाषी रूप को देखने का एक मौक़ा और मिला।... एक शाम हम लोग — मैं, शानी और श्री अशोक वाजपेयी— श्री तरुण कुमार भादुड़ी के निवास पर बैठे थे। शाम गहराकर भींग रही थी। किसी मुद्दे पर चर्चा चलते-चलते बहस में तब्दील हो ही रही थी कि ख़बर मिली-शिक्षामंत्री जी आ रहे है।...और वो आ ही गए। उनके स्वागत में हम सब खड़े हो गए। उनके बैठने के बाद हम लोगों के प्रकृतिस्थ होने का वक़्फ़ा कुछ लम्बा खिंच गया।

— "क्या चल रहा था"- उन्होंने पूछा।

भादुड़ी जी ने चर्चा का लुब्बे-लुबाब बताया और उनकी राय जानना चाही। उन्होंने बेहद सधे, शान्त स्वरों में अपनी राय ज़ाहिर की— मुख़्तसर और बहस के मुद्दे का समाधान हो गया। भादुड़ी जी ने हम लोगों की ओर इस अंदाज़ में देखा कि इसे कहते हैं साफ़, संतुलित और सुचिन्तित नज़रिया। वो जब तक हम लोगों के बीच रहे,

अधिकांशतः चुप, सुनते-गुनते और एकाध वाक्य में अपनी बात से चर्चा का समापन करते रहे।

एक बार वल्लभ भवन (मंत्रालय) में उनके कमरे में भी जाना हुआ। प्रकरण मेरे एक परम मित्र का था। वो इंजीनियरिंग कॉलेज में लेक्चरर था। पाँच-सात बरस बाद अचानक उसे विभाग का नोटिस मिला कि लोकसेवा आयोग से उसका चयन नहीं हुआ है, अतः उसकी सेवाएँ समाप्त की जा रही हैं।...सच यह था कि लोकसेवा आयोग की उस विषय के चयनित उम्मीदवारों की सूची में उसका नाम चौथा — (प्रतीक्षा सूची में - पहला) था। चुने गये उम्मीदवारों में से पहले व्यक्ति ने छह महीने बाद त्यागपत्र दे दिया था। विभाग ने प्रतीक्षा सूची देखने की ज़हमत नहीं उठायी और मेरे मित्र के सड़क पर आने की नौबत आ गयी।...मैंने शिक्षामंत्री जी से मिलने का समय लिया। नियत समय पर मैं अपने मित्र के साथ मंत्रीजी के लक-दक कमरे में दाख़िल हुआ। मंत्री जी ने मुझे देखा। उनकी आंखों में पहचानने का भाव देखकर मेरी हिम्मत बढ़ गयी। मैंने पूरा प्रकरण संक्षेप में बयान कर दिया।

— "तो क्या विभाग ग़लती पर है?" उनका प्रश्न था।

— "नहीं श्रीमान्, मैं ऐसा कहने की गुस्ताख़ी तो नहीं कर सकता। हाँ, इतना निवेदन ज़रूर करना चाहता हूँ कि लोकसेवा आयोग की प्रतीक्षा सूची दिखवाने की कृपा की जाय।" — मैंने कहा।

— "ठीक है।" — उनके स्वर में आश्वासन था।

और लगभग एक सप्ताह में मित्र के सर पर लटकी हुई तलवार हट गयी। हम दोनों मंत्री महोदय के प्रति एक गहरे कृतज्ञता भाव से अभिभूत हो गए।

श्री श्यामाचरण शुक्ल के मुख्यमंत्री बनने पर श्री अर्जुनसिंह मंत्रीमंडल में शामिल नहीं हुए। इसी बीच मेरी पाँचवीं पुस्तक छप कर आयी। मैं उनके बंगले पर पहुँचा। वहाँ प्रोफ़ेसर गुप्ता मिल गए। मैंने अपना प्रयोजन बताया। वो भीतर गए। लौटकर मुझे बैठक में ले गए। थोड़ी देर बाद श्री अर्जुनसिंह कमरे में आए। मैंने खड़े होकर नमस्कार किया।

— "मेरी नयी किताब आयी है। इसकी एक प्रति आपको सादर भेंट करने आया हूँ। मैंने कहा।

— "बैठिए" पुस्तक लेते हुए उन्होंने कहा।

— "आप नरोन्हा जी को कैसे जानते है?" पुस्तक पलटते हुए, उसका समर्पण पृष्ठ देखकर, उन्होंने पूछा।

— "जी वो मेरे धर्मपिता की तरह हैं। आज मैं जो भी, जहाँ भी, जैसा भी हूँ उन्हीं की कृपा से हूँ। जब वो बस्तर के डिप्टी कमिश्नर थे, तो उन्होंने मेरी कॉलेज शिक्षा के लिए स्टेट मेरिट स्कालर्शिप का इन्तज़ाम किया था"— मैंने लगभग एक ही साँस में जवाब दिया।

— "अच्छा!" उनकी एकाक्षरी प्रतिक्रिया थी।

— "अपनी व्यस्तताओं के बीच कभी मौक़ा मिले तो इसे पढ़ने की कृपा करें"- मैंने निवेदन किया। — "मैं पढ़ता हूँ" — उनकी संक्षिप्त आश्वस्ति थी।

मैंने नमस्कार किया और बाहर चला आया। प्रोफेसर गुप्ता मुझे गेट तक पहुँचाने आये। कहने लगे- 'जब मैंने भीतर जाकर तुम्हारे आने की ख़बर दी तो रानी साहिबा ने पूछा कि यह कौन प्रोफ़ेसर हैं जो साहब को अपनी क़िताब भेंट करने अब आया है जब वो मंत्री नहीं हैं।'....

....लौटते हुए मैं सोच रहा था कि कृतज्ञता की अभिव्यक्ति तब भी की जानी चाहिए जब व्यक्ति पद पर न हो। कृतज्ञता बोध तो आजीवन और हार्दिक होता है।

एक दिन कॉलेज से घर लौटा तो मध्यप्रदेश कला परिषद् का एक पत्र (क्रमांक 1819 दिनांक 25.2.1976) मिला। लिखा था— "बुद्धिजीवियों और कलाकारों की एक बैठक मध्यप्रदेश कला परिषद् भवन में दिनांक 26.2.1976

को दोपहर 2.30 बजे आमंत्रित की गयी है। कृपया इस बैठक में आप ठीक समय पर पधारने का कष्ट करें।"...पत्र मैंने पढ़ा ही था कि परिषद् के कार्यक्रम अधिकारी श्री के.के.सक्सेना आ गए। वो परिषद् के सचिव श्री अशोक वाजपेयी का संदेश (बल्कि मौखिक आदेश) लाए थे कि बैठक में मुझे ज़रूर ही पहुँचना है। इसे 'कन्फर्म' करने के लिए ही उन्होंने मुझे भेजा है। मैंने उनसे कहा कि कॉलेज के प्रिंसिपल ने भी स्टाफ और विद्यार्थियों की एक बैठक में कुछ निर्देश दिए हैं, फिर भी मैं उनकी अनुमति से परिषद् की बैठक में आ जाऊँगा।

26 फरवरी 1976 को जब मैं प्राचार्य से अनुमति लेने पहुँचा तो पता चला कि शिक्षा विभाग से रैली के सम्बन्ध में जो निर्देश आये थे, वो अब वापस ले लिए गए हैं। उपसचिव श्री अशोक वाजपेयी के पी.ए. का फोन आया था। — 'आप परिषद् की बैठक में जाएँ!'

देश में आपातकाल चल रहा था। श्री संजय गाँधी की भोपाल यात्रा का प्रसंग था। मैं कला परिषद् के दफ़्तर पहुँचा। प्रदेश के सरकारी महाविद्यालयों के बुद्धिजीवी और कलाकारों की भीड़ मौज़ूद थी। श्री अशोक वाजपेयी ने मुझे अलग बुलाया। साहित्य परिषद् के सचिव श्री शानी भी पहुँच गए। मुझे बताया गया कि बुद्धिजीवियों और कलाकारों का एक डेलीगेशन श्री संजय गाँधी से मिलेगा। संस्कृति के संदर्भ में एक ज्ञापन तैयार किया गया है। इसे आप देख लें। यदि श्री गाँधी कुछ पूछें तो उसका जवाब आपको ही देना है।

— "यानी डेलीगेशन का नेतृत्व मुझे करना है।" मैंने पूछा।

— "यही समझ लीजिए" श्री वाजपेयी ने कहा।

— "लेकिन चूँकि ज्ञापन आपने तैयार किया है, इसलिए क्या यह उचित नहीं होगा कि आप ही हम लोगों का नेतृत्व करें"- मैंने कहा।

— "मैं चूंकि सरकारी अफ़सर हूँ इसलिए मेरा यह करना उचित नहीं होगा"— श्री वाजपेयी ने अँग्रेज़ी में कहा।

— "यदि आप सरकारी अफ़सर हैं, तो मैं भी तो सरकारी नौकर हूँ और मेरी स्थिति निस्बतन अधिक 'वलनरेबल' है" — मैंने भी अँग्रेज़ी में ही जवाब दिया।

— "उसमें परेशानी या दिक्क़त क्या है?"- श्री वाजपेयी और शानी लगभग एक-साथ ही बोले।

— "दिक्क़त और परेशानी नहीं है तो शानी ही क्यों नहीं यह ज़िम्मेदारी सम्हाल लेते"— मैंने प्रश्न किया।

क़िस्सा कोताह, मज़बूरन वह ज़िम्मेदारी मुझे ही सम्हालनी पड़ी।...बुद्धिजीवियों और कलाकारों का क़ाफ़िला मुख्यमंत्री के तत्कालीन निवास की ओर चल पड़ा। गेट पर भारी पुलिस बल का सामना हुआ। मैं प्रयोजन बता ही रहा थी कि भीड़ में-से श्री अर्जुनसिंह जी आते हुए दिखाई दिए। उन्होंने सुरक्षा कर्मियों से कहा कि इस डेलीगेशन को अन्दर आने दिया जाए। मुझे उन्होंने 'पास' भी दिलवाया और हिदायत दी कि मुझे क्या, कैसे करना है?... हम लोगों ने एक रेवड़ की शक़्ल में लॉन में प्रवेश किया। वहाँ कई तम्बू लगे हुए थे। एक विशाल रैली का समापन वहाँ हुआ था। एक अच्छा ख़ासा मेला लगा हुआ था। हम लोगों को भी एक तम्बू में बैठकर प्रतीक्षा करने को कहा गया। लगभग आधा घंटा बाद एक अधिकारी आया। उसने आदेश के स्वर में कहा - 'आप लोगों में-से दो लोग मेरे साथ चलें।' ज़ाहिर है, मुझे तो जाना ही था, एक रंगकर्मी-कथाकार भी साथ हो लिए।

भारी भीड़ के बीच से धक्का-मुक्की के सहारे आख़िरकार हम दोनों एक बड़े से क़मरे में दाख़िल हुए; जिसमें चारों ओर लोगों से घिरे हुए मुख्यमंत्री श्री शुक्ल और श्री संजय गाँधी खड़े थे और लोग उनसे एक-एक कर

मिल रहे थे। क़तार में अपनी बारी आने पर हम दोनों उनके सामने पहुँचे। हाथ जोड़कर नमस्कार किया। पास खड़े अधिकारी ने उन्हें बताया कि ये बुद्धिजीवियों और कलाकारों की ओर से एक ज्ञापन देना चाहते हैं। मैंने ज्ञापन की प्रति श्री संजय गाँधी को सौंपी। उन्होंने उसे बिना देखे पास खड़े एक व्यक्ति के हवाले कर दिया।.... और हम लोग फिर धक्का-मुक्की के सहारे बाहर आ गए। बुद्धिजीवियों और कलाकारों का रेवड़ तब तक बिखर चुका था।

दूसरे दिन अख़बारों में बुद्धिजीवियों और कलाकारों के उस प्रतिनिधि मंडल को आपातकाल के समर्थन के गुनाह के लिए खूब कोसा गया था। ज़ाहिर है उसमें ख़ास निशाना ख़ाकसार पर था और वो भी उस स्थानीय साप्ताहिक में जिसका स्वामी, प्रकाशक और सम्पादक मुझे अपना बड़ा भाई कहता था और जिसमें मैंने अपने कई आलेख बरबाद किए थे।

03 अक्टूबर 1977 को मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की 'फैकल्टी इम्प्रूवमेन्ट स्कीम' के अन्तर्गत टीचर फेलोशिप पर सागर विश्वविद्यालय चला गया। यह तो मुझे सागर पहुँचने और हिन्दी विभाग में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाने के तत्काल बाद ही पता चला कि मुझसे भयानक ग़लती हो गयी है। मेरे वो परम हितैषी जिनके आग्रह पर मैंने यह क़दम उठाया था, अब विभाग अध्यक्ष हो गये थे और उनकी वजह से मुझे और मेरे परिवार को लगातार तीन वर्षों तक जो यातना झेलनी पड़ी उसकी याद आज भी बैचेन कर देती है। बहरहाल।

5 सितम्बर 1980 को मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह ने विधानसभा में संस्कृति नीति पर वक्तव्य देते हुए कहा था कि राज्य सरकार प्रदेश में कलाओं की स्वतंत्रता और कलाकारों के सम्मान के साथ कला के विकास के अवसरों और साधनों की वृद्धि करेगी। वह प्रदेश की विशाल सांस्कृतिक परम्परा का संरक्षण करेगी और आम नागरिकों के लिए कलाओं के रसास्वादन के अवसरों का विकास करेगी। प्रदेश की आदिवासी और लोककला और संस्कृति के प्रामाणिक संरक्षण के लिए विशेष प्रयत्न के साथ वह कला संस्थाओं का पुनर्गठन और विस्तार तथा कलात्मक गतिविधियों का विकेन्द्रीकरण करेगी। इसके अलावा दुर्लभ होती जा रही शैलियों और रूपाकारों के लिए विशेष समर्थन भी वह प्रदान करेगी।

इसी प्रयोजन से मध्यप्रदेश शासन ने पुरातत्व और भाषा विभाग के अलावा मध्यप्रदेश कला परिषद, मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्, उर्दू अकादेमी, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादेमी, इंदिरा कला एवं संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, संगीत तथा ललित कलाओं के सारे महाविद्यालयों को सम्मिलित कर एक नये संस्कृति-विभाग का गठन किया। संस्कृति विभाग ने एक तीस सूत्रीय महत्वाकाँक्षी योजना बनायी जिसके माध्यम से श्रेष्ठ रचनात्मक प्रतिभाओं के सम्मान और उनकी कलात्मक चेष्टाओं को समर्थन के अलावा कला के आस्वाद के विस्तार का संकल्प लिया गया।... संस्कृति नीति और कार्यक्रमों के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए एक संस्कृति सलाहकार मंडल गठित किया गया। उसके पच्चीस सदस्यों में-से अठारह सदस्य साहित्यकार-कलाकार- रंगकर्मी-पत्रकार और लोककला विशेषज्ञ शामिल किए गए।

यह बात शुरू से ही साफ़ और लगभग तय थी कि सरकार संस्कृति के एक अत्यंत संवदेनशील और स्पन्दनशील इलाके में प्रवेश कर रही है इसलिए उसका संचालन, प्रशासन और क्रियान्वयन भी एक स्तरीय और विशेषज्ञ दृष्टि के साथ कल्पनाशीलता और रचनात्मक विवेक की माँग करता है। मध्यप्रदेश शासन में इस माँग की पूर्ति और इस निकर्ष पर खरे उतरने वाले एकमात्र अधिकारी-श्री अशोक वाजपेयी- को संस्कृति विभाग का विशेष सचिव नियुक्त किया गया। चूँकि अपेक्षा यह भी थी कि जो लोग संस्कृति विभाग की नीतियों और कार्यक्रमों के

क्रियान्वयन से सम्बद्ध हों, उनकी भी अपनी एक स्तरीय साहित्यिक, कलात्मक और सांस्कृतिक उपलब्धि हो और जो सक्रिय रूप से रचना और रचनाकारों का न केवल सम्मान करें बल्कि खुद भी रचनात्मक रूप से सक्रिय हों; अतः उनके चयन, मनोनयन और नियुक्ति या प्रतिनियुक्ति के सारे अधिकार, ज़ाहिर है, विशेष सचिव के ही थे। संस्कृति विभाग स्वयं मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह के पास था। उनसे श्री अशोक वाजपेयी का सम्पर्क तब से था जब वो सीधी के कलेक्टर थे। वो न केवल मुख्यमंत्री के विश्वासपात्र थे बल्कि दोनों के बीच सौहार्द्र, सद्भाव और सदाशयता पूर्ण घनिष्ठ संबंधों का चर्चा भी तब आम था। चुनाँचे संस्कृति विभाग की गतिविधियों को एक निश्चित और निर्धारित दिशा में सक्रिय करने, उसे अपनी कल्पना और योजना, अपने संकल्प और विन्यास के अनुसार रूपायित करने का सर्वतंत्र-स्वतंत्र विशेषाधिकार विशेष सचिव के पास ही सुरक्षित था और उन्हें चुनौती देने वाला या उनसे सवाल करने वाला कोई नहीं था।

30 सितम्बर 1980 को टीचर फेलोशिप की क़ैद से मुक़्त होकर जब मैं भोपाल लौटा तो पता चला कि मेरा तबादला बरेली के कॉलेज में कर दिया गया है; जबकि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योजना के अनुसार मेरी पदस्थापना उसी महाविद्यालय में होनी चाहिए थी जहाँ से मैं फेलोशिप पर गया था।... समस्या विकराल इसलिए थी कि मेरी बेटी और बेटा भोपाल के महाविद्यालयों में जिन विषयों में पढ़ रहे थे वे बरेली के महाविद्यालय में नहीं थे। मज़बूरी में मुझे 3 अक्टूबर 80 को बरेली में कार्यभार ग्रहण करना पड़ा।

श्री विष्णु राजोरिया, जिन्होंने एक सार्वजनिक सभा में खुद को मेरा प्रिय विद्यार्थी कहा था, प्रस्ताव किया कि मैं उनके प्राइवेट महाविद्यालय— कैरियर कॉलेज— में प्राचार्य पद पर प्रतिनियुक्ति पर आ सकता हूँ। मुझे प्रस्ताव राहत देने वाला लगा। मैंने एक-दो दिन सोच-विचार के लिए माँगे।... मैंने सोचा कि अभी तो मैं उन्हें विष्णु बाबू कहता हूँ, यदि मैं प्रतिनियुक्ति पर उनके महाविद्यालय में चला गया तो वो मेरे 'बॉस' हो जाएँगे और मुझे वो सब करना पड़ेगा, जो वो कहेंगे।... मैंने उनसे क्षमा माँगी और धन्यवाद दिया।

इसी बीच एक मुलाक़ात में श्री अशोक वाजपेयी ने प्रस्ताव किया कि अभी हाल संस्कृति विभाग का गठन हुआ है। बहुत सारी नयी योजनाएँ हैं। मैं प्रतिनियुक्ति पर संस्कृति विभाग में आना चाहूँ तो आ सकता हूँ। प्रस्ताव न केवल मुझे राहत देने वाला बल्कि थोड़ा आकर्षक भी लगा। बरेली और भोपाल के बीच शंटिंग के अलावा भोपाल से उखड़ने के डर से भी मुक्ति आसन्न दिखी। मैंने हामी भर दी। उन्होंने तुरत-फुरत कार्यवाही की और प्रतिनियुक्ति पर 20 दिसम्बर 1980 को, मध्यप्रदेश शासन के संस्कृति विभाग में ओ.एस.डी (विशेष कर्त्तव्यस्थ अधिकारी) के पद पर मैंने अपना कार्यभार ग्रहण कर लिया। मुझे अखिल भारतीय कालिदास सम्मान, राज्य स्तरीय शिखर सम्मान की कार्यवाही, संगीत शिक्षा का पुनर्गठन, अन्तर्भारतीय सांस्कृतिक विनिमय के अलावा **भारत-भवन** समिति का सदस्य-सचिव बनाया गया। आदिवासी लोककला परिषद् का सचिव भी मुझे नियुक्त किया गया। इस पद के लिए मेरी योग्यता सिर्फ़ इतनी थी कि बस्तर के आदिवासी अंचल में मैं 1940 से 1960 तक रहा-पला-बढ़ा हूँ। चूँकि विभाग में मैं पहला ओ.एस.डी.था चुनाँचे प्रचार-प्रसार-विज्ञापन के अलावा जितने मुतफरिकात काम थे, वो भी मेरे ही ज़िम्मे आ जाते थे। वल्लभभवन (तब सचिवालय) में ओ.एस.डी. को मज़ाक में 'आफ़िसर इन सर्च ऑव ड्यूटी' कहा जाता है लेकिन मैं था 'आफ़िसर ऑन सेवेरल ड्यूटीज़'।

संस्कृति विभाग में मैंने दो वर्ष काम किया लेकिन चूँकि मेरे सारे काम सचिव स्तर पर ही निपट जाते थे अतः मुख्यमंत्री जी से मिलने का कोई अवसर नहीं आया। आदिवासी लोककला परिषद् के वे पदेन अध्यक्ष थे। उसकी कार्यकारिणी और सामान्य सभा की बैठकों में भी वे अन्यथा व्यस्त होने की वजह से नहीं आ पाए।...प्रतिनियुक्ति की अवधि समाप्त होने पर सचिव तो चाहते थे कि मैं संस्कृति विभाग में काम करता रहूँ लेकिन मैंने उनसे क्षमा

माँगी और अपनी मुदर्रिसी में ही वापस आना बेहतर समझा। 20 दिसम्बर 1982 को मैं हमीदिया कॉलेज में आ गया।

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री मायाराम सुरजन से मेरा पुराना परिचय था। उनके स्नेह और आग्रह की वजह से मैंने सम्मेलन में साहित्य मंत्री और महामंत्री की हैसियत से काम किया। भवभूति अलंकरण और वागीश्वरी पुरस्कारों की योजना बनायी और कुछ वर्षों तक उसे क्रियान्वित किया। बाबू गुलाबराय शताब्दी और भवभूति अलंकरण तथा वागीश्वरी पुरस्कारों के एक समारोह में श्री अर्जुनसिंह मुख्य अतिथि होकर आए। रवीन्द्रभवन के दरवाज़े पर हम लोग उनके स्वागत के लिए खड़े थे। मायारामजी परिचय करवा रहे थे। अपनी बारी आने पर मैंने उन्हें नमस्कार किया। इसके पहले कि मायारामजी मेरा परिचय करवाएँ, उन्होंने पूछा—

"कैसे हैं?" परिचय का भाव उनके चेहरे पर था।

"ज़हे किस्मत, आपने मुझे पहचान लिया। इनायत है आपकी। ठीक हूँ। — मैंने कहा।

एक ईषत मुस्कान और वो आगे बढ़ गए। मुझे अच्छा लगा कि इतने लम्बे अंतराल के बाद भी उन्होंने मुझे पहचान लिया। उस समारोह का संचालन भी मुझे ही करना था; सो मंच पर पूरा वक़्त उनकी मौजूदगी में बीता।

प्रदेश की राजनीति से ऊपर उठकर केन्द्रीय राजनीति में श्री अर्जुनसिंह की सक्रिय और चुनौतीपूर्ण भूमिकाओं से उन्हें राष्ट्रीय महत्व तो मिला ही, उनके दृष्टिकोण और वैचारिक प्रतिबद्धता में भी राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य और आयामों का समावेश हुआ। संस्कृति का ही सन्दर्भ लें तो मानव संसाधन विकास मंत्री के रूप में उन्होंने शिक्षा में संस्कृति को वरीयता प्रदान की। इस प्रसंग में लोकसभा में दिया गया उनका यह वक्तव्य ग़ौर तलब है: "किसी भी समुदाय अथवा राष्ट्र की सांस्कृतिक रूपरेखा ही अन्ततः इसके समूचे ढाँचे को अवधारित करती है। यह हमारा सौभाग्य है कि विगत कई शताब्दियों से देश में हो रही अत्यधिक उलट-फेर के बाद भी इस देश की संस्कृति को सुरक्षित रखा गया हैं, इसे क़ायम रखा गया है और यहाँ तक कि इस देश के लोगों ने इसका विकास किया है। भले ही कुछ सरकारें भारतीय संस्कृति की मौलिक अवधारणा के विपरीत ही क्यों न रहीं हों, इस देश के लोगों ने भारत की संस्कृति को पोषित किया, उसकी सुरक्षा की और उसको बढ़ाया है। इसलिए मेरे विचार से देश की सांस्कृतिक रूपरेखा की प्रत्येक बात का अपेक्षाकृत काफ़ी अधिक महत्व है और वास्तविक शिक्षा केवल तभी आ सकती है जब हमें अपने सांस्कृतिक ढाँचे की सही समझ हो।"... "इसी समझ के तहत देश की सांस्कृतिक छवि के बारे में एक केन्द्रीय विचारधारा की ज़रूरत को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा: "भारत की सांस्कृतिक छवि ऐसी होनी चाहिए जो कि साम्प्रदायिकता, संकीर्णता और तंग विचारधारा से परे हो और जो अनिवार्यतः मानवीय हो, धर्मनिरपेक्ष हो, दूरदर्शी हो और उदार हो ताकि उसमें इस देश की हज़ारों वर्षों की अच्छी बातों का ही समावेश न हो अपितु उसमें इस तरह की क्षमता होनी चाहिए कि हमारी संस्कृति की द्योतक सभी बातों को परिलक्षित कर सकें।" यहाँ यह बात भी ग़ौरतलब है कि वे संस्कृति को सिर्फ चंद चुनिन्दा 'इलीट' बुद्धिजीवी, सुविधा सम्पन्न उच्चवर्ग या मध्यवर्ग के मनोरंजन और बुद्धिविलास का साधन नहीं मानते इसीलिए वो कहते है: "वास्तविकता यह है कि सांस्कृतिक क्षेत्र के किसी भी कार्यकलाप में यदि इस देश की जनजातीय तथा लोक-संस्कृति को हृदयंगम नहीं किया जाता तो उस कार्यकलाप का कोई अर्थ ही नहीं है.....।" (लोकसभा की कार्रवाई 6 अप्रैल 1992: श्री अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रंथ: छठा खंड: पृष्ठ 163-64)

संस्कृति के संरक्षण और प्रोत्साहन के नाम पर वे राज्य के संस्कृति में हस्तक्षेप को बहुत अधिक काम्य न मानते हुए, संस्कृति के क्षेत्र में राज्य की भूमिका को स्पष्ट करते है: "जहाँ तक सम्भव हो राज्य को संस्कृति से अलग ही रहना चाहिए। इसे केवल अभिव्यक्ति, निष्पादन, विकास के लिए साधन उपलब्ध करवाने चाहिए, क्योंकि यदि राज्य संस्कृति के क्षेत्र में अत्यधिक अन्तर्गस्त रहता है (तो) इससे गम्भीर संकट पैदा हो सकता है, जैसा कि

विश्व के बहुत से भागों में हुआ है।... हम नहीं चाहते कि किन्हीं भी परिस्थितियों में इस देश में यह सब हो।"(लोकसभा की कार्रवाई:3 मई 1994:वही, पृष्ठ 255-56)

उनके इस वक्तव्य और मध्यप्रदेश शासन के शिक्षामंत्री के रूप में दिए गए उस पहले उद्धृत वक्तव्य में कुछ लोगों को एक अन्तर्विरोध दिखाई दे सकता है लेकिन गहराई से विचार करें तो ऐसा है नहीं। प्रदेश से केन्द्र में उनके जाने के बाद प्रदेश के संस्कृति विभाग में जो विचलन आए, जो विकृतियाँ पनपीं, जो विवाद उभरे उनसे निश्चय ही वो अपरिचित नहीं रहे होंगे। संस्कृति की अपनी तामीर में अपने बाद आई इस ख़राबी ने भी उन्हें पुनर्विचार के लिए प्रेरित किया होगा। संस्कृति विभाग में आए विचलनों, विवादों और विकृतियों का ज़िक्र मैं अपनी एक पुस्तिका "हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन" में विस्तार से कर चुका हूँ। यहाँ विस्तारभय से उन्हें दुहराऊँगा नहीं। श्री अर्जुनसिंह ने तो पहले भी कहा था: "मध्यप्रदेश में संस्कृति के क्षेत्र में सरकार को किस तरह की और किस सीमा तक भूमिका हम निभाने दें, मेरे विनम्र मत से इस प्रश्न पर विचार विवेक, संयम और गहरे उत्तरदायित्व भाव से किया जाना चाहिए।..." दुर्भाग्य से मध्यप्रदेश के संस्कृति विभाग में, उनके जाने के बाद उस विवेक, उस संयम और उस गहरे उत्तरदायित्व भाव की लगातार कमी होती चली गयी। जैसे राज्य द्वारा प्रायोजित धर्म के अपने ख़तरे होते हैं वैसे ही राज्य द्वारा प्रायोजित संस्कृति के भी अपने ख़तरे हो सकते हैं। कदाचित इसीलिए श्री अर्जुनसिंह ने मानव संसाधन विकास मंत्री की हैसियत से संस्कृति के क्षेत्र में राज्य की भूमिका और सीमा भी परिभाषित करने की ज़रूरत महसूस की।

☐ *प्रोफ़ेसर डॉ. धनंजय वर्मा — हिन्दी साहित्य के प्रख्यात आलोचक, 20 पुस्तकों के रचयिता, अनेकानेक प्रतिष्ठित अलंकरणों और सम्मानों से विभूषित एवं सम्मानित; पूर्व कुलपति, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश। सम्पर्क: 'करुणालय' एम-433/ई-7, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016*

सुसंस्कृत व्यक्तित्व

हरिशंकर परसाई
(सुविख्यात व्यंग्य लेखक)

सत्ता में प्रतिष्ठित व्यक्तित्व के बारे में लिखने की कई कठिनाइयाँ है। एक तो उस पर लिखना उसका तथा जिस राजनैतिक सामाजिक तंत्र का वह प्रतिनिधित्व करता है, उसका समर्थन मान लिया जाता है। दूसरे सत्ता स्थिर नहीं होती, बदलती रहती है। तो जो आप सत्तासीन व्यक्तित्व का जयगान कर रहे हैं, वे कल पता नहीं क्या करें, जब उसकी जगह दूसरा व्यक्ति सत्तासीन हो जाये। तीसरे सत्तासीन व्यक्ति पर लिखना उससे लाभ उठाने का ज़रिया माना जाता है। पर मैं व्यक्ति अर्जुनसिंहजी पर लिख रहा हूँ जो म.प्र. के मुख्यमंत्री थे और अब केन्द्र में मंत्री हैं।

मेरा पहला परिचय उनसे 1973 में हुआ था, जब वे शिक्षा मंत्री थे, श्री प्रकाशचन्द्र सेठी की केबिनेट में। कला परिषद् ने जिन लेखकों, कलाकारों का सम्मान किया था, उनमें एक मैं भी था। तब मैंने पूरे समारोह में यह लक्षित किया कि अर्जुनसिंहजी जो शिक्षामंत्री थे और जो इस समारोह के लिये ज़िम्मेदार थे, कहीं अपने को 'प्रोजेक्ट' नहीं कर रहे हैं। वैसे मुख्यमंत्री की हैसियत से उन्होंने उद्घाटन शिलान्यास वग़ैरह सब किये और उनका ख़ूब प्रचार भी होता। पर साहित्य, कला, संस्कृति संबंधी आयोजनों में वे व्यर्थ अपने को केन्द्र नहीं बनाते।

इसके बाद मेरी उनसे कुछ मुलाक़ातें हुईं। वे मितभाषी हैं। अक़्सर उनके साथ 'मोनोलॉग' (एकालाप) ही होती है। पर वे मन में निर्णय लेते रहते हैं और ये निर्णय काफ़ी दृढ़ होते हैं। वे फैसला लेने में तत्पर हैं।

मुझे इतने सालों में यह बात समझ में आ गई है कि साहित्य, कला, संस्कृति के जो कार्य वे करते रहे हैं, वे एक मुख्यमंत्री के केवल छवि निर्माण के प्रयत्न और अपनी सरकार की प्रतिष्ठा के बहाने नहीं होते। अगर होते तो भी कोई बात नहीं थी, क्योंकि हर मुख्यमंत्री और मंत्री ऐसा करता है। मेरा विश्वास है कि श्री अर्जुनसिंह को साहित्य और कला में वास्तविक रुचि है, वे इनका अध्ययन भी करते हैं, और उनमें समझ भी है। वे एक बहुत सुसंस्कृत व्यक्ति हैं। मैं समझता हूँ कि उन्होंने जो संस्कृति विभाग खोला वह कोई इस तरह नहीं कि चलो, सरकार का एक पुनर्वास विभाग भी खोल दो। मेरी समझ है कि साहित्य और कलाओं में गहरी रुचि के कारण उन्होंने सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रसार किया और संस्कृति का एक मंत्रालय ही खोल दिया।

अर्जुनसिंहजी से मेरी मुलाक़ातें ज़्यादा नहीं हुई हैं। मेरे ऐसे कोई काम भी नहीं होते, जिनके लिये मुझे मुख्यमंत्री से मिलना पड़े। 1980 में जबलपुर में प्रगतिशील लेखक महासंघ का राष्ट्रीय सम्मेलन था। अध्यक्ष मैं था, पर हमारी तरफ़ से अर्जुनसिंहजी से हमारे सहयोगी मायाराम सुरजन मिले थे। काम कुछ विशेष नहीं था संस्कृति विभाग ऐसे आयोजनों के लिये अनुदान देता है। वह अनुदान देने के बाद मायारामजी ने कहा, 'लेखक मित्रों की इच्छा है कि आप इस सम्मेलन में आयें।' अर्जुनसिंहजी ने कहा– 'इट विल बी एन ऑनर। मैं लेखकों का स्वागत करूँगा।' हमने उन्हें स्वागत समिति का अध्यक्ष बना दिया। ऐसा कभी हुआ नहीं होगा कि किसी सम्मेलन में, वह भी घोषित वामपंथी लेखकों के सम्मेलन में कॉंग्रेसी मुख्यमंत्री स्वागताध्यक्ष हों। यह इतनी विचित्र स्थिति थी कि स्थानीय अधिकारीगण हमारे साथियों से कार्यक्रम

तय करने के लिये बैठे, तो पूछा– 'मुख्यमंत्रीजी उद्घाटन कितने बजे करेंगे?' हमारे साथियों ने कहा– 'वे उद्घाटन नहीं करेंगे।' अधिकारियों ने कहा– 'तो फिर अध्यक्षता करेंगे। कितने बजे से?' हमारे साथियों ने कहा– 'वे अध्यक्षता भी नहीं करेंगे।' अधिकारी परेशान हुए। बोले– 'उद्घाटन नहीं करेगें, अध्यक्षता नहीं करेंगे तो किसलिए आ रहे है?' हमारे साथियों ने कहा– 'वे लेखकों का स्वागत करने आ रहे हैं।' अधिकारी चकित, हैरान। मुख्यमंत्री या तो उद्घाटन करता है या अध्यक्षता। यहाँ वे स्वागत करेंगे। अजीब बात है। अर्जुनसिंहजी ने बहुत अच्छा स्वागत भाषण दिया– प्रगतिशील आन्दोलन की स्पिरिट के लिये अनुकूल, कुपोषण विहीन, वर्गविहीन, समतावादी व्यवस्था की स्थापना और जनक्रांति की बात कही। कहा– 'भेद की दीवारें तोड़ दो।' प्रगतिशील लेखकों को भाषण बहुत पसंद आया। उन्हें भी जो आलोचना कर रहे थे कि हमने मुख्यमंत्री को बुला लिया। बाद में लेखक एक जगह बैठकर कह रहे थे— 'बहुत साफ बोले मुख्यमंत्रीजी। कहा कि भेद की दीवारें तोड़ दो।' मैंने गुस्ताख़ी से कहा- यारो, ज़रा भेद की दीवार तोड़ने तो जाओ। उनकी पुलिस लाठी बरसायेगी। मैं अर्जुनसिंहजी का सबसे बड़ा, उपयोगी और यशस्वी काम संस्कृति विभाग खोलना, भारत भवन का निर्माण और पूरे प्रदेश में साहित्यिक कलागत और सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रसार मानता हूँ। कभी विवाद भी होते हैं। मगर अंततः अर्जुनसिंहजी का मूल्य होगा, तो काम से। ऐसा काम किसी प्रदेश में नहीं हुआ। उन्होंने चार विश्वविद्यालयों में सृजन पीठ खोली, कई सम्मानों का आरम्भ किया जैसे **कबीर सम्मान, कालिदास सम्मान, मैथिलीशरण गुप्त सम्मान**। अकादमियाँ खोलीं। **इकबाल मरकज़** शायद देश में अकेला ही है। यों शासन के 'रूटीन' काम चलते रहते हैं। उनकी पार्टी की जो नीतियाँ हैं और जो वक़्ती ज़रूरतें हैं, उनके हिसाब से मुख्यमंत्री लोग चलते हैं और पद पर आते तथा जाते रहते हैं। कोई-कोई मुख्यमंत्री किसी कारण से जाने जाते हैं, जैसे किसी मुख्यमंत्री की याद इसलिये की जाती है कि उनके शासनकाल में पुलिस ने ख़ूब गोलियाँ चलाई। अर्जुनसिंहजी को जो श्रेय मिलेगा और जिस कारण वे याद किये जायेंगे वह है कि उनके द्वारा संस्कृति विभाग की स्थापना और साहित्य-कला, संगीत के क्षेत्र में सेवाएँ।

अब वे केन्द्र में मंत्री हैं और संस्कृति विभाग उनके पास ही है। आशा है व्यापक क्षेत्र में वे कला और संस्कृति का काम और बढ़ायेंगे। वैसे संस्कृति सरकारें निर्मित नहीं करतीं। संस्कृति, कला साहित्य का स्वतंत्र निर्माण और विकास होता है पर सरकार इस कार्य में मूल्यवान सहयोग कर सकती है और प्रोत्साहन दे सकती है। इन दिनों राष्ट्रीय संस्कृति की जगह साम्प्रदायिक संकीर्ण संस्कृति को स्थापित करने के प्रयत्न चल रहे हैं। इस कारण सही संस्कृति की समझ के लिये कार्य करना बहुत ज़रूरी है।

☐ *हरिशंकर परसाई— हिन्दी साहित्य की व्यंग्य विधा के पुरोधा श्री हरिशंकर परसाई अखिल भारतीय स्तर पर जाने-पहचाने जाने वाले महान् साहित्यकार रहे हैं। श्री अर्जुनसिंह की साहित्य, कला, संस्कृति के प्रति अटूट लगन को आपने इस आलेख में रेखांकित किया है। साम्प्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष में आपकी लेखनी ने उल्लेखनीय महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।*

साहित्यिक संस्कार के धनी

पद्मश्री डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे
(साहित्य-मनीषी)

श्री अर्जुनसिंह में साहित्य एवं संस्कृति के संस्कार बाल्यावस्था से ही मिलते हैं। विन्ध्य की हरी-भरी धरती और सुरम्य प्रकृति ने उनको बचपन से ही साहित्य तथा कला की ओर उन्मुख किया। जिस भूमि ने बांधवेश नरेश विश्वनाथसिंह और ठाकुर जगमोहनसिंह जैसे मनीषी पैदा किए, खजुराहो का शिल्प बिखेरा और चचाई जलप्रपात की शीतल जल-बिन्दुओं को विकीर्ण किया— वहाँ का एक सम्वेदनशील व्यक्तित्व इनके प्रभाव तथा व्याप्ति को कैसे ग्रहण नहीं करेगा? बचपन में उन्हें तुलसी की रामचरित मानस के संस्कार मिले। मानस से उन्होंने कर्मठता, मर्यादा और अनुशासन के पाठ सीखे। उनके धार्मिक एवं राष्ट्रीय संस्कारों ने भी उन्हें साहित्य की सहजानुभूति की ओर प्राकृतिक रूप से उन्मुख किया।

अपने महाविद्यालयीन शिक्षा काल में वे मिल्टन के **पैराडाइज़ लास्ट** के भक्त बने। उन्हें यह ग्रन्थ कण्ठस्थ हो गया। वे मध्यप्रदेश के महान शिक्षाविद् और अंग्रेज़ी के साहित्यकार डॉ. हरिसिंह गौर के जीवंत सम्पर्क में भी आये थे। जब रियासतों के विलीनीकरण का मामला चल रहा था तब उनके घर डॉ. हरिसिंह गौर ठहरे थे। डॉ. गौर से अनेक राजा-महाराजा इस प्रसंग में परामर्श लेने आया करते थे क्योंकि डॉ. गौर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के अधिवक्ता थे। एक बार डॉ. गौर का डिक्टेशन श्री अर्जुनसिंह ने भी लिया जिसमें अंग्रेज़ी की प्रगल्भता थी। तब से सिंह साहब डॉ. गौर को इस बात का श्रेय देते हैं कि आज जो कुछ भी उनमें अंग्रेज़ी साहित्य के प्रति रुझान है और अंग्रेज़ी लिखने का माद्दा है—उसे वे डॉ. गौर की मनीषा को सश्रद्धा समर्पित करते हैं।

अपने मुख्यमंत्री काल में श्री अर्जुनसिंह ने जितने साहित्यिक समारोहों को सम्बोधित तथा सम्वर्द्धित किया वह भी अपने में एक दुर्लभ निधि तथा धरोहर है। कालिदास की नगरी उज्जैन, राजाभोज की नगरी धार, तुलसी का चित्रकूट, आचार्य केशवदास का ओरछा, पद्माकर का सागर, माखनलाल चतुर्वेदी का खण्डवा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का शाजापुर— ये सब श्री अर्जुनसिंह के द्वारा प्रोत्साहित तथा विकसित हुए हैं। उन्होंने उर्दू तथा मराठी की भी विशेष हित रक्षा की। उर्दू के साहित्यकारों को दिशा-दर्शन दिया और इस प्रकार उनके सांस्कृतिक व्यक्तित्व ने साम्प्रदायिक सद्भाव, धार्मिक सौमनस्य तथा राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में प्रतिमान स्थापित किए।

सत्ता और संस्कृति को राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित विषय बनाने का श्रेय भी श्री अर्जुनसिंह को है। साहित्य के साथ पत्रकारिता का भी चोली-दामन का साथ रहा है। उन्होंने पत्रकारों की स्वायत्तता तथा स्वतंत्र चेतना की भी रक्षा की और पत्रकारिता के स्वस्थ मार्ग को प्रशस्त किया।

आदिवासियों की बोलियों, उनके साहित्य और संस्कृति के विकास में भी उनकी व्यक्तिगत तथा रचनात्मक अभिरुचि रही। उन्होंने लोक-साहित्य को भी संरक्षण प्रदान किया और जनपदीय या आंचलिक साहित्य चेतना को भी भारत की आत्मा के साथ प्रतिध्वनित होने के लिए सम्यक परिवेश का निर्माण किया। वे साहित्य की प्रगतिशील चेतना

के साथ भी सम्पृक्त हुए और उनके सम्मेलनों तथा अधिवेशनों को भी उनसे सुधा-बिन्दु मिले। उनकी विचारणा की यह धारणा है कि सत्ता को साहित्य की स्वाधीनता के अस्तित्व में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। वे यह मानते हैं कि सत्ता तथा संस्कृति के बीच द्वन्द तो हो सकता है परन्तु तलाक़ का परिवेश नहीं बनना चाहिए। मध्यप्रदेश शासन का संस्कृति विभाग उनके साहित्यिक संस्कारों से परिपूर्ण मन-मस्तिष्क की अच्छी तथा ठोस उपज है। आज भोपाल कला, संस्कृति तथा साहित्य की राजधानी बन गया है और उसे लोग-बाग समारोहों का नगर कहने लगे हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ मामलों में उन्होंने मध्यप्रेदश को प्रथम स्थान दिलवाया। **भारत-भवन** के रूप में कला और संस्कृति का जो केन्द्र बना है वह देश में अपने ढंग का एक ही है। उन्होंने जहाँ अपनी प्रशासकीय छवि को उजली करने की दिशा में अनेक ऐतिहासिक कार्य किये वहाँ उनका सांस्कृतिक व्यक्तित्व भी उभर-निखर कर हमारे समक्ष आया है। कला तथा संस्कृति के इस केन्द्र में राज्य के विभिन्न भागों की सांस्कृतिक झाँकी मिलती है और यह कलाकारों-शिल्पकारों का संगम स्थान बन चुका है। इसीलिए प्रधानमंत्री ने भोपाल को देश की सांस्कृतिक राजधानी के रूप में उसकी प्रशस्ति की। यदि जबलपुर प्रांत की संस्कारधानी है तो भोपाल को हम राष्ट्र की सांस्कृतिक राजधानी के रूप में मान्यता दे सकते हैं। श्री अर्जुनसिंह ने अपने कार्यकाल के दो सफल-सार्थक वर्षों की परिसमाप्ति के शुभावसर पर कहा था कि आज़ादी के पच्चीस वर्ष पूरे होने पर सन् 1972 में प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने हर राज्य की राजधानी में **भारत-भवन** बनाने का सुझाव दिया लेकिन केवल मध्यप्रदेश ने ही इस योजना को साकार रूप दिया है।

श्री अर्जुनसिंह के साहित्यिक व्यक्तित्व में एक ओर कालिदास तथा भवभूति हैं तो दूसरी ओर नवीन और माखनलाल, परन्तु वे शेक्सपियर तथा वर्ड्सवर्थ को भी अपने में समाविष्ट करते हैं। उनमें मिर्जा ग़ालिब और फ़िराक़ भी देखे जा सकते हैं। यद्यपि वे कोई कवि नहीं हैं परन्तु स्वप्नद्रष्टा ज़रूर हैं। मध्यप्रदेश की संस्कृति तथा साहित्य उनको कभी विस्मृत नहीं कर पायेगा। बुन्देलखण्ड का 'शौर्य, मालवा की सोंधी माटी, निमाड़ का निनाद, बघेली का बाँकपन और छत्तीसगढ़ की छटा को निखारने में उन्होंने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। उनकी मातृ बोली बघेली भी उनसे उतना ही प्यार पा गई जितनी मालवी। वे जितने भक्त उज्जैन के महाकालेश्वर के हैं उतने ही ओरछा के राम राजा के।

☐ *डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे— पद्मश्री डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे आज हमारे बीच नहीं हैं। आप सागर विश्वविद्यालय में हिन्दी साहित्य के प्राध्यापक तथा भारत सरकार की ओर से प्रोफ़ेसर इमीरेट्स रहे है। आपने बाल कृष्णशर्मा नवीन तथा स्वाधीनता संग्राम साहित्य सेवियों पर दर्जनों शोध ग्रंथ लिखे हैं। भारत सरकार की अनेक सलाहकार समितियों के सदस्य रहे हैं।*

परहित बस जिनके मन माही

प्रो. अवेधशप्रसाद पाण्डेय

श्री रामचरितमानस में संत महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी ने धर्मरथ का वर्णन किया है। राम-रावण युद्ध के समय विभीषण को चिंता हुई—

रावण रथी बिरथ रघुबीरा।
देखि विभीषण भयेउ अधीरा।।
नाथ न रथ नहि पद पदत्राना।
केहि विधि जितब बीर बलवाना।।

प्रभु श्रीराम ने उत्तर दिया—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना।
जेहि जय होई सो स्यन्दन आना।।

जीवन में विजय के लिए भौतिक या पार्थिव रथ उपयोगी नहीं होता अपितु उसके लिए दूसरा रथ है। उस रथ का वर्णन करते हुए प्रभु श्रीराम ने कहा —

सौरज धीरज तेहिं रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।

शौर्य और धैर्य जीवन रथ के दो पहिए हैं। महाभारत का अर्जुन अद्‌भुत धीरज और वीरता का प्रतीक है। जीवन के अगणित संघर्षों, चुनौतियों और ख़तरों में वह कभी धीरज नहीं खोता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के राजनेताओं, जनसेवकों और सत्ता के शिखर पुरुषों में श्री अर्जुनसिंह ने अपनी पृथक् पहचान बनाई है। उन्होंने अपने विचारों, सिद्धान्तों और राष्ट्रीय आदर्शों को अलग रखकर जीवन से कभी कोई समझौता नहीं किया। उनकी प्रजातंत्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, समता, न्याय, और परोपकार में प्रबल आस्था है। जनता जनार्दन की सेवा में उनकी आराधना, मूल्यों के लिए संघर्ष, उनकी तपस्या, और मानवता की रक्षा के लिए समन्वय की भावना उनके अभीष्ठ हैं। जनपथ से लेकर राजपथ तक और संघर्ष की पगडंडियों की यात्रा उन्होंने झंझावातों को झेलते, तूफ़ानों से खेलते विरोधों-अवरोधों को पार करते ही की है। एक ओर उनके समर्थकों, अनुयाइयों की फ़ौज है, तो दूसरी ओर विरोध करने वालों के झुण्ड भी कम नहीं हैं। समर्थन और विरोध के केन्द्र में रहने के कारण वे सदैव चर्चित और प्रासंगिक बने रहे। उनका व्यक्तित्व सम्पूर्ण मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण, स्वभाव अथाह सागर की तरह प्रशान्त और जीवन की अन्तश्चेतना भारत की कोटि-कोटि जनता के सतत हित और सेवा में समर्पित है। विचार और विवेक उनके दो प्रबल साथी हैं। उन्होंने जीवन यात्रा विचार के साथ की और परिस्थितिजन्य प्रश्नों को विवेक से सुलझाया।

सन् 1985 में म.प्र. में लोकसभा और विधानसभा में भारी सफलता के बाद उन्हें धधकती ज्वाला के बीच पंजाब का राज्यपाल बनाया गया। उनके विरोधियों ने सोचा था कि पंजाब की विकराल समस्या अर्जुनसिंहजी के राजनैतिक

अवसान का कारण बनेगी; किन्तु उन्होंने जिस बुद्धिमानी, राजनैतिक चातुर्य से राजीव-लोंगोवाल समझौता कराया वह राष्ट्रीय एकता के लिए किए गए कार्यों में सर्वोपरि है। मुझे याद है, पत्रकारों ने उनसे पंजाब का राज्यपाल बनाए जाने को लेकर पत्रकारों ने प्रश्न किया था कि कहीं यह उनकी राजनैतिक हत्या का षड्यंत्र तो नहीं है? कितना शान्त और विवेकपूर्ण उत्तर श्री अर्जुनसिंह ने दिया था: "मेरी राजनैतिक डिक्शनरी में कुल तीन शब्द हैं— पहला सर्विस, दूसरा ड्यूटी, तीसरा लॉयल्टी।" यह अपने आप में सिद्ध है, जनता की सेवा, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य और अपने नेता के प्रति वफ़ादारी का प्रशंसनीय और अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

सांस्कृतिक योगदान

अर्जुनसिंहजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। राजनीति के साथ उनमें अद्‌भुत सांस्कृतिक सोच है। राजनीति, प्रशासन, शासन और समाज को तोड़ देता है। वर्गभेद, जातिभेद, साम्प्रदायिक वैमनस्य सब कुछ राजनीति के दुष्परिणाम हैं, किन्तु संस्कृति टूटे समाज को जोड़ने का सबसे सशक्त माध्यम है। साहित्य, संगीत, कला, कविता, भाषा, वेषभूषा, खानपान, लोकरीति, लोकसंगीत, सब कुछ संस्कृति के एक शब्द मे समाहित हैं। अर्जुनसिंहजी का विश्वास और प्रबल आस्था समाज को जोड़ने में है। टूटे जनमन में एकता का संचार उनकी जीवनशैली का प्रमुख अंग है। उन्होंने म.प्र. के मुख्यमंत्री के रूप में संस्कृति विभाग को समृद्ध बनाया और उनकी सांस्कृतिक सोच के फलस्वरूप अनेक अकादमियाँ विभाग स्थापित हुए। उन्होंने भारत-भवन की स्थापना कर ललितकलाओं, संगीत, नाटक और नृत्य की पारम्परिक भावभूमि को लोककलाओं से जोड़कर जो अद्‌भुत कार्य किया है, उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने सार्वजनिक रूप से की थी। आज भी भोपाल देश की सांस्कृतिक राजधानी के रूप में विख्यात है। इस सांस्कृतिक चिंतन और उपलब्धि की सराहना किए बिना उनके राजनैतिक विरोधी तक नहीं रह पाते।

अर्जुनसिंहजी असली रामभक्त हैं

भारतवर्ष में अर्जुनसिंहजी अपनी धर्मनिरपेक्षता के आदर्श पर अडिग आस्था रखने के लिए सुविख्यात हैं। राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, जनकल्याण के लिए राजनीति में धर्मनिरपेक्षता के अतिरिक्त अन्य दर्शन हैं ही नहीं। भारत जैसे भाषा, वेषभूषा, विविधकर्म, विविध पूजा पद्धति और भौगोलिक विविधता को एक सूत्र में पिरोए रखने के लिए समन्वय, सद्‌भाव और धर्मनिपेक्षता का सूत्र अत्यंत उपयोगी है। जिसे अर्जुनसिंहजी अपने राजनैतिक जीवन में आदर्श के रूप में परिपालन करते हैं; किन्तु निजी जीवन में परमात्मा के प्रति उनकी आस्था और भक्ति अनुकरणीय है। वे अद्वितीय रामभक्त हैं। उनके राम किसी जाति, धर्म या दल के घरौंदे में बंदी राम नहीं हैं अपितु शबरी के राम, प्रह्लाद के राम, गाँधी के राम, तुलसी के राम, कबीर,रहीम और ताजबीवी के राम ही अर्जुनसिंहजी के राम हैं। उनकी आराधना विश्व के सृजन, पालन और संहार करने वाले परमपिता परमात्मा भी हैं, जो सर्वत्र व्याप्त है। समस्त प्राणियों के घट-घट वासी हैं। अणु से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त जिनकी सत्ता विद्यमान है उस व्यापक राम के भक्त अर्जुनसिंहजी हैं। जैसा मैं जान पाया हूँ उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि ईश्वर पर आस्था की है जिसको वे आजीवन पालन कर रहे हैं। हृदय की शल्य-क्रिया के लिए बेहोशी देने के पूर्व का संक्षिप्त आलेख "राम, रहीम और ईसा" उनके अन्तःकरण की आस्था का प्रतीक है। उसके नोट में उन्होंने सन्त गोस्वामी तुलसीदासजी का भी स्मरण किया है। चित्रकूट के तुलसी शोध संस्थान के भवन निर्माण के लिए उन्होंने अकेले 20 लाख रुपये दिए और प्रतिवर्ष 10 लाख रुपये देने की उनकी सार्वजनिक घोषणा है। यह भवन अब अपनी पूर्णता की ओर है, जिसका लोकार्पण नव वर्ष में संभावित है। यह केन्द्र तुलसी साहित्य, रामकथा, और रामचरितमानस का इस राष्ट्र में अनोखा केन्द्र होगा।

यह उनकी सन्त तुलसीदासजी तथा उनके आराध्य राम पर आस्था का सबसे बड़ा प्रमाण होगा। भगवान् श्रीराम के जीवन के तीन आदर्श (1) निजी सुखों का परित्याग, (2) अन्याय के विरुद्ध संघर्ष (3) ग़रीब दलित, सर्वहारा,

वनवासी, निर्धन की सेवा अर्जुनसिंहजी के जीवन में देखे जा सकते हैं। जनता जनार्दन की निःस्वार्थ सेवा ही उनकी रामभक्ति है। कोई भी व्यक्ति अर्जुनसिंहजी के दरवाज़े से निराश नहीं लौटता है। परोपकार, परहित, दूसरों की समस्या और कष्ट का निवारण ही उनका प्रमुख कार्य है, जैसा मैं जान पाया हूँ।

परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई।।

—श्री रामचरितमानस

☐ *अवधेशप्रसाद पाण्डेय— मध्यप्रदेश तुलसी अकादमी के सचिव हैं तथा तुलसी शोध संस्थान चित्रकूट के निदेशक हैं। वे उच्च शिक्षा अनुदान आयोग के सदस्य, संस्कृत अकादमी के सचिव, संस्कृत बोर्ड के सदस्य रह चुके हैं। विज्ञान, दर्शन अध्यात्म, साहित्य, एवं रामकथाओं के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। उच्चकोटि के वक्ता और लेखक हैं।*

वे पॉज़िटिव थिंकिंग के आदमी हैं

अख़्तरुल ईमान
(सुप्रसिद्ध उर्दू शायर)

हम अर्जुनसिंहजी जैसे लोगों का समर्थन इसलिए करते हैं कि उनका कैनवस बहुत बड़ा है। हमने नेहरूजी को देखा है उनकी फ़िक्र का दायरा बहुत बड़ा था। अब राजनेता नहीं आ रहे हैं, गुण्डे आ रहे हैं जो अपने छोटे-छोटे फ़ायदों के लिए बड़े से बड़े नुकसान कर देते हैं। लड़के ज़ाहिल मालूम होते हैं क्योंकि कल्चर का आदान-प्रदान नहीं है। यह सब ज़ेहन खुला न होने से होता है। बच्चों के दिमाग़ घुट जायेंगे अगर कैनवस बड़ा न हो। अर्जुनसिंहजी जैसे लोगों और ऐसे बहुत से लोगों को आना चाहिए जिनसे हेल्दी नेशन पैदा होगी।

मैं कहीं नहीं जाता पर भोपाल में **भारत-भवन** जाता था। वो बहुत अच्छी संस्था थी। किसी भाषा के बारे में भेदभाव नहीं था। अच्छा प्लेटफार्म था, बहुत बड़ा कॉन्ट्रीब्यूशन था। मुझे अफ़सोस है कि उसका क्या ह्श्र हुआ और न जाने क्या होने वाला है?

कला का किसी इज्म़ से ताल्लुक नहीं है। उसका ताल्लुक आदमी से ही है। फण्डामेन्टेलिज्म के नाम पर हम आर्ट को डील नहीं कर सकते। जब मुग़ल आये, अरब आये, हमने अरबी-फारसी साहित्य पढ़ा। पर यहाँ छोटी जात के लोगों को पढ़ने पर बंदिश लगी रही। इल्म पर पाबंदी लग जाती है तो सब सिमट जाता है। हम संस्कृत के बारे में नहीं बता पायेंगे। अंग्रेज़ों ने क्लर्क दिमाग़ पैदा किया, वे खुशनसीब लोग नहीं थे। संस्कृत कॉमन लैंगुएज नहीं थी। वह मुल्क़ में बोली नहीं गयी।

आर्य सिविलाइज़्ड नहीं थे। वे जब आये तो हिन्दुस्तान सभ्य था। वे तो ख़ानाबदोश थे। गंगा आर्यों के आने से नहीं आयी वह तो हिन्दुस्तान में पहले से थी। हिन्दुस्तान में सिन्ध-हड़प्पा का कल्चर था। हम हिन्दुस्तानी कल्चर को रहने दें। ईरानियों ने, मुग़लों ने फिर ईरान की तरफ़ पलट कर नहीं देखा, वे यहीं घुल-मिल गये। भारतीय जनता पार्टी नफ़रत का कल्चर फैला रही है। औलादें इससे क्या समझेंगी, उन्हें क्या समझबूझ मिलेगी?

इल्म फैलता, स्टडी सर्किल बनते, लोग पेड़ों के नीचे बैठकर बातें करते। वह सब नहीं हो रहा है। मुझे बहुत रंज है कि लोग अपने लिए दूसरों के रास्ते बन्द करते हैं। सोचता हूँ कि हिन्दुस्तान का आदमी इतना अहमक क्यों है कि उसे कुछ दिखाई नहीं देता। किसी किताब में मैंने पढ़ा था कि पुरोहितों ने बहुत नुकसान पहुँचाया। बुद्ध और महावीर को आना पड़ा। आज विवाद सिर्फ़ मंदिर-मस्जिद का है, खुदा में किसी को दिलचस्पी नहीं है। हेट्रेट की संस्कृति को ख़त्म करना चाहिए। अर्जुनसिंहजी जैसे लोग रहे तो अच्छा सूरतेहाल पैदा हो।

अर्जुनसिंहजी को मैंने देखा- वो **भारत-भवन** में आते थे, सबको सुनते थे। अगर किसी ज़रूरी काम से कहीं जाना होता तो माफ़ी माँगते थे। ये एक आदमी की तमीज़दार होने की निशानी है। मुझे याद है जब मैं **भारत-भवन** गया हूँ तो वहाँ पहले अर्जुनसिंहजी सामने होते थे। उनके घर दावत में भी गये। वे बहुत क़रीब आकर हालचाल पूछते थे।

वे पॉजिटिव थिंकिंग के आदमी हैं। काम को महत्त्व देते हैं और जो चाहिए उसका पूरा बन्दोबस्त करते हैं। अगर स्ट्राँग पेडस्टल न हो तो काम कैसे होगा? और फिर इसमें अशोक वाजपेयीजी का भी बड़ा योगदान है। वे जो काम करते हैं उस काम को जानते हैं। उन्होंने फ़िक्र के दायरे को बढ़ाया और खुली फ़िजा दी।

याद आती है वो कुएँ के मेंढक की कहानी— हम घिर गये हैं इसीलिए कहते फिरते हैं कि दुनिया इससे बड़ी तो होती नहीं। अगर आप वो जेनरेशन पैदा करेंगे जिसके पास सोचने का तरीक़ा नहीं तो वो क्या करेगी?

नयी ज़िन्दगी का क्रेडिट नयी ज़िन्दगी बनाने वालों को दीजिए। अर्जुनसिंहजी उन्हीं में से एक हैं।

☐ *अख्तरुल ईमान— भारत के शीर्षस्थ शायर अख्तरुल ईमान उन गिने चुने उर्दू साहित्यकारों में से एक हैं, जिन्होंने शराब और शबाब से हटकर अपनी शायरी में भारत की धर्म निरपेक्षता, साम्प्रदायिक सद्भाव, सर्वहारा वर्ग के हितों के संरक्षण और भारतीय संस्कृति के प्रस्तुतिकरण का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। आप* **भारत-भवन** *से भावनात्मक स्तर पर गम्भीरता से जुड़े चन्द शायरों में शुमार हैं।*

महान् भारत-भवन के निर्माता श्री अर्जुनसिंह

सुरिन्दर सिंह
(महान् गायक (सिंह बन्धु))

अर्जुनसिंहजी से मेरा पहला परिचय एक इंटरव्यू से हुआ जिसकी रिकार्डिंग मुझे श्री आलोक तोमर ने सुनवाई और दो बातों ने मुझे अर्जुनसिंहजी की ओर एकदम आकर्षित किया— उनका भाषाधिकार तथा बात कहने का एक ऐसा ढंग जिसमें उत्तेजित हुये बिना, हर आड़े-टेढ़े प्रश्न का ऐसी सादगी और स्पष्टता से उत्तर दिया गया था जिसमें आत्मविश्वास और ईमानदारी की सुगंध आती थी।

समय के साथ-साथ अर्जुनसिंहजी के प्रति यह आदर भाव बढ़ता रहा। मैंने देखा कि वे हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनों पर समान अधिकार रखते हैं, उनकी हर बात सोची समझी होती है, कम बोलते हैं परंतु जब बोलते हैं तो बात में वज़न होता है, जो काम उनको दिया जाता है वह उसे यूँ निभाते हैं कि "अर्जुनसिंह छाप" उस पर साफ़ दिखाई देती है।

जब उन्हें आतंकवाद-ग्रस्त पंजाब में भेजा गया तो उनका विशेष दायित्व था अमन क़ायम करना और अकाली नेताओं से सम्बन्ध सेतु बनाना। इसमें दो राय नहीं कि राजीव-लोंगोवाल समझौता केवल और केवल अर्जुनसिंहजी के प्रयत्नों का फल था। यह भी लगभग सर्वविदित है कि इस काम में उन्होंने दूरंदेशी और बड़ी हिम्मत से काम लिया। जानकार बताते हैं बहुत बार संत हरचंदसिंह लोंगोवाल को मिलने के लिये वे सारी सुरक्षा व्यवस्था को चकमा दे, चुपचाप छोटी-सी गाड़ी में राजभवन से निकल जाते। आज शायद इस बात का अंदाज़ा लगाना मुश्किल है लेकिन आतंकवाद से सहमे हुये उन दिनों में यह सचमुच दीदा दिलेरी का कारनामा था। राजीव-लोंगोवाल संधि की हर पंक्ति अर्जुनसिंहजी की सूझबूझ, क़ानून पर उनकी मज़बूत पकड़; सामने बैठे प्रतिद्वंद्वी को जीत लेने वाला सौहार्द्र और देश के एक वीर और देशभक्त समुदाय को अंधी गली से निकाल कर उसका आत्म-सम्मान पुनः स्थापित कर देने का एक सुनहरा सबूत है।

जब प्रधानमंत्री श्री नरसिंहराव ने उन्हें मानव-संसाधन विकास मंत्रालय थमा दिया तो राजनीतिक गलियारों में इसे "अर्जुनसिंहजी को बौना बनाने" की एक चाल की संज्ञा दी थी। सब जानते थे कि राजीव-निधन के बाद अर्जुनसिंहजी प्रधानमंत्री पद के सशक्त दावेदार थे।

और तब देश ने देखी "अर्जुनसिंह छाप" कुछ ही दिनों में ऐसा लगने लगा कि मानो सबसे महत्त्वपूर्ण, सब से अधिक काम कर पाने तथा करने वाला मंत्रालय शास्त्री भवन में सिमटा वह कार्यालय था जिसको अर्जुनसिंह नाम का महान मंत्री चला रहा था।

दर असल हर पद को नई गरिमा देना, अर्जुनसिंहजी की पुरानी आदत है। मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री होते हुये उन्होंने कला और संस्कृति के क्षेत्र में इतने नये आयाम ढूँढे, इतना व्यापक काम किया कि पिछड़ा कहलाने वाला मध्यप्रदेश विश्व भर में कला और संस्कृति का एक केन्द्र मशहूर हो गया। अर्जुनसिंहजी से प्रेरित **भारत-भवन** और बहुत-सी

अन्य संस्थाएँ आज इस बात की साक्षी हैं कि उनकी अनुपस्थिति से इतने महान् कार्य की कैसे क्षति हुई। शायद एक व्यक्ति की महानता ऐसे भी आँकी जा सकती है कि उसके निर्मित महत्त्वपूर्ण संस्थाओं को उसके "अनुगामी" कितनी सफलता से संभालते सहेजते हैं।

जहाँ मध्यप्रदेश में अर्जुनसिंहजी ने अपनी कार्य क्षमता तथा दूरंदेशी के बहुत से उदाहरण दिए, वहीं एक और पक्ष भी उजागर हुआ। इस बार कारण विपरीत परिस्थितियाँ थीं।

ख़बर गर्म थी कि दिल्ली के कर्णधार अर्जुनसिंहजी से नाराज़ हैं और मुख्यमंत्री का पद छिन रहा है। अर्जुन अनुयाइयों ने उनसे आग्रह करना शुरू किया कि वे बगावत कर दें मध्यप्रदेश काँग्रेस पार्टी का गठन करें और लगभग सारे विधायक उन्हें समर्थन देंगे और इस प्रकार वही मुख्यमंत्री बने रहेंगे।

अर्जुन प्रेमी समझाते रहे, मनाते रहे। लेकिन अर्जुनसिंहजी टस से मस नहीं हुए। "मैं पार्टी के विरुद्ध विद्रोह नहीं करूँगा।" बस कभी यह बात बड़ी मज़बूती से कही, तो कभी बड़े दु:ख से लेकिन अर्जुनसिंहजी अपनी बात पर अटल रहे।

अर्जुनसिंहजी का जीवन सिद्धांत अपने महाभारत के हमनाम वाला है।

'न दैन्यम न च: पलायनम।'

वह दीन भाव से, हाथ फैला कर कभी कुछ नहीं माँगते, और मैदान छोड़ कर भाग जाना उनकी फ़ितरत नहीं हैं। अर्जुनसिंहजी विद्वान हैं, साहित्य और कला के प्रेमी भी हैं और कद्रदान भी, परन्तु सब से बढ़कर वह सक्रिय राजनेता हैं, जो बहुत कुछ करना चाहता है, बहुत कुछ कर रहा है और सारे देश की दुआओं से बहुत कुछ और करेगा।

☐ *सुरिन्दर सिंह— महान् गायक (सिंह बन्धु), सम्पर्क- सुरिन्दरसिंह, बी-242, चित्तरंजन पार्क, नई दिल्ली-19*

व्यापक सरोकारों वाले साहसिक राजनेता : अर्जुनसिंह

डॉ. कन्हैयालाल नन्दन
(प्रख्यात पत्रकार)

अर्जुनसिंहजी भारतीय राजनीति की ऐसी टीम के खिलाड़ी रहे हैं जो कच्ची गोलियाँ खेलने में विश्वास नहीं करती। जो लोग उनके राजनीतिक जीवन चक्र को देखते-समझते रहे हैं उन्हें अच्छी तरह पता है कि अर्जुनसिंहजी अपने सिद्धांतों के लिए पुख्ता आधार भूमि तैयार किये बिना आगे नहीं बढ़ते। ठंडे मन से बात की तह को पकड़ते हैं, गुनते हैं और फिर आगे का ताना-बाना बुनते हैं। इसमें उनके विरोधी उनसे मात खा जाते हैं। ताज़ा उदाहरण पूर्व मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी का है जिन्होंने यह समझने में चूक की और इसलिए उन्होंने शिक्षा से 'भगवाकरण' को दूर करने के अर्जुनसिंहजी के प्रयासों पर सवाल खड़ा किया कि किस किताब में; किस पाठ में उन्हें क्या ऐतराज़ है यह कहीं नहीं बताया जा रहा, बस 'भगवाकरण' का हल्ला मचाया जा रहा है और तीर पर तीर दागे जा रहे हैं।

पत्रकार यह सवाल लेकर अर्जुनसिंहजी के पास पहुँच गये। उन्होंने जवाब में सिर्फ़ इतना कहा कि "समय आने पर सारी बात सबके सामने रखी जायेगी कि कहाँ ऐतराज़ है और क्यों ऐतराज़ है। सब कुछ यों ही ज़बानी जमाख़र्च तो नहीं हो रहा। सब कुछ फाइलों में दर्ज़ है।"

उन्होंने अपने मंत्रालय की प्राथमिकताओं में इसे सम्मिलित किया था और बाक़ायदा उन स्थलों की पहचान करने के लिए देश के जाने-माने विशेषज्ञों की एक समिति बनायी जो बारीक़ी से विभिन्न पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन कर अनावश्यक दख़लंदाज़ी से देश के धर्मनिरपेक्ष चरित्र को नुकसान पहुँचाने वाले अंशों की पहचान करे और उनमें परिवर्तन की सलाह दे। अर्जुनसिंहजी जानते और मानते हैं कि "यह काम बहुत सोच समझकर किया गया है, उससे कम सोचे समझे बिना उसे बदला नहीं जा सकता।"

नेहरूजी के नेतृत्व को अपना आधार स्तंभ मानकर राजनीति में प्रवेश लेने वाले इस दृढ़प्रतिज्ञ नेता की मान्यता है कि देश का संविधान और क़ानून किसी भी चीज़ को अचानक एक झटके में बदल कर रख देने की इजाज़त नहीं देता। पिछली सरकार ने शिक्षा के मूल चारित्रिक ढाँचे में जिस तरह की दख़लंदाज़ी की है, उसे नयी सरकार बदलने का संविधान सम्मत तरीक़ा निकाल रही है। मसलन् शिक्षा का केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड पिछली सरकार ने निरर्थ बना दिया था उन्होंने उसे फिर से न केवल सक्रिय बनाया बल्कि उसके सफलतापूर्वक कार्य कर सकने का माहौल पैदा कर उसे नयी स्फूर्ति प्रदान की।

उनकी संवेदनशीलता और सुरुचि संपन्नता के चर्चे हमेशा रहे हैं। उन्हें नज़दीक से जानने वाले हर इंसान को पता है कि उनकी संवेदनशीलता बोलती हैं अपने काम से। उनके मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री काल के अनेक उदाहरण मेरे सामने हैं जहाँ ज़रूरतमंद को बिना राजनीतिक पक्षधरता के सही सहायता मुहय्या करायी कई है। वे अपने किसी फैसले के अमल में लाने से पहले हर उस पक्ष पर नज़र डालते हैं जो उस फैसले को प्रभावित करने वाला होता है। शिक्षा के क्षेत्र में ही देखें कि वे यह भी मानते हैं कि 'पिछली सरकार का हर फैसला पलट देने से विद्यार्थियों को

बेहद परेशानी का सामना करना पड़ेगा। जो कुछ बदलना आवश्यक माना जाये, उसके लिए भी कुछ मानक तैयार करने चाहिए और उन मानकों के आधार पर परिवर्तन इस तरह से किये जायें ताकि विद्यार्थियों को कम से कम परेशानी हो।' किसी देश की शिक्षा उसके मानसिक रचाव का स्नायुतंत्र होती है, उसे जल्दबाज़ी में विशृंखलित नहीं किया जाना चाहिए। उनके शब्दों में "इतना तय है कि शिक्षा के साथ पिछली सरकार के समय जो छेड़छाड़ की गयी है और एक राजनीतिक विचारधारा के चलते उसमें जो परिवर्तन किये गये है और वे परिवर्तन जनहित में नहीं हैं, उन्हें ज़रूर बदला जायेगा। एक दल विशेष की विचारधारा के कारण राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप की अवधारणा को खंडित नहीं किया जा सकता।"

अर्जुनसिंहजी अनर्गल प्रलापी वक्तव्य न देते हैं और न ऐसे वक्तव्यों की उनसे किसी को उम्मीद रहती है, लेकिन वे जितना बोलते हैं वह उनके 'ऐक्शन प्लान' का हिस्सा होता है। शिक्षा को वे देश की बुनियाद मानते हैं। उन्होंने दृढ़ इच्छाशक्ति और दृष्टि के कारण अपनी सरकार को विवश किया कि वह शिक्षा के क्षेत्र में नयी क्रांति लाने में उनकी सहायता करें। उन्होंने उसका बजट बढ़वाया और आवश्यक गति प्रदान की। राजनैतिक क्षेत्र के चतुर खिलाड़ी यह मानते रहे हैं कि अर्जुनसिंहजी विभिन्न राजनीतिक दलों को अपना 'एजेंडा' विवेचित करने को विवश कर देते हैं। कई बार इसमें उनकी अपनी पार्टी भी लपेट में आ जाती है। वे जब से राजनीति में आये, काँग्रेस के ही रहे। काँग्रेस की 'मुख्यधारा' जब उन्हें अपने उद्देश्यों से भटकती लगी, उन्होंने उस पर उँगली उठायी। पार्टी से अलग किये गये और जब पार्टी ने अपनी ग़लती सुधार ली वे फिर काँग्रेस की 'मुख्यधारा' में लौट गये। तिवारी काँग्रेस से फिर काँग्रेस में लौटने की घटनाएँ इसका प्रमाण हैं। वे धर्मनिरपेक्ष, ग़ैर-साम्प्रदायिक राजनीति के पक्षधर हमेशा रहे हैं। शिक्षा को रोज़गार से जोड़ने का संकल्प भी उनके सामने रहा है साथ ही शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता बरक़रार रखने का इरादा भी। उनके इस इरादे की अभिव्यक्ति केन्द्र में काँग्रेस की सरकार बनने के बाद भारतीय प्रबन्धन संस्थाओं के निदेशकों के साथ हुई बैठक में सार्थक रूप से सामने आयी, जब उन्होंने उन संस्थाओं की सालाना फीस डेढ़ लाख रूपये से तीस हज़ार करने के पूर्व सरकार के फैसले को पलटने के लिए स्वयं उन संस्थानों के निदेशकों को अपना फैसला लेने का अधिकार दिया। उन्होंने बैठक के तत्काल बाद कहा था कि "फीस निर्धारित करने का क़ानूनी अधिकार भारतीय प्रबन्धन संस्थानों के संचालक मण्डल का है और सरकार उनके अधिकार का सम्मान करेगी।"

उन्होंने फीस कटौती के मसले में आम राय बनाने का आह्वान किया था और उनकी पहल की अनदेखी नहीं हुई। डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने देश की छह प्रसिद्ध आई.आई.एम. (भारतीय प्रबन्धन संस्थान) की वित्तीय ज़रूरतों का आंकलन करने के लिए भारत के पूर्व नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक वी.के. शुंगलू की अध्यक्षता में समिति का गठन किया था। अर्जुनसिंहजी ने साफ़ कहा था कि फीस कटौती के मुद्दे से शुंगलू कमेटी का कोई लेना-देना नहीं है। व्यापक तौर पर माना गया था कि संस्थानों की फीस में 80 प्रतिशत की कटौती करके राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार उन संस्थानों की स्वायत्तता से छेड़-छाड़ कर रही है।

अर्जुनसिंहजी ने सारे मसले को आई.आई.एम. के निदेशकों के पाले में डालकर एक निश्चित अवधि के अन्दर समस्या का हल निकाल लेने की बात की और प्रतिभावान् ग़रीब विद्यार्थियों के हितों को भी उसमें सम्मिलित करा लिया। उन्होंने लाठी को छुए बिना साँप मार कर दिखा दिया। अर्जुनसिंहजी की कार्यशैली इसीलिए अनूठी मानी जाती है। मध्यप्रदेश की प्रशासनिक व्यवस्था को उन्होंने अपनी इसी शैली से सुगठित किया था। प्रशासन तंत्र में यह हवा फैली हुई थी कि अर्जुनसिंहजी अपने अफ़सरों को जो आदेश देते हैं उसे संपन्न न हो पाने की स्थिति में ही उन तक दुबारा लाया जाता है अन्यथा मानकार चला जाता है कि वह कार्य संपन्न हो चुका होगा। नियम कायदे के अंदर जो काम संपन्न हो जाना चाहिए, उसे न करना या न कर पाना अर्जुनसिंहजी को कभी रास नहीं आया। वे मध्यप्रदेश की राजनीति में रहे हों या केन्द्र की राजनीति में, सरकार में रहे हों या न रहे हों, उनकी शैली नहीं बदली।

अर्जुनसिंहजी पहले भी मानव संसाधन विकास मंत्रालय सँभाल चुके हैं और उसकी शक्ति तथा सीमाओं दोनों से परिचित हैं। 10,000 करोड़ के सालाना बजट वाले इस मंत्रालय की बागडोर हाथ में दिये जाने पर कुछ लोगों ने यह ध्वनि भी देने की कोशिश की थी कि अर्जुनसिंहजी इस मंत्रालय को पाकर खुश नहीं हैं। लेकिन जिन्हें अर्जुनसिंह की कार्यशैली और उनके सरोकारों का पता है वे जानते हैं कि अर्जुनसिंहजी अपने हर काम को इतना अहम् बना देते हैं कि उससे उनके मंत्रालय का दर्ज़ा बढ़ जाता है। मनमोहनसिंह सरकार में मानव संसाधन विकास मंत्रालय की अहमियत पहले से ही इतनी बड़ी आँकी गयी कि उसे रक्षा, वित्त और विदेश तथा गृह मंत्रालय की कोटि में रखकर काँग्रेस ने अपने से अलग करना मुनासिब नहीं माना, सहयोगी दलों के दबाव के बावज़ूद नहीं माना। आख़िर इसके साथ 80 से ज़्यादा स्वायत्त संस्थाओं का भविष्य जुड़ा हुआ था, जिनमें यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन के साथ सात भारतीय टेक्नॉलॉजी संस्थान और छह भारतीय प्रबन्धन संस्थान तथा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास जैसे संस्थान सम्मिलित हैं। अर्जुनसिंहजी ने इन संस्थानों के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी समझी और उन पर अनुभव और भविष्य-दृष्टि के आइने में निर्णय लिया। आँख मूँद कर पहले की सरकार द्वारा किये गये हर काम को 'अनकिया' बना कर चलने में वे विश्वास नहीं करते, इसीलिए शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिष विद्या के अध्ययन को डॉ. मुरली मनोहरजोशी द्वारा शुरू किये जाने के बावज़ूद बंद करना मुनासिब नहीं मानते। वे जिस काम के लिए भी अपने को नियुक्त किया गया मानते हैं, उसे हर कोण से पूरा करने की कोशिश करते हैं। इसके लिए वे अपने अनुकूल टीम चुनने में माहिर हैं। वे इस पचड़े में नहीं पड़ते कि उन्हें कौन सा मंत्रालय दिया जाता है। मानव संसाधन विकास मंत्री बनाये जाने पर लोगों ने यह कहना शुरू किया कि वे इस मंत्रालय को पाकर खुश नहीं हैं वे फलां पोज़ीशन चाहते थे, फलां मंत्रालय चाहते थे आदि आदि - इस पर उनके शब्दों पर ग़ौर करें : "मैंने कभी किसी मंत्रालय की माँग नहीं की। ये मसले किसी और स्तर पर तय किये जाते हैं। लेकिन मैं पार्टी का अनुशासित वफ़ादार हूँ। अपनी सीमाओं में रहकर अपने काम को जनहित में अंज़ाम देना मेरा लक्ष्य होता है। ओहदा और हैसियत के पीछे भागना लक्ष्य नहीं होता।"

लक्ष्य की ओर उनके क़दम मानव संसाधन विकास मंत्रालय सँभालने के दूसरे दिन से ही बढ़ने शुरू हो गये थे। जिन दिनों नये मंत्रिमण्डल के अधिकांश मंत्री बधाइयाँ बटोरने में लगे हुए थे, अर्जुनसिंहजी अपने मंत्रालय की सेहत सुधारने में व्यस्त थे। सेहत सुधारने के लिए जितना दाना-पानी मंत्रालय को चाहिए, उसका जुगाड़ 10,000 करोड़ सालाना बजट से हो पाना असंभव था। सन् 2004-05 के लिए 'मिड डे मील' योजना अर्थाभाव से खटाई में है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय को फूड कार्पोरेशन ऑफ इंडिया का 600 करोड़ का पिछला बकाया अदा करना था। प्राइमरी स्कूलों के बच्चों को भोजन देने के लिए सरकार को 4200 करोड़ चाहिए थे। सर्व शिक्षा अभियान के लिए लगभग साढ़े आठ हज़ार करोड़ की ज़रूरत पड़ती है, ज़िला प्राइमरी स्कूलों के लिए साढ़े बारह सौ करोड़ की दरकार इसमें जोड़ दें तो मंत्रालय का सालाना बज़ट हाँफने की हालत में पहुँच जाता है। इन तमाम ज़रूरतों को नज़र में रखकर अर्जुनसिंहजी ने अपने लक्ष्य बनाये और उनके लिए सरकार के सामने अपना दृष्टिपत्र पेश कर आवश्यक संसाधन जुटाये। जो संसाधन सरकार के बूते हो सकते हैं उन्हें सरकार से पूरा कराने का सिलसिला शुरू किया। लेकिन समाज की भागीदारी से लक्ष्य को प्राप्त करने में आसानी हो सकती है इस सिद्धांत को भी उन्होंने जन-जन तक पहुँचाना शुरू किया। निजी क्षेत्र में शिक्षा के लक्ष्य तय करने शुरू किये और यह संदेश दिया कि हर लक्ष्य को पाने के लिए सिर्फ़ सरकार के भरोसे बैठना नासमझी होगी। उन्होंने आँकड़ों को सामने रखकर लक्ष्य तय करने शुरू किये लेकिन इस सबके बावज़ूद अर्जुनसिंहजी आँकड़ों के खेल से घबराने वाले मंत्री नहीं हैं। वे लक्ष्य तय कर उसकी ओर बढ़ने में विश्वास करते हैं; हाँफने में नहीं। उनके सामने यह सवाल भी बहुत बड़ा है कि लड़कियों की शिक्षा का अनुपात कैसे बढ़ाया जाये। अगर सन् 2000-01 के आँकड़ों को आधार मानें तो 40 प्रतिशत से ऊपर लड़कियाँ प्राइमरी स्कूलों में पढ़ना बंद कर देती हैं,

उच्च प्राइमरी स्कूलों तक पहुँचते-पहुँचते यह औसत 54 प्रतिशत तक पहुँच जाता है। इस दिशा में अर्जुनसिंहजी के मंत्रालय ने नये सिरे से विचार करके उस पर अपनी रणनीति तैयार की है। नतीजे ज़ाहिर है कि देर में ही देखने में आयेंगे लेकिन आयेंगे ज़रूर।

मीडिया के लोगों को अर्जुनसिंहजी से अक्सर यह शिकायत रहती है कि उनसे बहुत अच्छी 'बाइट' नहीं मिलती या लिखने के लिए चटपटा मसाला नहीं मिलता। अर्जुनसिंहजी का नपातुला बोलना करेले में नीम का पानी चढ़ा देता है। एक पत्रकार मित्र की टिप्पणी थी: "वे इतना कम बोलकर काम चलाते हैं, कि छापने लायक सामग्री निकाल कर लाना मुश्किल हो जाता है। मसालेदार सामग्री मिलना तो लगभग असंभव होता है।" लेकिन गंभीर पत्रकारों को उनसे कभी निराशा नहीं होती। उनसे असहमत होने वाले पत्रकार भी उनकी तर्कशक्ति और सरोकारों की व्यापकता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।

अध्ययन उनका व्यवसन है और किताबें उनकी सबसे विश्वनीय साथी। मैंने एक बार उनसे यह जानने की कोशिश की कि उनकी पसंदीदा किताबों में वो किसे शामिल करते हैं तो उन्होंने 'प्रोफाइल्स इन करेज़' को कई बार पढ़ने और अक्सर उसका ध्यान करने का ज़िक्र किया था। मुझे उनके व्यक्तित्व में राजनीतिक दृढ़ता और साहसिकता का ऐसा ही अनोखा उदाहरण दिखायी देता है।

उनका स्वास्थ्य अब भले ही लोगों को नरम दिखायी देता हो; क्योंकि डाक्टरों ने सहूलियत के लिए उन्हें छड़ी लेकर चलने की हिदायत दी है लेकिन इससे उनके तेवर में कहीं कोई फ़र्क नहीं आया। ईश्वर से दुआ करता हूँ कि वे लम्बे अरसे तक देश की सेवा करते रह सकने का दम-खम पायें और अपने इसी तेवर को वे लम्बे अरसे तक बरकरार रख सकें। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ मैं उन्हें अपना आदर देना चाहता हूँ।

☐ *डॉ. कन्हैयालाल नन्दन— धर्मयुग में सहायक सम्पादक, पराग, दिनमान, सारिका के सम्पादक रहे। सण्डे मेल के प्रधान सम्पादक रहे। लेखक, कवि, टिप्पणीकार, स्तम्भकार।*

अर्जुनसिंह : राजनीति के हस्ताक्षर

बसंतकुमार तिवारी
(वरिष्ठ पत्रकार)

अर्जुनसिंहजी से मेरा साक्षात्कार साठवें दशक में भोपाल में हुआ। नये मध्यप्रदेश की विधानसभा में वे विंध्य क्षेत्र से विधायक बन कर पहुँचे थे।

यह औपचारिक परिचय समय के साथ कुछ प्रगाढ़ हुआ। 1963-64 में जब पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र रायपुर जिले के कसडोल विधानसभा क्षेत्र से उपचुनाव लड़ने आए तब अर्जुनसिंहजी भी रायपुर आकर लगभग 20 दिन लगातार रहे। मैं मिश्रजी के चुनाव का कार्य देख रहा था और मिश्रजी के साथ पूरे दिन रहता भी था। अर्जुनसिंहजी भी रहते थे। रायपुर के राजकुमार कॉलेज में मिश्रजी और अर्जुनसिंहजी का अस्थायी निवास था। सुबह 8 बजे से रात देर तक हम साथ रहते। मैं श्री सिंह मिश्रजी के साथ ही कसडोल चुनाव प्रचार में जाते और उन्हीं के साथ लौट भी आते थे। इस दौर में श्री सिंह को काफ़ी कुछ जान पाया। इन 20 दिनों के प्रवास के दौरान ही अर्जुनसिंहजी के बेटे राहुलसिंह का जन्मदिन पड़ा। उन दिनों राहुल शायद क्रिश्चियन स्कूल के छात्र थे। श्री सिंह अपने पुत्र को जन्मदिन का उपहार और बधाई भेजना चाहते थे। उन दिनों टेलीफ़ोन की आज जैसी सुविधा नहीं थी। श्री सिंह एक छोटा सा पैकेट पार्सल करना चाहते थे और तार भी भेजना चाहते थे। जब वे स्वयं पोस्ट ऑफिस जाने लगे तो मैंने उनसे कहा कि आप को स्वयं जाने की ज़रूरत नहीं है। मैंने एक परिचित श्री रजब अली की दुकान में उन्हें बैठाया और श्री रजब अली फरिश्ता के कर्मचारी से वह पार्सल और तार भिजवाया। उस समय मुझे श्री सिंह के परिवार के प्रति औपचारिक व्यवहार की सतर्कता की जानकारी मिली।

नये मध्यप्रदेश में पाँच राज्यों का विलय हुआ था। महाकौशल और छत्तीसगढ़ सबसे बड़ी इकाई थी। फिर मध्य- भारत, विन्ध्यप्रदेश और भोपाल। इन चारों राज्यों की राजनैतिक स्थिति अलग-अलग थी। विंध्य, मध्यभारत और भोपाल में रियासती और ग़ैर-रियासती राजनैतिक पृष्ठभूमि थी तो महाकौशल, छत्तीसगढ़ में ऐसा नहीं था। श्री अर्जुनसिंह विंध्य क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते थे और उनकी राजनैतिक पृष्ठभूमि काँग्रेसी होने के साथ-साथ रियासती भी थी। प्रारम्भ में अर्जुनसिंह राजनीति की प्रथम पंक्ति में सक्रिय कम ही नज़र आये। श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र के सक्रिय होने के साथ-साथ श्री सिंह भी काफ़ी सक्रिय होते गए। समय के साथ वे मिश्रजी के काफ़ी प्रिय पात्र बने और इसी कारण मिश्रजी के काफ़ी समर्थक श्री सिंह के विरोधी बनते गए।

1967 में अर्जुनसिंहजी विधानसभा के चुनाव में पराजित हुए। श्री मिश्र ने उमरिया के निवार्चित विधायक श्री रणविजय प्रताप सिंह से त्यागपत्र दिलाकर अर्जुनसिंह को उपचुनाव से पुनः विधायक बनवाया। एक विशेष आयोजन में उन्हें अपने मंत्रिमंडल में शामिल किया जबकि मिश्रजी के पहले मंत्रिमण्डल में वे थे ही। यह प्रदेश की राजनीति का एक ऐसा मोड़ था जब मिश्रजी के बहुत से समर्थक श्री अर्जुनसिंह के विरोधी बन गये और श्री अर्जुनसिंह की मिश्रजी में नज़दीकी और बढ़ गई। मिश्रजी के विरोधियों की संख्या भी बढ़ गई।

मिश्रजी के बाद श्री श्यामाचरण शुक्ल 69, 75 और 89 में मुख्यमंत्री बने परन्तु श्री अर्जुनसिंह उनके मंत्रिमण्डल

में शामिल नहीं हुए। इस बीच श्री सिंह प्रकाशचंद सेठी के मंत्रिमण्डल में रह चुके थे। 89 में शुक्ल मंत्रिमण्डल में श्री सिंह के शामिल होने का प्रश्न ही नहीं था क्योंकि श्री सिंह 80 से 85 के दौर में स्वयं मुख्यमंत्री रह चुके थे। मध्यप्रदेश की राजनैतिक परम्परा रही कि कोई भी पूर्व मुख्यमंत्री नये मुख्यमंत्री की परिषद् का सदस्य नहीं बना। 89 में श्री शुक्ल मुख्यमंत्री और अर्जुनसिंहजी प्रदेश काँग्रेस अध्यक्ष बनाए गए और यह समझौता श्री राजीव गाँधी को विश्वनाथ प्रताप सिंह की चुनौती की पृष्ठभूमि में हुआ था।

1977 में काँग्रेस की पराजय के बाद अर्जुनसिंहजी प्रदेश विधानसभा में विपक्ष के नेता बने और यहाँ से उनके लिए राजनैतिक भविष्य का स्वर्णिम दरवाज़ा खुला। 1980 में काँग्रेस की वापसी के बाद अर्जुनसिंहजी मुख्यमंत्री बने और तमाम विरोधो के बावज़ूद वे डॉ. कैलाशनाथ काटजू के बाद दूसरे मुख्यमंत्री थे जिन्होने पूरे पाँच साल मुख्यमंत्री पद संभाला। 1980 में शिवभानु सोलंकी और सिंह के बीच मुख्यमंत्री पद का चुनाव हुआ। श्री सोलंकी को विद्याचरण शुक्ल का समर्थन था। वे बहुमत भी पा सके पर श्री अर्जुनसिंह को ही मुख्यमंत्री बनाया गया। यह एक अलग कहानी है जो इस आलेख का विषय फिलहाल नहीं है। 1980 के चुनाव में अर्जुनसिंहजी विरोधी तमाम नेता पराजित हो गए थे अतः श्री सिंह का रास्ता कुछ आसान हो गया था।

1967 से 1980 के बीच नेपथ्य में सक्रिय और प्रत्यक्ष में अंतरमुखी रहे अर्जुनसिंहजी ने राजनीति की काफ़ी सफ़ल और चतुर चालें समझ ली थी। काफ़ी कुछ तो उन्होंने पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र से सीखा। मिश्रजी, श्री सिंह के शायद राजनैतिक गुरु थे। श्री सिंह ने मिश्रजी की कमियों और ख़ामियों को अलग रखकर अपनी राजनीति में उन्हें काफ़ी कुछ परिष्कृत कर लिया था। उन्होंने यह अच्छी तरह समझ लिया कि जब तक दिल्ली दरबार (केन्द्रीय नेतृत्व) का समर्थन प्राप्त नहीं होगा तमाम कोशिशों के बावज़ूद राजनीति में कुछ हासिल नहीं होगा। 77 से 80 के बीच और 85 तक वे श्रीमती इंदिरा गाँधी और बाद में श्री राजीव गाँधी के प्रिय पात्र बन चुके थे और यही समझ उन्हें उनकी मनचाही पायदानों पर बैठाती रही। श्री नरसिंहराव से उनकी नहीं पटी। तमाम केन्द्रीय नेताओं को अर्जुनसिंहजी से उन्हें नेपथ्य में कर देने का भय बना रहा। केन्द्रीय नेतृत्व के महत्त्व को समझ कर ही अर्जुनसिंहजी ने पंजाब के राज्यपाल बनाये जाने को सहज स्वीकार लिया यद्यपि उनकी इच्छा प्रदेश में दूसरी पारी पूरी करने की और अपने अधूरे काम को भी पूरा करने की थी।

श्री अर्जुनसिंह के पंजाब के राज्यपाल कार्यकाल में मैं उनके सचिव श्री सुदीप बैनर्जी के आमंत्रण पर चण्डीगढ़ गया। 25 तारीख़ को पंजाब के चुनाव थे। 24 की रात मैंने अर्जुनसिंहजी से कहा कि यहाँ तो अकाली ही बहुमत पा रहे हैं। मैं एक सप्ताह पंजाब घूम चुका था। श्री सिंह ने कहा, "भाई साहब मेरी ज़िम्मेदारी यहाँ निर्विघ्न चुनाव कराने की है। कौन बहुमत पाए यह जनता तय करेगी।" मैंने अनुमान लगाया कि यह सही था क्योंकि पंजाब के चुनाव के बगैर अर्जुनसिंहजी को राज्यपाल के पद से मुक्ति नहीं मिल सकती थी और मुक्ति के बिना सक्रिय राजनीति में वापसी संभव नहीं थी।

एक बार राष्ट्रपति डॉ. श्री शंकरदयाल शर्मा से मैं राष्ट्रपति भवन मिलने गया। मैंने कहा कि उत्तर प्रदेश में भी चुनाव होने हैं वहाँ के लिए अर्जुनसिंहजी या श्री कृष्णपाल सिंह बेहतर राज्यपाल होगे। श्री मोतीलाल वोरा राज्यपाल नियुक्त हो चुके थे। डॉ. शर्मा ने कहा, श्री अर्जुनसिंह के उत्तर प्रदेश में आधार हैं अतः समस्याएँ बढ़ जाती। वैसे राज्यपाल की नियुक्ति तो प्रधानमंत्री की अनुशंसा पर ही होती है। श्री अर्जुनसिंह और डॉ. शंकरदयाल शर्मा एक दूसरे के राजनैतिक विरोधी थे ही।

अर्जुनसिंहजी का प्रारम्भिक राजनीतिक से अब तक मैंने उनका जो अवलोकन किया उसके आधार पर कहा जा सकता है कि राजनीति की शतंरज के वे सजग और चतुर खिलाड़ी हैं जिनके अधिकांश राजनैतिक क़दम और निर्णय सही घोषित होते है। अयोध्या कांड के बाद उनकी मानसिकता त्यागपत्र देने की थी पर वे अनिर्णय के क़ैदी रहे और तिवारी काँग्रेस का गठन करने का भी उनका निर्णय सफल नहीं रहा पर काँग्रेस में वापसी में उन्होंने विलम्ब

नहीं किया और पुनः सही पटरी पर वापस आ गए।

उनकी राजनीति में रियासती राजनीति का पुट रहता है। गहरी पसंद और नापसंद का उनका स्वभाव है। मुद्दों और राजनैतिक असंतोष को मुद्दा बनाना वे बखूबी जानते है। मध्यप्रदेश और ख़ास तौर पर छत्तीसगढ़ में राजनैतिक असंतोष को बड़ा मुद्दा बनाकर उन्होंने स्थापित नेताओं को नेपथ्य में करने और अपने आपको स्थापित करने में सरलता पाई। आदिवासी, पिछड़े वर्ग को राजनीति में सक्रिय करने और आगे लाने में वे काफ़ी सफल रहे। मण्डल आयोग और महाजन आयोग के बाद उनकी इन मुद्दों की पकड़ को समझा जा सकता है। सामाजिक बदलाव को पकड़ना उन्हें आता है।

श्री अर्जुनसिंह में पढ़ने की और पंक्तियों के बीच पढ़ने की भी क्षमता दिखाई देती है। मैं देशबन्धु के सतना संस्करण में अलग नाम से लिखा करता था। एक बार उन्होंने श्री मायाराम सुरजन से जानना चाहा कि लेखक का सही नाम क्या है। सुरजन ने कहा कि हमारे स्टाफ़ के ही हैं पर उन्होंने नाम बताने को कहा। जब मायाराम जी ने मेरा नाम लिया तब उन्होंने कहा कि, "'मेरा अनुमान सही था" मुझे लगातार पढ़ते रहने से उन्हें शायद भाषा, अभिव्यक्ति और लेखक की समझ की जानकारी थी। नई दुनिया में मैं "छत्तीसगढ़ की चिट्ठी" शीर्षक से लिखा करता था। एक बार मैं उनके साथ इन्दौर से भोपाल हवाई जहाज से आ रहा था। श्रीमती सिंह ने मुझसे कहा कि हम आपकी छत्तीसगढ़ की चिट्ठी नियमित पढ़ते हैं। श्री अर्जुनसिंह ने कहा, "वह छत्तीसगढ़ की नहीं तिवारी जी की चिट्ठी है।"

अर्जुनसिंहजी बहुत कम बोलते हैं। सामने वाले को बोलने और उसे सुनने का पर्याप्त अवसर देते हैं। एक दो वाक्य बोलकर श्री सिंह पूरी बात उगलवाने को उत्प्रेरित कर देते हैं। किसी भी बात पर तत्काल और सहज प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते जब तक कि यह परमावश्यक न हो। अपने अधीनस्थ अधिकारियों को निर्देश देते समय भी वे केवल सांकेतिक निर्देश देते है। पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र की यह आदत थी कि वे अपने वरिष्ठतम अधिकारी से ही किसी मसले पर बात करते थे और बहुत सीमित शब्दो में। अर्जुनसिंहजी भी वही करते देखे गए।

अर्जुनसिंह अपने समर्थक अधिकारियों और राजनीतिक समर्थकों का चयन बहुत सोच विचार कर करते हैं। उनके समर्थक उन्हें सहज ही छोड़कर नहीं जाते। उनकी राजनीति का एक रियासती गुण यह है कि वे अपने समर्थकों को पूरी तरह उपकृत करते हैं। समर्थन की पूरी कीमत अदा करते हैं।

मध्यप्रदेश की राजनीतिं में श्री मोतीलाल वोरा, श्री दिग्विजय सिंह और श्री अजीत जोगी उनकी ही देन हैं।

श्री मोतीलाल वोरा, श्री दिग्विजय सिंह और श्री अजीत जोगी की राजनैतिक सफलताओं ने उन्हें अलग-अलग तौर पर आगे बढ़ाया पर नेपथ्य में अर्जुनसिंह के योगदान को ये नेता नकार नहीं सकते। मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ की राजनीति में स्थापित परम्पराओं और परम्परागत नेतृत्व को बदल कर नई राजनीति भी अर्जुनसिंहजी की देन है। यह भी सही है कि प्रशासन और राजनीति में बहुत सी बुनियादी मान्यताओं को तोड़ने का उन पर आरोप लगता रहा है पर वे उन्हें नये रूप में परिभाषित करते रहे। राजनीति में प्रभावकारी और लोकप्रिय मुद्दे और नारे बनाने में भी वे कभी नहीं चूके। कई असफल प्रयासों और बहुत कड़े विरोध, स्वास्थ्य की गड़बड़ी के बावजूद राजनीति में सक्रिय बने रहना और बार-बार वापस लौटना भी उल्लेखनीय है। सार्वजनिक और राजनैतिक जीवन का कोई भी व्यक्ति निर्विवाद नहीं हो सकता। अर्जुनसिंहजी भी नहीं हैं। उनमें भी बहुत सी कमियाँ हैं उन्हे गिनाने का शायद यह अवसर नहीं है। पर अपने अस्तित्व को बनाये रखने की क्षमता भी है। कुल मिलाकर अर्जुनसिंहजी राजनीति के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

☐ *बसंतकुमार तिवारी— छत्तीसगढ़ के वरिष्ठ पत्रकार, सम्पर्क- 93, विवेकानन्द नगर, रायपुर (छ.ग.)*

एक मौन महाकाव्य के महानायक

रमेश नैयर
(वरिष्ठ पत्रकार)

बहुत कम शख़्सियत ऐसी होती है; जिनसे हुई चंद मुलाक़ातें स्मृतियों में रच-बस जाती हैं। लंबे अंतराल के बाद भी जब उनसे कहीं भेंट हो जाती है, या उनका ज़िक्र हो जाता है तो उनकी अपने आसपास उपस्थिति का एहसास सा होता है। अपनी चार दशकों की पत्रकारिता में जिन व्यक्तियों ने मुझे अभिभूत करने की सीमा तक प्रभावित किया, उनमें अर्जुनसिंहजी का नाम मैं शिखर पर पाता हूँ। इसका कारण यह भी हो सकता है कि मुझे अन्य सुप्रसिद्ध व्यक्तियों को कुछ निकट से देखने का अवसर ही न मिल पाया हो।

ढाई दशक से अधिक समय बीत जाने के बाद भी मुझे अर्जुनसिंहजी से हुई उस पहली अंतरंग भेंट की यादें बहुत ताज़ी लगती हैं जब 1979 में वे बिलासपुर आए थे। तब मध्यप्रदेश में जनता पार्टी की सरकार थी और विपक्ष में बैठी काँग्रेस के विधायक दल के नेता श्री अर्जुनसिंह थे। मैं बिलासपुर से प्रकाशित हुए प्रथम प्रातःकालीन दैनिक 'लोकस्वर' का संपादक था। अर्जुनसिंहजी की आमसभा थी और उसके बाद कुछ पत्रकार उनसे मिलने गए थे। मैं भी उन पत्रकारों में शामिल था।

दूसरे दिन जब उनकी जनसभा और उनसे हुई बातचीत को 'लोकस्वर' ने बैनर बनाया और कवरेज में वह आगे रहो तो श्री अर्जुनसिंह समर्थकों ने इस ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। 'लोकस्वर' के आगे रहने का स्वाभाविक कारण यह था कि आमसभा बिलासपुर में हुई थी और 'लोकस्वर' बिलासपुर से प्रकाशित इकलौता प्रातःकालीन दैनिक था, जिसे विस्तार से उनका भाषण और बातचीत प्रकाशित कर पाने की सुविधा प्राप्त थी।

चूँकि 1977 के आम चुनावों में छत्तीसगढ़ के अत्यंत प्रभावशाली नेता श्यामाचरण शुक्ल राजिम विधानसभा से पवन दीवान के हाथों और उनके अनुज विद्याचरण शुक्ल रायपुर लोकसभा क्षेत्र में पुरुषोत्तम कौशिक के हाथों परास्त हो गए थे, इसलिए शुक्ल बंधुओं के गढ़ छत्तीसगढ़ में अपनी पैठ बनाने का अवसर अर्जुनसिंहजी को काँग्रेस विधायक दल का नेता होने के नाते मिल गया। परंतु चुनावों में पराजय के बावज़ूद काँग्रेस संगठन पर शुक्ल बंधुओं की मज़बूत पकड़ बनी हुई थी। अर्जुनसिंहजी ने उस गढ़ में रफ़्ता-रफ़्ता कैसे अपने प्रभाव का विस्तार किया, यह एक अलग कहानी है।

1978 में मध्यप्रदेश काँग्रेस में हुए विभाजन के दौरान अर्जुनसिंह खुलकर श्रीमती इंदिरा गाँधी के साथ खड़े थे, इसलिए उनके मन में वह अपना स्थान बना चुके थे। जनता पार्टी सरकार के गिरने के बाद लोकसभा चुनावों में काँग्रेस को बहुमत मिला तो मध्यप्रदेश काँग्रेस में उनका महत्त्व और बढ़ गया। सन् 1980 के मध्यप्रदेश विधानसभा चुनावों में भी काँग्रेस को ख़ासा बहुमत मिला। अर्जुनसिंहजी, संभवतः श्रीमती इंदिरा गाँधी के आशीर्वाद स्वरूप मध्यप्रदेश काँग्रेस विधायक दल के नेता चुने गए।

इस दौरान मेरा चंचल मन मुझे 'लोकस्वर' से उखाड़कर रायपुर ले आया था। मैं एक स्वतंत्र पत्रकार के रूप

में संघर्ष कर रहा था। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन से मेरी आजीविका चलती थी। छत्तीसगढ़ और पश्चिमी उड़ीसा तक मेरी पत्रकारिता सीमित थी। फिर भी लिखने की विपुल सामग्री प्रायः प्रत्येक सप्ताह मिल जाती थी और मैं हिन्दी के कुछ प्रतिष्ठित साप्ताहिकों में मेरी उम्मीद से ज़्यादा छप रहा था।

एक दिन मध्यप्रदेश के जनसंपर्क विभाग के संभागीय कार्यालय की मार्फ़त मुझे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री निवास से भेजा गया एक व्यक्तिगत पत्र मिला। यह मेरे लिए एक सुखद विस्मय प्रसंग था। पत्र में श्री अर्जुनसिंह ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में मेरे लेखन का संक्षिप्त उल्लेख करते हुए मुझे भोपाल स्थित मुख्यमंत्री निवास पर भोजन के लिए आमंत्रित किया था। यह भी कहा गया था कि उस अवसर पर कुछ अनौपचारिक बातचीत भी हो जाएगी।

मेरे भोपाल जाने-आने और वहाँ ठहरने की उत्तम व्यवस्था जनसंपर्क विभाग ने की थी। उस रात्रि भोज में पूरे मध्यप्रदेश से बमुश्किल आधा दर्जन पत्रकार थे। आत्मीय शिष्टता के साथ अर्जुनसिंहजी ने सबका स्वागत् किया। बातचीत अनौपचारिक और सहज थी। मुझसे जो चर्चा हुई वह छत्तीसगढ़ में उस समय की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं से जुड़ी थी। उस भोज की जिस एक बात ने मुझे गहराई तक प्रभावित किया, वह थी श्रीमती सरोज सिंह की वहाँ उपस्थिति और भोजन के लिए किया गया उनका आग्रह। मुझे अच्छी तरह से याद है कि श्रीमती सिंह ने स्वयं खड़े होकर प्रत्येक अतिथि पत्रकार को पहली 'डिश' सर्व की थी। अभिजात्य इतना शिष्ट और शालीन भी होता है, इसका प्रथम प्रमाण मुझे उस भोज में मिला था।

अर्जुनसिंहजी से दूसरी यादगार मुलाक़ात जगदलपुर में हुई। बस्तर में पाइन (चीड़) के रोपण को लेकर वहाँ के पत्रकार और पर्यावरण प्रेमी आंदोलित थे। आंदोलन यद्यपि मीडिया के माध्यम से ही चलाया जा रहा था, फिर भी बस्तर के युवकों तथा राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं की सक्रियता ने उसे एक राष्ट्रीय मुद्दा बना दिया था। समाजवादी नेता श्री वाजपेयी, पर्यावरणविद् शरद वर्मा और पत्रकार किरीट दोशी की बस्तर की इस प्रमुख समस्या की दिल्ली तक अनुगूँज उत्पन्न करने में सक्रिय भूमिका थी। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने वस्तुस्थिति का जायज़ा लेने के लिए जगदलपुर पहुँचने का निर्णय लिया। श्रीमती इंदिरा गाँधी के स्वागत् के लिए मुख्यमंत्री अर्जुनसिंहजी सुबह से जगदलपुर के कामचलाऊ विमानतल पर पहुँच चुके थे। सुरक्षा कर्मियों, प्रशासनिक अधिकारियों, राजनीतिज्ञों, प्रमुख नागरिकों, पर्यावरण प्रेमियों और पत्रकारगण ख़ासी तादाद में विमानतल पर एक बड़ा गोल घेरा बनाकर खड़े थे। संयोग कुछ ऐसा हुआ कि मैंने श्री अर्जुनसिंह को ठीक अपने बगल में खड़ा पाया। वे हल्के बादामी से रंग की सफारी पहने हुए थे, जो उन पर ख़ूब फब रही थी। मैंने अभिवादन किया तो उन्होंने मुझे मेरे नाम से संबोधित करते हुए कुशल-क्षेम पूछा। पाइन-रोपण की चर्चा भी छिड़ गई। मैंने अपनी समझ से पाइन-रोपण के बारे में बस्तर की भावनाएँ उन्हें बताईं। इस बीच कुछ पत्रकार और अन्य जानकार लोग भी उनके पास पहुँच गए। उनमें कुछ पाइन रोपण योजना की पक्षधर लॉबी के लोग भी थे। परंतु इस मुद्दे पर विरोध के स्वर इतने घने और तीखे थे कि उनकी बोलती बंद हो गई।

श्रीमती इंदिरा गाँधी का विमान उतरा तो सब इधर-उधर हो गए। श्रीमती गाँधी की अगवानी के बाद श्री अर्जुनसिंह उनके साथ कार में सर्किट हाउस रवाना हो गए। बाद में सर्किट हाउस में आयोजित पत्रकारवार्ता में श्रीमती गाँधी ने बस्तर में पाइन रोपण की योजना को समाप्त करने की औपचारिक घोषणा कर दी। यह बस्तर के आदिवासियों के अंतस की आवाज़ के अनुरूप था इसलिए उस पर व्यापक प्रसन्नता व्यक्त की गई। जानकारों का मानना था कि श्रीमती इंदिरा गाँधी का वह निर्णय अर्जुनसिंहजी के आकलन पर आधारित था।

तीसरी बार अर्जुनसिंहजी से मुलाक़ातों का क्रम तीन-चार वर्षों के अंतराल के बाद 1985 में चंडीगढ़ में शुरू हुआ। तब मैं चंडीगढ़ के दैनिक ट्रिब्यून में सहायक संपादक था। पिछले चार वर्षों में वहाँ रहते हुए मैंने आतंकवाद की विकरालता को बहुत नज़दीक से देखा था। आज़ादी के बाद राजनीतिक इतिहास की अत्यधिक त्रासद घटनाएँ उन

वर्षों में हुई थीं। ऑपरेशन ब्लू स्टार और श्रीमती इंदिरा गाँधी की नृशंस हत्या ने देश को दहला दिया था। श्रीमती गाँधी की हत्या के बाद भड़की हिंसा ने सिख मानस को बुरी तरह आहत कर रखा था। देश बहुत नाज़ुक दौर से गुज़र रहा था। राजीव गाँधीजी ने प्रधानमंत्री का कठिन दायित्व संभाला था। पंजाब में स्थितियाँ बहुत उलझ चुकी थीं। आए दिन हो रही आतंकवादी वारदातें पंजाब में टकराव और अलगाववाद के दहकते अलावों को हवा देने का काम कर रही थीं। उस कठिन समय में पंजाब में शांति तथा आपसी समझ के लिए किया जाने वाला प्रत्येक प्रयास गर्म तवे पर ठंडे पानी के चंद छींटों की नियति को प्राप्त हो रहा था।

पंजाब में शांति की कोई भी सार्थक पहल प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की प्राथमिकता थी। संभवतः उस समय का यक्ष प्रश्न था कि यह महत्त्वपूर्ण दायित्व सौंपा किसे जाए। अर्जुनसिंहजी उस समय फिर से मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने थे। अभी उन्होंने भोपाल में यह ज़िम्मेदारी संभाली ही थी कि अर्जुनसिंहजी को पंजाब का राज्यपाल बना दिए जाने की खबरें छपीं। उनके राजनीतिक रक़ीबों की त्वरित प्रतिक्रिया थी कि कुँवर साहब निबट गए। वह सुलगता हुआ और लहूलुहान पंजाब, जहाँ शांति की स्थापना को असंभव सा मान लिया गया था, अर्जुनसिंहजी क्या कर लेंगे? लोगों ने माना पंजाब का राजभवन उनके सत्ता की राजनीति से निर्वासन का बिन्दु था। अर्जुनसिंहजी के आशावादी समर्थक भी यह मान कर चल रहे थे कि उनकी अग्नि परीक्षा का ऐसा दौर शुरू हो गया है जिसके अंजाम के बारे में भरोसे के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता।

श्री अर्जुनसिंह ने यह विषम अग्नि परीक्षा अपने कुछ विश्वस्त एवं परीक्षित सहयोगियों को चंडीगढ़ बुलवाकर शुरू की। उनमें सुदीप बनर्जी सहित कुछ आई.ए.एस. और आई.पी.एस.अधिकारी भी थे।

मेरे जैसे लोगों को लगता था कि अर्जुनसिंह यथाशीघ्र पंजाब राजभवन से मुक्ति का मार्ग तलाशने पर अपना ध्यान केंद्रित करेंगे। एक बार राजभवन में उनसे हुई थोड़ी सी बातचीत के दौरान मैंने अपनी जिज्ञासा व्यक्त कर दी तो उन्होंने राजभवन में कड़ी चौकसी के लिए तैनात सुरक्षा कर्मियों की ओर उंगली से इशारा करते हुए कहा कि उनमें से अनेक लोग पंजाब के बाहर से आए हुए हैं। वे सभी अपने-अपने प्रदेशों में जाने को आतुर होंगे। मैं चाहता हूँ कि उन सबके अपने गृह प्रदेशों में लौटने की अनुकूल स्थितियाँ जितनी जल्दी संभव हो बन जाए। जब ये लौटने लगेंगे तो मेरी वापसी के आसार भी बनने लगेंगे। उनके आचरण का सूत्र वाक्य "न दैन्यं, न पलायम्" मुझे उनकी वाणी में भीगा हुआ और उनके चेहरे से कौंधता हुआ मालूम हुआ था।

किस प्रकार से अर्जुनसिंहजी ने आतंकवादी दबावों से सहमे हुए पंजाब के अकाली नेताओं को विश्वास में लिया, राज्य में क़ानून व्यवस्था क़ायम करने के लिए किन युक्तियों को अपनाया और किस प्रकार से संत हरचंद सिंह लोंगोवाल और प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी से ऐतिहासिक समझौते का धरातल तैयार किया, देश का जागृत इतिहास है। जो असंभव माना जा रहा था, वह अंततः संभव हो गया। कैसे हो पाया, यह एक विस्तृत लेख का विषय है। वैसे भी वह पंजाब के उस नाज़ुक दौर पर लिखी गई पुस्तकों में दर्ज हो चुका है।

अर्जुनसिंहजी से मेरी अंतिम यादगार मुलाक़ातें 1991-92 के उन वर्षों में हुई जब वे केंद्र में मानव संसाधन विकास मंत्री थे। एकाध मुलाक़ात उनसे साप्ताहिक 'संडे आबज़र्वर' के लिए ली गई लंबी भेंटवार्ता के सिलसिले में हुई। परन्तु एक अविस्मरणीय भेंट तब हुई जब स्वर्गीय संत हरचंदसिंह लोंगोवाल के पैतृक गाँव लोंगोवाल में एक संस्थान की स्थापना के लिए वे मुझे हेलीकॉप्टर में अपने साथ ले गए। दिल्ली में लोंगोवाल की लगभग पौने दो घंटों की उड़ान में हम दोनों आमने-सामने बैठे थे। पहली बार बहुत मुक्त होकर अनेक विषयों पर चर्चा हुई। राजनीति पर कोई बात नहीं हुई। साहित्य और संस्कृति पर तथा नई-पुरानी पुस्तकों पर बातचीत केंद्रित रही। विश्व के वैचारिक द्वंद पर लिखी गई नई किताबों को लेकर फ्रेडरिक फॉर साउथ के नए थ्रिलर 'द नेगोशियेटर' और

उसके बाद के ताज़ा थ्रिलर की (जिसका नाम तत्काल याद नहीं आ रहा) वे एक जिज्ञासु पाठक की तरह सहजता से चर्चा करते रहे। अधिकांशतः वे कहते रहे और मैं सुनता रहा।

संत हरचंदसिंह लोंगोवाल के गाँव पहुँचे तो मैंने उन्हें भावुक पाया। भीग सी गई अपनी आँखों को उन्होंने बड़े जतन से जनता की निगाहों से छिपाया था। एक मौन महाकाव्य सा कुछ था, जो उनके चेहरे पर रम गया था। उसे पढ़ पाने की दृष्टि मेरे पास नहीं थी। जो पढ़ पाया उसे व्यक्त करने के लिए भी स्मृतियों को खंगालना पड़ेगा। फिलहाल वह इस संक्षिप्त लेख की बाहों में समाया भी नहीं जा सकता।

☐ *रमेश नैयर— छत्तीसगढ़ के वरिष्ठ पत्रकार। संडे आब्ज़र्वर, लोकस्वर, दैनिक भास्कर के सम्पादक रहे। ट्रिब्यून चंडीगढ़ के सहायक सम्पादक रहे। चार दशकों से पत्रकारिता में सक्रिय। कई पुस्तकें प्रकाशित। कुछ महत्त्वपूर्ण कृतियों के अंग्रेज़ी व पंजाबी से अनुवाद भी प्रकाशित। सम्पर्क : 152, समता कॉलोनी, रायपुर (छ.ग.)*

महानता की कसौटी पर खरे श्री अर्जुनसिंह

त्रिलोक दीप
(वरिष्ठ पत्रकार एवं राजनीतिक पिप्पणीकार)

तीस-बत्तीस साल पहले अर्जुनसिंहजी से मेरी पहली मुलाक़ात हुई रायपुर में उन दिनों मैं दिनमान में था। किसी विशेष कारण से दिल्ली से रायपुर गया था। अर्जुनसिंहजी उन दिनों मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री थे। मित्र रमेश नैय्यर ने बताया कि कबीर समारोह में शिरक़त करने के लिए अर्जुनसिंहजी पधारने वाले हैं। उनके बारे में यह तो सुन रखा था कि उनका व्यक्तित्व आम राजनेता से कुछ हटकर है लिहाज़ा उनसे निकट से मिलने की मन में हसरत पैदा हुई। शायद वह समारोह निगम के विशेष हॉल में आयोजित था। सबसे पहले तो मैं उनकी शालीनता से प्रभावित हुआ। सभी लोगों से हाथ जोड़कर, मुस्करा कर मिल रहे थे। उस समारोह में कबीर के विशेषज्ञ देश भर से आये थे। बहुत से ऐसे विद्वान थे जिन्होंने कबीर के नज़रिये को समाज के सभी पैमानों से विवेचित किया था। कुछ ने कबीर के दोहों में भक्तिकाल की सूक्तियाँ तलाशी थीं तो कुछ ने सामाजिक कड़ियों में व्याप्त कट्टरता के प्रहारक के रूप में उन्हें देखा था।

अर्जुनसिंहजी जब बोलने के लिए खड़े हुए तो कुछ लोगों ने सोचा था कि आम राजनीतिज्ञों की तरह दायें-बायें से बोलकर तालियों की गड़गड़ाहट सुनने के बाद रुख़्सत हो जाएँगे। लेकिन उन्होंने कबीर को न केवल उनके समय में बल्कि आज के संदर्भ में उनकी अनिवार्यता का प्रस्तुतीकरण किया। कबीर साहित्य के जानकार और विशेषज्ञ अश-अश कर उठे। अर्जुनसिंह ने कहा कि कबीर जैसों की प्रासगंकिता हर युग में हर पीढ़ी के लिए सदा जीवंत रही है और सदैव वह प्रेरणा की स्रोत सिद्ध होगी। कबीर ने दलितों, शोषितों, पीड़ितों और समाज के ठुकराए हुए लोगों के उत्थान के लिए जो आवाज़ बुलंद की उसकी सार्थकता आने वाले हर युग में बनी रहेगी। यह तो अपनी-अपनी दृष्टि है। कुछ लोग कबीर में भक्ति आंदोलन के पुट देखते हैं तो कुछ उनमें समाज सुधारक का रूप पाते हैं। सिख गुरुओं ने कबीर के दोहों को अपने महान ग्रंथ साहिब में सम्मिलित किया। जो व्यक्ति भी गुरु ग्रंथ साहिब के सामने नतमस्तक होता हैं वह गुरुवाणी के साथ-साथ कबीर वाणी के समक्ष भी अपना माथा झुकाता है। आज हमें कबीर की इसी व्यापकता और उदारता को अपने जीवन में उतारने की ज़रूरत हैं। उपस्थित जन मंत्रमुग्ध होकर अर्जुनसिंहजी को सुनते रहे। जैसा मैंने कहा कि वह आम राजनीतिक से हटकर हैं रायपुर में कबीर समारोह में उपस्थित विद्वान और विशेषज्ञों की भी ऐसी ही राय मैंने महसूस की।

अर्जुनसिंहजी के विचारों को सुनने का यह मेरा पहला अवसर था। उसके बाद उनसे मुलाक़ात भी हुई। संक्षिप्त थी लेकिन यादगार। उन्होंने वादा किया कि जब कभी दिल्ली आना होगा, भेंट होगी। अर्जुनसिंहजी अपने वचनों का सदा आदर करते आये हैं। उसके बाद उनसे मुलाक़ातों का सिलसिला शुरू हो गया। मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बनने पर उनसे भोपाल और दिल्ली लगातार मिलना-जुलना होता रहा। कभी औपचारिक, कभी अनौपचारिक उनकी शालीनता और साफ़गोई से मैं बेहद प्रभावित था और आज भी हूँ। जब कभी भी 'दिनमान' के लिए विशेष साक्षात्कार की आवश्यकता

होती उनसे समय अवश्य मिलता। प्रश्नों का उत्तर वह अवश्य देते रहे कभी उन्होंने 'नो कमेंट्स' जैसे शब्दों का इस्तेमाल नहीं किया।

अर्जुनसिंहजी की एक विशेषता और है। जब कभी भी मैं उनका इंटरव्यू टेप करता तो देखता कि उनका अपना टेप भी चल रहा है। कई बार मन में आया कि उनके टेप का रहस्य जानूँ। लेकिन हिम्मत नहीं जुटा पाता था। जब कई बार ऐसी ही प्रक्रिया जारी रही तो साहस बटोर कर पूछ ही लिया 'जब हम टेप करते हैं तो आप के टेप करने की क्या तुक है।' सवाल सुनने के बाद पहले मुस्कुराये। फिर बोले, 'इसके कई लाभ हैं। प्रथम, मेरे पास भी रिकॉर्ड रहता है कि मैंने कब, किस दिन कितने बजे किस व्यक्ति (पत्रकार) से बात की। जो बातें मैंने की उसे कहीं तोड़ मरोड़ कर छापा तो नहीं गया या तथ्यों के साथ उलटफेर तो नहीं हुआ। यह तो रही मेरी रिकार्ड रखने की बात। दूसरा अगर कहीं आपका टेप काम करना बंद कर दे तो यह मेरा टेप आपकी सहायता करने में सक्षम् होगा। जब चाहें इस टेप को ले जाकर अपना काम चला सकते हैं और मेरा टेप लौटा सकते हैं।' वास्तव में मेरे साथ एक दो बार ऐसा हादसा हो भी गया। अर्जुनसिंहजी से उनका टेप उधार लेकर उनका इंटरव्यू ट्रांसक्राइब करना पड़ा। अपने कहे को सहेज कर रखना और समय आने पर अपने बचाव में पेश करना अर्जुनसिंह की कार्यशैली का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है।

अर्जुनसिंहजी को देश की सेवा के महत्त्वपूर्ण कार्य मिलते रहे हैं। मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री के अलावा केन्द्र में मंत्रियों के दायित्व का भी उन्होंने निर्वाह किया। कभी संचार मंत्री बने तो कभी वाणिज्य मंत्री तो कभी मानव संसाधन विकास मंत्री बनाए गए। एक बार उनसे यों ही पूछ लिया 'क्या आप समझते नहीं कि आपकी वरिष्ठता और अनुभव को देखते हुए आपको अधिक महत्त्वपूर्ण मंत्रालय दिये जाने चाहिए?' अर्जुनसिंहजी अपनी गरिमा बनाए रखते हुए उत्तर देते थे 'मैं काँग्रेस पार्टी का एक अनुशासित सिपाही हूँ। मेरे नेता जिस तरह से चाहें मेरी सेवाओं का इस्तेमाल कर सकते हैं। मैं कौन हूँ अपने विचारों को थोपने वाला। यह तो मेरे नेता को मालूम हैं कि मेरी उपयोगिता किस विभाग या मंत्रालय में हैं। उन्होंने मुझे जो दायित्व सौंपा हैं अपनी पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ निर्वहन करने का प्रयास करूँगा।' वास्तव में जब अर्जुनसिंहजी को संचार मंत्रालय सौंपा गया था तो उनके कुछ समर्थकों ने शिकायत भरे लहज़े में कहा था कि 'अर्जुनसिंहजी के क़द को देखते हुए यह मंत्रालय बौना सा लगता हैं।' लेकिन स्वयं अर्जुनसिंहजी ने अपने समर्थकों को इस तरह की भाषा का इस्तेमाल न करने की सलाह दी थी। लेकिन यह सर्वविदित हैं कि संचार मंत्री के तौर पर उन्होंने जिन नीतियों को निर्धारित किया और अपनाया आज के दूरसंचार के विकास में उनका भी महत्त्वपूर्ण योगदान हैं।

चाहे इंदिरा गाँधीजी रही हों, राजीव गाँधीजी या सोनिया गाँधीजी अर्जुनसिंहजी ने अपने नेताओं के प्रति आस्था और निष्ठा में कभी कमी नहीं आने दी। जब-जब उन्हें नेताओं की तरफ़ से ज़िम्मेदारियाँ मिलीं उनका निर्वहन उन्होंने बख़ूबी किया। 1985 की बात है। 9 मार्च को उन्होंने मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। अन्य मंत्रियों के नामों की सूची का अनुमोदन कराने के लिए दिल्ली आये कि प्रधानमंत्री ने उन्हें पंजाब के राज्यपाल का पद संभालने का निर्देश दे दिया। अर्जुनसिंहजी आज्ञा को शिरोधार्य कर चण्डीगढ़ चले गए और 12 मार्च को अपने नये दायित्व का कार्यभार संभाल लिया। कहीं कोई गिला शिकवा नहीं, शिकायत नहीं। क़रीबियों से बोलेः 'हमारे नेता ने हमें यह विशेष दायित्व सौंपा हैं उस पर खरा उतरने का प्रयास करूँगा।' बेशक यह जोख़िम भरा ज़िम्मा था। पंजाब में हालात तनातनी वाले थे। किसी दबंग राज्यपाल की ज़रूरत भी थी। अर्जुनसिंहजी दबंग के साथ-साथ व्यवहार कुशल भी हैं। कब किस की सहायता लेनी चाहिए इस तथ्य से भी वह परिचित हैं। राज्यपाल पद का कार्यभार संभालने के बाद अमृतसर में स्वर्ण मंदिर में माथा टेका और वहाँ अतिथि पुस्तक में दर्ज़ किया: 'प्रभु के मंदिर में मेरी सेवा स्वीकार हो।'

अब उनका काम शुरू हुआ। अर्जुनसिंहजी ने पंजाब के पत्रकारों, साहित्यकारों और राजनीतिकों से सलाह मशविरा का दौर शुरू कर दिया। वह किस से कब बात करते हैं दूसरे व्यक्ति को इस की जानकारी नहीं होती। स्थितियों का ज़ायज़ा लेने के लिए आधी रात को भी निकल पड़ते। कभी-कभी अकेले ही। राजभवन के द्वार उन सभी लोगों के लिए खोल दिए गए जो राज्य में शांति स्थापित करने के उपयोगी कारक सिद्ध हो सकते थे। उनकी कार्यशैली अलग क़िस्म की है। विचार-विमर्श के तार सिर्फ़ तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधीजी से ही जुड़े रहते थे। न तो राष्ट्रपति और न ही गृहमंत्री को यह पता होता था कि पंजाब में क्या चल रहा हैं। अर्जुनसिंहजी ने हर उस व्यक्ति की सलाह ली जो पंजाब में शांति स्थापित करने का पक्षधर था। ऐसे लोगों में काँग्रेस और अकाली पार्टी दोनों के नेता थे। अकाली नेता संत हरचंदसिंह लोंगोवाल से भी उनकी लगातार मुलाक़ातें होती रहती थीं। इन मुलाक़ातों में भरसक गोपनीयता बरती जाती। जिस तरह से राजीव गाँधी और संत हरचंदसिंह लोंगोवाल के बीच पंजाब में शांति स्थापना के लिए दिल्ली में समझौता हुआ उसे अर्जुनसिंहजी की राजनीतिक सूझबूझ का परिचायक ही माना जायगा। चण्डीगढ़ में एक बातचीत में अर्जुनसिंहजी ने कहा थाः 'निःसंदेह यहाँ के पत्रकारों और लेखकों ने मेरी पूरी मदद की।' वह अतरसिंह और मुबारकसिंह के नामों की अक्सर चर्चा किए करते थे।

संत हरचंदसिंह लोंगोवाल ने राजीव गाँधीजी के साथ शांति समझौते पर हस्ताक्षर कर आतंकवादियों को अपना दुश्मन बना लिया था। समझौते के बाद एक बार दिल्ली में पंजाबी बाग के एक गुरुद्वारा में मुलाक़ात होने पर संत लोंगोवाल ने कहा था कि 'पंजाब में शांति की ज़रूरत है। किसी न किसी को तो आगे आना ही चाहिए। मैंने महसूस किया कि इस तरह के समझौते से बेगुनाह जानें बचाई जा सकती हैं तो मैंने अर्जुनसिंहजी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।' बेशक इस शांति समझौते से उग्रवादियों की हताशा बढ़ गई और उनकी गतिविधियाँ तेज़ हो गई। अंततः इस शांति समझौते की बलि संत लोंगोवाल चढ़ गये। लेकिन पंजाब में अमन के जो बीज वह बो गये उसे सदैव याद किया जायेगा।

अर्जुनसिंहजी ने पंजाब के राज्यपाल पद पर रहते हुए शहीदों को सदा याद किया। एक बार जलियाँवाला बाग में शहीदों को श्रद्धांजलि देने के लिए अमृतसर में बहुत बड़ा समारोह हुआ। मुझे अच्छी तरह से याद हैं उसमें भाग लेने के लिए तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ (मध्यप्रदेश के वर्तमान राज्यपाल), काँग्रेस नेता श्री मोतीलाल वोरा और श्री दिग्विजयसिंह भी उपस्थित थे। अलावा इनके समाज के विभिन्न वर्गों से लोग भी शहीदों को श्रद्धांजलि देने के लिए उमड़े थे। दिल्ली से बहुत से पत्रकार और स्वयंसेवी संस्थाओं के लोग ले जाये गये थे ताकि उन्हें यह पता चल सके कि पंजाब में शांति का वातावरण फिर से बन रहा है। बेशक अर्जुनसिंहजी ने पंजाब में शांति स्थापना के जो प्रयास किये यह उनकी सूझबूझ और अद्‌भुत कार्यशैली का प्रतीक ही माने जाएँगे। वह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि एक तो मैं उन दिनों पंजाब के आतंकवादियों की गतिविधियों को कवर किया करता और दूसरे अर्जुनसिंहजी के राज्यपाल बनने के बाद राजनीतिक स्थितियों में आने वाले सुधार पर नज़र रखता था। इस सिलसिले में उनसे कई बार मुलाक़ातें भी हुई थीं।

बेशक़ पंजाब के राज्यपाल का दायित्व श्री अर्जुनसिंह के लिए तलवार की धार पर चलने वाला कार्य था जिसे उन्होंने बख़ूबी अंज़ाम दिया। पंजाब के विधानसभा के चुनाव हो चुके थे। नई सरकार सुरजीतसिंह बरनाला के नेतृत्व में वजूद में आ चुकी थी। अर्जुनसिंह का कार्य अब शुद्ध 'संवैधानिक मुखिया' का रह गया था। लिहाज़ा उनके लिए नये दायित्व की चर्चा शुरू हो गई थी। इन चर्चाओं पर वह सिर्फ़ इतना ही कहा करते थे 'जो काम दे दिया गया उसे पूरी ज़िम्मेदारी से निभाना है। मेरे नेता ने कोई सोच समझ कर ही मेरे लिए नया दायित्व चुना होगा। पंजाब के राज्यपाल के बाद उन्होंने कुछ समय तक वाणिज्य मंत्री के तौर पर काम किया। बाद में राजीव गाँधीजी ने उन्हें काँग्रेस

पार्टी का उपाध्यक्ष बनाया। कार्यकारी अध्यक्ष तब पंडित कमलापति त्रिपाठी थे। काँग्रेस उपाध्यक्ष के तौर पर वह राजीव गाँधीजी के ख़ासमख़ास बन गए थे। अर्जुनसिंहजी की सलाह पर ही दिसम्बर 1985 में बम्बई में शताब्दी समारोह हुआ जिस में लोकतंत्री परंपराओं से पार्टी के सभी पदों पर चुनाव हुए। अर्जुनसिंहजी वही थे, दायित्व बदल गये थे। व्यस्तता बढ़ गयी थी लेकिन वह स्वयं कभी नहीं बदले थे। उनके ख़िलाफ़ मोर्चाबंदी हुई। बाद में काँग्रेस के उपाध्यक्ष पद को भी त्यागना पड़ा। उन्हें संचारमंत्री का ज़िम्मा मिला। कुछ लोगों ने इसे अर्जुनसिंहजी की पदावनति भी कहा लेकिन स्वयं अर्जुनसिंहजी कहा करते थे' यह कौन तय करेगा कि मेरी पदोन्नति और पदावनति कौन सी दिशाओं और दशाओं में होती है। यह काम तो नेता का होता है। मुझे जो भी काम दिया जाता हैं उसे मैं अंज़ाम देने की कोशिश करता हूँ।'

पहले 'दिनमान' और उसके बाद 'संडे मेल' के समय में अर्जुनसिंहजी से मेरा संपर्क रहा, मुलाक़ातें होती रहतीं। अपने नेता के प्रति उनकी निष्ठा अभीष्ट थी और आज भी हैं। उन्हें कभी भी अपने नेता से कोई गिला नहीं रहा। जब वह सत्ता में नहीं थे और सांसद् भी नहीं रहा करते थे तब भी उनसे मिलने वालों की संख्या कम नहीं होती थी। मुलाक़ातियों की सूचियाँ पहले जैसे ही बनती थीं। समय पहले की तरह ही तय होता था और स्वयं अर्जुनसिंहजी की कार्यशैली में कभी बदलाव नहीं आता था। 'शिखर वार्ता' के लिए अर्जुनसिंहजी से कई बार बातचीत हुई। बातचीत को टेप करने की वही पुरानी परंपरा कायम रही। श्री अर्जुनसिंह की नीतियाँ साफ़ हैं ठीक वैसे ही जैसे अपने नेता के प्रति उनकी निष्ठा और आस्था। एक बार जब उनके निवास पर मैंने गुरु गोविंदसिंह का चित्र देखा तो उनके पंजाब के राज्यपाल के दौर की याद हो आई। दूसरी बार देखा कि वह चित्र सही जगह पर नहीं रखा है। मैंने अर्जुनसिंहजी से निवेदन किया कि 'गुरुओं के चित्र के लिए यथोचित सम्मान न देना उनका निरादर करना होता हैं। यदि आप आज्ञा दें तो मैं यह चित्र ले जाऊँ।' तब वह कुछ नहीं बोले। शीघ्र ही उनसे फिर मिलना हुआ। देखकर कि गुरु महाराज का चित्र न केवल करीने से सजा हुआ है बल्कि उस पर बढ़िया सा हार भी है। जिस तरह से अर्जुनसिंहजी की अपने नेता के प्रति आस्था है वैसी ही आस्था उन गुरुओं के प्रति है जो दूसरों के आराध्य होते हैं। वह कहते भी हैं जो आपका आराध्य वह हमारा भी आराध्य। फिर इन्हीं गुरुओं की कृपा से ही तो हम पंजाब में शांति समझौता कराने में समर्थ हुए।

जैसे हमने पहले कहा अर्जुनसिंहजी कभी शिकायत नहीं करते, काम करते हैं। इस बार भी जब उन्हें मानव संसाधन विकास मंत्रालय का कार्यभार सौंपा गया तो कुछ समर्थकों ने उन्हें बेहतर मंत्रालय माँगने की सलाह दी। अर्जुनसिंहजी का उत्तर था: 'इस मंत्रालय में बहुत काम करना हैं। आने वाली पीढ़ी को ज़िम्मेदारियाँ सौंपनी है, उनके सही दिशा निर्देश के लिए काम करने की ज़रूरत है। बहुत दिनों बाद हमें कुछ कर गुजरने की ज़िम्मेदारी मिली है, इस चुनौती का मुक़ाबला हम सभी लोगों को मिलजुल कर करना है। शिकायतों के लिए अभी वक़्त कहाँ है, अभी तो कुछ हटकर कर दिखाने की ज़रूरत है।'

यह हैं अर्जुनसिंहजी और उनके काम करने का ढंग और नज़रिया।

☐ *त्रिलोक दीप— 'दिनमान' में विशेष संवाददाता और सण्डे मेल के कार्यकारी सम्पादक रहे। लेखक, टिप्पणीकार एवं स्तम्भकार।*

अर्जुनसिंह : एक अद्‌भुत आभामंडल

बबनप्रसाद मिश्र
पूर्व संपादकः नवभारत, रायपुर
अध्यक्षः बख्शी सृजन पीठ, भिलाई

अर्जुनस्य प्रतिज्ञा द्वय, *न दैन्यम् न पलायनम्।*

कुँवर अर्जुनसिंह की राजनैतिक यात्रा के चार दशक कुछ इसी सूत्र से जुड़े हैं। भारतीय राजनीति में इतने समय तक किसी हस्ती का प्रभाव क्षेत्रीय राजनीति से राष्ट्रीय राजनीति तक बना रहना प्रायः कम ही हुआ किन्तु अर्जुनसिंहजी ने अपने व्यवहार, राजनैतिक क्रिया-कलापों तथा संपर्क-सूत्रों से अपना यह आभामंडल बनाए रखा।

मध्यप्रदेश की राजनीति में चाणक्य नाम से चर्चित पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र के मुख्यमंत्रित्व काल के राजनैतिक माहौल में कुँवर अर्जुनसिंह की प्रतिभा एवं कार्यशैली ने उन्हें द्वारिकाप्रसाद मिश्र, श्यामाचरण शुक्ल, प्रकाशचंद सेठी एवं गोविंदनारायण सिंह के विकल्प के रूप में दर्शाया। वह दौर श्रीमती इंदिरा गाँधी के विरुद्ध सक्रिय सिंडीकेट, जिसमें एस.के.पाटिल, मोरारजी, निजलिंगप्पा आदि शामिल थे, का था। केन्द्र में बन रहे समीकरणों में तब मोरारजी और पाटिल की सौदेबाजी से त्रस्त श्रीमती इंदिरा गाँधी मध्यप्रदेश के तीक्ष्ण बुद्धिवाले राजनेता द्वारिकाप्रसाद मिश्र पर ज़्यादा भरोसा कर रही थीं। केन्द्र में उस सिंडीकेट के विरुद्ध श्री मिश्र रक्षा-कवच का काम कर रहे थे। यूँ कहें कि वे श्रीमती गाँधी का सच्चा अनुयायी स्वयं को बताने की कोशिश कर रहे थे। तब संविद सरकार के विरुद्ध मध्यप्रदेश में प्रगतिशील विधायक दल बना था। वह दौर आत्मा की आवाज़ पर राष्ट्रपति चुनाव में श्रीमती गाँधी द्वारा वी.वी.गिरि को राष्ट्रपति निर्वाचित कराने एवं बँट रही काँग्रेस की दो धाराओं में एक धारा को पूरी मज़बूती से अपने साथ एकजुट रखने की कोशिशों का था। कुँवर अर्जुनसिंह ने यहीं से श्रीमती गाँधी से अपनी निकटता निरंतर बढ़ाई और यह कहा जा सकता है कि वे श्रीमती इंदिरा गाँधी के लिए भले कभी-कभार चिंता के विषय बने किन्तु उन्होंने श्रीमती इंदिरा गाँधी का साथ उनके जीवन-पर्यंत दिया।

वह राजनेता ही क्या, जिसके 10 दोस्त और 10 दुश्मन न हों; या जिसके अनुयायियों और निंदकों की बड़ी फौज़ न दिखलाई दे। श्री अर्जुनसिंह इसके अपवाद नहीं रहे। जब वे मध्यप्रदेश में शिक्षा उपमंत्री थे, तब से उनका राजनैतिक जीवन प्रशंसा और निंदा के ज्वार-भाटों से घिरा रहा। स्वयं अर्जुनसिंहजी के लिए मुख्यमंत्री पद का दायित्व-निर्वहन काँटों का ताज़ था किन्तु कभी ग़रीबों के मसीहा के रूप में, तो कभी भोपाल गैस त्रासदी के भगोड़े के रूप में उनकी स्तुति या निंदा होती थी और कभी समाचार-पत्र जगत एवं अनुयायियों की विद्रोही टीम के शिखर नेता के रूप में वे चर्चित होते थे। श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र से लेकर श्यामाचरण शुक्ल और विद्याचरण शुक्ल के विरुद्ध उन्हें शूल-प्रहार करते चाहे जब-तब देखा गया। यह विरोध उनकी जीवनशैली-सा बन गया। उनके मुख्यमंत्रित्व काल की सराहना करने वालों की कमी नहीं है। उन्होंने कुछ विलक्षण कार्य मुख्यमंत्रित्व काल में किए जिनमें तेंदूपत्ता श्रमिकों के लिए व्यापक आर्थिक आधार देना उनके सत्ता काल का स्वर्णिम अध्याय है। वे नौकरशाही पर लगाम लगाने वाले कुशल

प्रशासक भी माने गए। स्वयं काफ़ी अध्ययनशील और मौलिक चिंतन के धनी होने के कारण भारतीय सेवा आई.ए.एस. एवं भारतीय पुलिस सेवा आई.पी.एस. के कुछ अच्छे अफ़सरों को चुनकर उन्होंने अपने कार्यकाल को निर्बाध प्रगतिशील रखने की पूरी कोशिश की। मीडिया को अपने प्रति उदार रखने के लिए उन्होंने राज्य भर में अख़बार वालों को मुफ़्त या नाममात्र की दर पर बड़े-बड़े भू-खंड बाँटे। तब एक कहावत चल पड़ी थी कि मीडिया अर्जुन के निशाने पर नहीं, उनका कूटनीतिक शस्त्र है।

लगभग यही नीति उन्होंने हरिजनों, पिछड़ों एवं अल्पसंख्यकों के लिए अपनाई। उनके बीच अपना जबर्दस्त जनाधार बनाया। काँग्रेस का समाजवादी चरित्र हरिजन-आदिवासी एवं अल्पसंख्यक वोट पर ज़्यादा निर्भर हो रहा था। लगभग सन् 1976 के अप्रैल में अर्जुनसिंहजी मध्यप्रदेश की राजनीति में अपने 20-25 विधायकों के समर्थन से राज्य विधायक दल के नेता पद के लिए ताल ठोंककर सामने आए। तब प्रकाशचन्द्र सेठी और श्यामाचरण शुक्ल उनके विरुद्ध थे। पंडित श्यामाचरण शुक्ल आपातकाल के बाद जब चुनाव हारे तब अर्जुनसिंहजी एवं मोतीलाल वोराजी ही काँग्रेस में विधायकों के नेतृत्व के लिए अग्रिम पंक्ति में थे। श्री सेठी अपना जनाधार खो रहे थे, पर वे मोरारजी का साथ छोड़कर पुनः श्रीमती गाँधी के नेतृत्व को स्वीकार कर चुके थे।

पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र भी तब श्रीमती गाँधी के विरुद्ध टीका-टिप्पणी करने लगे थे। ऐसे दौर में अर्जुनसिंहजी ने अपने विधायक दल की ओर से श्रीमती गाँधी का खुला समर्थन कर उनका संपूर्ण विश्वास अर्जित किया। श्यामाचरण शुक्ल एवं उनके गुट को श्रीमती गाँधी विरोधी बतलाकर उन्हें तब हाशिए पर डालने एवं यहाँ तक कि इंदिरा काँग्रेस से निष्कासित कराने में अर्जुनसिंहजी की अहम् भूमिका रही। श्री श्यामाचरण शुक्ल और श्री अर्जुनसिंह के बीच मतभेदों की खाई इतनी बढ़ी कि संभवतः वह दिखावटी मेल-मिलाप तक भले बनी रही हो, दोनों ने एक-दूसरे को निबटाने की भूमिका में बीते दो दशकों में कोई कसर नहीं छोड़ी।

श्रीमती गाँधी, श्यामाचरण शुक्ल को अर्जुन विरोधी मानती थीं और अर्जुनसिंहजी के जगज़ाहिर श्यामाचरण विरोध से विचलित भी होती थीं। श्री अर्जुनसिंह की यह हैसियत तो रही कि उन्होंने श्यामाचरण शुक्ल को दिग्गी राजा के मुकाबले पुनः मुख्यमंत्री नहीं बनने दिया।

भारतीय राजनीति का चक्र तब तेज़ी से घूम रहा था। संजय गाँधी की असामयिक मौत, श्रीमती गाँधी की हत्या एवं बाद में राजीव गाँधी की हत्या ने काँग्रेस में एक गुट को बड़ी हताशा दी। ऐसे दौर में अर्जुनसिंहजी ने अपना दमख़म बरक़रार रखा। जब कभी मीडिया उनसे उनकी अंतर्भावना पर कुछ तीखे सवाल करता तब वे एक फ़िल्मी गाना गाते देखे जाते रहे, जिसके बोल हैं— बहुत शुक्रिया, बड़ी मेहरबानी।

श्री राजीव गाँधी ने इन्हें पंजाब का राज्यपाल नियुक्त किया। आपने राजीव-लोंगोवाल समझौते को साकार करवाकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की।

श्री अर्जुनसिंह के जनसंघ, संघ या भाजपा विरोध की चर्चा न करना बेमानी होगी। वे कभी संघ के निकट थे, ऐसा प्रचार जनसंघ क्षेत्र में होता रहा। उनके कुछ स्वजन भी संघ-परिवार के निकट रहे किन्तु बीते तीन दशकों में वे संघ को एवं संघ-परिवार को प्रायः पानी पी-पीकर कोसते देखे जाते हैं। उन्हें संघ-परिवार से वैचारिक शत्रुता की सीमा तक जाते देखा जाता है। केन्द्र में यदि वाजपेयी सरकार ने कुछ ठीक काम किए या केन्द्रीय शिक्षामंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने शिक्षा के भारतीयकरण की कोशिश की तो उसमें उन्हें भगवाकरण दिखलाई दिया। आज वे इस विरोध के प्रबल झंडाबरदार हैं। उनके संगी-साथियों को नैतिक मूल्यों से दूर देखने वालों की संख्या या उनके आलोचकों की संख्या आज भी कम नहीं है किन्तु आधुनिक अर्जुन इससे विचलित नहीं हैं।

आज वे श्री मनमोहन सिंह की सरकार में मानव संसाधन विकास मंत्री हैं किन्तु वे शिक्षा की प्रचलित प्रतिमा को अपने ढंग से तोड़ना-बनाना चाहते हैं। इससे अल्पसंख्यक वर्ग उनसे खुश हो रहा है किन्तु एक बड़ा वर्ग विचलित भी है। जनापेक्षा तो यही है कि देश की सत्ता में कोई रहे, राष्ट्रीय शिक्षा नीति विवादरहित रहे। अर्जुनसिंह शिक्षा के क्षेत्र को निष्कलंक रखें, यह अपेक्षा तो की ही जा सकती है।

☐ *बबनप्रसाद मिश्र— 'युगधर्म' और 'नवभारत' जैसे पत्रों के एक दशक तक संपादक रहे। छत्तीसगढ़ के वरिष्ठ पत्रकार। संप्रतिः पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी सृजनपीठ के अध्यक्ष हैं। सामाजिक-साहित्यिक गतिविधियों में निरंतर सक्रिय। संपर्कः 10 ए-रविनगर, रायपुर (छत्तीसगढ़)*

संकल्पवान राजनेता और कुशल प्रशासक

टी. जगत्पति
(पूर्व मुख्य सचिव, मध्यप्रदेश शासन)

मई 1980 में जब श्री अर्जुनसिंह मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने, तब मैं मध्यप्रदेश विद्युत मण्डल का अध्यक्ष था और उसी वर्ष नवम्बर माह में मुझे प्रदेश का मुख्यसचिव नियुक्त किया गया क्योंकि प्रदेश की बिजली की स्थिति बहुत ही ख़राब थी, मध्यप्रदेश विद्युत मण्डल के अध्यक्ष के नाते, बिजली संबंधी चर्चाएँ मुझे अक़सर श्री अर्जुनसिंह से करनी पड़ती थीं। मुख्यसचिव बनने के बाद श्री अर्जुनसिंह के साथ सम्पर्क बहुत घनिष्ठ हुए। इन अनुभवों के आधार पर, श्री अर्जुनसिंह के 74वें जन्म दिवस के अवसर पर उन्हें बधाई देते हुए उनके व्यक्तित्व के विविध पक्षों पर कुछ कहने के लिये मैं इस ग्रंथ के संपादकों का बहुत आभारी हूँ।

श्री अर्जुनसिंह एक कर्मठ एवं कुशल राजनीतिज्ञ हैं। इस कुशलता की बुनियाद, मेरी दृष्टि में यह है कि वे हमेशा लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से तय कर लेते हैं और उन लक्ष्यों की पूर्ति करने के लिये सुस्पष्ट नीति बना लेते हैं। उनकी यह विशेषता है कि लक्ष्यों के क्रियान्वयन में यदि अनियंत्रित बाधा या अड़चन आयँ तो किंचित भी घबराहट के बिना हार मानते हुए क्रियान्वयन नीति में आवश्यक परिवर्तन करके लक्ष्य की पूर्ति में सफल होते हैं। श्री अर्जुनसिंह फलोन्मुखता को अधिक महत्व देते हैं। वे समाजवाद के सिद्धांतों पर पूर्ण रूप से विश्वास करते हैं और शासन को समाजवादी नीतियों पर ही चलाने के लिये दृढ़ संकल्पित रहते हैं। प्रजातंत्र के उत्तरदायित्व को पूरा करने का भार और उसकी कल्पना और प्रेरणा, वे अच्छी तरह समझते हैं। प्रजातंत्र के प्रत्येक क्षण में अपना उत्तरदायित्व सही रूप से निभाने में वे पूरी तरह सजग रहते हैं।

उन्होंने अपने मुख्यमंत्रित्व काल में राज्यपाल के भाषणों के संदर्भ में, जो वर्ष में कम से कम दो बार, विधानसभा के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं, एक नई प्रथा की शुरुआत की थी। वह यह है, कि राज्यपाल के भाषण में आगामी वर्ष के लिये शासन की नीतियों एवं कार्यक्रमों का उल्लेख प्रस्तुत करने के पहले यह आवश्यक होता था कि पूर्व में दिये गये भाषणों में जो वायदे किये थे, उनका विवरण दिया जाय और सफलताओं और असफलताओं की विस्तृत तस्वीर प्रस्तुत की जाये। इस परम्परा को उन्होंने समाप्त कर दिया। राजनीति एक ऐसा दुरूह क्षेत्र है, जहाँ शाश्वत तौर पर, न तो कोई किसी का मित्र है, न कोई शत्रु और इन परिस्थितियों के बावज़ूद जहाँ निहित स्वार्थों से प्रेरित शक्तियाँ सामने आएँ, वहाँ सफलता प्राप्त करना बहुत ही मुश्किल काम है। श्री अर्जुनसिंह को इस क्षेत्र का ज्ञान अद्वितीय है।

प्रशासनिक क्षेत्र, राजकीय क्षेत्र से बिलकुल भिन्न है। प्रशासनिक क्षेत्र में कार्य करने वाला होता है मुलाज़िम, न कि निर्णय करने वाला। ऐसे मुलाज़िमों को क़ानून और नियम के अनुसार जनहित को दृष्टि में रखते हुए काम करना पड़ता है, भले ही यह रुख़ राजकीय दृष्टि से अमान्य या असुविधाजनक क्यों न हो। ऐसी परिस्थिति में कभी-कभी राजकीय अंग के और प्रशासनिक अंग के बीच तनाव उत्पन्न हो सकता है। परन्तु जनतांत्रिक प्रक्रिया सुचारू रूप से चलते

रहने के लिये दोनों, राजकीय अंग एवं प्रशासनिक अंग, अपरिहार्य हैं। इसलिये जब कभी ऐसी तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है, प्रशासनिक अंग को, विश्वास के साथ काम करने के लिये, संविधान में कुछ हद तक, संरक्षण प्राप्त है। फिर भी उनका यह विधियुक्त धर्म है कि राजकीय अंग की जो भी नीतियाँ हों, उनका निष्ठापूर्वक क्रियान्वयन करें।

यह उल्लेखनीय है कि श्री अर्जुनसिंह किसी प्रकार की अप्रिय स्थिति कभी उत्पन्न ही नहीं होने देते थे। वे एक बहुत ही कुशल प्रशासक हैं और उनके कार्यकाल में उनके प्रशासन की यह विशेषता थी कि वे जो भी निर्देश देते थे, सुस्पष्ट होते थे। इसीलिये प्रशासनिक अंग को उनके आदेशों का पालन करने में कतई कठिनाई नहीं होती थी। दूसरी विशेषता यह कि, यदि किसी निर्णय पर, राजकीय दृष्टि से या अन्य दृष्टिकोण से पुनरावलोकन की आवश्यकता पड़े तो ऐसे मुद्दे पर प्रशासकों से पहले चर्चा कर लेते थे और यदि उनके विचारों, सुझावों में सार्थकता नज़र आये, तो बगैर हिचकिचाहट के पूर्व में लिये गये निर्णयों में आवश्यक परिवर्तन करने में जरा भी विलंब नहीं करते थे। यदि वे चर्चा के बाद भी प्रशासनिक दृष्टिकोण से सहमत नहीं हो सके तो वे स्पष्ट लिखित आदेश देते थे। इसकी पूरी ज़िम्मेदारी अपने आप पर लेते थे।

एक लम्बे अर्से से डाकू समस्या न केवल सारे प्रशासन के लिये बल्कि डाकूग्रस्त क्षेत्र में सामान्य नागरिकों के लिये आतंक और चिन्ता का विषय बनी रही, जिसका समाधान करने में श्री अर्जुनसिंह ने अपनी विशिष्ट योग्यता का परिचय दिया। डाकू समस्या पर क़ाबू पाने के लिये सबसे पहले उन्होंने इसके मर्म को समझा। यह समस्या न केवल मध्यप्रदेश में थी बल्कि सीमावर्ती उत्तरप्रदेश और राजस्थान में भी इसका आतंक था। भौगोलिक स्थिति की वजह से कुछ विशेष संरक्षण ऐसे तत्वों को मिल जाता था और ऐसी सहायता उपलब्ध हो जाती थी जिसे चाहते हुए भी शासन रोक नहीं लगा पाता था। अत: यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा, कि उन्होंने इन सीमावर्ती राज्यों के साथ उच्चस्तर पर सम्पर्क स्थापित किया और इस समस्या का समाधान करने के लिये 'पोलिटिकल विल' तैयार किया और डाकू समस्या को समाप्त करने में अहम् भूमिका निभाई।

विकास क्षेत्र में भी श्री अर्जुनसिंह के सतत प्रयत्नों से बहुमुखी प्रगति हुई। प्रदेश के हित में विभिन्न क्षेत्रों में योजनान्तर्गत एवं योजनेत्तर कार्य को समुचित रूप से संचालित करने के लिये विभिन्न विभागों के बीच समन्वय हो तथा प्रशासनिक वर्ग अपना कुशल नेतृत्व दे सके, इस बात का पूरा ध्यान रखकर उन्हें पूरा अधिकार दिया गया। उनकी यह हमेशा कोशिश रही कि किसी रागद्वेष या किसी दबाव में न पड़कर अपनी पूरी शक्ति और क्षमता के साथ इस प्रदेश के अंदर एक उत्तरदाई, एक प्रगतिशील और इस प्रदेश के विकास में जुड़ी हुई सरकार हो। इस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था बनाने में वे अपने उद्देश्यों को मूर्तरूप देने में बहुत सफल रहे। हरिजन एवं आदिवासियों के उत्थान के लिये विकास कार्य को न केवल प्राथमिकता दी, उनका यह दृष्टिकोण भी रहा कि विकास योजना पर उसी क्षेत्र में निर्णय लिया जाय जिस क्षेत्र में आदिवासियों का विकास हो, उन्होंने क्षेत्रीय प्राधिकरणों का गठन भी किया। प्रदेश के मुख्यमंत्री होने के नाते सभी क्षेत्रों को समान रूप से सहयोग, सामीप्य और सुझाव देने में कतई कमी नहीं रखी।

संस्कृति जैसे असाधारण क्षेत्र में भी श्री अर्जुनसिंह देश के लिये मार्गदर्शक रहे हैं। प्रजातंत्र की मज़बूती के लिये वे सांस्कृतिक एकता को आवश्यक मानते हैं। सांस्कृतिक एकता को दृढ़ करने के लिये उन्होंने अनेक सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना पर जोर दिया। **भारत-भवन** इसका एक उदाहरण है। अब **भारत-भवन** देश विदेश में प्रख्यात और सांस्कृतिक चेतना का केन्द्र है। अनेक कलाकार सम्मानित हुए और सभी तरह के कलाकारों की खासकर जन-जातियों की कलाओं को ज़ोरदार प्रोत्साहन दिया गया। इनका यह काम अत्यंत प्रशंसनीय है।

श्री अर्जुनसिंह में एक ख़ास गुण जो उनके सम्पर्क में काम करने वाले हर व्यक्ति को चकित कर देता है, वह

उनके कठोर परिश्रम करने की क्षमता है। मैंने यह अनुभव किया है कि यदि काम है तो उन्हें दिन और रात की कोई परवाह नहीं। देर रात तक काम करने के बाद भी सुबह सात बजे से पहले ही वे तैयार होकर फिर काम में लग जाते थे। मुझे यह कहने में संदेह नहीं होगा कि कई उनसे काफ़ी कम उम्र वाले भी इतना परिश्रम नहीं कर सकते हैं। श्री अर्जुनसिंह ने केन्द्र और राज्यशासन तथा राजकीय क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण पद संभाले हैं और उन सब में कितनी लगन के साथ उन्होंने काम किया है, वह हम सबको विदित ही है। पंजाब में श्री अर्जुनसिंह के माध्यम से संपादित राजीव-लोंगोवाल समझौता अभी भी लाभदायक हो सकता है। जन्मदिन के अवसर पर बधाई के रूप में प्रस्तुत होने वाले इस लेखन में अति विपुलता अप्रासंगिक होगी। संक्षेप में, इस अवसर पर यह कामना करूँगा कि श्री अर्जुनसिंह का बहुमुखी सामर्थ्य देश के लिये चिरकाल तक उपलब्ध रहे और परमेश्वर श्री अर्जुनसिंह को अपनी कृपा बख़्शते रहें।

☐ *टी. जगत्पति— मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यसचिव टी. जगत्पति कुशल प्रशासक के रूप में विख्यात हैं। भिलाई इस्पात क़ारख़ाने के सी.एम.डी. से मध्यप्रदेश शासन के मुख्यसचिव तक की लम्बी प्रशासकीय यात्रा में एक ईमानदार-कुशल-तटस्थ सेवा भावी अधिकारी श्री जगत्पति गम्भीर अध्येता, चिंतक, विचारक हैं।*

संस्कृतिधर्मी राजनीतिज्ञ

प्रभातकुमार भट्टाचार्य
(लेखक और रंगकर्मी)

जिन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम के अलंकरण से विभूषित किया गया है, उनसे यदि किसी ने यह पूछा होता कि उन्होंने उस राजसत्ता का ही परित्याग क्यों नहीं कर दिया था जिसकी मर्यादा की रक्षा के लिए उन्हें अपनी सहधर्मिणी का परित्याग करने के लिए विवश होना पड़ा था, तो उनका सम्मानित उत्तर यही होता कि राजसत्ता का निर्वहन तो उनका शास्त्र-सम्मत धर्म था। धर्म का परित्याग कोई ऐसे कैसे कर सकता है?

सच है, धर्म तो धुरी है मनुष्य की। यहाँ 'धर्म' शब्द का अर्थ रुढ़िग्रस्त अनुष्ठानों से जुड़ी साम्प्रदायिक जड़वादिता नहीं है। जिस व्यापक अर्थ में 'धर्म' शब्द का प्रयोग यहाँ किया गया है, वह मनुष्य के स्वत्व से जुड़ा हुआ है।

मर्यादा पुरुषोत्तम ने जिस धर्म से वशीभूत होकर राजसत्ता को अंगीकार किया था, वह न तो मोह था, न लोभ था और न ही माया थी– वह तो एक सनातन कर्त्तव्य बोध था जिससे पीछा छुड़ाने की कायरता वे कर नहीं सकते थे। यह और बात है कि लोकापवाद के सम्मान को राजसत्ता की मर्यादा की रक्षा मान लेना, लोकापवाद को प्रश्रय देने की भूल है।

त्रेता का यह कर्त्तव्य बोध द्वापर का अनासक्त कर्मयोग बना। अर्थात् त्रेता हो या द्वापर, राजसत्ता से मुक्ति का कोई मार्ग नहीं था। फिर भला कलि की क्या बिसात की राजसत्ता से कोई विमुख हो सके। स्वयं मोहनदास नाम के करमचन्द-पुत्र ने महात्मा के सर्वसम्मत एवं नैसर्गिक अलंकरण के बावज़ूद यही स्वीकार किया था कि राजनीति से मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। वे तो महात्मा थे। इसलिए राजनीति में शुचिता नामक प्रक्षालन पर निरन्तर बल देते रहे।

मगर कोई कुछ कहे, राजनीति नामक प्रसाद हो या कुटिया, है तो वह हर हालत में काज़ल की कोठरी ही। और अब तो बात केवल कोठरी तक ही सीमित नहीं है, सारा परिवेश ही राजनीति नामक इस ऑक्टोपस के फैलते-पसरते आक्षितिज विस्तारवाद के शिकंजे में है।

मुझ जैसा राजनीति विज्ञान का विद्यार्थी न तो महात्मा को ही शतप्रतिशत स्वीकार करने में सक्षम हो सकता है, भले ही नब्बे प्रतिशत स्वीकार हो, और न ही कौटिल्य और मेकियावेली को पूर्णतया नकारने की क्षमता रखता है, भले ही नब्बे प्रतिशत नकार हो।

हाँ, मुझमें साँसें ले रहा संस्कृतिकर्मी ज़रूर आवेश में भरकर, भरपूर आवेग के साथ, राजनीति के उमड़ते घटाटोप के विरुद्ध फट पड़ना चाहता है। मुझ जैसा एक शिक्षक, अवश्य ही राजनीति के सर्वग्राही हस्तक्षेप की अंधकारी चादर को चीर देना चाहता है।

मगर मुश्किल यही है कि राजनीति नामक इस अधुनातन वसन्तसेना ने शिक्षक-संस्कृतिकर्मी-साहित्यकारों की इस चारुदत्तीय जमात को, अपनी अस्मिता का अर्घ्य, राजनीति की चौखट पर चढ़ाने पर, इस सीमा तक, विवश कर

दिया है कि लगता है जैसे कोई शूद्रक अब किसी मृच्छकटिक में से शकारों के बलात्कारी को निकाल बाहर नहीं कर सकेगा। आख़िर कोई शिक्षक, कोई संस्कृतिकर्मी या कोई साहित्यकार निस्संग कैसे हो सकता है। हितों की हाट का ऐसा विलक्षण, बहुरंगी, चमकदार, विज्ञापन हर चौराहे पर चस्पा कर दिया गया है कि कोई भी आँखों वाला, अपनी आँखों को आख़िर मूँदे तो कब तक? कभी न कभी तो इस चकाचौंधी चौराहे पर आँखें खुलेंगी ही।

भारत ही क्यों, समूचे विश्व के हर देश का हर चौराहा राजनीति के इन्द्रजाल का चकाचौंधी चौराहा है, जिसके सम्मोहन से किसी का भी बच पाना असम्भव है। इसलिए जिन शिक्षकों, संस्कृतिकर्मियों और साहित्यकारों की एक पृथक स्वाभिमानी पंक्ति को अलग-अलग रखने का उपक्रम मैंने किया है, वह लगभग व्यर्थ है। इन चकाचौंधी चौराहों पर इतने दरवाज़े खुलते हैं और हर दरवाज़े की ऐसी हाहाकारी पुकार होती है कि हर शिक्षक, संस्कृतिकर्मी और साहित्यकार अपनी पंक्ति तोड़कर उस इन्द्रजाल के प्रति समर्पित हो जाता है। भारी भरकम अनुदानों के प्रलोभन, विदेश भ्रमणों के लालच, कुर्सियों और कुर्सियों का मोह, सम्मानों-अलंकरणों-पुरस्कारों के आवंटन, समितियों-परिषदों-अकादेमियों के बन्धन गोष्ठियों-परिसंवादों-परिचर्चाओं-सम्मेलनों के आमंत्रण यानी जिधर देखो उधर लाली ही लाली। तो फिर लाली देखने कोई जाए और लाल हुए बिना रह जाए, क्या ऐसा सम्भव है?

इसलिए यह निश्चित है कि राजनीति ही सर्वग्राही है। और परहेज़ की चाहे जितनी कोशिश की जाए, व्यर्थ है। महात्मा गाँधी ने उसके सतत परिष्कार के जो उपाय बताये हैं, उन उपायों की भी यदि तिलांजलि दे दी जाए, तो क्या यह अपेक्षा भी अनुचित है कि कम से कम कौटिल्य का मार्ग ही अपनाया जाए यानी साध्य और साधन– दोनों की शुचिता सम्भव नहीं हो तो क्या साध्य की शुचिता से भी मुँह मोड़ लेना चाहिए?

मुश्किल यही है कि बस, यही तो हो रहा है। राजनीति जब तक जल है, तब तक उसके आक्षितिज आप्लावन में भी उतनी भारी क्षति नहीं है, जितनी उस जल के कीचड़ बन जाने में है। आज के राजनीतिज्ञ या तो तैरना नहीं जानते या वे तैरने के परिश्रम से बचना चाहते हैं। उन्हें तो उथले पानी में कीचड़ मचाना रास आता है। इसीलिए तो श्री विश्वनाथप्रताप सिंह और चौधरी देवीलाल को बोफ़ोर्स या मण्डल कमीशन के कीचड़ से सरोकार है। इसीलिए तो भारतीय जनता पार्टी श्रीराम की शिला पर राष्ट्र की नींव रखना चाहती है। इसीलिए तो काँग्रेस वंशवाद के मायाजाल में अब तक उलझी रही है। इसीलिए तो साम्यवादी दल एक ऐसे देवता की सिद्धांत प्रतिमा को टुकड़ों में बाँटकर पूजते रहे हैं जो कपूर की डली साबित हुए और इसीलिए तो समाजवादी दल टोलियों में बँटकर अपनी-अपनी टोली को ही राष्ट्रीय पर्याय समझने में लगे हुए हैं।

उपर्युक्त मूलभूत अवधारणा की पृष्ठभूमि पर लिखते हुये प्रभात कुमार नामक यह भट्टाचार्य इस सोच में है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जो राजपुरुष सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, उसके बारे में लिखते हुए किन अवधारणाओं और मूल्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

यह तो सर्वमान्य है कि किसी भी व्यक्ति के जन्मदिन पर उनके बारे में लिखते हुए अमित मंगलकामनाओं में आवेष्टित यशगान ही अपेक्षित है किन्तु यदि वह व्यक्ति असाधारण एवं महत्त्वपूर्ण हो तो यशगान में या तो मात्र औपचारिक शब्दाडम्बर परिलक्षित होगा या फिर उन्मुक्त अथवा अवगुंठित चाटुकारिता निहित होगी। ऐसे में यदि मुझ जैसा शिक्षक-संस्कृतिकर्मी, साहित्यकार, जो उम्र के साठवें वर्ष में पहुँच रहा हो, श्री अर्जुनसिंह जैसे राजपुरुष के संबंध में लिखने का उपक्रम करे तो यही अपेक्षा की जाएगी कि इस महत्त्वपूर्ण राजपुरुष के बहुआयामी व्यक्तित्व के उज्ज्वल पक्ष का मर्यादित आकलन करे।

इस आलेख की भूमिका में मैंने राजनीति के लिए सर्वग्राही चरित्र की चर्चा की है, यह चर्चा सोद्देश्य है। पिछले तीन दशक से श्री अर्जुनसिंह को जिस रूप में देखते रहने का मैं अभ्यस्त हूँ, उसमें मेरी यह आधारभूत अवधारणा अवश्य बलवती हुई है कि श्री अर्जुनसिंह राजनीति में आकंठ डूबे रहने के बावजूद उस द्वीप के मानिन्द हैं जो दसों

दिशाओं से जलमग्न होते हुए भी जल के ऊपर अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। सामान्यतया जो भी व्यक्ति राजनीति में डूबता है, वह आशीष डूबता है, यानी उसका शीष भी पानी के अन्दर ही होता है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है क्योंकि राजनीतिक जल का दबाव इतना अधिक होता है कि उससे उबरना लगभग असम्भव होता है। ऐसे में जो थोड़े से विरले लोग केवल आकंठ ही डूबते हैं, उनमें हर दबाव को नियंत्रित करने की एवं विपरीत धारा के तीव्र आवेग से बचने की ऐसी क्षमता भी होती है जो उन्हें जल में होते हुए भी जलमय नहीं होने देती। पानी में तेल के मानिन्द, क्योंकि तेल अपने स्वत्व के कारण गाढ़ा होता है। उसका यही स्वत्व उसे सहज घुलनशील नहीं बनने देता, क्योंकि उस स्वत्व की अपनी निजी पहचान होती है। इसलिए ऐसे लोग राजनीतिक होते हुए भी राजनीतिमय नहीं होते हैं। सम्भवत: श्री अर्जुनसिंह इसी कोटि के राजनीतिज्ञ हैं और इस कोटि के राजनीतिक व्यक्ति संस्कृतिधर्मी होते हैं।

जल का यह रूपक जल में ही विलीन न हो जाए इसलिए थल की बात करते हुए राजनीति के संदर्भ में यह कहना बहुत ज़रूरी है कि हर राजनीतिज्ञ को अपनी ठोस ज़मीन पर, ख़ूब मज़बूती के साथ, अपने पैरों पर खड़ा रहना चाहिए। इसी मान्यता को तनिक और विस्तार दें तो यह कहना होगा कि हर राजनीतिक दल निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित हो, यही काफ़ी नहीं है। उस निश्चित सिद्धान्त का चरम उद्देश्य केवल राष्ट्रहित हो, यही तो एकमात्र मार्ग है। मानव कल्याण और विश्व-बन्धुत्व के विराट और उदात्त चिन्तन के फलक पर राष्ट्रहित को हाशिये में रखने की अवधारणा तो मात्र कोरी कल्पना है— महज़ एक युटोपिया।

यह एक अजीब विरोधाभास है कि प्रजातंत्र की जो शक्ति है, वही उसकी कमज़ोरी भी है। प्रजातंत्र में सरकारें मतदान से चुनी जाती हैं। इसलिए हर प्रजातांत्रिक दल सत्ता में आने के लिए राष्ट्रहित की चिन्ता न करते हुए वोट की चिन्ता करता है और इसलिए मतदाताओं के अलग-अलग दबाव-समूहों की ख़ुशी की ख़ातिर, भले ही वह ख़ुशी— राष्ट्रहित में न हो, अपने कार्यक्रम बनाता है। इस माहौल में जब हम राजनीतिज्ञों पर दृष्टिपात करते हैं तो उन्हें इसी स्वार्थ के वशीभूत पाते हैं।

मैं यह दावा नहीं कर सकता और ऐसा मुझे करना भी नहीं चाहिए कि श्री अर्जुनसिंह एकमात्र ऐसे राजनीतिज्ञ हैं जो स्वार्थ से परे हैं। हाँ, मैं यह दावा अवश्य करता हूँ कि समूचे राष्ट्रीय परिदृश्य में श्री अर्जुनसिंह उन थोड़े-से नेताओं में से हैं जो अनुशासनबद्ध, सिद्धान्तवादी एवं दृढ़ संकल्प हैं।

श्री अर्जुनसिंह की अनुशासनबद्धता केवल इंदिराजी के प्रधानमंत्री काल में ही नहीं अभिव्यक्त हुई। आपातकाल के अवांछित दौर में भी हुई और उसके बाद भी बनी रही। राजीवजी ने तो उनकी अनुशासनबद्धता की अग्नि परीक्षा भी ली। मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री पद से पंजाब के राज्यपाल पद पर, फिर काँग्रेस के उपाध्यक्ष पद पर और फिर केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में। यानी राजीवजी लगभग कन्दुक-क्रीड़ा की मुद्रा में बने रहे और श्री अर्जुनसिंह अनुशासनबद्ध अपने नेता की इच्छापूर्ति करते रहे। लेकिन वे कन्दुक बनना तो दूर, कठपुतली भी कभी नहीं रहे। जहाँ श्री अर्जुनसिंह पदस्थ किये गये, वहाँ ही उन्होंने अपनी अनुपम कल्पनाशीलता का शिखरस्थ परिचय देते हुए, केवल अपनी उपयोगिता ही नहीं, सार्थकता भी सिद्ध की।

श्री अर्जुनसिंह की गहन गम्भीर चुप्पी, उनके आत्मानुशासन का प्रतिफलन है। वे दरबार लगाते हैं या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता, किन्तु इतना ज़रूर जानता हूँ कि वे शब्दों की फ़िज़ूलख़र्ची से परहेज़ रखते हैं। उनका अबोलापन दूसरों को बोलने से रोके, ऐसा वे नहीं चाहते। हमेशा सुनने को तैयार रहना यही तो सिद्ध करता है। लेकिन हर सुने पर अपनी प्रतिक्रिया को शब्दों में न बाँधकर, वे उसे गुनने में ज़्यादा विश्वास रखते हैं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि ज़रूरत पड़ने के बावजूद वे मौन को ही अपना आयुध और मौन को ही अपना कवच बनाये रखें।

मितभाषी और मृदुभाषी श्री अर्जुनसिंह समय की माँग पर जब दो टूक बोलते हैं, तो वे न तो दहाड़ते हैं और

न ही आग उगलते हैं साफ़-सुथरी संस्कारित भाषा से उपजा उनका शब्द सन्तुलन और अन्तरतम गहराइयों से निसृत उनका सुनियंत्रित आरोह-अवरोह श्रोता के कानों में पड़कर लौटता नहीं है, मन की गहन कन्दराओं में उतरकर प्रतिध्वनित होता रहता है। यह प्रतिध्वनि निरन्तर प्रतिध्वनियों को जन्म देती है और अन्ततोगत्वा श्रोता के मन में घर कर लेती है। उनकी वाणी दीवाली के अनार जैसी अचानक फूटकर बुझ नहीं जाती है। धीमें-धीमें सुलगती रहती है और यह सुलगन श्रोता के मन में पलने लगती है।

प्रश्न उठता है कि ऐसा किस कारण सम्भव है? उनकी वाणी में श्री अटलबिहारी वाजपेयी का चमत्कारी सम्मोहन तो है नहीं और न ही श्री विश्वनाथप्रतापसिंह का खोखला वाग्जाल है। इन दोनों के विपरीत श्री अर्जुनसिंह की वाणी में न तो चमत्कार है और न वाग्जाल। उसमें है आस्थाजनित संस्कृतिसम्पन्न सादगी की दृढ़ता जो उन्हें राजनीति के जल में घिरा द्वीप व्यक्तित्व देती है। यानी जो उन्हें राजनीतिक तो बनाती है किन्तु राजनीतिमय नहीं बनने देती। यहाँ मेरा मन्तव्य यह सिद्ध करना नहीं है कि श्री अर्जुनसिंह भोले-भाले हैं। वे अपने प्रतिद्वन्द्वी के कुटिलतम छल छद्म को भरपूर समझते हैं, और केवल समझते ही नहीं हैं, वे उसका ऐसा तोड़ भी निहायत बारीक़ी से पैदा कर सकते हैं कि प्रतिद्वन्द्वी ठगा रह जाए। इतना ही नहीं, वे अपने उसी प्रतिद्वन्द्वी को अपना हमराही बनाने की क्षमता भी रखते हैं। ऐसा किसी तथाकथित वशीकरण मंत्र अथवा रिपुदमन तंत्र के फलस्वरूप नहीं है। ऐसा सम्भव इसलिए है कि श्री अर्जुनसिंह में सहज मानवीय संवेदना है और साथ में है मनोविश्लेषण एवं घटना-विश्लेषण (सिचुएशन-अनालिसिस) की विलक्षण क्षमता। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे केवल परिस्थितियों की नब्ज़ पर हाथ रखकर अपना तात्कालिक क़दम निश्चित करते हैं। यदि ऐसा होता तो श्री अर्जुनसिंह के राजनीतिक कर्म परिस्थितियों के रंग में रंगे होते जैसे कि अक़्सर राजपुरुषों की बिरादरी में अधिकतर होता है।

प्रचलित राजनीति के कुचक्री तंत्र की बारीकियों को बख़ूबी समझने वाले श्री अर्जुनसिंह जहाँ एक ओर आवश्यकतावश परिस्थितियों की नब्ज़ पर हाथ रखकर अपना अलग कदम निश्चित करते हैं, वहाँ दूसरी ओर वे अपनी ठोस ज़मीन स्वयं निर्मित करते हैं और उस पर मज़बूती से अपने पैर जमाए रखते हैं। ठोस ज़मीन पर मज़बूत पैर ही तो श्री अर्जुनसिंह की सिद्धान्तवादिता है। उनकी सिद्धान्तवादिता के दो पहलू हैं जिनमें से एक है धर्मनिरपेक्षता की नेहरूवादी व्याख्या के अन्तर्गत धर्म पर आधारित राजनीति का विरोध और दूसरा पहलू है समाजवाद के प्रति उनकी अटूट आस्था।

धर्मनिरपेक्षता की नेहरूवादी व्याख्या के विश्लेषण से एक प्रश्न अवश्य उठता है जो भारत की स्वाधीनता के समय से लगातार पूछा जा रहा है और हमेशा पूछा जाता रहेगा कि नेहरूजी जब सचमुच धर्मनिरपेक्षता संबंधी अपनी अवधारणा पर दृढ़ थे तो धर्मनिरपेक्षता की हत्या से उत्पन्न भारत-विभाजन को उन्होंने क्यों स्वीकार किया? क्या यही कारण नहीं है कि आज भी धर्मनिरपेक्षता प्रश्नचिन्ह से घिरी हुई है? क्या धर्मनिरपेक्षता के प्रति हमारा वर्तमान आग्रह, वास्तव में धर्म निरपेक्षता के प्रति हमारा आस्थाजनित आग्रह है या फिर वोट बैंक को साधने का हमारा खोखला नारा है?

इन मूलभूत प्रश्नों की ओर हम जब अपनी चिन्तातुर दृष्टि निक्षेप करते हैं तब श्री अर्जुनसिंह जैसे राष्ट्रीय नेताओं से हमको ऐसी आश्वस्ति मिलती है जो धर्मनिरपेक्षता का ढोंग नहीं करते हैं, बल्कि पूरी ईमानदारी से इस सिद्धांत को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखते हुए, केवल नारेबाज़ी या वोट-सम्मोहन की ख़ातिर नहीं, वास्तव में उदारता की सांस्कृतिक अवधारणा के प्रति अपनी निश्चल आस्था को व्यवहारिक रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन के प्रश्न पर श्री अर्जुनसिंह इतनी प्रतिबद्धता से चिन्तित नहीं होते।

धर्म को राजनीति से जोड़ने की बात तो महात्मा गाँधी भी करते हैं लेकिन उनकी धर्म संबंधी व्याख्या, 'धर्म'

शब्द के उस निहित स्वार्थी संकुचन के विरुद्ध है जो 'धर्म' के व्यापक खुले परिवेश को धर्मान्धता के अन्धकूप की ओर ले जाता है। महात्मा गाँधी भी तो अपने को हिन्दू कहने में कभी नहीं हिचकिचाये। उन्होंने भी रामनाम को अपना मूलमंत्र घोषित किया किन्तु उन्होंने अपने हिन्दुत्व को उस पवित्र रामनामी को न तो अपना राजनीतिक झण्डा बनाया और न ही वोट की खातिर राष्ट्रीय अस्मिता की उदारता को रौंदा और न ही अपनी धर्मनिरपेक्षता सिद्ध करने के लिए किसी इमाम हुज़ूर के दरवाज़े पर माथा टेकने की ज़रूरत समझी।

इसलिए वर्तमान सन्दर्भ में महात्मा गाँधी की जिन दृढ़ आस्थाओं की चरितार्थता के प्रति हम संकल्पित हैं, उन आस्थाओं को नारेबाज़ी से कुलषित करने के बजाय श्री अर्जुनसिंह जैसे सिद्धान्तवादी नेता का हर ऐसा उपक्रम राष्ट्रीय धरातल पर स्वागत-योग्य है जो हमारी पारम्परिक उदारता और व्यापकता की सांस्कृतिक अवधारणा को प्रतिष्ठित करता है।

जैसा कि हमने पूर्व में इंगित किया है श्री अर्जुनसिंह की सिद्धान्तवादिता का दूसरा पहलू है— समाजवाद के प्रति उनकी अटूट आस्था।

मार्क्स जन्मे तो जर्मनी में थे, मगर पनपे रूस में। लेनिन ने मार्क्सवाद को जिस रूप में रूस में प्रतिष्ठित किया था, उसे मज़बूत बनाने की खातिर स्तालिन ने रूस को लोह आवरण में समेट लिया। 'तुम्हें अपनी ज़ंजीरों के अलावा कुछ खोना नहीं है', का मंत्र जब तंत्र में ढला तब महाबली समय देवता ने उस तंत्र को ही ज़ंजीरों में बाँध दिया जिसका शिकंजा सत्तर वर्षों में इतनी बुरी तरह जकड़ा कि तंत्र ही टूट गया। यही हाल कमोबेश चीन का भी है।

प्रजातंत्र और समाजवाद के जिस गठजोड़ की नींव हमने भारत में डाली थी, उसमें धीरे-धीरे विरोधाभास उत्पन्न हुए। इसलिए नेहरू युग के अवसान के साथ ही प्रधानमंत्री श्री नरसिंहराव और वित्त मंत्री श्री मनमोहनसिंह युगल ने स्वतंत्र अर्थ-व्यवस्था को अंगीकार किया। यानी समाजवाद को नकारते हुए हम पूँजीवाद को अंगीकार करने की दिशा में नि:संकोच बढ़ रहे हैं। ज़ाहिर है कि श्री नरसिंहराव के मंत्रिमण्डल के एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सदस्य होने के नाते श्री अर्जुनसिंह यह तो कहने से रहे कि वे श्री नरसिंहराव और श्री मनमोहनसिंह से असहमत हैं। मगर मेरी राय में श्री अर्जुनसिंह की सिद्धान्तवादिता वर्तमान आर्थिक नीति से किसी न किसी धरातल पर अवश्य ही असहमत है। देशी और विदेशी पूँजीपतियों को यदि हमारे देश में खुलकर खेलने का अवसर प्रदान किया गया, जैसा कि किया जा रहा है, तो निकट भविष्य में इस अर्थ तंत्र के विरोधाभास भी नुकीले काँटों की तरह उभर आएँगे, जो पाश्चात्य उपभोक्ता संस्कृति बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से हम पर थोपी जा रही है, उसे हम चकाचौंधवश आज भले ही स्वीकार करते से प्रतीत हो रहे हैं, लेकिन उसे अंगीकार हम कभी नहीं कर पायेंगे क्योंकि भ्रम तो टूटता ही है। इसलिए क्या यह ज़रूरी नहीं है कि उस भ्रम को सत्य मानकर प्रतिष्ठित करने की अकारण कोशिश करने के बजाय, हम भ्रम को भ्रम कहने का साहस समय रहते दिखाएँ, ताकि उसके टूटने से भावी पीड़ा के अंजाम से हमें मुक्ति मिले।

जिस समाजवादी आस्था के वशीभूत श्री अर्जुनसिंह ने मध्यप्रदेश के अपने मुख्यमंत्रित्व काल में झुग्गी-झोपड़ी वालों को स्वामित्व का पट्टा दिया था और 'स्टेप अप' योजना के अंतर्गत रिक्शा खींचने वाले मज़दूरों को रिक्शे का मालिक बनाया था, उसी आस्था को वर्तमान आर्थिक संकट के विश्वव्यापी परिवेश में किस रूप में चरितार्थ किया जा सकता है कि प्रजातंत्र और समाजवाद— दोनों, एक दूसरे के पूरक के रूप में अन्योन्याश्रित बन सकें, यह समाजवाद ध्वस्त हुआ है तो क्या अमरिका में पूँजीवाद पर प्रजातंत्र का वह दबाव बना है, यदि नहीं, तो क्या यह अमरिकी प्रजातंत्र पर पूँजीवाद द्वारा लगाया गया प्रश्नचिन्ह नहीं है?

हमें विश्वास है कि भारतीय सन्दर्भ में श्री अर्जुनसिंह इस सम्भावित प्रश्नचिन्ह के प्रति जागरुक हैं क्योंकि यों भी भारतीय प्रजातंत्र पर स्वार्थी और सत्तालोलुप राजनीतिज्ञों ने राष्ट्रीय हित को हाशिये में ढकेलते हुए अनेक प्रश्न

चिन्ह लगा रखे हैं जो प्रजातंत्र की जड़ों को खोखला कर रहे हैं।

श्री अर्जुनसिंह की संकल्पित कार्यपद्धति इस तथ्य को एकाधिक बार उजागर कर चुकी है कि उनकी योजनाएँ, सिद्धांतों की बुनियाद पर गहरे सोच का प्रतिफलन हैं। मध्यप्रदेश में उनकी संस्कृति संबंधी नीति इसका महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।

संस्कृति को राजनीति से पृथक रखने की उनकी मौलिक अवधारणा राजनेताओं की पंक्ति में उनको अपांक्तेय के रूप में प्रतिष्ठित करती है। श्री अर्जुनसिंह का यह निर्णय कि संस्कृति संबंधी कोई भी निर्णय, केवल संस्कृतिकर्मी ही कर सकते हैं जिसमें राजनीतिक हस्तक्षेप वर्जित है, एक क्रान्तिकारी निर्णय है। उनके नेतृत्व में मध्यप्रदेश ने पहली बार इस तथ्य को अधोरेखित किया है कि कलाकारों को सम्मानित कर शासन उन पर कोई उपकार नहीं करता है, बल्कि स्वयं शासन सम्मानित और उपकृत होता है। इसलिए श्री अर्जुनसिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में बनाई गई पुरस्कार योजना को 'पुरस्कार' नहीं 'सम्मान' की संज्ञा दी गई है। पारम्परिक लोककलाओं के विकृत नगरीकरण की तथाकथित परिष्कृति के प्रचलित शासकीय मानदण्डों को खारिज करते हुए पारम्परिक लोककलाओं के पुनर्विष्कार एवं धरोहर के रूप में उनके नैसर्गिक संरक्षण की अवधारणा मध्यप्रदेश में संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण अवदान है। तथाकथित लोकप्रियता के निकष पर नेपथ्य में विलीन होती जा रही शास्त्रीय कलाओं को मध्यमंच पर सम्पूर्ण गरिमा के साथ पुनर्प्रतिष्ठित करते हुए मध्यप्रदेश ने श्री अर्जुनसिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में संस्कृति को आन्दोलन का स्वरूप दिया है और ऐसी अनेक संस्कृति संबंधी योजनाओं एवं आयोजनों के माध्यम से जिस श्रेष्ठता को मानक के रूप में मध्यप्रदेश ने प्रतिष्ठित किया है, उसका जीवन्त केन्द्र रहा है **भारत-भवन**।

श्री अर्जुनसिंह की संस्कृति संबंधी गहरी समझ और आस्था, उन्हें, केवल सांस्कृतिक क्षेत्र में ही अन्यतम नहीं बनाती है, बल्कि शिखरस्थ राजनेताओं में एक संस्कृति-पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

☐ *प्रभातकुमार भट्टाचार्य— विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के राजनीति विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. प्रभात कुमार भट्टाचार्य, लेखक, पत्रकार एवं सबसे हटकर विख्यात रंगकर्मी रहे हैं। प्रगतिशील लेखक संघ के सक्रिय सदस्य, प्रभात दा विद्रोही पीढ़ी के अलम्बरदार रहे हैं। संस्कृतिकर्मी स्वभाव से साहित्यकार का सत्संग आपको सदा भावनात्मक ज्वारभाटे का शिकार बनाता रहा है।*

कमज़ोर, वंचित और सर्वहारा वर्ग के मसीहा

डॉ. म.ला. शहारे
(महानिदेशक, डॉ. बाबा साहब अंबेडकर सामाजिक विज्ञान संस्थान)

स्वातंत्र्योत्तर काल के बाद भारतीय राजनैतिक क्षितिज पर जो दैदीप्यमान सितारे उदित हुए हैं, उनमें श्री अर्जुनसिंह का स्थान प्रथम पंक्ति में है। मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री के रूप में श्री अर्जुनसिंह का कार्य उल्लेखनीय रहा। जनता द्वारा उन्हें अपार प्रेम प्राप्त हुआ। तीन बार वे प्रदेश के मुख्यमंत्री बने। वे सर्वहारा, पीड़ित, शोषित और कमजोर वर्ग के मसीहा के रूप में जाने जाते हैं। इसका प्रमुख कारण है उनका मानवीय संवेदनाओं से युक्त अंत:करण। सर्वहारा वर्ग पर हो रहे अन्याय और अत्याचारों के ख़िलाफ़ श्री अर्जुनसिंह की संघर्ष यात्रा अविस्मरणीय है। प्रदेश के अनुसूचित जाति और जनजाति तथा अल्पसंख्यक समुदाय के रहनुमा के रूप में उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

उनकी 'तेंदूपत्ता नीति' आज भी प्रासंगिक और बिचौलियों द्वारा निर्मित शोषण व्यवस्था का खुला विरोध करने वाली है। मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में मज़दूर को मालिक बनाने की उनकी योजना थी। वे लघु वनोपज के व्यापार से बिचौलियों की समाप्ति करना चाहते थे। वनोपज के संग्रहण में लगे मज़दूरों को संरक्षण देने के लिए वे कृतसंकल्प थे। उन्होंने 1984 में लघु वनोपज संघ का गठन कर सरकारी संस्थाओं के माध्यम से तेंदूपत्ता संग्रहण का अभियान प्रारंभ किया। उनकी पहल पर वनोपज संघ ने मुनाफ़ा भी कमाया था। वनोपज पर आदिवासियों को सिर्फ मज़दूरी की राशि मिलती थी। उनकी तमन्ना थी कि वनोपज के मूल्य का एक हिस्सा आदिवासियों को दिया जाय। इसके क्रियान्वयन के लिए उन्होंने 20 सूत्रीय समितियों के सदस्यों को विशेष पत्र लिखकर आग्रह किया था कि वे इस बात को सुनिश्चित करें कि आदिवासियों को शासन की नीति के अनुसार लघु वनोपज संग्रहण में कोई कठिनाई न आये तथा उन्हें संग्रहित वनोपज का उचित मूल्य मिले।

वे जानते थे कि कुछ लोग इस नीति को असफल बनाने के लिए भ्रम का वातावरण बना रहे हैं, इसलिए उन्होंने अपने सहयोगियों से आव्हान किया था कि वे अपने संकल्प के प्रति सतर्क रहें। उन्होंने एक बार यह ठीक ही कहा था कि "समाज के वंचित वर्गों के हित में जब भी कोई पहल की जाती है तो वंचक और आहत वर्ग स्वाभाविक रूप से कमर कस कर ऐसी कोशिश को नाकामयाब करने में जुट जाता है। वे चिंतित थे क्योंकि प्रदेश में ऐसा अप्रत्याशित हो रहा था। शोषक वर्ग की तरफ़दारी करने वाली राजनैतिक शक्तियों की सक्रियता की उन्हें विशेष चिंता थी। ऐसी शक्तियों द्वारा की गई साजिश नाकामयाब करने में श्री अर्जुनसिंह ने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। कमज़ोर वर्गों को समर्थन देना और संरक्षण देना यह श्री अर्जुनसिंह की विशेष उपलब्धि रही है।

तेंदूपत्ता नीति के संदर्भ में उत्पन्न अनेक शंका-कुशंकाओं का उन्होंने यथा समय समाधान भी किया है। उन्होंने कहा था– "ग़रीबी पर कारगर हमले के लिए शोषण और अत्याचार को समाप्त करना पड़ेगा। इसके लिए किसी की माँग का इंतज़ार करने अथवा अपने समर्थकों के हितों को तरजीह देने की ज़रूरत नहीं है। श्री अर्जुनसिंह ने याद दिलाया कि आज़ादी मिलने के बाद ही जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया गया क्योंकि यह शोषण का एक

बड़ा चक्र था। क्या ज़मींदार आज़ादी की लड़ाई में हमारे साथ नहीं थे? जब नीतियों और कार्यक्रमों का सवाल आता है तो समर्थक और ग़ैर समर्थक का ख्याल नहीं किया जाता है, व्यापक जनहित को देखा जाता है।''

स्व. श्रीमती इंदिरा गाँधी ने जनहित में बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया तथा राजा महाराजाओं का प्रिव्हिपर्स समाप्त कर दिया था। ये जनहित नीति के काम थे। इसके लिए कोई आंदोलन नहीं हुआ था। उसी प्रकार तेंदूपत्ता संग्रहण नीति शोषण की समाप्ति और ग़रीब मज़दूरों को उनका जायज़ हक़ दिलाने के लिए किया गया प्रयास था।

श्री अर्जुनसिंह द्वारा स्थापित नई तेंदूपत्ता नीति के फलस्वरूप बीड़ी निर्माताओं को सीधे गोदाम से पर्याप्त मात्रा में संग्रहित पत्ता उपलब्ध होने वाला था। जिन निर्माताओं को पहले व्यापारियों से तेंदूपत्ता खरीदना पड़ता था वे अब सीधे सहकारी समितियों के गोदामों से पत्ता खरीदने वाले थे। बीड़ी निर्माताओं को इसमें कोई असुविधा नहीं थी बल्कि सहूलियतें ज़्यादा थीं। इस नीति से राज्य के विकास एवं कल्याणकारी कार्यक्रम के लिए आय के स्रोत जुटाने के साथ-साथ श्रमिकों का सर्वांगीण कल्याण करना भी था। तेंदूपत्ते की नई नीति से इस दिशा में विशेष सफलता मिली। इसका श्रेय केवल श्री अर्जुनसिंह को ही जाता है। श्री अर्जुनसिंह ने तेंदूपत्ता संग्रहण में बिचौलियों की भूमिका पूर्णत: समाप्त करने के लिए एक योजनाबद्ध रूपरेखा बनाई जो अपने आप में अनोखी है। इस योजना में आदिवासी एवं पिछड़े वर्ग के लोगों की लघु-वनोपज के व्यापार में भागीदारी सुनिश्चित की गई। प्रदेश में तेंदूपत्ता संग्रहण के लिए सहकारी समितियों का गठन किया जाने वाला था। योजना यह थी कि इस समिति का सदस्य तेंदूपत्ता संग्राहक ही हो सकता है। तेंदूपत्ते संग्रहणकर्ता के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को इन सहकारी समितियों का सदस्य बनने की पात्रता नहीं होगी। इस योजना में सहकारीकरण की मुख्य भावना थी। इस तरह से श्री अर्जुनसिंह ने मध्यप्रदेश के लोकप्रिय मुख्यमंत्री के नाते वंचितों को हक़ दिलाने के लिए अतुलनीय कार्य किया है जिसे इतिहास कभी भुला नहीं सकता।

श्री अर्जुनसिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में सर्वहारा समुदाय के लिए अनेक लाभकारी योजनाओं का सूत्रपात हुआ। उन्होंने उन निराश्रित वर्गों के लिए 'रैन बसेरा' योजना प्रारम्भ की। जिनके पास पूरे प्रदेश में अपना आशियाना नहीं था। दिन भर मज़दूरी करने के बाद थके, हारे मज़दूर जब आश्रय के बिना रेलवे स्टेशन या बस स्टैण्ड के प्लेटफॉर्म पर सोते थे, तो उन्हें चैन की नींद नहीं मिलती थी। 'रैन बसेरा' शुरू होने से वे मज़दूर अपनी थकान दूर कर पाये। जो दूसरों को सहारा देता है, उसे दुआ मिलती है, श्री अर्जुनसिंहजी ने अपने कर्म से इस दुआ को पाया है।

भगवान बुद्ध ने कहा है 'अप्प दीपो भव'— आप स्वयं अपना प्रकाश बनो। हमारे वेदों में भी ''तमसो मा ज्योतिर्गमय'' कहा गया है। लेकिन ये उक्तियाँ वास्तविक धरातल पर सत्यता का रूप तब लेती हैं जब व्यक्ति को उजाला मिलता है। ग़रीबी-झुग्गीवासी जिन्हें दिया जलाने के लिए मिट्टी का तेल भी नहीं मिलता था। वे काल कोठरीनुमा अंधेरी झुग्गी में निवास करते थे। उन्हें जब श्री अर्जुनसिंह ने 'एक बत्ती कनेक्शन' का लाभ दिया तब प्रदेश की तमाम झुग्गियाँ बिजली के एक बल्ब से चाँदनी के समान टिमटिमाने लगीं। झुग्गियों में व्याप्त अंधकार के साथ-साथ सर्वहारा वर्ग के मन में व्याप्त अंधकार भी दूर हुआ।

प्रदेश के लाख़ों झुग्गी-झोपड़ीवासी और सर्वहारा समुदाय आज भी अर्जुनसिंहजी को अपना मसीहा मानता है। इसका प्रमुख कारण है कि शोषित और कमज़ोर तबका अपने स्वप्न में कभी सोच भी नहीं सकता था कि कोई पुरुष इस पृथ्वी पर आयेगा और निवास के लिए मुफ्त में भूमि बाँट देगा। लेकिन ऐसा हुआ। ये काम श्री अर्जुनसिंह ने कर दिखाया। शासकीय भूमि पर बसे लोगों को बेदख़ल नहीं किया और अब वे निराश्रयी लोग ज़मीन के मालिक बन गये हैं।

श्री अर्जुनसिंह के आभारी प्रदेश के वे सब रिक्शाचालक भी हैं, जो कि दिन भर रिक्शा किराये से चलाते थे और रिक्शा मालिक को किराया चुकता कर बची हुई राशि अपने गुज़ारे के लिए रख लेते थे। उन्हें कभी-कभी इतनी

मज़दूरी भी नहीं मिलती थी कि वे किराया चुकता कर सकें। मालिकों की ओर से रिक्शा चालकों का बहुत शोषण होता था। इस पीड़ा को प्रथमत: श्री अर्जुनसिंह ने जाना और उनकी सूझबूझ से रिक्शा चालकों को उनके द्वारा चलाये जाने वाले रिक्शा का सदैव के लिए मालिकाना हक़ दिया गया। प्रदेश के हज़ारों रिक्शा चालक इस तरह से शोषण से मुक्त किये गये।

मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं– रोटी, कपड़ा और मकान! अर्जुनसिंहजी ने अपने मुख्यमंत्रित्व काल में सर्वहारा वर्ग को उनकी प्रारंभिक आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए आय के साधन, निवास के लिए भूमि, विद्युत पानी और जीवनयापन के साधन प्रदान कर बड़ा अनमोल यथार्थवादी कार्य किया। मध्यप्रदेश के इतिहास में श्री अर्जुनसिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में उनके द्वारा किये गए कार्य स्वर्णाक्षरों में लिखे जायेंगे।

श्री अर्जुनसिंह ने 14 अप्रैल 1987 को भोपाल में आयोजित डॉ. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर जयंती समारोह में घोषणा की थी कि बाबा साहेब की जन्मस्थली महू में डॉ. अम्बेडकर शोध संस्थान की स्थापना की जायगी। सात माह के भीतर ही श्री अर्जुनसिंह ने अपनी घोषणा को साकार रूप दिया और 14 नवम्बर 1988 को उन्होंने डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान संस्थान का महू में शिलान्यास किया। महू स्थित डोंगरगाँव के समीप 40 एकड़ की विस्तृत भूमि संस्थान को प्रदान कर इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए 3.50 करोड़ रुपये स्वीकृत कर 25 लाख रुपये की प्रथम किश्त तुरंत प्रदान की। श्री अर्जुनसिंह ने डॉ. अम्बेडकर के आदर्शों और दिशाओं पर चलने का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया। मुझे स्मरण है, इस अवसर पर उन्होंने कहा था–

"समूची भारतीय जनता की आशा-आकाँक्षाओं को देखना यह एक स्वप्नदृष्टा की आवश्यकता होती है। जिसने अपने रंग से, अपनी क़लम से संविधान रेखांकित किया वह शख़्स डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर थे। उन्होंने आज़ादी के दौरान राजनैतिक उतार-चढ़ाव में अच्छी रूपरेखा बनाकर अच्छा संविधान बनाया यह उनकी अटूट श्रद्धा और उच्च विचारधारा का निर्णय है जो कि भारत की प्रगति के लिए और दलित, शोषित और सर्वहारा वर्ग के उत्थान के लिए हरसंभव शक्ति और साधन जुटाने की क्षमता का परिचायक है। डॉ. अम्बेडकर ने सर्वहारा वर्ग के उत्थान के लिए हरसंभव शक्ति और साधन जुटाने की क्षमता को ध्यान में रखकर नीति-नियम बनाये, यह देश का अहोभाग्य है। भारतीय संविधान दुनिया के सर्वश्रेष्ठ संविधानों में गिना जाता है। यह संविधान प्रगतिशील और यथार्थवादी है। यह अमूल्य देन डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर की ही है।" उन्होंने आगे कहा कि– "यह संस्थान सामान्य लोगों के लिए शिक्षा का साधन बनकर जीवन संस्था के रूप में कार्य करे। यह संस्थान मध्यप्रदेश के कोने-कोने में होने वाले अन्याय की जड़ों को उखाड़कर जनता का ध्यान आकर्षित करे तथा जो लोग सत्ता में बैठे हुए हैं, उनका भी ध्यान आकर्षित करे तथा जनता को न्याय प्रदान करे। दृढ़ता के साथ समाज के सर्वहारा वर्ग के लिए इस संस्थान को उन निर्णयों को लेना पड़ेगा जो कि दलितों के पक्ष में हो। ऐसे मौलिक कार्य संस्थान करे और समन्वयकारी दृष्टिकोण का प्रतीक बनें। यह संस्थान उन लोगों को उनके कर्तव्यों की याद दिलायेगा जो अपने दायित्वों को भूल जाते हैं और यह किसी के दबाव में भी नहीं रहेगा। यह स्वशासी संस्थान रहेगा, अपने पैरों पर खड़ा रह कर कार्य करेगा और सर्वहारा वर्ग को सामाजिक न्याय प्रदान करेगा। समाज में बहुत से क्षेत्र ऐसे हैं जिन पर अपनी निगाहें नहीं जातीं, उन क्षेत्रों में जाने के लिए हमें प्रयास करना होगा। बिना किसी पूर्वाग्रह से समाज के हित के लिए हमें वह निर्णय लेना पड़ेगा जो सामाजिक न्याय के साथ आगे बढ़े तथा दायित्व शून्य लोगों को उनका दायित्व याद दिलाय, ऐसा कार्य संस्थान को करना है।" श्री अर्जुनसिंह ने अपने भाषण में एक बहुत अच्छा सुझाव दिया कि "जिस सामाजिक न्याय के लिए डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने जीवन भर संघर्ष किया उसे सर्वहारा वर्ग तक पहुँचाने के लिए यह संस्थान दृढ़ता से कार्य करेगा। यदि कहीं सर्वहारा वर्ग पर अन्याय, अत्याचार हुआ तो उसकी जाँच के लिए सबसे पहले संस्थान ही पहल करेगा और उसकी रिपोर्ट

शासन को भेजेगा। पुलिस पहुँचने के पूर्व संस्थान को यह दायित्व निभाना है।''

श्री अर्जुनसिंह ने मुझ पर बहुत बड़ा विश्वास किया था। अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय के कुलपति पद को त्याग कर मैंने श्री अर्जुनसिंह की मन्शा के अनुरूप संस्थान की योजना में अपने आप को झोक दिया। संस्थान की रूपरेखा को तैयार करने में श्री अर्जुनसिंह का योगदान और मार्गदर्शन महत्त्वपूर्ण रहा है। उन्होंने परामर्श दिया था कि यह संस्थान राष्ट्रीय स्तर का होगा। इसलिए इसका नाम डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान संस्थान रखा गया है। यह श्री अर्जुनसिंह की महानता है कि उस समय प्रदेश के मुख्यमंत्री होने के बावजूद उन्होंने संस्थान की गवर्निंग बॉडी का अध्यक्ष पद स्वयं के पास नहीं रखा और प्रदेश के राज्यपाल तथा मुख्यमंत्री को क्रमशः अध्यक्ष और सह-अध्यक्ष बनाया। यह उनकी उच्च सोच का परिचायक है कि संस्थान में राजनीति का किंचित भी प्रवेश नहीं होने दिया और सर्वोत्तम योग्यताधारी व्यक्तियों को संचालक मण्डल में तथा संस्थान के संकाय में कार्य करने का अवसर प्रदान किया गया।

श्री अर्जुनसिंह की मनीषा और परामर्श के अनुसार संस्थान के नीति निर्देशक तत्वों की रचना की गई जिसमें प्रमुख हैं–

'सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग, अनुसूचित जाति, जनजाति, महिलाएँ, बच्चे, शारीरिक और मानसिक रूप से अपंगों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ तैयार करना तथा उसका क्रियान्वयन करना।' इस नीति के अन्तर्गत श्री अर्जुनसिंह की सम्पूर्ण पीड़ित मानवता के प्रति सहानुभूतियुक्त भावनाओं के साथ श्रद्धा प्रगट होती है। सर्वहारा वर्ग और पिछड़े समुदाय के संदर्भ में इस संस्थान द्वारा सामाजिक विकास और कल्याण के विशेष पाठ्यक्रमों का प्रबंध करने, जिसमें अनुसूचित जाति, जनजाति, महिलाओं, आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों, शारीरिक रूप से तथा मानसिक रूप से विकलांगों का विशेष अध्ययन शामिल होगा तथा पिछड़े वर्गों और महिलाओं के विकास, अपराध विज्ञान, चिकित्सा और मानसिक रोगियों की सेवा पर उपाधि पाठ्यक्रम शुरू करने की श्री अर्जुनसिंह की हार्दिक इच्छा है। अब भारत सरकार में मानव संसाधन मंत्री होने से उनकी इच्छा साकार होने में कोई अड़चन नहीं आ सकती ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

साक्षरता अभियान, परिवार नियोजन और टीकाकरण के प्रति जागरुकता लाने के लिए श्री अर्जुनसिंह ने पहल की है जिसके फलस्वरूप गत दो वर्षों में इस संस्थान के शिक्षकों और विद्यार्थियों ने भी मानपुर व आसपास के गाँवों में जाकर जनजागरण और समाज प्रबोधन का कार्य किया है।

श्री अर्जुनसिंह ने शिक्षामंत्री के रूप में जो कार्य किया है, उसे देश के शिक्षा जगत के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा। उनकी पहल पर नवोदय विद्यालयों में 40 प्रतिशत छात्र उस वर्ग के भर्ती किये गये हैं जो कि ग़रीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। इसमें अनुसूचित जाति और जनजाति के लिये आरक्षण भी अपनी जगह पर यथावत् रखा गया है। नवोदय विद्यालयों के माध्यम से शिक्षामंत्री श्री अर्जुनसिंह उच्चकोटि की शिक्षा सर्वहारा वर्ग को निःशुल्क प्रदान करने में प्रयासरत हैं। सर्वहारा वर्ग की नई पीढ़ी को श्री अर्जुनसिंह द्वारा प्रदान किया गया यह एक वरदान है, ऐसी मेरी मान्यता है। उन्होंने स्कूलीशिक्षा और उच्चशिक्षा के बीच असंतुलन को कम करने का प्रयास किया है। आठवीं योजना में व्यावसायिक शिक्षा पर काफी जोर देने का उनका आग्रह समर्थनीय है। उनकी मान्यता है कि नई औद्योगिक नीति से आर्थिक गतिविधि बढ़ेगी, जिससे प्रशिक्षित युवकों की माँग बढ़ेगी। इससे असंतुलन कम होगा। श्री अर्जुनसिंह ने व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का पुनरीक्षण किया है जिससे नई रोज़गारोन्मुखी शिक्षा से व्यवसाय के नए द्वार खुलने में मदद मिलेगी। वे चाहते हैं कि केंद्रीय बजट में शिक्षा के लिए कोई कटौती न हो। शिक्षा में साधनों के कारण पीछे हटने में उन्होंने कभी रुचि नहीं दिखाई। वे अपनी इच्छाशक्ति के धनी हैं और कर्त्तव्यों के प्रति दृढ़

हैं इसलिए वे कभी पीछे मुड़कर नहीं देखते। आदिवासी इलाक़े में ड्रापआऊट समस्या को दूर करने के लिए आश्रम, स्कूल, मिड-डे भोजन की योजनाएँ लागू करके उन्होंने इस समस्या को बुद्धिमत्तापूर्वक सुलझाया है। भारत के अब तक के शिक्षामंत्रियों में श्री अर्जुनसिंह ही एक ऐसे शिक्षामंत्री हैं जिन्होंने शिक्षा को व्यावहारिक धरातल पर लाकर शिक्षा और रोजगार के बीच कोई टकराव की परिस्थिति न बनें, इसके लिए प्रयास किये हैं। उनकी मान्यता है कि 'शिक्षा व्यक्ति को हर दृष्टि से सक्षम बनाती है बौद्धिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से समय-समय पर ऐसी सुविधाएँ होनी चाहिए जिनकी वजह से हम सक्षम बनते हुए अपने व परिवार के भरण-पोषण के लिए भी कुछ कर सकें और अपने बौद्धिक और आध्यात्मिक स्तर को भी सुधार सकें।'

श्री अर्जुनसिंह ने अपने जीवन में सदैव सर्वहारा वर्ग के आँसू पोंछने को मुख्य कर्म माना है। यही कारण है कि वे स्वातंत्रोत्तर भारत के सर्वहारा पीड़ित और शोषित वर्ग के मसीहा माने जाते हैं। इस महान् व्यक्तित्व के जन्मदिवस के अवसर पर प्रकाशित गौरव ग्रंथ में इस छोटे से आलेख के माध्यम से मैं उन्हें अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ।

☐ *डॉ. म.ला. शहारे— अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय रीवा के पूर्व कुलपति, डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान संस्थान महू के महानिदेशक डॉक्टर शहारे विद्वान् साहित्यानुरागी, शिक्षाविद्, गहन अध्येता तथा समाज सुधार को समर्पित शिक्षाशास्त्री हैं। आपके आलेख पठनीय-विचारणीय होते हैं।*

एक मृदुभाषी अहेरी

उदयन शर्मा
(वरिष्ठ पत्रकार)

राजनीतिक पंडित आजकल इस बहस में उलझे हुए हैं कि श्री अर्जुनसिंह और पी.वी. नरसिंहरावजी के बीच खुला युद्ध कब होगा और इस युद्ध के बाद श्री अर्जुनसिंह प्रधानमंत्री बन पायेंगे या नहीं। इसे मैं श्री अर्जुनसिंह का एक अपमान मानता हूँ। जो लोग श्री अर्जुनसिंह में भविष्य का वी.पी. सिंह देखते हैं, वे या तो श्री अर्जुनसिंह को नहीं जानते, अगर जानते हैं, तो ऐसा सोचकर या कहकर जानबूझ कर उनका अपमान करते हैं। आज श्री अर्जुनसिंह पर चौतरफ़ा प्रहार इसलिए हैं कि वे वफ़ादारी और काँग्रेस की परंपरा की मिसाल हैं। राजीवजी के जीवनकाल में उन पर तिलमिलाने वाले आक्रमण होते थे पर वे चुप रहते थे, क्योंकि उनके आलोचकों की मंशा उनकी धैर्य सीमा तोड़ना होती थी, पर उन्होंने धैर्य न तब खोया न आज खोते हैं। उनके राजनीतिक दुश्मनों की यही सबसे बड़ी पराजय है। इनके राजनीतिक-धैर्य के दो उदाहरण मैंन स्वयं देखें हैं। पंडित कमलापति त्रिपाठी के अंतिम कुछ वर्ष शारीरिक दृष्टि से बहुत ख़राब बीते थे, उनकी जो सेवा चंद्राजी ने की थी, वो शायद उनके सगे बेटा-बेटी कभी न करते। चंद्राजी जब भी दिल्ली में न होती थीं, तब चालाक और मानसिक रूप से निर्मम एवं षड़यंत्रकारी राजनीतिक पंडितजी की बीमारी का लाभ उठाकर उनका इस्तेमाल करते थे। ऐसा ही एक इस्तेमाल 1986 में पंडितजी का अर्जुनसिंहजी के विरुद्ध हुआ। उस विवाद में अनेक लोगों ने पंडितजी के मुख में शब्द रखकर उनके तथाकथित बयान छपवाये। मैं दोनों घरों में आता-जाता था। मैं चश्मदीद गवाह था कि लोग एक वृद्ध का कैसे इस्तेमाल कर रहे हैं। मैंने श्री अर्जुनसिंह का इस विषय पर इंटरव्यू लिया। मेरी लाख़ कोशिश के बावज़ूद उन्होंने पंडित कमलापतिजी की एक भी बात पर टिप्पणी नहीं की, जबकि श्री अर्जुनसिंह के विरोधियों ने पंडितजी से उनके पिता के विरुद्ध भी भद्दी टिप्पणी करा दी थी। जब मैं 5 तुगलक रोड से बाहर आ रहा था, तो मैं हतप्रभ था। मैंने बाद में उनसे जब इस बारे में पूछा, तो उनका उत्तर था– "ये लोग यही चाहते हैं कि मैं रिएक्ट करूँ एंड आइ एम नॉट गोइंग टू ऑब्लाइज देम।"

संभवत: जून 1991 में ही श्री अर्जुनसिंह ने भाजपा के विरुद्ध मोर्चा खोलने का मन बना लिया था। वे समझ रहे थे कि उत्तर भारत का नेता अब वही राजनीतिज्ञ हो सकता है, जो भाजपा से मुचैटा लेने को तैयार हो। वे यह भी समझ गये थे कि हिन्दी राज्यों में काँग्रेस को पुनर्जीवित करने का एकमात्र फॉर्मूला भी यही था। उनका मानना था भाजपा के प्रति नरम रुख़ रखने वाली काँग्रेस इन राज्यों में जीवित नहीं रह सकती है। उत्तरप्रदेश के संदर्भ में उनकी दृष्टि साफ़ थी कि इस राज्य में काँग्रेसियों की विचारहीनता के कारण ही पार्टी का सफ़ाया हुआ था और जब तक कोई वरिष्ठ नेता भाजपा के विरुद्ध सख़्त लाइन नहीं लेता, अल्पसंख्यक पुन: काँग्रेस के साथ नहीं आयँगे। इसीलिए साल ख़त्म होते-होते भारतीय राजनीति में भाजपा की सांप्रदायिक राजनीति के विरोधी के रूप में श्री अर्जुनसिंह का क़द सबसे बड़ा हो गया।

जो लोग तिरुपति में हुये काँग्रेस वर्किंग कमेटी के चुनाव के बाद श्री अर्जुनसिंह को काँग्रेसी राजनीति में नंबर

दो का नेता मानकर उनमें भावी प्रधानमंत्री देख रहे हैं, वे भारत के भविष्य की राजनीति को बहुत छोटे संदर्भ में विश्लेषित करने का प्रयास कर रहे हैं। श्री अर्जुनसिंह को कार्यसमिति में मिले 430 वोट श्री नरसिंहराव के विरुद्ध वोट न होकर नेहरू-गाँधी के परिवार के एक वफ़ादार को पार्टी का समर्थन था, क्योंकि श्री अर्जुनसिंह की काँग्रेस पार्टी में सबसे बड़ी पूँजी वफ़ादारी रही है। 1957 में पहली बार निर्दलीय विधायक बनने के बाद श्री जवाहरलाल नेहरू के कहने पर श्री अर्जुनसिंह ने काँग्रेस में प्रवेश किया था। 1963 में पहली बार मंत्री पद की शपथ लेने वाले श्री अर्जुनसिंह राजनीतिक कैरियर को आकार श्रीमती इंदिरा गाँधी ने स्वयं दिया था। इसीलिए 1980 में मुख्यमंत्री बनने के बाद श्री अर्जुनसिंह का पहला वक्तव्य था— "मेरी राजनीति का प्रारंभ एवं अंत इंदिराजी की चौखट पर है।"

लेकिन इसी वफ़ादारी के कारण नेहरू-गाँधी परिवार के बाद काँग्रेस के आलोचकों का सर्वाधिक भीषण आक्रमण श्री अर्जुनसिंह पर ही रहा है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि श्रीमती इंदिरा गाँधी या श्री राजीव गाँधी के किसी आलोचक ने ग़लती से भी श्री अर्जुनसिंह की तारीफ़ कर दी हो। इसीलिए आज भी श्री राजीव गाँधी के नाम से भी घृणा करने वाले प्रेस के एक हिस्से का सर्वाधिक प्रखर प्रहार श्री अर्जुनसिंह पर है। भाजपा समर्थक बुद्धिजीवी श्री अर्जुनसिंह को अपना प्रबलतम शत्रु मानते हैं। काँग्रेस के अंदर और बाहर की शक्तियों ने अनेक बार श्री अर्जुनसिंह की राजनीतिक हत्या करने की कोशिश की है। इसकी सबसे जबरदस्त कोशिश 1988-89 में हुई थी, जब काँग्रेस के एक छोटे से वर्ग ने भाजपा से हाथ मिलाकर केन्द्रीय मंत्रिमंडल से वापस मुख्यमंत्री बनकर भोपाल गये श्री अर्जुनसिंह का इस्तीफ़ा करवा लिया था, लेकिन हमेशा की तरह इस संकट से भी वे पहले से ज़्यादा शक्तिशाली होकर निकले थे।

तिरुपति में काँग्रेस के राजनीतिक प्रस्ताव को मूलत: भाजपा विरोधी बनाकर उन्होंने उत्तर भारत की काँग्रेस को विचार के स्तर पर झकझोर दिया है। आज स्थिति यह है कि श्री अर्जुनसिंह के राजनीतिक प्रहार से भाजपा तिलमिला रही है और जनता दल ख़ासकर श्री वी.पी. सिंह हतप्रभ हैं। जनता दल के नेताओं का एकांत में मानना है कि हिन्दी राज्यों में श्री अर्जुनसिंह के सामने उनका सामाजिक न्याय एवं धर्मनिरपेक्षता का नारा बेमानी हो गया है। सामाजिक न्याय का नारा देने वाले श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह जानते हैं कि 1985 के विधानसभा चुनावों में पूरे भारत में काँग्रेस का वोट दिसम्बर 1984 के लोकसभा चुनाव के मुक़ाबले कम हुआ था। सिर्फ़ मध्यप्रदेश में यह वोट बढ़ा था। इसकी वजह श्री अर्जुनसिंह का पिछड़े वर्गों को आरक्षण देना एवं महाजन कमीशन बैठाना था। श्री अर्जुनसिंह की इसी राजनीतिक दृष्टि की वजह से वामपंथी उनके साथ मित्रता करने को आतुर हैं और श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह की अनर्गल राजनीति के कारण समाज की अगड़ी जातियों का वोट जनता दल से भागा है, वह श्री अर्जुनसिंह के इर्दगिर्द ही इकट्ठा होना चाहता है।

इसलिए तिरुपति के बाद श्री अर्जुनसिंह का क़द बड़ा होने का अर्थ सिर्फ़ यह है कि पार्टी को आज भी वफ़ादारों पर भरोसा है और इन वफ़ादारों में सबसे बड़ा क़द है श्री अर्जुनसिंह का। आज काँग्रेस की राजनीति में श्री अर्जुनसिंह का मतलब मध्यप्रदेश के एक ठाकुर राजनीतिज्ञ का शक्तिशाली होना नहीं है; देश में आर्थिक-सामाजिक बदलावों के संदर्भों में एवं काँग्रेस के वर्तमान सत्ता-समीकरण में श्री अर्जुनसिंह पार्टी में विचार एवं वफ़ादारी की निरंतरता के प्रतीक हैं। सही या ग़लत, किसी को अच्छा लगे या अटपटा पर सत्य यही है कि आज की तारीख़ में श्री अर्जुनसिंह काँग्रेस में नेहरूवादी एवं श्री राजीव गाँधी के वफ़ादारों के ऐसे प्रतीक हैं, जिसकी समाज एवं सामाजिक-न्याय के प्रति दृष्टि स्पष्ट है और जिसकी सांप्रदायिकता के विरुद्ध राय सख़्त है। जब कोई राजनीतिक अपनी पार्टी में राजनीतिक शक्तियों का प्रतीक बन जाता है, तब वह स्वयं अपनी नियति का संचालक नहीं रहता; तब समुद्री ज्वार की तरह ये शक्तियाँ ऐसे व्यक्ति को बहुत आगे तक ले जाती हैं। श्री अर्जुनसिंह की राजनीति

आज उत्तर भारत में काँग्रेस के पुनर्जीवित होने की शर्त बन गई है। श्री अर्जुनसिंह की राजनीतिक सफलता का अर्थ भाजपा की राजनीतिक मौत होगा। उत्तरभारत के संदर्भ में समाचार का विश्लेषण करने वाले एक तथ्य नज़रअंदाज़ कर जाते हैं कि 1991 में जब तक श्री अर्जुनसिंह भाजपा के ख़िलाफ़ सड़क पर नहीं आये थे, तब तक कोई भी काँग्रेसी नेता उत्तरप्रदेश में भाजपा को चुनौती देने की हिम्मत नहीं कर रहा था।

☐ *उदयन शर्मा— बहुचर्चित साप्ताहिक पत्रिका रविवार के संपादक, जनता दल और काँग्रेस के टिकिट पर क्रमशः आगरा तथा भिण्ड से लोकसभा के चुनाव के असफल उम्मीदवार श्री उदयन शर्मा नेहरू युवा संगठन केन्द्र, नई दिल्ली के उपाध्यक्ष रहे हैं। राजनीतिक विषयों पर अधिकार पूर्वक लिखने वाले युवा पत्रकार उदयन आज हमारे बीच नहीं हैं।*

भावी इतिहास का एक पात्र

आलोक तोमर
(स्वतंत्र पत्रकार)

श्री अर्जुनसिंह ने पहली मुलाक़ात में कहा था– 'आप तो अभी बच्चे हैं।' ग्वालियर के **स्वदेश** में छपी मेरी एक ख़बर पर भोपाल में विधानसभा तीन दिन तक स्थगित-सी रही थी और उसके बाद मुख्यमंत्री की हैसियत से श्री सिंह ग्वालियर आए थे। मैं उन्नीस या बीस साल का था और एक स्थानीय कॉंग्रेसी नेता वी.आई.पी. सर्किट हाउस में मुझे श्री सिंह से मिलवाने ले गए थे।

किसी के बारे में संस्मरण या लेख की शुरुआत प्रथम पुरुष से करना नीति और व्याकरण दोनों के बहुत अनुकूल नहीं है। लेकिन श्री अर्जुनसिंह के बारे में लिखने के लिए परिचय का मंगलाचरण बनाना जरूरी लगा। श्री सिंह से शायद किसी भी संबंध में– राजनीति की मैं जानता नहीं, मैं तो निजी संबंधों की बात कर रहा हूँ– कभी उतार चढ़ाव नहीं आते। अंतरंगता का एक सम्यक् और स्थिर समीकरण एक बार जो सिद्ध हुआ तो उसमें जब तक रिश्तों के गणित की कोई भारी भूल नहीं हो– बना रहता है।

मुख्यमंत्री का एक राज्य के किसी शहर में रहने वाले एक किशोर मन में जितना आतंक हो सकता है, उतना मेरे मन में भी था। लेकिन पहली मुलाक़ात और उसके बाद के अनंत अवसरों पर अनेक स्थितियों में उनसे जो भी वास्ता पड़ा वह बाक़ी जिन भ्रांतियों को पुष्ट-अपुष्ट करता हो लेकिन श्री सिंह की संवेदनशीलता और मानवीयता को बार-बार सायास-अनायास स्थापित करता रहा है। वे जितना कम बोलते हैं और उनकी चुप्पी के अर्थ लगाने वाले सिर्फ़ अनेक अर्थों में भटकते रहते हैं। इसे बहुत लोग उनकी चतुर राजनयिक शैली का हिस्सा बताते हैं लेकिन मुझे सदा लगता है कि मूलत: श्री सिंह का स्वभाव– अंतर्मुखी है और उनके चाहे अनचाहे ही वे अपने शब्दों को अवचेतन में तौलते रहते हैं। हो सकता है कि भदेस और शब्दों के श्लेष वाली राजनीति में उन्हें उसका लाभ भी मिलता हो पर वह राजनीति की नहीं, व्यक्ति की निजी शैली ही है।

– "मैं हड़बड़ी में कोई ऐसा काम नहीं करता, जिसके लिए मुझे बाद में आराम से पछताना पड़े।" श्री सिंह ने कुछ ही दिन पहले बातचीत में कहा था। धैर्य और परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने की प्रतीक्षा करने की सामर्थ्य उन्होंने कई बार प्रमाणित की है।

और ऐसा भी नहीं कि किसी संवेदनशील व्यक्ति के जीवन में दुर्बल क्षण ही आते हों। कई बार ऐसा भी हुआ है कि एक समय उनकी छाया में पनपने वाले लोग उन पर हमले कर रहे हैं और उनके समर्थक-मित्र नाराज़ होते घूम रहे हैं। इस पूरे विवाद के बीच श्री सिंह अपना संयम और विचार की संयत शक्ति कैसे क़ायम रख पाते हैं, यह मेरे सहित बहुत लोगों के लिए क़ौतूहल की बात भी है और ईर्ष्या की भी।

असफलताओं को नई शक्ल देकर सफलताओं और आघातों को रचनात्मक ताल देने की शैली कोई श्री सिंह से सीख सकता है। पंजाब के राज्यपाल बनकर वे चंडीगढ़ गए थे तो यह कहने वालों की कमी नहीं थी कि श्री सिंह

को राजनैतिक तौर पर समाप्त करने का फैसला कर लिया गया है। लेकिन वे न सिर्फ़ वहाँ से विजयी और ख़्याति संपन्न हो कर लौटे बल्कि पंजाब समस्या के इतिहास में आज तक का पहला समझौता– 'राजीव गाँधी-लोंगोवाल समझौता' भी उन्हीं के हाथों सम्पन्न हुआ। फिर भी थे वे राजनीति के बीहड़ में ही। दक्षिण दिल्ली लोकसभा क्षेत्र का दारुण चुनाव, काँग्रेस के उपाध्यक्ष पद का काँटों का मुकुट और फिर केन्द्र में मंत्री रहने के बाद मध्यप्रदेश के दोबारा मुख्यमंत्री– इन सब उल्टी धाराओं में वे शीर्ष की ओर अबाध तैरते रहे हैं।

पढ़ने-लिखने की, श्री सिंह की क्षमता असाधारण है और कब वे हक्सले या कृष्णमूर्ति पढ़ रहे होंगे और कब एक लोकप्रिय फ़िल्म पत्रिका उनके हाथों में होगी– कहा नहीं जा सकता। दर्शन, इतिहास, संस्कृति और संस्कार– सभी विषयों पर लगातार पढ़ते रहने वाले श्री सिंह का शब्दों पर अधिकार इसी अध्ययन के रास्ते आया है यह माना जा सकता है।

विद्रोह और अनुशासनहीनता के बीच जो एक विभाजक रेखा है– लगभग अदृश्य सी– उसकी शिनाख़्त श्री सिंह ने भलीभाँति कर ली है। जहाँ ज़रूरी हुआ परंपराएँ तोड़ीं, विरोध किया और अपना पक्ष सामने रखा। लेकिन संगठन के संस्थागत ढाँचे में रहकर। राजनीति की शुरुआत में वैचारिक विद्रोह पिता के साथ असहमति से आरंभ हुआ था, पर इससे पिता की आदरणीयता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पहला चुनाव जीतकर वे निर्दलीय विधायक बने और तमाम पारिवारिक प्रतिबंधों और निषेधों के बावज़ूद काँग्रेस से जो जुड़े तो तमाम विरोधाभासों से आज तक टिके हुए हैं। विचार और शैली की कट्टरता से जुड़ी राजनीति की अपनी सीमाएँ होती हैं और वे शायद श्री सिंह भी अनुभव करते होंगे।

श्री सिंह, अजात शत्रु नहीं हैं। मज़े की बात तो यह है कि उनके शत्रुओं में से ज़्यादातर वे हैं जो कभी न कभी उनके हाथों उपकृत हुए हैं। उपकार शायद बेहतर शब्द नहीं हो पर अर्जुनसिंह से निकटता का लाभ तो इन सब लोगों को हुआ ही है। सत्ता से कला के सहकार के तौर पर **भारत-भवन न्यास** की स्थापना की गई थी और हो सकता हैं कि उसके विधि-विधान में कोई कमी भी रही हो, लेकिन जिन लोगों ने विरोध किया, उनका इरादा कला और संस्कृति की पवित्रता की रक्षा का उतना नहीं था, जितना कलाओं को समुदाय या समाज की बजाय गोष्ठियों और अल्पसंख्यक सेमीनारों का विषय बनाने का। हैरत की बात तो यह है कि कलाओं की स्वायत्तता का बावेला मचाने वालों में से ज़्यादातर वे थे जिनकी कला और साहित्य के प्रति प्रतिबद्धता पर कभी संदेह नहीं किया जा सकता लेकिन अपने हाथों से कलाओं का प्रयोजन छिनने से उनकी आत्मा पीड़ित थी।

यूनियन कार्बाइड गैस हादसे के समय श्री सिंह मुख्यमंत्री थे। उस समय काफ़ी कहा सुना गया कि यह हादसा मुख्यमंत्री का नैतिक दायित्व है। लेकिन शोर मचाने वाले यह नहीं जानते कि आज भी गैस राहत का पैसा अधिक से अधिक मंजूर करवाने के पीछे, दिल्ली में इसी 'कलंकित' पात्र का हाथ है। किसी भी राजनीतिज्ञ के जीवन में कलंक और यश का जो मिला-जुला हिस्सा होता है– वह दोनों ही श्री सिंह की झोली में बहुत आए हैं। यश और अपयश को गीता के 'लाभं-लाभौ-जया जयौ' की धारणा से धारण करते हुए श्री सिंह ने अपने आपको राजनीति की सँकरी गली में बीच के रास्ते पर बनाए रखा है। राजनीति के चतुर समीकरणों के बीच भी इन पर कभी किसी किस्म के– व्यक्तिगत या राजनैतिक विश्वासघात का आरोप नहीं लगा है। हाँ कुछ प्रसिद्ध विश्वासघातों का शिकार उन्हें अवश्य होना पड़ा है। दुष्यंत कुमार की पंक्तियाँ हठात् याद आती है–

'हर परंपरा के मरने का विष मुझे मिला,
हर सूत्रपात का श्रेय ले गए और लोग।'

श्रेय और कलंक के सात्विक और तामसिक यज्ञों में कई बार समिधा बन कर गिरने के बावज़ूद श्री सिंह मानवीय संबंधों पर सहज विश्वास अगर बनाए हुए हैं तो यह उनके अतिमानव होने की ही बात कही जा सकती है। हवन

करते कई बार उनके हाथ जले हैं और फिर भी वे यज्ञ की वेदी पर बैठे हैं। दिलचस्प बात यह है कि मूल्यों के स्तर पर श्री सिंह का विश्वास उनकी मूल समाजवादी धारणा का विकास है।

समाजवाद के लोकतांत्रिक प्रतिपादन और सांप्रदायिकता को सदा के लिए राजनीति से ख़ारिज कर देने की उनकी कोशिशें लगातार कई नासमझ विवादों का केन्द्र बनती रही हैं और जो संकेत हैं, उनसे साफ़ है कि श्री सिंह को इस सबसे कोई ख़ास असर नहीं पड़ता। वे अर्जुन हैं और मछली की आँख पर उनकी निगाह है। यह राजनीति में अपने ध्येय के प्रति दुर्लभ एकनिष्ठता का उदाहरण है। इसके फलितार्थ चाहे जो निकाले जाएँ पर जिन लोगों में हम समकालीन समय का भावी इतिहास देख सकते हैं– उनमें श्री अर्जुनसिंह भी हैं।

□ *आलोक तोमर— दैनिक जनसत्ता के संपादकीय सहयोगी रह चुके श्री आलोक तोमर राजधानी के सक्रिय पत्रकारों की अग्र पंक्ति के पत्रकार हैं। विभिन्न टेलीविज़न समाचार एजेंसी और स्वतंत्र पत्रकारिता के साथ ही आप राजनीतिक गलियारों में घूमकर-ख़बरें सूँघकर बनाने में माहिर माने जाते हैं।*

संसदीय संस्कृति के शिल्पी

विश्वेन्द्र मेहता
(पूर्व सचिव– म.प्र. विधानसभा)

लोग उन्हें ग़रीबों का मसीहा कहते हैं। कुछ लोगों को उनमें कुटिल कूटनीतिक, साज़िशी, साहसी राजनेता दिखाई देता है। कोई उन्हें मितभाषी, मिष्ठभाषी, संवेदनशील, कुशल प्रशासक और राजनीति का अप्रतिम अजेय योद्धा मानता है। इन मान्यताओं पर विवाद हो सकता है परन्तु जो सर्वथा निर्विवाद है वह यह है कि श्री अर्जुनसिंह एक मँजे हुए उच्चकोटि के संसदवेत्ता हैं। संसदीय संस्कृति को उन्होंने कामकाज चलाने की दृष्टि से नहीं वरन् एक जीवन दर्शन के रूप में आत्मसात किया है जिसका साक्षी है मध्यप्रदेश विधानसभा का विगत तीन दशकों का इतिहास।

1957 से अब तक लगातार मध्यप्रदेश विधानसभा से जुड़े रहने वाले गिनती के सदस्यों में श्री अर्जुनसिंह भी एक हैं। यहाँ के निर्दलीय सदस्य, सत्तापक्ष के सदस्य, विपक्ष के नेता, मंत्री और सदन के नेता के रूप में वह सभी भूमिकाएँ उन्होंने निभाई हैं जो कि किसी विधायक के लिये हो सकती हैं। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि इन भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमिकाओं को उन्होंने इतनी ख़ूबी के साथ निभाया है कि उसमें श्रेष्ठतम कौन-सी रही यह कहना कठिन है क्योंकि सभी हैसियत से उनके कार्य निष्पादन का स्तर अपनी जगह उच्चकोटि का रहा है।

जब 1957 में कुँवर साहब पहली बार विधानसभा में चुनकर आये तो सभा के युवतम विधायकों में से एक थे मात्र 27 वर्ष उम्र थी उनकी। प्रथम संपर्क में ही यह पाया कि व्यवहार में वह कुँवर साहब के अलावा सब कुछ थे। वह युवा अवश्य थे पर नटखट नागर नहीं, सरोवर सरीखे संजीदा जिसकी थाह न हो। उन्हें देखकर जुबान पर जो शेर आ जाता था आज तीन दशक बीत जाने पर भी वैसा ही लागू होता है :

कह रहा है जोशे दरिया से समंदर का सकून।
जिसमें जितना ज़र्फ है उतना ही वो खामोश है।।

सदन और पुस्तकालय को साधना स्थल बनाया उन्होंने और एकला चलो रे का गीत गुनगुनाते चल पड़े जन-प्रतिनिधि की काँटों भरी राह पर। एक अजीब समा होता था जब डॉ. कैलाशनाथ काटजू, विश्वनाथ तामस्कर, चन्द्रप्रताप तिवारी, डॉ. शंकरदयाल शर्मा, पं. शंभुनाथ शुक्ल, अनन्त सदाशिव पटवर्धन, मनोहरसिंह मेहता जैसे महारथियों के वाक्युद्ध के बीच एक अभिमन्यु की आवाज़ गूँज उठती थी सदन में। एक अनुशासित, संयत, धीर, गंभीर आवाज़ जो आकृष्ट कर लेती थी पक्ष और विपक्ष के दिग्गजों को। यह आवाज होती थी निर्दलीय सदस्य श्री अर्जुनसिंह की जो अपनी समाधानकारक शैली, अकाट्य तार्किकता और अप्रतिम बुद्धिचातुर्य को छलकाती हुई छा जाती थी पूरे माहौल पर।

वस्तुत: विधानसभा का पहला दशक स्वतंत्रता संग्राम के प्रतिभाशाली तपोपूतों का था जो अपनी विद्वत्ता, शालीनता और परिपक्वता से चलाते थे सदन को। निश्चित ही श्री अर्जुनसिंह ने अध्ययन, मनन और चिन्तन की सतत साधना

से अपना स्थान बनाया विधायिका के कद्दावर और अग्रणी नेताओं की कतार में। डॉ. काटजू सरीखा निःस्पृह और संत प्रकृति का व्यक्ति भी प्रभावित हुआ। उनसे किसी सिफ़ारिश या जोड़तोड़ की राजनीति से नहीं वरन् प्रतिभा, मेधा, गम्भीरता और लगनशीलता से युवा श्री अर्जुनसिंह की। प्रभावित क्यों न होते वह, सभी तो प्रभावित थे उनके वक्तव्य से, व्यवहार से, कर्त्तव्य निर्वहन से, चाहे वह प्रेस दीर्घा के वरिष्ठ पत्रकार हों या दर्शक दीर्घा का आम आदमी।

एक लम्बा रास्ता तय किया है कुँवर साहब ने अपने विधायकी जीवन का। विधानसभा नियमों, परम्पराओं, प्रक्रियाओं, व्यवस्थाओं का गहरा ज्ञान है उन्हें क्योंकि उन्होंने उनका अध्ययन और मनन किया है, एक अध्येता, शिक्षार्थी और जिज्ञासु की तरह। यही कारण है कि आज भी नियम पुस्तिका को देखे बिना वह कई अवसरों पर विधानसभा में नियमों की बहुत बारीक़ बात कहकर आवाक् कर देते हैं सबको।

संसदीय प्रणाली का मुख्य आधार पक्ष-विपक्ष का सामंजस्य, संवाद, सहमति होता है। इस प्रणाली को प्रदेश में परवान चढ़ाने में केवल सदन के नेता के रूप में ही नहीं वरन् एक विधायक के नाते, प्रतिपक्ष के नेता के नाते श्री अर्जुनसिंह ने जो भूमिका निभाई है वह मध्यप्रदेश विधानसभा के इतिहास के रजत पृष्ठ के रूप में झिलमिला रहा है। यही कारण रहा कि सभी विधानसभा अध्यक्षों से उन्हें समुचित सम्मान और स्नेह मिलता रहा। पंडित कुंजीलाल दुबे उन्हें सदन में और सदन के बाहर कितना सम्मान देते थे यह किसी से छुपा नहीं है। पं. काशी प्रसाद पाण्डेय ने प्रक्रिया संबंधी पुस्तक के संपादन के लिये जो समिति बनाई थी उसमें वरिष्ठ सदस्यों के साथ श्री अर्जुनसिंह को भी रखा गया था। अध्यक्ष श्री नेवालकर ने तो एक नई परम्परा शुरू करके सचिवालय सेवा संबंधी समिति का अध्यक्ष तत्कालीन नेता प्रतिपक्ष श्री अर्जुनसिंह को बनाया। श्री अर्जुनसिंह समिति के नाम से प्रसिद्ध इस ऐतिहासिक समिति ने विधानसभा सचिवालय को संवैधानिक स्थिति के अनुरूप ऐसी सिफ़ारिश की है कि जो राज्य में विधायिका के स्वस्थ विकास के लिये सदा याद की जाती रहेगी। हालाँकि समाचार पत्रों में अर्जुनसिंह-यज्ञदत्त शर्मा विवाद को काफ़ी तूल दिया गया लेकिन श्री शर्मा के कार्यकाल में भी विधायिका की गरिमा को ऊँचा उठाने के लिये अध्यक्ष श्री शर्मा के प्रस्तावों को तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह द्वारा कभी नकारा नहीं गया। श्री यज्ञदत्त शर्मा के नेतृत्व में विधानसभा का ऐतिहासिक रजत जयन्ती समारोह मनाया गया और उसके लिये शासन की ओर से धन और सहयोग की कमी का कोई अवसर उपस्थित नहीं हुआ। श्री शर्मा-सिंह के प्रयासों से ही नये विधानसभा-भवन की आधारशिला रखी गई। इन्हीं के सामंजस्य से यहाँ विधानसभा सेवा संबंधी क़ानून बना जो पूरे देश में किसी राज्य में अब तक नहीं बन सका है।

जिन लोगों को कुँवर साहब के क़रीब रहने का अवसर मिला है या मिलता है उन्हें मालूम है कि देश की राजनीति के शिखर पर पहुँच जाने वाले इस राजनेता की कार्यशैली और स्वभाव में आज भी कोई अन्तर नहीं आया है। प्रतिपक्ष के नेता और प्रतिपक्ष के माननीय सदस्यों को वह इतना सम्मान देते हैं कि लोग तरह-तरह के अर्थ लगाने लगते हैं। विपक्ष के एक जुझारू सदस्य ने एक चर्चा में जब मुझसे कहा कि उन्हें कुँवर साहब से बहुत डर लगता है तो मैं आश्चर्य में डूब गया क्योंकि उन मा. सदस्य का रौद्र रूप सदन में देखता आया हूँ। इस स्थिति से मैं तभी उबर पाया कि उन्होंने आगे यह स्पष्ट किया कि वह इस राजनेता की विनम्रता, विद्वता, शालीनता, उदारता से इतने अभिभूत हो जाते हैं और लगता है कि जैसे हिप्नोटाइज हो गये हों और हश्र यह होता है कि–

बात भी आपके आगे न ज़ुबाँ से निकली
लीजिए आये थे हम सोच के क्या-क्या दिल में

विगत तीन दशकों में मध्यप्रदेश विधानसभा ने संसदीय प्रजातंत्र की जिन बुलन्दियों को छुआ है उसका श्रेय यहाँ के पक्ष, विपक्ष के नेताओं और पीठासीन अधिकारियों को जाता है। निश्चित ही इस श्रेय में श्री अर्जुनसिंह

की पर्याप्त भागीदारी है क्योंकि वह विधानसभा से विभिन्न हैसियतों में जुड़े रहे हैं और इस संस्था की श्री वृद्धि के लिये निरन्तर प्रयासरत रहे हैं।

एक कुशल संसदवेत्ता के लिये आवश्यक है कि उसमें ज्ञान हो पर उसे दूसरों पर थोपने की मनोवृत्ति न हो, उसमें जागरूकता हो पर दुराग्रह नहीं, उसकी तार्किकता ऐसी हो जो सामने वाले को निःशस्त्र कर दे पर निर्वस्त्र नहीं। शिष्टता, शालीनता, विनोदप्रियता के बिना क्रोधी स्वभाव का व्यक्ति तो कभी भी आदर्श संसदविद् नहीं बन सकता। निश्चित ही श्री अर्जुनसिंह का व्यक्तित्व उन सभी अवयवों से बना हो जो एक संसदविद् के निर्माण के लिये आवश्यक होते हैं। यही कारण है कि जिस प्रकार कौन्तेय अर्जुन की धनुर्विद्या चुनौतीविहीन थी उसी प्रकार श्री अर्जुनसिंह की गणना देश के श्रेष्ठतम संसदविज्ञों में की जा सकती है। मध्यप्रदेश विधानसभा अपने इस उत्पाद पर गर्व कर सकती है।

☐ *विश्वेन्द्र मेहता— मध्यप्रदेश विधानसभा के पूर्व सचिव, लेखक, विचारक, चिंतक श्री विश्वेन्द्र मेहता एक सतत जागरूक साहित्यकार हैं। सम-सामयिक विषयों पर सतत लेखन आपकी दिनचर्या है। संसदीय व्यवस्था नियमों, परम्पराओं के आप अधिकारी विशेषज्ञ विद्वान् अधिकारी रहे हैं।*

विचारवान और कर्मशील राजनीतिज्ञ

वीणा वर्मा
(पूर्व राज्यसभा सदस्य)

यह कहना अतिरंजित नहीं होगा कि राजनीतिक दुनिया में राजनीतिक व्यक्तियों का बहुत अभाव हो गया है। राजनीतिज्ञ तो आज बहुत हैं, पर उनका व्यक्तित्व ग़ायब हो गया है। आज़ादी के पूर्व एक ज़माना ऐसा भी था, जब देश में सैकड़ों ऐसे राजनीतिक पुरुष थे जिनका व्यक्तित्व और कर्म आज भी हमें याद करने के लिये विवश करता है। ये नाम आज इतने ज़्यादा हैं कि उनकी सूची बनाना और उनके कर्म का आँकलन करना आज इतिहासकारों के सामने एक चुनौती है।

आज़ादी के बाद एक ऐसा भी दौर आया जब राजनीति में सत्ता का सुख ही बलवान हो गया, बाक़ी मूल्य, सिद्धान्त किताब की चीज़ें हो गई। सातवें और आठवें दशक तक समकालीन राजनीति में अचानक ऐसे लोगों का प्रवेश हो गया कि राजनीति का चेहरा ही धूमिल हो गया। आज हालत यह है कि नई पीढ़ी के राजनीतिज्ञों में दो-चार नामों को छोड़कर शायद ही कोई नाम हो जिनके विचार और कर्म की भी बात की जा सके। आज की राजनीति में जिन थोड़े से राजनीतिज्ञों की उपस्थिति के कारण राजनीति में 'विचार' शब्द ज़िन्दा है उनमें श्री अर्जुनसिंह का नाम कई कारणों से महत्त्वपूर्ण है, हालाँकि उनके राजनैतिक कर्म को लेकर उन पर विवाद भी सबसे ज़्यादा हुए है, पर सच्चाई यह है कि श्री अर्जुनसिंह महज एक राजनीतिज्ञ ही नहीं है। वे राजनेता के साथ-साथ एक विचारक, संस्कृति-चिन्तक, शिक्षा- शास्त्री और योग्य प्रशासक भी हैं। शायद इसीलिए वे हमेशा भारतीय बुद्धिजीवियों, लेखकों, कलाकारों, शिक्षकों के लिये एक लोकप्रिय व्यक्तित्व हैं। यह भारतीय राजनीति और भारतीय सांस्कृतिक जगत के लिये एक निर्मम सच्चाई है कि आज मौजूदा राजनीतिक ढाँचे में वे अकेले ऐसे राजनीतिज्ञ हैं, जिन्होंने पिछले तीन दशकों के अपने राजनीतिक जीवन में सबसे ज़्यादा इस देश के साहित्य, संस्कृति और कलाओं के सम्मान और संरक्षण के लिये लगातार कार्य किया है। सत्ता का जितना बेहतर उपयोग उन्होंने संस्कृति के लिये किया है वह क़ाबिले ग़ौर है। ख़ासतौर से मध्यप्रदेश में उन्होंने **भारत-भवन** जैसे विश्व प्रसिद्ध साहित्यिक-सांस्कृतिक मंच की स्थापना और उसका विकास करके इस देश की हज़ारों वर्षों की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित और उसके सर्वांगीण विकास करने का जो भगीरथ प्रयत्न किया है, वह भारतीय सांस्कृतिक विकास के इतिहास में एक मील का पत्थर है। जिसका मूल्यांकन आज भले ही न किया जा रहा हो, कल जरूर किया जायगा। श्री अर्जुनसिंह ने मध्यप्रदेश के अपने मुख्यमंत्रित्व काल में साहित्य, संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे सैकड़ों साहसिक फ़ैसले लेकर कार्य किये हैं जो कि बेमिसाल हैं। वह इस प्रदेश के किसी भी मुख्यमंत्री के लिए एक चुनौती भी हैं। श्री अर्जुनसिंह ने यह अनुभव किया कि एक लेखक, कलाकार की हैसियत समाज में किसी भी राजनीतिज्ञ के अनुपात से कई गुना अधिक और कालजयी है। ऐसे में सत्ता और समाज का यह दायित्व बनता है कि समाज में उसकी हैसियत को उसका वाज़िब स्थान दिया जाय। इस सिलसिले में उन्होंने दर्जनों ऐसे राष्ट्रीय पुरस्कारों की घोषणा की।

सैकड़ों ऐसे आदिवासी कलाकारों को सम्मानित करके उनके कलाकर्म को उचित सम्मान दिया। ऐसे तमाम गुमनाम आदिवासी कलाकारों को देश के सांस्कृतिक फलक पर उपस्थित किया, जिन्हें आमतौर पर हमारा बहुसंख्यक समाज एक आदिवासी मज़दूर या 'पथरकट्टा' मानता है। उन्होंने पत्थर काट कर पेट भरने वाले आदिवासियों की पीड़ा को समझा और यह अनुभव किया कि एक पत्थर काटने वाले की जो चित्रों में भूख़ की पीड़ाएँ दर्ज़ हैं, उन्हें समाज भी देखे कि इसमें कितनी सहज कला है, जिन्हें हम अकारण एक निकृष्ट जीविका मानते हैं।

आज **भारत-भवन** क्या कर रहा है? यह सवाल उन लोगों से पूछा जाना चाहिए जो यह मानते थे कि श्री अर्जुनसिंह, श्री अशोक वाजपेयी के सहारे साहित्य और संस्कृति के बहाने अपनी राजनैतिक छवि सँवारने में लगे हैं। जबकि सच्चाई यह है कि **भारत-भवन** श्री अर्जुनसिंह के लिये एक शुद्ध साहित्यिक सांस्कृतिक कर्म और विवेक के साथ उनके निश्छल प्रेम का प्रतीक है। जैसे शाहजहाँ का ताजमहल से था। रायकृष्णदास का **भारत-कला-भवन** से था। ऐसे में **भारत-भवन** की दीवारों से राजनीतिक स्वार्थ की गंध तलाशने वालों की बुद्धि पर तरस आता है।

इधर के वर्षों में श्री अर्जुनसिंह जब से केन्द्र की राजनीति में दिल्ली आ गये उनके आलोचकों ने यह कहा था कि यहाँ वे सफल नहीं हो पायेंगे, यह भोपाल नहीं, दिल्ली है। पर वे वहाँ भी सफल हुए हैं।

उन्होंने पिछले वर्षों में कई विभागों का कार्य देखा और अपनी एक अलग पहचान छोड़ी। जब से मानव संसाधन विकास मंत्री के रूप में वे कार्य देख रहे हैं तब से शिक्षा, संस्कृति के विकास के लिए लगातार सक्रिय हैं। उन्होंने अभी हाल में ही प्रयाग में **निराला विश्वविद्यालय** की स्थापना की घोषणा करके एक अभूतपूर्व कार्य किया है। ऐसे फैसले वे प्रतिदिन करते रहते हैं, जिसमें इस देश की संस्कृति की गरिमा को बनाये रखने का संकल्प छिपा हुआ है। उम्मीद की जानी चाहिए कि उनके भावी जीवन में संस्कृति संरक्षण की यह बागडोर हमेशा उनके विवेक के साथ बँधी रहेगी। श्री अर्जुनसिंह के राजनीतिक व्यक्तित्व का मूल्यांकन अभी एक कठिन कार्य है क्योंकि वे लगातार सक्रिय हैं। कहना चाहिए कि आज की राजनीति की मुख्यधारा में वे प्रवाहमान हैं। इसलिए प्रवाह का मूल्यांकन तुरंत कठिन है क्योंकि वह धारा में हैं उसे बहते हुए सतत् प्रवाहमान गति को ही देखा जा सकता है। राजनीति में उन्होंने बराबर उन मूल्यों की चिंता की है जो समाज में आज ग़ायब हैं। राजनीति में उन मूल्यों को पुनर्जीवित करने के लिए उन्होंने एक महत्वपूर्ण कार्य यह किया है कि राजनीति को संस्कृति से जोड़ा है जिसकी डोर मानवीय संवेदना के बारीक़ धागे से जुड़ी हुई है। वे उन राजनीतिज्ञों में से नहीं है जो लगातार झूठ को सच और सच को झूठ बना कर पेश करते हैं। श्री अर्जुनसिंह ने बराबर इस सुविधाजनक राजनीति के चरित्र को बेनकाब किया है। वे भारतीय राजनीति की उस परम्परा की कड़ी हैं जो नैतिक मूल्यों से जुड़े थे, जिनमें पद और धन की अहमियत गौण है। अक़सर प्रशासनिक निर्णयों में उन्होंने जनहित और देश को सर्वोपरि माना है। जनहित और राष्ट्रहित के लिए उन्होंने बराबर बड़े साहसिक निर्णय लिये हैं, अपने होने वाले विरोध पर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया।

पंजाब में राज्यपाल के रूप में अचानक जब श्री अर्जुनसिंह को भेजा गया तो उन्होंने वहाँ काफ़ी धैर्य, साहस और संयम के साथ आतंकवादियों का मुक़ाबला किया। फलत: उस दौर में आतंकवादियों के हौंसले पस्त हुए थे। इसी तरह पार्टी स्तर पर उन्हें जब भी पार्टी हाईकमान ने जो कहा उसका उन्होंने पालन किया। किसी तरह की असहमति नहीं दिखाई। दरअसल ऐसे मौक़ों पर उनके व्यक्तित्व का जो सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है— विनम्रता और एक ख़ास तरह की मितभाषिता जो उन्हें बराबर संयमित रखती है। वे कोई भी क़दम बहुत सोच-समझ कर उठाते हैं और उस पर अंत तक दृढ़ रहते हैं, चाहे उसका अंजाम जो भी हो। वे हमेशा कहते हैं कि "मैं काँग्रेस पार्टी का एक अनुशासित सिपाही हूँ।" इस अनुशासन को उन्होंने क़ायम रखा है। शायद इसीलिए उनके राजनीतिक कर्म में शब्द और कर्म का संतुलन बराबर बना हुआ है। वे उन राजनीतिज्ञों में नहीं हैं जो अपने विचार और राह, कपड़े की तरह बदलते

हैं। उनके 'कमिटमेन्ट्स' इसीलिए आज काँग्रेस पार्टी में किसी भी राजनीतिज्ञ से ज़्यादा दृढ़ और भरोसेमंद हैं। वे किसी भी आम आदमी से मिलते वक़्त ग़ौर से उसकी बात सुनते हैं और नपे-तुले शब्दों में तुरंत समाधान देते हैं। उनके जीवन में जहाँ तक मेरी जानकारी है 'वादा' सिर्फ़ वादा नहीं होता है और अगर होता है तो ख़िलाफ हर्गिज़ नहीं जाता।

मैं समझती हूँ कि श्री अर्जुनसिंह आज भारतीय राजनीति में महाभारत के अर्जुन की तरह हैं पर उन्हें आज किसी सारथी की आवश्यकता नहीं है। वे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में– 'अपना रथ हम जोते हैं' के प्रतीक पुरुष हैं जिनके हर पाद-विक्षेप में भारत की भावी राजनीति की दिशा के सभी संकेत मौज़ूद हैं।

□ *वीणा वर्मा—* *प्रगतिशील कवि, इंडियन रायटर्स एसोसिएशन के संस्थापक, काँग्रेस के महामंत्री श्री श्रीकान्त वर्मा की धर्मपत्नी श्रीमती वीणा वर्मा विदुषी महिला हैं। आप दो बार राज्यसभा सदस्य रही हैं। विभिन्न संसदीय समितियों की सदस्या रही वीणाजी विभिन्न महिला कल्याणकारी गतिविधियों की सूत्रधार एवं संचालक रही हैं।*

प्रखर राजनैतिक व्यक्तित्व

ऐतिहासिक कार्यालय प्रयोग

अपराजेय श्री अर्जुनसिंह

मदनमोहन जोशी
(वरिष्ठ साहित्यकार)

श्री अर्जुनसिंह का राजनीतिक जीवन लगातार एक बाधा-दौड़ की तरह बीता है। चुनौतियों को चीरते, विघ्न-बाधाओं और विरोधों को भेदते हुए वे चार दशकों से भी ज़्यादा लंबे सार्वजनिक जीवन में पड़ाव-दर-पड़ाव मील के पत्थर गाड़ते हुए आगे बढ़े हैं। उत्तुंग ऊँचाइयों पर पहुँचने के बाद भी उनकी जय यात्रा आज भी इसी तर्ज़ पर जारी है। जितने विवाद उन्होंने झेले हैं, जितने इम्तिहान दिये हैं, जितने घुमावदार गलियारों से गुज़रे हैं, जितने कटघरों में धकेले गये हैं, जितने प्रतिद्वंद्वियों से जूझे हैं, जितना ज़हर पिया है, उसका आधा हिस्सा भी किसी अन्य राजनीतिज्ञ के खाते में आया होता तो या तो वह थककर इतिहास के हाशिये में दुबक जाता या किसी अभागे पर्वतारोही की तरह हिमखण्ड के तले दबकर ढेर हो गया होता। कभी-कभी तो ख़ुद उनके 'नेता' ने उन्हें कठिन दायित्वों, दहकते अग्निकुण्डों में फेंक दिया। पंजाब की गवर्नरी, दक्षिण दिल्ली का उपचुनाव और पहली बार निर्मित इंका उपाध्यक्ष पद आख़िर अग्निकुण्ड नहीं तो और क्या थे? पर वे दमकते, अपने प्रभामंडल को नया विस्तार देते हुये बाहर आ गये।

कभी नेता के आदेश पर, तो कभी अपने उसूलों और वक्त के तकाज़ों की ख़ातिर श्री अर्जुनसिंह ने दूसरों की माँद में भी दहाड़ें भरी हैं। तीसरी बार मुख्यमंत्री बनने पर अनेक मखमली चुनावी मैदानों के होते हुये छत्तीसगढ़ के खुरदुरे खरसिया विधानसभा क्षेत्र में उतरना और भा.ज.पा. के अश्वमेध के घोड़े को पकड़ने के लिये उत्तरप्रदेश में जाकर अलख जगाना कुछ ऐसी ही साहसिक घटनाएँ रही हैं। राजनीतिक जीवन को श्री अर्जुनसिंह ने एक शाश्वत संग्राम की तरह लिया है और क़दम-क़दम पर अनूठे रणबाँकुरेपन का परिचय देकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। जहाँ अन्य लोग राजनीति करते हैं, वहीं श्री अर्जुनसिंह राजनीति 'जीते' हैं। जैसे एक सिद्ध कलाकार का अपना कला पर्यावरण होता है, एक पूर्ण कवि के जीवन में काव्यात्मकता होती है, कमोबेश उसी तरह श्री अर्जुनसिंह भी राजनीतिमय हैं। राजनीति उनके रोम-रोम में बसी है और वे अहर्निश उससे स्पंदित होते हैं। जब उन्हें एक ख़ास काम को अंजाम देना होता है, तो उनकी कल्पना का हर कोना कौंधने लगता है और सारी जमावट में एक किस्म की लयात्मकता आ जाती है। जिस तरह युद्ध में कूदने के पूर्व सेनापति बिंदु-दर-बिंदु तैयारी करते हैं, रणनीति के हर पहलू पर ध्यान देते हैं, कुछ इसी तरह की मोर्चाबंदी श्री अर्जुनसिंह भी करते हैं। उनकी राजनीति को कभी 'शिष्टाचार और साज़िश' का नाम दिया तो कभी 'प्रहार और प्रलोभन' का, लेकिन उसमें फूहड़ता के बजाय स्निग्धता रही है जिसने उसे एक ललित कला की शक्ल दी है।

राजनीति की सारी मारधाड़ और धू-धक्कड़ के बाद भी उन्होंने मर्यादाओं का सदैव ध्यान रखा है और मुठभेड़ों को सदैव व्यक्तिगत द्वेष से बचाया है। घटिया विरोध को भी संयत ढंग से लिया और कटु से कटु हमला होने पर भी शालीनता का दामन नहीं छोड़ा है। एक मर्तबा आंतरिक विरोधियों ने तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री पी.सी. सेठी को उनके ख़िलाफ़ इतना निम्न स्तरीय ज्ञापन सौंपा था कि श्री अर्जुनसिंह यह कहकर एक लंबे और बेचैन मौन

में खो गये थे कि क्या इस ओछेपन का कोई उत्तर हो सकता है? आरोपों के जवाब की उनकी अपनी शैली है। मसलन एक बार उनके प्रबल विरोधी एक वरिष्ठ केन्द्रीय मंत्री ने यह टिप्पणी कर दी थी कि श्री अर्जुनसिंह सत्ता का साँप है। वह किस बिल में से निकल आए और कब किसे डस ले, यह कहना मुश्किल है। श्री अर्जुनसिंह ने इस कटाक्ष का इन शब्दों में जवाब दिया था– "मुझे फ़क्र है कि मैं श्री राजीव गाँधी के चंदन वन और इंदिराजी की विरासत में ख़ज़ाने की पहरेदारी करने वाला साँप हूँ।"

इसी तरह म.प्र. विधानसभा में एक कटु आलोचक ने उनके पिता से जुड़े एक काण्ड का हवाला देते हुए आक्षेप किया कि ऐसे बाप के बेटे से क्या उम्मीद की जा सकती है, तो श्री अर्जुनसिंह ने बग़ैर उत्तेजित हुए यह कहकर उसे हतप्रभ कर दिया कि आपको यह विशेषाधिकार रहा होगा कि कहाँ पैदा हों पर मुझे तो वहीं जन्म लेना पड़ा, जहाँ विधाता ने चाहा था। हालाँकि राजनीतिक कुरुक्षेत्र में संहार एक धर्म है और यह भी सही है कि श्री अर्जुनसिंह अपने गले में एक लंबी मुण्डमाला डाले हुए हैं पर कोई यह नहीं कह सकता कि उन्होंने व्यक्तिगत स्तर पर किसी के साथ कोई छुद्रता की हो, उसे नुकसान पहुँचाया हो। उल्टे आम धारणा तो यह है कि उनकी दरियादिली में सबसे ज़्यादा डुबकियाँ विरोधियों ने ही लगाई और ढेरों सुविधाएँ ली हैं।

लोगों की मदद करने में श्री अर्जुनसिंह ने प्राय: सभी सत्ताधीशों को पीछे छोड़ दिया है। यदि इसका रिकार्ड रखने की परम्परा होती तो वे "गिनीज़ बुक ऑफ़ वर्ल्ड रिकार्ड्स" में स्थान पा सकते थे। जब वे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे तो मुझे उनके साथ कुछ स्थानों पर जाने को मिला ख़ासतौर से विंध्य क्षेत्र के दौरों में मैंने पाया कि लोगों द्वारा उन्हें इतनी अर्जियाँ सौंपी जाती थीं कि वे बोरों में भरकर भोपाल लाई जाती थीं और उन्हें यथासंभव निबटाया भी जाता था। सीधी में तो एक छोटे-मोटे सचिवालय का ही माहौल बन जाता था, जब उनके सचिवालय के बाबू टायपिंग मशीनें लेकर अर्जियों का सार संक्षेप तैयार करने जुट जाते थे। लोगों की समस्याएँ तुरत-फुरत हल करने और उन्हें राहत पहुँचाने के ऐसे प्रयोग कम ही हुए होंगे। परंपरागत् प्रशासनिक मानदंडों के पक्षधरों को इस तरह के नज़ारे काफी नागवार लगे थे, यह कहकर भी आलोचना की गई कि मुख्यमंत्री की इस शैली से शासकीय नियम प्रक्रियाओं और संस्थाओं का भारी अवमूल्यन हुआ है लेकिन श्री अर्जुनसिंह इसे लेकर माफ़ी की मुद्रा अपनाने के लिये कभी तैयार नहीं हुए। उनका दृढ़तापूर्वक कहना था कि मौज़ूदा व्यवस्था में त्वरित न्याय और राहत की बहुत कम गुंजाइश है। इसलिए लालफीतों के मकड़जाल से जितने ज़्यादा लोगों को जैसे भी हो उबारा जाए। एक अवसर पर तो उनके शासनकाल को चिटों और चिट्ठियों के राज की ही संज्ञा दे दी गई थी। पर ऐसे तमाम कटाक्षों की अनसुनी कर वे उसी शैली पर अडिग रहे जो उनके अनुसार फलदाई और अधिक से अधिक लोगों को राहत पहुँचाने वाली थी।

उन पर इस आशय के भी कटाक्ष हुये कि वे औघढ़दानी हैं और उनके राज में सत्ता सदावर्त में बदल गई है। पर इस संदर्भ में अक़सर यह भुला दिया जाता है कि जिसे रेवड़ी राज कहकर कोसा गया, वही मध्यप्रदेश में अब तक हुए सबसे बड़े आर्थिक और सामाजिक बदलाव का कारण बना है। यदि आज हज़ारों झुग्गीवासी अपने कब्जे की भूमि के मालिक हैं, उन्हें बेदखली का भय नहीं है तो इसके पीछे कमज़ोर वर्गों के कल्याण की सोची-समझी रणनीति और विकास तथा उत्थान की सुपरिभाषित अवधारणा थी। गाँधीजी ने स्वाधीनता आंदोलन के दौरान 'नमक' को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चेतना का प्रतीक बनाकर एक विराट सत्याग्रह खड़ा कर दिया था। श्री अर्जुनसिंह ने इस काम के लिये तेंदूपत्ते का इस्तेमाल किया और इसके बल पर मध्यप्रदेश में महाजनी सभ्यता की जड़ें हिला दीं। मानवीयता और संवेदनशीलता प्रजातांत्रिक व्यवस्था की बुनियादी शर्तें हैं। श्री अर्जुनसिंह ने सत्ता में आते ही इसे अपनी शैली का मूल स्वर बना दिया था और इस बारे में उनके आग्रह अभी भी बरक़रार हैं।

लोग विवादों में घिरने पर खरोंचें और ज़ख़्म लेकर बाहर जाते हैं लेकिन श्री अर्जुनसिंह का क़दम हर विवाद

के बाद और अधिक साबुत और ऊँचा होता रहा है। उनमें विपरीत परिस्थितियों को भी अपने अनुरूप ढालने की गज़ब की क्षमता है। जिस समय उनके विरोधी यह सोचकर खुश होते हैं कि उनके पंख कतर दिये गये हैं उसी समय वे ऐसी चाल चलते हैं कि सिमटती हुई बाज़ी हाथ में आ जाती है। सच तो यह है कि वे पिटारे में बंद उस आदमी की तरह चमत्कृत करते हैं जिस पर जादूगर सब तरफ़ से तलवारें घोंपता है पर वह बगैर किसी खरोंच के सही सलामत बाहर आ जाता है। राजनीति में कुटिलता और चतुरता नई बात नहीं है और सभी अपने-अपने तरीक़े से इनका उपयोग करते हैं पर ऐसे चमत्कार कम ही होते हैं कि कोई सुई के छेद में से ऊँट निकाल ले जाए या बालू पर दीवार खड़ी कर दे। श्री अर्जुनसिंह ने राजनीति में कई बार ऐसे तिलस्म रचे हैं। पंजाब के राज्यपाल के रूप में उनकी सफलता ऐसी ही श्रेणी में आती है। आज यह उपलब्धि भले फीकी पड़ गई हो पर जब उन्होंने 'राजीव लोंगोवाल समझौता' कराया था तो सारा देश मुग्ध हो उठा था। 'ब्लू स्टार ऑपरेशन' से क्रुद्ध होकर पद्म विभूषण लौटाने वाले प्रख्यात पत्रकार लेखक श्री खुशवंतसिंह तो इतने गद्‌गद् हो गये थे कि उन्होंने श्री अर्जुनसिंह को 'भारत रत्न' का सर्वोच्च अलंकरण देने की ही सिफारिश कर डाली थी। विरोधियों ने सोचा था कि पंजाब श्री अर्जुनसिंह का राजनीतिक पंचनामा कर देगा पर इसके सर्वथा विपरीत वे नया अमृत घट लेकर प्रकट हो गये। उन्होंने अपने लिये 'मौक़े पर तैनात राजीव का आदमी' यह मुहावरा गढ़ा और उसे सुदर्शन चक्र की तरह चलाया। जब भी उन्हें घेरने की कोशिश की गई, वे विराट से विराटतर होते गये। उनकी इन्हीं मायावी लीलाओं पर रीझकर उनके एक कट्टर विरोधी तक ने यह कह दिया था कि यह भी कमाल का शख़्स है। इसके सिर में कील भी ठोकी जाती है तो वह स्क्रू बनकर निकलती है।

मध्यप्रदेश में उनका काम-काज लोगों के सामने है पर पंजाब में उनकी गवर्नरी की नई अंतर्कथाएँ अभी भी अनकही हैं। ख़ालिस्तान के नारे में खौलते पंजाब में 'राजीव लोंगोवाल समझौता' कराने के लिये उन्होंने अपने महीन प्रयासों के इर्द-गिर्द गोपनीयता का इतना सख़्त आवरण खड़ा किया था कि अरुण नेहरू जैसे चुस्त-चतुर केन्द्रीय गृह राज्यमंत्री तक को इसकी भनक नहीं पड़ पाई। कमाल की बात यह कि सैकड़ों लोगों से अलग-अलग चर्चा की गई और हरेक को यह लगा कि चर्चा सिर्फ़ उसी से हो रही है तथा वह इस भ्रम को हफ़्तों तक सीने पर ज़िंदगी के सबसे गोपनीय सच की तरह चिपकाए रहा। खुद राजभवन में पहरा देने वाले और यहाँ तक कि विधि व व्यवस्था के तमाम सूत्र संचालित करने वालों को ही पता नहीं चल पाया कि राजभवन में रात के सन्नाटे में कौन क्या कर रहा है? यही नहीं सम्पर्क सूत्रों के आने-जाने तक के गोपनीय द्वार थे, छद्म वाहन थे और यहाँ तक कि संवाद के कोड तय थे। जेम्स बॉंड की जासूसी फ़िल्मों में ही ऐसी जमावट की कल्पना की जा सकती है। मगर श्री अर्जुनसिंह ने अपनी गवर्नरी में इसे एक दर्ज़न से भी अधिक विश्वस्त अधिकारियों व कर्मचारियों की टोली की मदद से मूर्त रूप दे दिया। पंजाब में स्थिति सामान्य करने तथा समझौते की तलाश में वे इतने लोगों से मिले, इतने पृष्ठभूमि पुलिंदे तैयार करवाये कि उन्हें कम्प्यूटरों में संजोना तक मुश्किल था। लेकिन श्री अर्जुनसिंह के कम्प्यूटरी मस्तिष्क में सब कुछ सहजता से दर्ज़ होता रहा और एक दिन उन्होंने पत्थर में से जलधारा आख़िर निकाल ही दी।

इस तरह के कामों के लिये हर पेंच को समझने, हर सूत्र को पिरोने के लिये बहुआयामी प्रतिभा, उर्वर दिमाग़, ठंडा मिज़ाज, नब्ज़ पर सही जगह जाने वाली अँगुलिया और इससे भी ज़्यादा मित्र बनाने और प्रभावित करने की कला ज़रूरी होती है। श्री अर्जुनसिंह को कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी सफलता दिलाने में इन्हीं ख़ूबियों का प्रमुख योग रहा है। वे इतने मायावी हैं कि डाल पर बैठे पंछी तक को इशारे से बुलाकर अपनी हथेली पर बैठा सकते हैं। वे उन गिने-चुने राजनीतिज्ञों में से हैं जिन्होंने राजनीति और कूटनीति का फ़ासला कम किया है। यही वज़ह थी कि जितने दिनों में लार्ड माउंटबेटन ने ताबड़तोड़ भारत का बँटवारा करा लिया, प्राय: उतनी

ही अवधि में श्री अर्जुनसिंह के पारस स्पर्श ने पंजाब को बचा लिया। बहुत कम लोगों को यह बात मालूम है कि श्री अर्जुनसिंह ने समझौते के बाद के ख़तरों को भी साफ़-साफ़ पहचान लिया था और संबंधित पक्षों को सुरक्षा के प्रति बेहद सावधानी बरतने के लिये आगाह कर दिया था। यदि इस बारे में ध्यान दिया गया होता तो पंजाब उस भयावह कग़ार पर नहीं पहुँचता, जहाँ वह आज है।

श्री अर्जुनसिंह ने पाँचवें दशक के उत्तरार्द्ध में मध्यप्रदेश की राजनीति में पहला क़दम रखा था तथा तब से लेकर अब तक देश के इस विशालतम प्रदेश के परिदृश्य पर उन्होंने लगातार अपनी उपस्थिति दर्ज की है। इस बीच कई नेता आए और चले गये। किसी का रास्ता वनवास की तरफ़ मुड़ गया तो किसी ने अन्य दलों में अस्थाई बसेरा ढूँढ लिया। कुछ ऐसे भी हैं, जिसके सार्वजनिक जीवन की सड़क ही समाप्त हो गई। इस दृष्टि से प्रदेश के पहली पंक्ति के जिन नेताओं ने काँग्रेस में रहकर अपनी समूची यात्रा तय की है और उसका क्रम नहीं टूटा है उनमें श्री अर्जुनसिंह का नाम सबसे पहले आता है। उनके बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिये एक-एक कर कई दिग्गजों ने मोर्चा संभाला और कभी-कभी तो 'अर्जुनसिंह एक विरोधी अनेक' की स्थिति भी पैदा हुई पर ऊपर से गुमसुम और ठंडे मौन और मितभाषी इस गूढ़ व्यक्ति ने अपनी रण चातुरी से हर बार सुरक्षित ही नहीं, बल्कि सुनहरे क्षितिज भी खोज लिये। मध्यप्रदेश की राजनीति में श्री अर्जुनसिंह 'बर्नार्ड शॉ' के राजनीतिक नाटक 'एपिल कार्ट' के किंग मेगनस् की याद दिलाते हैं। जिस तरह किंग मेगनस् अपने विरोधियों की सत्ता-सेव से लदी गाड़ियाँ पलटाते हैं। वही अंदाज़ श्री अर्जुनसिंह का अपने विरोधियों की योजनाओं को विफल बनाने में रहा है। आठवें दशक में श्री अर्जुनसिंह को केन्द्र में रखकर सत्ता की जो उठक-पटक मध्यप्रदेश में हुई थी, वह इस नाटक को पढ़ते ही सजीवन हो जाती है।

यह एक दिलचस्प संयोग ही कहा जाएगा कि श्री अर्जुनसिंह, पं. जवाहरलाल नेहरू के महिमामय नेतृत्व, उदार प्रजातंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के आदर्श से अनुप्रमाणित होकर राजनीति में आए किन्तु सत्ता राजनीति के पैंतरे उन्होंने पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र से सीखे। यही वजह है कि उनमें नेता और राजनीतिक ऑपरेटर दोनों के गुणधर्म समान रूप से नज़र आते हैं तथा अपने राजनीतिक अभियान में उन्होंने इनका बख़ूबी उपयोग किया है। पं. नेहरू ने उन्हें काँग्रेस में प्रवेश दिया था, जबकि पं. मिश्र ने पहली बार मंत्री बनाया था। श्रीमती इंदिरा गाँधी के भी अपने राजनीतिक जीवन के प्रारंभिक काल से ही क़रीब रहे।

मध्यप्रदेश ऊपर से बहुत उनींदा प्रदेश लगता है पर उसकी राजनीति महाठगिनी है। पैंतीस साल पुराने इस दैत्याकार प्रदेश में अब तक सिर्फ़ दो मुख्यमंत्रियों ने ही अपना कार्यकाल पूरा किया है। पहले डॉ. कैलाशनाथ काटजू और दूसरे श्री अर्जुनसिंह। मध्यप्रदेश की सत्तालोक महाभारत के इलावृत्त खण्ड के मेरू पर्वत की तरह जान पड़ती है। महाभारत में वर्णित मेरू स्वर्णिम शिखरों से सुशोभित एक ऐसा पर्वत है जिसके सब ओर भयंकर सर्प पड़े रहते हैं। इस पर सिर्फ़ शिव और उनके गण ही वास कर सकते हैं। बाकी जो भी इस पर्वत के पास आता है, निस्तेज हो जाता है। कमोबेश यही हाल मध्यप्रदेश के सत्ता सुमेरू का भी रहा है। ऐसे में यदि कोई अपवाद साबित होता है तो यही माना जाएगा कि वह सिद्ध सत्ता पुरुष है तथा कुछ अलग धातु का बना है।

ऐसा नहीं कि श्री अर्जुनसिंह ने सिर्फ़ सफलताओं के सोपान ही रचे हैं। उन्होंने पराभव के सदमे भी सहे हैं। चुरहट काण्ड पर सर्वोच्च न्यायालय की विपरीत टिप्पणी के बाद उन्हें एक मर्तबा मुख्यमंत्री पद से हटना पड़ा था। पर इसके बावज़ूद भी उनकी सक्रियता का तार नहीं टूटा। श्री अर्जुनसिंह ने सदैव इस विश्वास के साथ राजनीति की है कि 'एक सैनिक कभी मरता नहीं है, सिर्फ़ ओझल होता है'। श्री राजीव गाँधी के ज़माने में उन्होंने यह बात बार-बार रेखांकित की थी कि उनकी राजनीति श्री गाँधी के द्वार से शुरू होकर उनके ही द्वार पर ख़त्म हो जाती है। राजीवोत्तर

काल में भी वे नेहरू और गाँधी के नाम पर ही राजनीति कर रहे हैं पर उनकी दिशाएँ अपनी हैं, राहें अपनी हैं और प्रेरणाएँ भी अपनी हैं। उनके पास अब अपना आकाश और अपनी ज़मीन है। भले ही वे प्रादेशिक क्षत्रप अब भी कहे जाएँ पर वास्तव में उनका क़द राष्ट्रीय है तथा दर्ज़ा शिखर पुरुष का है। चतुरता और वैचारिकता, आदर्श और यथार्थ, सिंहासन और सलीब एक दूसरे के विपरीत शब्द हैं पर श्री अर्जुनसिंह की ख़ूबी यह है कि वे उन्हें साथ लेकर चलते हैं और इस लिहाज़ से समसामयिक राजनेताओं में सबसे अलग और सबसे विशिष्ट हैं।

☐ *मदनमोहन जोशी— प्रखर पत्रकार, लेखक, संपादक, समाजसेवी श्री मदनमोहन जोशी लेखनी के ही धनी नहीं, वाणी के भी वरद पुत्र माने जाते हैं। भोपाल में राष्ट्रीय स्तर के कैंसर हॉस्पिटल के संस्थापक अध्यक्ष के रूप में आपने समाज की चिर स्मरणीय सेवा की है।*

आज अर्जुनसिंह होने का अर्थ

विष्णु खरे
(कवि-आलोचक-संपादक)

अर्जुनसिंहजी पर पिछले चार दशकों में बहुत कुछ लिखा गया है और इसका कोई कारण नहीं दिखता कि भविष्य में भी उन पर लगातार चर्चा न हो। उनका राजनीतिक जीवन अब लगभग पाँच दशक छूने को है इसलिए उसे पूरा समेटना एक छोटी टिप्पणी में संभव नहीं है और वैसे भी हमारा सरोकार पिछले अर्जुनसिंहजी से न होकर वर्तमान और भविष्य के अर्जुनसिंहजी से होना चाहिए।

सच तो यह है कि राजीव गाँधी की मृत्यु और उसके बाद हुए 1991 के आम चुनाव के पश्चात् भारतीय राजनीति में एक नए अर्जुनसिंहजी का जन्म हुआ है। पार्टी और सत्ता की केन्द्रीय राजनीति में आने के बाद इसमें कोई शक नहीं रह गया था कि देश को एक पुख़्ता और भरोसेमंद व्यक्तित्व मिल गया है लेकिन वस्तुगत परिस्थितियाँ चलते अर्जुनसिंहजी ने हमेशा अपने व्यक्तित्व में एक संतुलन बनाए रखा। यह भी सच है कि जिस अनुशासन की दुहाई अर्जुनसिंहजी लगातार देते हैं वह इंदिरा गाँधी और राजीव गाँधी को लेकर पाखंड-रहित था। लेकिन राजीव गाँधी की मृत्यु के बाद जब सोनिया गाँधी ने किसी राजनीतिक भूमिका से इन्कार कर दिया तब काँग्रेस तथा देश के शीर्ष नेतृत्व में मुट्ठी भर लोग ही बचे जो अपनी योग्यताओं में एक-दूसरे के समतुल्य थे— शेष की क़ाबलियत या तो मीडिऑकर स्तर की है या अभी तक खोजी नहीं जा सकती है।

राजीव गाँधी की त्रासद मृत्यु के बावजूद काँग्रेस लोकसभा में बहुमत प्राप्त न कर सकी। चूँकि उत्तर भारत में भा.ज.पा. काँग्रेस का लगभग सफ़ाया कर चुकी थी इसलिए एक ऐसे नरसिंहराव को प्रधानमंत्री चुना गया जिन्हें श्री राजीव गाँधी ने टिकट के योग्य भी नहीं समझा था। दूसरी ओर, श्री राजीव गाँधी ने राजनीतिक अदूरदर्शिता और तुष्टीकरण के तहत जो शिलान्यास अयोध्या के बाबरी मस्जिद परिसर में 1989 में हो जाने दिया था उसका भयावह मनोवैज्ञानिक परिणाम यह हुआ कि काँग्रेस स्वयं को भारतीय जनता पार्टी के आगे कमतर समझने लगी। उत्तर प्रदेश चुनावों में भा.ज.पा. की जबर्दस्त विजय तथा इसके बाद 1991 के लोकसभा चुनावों में भी उसका आशा से कुछ कम किन्तु 119 सीटें ले आना काँग्रेस के अधिकांश कार्यकर्त्ताओं और नेताओं का मनोबल तोड़ने लगा। कई शीर्षस्थ नेताओं ने सर्वसम्मति की पुकार शुरू की जिसका अर्थ दरअसल भा.ज.पा. समर्थन था। हमें यह भी नहीं भूलना है कि वैसे भी काँग्रेस में कई छिपे हुए साम्प्रदायिक तत्व हमेशा से रहे हैं और पार्टी पर संकट आते ही सबसे घिघियाने या आत्मसमर्पण के लिये आमादा हो जाते हैं। राजीवोत्तर काँग्रेस के सामने दो ख़तरे थे— एक तो पार्टी का भा.ज.पा. की बाँदी बन जाने और दूसरा पार्टी के भीतर लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को शुरू न होने दिए जाने का। सोनिया गाँधी का राजनीति प्रवेश वंशवाद की दुर्भाग्यपूर्ण वापसी होती लेकिन शायद काँग्रेस पर भा.ज.पा. का हौआ उससे कम हो जाता। लोकतांत्रिक प्रक्रियाएँ तो ख़ैर अनिश्चित काल के लिये मुल्तवी हो जातीं। लेकिन श्री नरसिंहराव के नेतृत्व ने पार्टी की बाह्य और आंतरिक दोनों चुनौतियों पर एक दोमुहाँ नहीं तो अस्पष्ट

रुख़ अख़्तियार किया। लेकिन श्री नरसिंहराव के नेतृत्व ने अर्जुनसिंहजी का सही मूल्यांकन नहीं किया था। प्रधानमंत्री समझ रहे थे कि भा.ज.पा. को साथ लेकर चलते दिखने की उनकी नीति पर कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगा पाएगा। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि श्री नरसिंहराव कभी भी देश की खाँटी राजनीति में नहीं पड़े जो दरअसल देश के मध्यमार्गी उदारवाद और दक्षिणपंथी साम्प्रदायिकता के बीच के संघर्ष का ही दूसरा नाम है। इसमें वामपंथी दल उदारवाद का साथ देते हैं। दूसरे, क्योंकि दक्षिण में कभी भा.ज.पा. प्रभावशाली नहीं रही इसलिये श्री नरसिंहराव को उसका रौद्र रूप पता नहीं है। जबकि अर्जुनसिंहजी का मध्यप्रदेश आज के उत्तरप्रदेश से कहीं पहले काँग्रेस-भा.ज.पा. की रणस्थली रहा है। एक तीसरा तत्व श्री नरसिंहराव का अपना निजी धार्मिक-सांस्कृतिक रुझान हो सकता है लेकिन उसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

ऐसे में इस बात का बहुत ख़तरा था कि भा.जा.पा. काँग्रेस पर पूरी तरह से मनोवैज्ञानिक रूप से हावी हो जाती है। उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान और हिमाचल में उसकी सरकारें हैं ही और लोकसभा में भी वह प्रमुख विपक्ष है। लेकिन अर्जुनसिंह ने बहुत बड़ा जोख़िम उठाते हुए अकेले भा.ज.पा. के विरुद्ध शंखनाद किया। उन पर राजनीतिक अवसरवाद के आरोप भी लगे। उन पर और शरद पवार पर यह इल्ज़ाम अब पुराना पड़ चुका है कि वे दोनों या अलग-अलग श्री नरसिंहराव को अपदस्थ करना चाहते हैं। सच तो यह है कि श्री राजीव गाँधी के बाद धर्मनिरपेक्षता के मोर्चे पर जो निर्वात पैदा हो गया था, अर्जुनसिंहजी उसे भरने के लिये ऐतिहासिक अनिवार्यताओं के वाहक बनें।

यहाँ यह नहीं भूलना है कि 9 नवम्बर 1989 के दुर्भाग्यपूर्ण शिलान्यास के बाद मुस्लिम मानस काँग्रेस से कटता जा रहा था। ऑपरेशन ब्ल्यू स्टार तथा 1984 के बाद सिख हत्याकाण्डों के बाद काँग्रेस वैसे भी अल्पसंख्यक विरोधी मानी जा रही थी। पंजाब में अपने राज्यपाल-काल में अर्जुनसिंहजी देख चुके थे कि काँग्रेस से अल्पसंख्यकों का मोहभंग कितना ख़तरनाक रूप भी धारण कर सकता है। तुष्टिकरण की आत्महंता नीति के अंतर्गत 1991 के बाद काँग्रेस नेतृत्व पार्टी और सत्ता को साम्प्रदायिकता की गोद में धकेलने के लिये तत्पर लगता था। ऐसे में अर्जुनसिंहजी ने कुक्कड़ेश्वर, चित्रकूट, झाँसी और लखनऊ आदि के भा.ज.पा. विरोधी दौरों से न सिर्फ़ अपनी पार्टी के नेतृत्व को चेतावनी दी बल्कि निराश और कुंठा से ग्रस्त अपनी पार्टी के हज़ारों कनिष्ठ कार्यकर्त्ताओं में भी नए प्राण फूँके।

काँग्रेस के तिरुपति अधिवेशन को श्री अर्जुनसिंह के राजनीतिक जीवन का शायद सबसे महत्वपूर्ण मोड़ कहा जा सकता है। इसमें सम्पन्न काँग्रेस कार्य समिति के लोकतांत्रिक चुनावों में न केवल उन्होंने सर्वोच्च मत प्राप्त किए बल्कि अपने नेता नरसिंहराव को भी बाध्य किया कि वे भाजपा को लेकर कुछ खरी-खरी बातें करें और पार्टी की नीति को रेखांकित करें। श्री नरसिंहराव ने जब भा.ज.पा. की कुछ आलोचना की तो भा.ज.पा. ने भी गाँधीनगर अधिवेशन में न सिर्फ़ काँग्रेस बल्कि स्वयं प्रधानमंत्री पर व्यक्तिगत प्रहार किए। तब कहा गया कि काँग्रेस-भा.ज.पा. का हनीमून भंग हुआ। इस मधुयामिनी को राजनीतिक वास्तविकता के कठोर धरातल पर लाने का श्रेय सिर्फ़ अर्जुनसिंहजी को दिया जा सकता है।

काँग्रेस कार्य समिति के लोकतांत्रिक चुनावों के साथ बाद में जो दुर्भाग्यपूर्ण खिलवाड़ पार्टी अध्यक्ष ने किया उससे श्री अर्जुनसिंह (या शरद पवार) को तो कोई नुकसान नहीं हुआ, उल्टे श्री नरसिंहराव की ही देश भर में कड़ी भर्त्सना हुई और वे परिहास के पात्र भी बने। निर्वाचित प्रतिनिधियों को नामज़द प्रतिनिधियों में बदलने की मानसिकता को समझ पाना अच्छे-अच्छे राजनीतिक पंडितों के वश के बाहर था। इसे पार्टी अध्यक्ष की आशंकाग्रस्त चिंताओं का ही प्रतिफल माना गया।

श्री अर्जुनसिंह ने भा.ज.पा. के विरुद्ध जो प्रारंभिक चेतावनियाँ दी थीं वे अयोध्या की हाल की घटनाओं से और पुष्ट हुई हैं। साफ़ है कि भा.ज.पा., विश्व हिन्दू परिषद् तथा बजरंग दल आदि बाबरी मस्जिद परिसर में एक

भयावह खेल खेल रहे हैं जो देश को अकल्पनीय नुकसान पहुँचा सकता है। यह काँग्रेस तथा केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में अर्जुनसिंहजी की जागरूक और कारगर उपस्थिति ही है जो सरकार को इस साम्प्रदायिक षड्यंत्र का मुक़ाबला करने के लिये बाध्य करती रही है।

काँग्रेस में आंतरिक लोकतंत्र के बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। उसकी प्रक्रिया अभी कई राज्यों में अधूरी पड़ी है। श्री नरसिंहराव सरकार के सामने एक के बाद एक ऐसे संकट आते रहे हैं कि पार्टी मामलों पर पूरा ध्यान देना प्रधानमंत्री के लिये सम्भव नहीं है। महाराष्ट्र में श्री शरद पवार को कुछ अशक्त करने में सफलता पा ली गई है लेकिन अर्जुनसिंहजी के बढ़ते व्यक्तित्व को कम कर पाना मुश्किल रहा है।

इसका कारण यह है कि मध्यप्रदेश में लोकप्रिय और शक्तिशाली होते हुए भी अर्जुनसिंहजी का व्यक्तित्व बहुत पहले राज्य की सीमाओं के बंधन लाँघ चुका है। अभी नरसिंहराव अपनी सम्पूर्ण राष्ट्रीय छवि नहीं बना पाए हैं और श्री शरद पवार तो महाराष्ट्र और वहाँ की मराठा-शक्कर लॉबी के पर्याय माने गए हैं। इसलिए धीरे-धीरे अर्जुनसिंहजी ने वह अखिल भारतीय प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है जो एक केन्द्रीय शीर्षस्थ नेतृत्व में चाहिए।

अर्जुनसिंहजी क्या कभी प्रधानमंत्री बन पाएँगे यह इस टिप्पणी का विषय नहीं है। वे इस समय केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में एकमात्र 'प्राइम मिनिस्टर मैटीरियल' है इसमें शायद ही कोई विवाद हो। केरवा बाँध भवन और चुरहट लॉटरी की सच्चाई क्या है यह अभी न्यायालयीन है। यदि उनमें श्री अर्जुनसिंह बेदाग़ नहीं उभरते हैं तो यह देश का दुर्भाग्य होगा। फिर भी राजीवोत्तर भारत तथा 1991 के आम चुनाव के बाद की राजनीति में अर्जुनसिंहजी ने जो योगदान दिया है और पार्टी को जिस तरह से पथभ्रष्ट होने से बचाया है इसके लिए उनका ऋणी हुआ जा सकता है।

☐ *विष्णु खरे—* *कवि, आलोचक-सम्पादक श्री विष्णु खरे भारत के ख्यातनाम साहित्यकार हैं। आपने गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से लेखनी चलाते हुए कालजयी रचनाएँ प्रदान की हैं। सम्पादक और आलोचक के रूप में आप साहित्यकारों की अग्रणी पंक्ति में रहे हैं। विभिन्न राजनीतिक विषयों पर आपकी टिप्पणियाँ चर्चित रही हैं।*

निर्दलीय विधायक से केन्द्रीय नेतृत्व तक

मायाराम सुरजन
(सुप्रतिष्ठित पत्रकार)

नया मध्यप्रदेश बनने के साथ ही श्री अर्जुनसिंह की राजनीतिक यात्रा भी शुरू होती है। 1957 में 25 वर्ष से थोड़ी ही अधिक आयु में वे पहली बार विधायक होकर भोपाल आये। मैं उन दिनों नवभारत के भोपाल संस्करण में कार्य करता था।

1952 से 1956 तक विन्ध्यप्रदेश की बार-बार यात्रा के बाद भी श्री अर्जुनसिंह से मेरा कोई परिचय नहीं था। 1957 में उनके विधायक निर्वाचित होने पर परिचय हुआ भी तो कभी कोई निकटता महसूस नहीं की। यों मैं श्री अर्जुनसिंह से आयु में कोई बहुत बड़ा नहीं हूँ, फिर भी मेरा उठना-बैठना अक़्सर मुझसे उम्र में कहीं अधिक बड़े लोगों के बीच ही हुआ करता था। वे ऐसे दिन भी नहीं थे कि विधायकगण भोपाल में ही अड्डा जमाये रखें। एक तो उस समय विधायक विश्राम-गृहों का निर्माण नहीं हुआ था विधायकों को बैरागढ़ में इटालियन युद्धबंदियों के लिये बनाये गये बैरकों में ठहराया जाता था। फिर वे मेडिकल कॉलेज के छात्रावासों में ठहराये जाने लगे। दूसरे यह भी कि तब वे तबादले और पदोन्नति जैसे फिज़ूल मामलों में दिलचस्पी नहीं लेते थे। सत्र समाप्त हुआ और विधायक अपने क्षेत्र या निवास में वापस। एक बात और भी थी। नये मध्यप्रदेश के विभिन्न घटकों (महाकौशल, मध्यभारत, विन्ध्यप्रदेश तथा भोपाल) के बीच समन्वय तब प्रारंभ हो रहा था। सब घटकों के बीच तादात्म्य स्थापित होने में समय तो लगना ही था।

स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् सरदार पटेल के प्रयास से भारत के रजवाड़ों को भारतीय संघ में विलीन किया गया। मध्यभारत, विन्ध्यप्रदेश तथा भोपाल तो देशी राज्य थे ही, महाकौशल में भी 14 रियासतें शामिल की गई थीं। कुल मिलाकर 74 रजवाड़े मध्यप्रदेश की मुख्यधारा से जुड़े। रियासतों के अलावा ज़मींदारियों की संख्या तो सैकड़ों में पहुँचेगी। अपने संस्कारों के कारण मैं राजाओं तथा ज़मींदारों से दूर रहना ही पसंद करता हूँ। फिर भी एक पत्रकार होने के नाते मुझे इनमें से अनेक से परिचित होना पड़ा। श्री अर्जुनसिंह भी एक जागीरदार परिवार के वंशज हैं। इसीलिए उनसे परिचय प्राप्त करने में मुझे कोई रुचि नहीं थी।

1957 में श्री अर्जुनसिंह स्वतंत्र प्रत्याशी की हैसियत से चुनकर आये थे। बैठते भी विरोधी बेंच पर ही थे। वे न तो किसी विरोधी दल में शामिल हुए और न वैसी कोई भूमिका निबाहते। स्वतंत्र विधायक होते हुए भी वे सामान्यतः कॉंग्रेसी विधायकों जैसा आचरण करते। कम-से-कम मैंने ऐसा ही कुछ अनुभव किया। उन दिनों डॉ. कैलाशनाथ काटजू मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे। श्री अर्जुनसिंह ने एक अशासकीय प्रस्ताव विधानसभा में रखा कि मंत्रिमण्डल के प्रत्येक सदस्य को शपथ लेने के पूर्व एवं प्रतिवर्ष अपनी सम्पत्ति का ब्यौरा देना चाहिए। अशासकीय संकल्प की जो गति होती है, वही इस प्रस्ताव की भी हुई। एक उचित प्रस्ताव होते हुए भी वह विधानसभा में पारित नहीं हो सका।

प्रारंभ में मुझे उनका प्रस्ताव कुछ रहस्यमय-सा लगा। यह भी कि शायद मंत्रिमण्डल के किसी विशिष्ट सदस्य को ध्यान में रखकर तो इसे नहीं लाया गया? फिर उनके बारे में मुझे कुछ ज़्यादा जानने की उत्सुकता हुई। यह उत्सुकता

इसलिए और बढ़ी कि विधायक होने के कुछ दिन बाद ही उहोंने भोपाल में एक कॉस्मॉपोलिटन क्लब की स्थापना की। यह क्लब अन्य क्लबों की तरह मौजमस्ती के लिये गठित नहीं हुआ था। यहाँ देश-दुनिया में घट रही ताज़ातरीन घटनाओं पर बहस की जाती थी। व्याख्यान आयोजित किये जाते थे। बाहर के वक्ता मेहमान भी आमंत्रित किये जाते थे। कुल मिलाकर यह ठलुआ क्लब न होकर बुद्धिजीवियों की एक संस्था थी। कुछ ही दिनों में यह लोकप्रिय हो गयी। श्रोताओं की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। एक-दो बार मैं भी इन बैठकों में शामिल हुआ।

मालूम हुआ कि श्री अर्जुनसिंह चुरहट के जागीरदार परिवार से आये हैं। राव साहब चुरहट के चार पुत्रों और पाँच पुत्रियों में श्री अर्जुनसिंह पाँचवें हैं। कुँवर साहब नाम से संबोधित किये जाते हैं। राव साहब चुरहट विंध्यप्रदेश के प्रथम मंत्रिमण्डल के सदस्य थे। पन्ना की हीरा-खदानों की लीज के नवीनीकरण में वे भ्रष्टाचार के आरोपी पाये गये। विन्ध्यप्रदेश को पार्ट बी स्टेट के दर्जे से गिराकर चीफ़ कमिश्नर वाला "सी" राज्य दिया गया। मुख्यमंत्री कप्तान अवधेशप्रतापसिंह को मंत्रिमण्डल सहित अपदस्थ कर दिया गया। राव साहब श्री शिवप्रतापसिंह को 5 या 7 वर्ष का कारावास दिया गया। युवा विधायक श्री अर्जुनसिंह अपनी इस पारिवारिक लांछनमयी छवि के कारण एक अलग ही नज़र से देखे गये।

इस पारिवारिक छवि के बावज़ूद श्री अर्जुनसिंह का व्यक्तित्व कुछ भिन्न था। मुझे यह जानकारी भी मिली कि वे सामंती-परंपरा से बहुत कुछ हटे हुए हैं। यों वे विद्यार्थी काल से ही सार्वजनिक जीवन में रुचि लेते रहे हैं। छात्रसंघ का चुनाव लड़े हैं और एक बार इसलिए हार गए कि उन्होंने सामंती तथा सांप्रदायिक तत्वों से घिरे संगठनों की सहायता अपने चुनाव-अभियान में लेने से इन्कार ही नहीं किया, वरन् उनके ख़िलाफ़ मोर्चा भी जमाया। विचारों से वे कितने प्रगतिशील हैं, यह कह सकना तो कठिन है, यह उदाहरण ज़रूर मिलता है कि किसी ग़रीब किसान के प्रति उनके परिवार द्वारा अन्याय किये जाने पर न्यायालय में उन्होंने अपने पिता के विरुद्ध गवाही देकर अपने परिवार की अप्रसन्नता झेली थी। उस किसान की आशीष को वे अभी भी अपने सुखद संस्मरणों में एक मानते हैं।

मंत्रिमण्डल के सदस्यों द्वारा प्रतिवर्ष अपनी सम्पत्ति का विवरण देने के संकल्प ने उन्हें तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू की नज़रों में ला दिया। पंडितजी की राय में ऐसे ही उत्साही युवा लोगों को कॉंग्रेस में रहना चाहिए था। उनकी ही सलाह पर वे 1960 में कॉंग्रेस विधायक दल में शामिल हो गये। 1962 में वे कॉंग्रेस टिकट पर पुनः विधानसभा में आये। इस चुनाव में डॉक्टर काटजू पराजित हो गये थे। मंत्रिमण्डल गठित किया, नये नेता स्व. पंडित भगवंतराव मण्लोई ने। मैं नहीं जानता कि मंत्रिमण्डल में शामिल होने के लिए, उन्होंने कोई प्रयत्न किया था या नहीं, परन्तु वे मण्डलोई-मंत्रिमण्डल में नहीं लिये गये। श्री मूलचंद देशलहरा प्रदेश कॉंग्रेस अध्यक्ष थे। यह संभव है कि उनके नकारात्मक रुख़ के कारण श्री अर्जुनसिंह को स्थान न दिया गया हो।

नये मध्यप्रदेश के गठन को पाँच साल हो गये थे। सभी घटकों के राजनेता एक-दूसरे के क़रीब आने लगे थे। बदले हुए समीकरण में ग्वालियर के श्री गौतम शर्मा तथा विंध्यप्रदेश के श्री अर्जुनसिंह, पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र के क़रीब आ गये। मिश्रजी विधानसभा के सदस्य तो नहीं थे, परंतु उनके पक्ष में वातावरण तैयार किया जाने लगा। श्री श्यामाचरण शुक्ल भी राजनीति के एक उभरते हुए सितारे थे। 1956 में पं. रविशंकर शुक्ल के निधन के बाद वे 1957 में विधायक चुन लिये गये थे। उन्हें भी न तो काटजू-मंत्रिमण्डल में शामिल किया गया, न मंडलोई-मंत्रिमण्डल में। इसलिए वे भी असंतुष्टों की श्रेणी में आ गये। संयोग कि कसडोल के विधायक भी भूपेन्द्रनाथ मिश्र का निधन हो जाने से यह क्षेत्र खाली हुआ। श्री श्यामाचरण शुक्ल के प्रयास से पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र जिला तथा प्रदेश कॉंग्रेस कमेटी के सर्वसम्मत प्रत्याशी हुए। पं. जवाहरलाल नेहरू भी तब तक मिश्रजी के विरोध को भूल चुके थे। उन्होंने मिश्रजी की उम्मीदवारी का समर्थन कर मिश्रजी को विधानसभा में पहुँचा दिया।

एक ओर श्री गौतम शर्मा तथा श्री अर्जुनसिंह की युति एवं दूसरी ओर श्री श्यामाचरण शुक्ल एवं उनके सहयोगी। मिश्रजी के लिए स्थितियाँ अनुकूल होने लगीं। पूरा इतिहास यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं है। 1963 में कामराज-योजना के अंतर्गत पं. भगवंतराव मंडलोई को मुख्यमंत्री-पद से अलग होना पड़ा। मिश्रजी मुख्यमंत्री निर्वाचित हुए। अपने मंत्रिमण्डल में उन्होंने श्री अर्जुनसिंह को राज्यमंत्री के रूप में दीक्षित किया। उन्हें कृषि के साथ-साथ सूचना एवं प्रकाशन विभाग दिया गया। इस प्रकार पहली बार श्री अर्जुनसिंह सत्तागत राजनीति में आये।

अभी तक श्री अर्जुनसिंह और मेरे बीच दूर से ही राम-राम के संबंध थे। सूचना एवं प्रसारण विभाग के प्रभारी हो जाने के बाद भी मुझे उनके निकट आने का अवसर नहीं आया। 1966 में **हितवाद** के संपादक श्री ए.डी. मणि के ख़िलाफ़ मैं स्वतंत्र प्रत्याशी के रूप में राज्यसभा का उम्मीदवार हुआ। मिश्रजी ने मुझे काँग्रेस के बचत वोट दिलाने का आश्वासन दिया था, किन्तु अंतिम क्षणों में राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन, काँग्रेसाध्यक्ष श्री के. कामराज नाडर तथा केन्द्रीय मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने मिश्रजी से श्री मणि को बचत वोट देने का आग्रह किया। चुनाव-प्रचार के दौरान श्री अर्जुनसिंह को दायित्व सौंपा गया कि वे मणि साहब को लेकर काँग्रेस विधायकों से परिचित करायें। मैं भी अपने मित्रों के साथ दौड़धूप कर रहा था। चुनाव-अभियान के दौरान एक-दो जगह श्री अर्जुनसिंह से आमना-सामना भी हुआ। एक बार तो मुस्कुराकर उन्होंने मुझे नाम वापस लेने की सलाह भी दी।

1967 में मुझे श्री अर्जुनसिंह को निकट से जानने का मौक़ा मिला। मुख्यमंत्री पं. मिश्र की सहमति से मैंने पचमढ़ी में अखिल भारतीय समाचार-पत्र संपादक परिषद् का अधिवेशन आमंत्रित किया। मिश्रजी ने इस आयोजन का शासकीय दायित्व श्री अर्जुनसिंह को सौंप दिया। स्वागताध्यक्ष होने के कारण मुझे उनसे बार-बार मिलना पड़ा। मेरी अपनी व्यवस्था संबंधी चिंता तो थी ही, मिश्रजी तथा श्री अर्जुनसिंह को भी इस चिंता में सहभागी बनना पड़ा। सारे देश के 100-125 राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय पत्रों तथा न्यूज एजेंसियों के संपादकों के आवास, भोजन-प्रबंध में त्रुटि हो जाना मध्यप्रदेश शासन के लिये बदनामी का वायस बन जाता। पचमढ़ी के अलावा राज्य के दर्शनीय स्थानों का भ्रमण भी कार्यक्रम में शामिल किया गया। शहर और कल-क़ारख़ाने दिखाने की बजाये मैंने संपादकों को पातालकोट, कान्हा-किसली अभयारण्य, धुआँधार और संगमरमरी चट्टानें, हीरे की खान तथा खजुराहों ले जाना ज़्यादा ठीक समझा। इस योजना पर मिश्रजी से विस्तृत चर्चा करने की ज़रूरत नहीं पड़ी। सारी व्यवस्था श्री अर्जुनसिंह ने ही की। यह अधिवेशन इतना सफल माना गया कि कुछ वर्षों तक प्रत्येक आयोजन पर पचमढ़ी का स्मरण किया जाता रहा। श्री अर्जुनसिंह की प्रबंध पटुता को ही इसका श्रेय दिया जाना चाहिए।

CAREER COLLEGE
ACC No.
Book No.
Date
H.E.L., BHOPAL
26921

दुर्भाग्यवश 1967 के विधानसभा चुनाव में श्री अर्जुनसिंह अपने प्रतिद्वंद्वी उम्मीदवार श्री चंद्रप्रताप तिवारी से पराजित हो गये। फिर भी वे मिश्रजी के इतने विश्वसनीय हो गये थे कि उमरिया के विधायक श्री रणविजयप्रतापसिंह से त्याग-पत्र दिलाकर उन्हें इस विधानसभा क्षेत्र से पुनः निर्वाचित कराया गया। वे पुनः मंत्रिमण्डल में शामिल कर लिये गये।

1967 का वर्ष देश के राजनीतिक इतिहास में याद किया जायगा। दलबदल का सिलसिला यहीं से शुरू हुआ। उज्जैन के छात्रों पर पुलिस कार्रवाई के कारण श्रीमती विजयाराजे सिंधिया श्री मिश्रजी से रुष्ट होकर काँग्रेस से अलग हो गई थीं। विधानसभा चुनाव में काँग्रेस का क्षीण बहुमत आया। मिश्रजी मुख्यमंत्री तो हुए परंतु श्री गोविन्दनारायण सिंह आदि कुछ वरिष्ठ तथा महत्वाकांक्षी विधायकों को मंत्रिमण्डल में शामिल न करने से उनके ख़िलाफ़ असंतोष उभरा। राजमाता सिंधिया ने इसका लाभ उठाया। श्री गोविन्दनारायणसिंह तथा उनके निकटस्थ मित्रों के सहयोग से 35 विधायकों ने दलबदल किया। उन्हें भय था कि यदि संरक्षण न दिया गया तो मिश्रजी इनमें से कुछ विधायकों को तोड़ लेंगे। पं. काशीप्रसाद पाण्डे तब विधानसभा अध्यक्ष थे। उन्होंने विद्रोही विधायकों को रात्रि विश्राम के लिये अपने निवास पर आमंत्रित

कर लिया। पाण्डेजी के निवास पर चौकी बैठा दी गई। कोई भी व्यक्ति पाण्डेजी की अनुमति के बिना अंदर नहीं जा सकता था।

मैं जबलपुर में था। अचानक मुझे श्री अर्जुनसिंह का फोन मिला कि मैं तत्काल कार द्वारा भोपाल पहुँचूँ। मुझे कोई कारण नहीं बताया गया। मेरे पास कार नहीं थी उन दिनों। इसलिए ट्रेन से ही रवाना हुआ। सुबह स्टेशन से सीधा श्री अर्जुनसिंह के निवास पर पहुँचा तो मालूम हुआ कि मुझे पाण्डेजी से बात करने के लिए बुलाया गया था। मैं उनसे अनुमति प्राप्त करता कि विद्रोही विधायकों से श्री अर्जुनसिंह तथा अन्य काँग्रेसजनों को मिलने दिया जाय ताकि उन्हें समझा-बुझाकर काँग्रेस में वापस लाने का प्रयास किया जा सके। पांडेजी से मेरे संबंध बहुत अच्छे थे। फिर भी वे मुझे ऐसी कोई सुविधा देते, यह संदिग्ध ही था। संयोगवश मैं जब तक भोपाल पहुँचा, विधायकगण पाण्डेजी के निवास से जा चुके थे। संदिग्ध होते हुए भी एक प्रयास में सहायक होने के योग्य माना जाना मेरे लिए गौरव का प्रसंग था। मेरा मतलब यह नहीं कि इस सारे प्रकरण में मेरी कोई अहम् भूमिका हो सकती थी। बात कुल इतनी है कि एक नये-नये परिचय को उन्होंने (श्री अर्जुनसिंह ने) इतना विश्वास दिया था।

मिश्रजी की सरकार गिर गई। श्री गोविन्दनारायणसिंह नये मुख्यमंत्री बने। श्री अर्जुनसिंह को भी विद्रोह करने का न्यौता दिया गया था, परन्तु उन्होंने मंजूर नहीं किया। ये सारी घटनाएँ अब इतिहास के पन्नों में चली गई हैं।

यह संविद सरकार दो साल भी अपना वज़न नहीं झेल सकी। राजमाता के सामंती तथा श्री गोविन्दनारायणसिंह के लोकतांत्रिक संस्कारों में टकराव होने लगा। श्री गोविन्दनारायणसिंह त्याग-पत्र देने के लिये विवश हो गये। इसके साथ ही विद्रोही विधायक पुनः पितृ-संस्था काँग्रेस में आने के लिये उतावले हुए। 12-14 दिन के लिये सारंगढ़ नरेश श्री नरेशचंद्रसिंह मुख्यमंत्री हुए। उनकी सरकार गिर जाने पर श्री श्यामाचरण शुक्ल मुख्यमंत्री निर्वाचित हुए।

अब तक मिश्रजी तथा श्री श्यामाचरण शुक्ल के बीच काफ़ी मतभेद हो गये थे। जब शुक्लजी ने अपना मंत्रिमण्डल गठित किया तो मिश्रजी के परामर्श की ज़रूरत ही नहीं थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी तथा काँग्रेस हाईकमान ने शुक्लजी की सूची को स्वीकार कर लिया। श्री अर्जुनसिंह शुक्ल मंत्रिमण्डल में नहीं लिये गये। मिश्रजी के एक और निकटस्थ सहयोगी श्री किशोरीलाल शुक्ल भी बाहर रह गये।

श्री अर्जुनसिंह के सामान्य विधायक रह जाने पर भी मेरा-उनका संपर्क बना रहा। 1972 में आम चुनाव के पूर्व श्री शुक्ल को भी मुख्यमंत्री पद से अलग होना पड़ा। उनके स्थान पर केन्द्रीय राज्यमंत्री श्री प्रकाशचंद सेठी मुख्यमंत्री बनाये गये। सेठीजी के मंत्रिमण्डल में श्री अर्जुनसिंह शिक्षामंत्री नियुक्त हुए। इस नियुक्ति के बाद श्री सिंह ने पीछे मुड़कर नहीं देखा।

—'भाईसाहब, क्या बिना बात हुए ही चले जायेंगे?' इस वाक्य के साथ ही मैंने पीछे किसी की पदचाप भी सुनी।

यह घटना 1972-73 की है। शिक्षामंत्री के रूप में श्री अर्जुनसिंह रायपुर आये हुए थे। वे विश्रामगृह के अहाते में एक विशाल वृक्ष के नीचे किसी से बात कर रहे थे। मोतियाबिन्द के कारण कमज़ोर हुई मेरी दृष्टि और फ्लड लाइट की चकाचौंध में मैं उन्हें देख नहीं सका था। वास्तव में मुझे मालूम भी नहीं था कि वे रायपुर आये हुए हैं। मैं तो तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री प्रकाशचंद सेठी से मिलने वहाँ पहुँचा था और अपनी राह लौट रहा था। अनजाने ही हुई इस ग़लती के बाद श्री अर्जुनसिंह से बातचीत होना स्वाभाविक था। बात कुल इतनी है कि उनका ही ध्यान मेरी ओर गया। यों वे उपेक्षा भी कर देते तो मुझे क्या मालूम हो पाता।

अखिल भारतीय समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन की तैयारियों के दौरान श्री अर्जुनसिंह की कार्यप्रणाली को निकट से देखने का ही अवसर नहीं मिला, वरन् उनके निकट भी आया। वे मिश्र-मंत्रिमण्डल के विघटन के बाद लगभग पाँच

वर्ष किसी पद पर नहीं रहे लेकिन यदाकदा हमारी भेंट ज़रूर होती रही। 1972 में शिक्षामंत्री होने पर तो यह क्रम बढ़ ही गया। शिक्षा के साथ ही वे भाषा विभाग तथा सांस्कृतिक गतिविधियों से संबद्ध रहे। उस समय संस्कृति का कोई अलग विभाग था नहीं। कला-परिषद् तथा साहित्य परिषद् का कार्य शिक्षामंत्री के नाते वे ही देखते थे।

श्री अर्जुनसिंह के पास तब भी मुझे कोई खास काम नहीं होता था। यही कोई नियुक्ति, किसी का स्थानांतरण कराना या रुकवाना। बस, ऐसी ही कुछ बेगारें। परंतु मुझे याद नहीं आता कि कभी उनके पास से खाली हाथ लौटा होऊँ। बार-बार मिलने की खीज भी उनके चेहरे पर नहीं देखी और कोई काम कर देने का अहसान भी उन्होंने नहीं जताया। कभी कोई बात न भी बन सकी तो बस इतना ही कि 'भाई साहब, इसे छोड़ ही दें तो ठीक है।' उनके इस नकार में भी ऐसा महसूस नहीं हुआ कि वे मुझे टाल रहे हैं।

अपने शिक्षा मंत्रित्वकाल में उन्होंने प्रदेश की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों को तेजी दी। **उत्सव-73** के माध्यम से शासकीय स्तर पर शायद पहली बार अनेक रचनाकारों का जमघट भोपाल में आयोजित हुआ। यह परम्परा उनके मुख्यमंत्री निर्वाचित होने पर और आगे बढ़ी।

महाविद्यालयीन शिक्षा के प्रसार में श्री अर्जुनसिंह की भूमिका याद रखी जायगी। उन्होंने छोटी-छोटी जगहों पर कॉलेजों की स्थापना की। अनेक निजी कॉलेजों को शासन ने अपने हाथ में भी लिया। कॉलेजों के इस सरकारीकरण में कई समीकरण बदले भी। कई बार अधिगृहीत महाविद्यालयों के शिक्षकों को शासकीय सेवा में नियमित करने के मानदण्ड बदलने से अध्यापकों को परेशानियाँ भी हुईं। छोटे-छोटे केन्द्रों के कॉलेजों के अधिग्रहण की कठिनाइयों में सबसे प्रमुख थीं अध्यापकों का वर्गीकरण। इस प्रसंग में नीतिगत परिवर्तनों की पुनरावृत्ति के कारण कुछ लोगों को पद तथा वित्त की हानि भी उठानी पड़ी। प्रारंभ में अधिगृहीत कॉलेजों के प्राचार्यों को उसी पद पर रहने दिया गया। परिणाम यह हुआ कि वे लोग अनेक वर्षों से शासकीय कॉलेजों में काम करते रहे वरिष्ठ अध्यापकों से भी ऊपर हो गये। जब इस प्रकार के अनेक उदाहरण सामने आये तो नीति बदल दी गई। यह नयी प्रणाली भी दोषमुक्त नहीं रह सकी। कुछ वरिष्ठ प्राचार्यों को नया मानकर मात्र व्याख्याता बना दिया गया। कुल मिलाकर इन दोनों ही पद्धतियों के कुछ लोग वरिष्ठ हो गये और कुछ कनिष्ठ।

शिक्षा के इस विस्तार से भी कुछ असंतोष हुआ। इस प्रसंग की तुलना डॉ. शंकरदयाल शर्मा की शिक्षा-विस्तार नीति से की जा सकती है। डॉ. शर्मा के जमाने में अनेक हाईस्कूल खोल दिये गये। दस हज़ार रुपये का अंशदान देकर किसी भी कस्बे के नागरिक हाईस्कूल पाने के अधिकारी हो जाते थे। परिणाम यह हुआ कि शिक्षा का विस्तार अव्यवस्थित ढंग से हुआ। न विज्ञान की प्रयोगशालाएँ, न स्कूल की इमारत, शिक्षकों का अभाव, शिक्षक मिलें भी तो निवास की समस्या। कहाँ तक गिनाया जाय इन कठिनाइयों को। मैंने एक बार डॉ. शर्मा से इस प्रसंग में बात की तो उनका उत्तर भी सीधा था— "देखो भाई, यह दुर्व्यवस्था तो होनी ही है। और कुछ दिन ऐसी चलेगी भी। पहले विस्तार कर लो, फिर व्यवस्थित करते रहना।" लगभग ऐसी ही स्थिति श्री अर्जुनसिंह के जमाने में महाविद्यालयीन शिक्षा की हो गई। हर जगह कॉलेज, खेल का मैदान और पुस्तकालय की तो बात ही दूर, महाविद्यालय के लिए ढंग का भवन भी नहीं। इस दिशा में **देशबंधु** सहित अनेक अखबारों में टीका-टिप्पणी भी हुई। परंतु लगता है कि सरकार की वित्तीय मर्यादाएँ अपनी जगह बनी रहीं और अनेक बार आवश्यक ज़रूरतों की पूर्ति भी नहीं की जा सकी।

सेठीजी के कार्यकाल में शिक्षा-विभाग को श्री अर्जुनसिंह अकेले ही सम्हालते रहे। उनकी सहायता के लिए न तो कोई राज्यमंत्री था और न कोई उप-मंत्री। संभव है कि उन्होंने किसी सहायक मंत्री की ज़रूरत ही न समझी हो। इसके विपरीत जब वे मुख्यमंत्री बने तो इसी विभाग को दो केबीनेट मंत्री (श्री मोतीलाल वोरा तथा श्री बंशीलाल धृतलहरे), एक राज्यमंत्री (श्री हरिहर प्रसाद शर्मा) तथा एक उप-मंत्री (श्री उमराव सिंह) ने सम्हाला। शिक्षा-विभाग राज्य का सबसे

बड़ा नियोजक (नौकरीदाता) है। किसी भी एक व्यक्ति द्वारा इस दायित्व का निर्वाह कुछ कठिन ही है। विशेषकर, तब जब अधिकांश विधायकगण शिक्षकों के स्थानांतरण जैसे कार्यों में भी गहरी दिलचस्पी लेने लगे हों। मुझे यह भी स्मरण आता है कि उन्होंने तबादले जैसा काम भी पूरा-का-पूरा अपने अधीन ही रखा। कोई भी अधिकारी इसके लिए सक्षम नहीं रहा। प्राथमिक या माध्यमिक शालाओं के शिक्षकों के तबादलों में उन्होंने सीमित रुचि ही ली हो किन्तु हाईस्कूल तथा कॉलेजों के इस तरह के काम उन्होंने अपने हाथ में रखे। तमाम विधायकों को उन्होंने परिपत्र भी जारी कर दिये थे कि शिक्षकों (अथवा कि प्रोफेसरों) के स्थानांतरण के लिए वे (विधायक) अधिकारियों से संपर्क न करके सीधे उन्हीं से (शिक्षामंत्री) बात करें। इस तरह की सैकड़ों चिटों या आवेदनों को निबटाते हुए मैंने उन्हें देखा है। आश्चर्य यही है कि इस केन्द्रीयकरण की आवश्यकता उन्होंने क्यों समझी और बिना किसी खीज-क्षोभ के उन्होंने इस दायित्व को निबाह कैसे लिया। मैं नहीं कह सकता कि इसमें कितनों के साथ न्याय-अन्याय हुआ होगा। जो शिक्षक विधायक या शिक्षामंत्री तक पहुँच न रखता होगा, उसकी क्या दशा हुई होगी।

केन्द्रीयकरण के इस सिलसिले की चपेट में विश्वविद्यालय भी आये। श्री अर्जुनसिंह के जमाने में ही विश्वविद्यालय के एकात्म संविधान (या एकीकृत अधिनियम) की रचना हुई। इस अधिनियम का लाभ भी सोचा-विचारा गया होगा। परन्तु एक हानि यह हुई कि विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता समाप्त हो गयी। हो सकता है कि ऐसी कोई पहल सारे देश में ही की गई हो एवं प्रत्येक राज्य के सभी विश्वविद्यालयों के लिए समान नियम लागू करने से स्थानांतरण योग्य वर्ग के अभिभावकों के बच्चों को सुविधा दिलाने का प्रयास किया गया हो। फिर भी मेरी राय में विश्वविद्यालयों को शिक्षा विभाग का ही अंग बना देना उचित नहीं है।

देश में कुलपतियों (वाइस चांसलर) की प्रतिष्ठा की एक परम्परा रही है। सर गंगानाथ तथा डॉ. अमरनाथ झा (इलाहाबाद), पं. मदन मोहन मालवीय (काशी), आचार्य नरेन्द्र देव (लखनऊ), श्री ए. लक्ष्मण मुदलियार (मद्रास), श्री टी.जे. केदार (नागपुर), पं. कुंजीलाल दुबे (नागपुर-जबलपुर), डॉ. जाकिर हुसैन (जामिया-मिलिया) जैसे मनीषियों के कुलपतित्व-काल देश के शिक्षा इतिहास में गौरव के पृष्ठ रहे हैं। यह शायद विश्वविद्यालयों की स्वायत्त शासन प्रणाली के कारण ही संभव हो सका था। डॉ. अमरनाथ झा लखनऊ में न केवल राज्यपाल के अतिथि हुआ करते थे, वरन् राज्यपाल स्वयं उनसे मिलने आते थे। आचार्य नरेन्द्र देव ने जब लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति की दूसरी अवधि लेने से इनकार कर दिया तो विद्यार्थीगण रो पड़े थे और नाम गिनाए तो सर आशुतोष मुकर्जी का स्मरण आता है जो नाराज प्राध्यापकों को मनाने के लिए उनके निवास तक जाने में झिझक का अनुभव नहीं करते थे। उदाहरण कितने दिये जाये। मैं मानता हूँ कि न तो वैसे मनीषियों की अब जमात रही और ने वैसे विद्यार्थी। फिर भी विश्वविद्यालयों एवं उनके कुलपतियों की एक अलग मान-प्रतिष्ठा थी। उसे क़ायम रखा जाना सम्भव न भी रहा हो तो भी इतना तो किया ही जा सकता था कि कुलपतियों को शिक्षा सचिव या उनके अधीनस्थ अधिकारियों की ड्योढ़ी पर दस्तक देने की स्थिति पैदा न की जाती। ऐसा मात्र श्री अर्जुनसिंह ने किया हो, यह मेरा आशय या आरोप नहीं है। सारे राज्यों में यही माहौल हो गया है। दूसरी खटकने वाली बात जो मध्यप्रदेश विश्वविद्यालय एकीकृत अधिनियम में लायी गई, वह रजिस्टर्ड ग्रेजुएट्स की कोर्ट तथा एक्जीक्यूटिव कौंसिल में 5 की बजाय 3 निर्वाचित रजिस्टर्ड ग्रेजुएट्स करने का परिणाम यह हुआ कि स्नातकों की संख्या तो साल-दर-साल बढ़ती गई और उनका प्रतिनिधित्व कम हो गया। अस्तु।

इतना ज़रूर मानना होगा कि श्री अर्जुनसिंह सभी विधायकों एवं अन्य सिफ़ारिश करने वालों को प्रसन्न रखने में सफल रहे। विरोधी पक्ष के विधायकों को भी शिकायत के अवसर नहीं मिले। इसे उनकी सफलता की संज्ञा दी जानी चाहिए। 1972 से 1976 के प्रारम्भ तक श्री अर्जुनसिंह शिक्षामंत्री रहे। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा

श्री प्रकाशचंद सेठी को दिल्ली बुलाकर केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में शामिल कर लिया गया। जब श्री श्यामाचरण शुक्ल मुख्यमंत्री हुए तो श्री अर्जुनसिंह को मंत्रिमण्डल में शामिल नहीं किया गया। 1977 के चुनाव में श्री शुक्ल अपने ही क्षेत्र राजिम से श्री पवन दीवान से पराजित हो गये। विधानसभा में काँग्रेस के मात्र 84 विधायक पहुँचे। जनता पार्टी शासन काल में श्री अर्जुनसिंह प्रतिपक्ष के नेता निर्वाचित किये गये। 1977 से 1980 तक का समय उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण काल कहा जाय तो अतिश्योक्ति न होगी। सत्तापक्ष से प्रतिपक्ष की भूमिका में आ जाना एक अलग अनुभव होता है।

आपात्काल के दौरान ही स्व. श्री संजय गाँधी का आविर्भाव हुआ॥ इंदिरा जी की हार के बाद वे देश की राजनीति में पूरे जोश-खरोश से आये। एक असंवैधानिक हस्तक्षेप के रूप में उनकी छवि उभरी। उन्हें अनकान्स्टीट्यूशनल अथवा अथॉरिटी की संज्ञा दी गयी। श्री अर्जुनसिंह इसी दौर में श्री संजय गाँधी के क़रीब आ गये, बल्कि यह कहना चाहिए कि मध्यप्रदेश में उनके निकटस्थ विश्वास-पात्र बन गये। इसलिये जब 1977 में प्रतिपक्ष में बैठी काँग्रेस के सामने विधायक दल का नेता चुनने का प्रश्न आया तो श्री अर्जुनसिंह को स्वाभाविक उत्तराधिकारी माना गया। श्री श्यामाचरण शुक्ल का पराजित हो जाने के बावज़ूद, काँग्रेस दल में जोर था। वे नहीं चाहते थे कि श्री अर्जुनसिंह विपक्ष के नेता निर्वाचित हों। उन्होंने अपने उम्मीदवार के रूप में श्री तेजलाल टेंभरे को खड़ा किया। पूरे उत्तर भारत या कहना चाहिए कि हिन्दीभाषी राज्यों के पराभव के बाद काँग्रेस हाईकमान एवं विशेषकर श्रीमती गाँधी तथा श्री संजय गाँधी का पाया कमजोर हुआ। वे राज्यों में अधिक कुछ हस्तक्षेप करने की स्थिति में नहीं रहे। ख़ासतौर पर लोकसभा चुनाव हार जाने के कारण उनकी वैसी मनःस्थिति ही नहीं रही, तथापि श्री अर्जुनसिंह अपने ही दम पर काँग्रेस विधायक दल के नेता निर्वाचित होने के साथ-साथ प्रतिपक्ष के नेता के रूप में भी सफल रहे।

मैंने विधानसभा में उन्हें कभी उत्तेजित होते हुए नहीं देखा। पहले जैसे विरोधी दल की कोई हंगामी मुद्रा भी उन्होंने नहीं अपनाई। उन्होंने तथा काँग्रेस प्रतिपक्ष ने लगभग एक अनुशासित एवं तर्कसंगत विरोध का ही परिचय दिया। शायद यह कहना ही ठीक होगा कि सत्ता में रहकर काँग्रेस दल हमेशा बचाव का रोल अदा करते रहने के कारण विपक्ष के साँचे में ढल ही नहीं सका। फिर भी श्री अर्जुनसिंह पूरी तरह जागरूक रहते थे। वे पूरी तैयारी के साथ अपना पक्ष प्रस्तुत करते थे। न कहीं असंयम, न कहीं कोई उद्वेग। यहाँ तक कि जब श्री वीरेन्द्रकुमार सकलेचा के पुत्र की गतिविधियों पर चर्चा हुई तब भी कमर के नीचे कोई वार नहीं किया। सामान्यतः सत्तापक्ष उन तर्कों को झेल नहीं पाता था।

1978 श्री अर्जुनसिंह के लिए फिर परीक्षा की घड़ी लेकर आया। 1977 में ही काँग्रेसाध्यक्ष श्री ब्रह्मानंद रेड्डी तथा श्रीमती गाँधी में मतभेद उभर आये। काँग्रेस के अन्य नेतागण भी 1977 के आपातकाल तथा श्रीमती गाँधी के कार्यकलापों के आलोचक हो गये थे। श्री यशवंतराव चव्हाण आदि शीर्षस्थ नेताओं ने खुलकर आपातकाल की ग़लतियों को स्वीकार किया। बम्बई में काँग्रेस अधिवेशन में स्थिति कुछ इतनी प्रतिकूल हो गई कि श्रीमती गाँधी ने एक बार फिर काँग्रेस के विघटन की ओर क़दम उठाया। 1 जनवरी 1978 को काँग्रेस पुनः विभाजित हो गई। एक ब्रह्मानंद रेड्डी काँग्रेस और दूसरी इंदिरा काँग्रेस। इंदिराजी ने अपने समर्थकों का अधिवेशन दिल्ली में आयोजित कर अपना पक्ष मज़बूत किया। बताया जाता है कि बम्बई अधिवेशन से अधिक प्रतिनिधि दिल्ली में शामिल हुए।

स्वाभाविक है कि मध्यप्रदेश में भी यह संकट उपस्थित हो। संगठन के स्तर पर इस राज्य में भी काँग्रेस का विभाजन हो गया। विधायक दल जिस काँग्रेस के साथ रहे वही अधिकृत दल हो सकता था। विधायक विश्रामगृह में विधायकों की बार-बार बैठकें हुईं। यह तय हुआ कि अभी तेल की धार देखी जाय। पूरी स्थिति का जायज़ा लेने पर ही निश्चित किया जाय कि मध्यप्रदेश काँग्रेस और विधायक दल को किस काँग्रेस का साथ देना होगा। श्री अर्जुनसिंह दिल्ली की स्थिति का आकलन करने के लिए अधिकृत किये गये। उनके लौटकर आने पर ही कोई फैसला किया जाना तय रहा।

इधर घटनाचक्र ने अलग किस्म का मोड़ ले लिया। विधायकों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा रंग लायी। श्री कृष्णपाल सिंह इंदिराजी के दिल्ली अधिवेशन में शामिल हुए। इतना ही नहीं, इंदिराजी ने उन्हें अपनी काँग्रेस की कार्यकारिणी समिति में मनोनीत कर लिया। दिल्ली में श्री अर्जुनसिंह ने जब देखा कि श्री कृष्णपालसिंह इंदिरा काँग्रेस विधायक दल के नेता भी निर्वाचित हो सकते हैं तो उन्होंने बहुत ही कूटनीतिपूर्वक दिल्ली में ही मध्यप्रदेश काँग्रेस विधायक दल के इंदिरा काँग्रेस में सम्मिलित होने की घोषणा कर दी।

इस घोषणा से मध्यप्रदेश में खलबली मच गई। तय तो यह हुआ था कि जो भी फैसला करना होगा, श्री अर्जुनसिंह के दिल्ली से लौटने पर सभी विधायक मिल-बैठकर सोचेंगे। यह इकतरफा घोषणा उस निश्चय के विरुद्ध थी। जब श्री अर्जुनसिंह भोपाल लौटे तो उनके क़दम की आलोचना की गई। श्री श्यामाचरण शुक्ल समर्थक गुट इस निर्णय से सहमत नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि काँग्रेस दल भी विभाजित हो गया। जहाँ तक मुझे स्मरण है कि श्री सिंह के 44 तथा मूल काँग्रेस के साथ 40 विधायक रहे। इस प्रकार विरोधी बेंचों पर विधायक दल के नेतृत्व की कमान श्री अर्जुनसिंह के हाथ में ही रही।

इस कमान को सम्हाले रहना कोई आसान काम नहीं था। विधायक दल का दूसरा गुट अपना वर्चस्व क़ायम करने के लिए प्रयासरत था। यों विधानसभा में दोनों गुटों में कोई रस्साकशी नहीं चल रही थी परन्तु विधायक-विश्रामगृह में हलचल बदस्तूर जारी थी। राजनीति किस तरह करवट लेती है, ये घटनाएँ उसका उदाहरण है। इन हलचलों का केन्द्र श्री मोतीलाल वोरा का कक्ष हुआ करता था। मैं जानता हूँ कि श्री वोरा प्रत्यक्ष इस झंझट से मुक्त रहना चाहते थे। वे एक सामान्य एवं निर्विवाद विधायक बने रहना चाहते थे। लेकिन संकोचवश वे मना भी नहीं कर सकते थे। श्री श्यामाचरण शुक्ल जब कभी भोपाल पहुँचते, अपने विश्वासी विधायकों को वोराजी के कमरे में ही आमंत्रित करते। सर्वश्री कृष्णपाल सिंह, श्री श्रीनिवास तिवारी, तेजलाल टेंभरे, बसंतराव उइके आदि इस अलग गुट के महत्त्वपूर्ण स्तंभ थे। मुश्किल यह थी कि केन्द्र तथा राज्यों में जनता पार्टी के पारस्परिक द्वंद्व भी उभरना शुरू हो गये थे। आभास यही होता था कि जनता पार्टी बिखराव के कग़ार पर खड़ी है। किसी भी दिन विस्फोट हो सकता है। ऐसी हालत में क्या काँग्रेस विधायक दल को दो गुटों में विभाजित रहना चाहिए? दोनों का अलग-अलग अस्तित्व साफ़ नज़र आते हुए भी, दूसरा गुट इंदिराजी से एकदम अलग होने को तैयार नहीं था। श्यामाचरणजी यदि विधायक होते तो शायद यह स्थिति न बनती। उनकी पराजय के कारण विधायकों पर उनका प्रभाव भी सीमित हो गया था।

उहापोह इसी तरह चलता रही। श्री अर्जुनसिंह का गुट तो ऐलानिया तौर पर इंदिरा काँग्रेस के साथ था ही, परन्तु दूसरा गुट अनिश्चय की स्थिति में बना रहा। इसी बीच जनता पार्टी सरकार का पतन हो गया। श्री चरणसिंह के प्रधानमंत्री होने पर मध्यावधि चुनाव की घोषणा ने मध्यप्रदेश काँग्रेस विधायक दल के अंतिम विभाजन को रोक दिया। चिन्ता यह रही कि काँग्रेस को एकजुट रहकर लोकसभा का चुनाव लड़ना है। लोकसभा के परिणामों पर ही विधानसभा में काँग्रेस का भविष्य निर्भर करेगा। यह भी स्पष्ट होने लगा था कि इंदिराजी की छवि की पुनर्स्थापना हो रही है। दूसरी काँग्रेस अस्तित्व में भले ही बनी रहे, उसका भविष्य कम-से-कम इस राज्य में तो संदिग्ध ही है। परिणामस्वरूप श्री अर्जुनसिंह की राज़ी या नाराज़ी, जैसी भी स्थिति रही, काँग्रेस विधायक दल के नेता बने रहे।

1980 के विधानसभा चुनाव में काँग्रेस प्रत्याशियों का चयन करते समय सभी गुटों का ध्यान रखा गया। उन दिनों मुख्यतः तीन गुट ही सक्रिय थे। एक श्री विद्याचरण शुक्ल का, दूसरा श्री प्रकाशचन्द सेठी का और तीसरा श्री अर्जुनसिंह का। दो माह पूर्व हुए लोकसभा चुनाव में काँग्रेस को 351 स्थान मिलने के बाद समानान्तर काँग्रेस के कुछ नेतागण भी इंका में शामिल हो गये या प्रवेश के इच्छुक थे। श्री श्यामाचरण शुक्ल भी उनमें से एक थे। इंका में उनके अनेक समर्थक होते हुए भी कोई अलग गुट तैयार नहीं हो सकता था। उनके समर्थक अधिकांशतः विद्याचरण जी के

साथ हो लिये थे। शेष सेठीजी के साथ। तीनों गुटों के सभी प्रत्याशियों को टिकट दे सकना सम्भव नहीं था। यों तो कई लोगों को निराश होना पड़ा किन्तु जो लोग छोड़ दिये गये, उनमें श्री किशोरीलाल शुक्ल प्रमुख थे। शुक्ल बंधुओं तथा किशोरीलालजी के बीच राजनाँदगांव को पृथक् जिले का दर्ज़ा मिलने के बाद मतभेद शुरू हो गये थे। छत्तीसगढ़ के अन्य जिलों को भी विभाजित करने की योजना पर सेठीजी के कार्यकाल में विचार किया जा रहा था। किन्तु तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी की सलाह पर यह विचार स्थगित कर दिया गया था। बताया जाता है कि विद्याचरणजी ने श्रीमती इंदिरा गाँधी से आग्रह किया था कि वे मुख्यमंत्री श्री सेठी को कोई ऐसी कार्रवाई करने से रोकें।

पं. किशोरीलाल शुक्ल सामान्यतः सेठीजी के दल से सम्बद्ध माने जाते थे। एक ओर श्री विद्याचरण शुक्ल उनसे अप्रसन्न थे तो श्री अर्जुनसिंह भी उनसे कोई निकटता अनुभव नहीं करते थे। दूसरी ओर राजनाँदगाँव से लोकसभा में हाल ही में चुने गये श्री शिवेन्द्रबहादुरसिंह भी विधानसभा चुनाव के समय किशोरीलाल शुक्ल के विरुद्ध हो गये। लोकसभा की तरह ही मध्यप्रदेश में भी काँग्रेस भारी बहुमत से विधानसभा में चुनकर आयी किन्तु मुख्यमंत्री के चुनाव के समय सभी गुट अपने दावे पेश करें, यह तो अपेक्षित ही था। अपेक्षाकृत सेठीजी का दल कमज़ोर था। विधायक प्रत्याशियों के चयन के समय वे अपनी बेटी के विवाह में व्यस्त थे। अपने लोगों के चयन की ओर वह उतना ध्यान नहीं दे सके। इसलिए उनका अपना कोई उम्मीदवार नहीं था। श्री विद्याचरण शुक्ल ज़रूर सक्रिय थे। वे अपने उम्मीदवार को तो मुख्यमंत्री निर्वाचित कराने के लिए कृतसंकल्प थे ही, यह भी चाहते थे कि श्री अर्जुनसिंह का चयन किसी भी तरह न हो। 1977-80 के समय में प्रतिपक्ष के नेता रहने के कारण मुख्यमंत्री पद के लिए श्री अर्जुनसिंह का दावा अपनी जगह दुरुस्त था। इस चुनाव में एक और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति अपनी भूमिका निभा रहा था। वह थे स्व. श्री संजय गाँधी। श्री विद्याचरण शुक्ल तथा श्री अर्जुनसिंह दोनों ही श्री संजय गाँधी के क़रीब थे। दोनों को ही अपने-अपने पक्ष के समर्थन का पूरा विश्वास था। विद्याचरण गुट से श्री शिवभानु सोलंकी को उम्मीदवार घोषित किया गया। श्री सोलंकी काफ़ी वरिष्ठ विधायक तो थे ही, अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधि होने के कारण उन्हें केन्द्र का समर्थन मिलने की आशा भी रही होगी। काँग्रेस विधायक दल के नेता (मुख्यमंत्री) के निर्वाचन के अवसर पर केन्द्र से राज्यमंत्री तथा काँग्रेस कोषाध्यक्ष श्री सीताराम केसरी एवं राज्यमंत्री श्री एच.के.एल. भगत काँग्रेस हाईकमान के प्रतिनिधि होकर आये।

सभी काँग्रेस विधायकों से राय ली गयी। उन्होंने अपने-अपने उम्मीदवारों का नाम काग़ज़ की चिट पर लिख कर हाईकमान के प्रतिनिधियों को सौंप दिया। यह राय जानने के बाद दोनों ने श्री अर्जुनसिंह के पक्ष में बहुतमत होने की घोषणा कर दी। इसके पश्चात् काँग्रेस विधायक दल की विधिवत् बैठक हुई। श्री शिवभानु सोलंकी ने श्री अर्जुनसिंह का नाम प्रस्तावित किया। नियमानुसार उनके नाम का समर्थन भी किया गया। इस तरह श्री अर्जुनसिंह दल के नेता एवं मुख्यमंत्री निर्वाचित हुए। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि वास्तव में श्री सोलंकी को श्री अर्जुनसिंह से अधिक मत प्राप्त हुए थे। किन्तु श्री सिंह के गतिशील व्यक्तित्व तथा इंदिराजी के प्रति एकाग्र निष्ठा के कारण उन्हें ही दल का नेता घोषित किया गया। संभवतः श्रीमती गाँधी के निर्देश से ही यह किया गया। श्री सोलंकी अधिक मत पाने के बावज़ूद मुख्यमंत्री का दायित्व ठीक से सम्हाल पायेंगे या नहीं, यह शंका बनी रहने के कारण श्री अर्जुनसिंह के पक्ष में ही इंदिराजी का मन बना होगा। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि श्री विद्याचरण शुक्ल की तुलना में श्री अर्जुनसिंह इंदिराजी के निकट आ गये थे। इंदिराजी को यह संदेह हो गया था कि 'किस्सा कुर्सी का' प्रकरण में श्री शुक्ल की भूमिका उनके अनुकूल नहीं रही। वस्तुस्थिति जो भी हो, श्री अर्जुनसिंह ने मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। श्री शिवभानु सिंह सोलंकी उप मुख्यमंत्री बनाये गये।

शुक्ल-गुट को यह शिकायत बनी रही कि उनके उम्मीदवार के साथ न्याय नहीं किया गया। उनके एक प्रमुख विधायक ने मुझसे कहा था कि यदि खुला चुनाव होता तो असलियत सामने आ जाती। हो सकता है कि उनके तर्क

में कोई वज़न हो। परन्तु अब मुख्यमंत्री का सीधा चुनाव होता ही कहाँ है? यदि एक से अधिक उम्मीदवार हुए तो विधायकों की राय ली जाती है। फिर जिसके पक्ष में अधिक मत पड़े, उसे दूसरे उम्मीदवार प्रस्तावित-समर्थित कर देते हैं।

शुक्ल-गुट के दबाव का इतना परिणाम तो निकला ही कि श्री शिवभानु सिंह सोलंकी को उप-मुख्यमंत्री नियुक्त किया गया। उन्होंने वे सभी सुविधाएँ चाहीं जो एक मुख्यमंत्री को प्राप्त होती हैं। उन्हें अलग से प्रेस अधिकारी भी दिया गया और यह संयोग भी देखिए कि मार्च 1985 में जब श्री मोतीलाल वोरा मुख्यमंत्री हुए तो सोलंकीजी मंत्रिमण्डल में तो शामिल किये गये, उप-मुख्यमंत्री नहीं बनाये गये। श्री अर्जुनसिंह के बारे में लगातार यह अफवाहें चलती रहीं कि वे कुछ दिनों के ही मुख्यमंत्री हैं। श्री विद्याचरण शुक्ल ने तो उन्हें अस्थाई मुख्यमंत्री तक कह दिया था। श्री प्रकाशचंद सेठी भी इस परिणाम से खुश नहीं थे। कुल मिलाकर स्थिति यह कि बहुसंख्यक विधायक अन्य गुटों के और मुख्यमंत्री अल्पसंख्यक दल के। इस अवस्था में अपनी राह बना लेना आसान नहीं था। 1972 में लगभग ऐसी ही हालत सेठीजी की थी। 1975 तक तो वे दिल्ली वापस जाने का विचार ही बनाते रहे। जब उन्होंने अपनी शक्ति कायम कर ली तो 1976 में अचानक दिल्ली बुला लिये गये। वे अनिच्छा से ही गये। दूसरा कोई विकल्प नहीं था। श्री अर्जुनसिंह की स्थिति भी अधिक भिन्न नहीं रही। अंतर इतना ही रहा कि उन्होंने पाँच वर्ष पूरे किये। नये मध्यप्रदेश के इतिहास में पहली बार किसी मुख्यमंत्री ने अपनी पाँच साला कार्यावधि पूरी कर 1985 में दोबारा शपथ ली।

श्री अर्जुनसिंह का यह कार्यकाल चुनौतियों से भरापूरा था। एक ओर राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता और दूसरी ओर प्रशासनिक दायित्व। इस द्वंद्वात्मक परिवेश को उन्होंने किस तरह झेला, इसका आकलन कुछ समय बाद ही हो सकेगा।

इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि मुख्यमंत्री बनने के पूर्व ही उन्होंने कुछ कल्पनाएँ की थीं। अब उनके क्रियान्वयन का अवसर उन्हें मिला। अपने शिक्षामंत्री के दौर में वे शासन में संस्कृति विभाग को अस्तित्व में लाना चाहते थे। जैसा कि अक़्सर होता आया है, उनकी इस योनजा में वल्लभ भवन (सचिवालय) के नीति-निर्धारक अधिकारी आड़े आ गये। अनेक तरह की आपत्तियाँ और कठिनाइयाँ बतायी गईं। मुख्यमंत्री सेठीजी भी इस विभाग की स्थापना के पक्ष में थे। आखिर केन्द्र में ऐसा ही विभाग कार्यरत है तो राज्यों में क्यों नहीं? किन्तु अफ़सराना अड़ंगेबाजी के कारण यह विचार सफल नहीं हो सका। मुख्यमंत्री की कमान सम्हालते ही श्री अर्जुनसिंह फिर इस दिशा में सक्रिय हो गये। कोई डेढ़ महीने में ही संस्कृति विभाग का स्वतंत्र अस्तित्व हो गया। सरकारी तंत्र का यह विद्रूप सामान्य समझ से परे है। भाषा, कला, साहित्य आदि क्षेत्र इस विभाग के अंतर्गत आ गये। उसके नियम-उपनियम भी बना लिये गये। यों तो किसी भी अख़बारनवीस को मुख्यमंत्री से मिलने के अवसर आते ही रहते हैं किन्तु मेरी उनकी मुलाक़ातें अख़बारी कम, संस्कृति विभाग के कार्य से अधिक हुआ करती थीं। **मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भारत-रूस सांस्कृतिक संघ, प्रगतिशील लेखक संघ** आदि संस्थाओं से जुड़े होने के कारण मुझे श्री अर्जुनसिंह से अक़्सर मिलना-जुलना पड़ता था, क्योंकि कभी किसी साहित्यकार को आर्थिक सहयोग चाहिए तो किसी को मासिक वृत्ति, कभी किसी को चिकित्सा का प्रबंध होना है तो कभी किसी संस्था का कोई सम्मेलन-अधिवेशन। मुझे स्मरण नहीं आता कि कभी उनके पास से निराश लौटा होऊँ। कभी कभार तो मैं स्वयं इस संकोच का अनुभव करता था कि कहीं उनकी उदारता का दुरुपयोग तो नहीं कर रहा हूँ।

दरअसल उदारता में उनके संस्कार सामंती ही हैं। यह जानते हुए भी कि उन्हें छला जा रहा है, किसी की सहायता करने में उन्होंने झिझक नहीं बताई। कुछ घटनाओं का स्मरण कर मुझे आज भी आश्चर्य होता है कि किसी ने अपनी या अपने परिजनों की झूठी बीमारी के नाम पर, तो किसी ने किसी और गर्दिश के निमित्त आर्थिक सहायता ले ली।

लाभ उठाने वाले इस धोखे में रहे कि शायद उन्हें कुछ नहीं मालूम। कुछ मित्रों ने तो बार-बार सहायता लेने में भी हिचक महसूस नहीं की। उनकी इस उदारता के कारण मैं खुद भी दो-चार बार परेशानी में पड़ गया था। जिन साहित्यकार की चिकित्सा के लिए मैंने तीन सौ रुपये दिलाना भी उचित नहीं समझा, उनके सीधे आवेदन पर पंद्रह सौ रुपये दे दिये गये। ऐसे भी प्रसंग आये कि जहाँ दो सौ रुपये की मासिक वृत्ति पर्याप्त होती, उन्होंने सीधे पाँच सौ रुपये बाँध दिये। उलाहने मुझे सुनने पड़े कि मैंने उन साहित्यकार बंधु को सहायता दिलाने की उचित पहल नहीं की। इस प्रकार की कमेटियों का सदस्य होने के नाते से अर्थाकाँक्षी लोगों को जवाब मुझे देना पड़ता था। सभी लोग तो सीधे उनके पास नहीं पहुँच सकते थे।

मुख्यमंत्री-पद पर आसीन होते ही उन्होंने अनुभव किया कि शालेय विद्यार्थियों में पठन-पाठन की रुचि बढ़नी चाहिए। इस हेतु अच्छे ग्रंथों के चयन तथा क्रय की योजना का उन्होंने केन्द्रीयकरण किया। किताबें तो पहले भी ख़रीदी जाती थीं। सामान्यतः शिक्षा विभाग के संभागीय अधीक्षकों को राशि आवंटित कर दी जाती थी। किताबों का चयन वहीं अपने मनमाने ढंग से कर लेते थे। केन्द्रीय तथा जिला पुस्तकालय भी स्वतंत्र रूप से ख़रीद करने के अधिकारी थे। पुस्तकों की गुणवत्ता से अधिक दृष्टि मिलने वाले कमीशन पर हुआ करती थी। इस दोष से मुक्ति पाने के लिए केन्द्रीय ख़रीद की योजना बनाई गई। विशेषज्ञों की एक कमेटी गठित की गई फिर भी यदाकदा आती रहीं। विधानसभा में भी इस मुद्दे को ज़ोरशोर से उठाया जाता रहा।

मैंने सुझाव दिया कि पुस्तकों के चयन तथा क्रय के लिए गठित कमेटी का स्वरूप यदि विस्तृत कर दिया जाये तो शायद ये शिकायतें ख़त्म हो जायेंगी। वे भी शिकायतों से आजिज आ चुके थे। एकाध प्रकरण तो उन्होंने लोकायुक्त तक को भेज दिया था। उन्होंने मेरे सुझाव को परखना ठीक समझकर पाँच सदस्यों की एक व्यापक समिति का गठन कर दिया। जब उसके अध्यक्ष या संयोजक की नियुक्ति का प्रश्न उठा तो मेरा नाम सुझाया गया। मैंने सामान्य सदस्य रहकर काम करना उचित समझा। कोई वरिष्ठ आई.ए.एस. अधिकारी यदि अध्यक्ष नियुक्त होगा तो लोक शिक्षण अधिकारियों पर उसका प्रभाव स्वभावतः अधिक होगा। मेरे पद ग्रहण करने से अधिक महत्त्व योजना के सफल होने में है। अंततः पूर्व शिक्षा सचिव श्री एस.सी. बेहार की अध्यक्षता में यह कमेटी गठित की गई। मुझे संतोष है कि अपने तीन वर्ष के कार्यकाल में एकाध न्यस्त स्वार्थ के अलावा इस कमेटी के कार्य की कोई आलोचना न तो जनस्तर पर हुई, न विधानसभा में। अफ़सोस यही है कि पिछले पाँच वर्षों में इस योजना को निरस्त कर दिया गया। एक अन्य अधिकारी ने मुझे बताया कि पत्रकारों की आपसी प्रतिद्वंद्विता में यह योजना खटाई में पड़ गई। इस योजना को अन्य राज्यों में भी प्रकारांतर से लागू किया गया है। पुस्तकों की ख़रीद के कारण मध्यप्रदेश के अनेक रचनाकारों को प्रकाशक मिले। अनेक ने अखिल भारतीय ख्याति भी अर्जित की।

साहित्यकारों को मिलने वाली मासिक सहायता केवल सांकेतिक न होकर उचित राशि की हो, इस ओर भी उनका ध्यान गया। मासिक वृत्ति की कम से कम राशि रुपये 75 से बढ़ाकर 100 रुपये कर दी गई और एक-दो साल बाद इसे 150 रुपये कर दिया गया। साहित्य परिषद्, कला परिषद् तथा अन्य स्वायत्त साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं के कार्यकलापों में भी पर्याप्त उन्नति हुई। परंतु सबसे अधिक उल्लेखनीय है **भारत-भवन** का निर्माण तथा **कालिदास अलंकरण** एवं **शिखर सम्मानों** की स्थापना।

अनेक आलोचनाओं का केन्द्र होते हुए भी **भारत-भवन** का निर्माण अपने-आप में एक विशाल उपलब्धि है। श्री अर्जुनसिंह के संकल्प के बिना यह योजना मूर्तरूप नहीं ले सकती थी। **भारत-भवन** के कार्यकलापों से एक विशिष्ट तबके में असंतोष रहा, तथापि यह स्वीकार करना होगा कि अन्य राज्यों के लिए यह संस्थान एक प्रेरणास्रोत भी बन गया है। सच तो यह है कि साहित्य और कला के क्षेत्र में मध्यप्रदेश का यश अपनी सीमा के बाहर पहुँचाने का श्रेय

प्रथमतः श्री अर्जुनसिंह को ही दिया जाना चाहिए। वस्तुतः सांस्कृतिक-साहित्यिक समाज के प्रति श्री अर्जुनसिंह विनयशील ही रहे है। स्व. मुक्तिबोध पर चलचित्र-निर्माण की स्वीकृति उनके इस पक्ष को पुष्ट करती है। नये रचनाकारों को प्रोत्साहित करने की दिशा में भी उनका सहयोग सराहनीय रहा है। मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित किशोर रचनाकारों के शिविरों को वित्तीय सहायता प्रदान करने में उन्होंने अपनी संवेदनाशीलता का परिचय दिया है।

यह भी एक संयोग था कि 1980 के बाद देश में कुछ बड़े सांप्रदायिक उत्पात हुए। अहमदाबाद, बड़ोदग, तथा मुरादाबाद की पुनरावृत्ति मध्यप्रदेश में न हो पाये, इसके प्रति भी वे सतर्क रहे। मुरादाबाद और मेरठ के दंगों की शुरुआत होते ही उन्होंने राज्य के पत्र-संपादकों तथा कौमी एकता समिति की बैठकें आयोजित कीं। पुलिस विभाग को भी पूरी सतर्कता बरतने का निर्देश दिया गया। उन्होंने इंदौर को छोड़कर कहीं सांप्रदायिक शक्तियों से समझौता नहीं किया। इंदौर के हिन्दू-सिख झगड़े के संदर्भ में उन्हें केन्द्रीय सरकार के रुख़ का ध्यान ज़रूर रखना पड़ा। पत्रकारों को समय-समय पर विश्वास में लेकर वे स्थितियों का न केवल जायजा लेते थे, वरन् उन्हें नियंत्रित रखने के प्रति जागरूक भी थे।

जैसा कि मैंने पहले लिखा है, श्री अर्जुनसिंह को काँग्रेस के भीतर ही काफ़ी विरोध का सामना करना पड़ा था। इस स्थिति पर उन्होंने धीरे-धीरे काबू पाया। विधायकों में से ही मंत्रिमण्डल गठित करना एक सामान्य प्रक्रिया है। कुछ विधायकगण शासकीय निगमों के अध्यक्ष नियुक्त कर दिये गये। मंत्रिमण्डल में किये गये हेरफेर की चर्चा मैं बाद में करूँगा। काँग्रेस संगठन की स्थिति जैसी सब राज्यों में थी वैसी ही मध्यप्रदेश में भी थी। न संगठन के चुनाव, न स्थानीय संस्थाओं के। दूसरी ओर काँग्रेसजन पद-प्राप्ति की इच्छा में भोपाल के चक्कर लगाते रहते थे। नये-नये काँग्रेसियों में भी महत्वाकांक्षाएँ जागृत हो गई थीं। श्री अर्जुनसिंह ने इस असंतोष को शांत करने का तरीक़ा भी ढूँढ लिया। उन्होंने सभी सहकारी उपक्रमों, जैसे जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक, भूमि विकास बैंक और ऐसी अन्य संस्थाओं में संचालक मंडल मनोनीत कर दिये। दो साल बाद जब विधिवत् चुनाव हुए तो इनमें से अधिकांश लोग निर्वाचित होकर भी आ गये। इसी प्रकार राज्य से लेकर विकासखण्ड स्तर तक उन्होंने बीस-सूत्रीय कार्यक्रम समितियों के नामांकन कर दिये इससे हर स्तर के कार्यकर्त्ताओं को संतुष्टि तो हुई ही, उनमें से अधिकांश उनके समर्थक भी हो गये। इस तरह पूरे प्रदेश में उन्होंने अपने अनुकूल वातावरण बना लिया। दूसरी ओर हर स्थान पर काँग्रेस कार्यकर्त्ता न तो बहुत चरित्रवान थे और न संगठन के प्रति निष्ठावान। अनेक का उद्देश्य तो मात्र पद प्राप्त करना ही था। फिर भी काँग्रेस के मंच को अनेक युवा कार्यकर्त्ता मिले, यह तो मानना ही होगा। इतनी सारी नियुक्तियों में श्री विद्याचरण शुक्ल तथा श्री प्रकाशचन्द सेठी के गुटों के लोगों का शामिल हो जाना अनिवार्य था। परिणाम यह हुआ कि असंतोष कम होने के साथ ही जय-जयकार करने वालों की एक सेना ही तैयार हो गई।

"सर्वहारा वर्ग को शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए हमें बाधा की हर दीवार लाँघना है। यदि वह लाँघी न जा सके तो उसे तोड़ देना है और इस दिशा में पहला दायित्व मेरा है।"

ये पंक्तियाँ हैं मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह के उस भाषण की हैं जो उन्होंने 26 अक्टूबर 1980 को जबलपुर में आयोजित अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के द्वितीय राष्ट्रीय अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष के नाते दिया था। निश्चय ही देश के 14 राज्यों से आये हुए प्रतिनिधि रचनाकार किसी भी मुख्यमंत्री से इस प्रकार के वक्तव्य की अपेक्षा नहीं रखते थे। ख्याल यही था कि भले ही वे स्वागताध्यक्ष हों, भाषण वैसी ही लीक वाला देंगे जैसा कि सामान्यतः मुख्यमंत्री देते आये हैं। रचनाकारों को वैसे ही कुछ उपदेशात्मक उद्‌बोधन कि उन्हें यह लिखना चाहिए, वह करना चाहिए, यह नहीं करना चाहिए, आदि। आशा के विपरीत ये विचार सुनकर साहित्यकार श्रोताओं को एक आश्चर्यजनक अनुभूति हुई। कोई मुख्यमंत्री इतना सहज और संवेदनशील हो सकता है, इसकी किसी ने कल्पना तक न की थी।

दूसरे दिन जनयुग (दिल्ली) के संपादक श्री एच.के. व्यास, रचनाकार श्री राजीव सक्सेना आदि अनेक मित्रों ने बधाइयाँ दे डालीं।

'मायारामजी, क्या घुट्टी पिला दी थी आपने श्री अर्जुनसिंह को?'

सच्चाई यह है कि मैं ख़ुद भी उनसे ऐसे वक्तव्य की उम्मीद नहीं कर रहा था। बात यों हुई कि प्रगतिशील लेखक संघ के जबलपुर अधिवेशन में कुछ प्रारंभिक कठिनाइयाँ अनुभव की गईं। मध्यप्रदेश शासन से वित्तीय सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से मैं मुख्यमंत्री से मिला। उनसे यह भी आग्रह किया कि देश के विभिन्न भाषा-भाषी लेखकों के इस सम्मेलन का स्वागताध्यक्ष होना वे स्वीकार कर लें। मेरा ख्याल था कि डेढ़-दो माह बाद होने वाले किसी कार्यक्रम में शामिल होने की स्वीकृति देने के बजाय वे 'समयाभाव है, अभी से कैसे कह सकता हूँ' जैसी टालमटोल करके प्रसंग टाल देंगे। मैं निश्चित था कि वित्तीय सहायता तो वे दे ही रहे हैं, ऐसा कोई औपचारिक आग्रह अस्वीकार भी हो सकता है। लेकिन उन्होंने यह कहकर कि 'इट्स ए रेयर ऑनर' (यह एक दुर्लभ सम्मान है) मुझे आश्चर्यचकित कर दिया। सम्मेलन के आयोजक भी द्विविधा में पड़ गये। ऊपर से तो मुझसे किसी ने कुछ नहीं कहा, परंतु भीतर-ही-भीतर मेरी इस अनधिकार चेष्टा के ख़िलाफ़ कानाफूसी हुई। इसकी ख़बर भी मुझे लगती रही। यह भी नहीं किया जा सकता था कि श्री अर्जुनसिंह को सम्मेलन में न आने की सलाह दे दूँ। ख़ैर थी कि उद्घाटन का न्यौता देने के बजाय मैंने उनसे सम्मेलन में स्वागताध्यक्ष होने का निवेदन किया। आगंतुक अतिथि साहित्यकारों ने भी इस संयोजना को संदेह की दृष्टि से ही देखा।

श्री अर्जुनसिंह आये और ठीक समय पर आये। वे अपना वक्तव्य लिखकर लाये थे। वहीं उन्होंने पढ़ा। ऐसे किसी साहित्यिक आयोजन में किसी मुख्यमंत्री को स्वागताध्यक्ष के रूप में देखना एक नया अनुभव था। विभिन्न राज्यों से आये 350 रचनाकारों के लिए भी उनका वक्तव्य सुनने के बाद तो सारा वातावरण ही बदल गया।

वस्तुतः एक सामंती परिवार में जन्म लेने के बावज़ूद उनके मन में कमज़ोर वर्ग के लिए एक मर्मांतक पीड़ा मैंने देखी है। एक बार चर्चा के दौरान मैंने कुछ विशिष्ट अधिकारियों के संबंध में बात चला दी। हुआ यह था कि हरिजन-आदिवासी कल्याण विभाग में उन्होंने कुछ ऑफिसरों के तबादले किये थे। सवर्णों की जगह पर इन विभागों में उन्होंने हरिजन-आदिवासी अधिकारियों की पदस्थापना की थी। मेरी राय थी कि ऐसे अधिकारी अपने वर्ग का हितचिंतन नहीं कर पाते। वस्तुतः पदों पर आने के बाद वे अपने आपको अपने वर्ग का ब्राह्मण मान लेते हैं। मैंने ऐसे कुछ उदाहरण भी दिये। वे जैसे आहत हो गये। बोले, 'भाई साहब, आप जिस विचारधारा के हैं, मैं भी सोचता वैसा ही हूँ। हरिजन-आदिवासियों के लिए बनाई गई योजनाओं का पूरा लाभ उन्हें इसलिए नहीं मिला कि सवर्ण अधिकारी इन योजनाओं को उन तक पहुँचने नहीं देते। यह दूसरा प्रयोग कर रहा हूँ। शायद लाभ उन तक पहुँच जाय।'

मुझे उनके स्वर में कहीं बनावटीपन नज़र नहीं आया। उनकी राय है कि प्रतिस्पर्धा अथवा सवर्णों के अधिकारों में कमी आने के भय से सवर्ण-अधिकारी निम्न वर्ग को ऊपर उठाने में सच्चे मन से सहायक नहीं होता। वह किसी-न-किसी बहाने इन योजनाओं के क्रियान्वयन में बाधक ही होता है। शोषित-दलित वर्ग को नागर-जीवन में सम्मानजनक स्थान दिलाने की इस भावना को मैं अस्वीकार नहीं कर सका।

वास्तव में श्री अर्जुनसिंह ने आगे चलकर ऐसे क़दम भी उठाये जिनमें उनके इस लक्ष्य की पुष्टि होती है। देश में पहली बार साइकल-रिक्शा चालकों को स्वामित्व का अधिकार दिलाने की व्यवस्था भी की गयी। रिक्शा-मालिकों द्वारा ऐसी किसी योजना का विरोध तो होना ही था। उससे भी निबटा गया। इस योजना के क्रियान्वयन से आठ वर्ष बाद भी यह कहना मुश्किल है कि सभी रिक्शा चालक अपने-अपने रिक्शे के मालिक हो गये। अनेक नगरों में अभी भी उन्हें गैरिज मालिकों से रिक्शे किराये पर लेने पड़ते हैं। परंतु एक शुरुआत हुई। उसके सफल होने में थोड़ा समय तो लगना ही था।

एक और महत्त्वपूर्ण क़दम उन्होंने उठाया झुग्गी-झोपड़ियों को भी मालिकाना हक देना। भोपाल ही नहीं, हर शहर में जहाँ-कहीं जगह मिली, निर्धन वर्ग ने झोपड़ियाँ खड़ी कर लीं। इतना ही नहीं, कहीं तो, बल्कि अधिकाँशतः कुछ दादा किस्म के लोग सरकारी नज़ूल की ज़मीन पर अतिक्रमण करके झोपड़ियाँ खड़ी कर लेते हैं और फिर, उन्हें छोटे तबके के लोगों को किराये पर उठा देते हैं। किराया समय पर न दे सकने वालों पर जो अत्याचार होते हैं, उनका वर्णन तो कोई भुक्तभोगी ही कर सकता है। एक अलग किस्म की जागीरदारी-ज़मींदारी के उन्मूलन का इस प्रकार सूत्रपात हुआ।

इस योजना के अंतर्गत जिसकी झोपड़ी जहाँ थी, उस जमीन का पट्टा उसे दे दिया गया। उन झोपड़ियों में बिजली के लट्टू की भी नाममात्र शुल्क पर व्यवस्था कर दी गई। झुग्गी-झोपड़ीवासियों को प्रदत्त इस सुविधा से सारे नगरों की नगर विकास-योजनाएँ (मास्टर-प्लान) अधर में लटक गयीं या यों कहना चाहिए कि फेल हो गईं। आप भोपाल में सचिवालय की ओर जाइए और देखेंगे कि सड़क के दाँये-बाँये सैकड़ों-झुग्गियाँ बनी हुई हैं। सबके पास पट्टे हैं। उन्हें अब हटाया भी नहीं जा सकता। वहीं नया विधानसभा भवन बन रहा है। बहुमंज़िला भवनों के बीच झोपड़ियों का तालमेल नगर के सौंदर्य को धूमिल करता है। यह भी शिकायत है कि बिजली के एक पाईंट को ही इस तरह व्यापक कर लिया गया है कि रेडियो, टी.वी. तक चलने लगे हैं। यह दृश्य केवल भोपाल में ही नहीं, मध्यप्रदेश के हर नगर में देखा जा सकता है। इन झुग्गी-झोपड़ीवासियों को अन्यत्र स्थान देकर पुनर्वास देना भी शायद सम्भव नहीं हुआ। ये लोग आसपास के घरों-दफ़्तरों में ही काम करते हैं। दूर जाने के लिए तैयार नहीं हैं।

जिस तरह मैंने श्री अर्जुनसिंह से अफ़सरों के बारे में चर्चा की, उसी तरह उनके मंत्रिमण्डल पर भी बातचीत हुई। प्रारंभ में मंत्रिपरिषद् का आकार उन्होंने छोटा ही रखा था सभी मंत्री सुयोग्य थे, यह मान लेना कठिन है, तथापि मैंने कुछ लोगों के बारे में प्रचलित चर्चा का ज़िक्र किया। वे सुनते रहे। न कोई टिप्पणी की, न पूछताछ। शायद वे भी इन बातों से परिचित रहे हों। इसी सिलसिले में मैंने कुछ-कुछ लोगों को मंत्रिमण्डल में शामिल करने का सुझाव दिया। यों तो मैंने विन्ध्य तथा महाकौशल क्षेत्र के कई विधायकों के नाम प्रस्तावित किये, परंतु छत्तीसगढ़ के तीन नामों पर जोर दिया। वे हैं— श्री बी.आर. यादव, श्री स्वरूपचंद जैन और श्री मोतीलाल वोरा। उन्होंने श्री यादव तथा श्री जैन के संबंध में जो कुछ कहा, उसे यहाँ बताने की ज़रूरत नहीं है। श्री वोरा के बारे में जो चर्चा हुई, उसका संदर्भ देना ठीक होगा :

— 'भाई सा, आपके वोराजी के बारे में चाहे जो विचार हों, वे हैं सेठीजी के आदमी।'

— 'लोग तो मुझे भी सेठीजी का आदमी समझते हैं।'

— 'ठीक है। क्या मैं आपको जानता नहीं?'

— 'यह ठीक है कि वोराजी और सेठीजी के बीच बहुत अच्छे सम्बन्ध हैं। कोई सम्बन्ध अकारण तोड़ा भी नहीं जाता। पर उन्हें किसी के साथ या विरोध में मान लेना भी ठीक नहीं। वास्तव में वे समय को पहचानते हैं। उसी के अनुसार आचरण करते हैं।'

— 'आप कहते हैं तो विचार करूँगा।'

बात आई-गई हो गई। इसी बीच श्री मोतीलाल वोरा ने श्री अर्जुनसिंह या उनके शासन पर एक सप्ताह के अंतराल में दो वक्तव्य दे दिये। अख़बारों में इनका प्रकाशन होने पर मुझे श्री अर्जुनसिंह का संदेश मिला। यही कि वे वक्तव्य मैंने भी देख लिये होंगे। मैंने यह स्वीकार किया कि दोनों ही वक्तव्य मेरी नजर से गुज़रे हैं। मैंने अपनी ओर से उन्हें यह आश्वासन भी दे दिया कि अब ऐसे वक्तव्य ज़ारी नहीं होंगे। एक-दो दिन बाद ही भोपाल जाते समय मैंने श्री मोतीलाल वोरा से इस सम्बन्ध में चर्चा की। उन्होंने कहा कि मैंने उनकी ओर से जो आश्वासन श्री अर्जुनसिंह को दिया

है, उसका पालन किया जाएगा। एकाध महीने बाद ही मंत्रिमण्डल का विस्तार किया गया, वोराजी राज्यमंत्री नियुक्त किये गये। मैं यह नहीं कह रहा कि श्री वोरा के सिफ़ारिशियों में, मैं अकेला था। उनके समर्थकों में विधानसभा अध्यक्ष श्री यज्ञदत्त शर्मा और कुछ और लोग भी थे। मैं इस सारे प्रकरण में अपना कुल योगदान इतना ही मानता हूँ कि वोराजी द्वारा दिये वक्तव्यों के संदर्भ में मुझे कोई भूमिका निबाहने योग्य समझा गया। श्री वोरा के साथ ही श्री बी.आर.यादव भी राज्यमंत्री बनाये गये। मेरा ख़्याल है कि उन्हें श्री श्रीकांतजी वर्मा के सुझाव पर लिया गया। श्री श्रीकांतजी राज्यसभा सदस्य तो थे ही, वे तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के क़रीब के व्यक्ति माने जाते थे। स्वाभाविक है कि अर्जुनसिंहजी उनके प्रस्ताव को मान्यता देते।

यह उचित ही था कि श्री अर्जुनसिंह राजनीतिक स्तर पर भी शांति तथा स्थायित्व चाहते थे। श्री प्रकाशचंद सेठी तथा श्री विद्याचरण शुक्ल से विवाद होते हुए भी उन्होंने इन दोनों के गुटों के समर्थक विधायकों को मंत्रिमण्डल में स्थान दिया। श्री श्रीनिवास तिवारी, श्री चंद्रप्रभाष शेखर तो पहली ही खेप में शामिल कर लिये गये थे, कुछ अन्य वरिष्ठ सहयोगियों को शासकीय निगमों में भी स्थान दिया गया। श्री अमोलकचन्द छाजेड़ गृह-निर्माण मण्डल के अध्यक्ष नियुक्त किये गये। श्री गुलाबचन्द तामोट को राज्य भण्डार निगम का दायित्व सौंपा गया। श्री तेजलाल टेंभरे को केबीनेट मंत्री, श्री विट्ठलभाई पटेल, श्री बालकवि बैरागी, श्री दुर्गादास सूर्यवंशी को राज्यमंत्री। ऐसी ही कुछ और नियुक्तियाँ।

निश्चित ही ये नियुक्तियाँ राजनीतिक स्तर पर शांति अर्जित करने के लिए की गई होंगी। मैं इसलिए ऐसा मानता हूँ कि थोड़े समय बाद कोई आधार लेकर इन व्यक्तियों को अपने पदों से त्याग-पत्र दे देना पड़ा। इनमें से कुछ के ख़िलाफ़ तो सचमुच ही भ्रष्टाचार की शिकायतें थी और कुछ को हटाने का जैसे बहाना मिल गया। जिन लोगों को पदमुक्त किया गया, उनमें श्रीनिवास तिवारीजी भी एक हैं।

श्री चंद्रप्रभाष शेखर (राज्यमंत्री) तथा श्री तारासिंह वियोगी (श्रममंत्री) को इसलिए पृथक् होना पड़ा कि क्रमशः इंदौर तथा ग्वालियर के नगर निगम चुनाव में काँग्रेस पराजित हो गई थी। श्री अमोलकचन्द छाजेड़ को गृह-निर्माण मण्डल द्वारा निर्मित घटिया आवासगृहों की शिकायत पर त्याग-पत्र देना पड़ा। श्री तामोट के इस्तीफ़े का कोई कारण कम-से-कम मेरी जानकारी में नहीं आया। तेजलाल टेंभरे तथा बालकवि बैरागी भी अधिक समय तक मंत्री नहीं रह सके। यही मानकर चलना चाहिए कि या तो श्री अर्जुनसिंह की स्थिति इतनी मज़बूत हो गई कि उन्हें अब विपक्षी गुटों के सहयोग की ज़रूरत नहीं रही अथवा कि इन गुटों ने अपनी सिंह-विरोधी गतिविधियों में कोई कमी नहीं आने दी।

यों संगठन स्तर पर श्री अर्जुनसिंहजी ने अपनी क्षमता में यथायोग्य वृद्धि कर ली थी। राज्य में काँग्रेस के परम्परागत प्रभाव क्षेत्र में भी उन्होंने अपना वर्चस्व स्थापित करने के प्रयास किये। छत्तीसगढ़ में क्रांतिवीर नारायणसिंह (वीरनारायणसिंह नहीं, जैसा कि अक़्सर अख़बारों में प्रकाशित होता रहा है) तथा पं. सुंदरलाल शर्मा का महत्त्व रेखांकित कर उन्होंने शुक्ल-बंधुओं का प्रभाव सीमित किया। यों जिला गजट में भी नारायणसिंह को जनद्रोही कहा गया है। उन्होंने अकाल पीड़ितों के लिए सम्पन्न लोगों के अनाज भण्डार लुटवा दिये थे, किन्तु यह मान्यता ब्रिटिश शासन की देन है। अर्जुनसिंह जी ने इन्हें सामंती तथा जमाखोर शक्तियों के विरुद्ध जनता का मसीहा मान लिया।

दूसरी ओर तमाम सहकारी संस्थाओं में संचालक मण्डल नियुक्त किये गये। विकासखण्ड स्तर से राज्य स्तर तक बीस-सूत्रीय कार्यक्रम समितियाँ गठित की गईं। परिणामस्वरूप अनेक काँग्रेस कार्यकर्त्ताओं की संतुष्टि हुई। काँग्रेस के संस्थागत चुनावों के अभाव में इन नियुक्तियों से बहुत-से कार्यकर्त्ताओं को महत्त्व मिल गया। इससे प्रकारांतर में काँग्रेस संगठन मज़बूत होने के साथ ही इनमें से अधिकांश कार्यकर्त्ता श्री अर्जुनसिंह के निजी प्रभाव में आकर उनके समर्थक हो गये।

1981 में श्रीमती इंदिरा गाँधी ने **भारत-भवन** का उद्घाटन किया था। इसी अवसर पर कवितासमय अंतर्राष्ट्रीय तथा शिखर-सम्मानों की परम्परा प्रारंभ हुई। अतः यह स्वाभाविक था कि सामान्य कार्यकर्ता के साथ ही संस्कृति, कला तथा साहित्य से जुड़े हुए बुद्धिजीवी वर्ग में श्री अर्जुनसिंह की प्रतिष्ठा बढ़ी। स्वयंसेवी साहित्यिक संस्थाओं (म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन समेत) को श्री सिंह द्वारा दिये गये प्रोत्साहन का जिक्र मैं कर ही चुका हूँ। पत्रकारिता क्षेत्र में अपने राजनीतिक गुरु पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र से भिन्न आचरण रहा उनका। मिश्रजी एक-दो को छोड़कर पत्र या पत्रकारों की परवाह नहीं करते थे। परंतु श्री अर्जुनसिंह ने उन्हें अपनी पहुँच से बाहर नहीं रखा। भोपाल तथा इंदौर में प्रेस कॉम्प्लेक्स की स्थापना हुई। सस्ते दरों पर प्रेस-संचालकों को भवन बनाने के लिए भू-खण्ड उपलब्ध हुए। छोटे से लेकर बड़े समाचार-पत्र तक किसी न किसी रूप में उनसे उपकृत हुए। पत्रकार, वे मुद्रा चाहे जैसी धारण किये हों, सामान्यतः उनको समर्थन ही देते रहे। विधानसभा के विरोधी पक्ष को भी उन्होंने प्रभावित कर रखा है, इस प्रकार की चर्चा की कमी न थी। 1981 में एक वायुयान-दुर्घटना में श्री संजय गाँधी के निधन के बाद श्री विद्याचरण शुक्ल का पक्ष और भी कमज़ोर हो गया। श्रीमती इंदिरा गाँधी ने श्री शुक्ल को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल से पृथक् कर दिया। दूसरी ओर श्री अर्जुनसिंह श्रीमती गाँधी के अधिक निकट आ गये।

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि स्थितियाँ उनके अनुकूल होती चली गईं। बुद्धिकौशल से उन्होंने जनजीवन के हर क्षेत्र में अपनी पकड़ सिद्ध करने की अद्‌भुत क्षमता प्रदर्शित की। झुग्गी-झोपड़ीवासियों, मध्यमवर्गीय कार्यकर्त्ताओं, बुद्धिजीवियों तथा पत्रकारों तक उन्होंने अपना प्रभाव-क्षेत्र विस्तृत किया। उनकी सौम्यता तथा विनयशीलता ने भी उन्हें लोकप्रिय बनाने में अपना रोल अदा किया।

विधानसभा में उठाये गये विवाद को भी बड़ी सफ़ाई से दूसरी तरफ़ मोड़ देते थे। पुस्तक-ख़रीद में अनियमितता या पक्षपात का आरोप लगा हो अथवा केरवा बाँध पर ज़मीन ख़रीदने के मुद्दे उठाये गये हों, उन्होंने तुरंत ऐसे मामले लोकायुक्त को सौंप देने की घोषणा कर विवाद को शांत कर दिया। मुख्यमंत्री पर लगाये गये आरोपों की जाँच भी लोकायुक्त की परिधि में लाये जाने के सुझाव को उन्होंने तत्काल स्वीकार कर लिया। अपने ऊपर लगाये गये आक्षेपों का भी सटीक उत्तर देने में उन्होंने शायद महारत हासिल कर रखी है। इस संबंध में मुझे एक घटना याद आ रही है। पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र मुख्यमंत्री थे। श्री गुलाबचंद तामोट तब विरोधी बेंच पर बैठते थे। बिना लाग-लपेट के बेलौस बात करने में (आप चाहे तो मुँहफट कह लीजिए) उनकी सानी नहीं है। एक बार उन्होंने श्री अर्जुनसिंह के पिता को लेकर कोई प्रसंग छेड़ दिया। अन्य कोई मंत्री अपने पितृत्व पर आँच आते देखकर उत्तेजित हो गया होता। परंतु श्री अर्जुनसिंह अविचलित रहे। उन्होंने बहुत मासूमियत से जवाब दे दिया, 'अध्यक्ष महोदय, तामोटजी को अपना पिता चुनने का अधिकार मिला होगा। मुझे तो नहीं मिला।' ऐसा कटु व्यंग्य सुनकर तामोटजी का निस्तेज हो जाना स्वाभाविक ही था। विधानसभा में बिना किसी तिलमिलाहट के ऐसे चुटीले उत्तर उनसे अक्सर सुने जा सकते थे— सत्ता में भी और प्रतिपक्ष के नेता की हैसियत से भी।

मैं नहीं कह सकता कि श्री अर्जुनसिंह स्वभाव से ही मितभाषी, हैं या यह आदत उन्होंने सत्ता में आने के बाद डाल ली। कम-से-कम मुझे उनकी वाचालता के दर्शन नहीं हुए। वे दूसरे की बात बहुत धैर्यपूर्वक सुनते हैं। खुद कम बोलते हैं। कभी तो सिर्फ हूँ-हाँ में ही। इससे उनका मन समझ पाना कठिन हो जाता है। खुलकर बातचीत न हो सकने के कारण शायद उनसे मन की बात कहने में भी लोगों को संकोच हो जाता होगा अनेक बार तो उनके विश्वस्त ऑफिसर भी संकट में पड़ गये हैं। हूँ-हाँ का आख़िर क्या मतलब निकाला जाये? बहुत कहा जाये तो बस इतना ही कि 'देख लीजिए।' काम बन गया तो कोई बात नहीं, बिगड़ जाये तो जवाबदारी अधिकारी की।

श्री अर्जुनसिंह की लोकप्रियता का एक कारण यह भी था कि वे शायद ही कभी किसी काम के लिए मना करते

हों। एक बार तो एक विधायक महोदय उनसे एक चपरासी की नियुक्ति का आदेश भी ले गये। यह आदेश शिक्षा-उपसचिव के कार्यालय में इधर-उधर हो गया तो विधायक महोदय ने पूरे दफ्तर को सिर पर उठा लिया। इस प्रकार के आदेश सचिवालय में एक कहानी बन गये थे। उच्चाधिकारियों को अक्सर यह कहते सुना जा सकता था कि पहले मुख्यमंत्री के हस्ताक्षर देखने को छोटा अधिकारी तरसा करता था, अब (अर्जुनसिंह के जमाने में) हर टेबल पर दो-चार चिटें देखी जा सकती हैं। कभी-कभार मैंने इन चिटों की दुर्गति होती भी देखी है। मैंने एक प्रथम श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण स्वर्ण पदक प्राप्त उम्मीदवार को व्याख्याता नियुक्त करने का आग्रह किया। मुख्यमंत्री कार्यालय से इस संबंध में आदेश जब शिक्षामंत्री श्री मोतीलाल वोरा के कार्यालय में पहुँचा तो एक अवर सचिव ने ही उसे यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि इस विषय में कोई स्थान रिक्त नहीं है। मुख्यमंत्री कार्यालय को भी वैसी सूचना दे दी गई। यह पता तो मुझे बाद में चला कि मुख्यमंत्री ने स्वयं सचिवों को कह रखा कि वे तो स्थिति से अभिज्ञ रहते हैं। अतः उनके आदेशों का पालन यथा आवश्यकता ही किया जाय। फिर भी मुख्यमंत्री का आदेश तो आदेश ही होता है। अफसरों के लिए ऐसे क्षण धर्मसंकट के हो जाते हैं।

इसी सिलसिले में मुझे पुस्तक-चयन समिति में कुछ अनुभव हुए। कोई पहुँच (या गैर-पहुँच) वाला लेखक भी उनसे 1,000 प्रतियाँ खरीदने का आदेश लाने में सफल हो जाता था। चयन समिति में हम पाँच सदस्य थे। चार शासकीय सेवारत और एक अशासकीय मैं। सामान्यतः मुख्यमंत्री के निर्देश स्वीकार करने की नीति हमने तय की थी। फिर भी एक-दो किताबें ऐसी भी थीं जिन्हें खरीदना मुझे उचित जान नहीं पड़ा। समिति के सदस्यों की राय जानकर मैंने मुख्यमंत्री से बात करने की ज़िम्मेदारी ले ली। जब उनके सामने समस्या रखी तो उन्होंने बेहिचक राय दे दी, 'आप अपने विवेक से तय कर लिया करें। कोई पीछे पड़ जाता है तो मुझसे मना नहीं किया जाता।'

मैंने कहा, 'यह भी खूब रही। श्रेय आप लें और नाराजी हम लोग।' वे केवल मुस्कुरा दिये।

वैसे भी मैं कह ही चुका हूँ कि रचनाकारों के प्रति उनके मन में एक सम्मानजनक स्थान है। श्री हरिशंकर परसाई को शिखर सम्मान मिला। अस्वस्थता के कारण परसाईजी कहीं आ-जा नहीं सकते थे। जब श्री अर्जुनसिंह का जबलपुर दौरा हुआ तो यह उन्होंने ही याद रखा कि यह सम्मान परसाईजी को वे स्वयं जबलपुर में ही दें। श्री अर्जुनसिंह की इस संवेदनशील भावना ने परसाईजी को अभिभूत कर दिया तो आश्चर्य क्या!

गैस-त्रासदी से तो भोपाल अभी तक नहीं उबर सका। कहा जाता है कि गैस पीड़ित जनता तो उसका दुष्प्रभाव भोग ही रही है, अगली पीढ़ी पर भी उसका प्रभाव पड़ने की आशंका कम नहीं है। एक ओर लोकसभा तथा दो माह बाद विधानसभा चुनाव सिर पर और दूसरी ओर गैस-प्रभावित व्यक्तियों को राहत पहुँचाना। काम दुरूह होते हुए भी श्री अर्जुनसिंह ने दोनों ही क्षेत्रों में अपनी कार्यक्षमता प्रदर्शित की। इस प्रकरण में उनका 'विश्वास अभियान' उल्लेखनीय है। गैस-दुर्घटना के बाद यूनियन कार्बाइड फैक्टरी बंद कर दी गई थी, किन्तु एक टंकी में ज़हरीली गैस अभी भी बाक़ी थी। इस गैस को प्रभावहीन करना जरूरी था। निर्माता कम्पनी तो तैयार थी, किन्तु जनमत विपक्ष में था। प्रभावहीन करते समय गैस फिर कुछ कहीं हादसा पैदा न कर दे। फैक्टरी के आसपास के निवासी एक बार फिर भागने की तैयारी करने लगे। सत्ता-पक्ष तथा विपक्ष के नेतागण भी इस आशंका से परे नहीं थे। किन्तु श्री अर्जुनसिंह ने घोषणा की कि इस गैस को प्रभावहीन करने की प्रक्रिया के समय वे स्वयं फैक्टरी स्थल पर उपस्थित रहेंगे। उन्होंने प्रतिपक्ष के नेता श्री सुन्दरलाल पटवा को भी इस अवसर पर उपस्थित रहने के लिए राजी कर लिया। गैस निष्प्रभाव करने की प्रक्रिया को 'विश्वास अभियान' की संज्ञा दी गई। दोनों नेताओं की उपस्थिति में टंकी खाली की गई। निश्चय ही ऐसा करने के पूर्व श्री अर्जुनसिंह, इस प्रक्रिया में सफल होने की आश्वस्ति प्राप्त कर चुके होंगे, तथापि एक भयावह घटना के बाद ऐसा कोई निर्णय लेना साहस के बिना सम्भव नहीं था।

1-2 दिसम्बर 1984 को गैस-काण्ड घटित होना और दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में लोकसभा के चुनाव मध्यप्रदेश के लिए चुनौती थी। भोपाल लोकसभा क्षेत्र को छोड़कर शेष 39 क्षेत्रों में चुनाव हुए। राज्य के इतिहास में पहली बार काँग्रेस सभी सीटों पर जीती। यही परिणाम राजस्थान, गुजरात आदि से भी आये किन्तु गैस-त्रासदी के कारण मध्यप्रदेश की स्थिति भिन्न मानी जानी चाहिए। श्रीमती इंदिरा गाँधी की नृशंस हत्या भी इस सफलता का एक कारण बना, इस तथ्य को भी ओझल नहीं किया जा सकता।

श्री अर्जुनसिंह पर उनके प्रशासनकाल में जातिगत पक्षपात करने के आरोप भी लगाये गये। विन्ध्य-क्षेत्र में एवं खास तौर पर बघेलखण्ड में ब्राह्मण-ठाकुर के समुदायों के बीच तो इस तरह का व्यवहार आम माना जाता है। अतः इस प्रकार के आरोप श्री अर्जुनसिंह पर लगाये जाना अस्वाभाविक नहीं है। प्रदेश काँग्रेस में जगतपालसिंह को सचिव तथा बीस-सूत्रीय कार्यक्रम समिति में श्री के.एस. ठाकुर को प्रचार सचिव नियुक्त किये जाने से यह विवाद कुछ तेज़ हुआ। कुछ सीमा तक यह दोषारोपण ठीक भी हो सकता है, परंतु मैंने इसे इस दृष्टि से नहीं देखा। मेरा ख्याल है कि कोई भी व्यक्ति अपने विश्वस्त लोगों को ज़िम्मेदार पदों पर लाना चाहेगा और श्री अर्जुनसिंह इसके अपवाद नहीं है। यदि यह आरोप मान ही लिया जाय तो हमें यह भी विचार करना होगा कि श्री सुंदरलाल शर्मा, श्री मोतीलाल वोरा के ठाकुर-राजपूत न होते हुए भी प्रदेश काँग्रेसाध्यक्ष पर उन्हें कैसे स्वीकार कर लिया? अधिकारी वर्ग में भी ठाकुरों के एक-दो नाम ही गिनाये जा सकते हैं। अधिकांश तो ग़ैर-राजपूत ही थे। मेरा ख्याल है कि उन्होंने जाति से अधिक महत्त्व विश्वसनीयता को दिया। मेरे इस कथन की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि जब वे पंजाब के राज्यपाल होकर गये तो अपने साथ किसी सजातीय अधिकारी को ले जाने की बजाय ठाकुरेतर अफसरों को ही ले गये थे।

श्री अर्जुनसिंह की कार्य-शैली समझना एक कठिन काम है। औरों का अनुभव चाहे जैसा हो, मेरा तो ऐसा ही है। 1977 से 84 तक उन्होंने अपनी ज़मीन मज़बूत की। 1980 में मुख्यमंत्री होने के बाद विरोधी गुटों के अधिसंख्य विधायकों को साथ लेकर संगठन और सत्ता में अपनी पैठ कर लेना आसान काम नहीं था। धैर्य और कूटनीति से ही उन्होंने सफलता अर्जित की। अपने विरोधियों को उन्होंने लम्बी डोर दी और उचित समय आने पर उनके पंख काट दिये। विधानसभाध्यक्ष श्री यज्ञदत्त शर्मा के हर सुझाव को वे स्वीकार करते रहे। विधानसभा प्रांगण के अनावश्यक विस्तार का उन्होंने विरोध नहीं किया, विशेषकर तब जब नये विधानसभा भवन का शिलान्यास हो चुका था। **भारत-भवन** के उद्घाटन के अवसर पर समस्त विधायकों को किसी कार्यक्रम में आमंत्रित न करना या आमंत्रित विधायकों को प्रथम पंक्ति में स्थान न देना जैसे प्रसंगों पर शर्माजी ने शासन और सचिवालय को ख़ूब आड़े हाथों लिया। ऐसे और भी एक-दो प्रकरण हैं। सबका उल्लेख इस छोटे लेख में सम्भव नहीं। जब श्री यज्ञदत्त शर्मा ही दोषों के कठघरे में आ गये तब भी वे चुप रहे। फिर एक दिन धीरे से घोषणा हुई कि शर्माजी ने अध्यक्ष-पद से त्यागपत्र दे दिया। जहाँ तक सम्भव होता था, वे प्रकट विरोध को टाल दिया करते थे। इस संबंध में, मैं एक उदाहरण और देना चाहूँगा—

श्री श्रीनिवास तिवारी उनके मंत्रिमण्डल में स्वास्थ्य मंत्री थे। उनके संबंध में कुछ शिकायतें आने पर मंत्रिमण्डल से त्यागपत्र ले लिया गया। 1985 में जब विधानसभा टिकट देने का प्रश्न आया तो प्रदेश काँग्रेस संसदीय दल की बैठक में किसी सदस्य ने उनके साथ एक और नाम जोड़ने का सुझाव दिया। श्री विद्याचरण शुक्ल को यह प्रस्ताव अनुचित लगा। उन्होंने पूरे जोर से कहा कि 'श्रीनिवासजी का नाम पैनल में नहीं जायगा। वे अकेले ही उम्मीदवार रहेंगे।'

श्री अर्जुनसिंह के समर्थकों ने उनकी ओर देखा तो श्री अर्जुनसिंह बोले, 'शुक्लजी कहते हैं, तो अकेला नाम ही जाने दीजिए।'

अ.भा. काँग्रेस कमेटी से जब मध्यप्रदेश की सूची जारी हुई तो श्रीनिवास तिवारी जी का नाम ही नहीं था। मैं

कहना यह चाहता हूँ कि वे अपने विरोध को मुखर नहीं होने देते। लेकिन कब तुरुप चाल चल देंगे, कोई अनुमान नहीं लगा पाता।

शोषित-दलित वर्गों के लिए उनकी 'स्टेप अप योजना', रिक्शा मालिकी अथवा झोपड़ी के लिए पट्टे आदि क़दमों को विपक्ष ने ही नहीं, उनके सत्ताधारियों ने भी स्टंट की संज्ञा दी। सस्ती लोकप्रियता अर्जित करने वाला प्रयास कहा गया। मैं इनमें से किसी का विरोध नहीं करना चाहता हूँ। स्टंट ही सही। किन्तु यदि इन योजनाओं से ग़रीबी की रेखा से नीचे जीने वाले लोगों को फायदा पहुँचा है तो उन्हें स्टंटहीन मानिए, परिणामों पर भी नज़र डाल लीजिए। आख़िर सफ़ल राजनीतिज्ञ यही सब तो करता है। बैंकों का राष्ट्रीयकरण, टैक्सियों, रिक्शे वालों को बैंक-ऋण, बीस-सूत्रीय कार्यक्रम, काम के बदले अनाज, छोटे उद्योगों के लिए उद्योग केन्द्रों की स्थापना। इस सबको क्या कहा जायेगा।

गिरधर कविराय ने जिन 13 वर्गों से दूर रहने की सलाह दी हैं, उनमें राज-दरबार भी शामिल है। दिल्ली दरबार की निकटता अर्जुनसिंहजी को महँगी पड़ी। जाने वे क्या सोचते हैं, अधिकांश लोगों का यही मत है कि कूटनीति कौशल के प्रदर्शन के कारण ही उन्हें मध्यप्रदेश छोड़ना पड़ा। वास्तव में मार्च 1985 में ऐसा समय आया था कि वे संगठन तथा शासन दोनों ही क्षेत्रों में निर्द्वन्द्व होकर अपना प्रभाव बढ़ा सकते थे। सांसदों तथा विधायकों में उनका बहुमत था। उनका विरोध लगभग शांत हो चुका था। उनके मानस में कुछ और क्रांतिकारी योजनाएँ भी रही होंगी। 9 मार्च को उन्होंने मुख्यमंत्री पद की दोबारा शपथ ली। वे काँग्रेस हाईकमान से मंत्रिमण्डल की सूची पर सहमति लेने दिल्ली गये कि 11 मार्च को उन्हें पंजाब का राज्यपाल नियुक्त करने की घोषणा हो गयी। 12 मार्च को वे चंडीगढ़ चले गये। 12 मार्च को भेंट के लिए निर्धारित मेरा समय उनकी विदाई का क्षण बन गया।

मैंने ऊपर कहा है न कि श्री अर्जुनसिंह की कार्य-शैली को समझना कठिन काम है। पंजाब में भी उनके बारे में यही राय बनी। राज्यपाल-पद की शपथ लेने के बाद वे स्वर्ण मंदिर (अमृतसर) गये। न कोई पूर्व सूचना न अन्य तामझाम। ग्रंथियों को जब उनके आगमन की सूचना मिली तो उन्होंने उपेक्षा ही बरती। 'हमें कोई ख़बर ही नहीं है।' कोई ग्रंथी उनसे नहीं मिला। इन्हें भी शिकायत नहीं है। 'मैं तो दर्शन करने गया था। कोई राजकीय यात्रा नहीं थी।' फिर भेंट पुस्तक में लिख आये : 'प्रभु के मंदिर में मेरी सेवा स्वीकार हो।'

सामान्यतः राज्यपाल अख़बारों में नहीं रहता। मेरा आशय यह है कि राज्यपाल एक संवैधानिक पद है। राष्ट्रपति शासन के दौरान भी उसकी भूमिका सीमित ही रहती है। लेकिन शायद ही कोई दिन जाता हो कि अख़बारों में श्री अर्जुनसिंह प्रमुखता से न दिख रहे हों। कभी यहाँ का दौरा, कभी वहाँ का। कभी दिल्ली में, तो कभी जालंधर में। कभी सीमा पर, तो कभी दंगाग्रस्त क्षेत्र में। पुलिस को चौकस रहना पड़ता कि वे कब आधी रात को किसी चौकी पर पहुँच जाए।

पंजाब के पत्रकारों, साहित्यकारों तथा राजनीतिज्ञों के बीच वे जल्दी ही घुलमिल गये। पत्रकारों ने पहली बार अनुभव किया कि वे राजभवन से सीधा सम्पर्क रख सकते हैं। अभी तक वे मंत्री तो दूर, सचिव स्तर तक के अधिकारियों तक कठिनाई से पहुँच पाते थे। इन सबका उन्हें भरपूर सहयोग मिला। अपने जमाने की पंजाब की कहानी तो वे जब लिखें तभी पूरी तरह सामने आयगी। इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि पंजाब की दुर्दांत स्थिति को सम्हालने के लिए उन्होंने रचनाकारों तथा पत्रकारों को ही माध्यम बनाया। अकाली दल के नेता स्व. संत हरचंदसिंह लोंगोवाल से समझौता-वार्ता चलाने के लिए उन्होंने पंजाब के सुप्रसिद्ध लेखक श्री अतरसिंह को मध्यस्थ बनाया। वार्ताएँ भी चलती रहीं और श्री अर्जुनसिंह की संतजी से भेंट भी होती रही। अख़बार वालों को भनक पड़ जाती तो कभी कोई समाचार भी प्रकाशित हो जाता। राजभवन से उसका खण्डन भी। आश्चर्य यह है कि इस वार्ता में उन्होंने अकाली दल के श्री प्रकाशसिंह बादल तथा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के अध्यक्ष श्री गुरुचरणसिंह तोहड़ा को भी विश्वास में नहीं

लिया। उसी तरह तत्कालीन राष्ट्रपति श्री ज्ञानी जैलसिंह, केन्द्रीय मंत्री श्री बूटासिंह तथा स्व. सांसद् श्री दरबारासिंह भी वार्ता से दूर रखे गये। केन्द्रीय गृहमंत्री भी उतना ही जानते थे, जितना उन्हें प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी या श्री अर्जुनसिंह बता दें। बात यह है कि श्री अर्जुनसिंह ने प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी से स्पष्ट कर दिया था कि वार्ता की हलचल केवल इन दोनों के बीच ही रहे और अचानक जुलाई, 1985 के एक दिन दूरदर्शन समाचार पर सुना कि संत लोंगोवाल प्रधानमंत्री से चर्चा करने के लिए दिल्ली आ रहे हैं।

राजीव-लोंगोवाल समझौता, पंजाब में उपद्रवहीन चुनाव इत्यादि घटनाओं से पाठकगण परिचित है। मैं केवल एक संस्मरण देना चाहता हूँ। सितम्बर के पहले सप्ताह में, मैं चंडीगढ़ गया। पंजाब तथा दिल्ली के पत्रों के संवाददाताओं ने काफ़ी टेढ़े सवाल भी पूछे परन्तु श्री अर्जुनसिंह ने जानकारी उतनी ही दी जितनी वे देना चाहते थे। पत्रकारों तथा उनके बीच में समन्वय, सहजता का वातावरण देखकर कोई भी कह सकता था कि वे वर्षों से पंजाब में रह रहे हैं। **ट्रिब्यून** के प्रतिनिधि ने तो उनसे यहाँ तक कह दिया कि 'सर, आप ही पंजाब के मुख्यमंत्री हो जाइए।' हँसी के बीच उत्तर था, 'मैडम, यदि यह आपके हाथ में होता, तो निश्चय ही मैं यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेता।' **स्टेट्समैन** के प्रतिनिधि श्री प्रेमनाथ ने मुझे बताया कि वे 18 वर्षों से चंडीगढ़ में हैं, किन्तु पिछले छः महीनों में वे जितनी बार राजभवन आये हैं, उतनी बार पिछले 18 वर्षों में कुल मिलाकर भी नहीं।

चंडीगढ़ में ही मुझे बताया गया कि श्री बादल तथा श्री तोहड़ा को वार्ता से अलग रखने के कारण अकाली दल में दरार पड़ गई है। श्री सुरजीतसिंह बरनाला तथा श्री बलवंतसिंह ही संतजी के विश्वास में रहे। बादल तथा तोहड़ा दोनों ही महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति हैं। उन्हें पंजाब-समझौता मंजूर नहीं था। इसलिए नहीं कि वे पंजाब के हित में नहीं है वरन् इसलिए कि उससे इन दोनों की सार्वजनिक प्रतिष्ठा कम हुई। अकाली दल तथा काँग्रेस में कोई चुनावी तालमेल तो नहीं हुआ, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि काँग्रेस हाईकमान यही चाहता था कि सत्ता अकाली दल के हाथों में आये। इसलिए काँग्रेस ने अनेक क्षेत्रों में कमज़ोर उम्मीदवार खड़े किये। श्री प्रकाशसिंह बादल के ख़िलाफ़ एक अनजान-से युवा को खड़ा किया गया। अस्तु! यह सब अलग प्रश्न है। पंजाब-समझौते से उग्रपंथियों को हताशा हुई। उन्होंने अपनी गतिविधियाँ तेज़ कर दीं। नृशंसता का यह व्यापार इस हद तक बढ़ा कि एक प्रार्थना-स्थल पर संत हरचंदसिंह लोंगोवाल की हत्या कर दी गई। विधानसभा के चुनाव लगभग एक सप्ताह के लिए आगे बढ़ा दिये गये। पर चुनाव हुए और जैसी कि अपेक्षा थी, अकाली दल विजयी हुआ। श्री प्रकाशसिंह बादल को एक और धक्का लगा, जब वे अकाली विधायक दल के नेता नहीं चुने गये। श्री सुरजीतसिंह बरनाला मुख्यमंत्री हुए।

पंजाब की अशांत अवस्था में शांतिपूर्ण चुनाव की कल्पना ही असम्भव थी। वहाँ की घटनाओं को यहाँ सविस्तार लिखने की आवश्यकता नहीं है। पंजाब समझौता, अकाली दल का विघटन, बाबा जोगिन्दरसिंह (अथवा श्री सिमरनजीतसिंह मान) का संयुक्त अकाली दल, इंदिराजी के हत्यारों या उनके परिजनों का सार्वजनिक सम्मान, पंजाब-समझौते से श्री प्रकाशसिंह बादल तथा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष श्री गुरुचरणसिंह तोहड़ा की असहमति आदि तो बाद की घटनाएँ हैं। वास्तव में पंजाब में दो प्रयोग असफल हो चुके हैं। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती गाँधी पंजाब की स्थिति में सुधार न होते देख श्री दरबारासिंह के मंत्रिमण्डल की छुट्टी कर दी थी। राज्यसभा के सदस्य श्री ए.पी. शर्मा को पंजाब का राज्यपाल नियुक्त किया गया। शायद मंशा यह थी कि राजनीतिक सूझबूझ वाले शर्माजी वहाँ के परिवेश को राजनीतिक स्तर पर सम्हाल सकेंगे। कुछ लोगों का यह भी ख्याल था कि श्री शर्माजी की महत्त्वाकांक्षा तथा अपने गृहराज्य में राजनीतिक गतिविधियों में आवश्यकता से अधिक रुचि लेने के कारण श्रीमती इंदिरा गाँधी उन्हें एक अराजनीतिक दायित्व देकर छुट्टी पाना चाहती थीं। बात जो भी हो, शर्माजी को चंडीगढ़ रास नहीं आया। यदि उनका वश चलता तो वे वहाँ जाते ही नहीं, परंतु श्रीमती गाँधी की इच्छा का अनादर करने का साहस कौन करता।

वे बेमन से गये और एक संवैधानिक जवाबदारी का औपचारिक दायित्व निबाहते रहे। उनकी अक्षमता या असफलता के कारण पंजाब में वैकल्पिक व्यवस्था ज़रूरी समझी गई। पश्चिम बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल श्री बी.डी. पाण्डे एक सक्षम तथा व्यावहारिक अधिकारी के रूप में ख्याति पा चुके थे। राज्य तथा केन्द्र में वे ऊँचे प्रशासनिक पदों पर रह चुके थे। अतः इंदिराजी ने कलकत्ता तथा चंडीगढ़ में स्थापित राज्यपालों की परस्पर बदली की— शर्माजी कलकत्ता और पाण्डेजी चंडीगढ़।

श्री बी.डी. पाण्डे भी पंजाब की समस्याओं का आशातीत हल खोजने में असफल माने गये। जानकार क्षेत्रों में यह भी कहा जाता है कि उग्रपंथियों से निबटने की उनकी योजनाओं को केन्द्र ने स्वीकृति नहीं दी थी। ऐसी असहाय स्थिति में वे कर ही क्या सकते थे। फिर स्वर्ण मंदिर पर फौज़ी कार्रवाई तथा इंदिराजी की हत्या के बाद वातावरण सुधारने की कोशिश की गई। श्री राजीव गाँधी ने प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने के साथ ही घोषणा की कि वे पंजाब-समस्या को सर्वोच्च प्राथमिकता देंगे। श्रीमती गाँधी तथा श्री संजय गाँधी के निधन के बाद श्री अर्जुनसिंह श्री राजीव गाँधी के निकट आ गये। मध्यप्रदेश में अपने राजनीतिक कौशल से उन्होंने अन्य गुटों को कमज़ोर कर दिया। शायद उनकी इस सूझबूझ के कारण पंजाब का राज्यपाल नियुक्त किया गया।

पंजाब में चुनाव के पूर्व हुई पत्रकार-वार्ता में श्री अर्जुनसिंह से जब यह पूछा गया कि लोकप्रिय सरकार के गठन के पश्चात् उनका अगला कार्यक्रम क्या होगा, तो संक्षिप्त से उत्तर में उन्होंने कहा था कि अब वे कार्यवाहक राज्यपाल न होकर संवैधानिक राज्यपाल हो जाएँगे। उनके प्रेस सलाहकार श्री सुदीप बैनर्जी ने मुझे बताया था कि मंत्रिमण्डल के विधिवत पदारूढ़ होने पर उनकी (बैनर्जी की) भूमिका ही लगभग समाप्त हो जायगी। अतः वे अक्टूबर (1985) में मध्यप्रदेश लौटना चाहेंगे। तब यह अनुमान लगाया जा रहा था कि श्री अर्जुनसिंह पंजाब-समझौते के लागू किये जाने के बाद ही राज्यपाल पद से मुक्त किये जा सकेंगे किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि लोकतांत्रिक शासन के सत्ता में आ जाने के साथ ही उन्होंने पंजाब छोड़ देने का मानस बना लिया था। इस प्रसंग में एक छोटी-सी घटना का भी उल्लेख किया जा सकता है। श्री अर्जुनसिंह सतना-रीवा आये हुए थे। सतना-विश्राम भवन में विधायक नागेन्द्रसिंह उनसे अपनी रीवा में नवनिर्मित होटल के उद्घाटन की तारीख़ निश्चित करने की बात कर रहे थे। श्री अर्जुनसिंह ने उन्हें उद्घाटन की तिथि तो दे दी, साथ ही यह भी कहा कि इस हेतु जारी किये जाने वाले निमंत्रण-पत्र में उन्हें पंजाब का राज्यपाल लिखा जाय। **देशबन्धु** के सतना के नगर प्रतिनिधि श्री कृष्णगोपाल गुप्त ने चर्चा सुन ज़रूर ली किन्तु उसका महत्त्व नहीं आँका। जब एकाएक वे केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में वाणिज्यमंत्री नियुक्त हुए तब उसकी पृष्ठभूमि समझ में आई। संभवतः उनका ख्याल रहा हो कि पंजाब में अकाली दल के पदारुढ़ हो जाने से पंजाब-समझौते पर अमल होना सरल हो गया है। अतः अब चंडीगढ़ में उनकी भूमिका ही नगण्य हो गयी है।

श्री अर्जुनसिंह लम्बी अवधि तक वाणिज्यमंत्री भी नहीं रह सके। काँग्रेसाध्यक्ष श्री गाँधी को इतना समय नहीं था कि वे संगठन का काम भी देख सकें। कार्यकारी अध्यक्ष पंडित कमलापति त्रिपाठी श्रीमती गाँधी के समय में ही बहुत कुछ प्रभावकारी नहीं थे। राजीव गाँधी के सत्तासीन होने के बाद भी उन्हें अधिक दायित्व नहीं सौंपा गया। दूसरी ओर संगठन से 'सत्ता के दलालों' को अलग कर काँग्रेस को अधिक स्वच्छ तथा प्रभावी संस्था बनाने की ज़रूरत महसूस की गई। अनेक वर्षों से काँग्रेस के संस्थागत चुनाव भी नहीं हुए थे। अतः यह भी निश्चय किया गया कि संगठन को लोकतांत्रिक परम्परा में वापस लाया जाये। दिसम्बर, 1985 में बम्बई में सम्पन्न शताब्दी समारोह में जोर-शोर से इस तरह की घोषणा की गयी। पूरी मशीनरी को नया रूप देने के लिए एक सक्षम व्यक्तित्व की तलाश में नज़र फिर श्री अर्जुनसिंह पर गई। एक बार फिर उनका पद-परिवर्तन कर दिया गया। इस बार वे वाणिज्यमंत्री से काँग्रेस उपाध्यक्ष नियुक्त किये गये। संगठन के संविधान में न तो कार्यकारी अध्यक्ष का पद है और न उपाध्यक्ष का। श्रीमती

गाँधी ने अपनी सुविधा के लिए कार्यकारी अध्यक्ष के पद का निर्माण किया और श्री राजीव गाँधी ने अपनी सुविधा के लिए कार्यकारी उपाध्यक्ष पद का। उपाध्यक्ष पद का निर्माण करते समय यह घोषणा की गई कि श्री अर्जुनसिंह पं. कमलापति के निर्देशन तथा सलाह में संगठन का काम सम्हालेंगे।

इन नई पदस्थापना से यह अनुमान लगाया गया कि श्री सिंह की पदावनति हो गयी। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के साथ सारे सरकारी आडम्बर चलते हैं। वाणिज्य मंत्रालय तो यों भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। अब काँग्रेस का उपाध्यक्ष होने में क्या रहा। यों तो वे सारे राज्यों के संगठन पर नज़र रख सकते थे किन्तु उन्हें मुख्यतः पश्चिम बंगाल, जम्मू-कश्मीर एवं केरल प्रदेश काँग्रेस की ज़िम्मेदारी दी गई। इन्हीं दिनों मुझे दिल्ली जाना पड़ा। श्री अर्जुनसिंह से समय मिलने में कोई कठिनाई होगी, मुझे इसकी कल्पना नहीं थी। मुझे दूसरे दिन सुबह का समय दिया गया। वह भी दोपहर बाद कर देने की सूचना मिली। मैंने देखा कि जिन राज्यों का विशेष दायित्व उन्हें सौपा गया है, उनके अलावा राज्य के मंत्रिमण्डलीय सदस्य तथा कार्यकर्त्तागण उनसे मिल रहे हैं। मैंने जब यह जानना चाहा कि क्या वे अपने नये पद से संतुष्ट हैं तो उनका संक्षिप्त उत्तर था, 'जो काम दे दिया, उसे पूरी ज़िम्मेदारी से निबाहना है।' मुझे लगा कि वे इस पर संतुष्ट नहीं है। कम-से-कम बहुत उत्साह तो नहीं ही है।

समय-समय पर एक-दो बार और भी भेंट हुई। हर बार मैंने यह अनुभव किया कि वे संगठन में अधिक व्यस्त होते जा रहे हैं। निश्चय ही काँग्रेसाध्यक्ष श्री राजीव गाँधी का विश्वास अर्जित किये बिना यह सम्भव नहीं था। उपाध्यक्ष होने के कुछ दिनों बाद ही काँग्रेस की अनेक नीतिगत घोषणाएँ उनके ही नाम से जारी होने लगी। यों तो काँग्रेस कार्यालय में बहुत बड़ा अमला कार्यरत था। कार्यकारी अध्यक्ष से लगाकर महासचिवों एवं उपसचिवों की एक फौज़ ही खड़ी कर दी गई थी। परंतु धीरे-धीरे और सब पद मात्र नामधारी रह गये, वक्तव्यों और अख़बारों में श्री अर्जुनसिंह का ही नाम आने लगा। जो लोग उनकी कार्य-शैली से थोड़ा-बहुत परिचित हैं, वे जानते हैं कि श्री अर्जुनसिंह खुद ही अपना जनसम्पर्क अधिकारी हो जाते हैं। बाक़ी सब लोग वृष्टिछाया वाले भाग या पार्श्व में चले जाते हैं। मुझे मालूम हुआ कि इससे उनके महासचिवों को भी शिकायत हो गई। श्रीमती नजमा हेपतुल्ला ने तो पत्रकारों से खुले तौर पर कहना शुरू कर दिया कि 'इस बात की जानकारी आप श्री अर्जुनसिंह से ही ले लीजिए।' श्रीमती हेपतुल्ला को प्रेस का दायित्व सौंपा गया था, लेकिन वे कुछ कह सके, इसके पहले ही जानकारी प्रेस को मिल जाती या छप जाती। हो सकता है कि श्रीमती नजमा इससे खीज गई हों। अन्य उपसचिवों, संयुक्त सचिवों अथवा महासचिवों की स्थिति भी शायद यही रही हो हालांकि खुले तौर पर उन्होंने अपनी बात भले ही न कही हो।

कालांतर में स्थिति कुछ ऐसी हो गयी संगठन के अन्य पदाधिकारियों को भी अपना वर्चस्व ख़तरे में दिखने लगा। कोषाध्यक्ष श्री सीताराम केसरी बड़े दमखम वाले प्रभावशाली नेता माने जाते हैं। वे 16-18 वर्षों से राज्यसभा के सदस्य थे तथा चौथी बार फिर नामांकित होना चाहते थे। उन्हें टिकट नहीं दिया गया। कार्यकारी अध्यक्ष पं. कमलापति त्रिपाठी का कार्यकाल समाप्त होने पर उन्हें दोबारा राज्यसभा में मनोनीत नहीं किया गया। कुछ ऐसा माहौल बन गया कि सबने श्री अर्जुनसिंह को ही इसके लिए दोषी माना। धीरे-धीरे यह असंतोष उजागर होने लगा तब शायद यह ज़रूरी समझा गया कि मध्यप्रदेश में ही श्री अर्जुनसिंह का प्रभाव कम किया जाये। श्री प्रकाशचन्द सेठी तथा विद्याचरण शुक्ल ने संगठन के नाम पर मध्यप्रदेश एवं विशेषकर विंध्य क्षेत्र में दौरे शुरू किये। कार्यकर्त्ताओं की बैठकें भी ली गईं। काँग्रेस हाईकमान को श्री सिंह द्वारा मनमानी किये जाने की रिपोर्ट दी गई। फिर यह असंतोष और मुखर हुआ। फरवरी, 1985 में पंडित कमलापति त्रिपाठी ने काँग्रेसाध्यक्ष श्री राजीव गाँधी को काँग्रेस की दुर्दशा पर एक पत्र तो लिखा ही, श्री अर्जुनसिंह को भी आड़े हाथों लिया। श्री प्रकाशचंद सेठी ने भी ऐसे ही बयान दिये। श्री अर्जुनसिंह के उपाध्यक्ष पद पर बने रहने से दोनों को आपत्ति थी। यह भी कहा गया कि मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा को स्वतंत्र रूप से

कार्य करने में भी श्री अर्जुनसिंह बाधक हो रहे हैं। वोरा मंत्रिमण्डल का पुनर्गठन भी उनके कारण नहीं हो पा रहा है। कुल मिलाकर यह कि श्री अर्जुनसिंह के ख़िलाफ़ एक लॉबी खड़ी करने का प्रयास प्रारम्भ हो गया।

समाचार-पत्र इस सारे विवाद से कैसे दूर रह सकते थे। कभी आसवनी काण्ड, तो कभी केरवा बाँध पर निर्मित राजशाही भवन, कभी चुरहट लॉटरी, तो कभी ड्राइवर राजेन्द्र त्रिवेदी की संदेहजनक स्थिति में मृत्यु। कोई-न-कोई प्रकरण अखबारों में प्रकाशित होता ही रहा। श्री अर्जुनसिंह सामान्यतः मौन ही रहे। पत्रकारों द्वारा बार-बार पूछे जाने पर खंडन-मंडन करते हुए सिर्फ़ इतना ही कहते रहे कि न्यायालय में विचारार्थ प्रसंगों पर वे कुछ नहीं कहना चाहते। केरवा बाँध पर निर्मित भवन पर ज़रूर उन्होंने अपना पक्ष स्पष्ट किया। श्री कमलापतिजी के लगातार वक्तव्यों के बाद श्री राजीव गाँधी ने उनसे त्यागपत्र ले लिया। कुछ समय बाद त्रिपाठीजी भी कार्यकारी अध्यक्ष पद से अलग हो गये। श्री अर्जुनसिंह के उपाध्यक्ष-पद से पृथक् हो जाने पर त्रिपाठीजी 'संतुष्ट' हुए तथा सेठीजी ने 'प्रसन्नता' व्यक्त की। फिर श्री सिंह केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में संचारमंत्री हुए। एक बार पुनः यह चर्चा चल पड़ी कि काँग्रेस उपाध्यक्ष पद के बाद यह नियुक्ति उनकी पदावनति है। पत्रकारों ने जब उनकी प्रतिक्रिया जाननी चाही तब भी उनका उत्तर संक्षिप्त था, 'पहले उपाध्यक्ष हुआ तब भी डिमोशन होने की बात कही गयी, अब संचारमंत्री बनने पर भी वही नारा। यह तो कहने वाले ही तय करें कि मेरी पदावनति कौन-सी स्थिति में थी। वैसे मेरे नेता जो काम दे रहे हैं, मैं उसे अंजाम दे रहा हूँ।'

श्री अर्जुनसिंह किस स्थिति में संतुष्ट हैं, किसमें असंतुष्ट— यह समझ पाना मुश्किल है। बहरहाल, इतना सच है कि वे जहाँ भी हैं चर्चा का विषय बन जाते हैं। साधारणतः कम बोलने वाले व्यक्ति के संबंध में अनुमान लगाना भी अक़्सर ग़लत हो जाता है।

देशबन्धु के सतना-संस्करण का वर्तमान रूप श्री अर्जुनसिंह के कारण ही है। दरअसल मेरी योजना यह थी कि पहले जबलपुर संस्करण का विकास किया जाये। सांध्य की बजाय उसे प्रातःकालीन अख़बार बनाया जाय। आधुनिक यंत्र-सज्जा से सज्जित हो जाने पर जबलपुर की पुरानी मशीने मैं सतना ले जाना चाहता था। सतना एक विकासशील नगर है। मुझे वहाँ एक मध्यम दर्ज़े के समाचार-पत्र की संभावनाएँ नज़र आई। विंध्य क्षेत्र में कोई योजना लागू करने के पूर्व मैंने मुख्यमंत्री के कान में बात डालना ठीक समझा। उनकी राय थी कि अख़बार रीवा से निकालना ठीक होगा। आधुनिक विकसित मुद्रण-प्रणाली से उसे प्रकाशित किया जाय। मैंने तर्क दिया कि प्रसार-प्रचार की दृष्टि से सतना अधिक उपयुक्त है। फिर भी 15-20 लाख की लागत से यंत्र लगाने लायक शहर नहीं है वह। स्थान-चयन के बारे में तो उन्होंने बात मुझ पर ही छोड़ दी। परंतु अच्छे अख़बार की उनकी कल्पना बनी ही रही। उन्होंने मुझे आश्वस्त किया कि पिछड़े क्षेत्र में यदि मैं एक आधुनिक पत्र निकालता हूँ तो वे अधिक विज्ञापन देकर उसके वित्तीय स्वावलम्बन में सहायक होंगे। 26 जनवरी, 1985 को वे इस पत्र का प्रकाशन (विमोचन) करने को सहमत हो गये, परंतु यंत्रों के विलम्ब से आने के कारण उसे 1 फरवरी से ही शुरू किया जा सका। 16 फरवरी को उसके प्रवेशांक का विमोचन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने किया। वे चुनाव प्रचार के सिलसिले में सतना आये हुए थे। प्रदेश काँग्रेसाध्यक्ष श्री मोतीलाल वोरा की अध्यक्षता में आयोजित आमसभा में पत्र के प्रकाशन की औपचारिक घोषणा हुई। श्री अर्जुनसिंह ने अपना वचन निभाया। नये पत्रों को शासकीय विज्ञापनों के आवंटन की अवधि 6 माह से घटाकर एक माह कर दी गयी। किन्तु यह भी एक संयोग था कि विज्ञापनों की स्वीकृति की कार्रवाई श्री मोतीलाल वोरा के मुख्यमंत्रित्व काल में हुई। श्री अर्जुनसिंह 12 मार्च को भोपाल से चंडीगढ़ के लिए प्रस्थान कर गये।

श्री अर्जुनसिंह का संचारमंत्री का कार्यकाल भी उल्लेखनीय रहा। टेलीफोन सेवा में सुधार के काफ़ी प्रयास उनके जमाने में हुए। दिल्ली तथा बम्बई में महानगर टेलीफोन निगम की स्थापना से वहाँ के उपभोक्ताओं की शिकायतें

कम हुई। मध्यप्रदेश में सेवा विस्तार होना ही था। राज्य के कुछ समाज-सुधारकों तथा स्वाधीनता सेनानियों पर उन्होंने डाक टिकट भी जारी कराये।

इन्हीं दिनों देश में काफ़ी विवाद पैदा हो गये। बोफोर्स तोप और जर्मन पनडुब्बियों की ख़रीद में कमीशन लिये जाने की घटनाएँ सामने आयीं। प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी पर संसद तथा बाहर सीधे आरोप लगाये गये। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में दरार पैदा हुई। तथा श्री विश्वनाथप्रताप सिंह ने मंत्री पद छोड़कर विपक्षी भूमिका निभाना शुरू किया। इसी क्रम में श्री विद्याचरण शुक्ल तथा श्री अरुण नेहरू आदि ने भी काँग्रेस छोड़ने का मन बना लिया। कुल मिलाकर देश में अस्थिरता का माहौल बनने लगा। इधर मध्यप्रदेश में भी बार-बार सरकार बदलने की चर्चा जोर पकड़ने लगी। काँग्रेस हाईकमान को बार-बार कहा गया कि श्री वोरा के मुख्यमंत्री रहते अगले चुनाव में काँग्रेस का विजयी होना सम्भव नहीं है। लिहाजा मध्यप्रदेश में भी नेतृत्व परिवर्तन किया गया।

श्री अर्जुनसिंह तीसरी बार मुख्यमंत्री निर्वाचित हुए। उनके आगमन से पार्टी को नई ऊर्जा मिली। रिक्शा चालकों को मालिकाना हक़ दिलाना और झुग्गी-झोपड़ीवासियों को भूमि के पट्टे देने से वे 'ग़रीबों के मसीहा' मान लिये गये थे, इस बार उन्होंने एक नया अभियान चलाया तेंदूपत्ते को लेकर। मध्यप्रदेश में देश का 64 प्रतिशत तेंदूपत्ता पैदा होता है। उसकी तुड़ाई ठेकेदारों द्वारा कराई जाती थी। श्री अर्जुनसिंह ने यह अधिकार उन मज़दूरों को देने की घोषणा की जो पत्ता तोड़ते थे। इन मज़दूरों की हज़ारों सहकारी समितियाँ बना दी गयीं। हर मज़दूर सदस्य और मुनाफ़े का हक़दार। उनके इस निर्णय से ठेकेदार व्यापारियों में खलबली मच गयी। अपने हितों पर कुठाराघात होने से उन्होंने श्री अर्जुनसिंह के ख़िलाफ़ मोर्चाबंदी की। जब वे खरसिया निर्वाचन-क्षेत्र से विधानसभा के प्रत्याशी हुए तो इन ठेकेदारों ने विपक्षी उम्मीदवार को सब प्रकार की सहायता दी। श्री सिंह खरसिया से जीत तो गये किन्तु मतों का अंतर कुल साढ़े दस हज़ार ही रहा जबकि उम्मीद-कम-से-कम पचास हज़ार की लगाई गई थी।

तेंदूपत्ता तोड़ने का व्यवसाय कुल एक-डेढ़ महीने चलता है, किन्तु आय की दृष्टि से यह अच्छे लाभ का साधन है। मज़दूरों को उनकी रोज़ाना कमाई के अलावा भी दो सौ करोड़ के ऊपर डिविडेंड का लाभ और मिला। श्री सिंह की अगली योजना थी कि बीड़ी-निर्माण को भी निजी क्षेत्र से निकालकर सहकारी क्षेत्र में लाया जाय ताकि बीड़ी बनाने वाले मज़दूरों को भी अधिक लाभ मिल सके।

यह योजना आकार ले, उसके पहले ही अर्जुनसिंह को पुनः त्यागपत्र दे देना पड़ा। श्री कैलाश जोशी ने उनके केरवा स्थित निवास तथा चुरहट बाल कल्याण समिति द्वारा जारी की गई लॉटरी के ख़िलाफ़ हाईकोर्ट में याचिका दायर करते हुए जाँच की माँग की। याचिका सुनने वाले जजों में एक श्री सूर्यवंशी थे और दूसरे श्री सी.पी. सेन। कहा जाता है कि श्री सूर्यवंशी चूँकि ग्वालियर के निवासी थे अतः उन्हें ग्वालियर राजघराने से प्रभावित कराया गया तथा श्री सी.पी. सेन को अवकाश लेने के पूर्व ही प्रस्तावित रेलवे ट्रिब्यूनल का अध्यक्ष बनाने का आधार दिया गया था। इस प्रकरण में मध्यप्रदेश के कुछ विधायक तथा केन्द्र के नेताओं के रोल की चर्चा यत्र-तत्र सुनी गई।

प्रत्यक्षतः इस पीठ ने श्री अर्जुनसिंह को दोषी तो नहीं ठहराया, किन्तु उनके वित्तीय साधनों की जाँच कराने की राय प्रकट की। यह कोई फ़ैसला तो नहीं था, मात्र सलाह थी, फिर भी काँग्रेस हाईकमान ने उनसे इस्तीफ़ा लेने का निर्णय लिया। वस्तुतः श्री राजीव गाँधी के सलाहकारों में काफ़ी कुछ लोग श्री अर्जुनसिंह के विरोधी थे और दूसरी ओर श्री मोतीलाल वोरा केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में ले लिये जाने पर दिल्ली में सक्रिय रहे। रेल राज्यमंत्री श्री माधवराव सिंधिया तथा श्री वोरा ने लगातार मध्यप्रदेश के दौरे भी किये और दिल्ली में भी अर्जुन-विरोधी वातावरण तैयार किया। काँग्रेस हाईकमान और विशेषतः श्री राजीव गाँधी स्वयं आरोपों के घेरे में थे, तब यही उचित समझा

गया कि श्री अर्जुनसिंह से त्यागपत्र दिलाकर दिल्ली की छवि को सुधारा जा सकता है।

उनके स्थान पर श्री मोतीलाल वोरा पुनः मुख्यमंत्री बनाये गये। तेंदूपत्ता आदि नीतियों के अधमने क्रियान्वयन से काँग्रेस की लोकप्रियता भी प्रभावित हुई। 1989 में लोकसभा के चुनाव हुए तो केन्द्र सरकार की बिगड़ी छवि के साथ इस अधूरे क्रियान्वयन का भी मतदाता पर असर पड़ा। 40 में से कुल 8 काँग्रेस उम्मीदवार लोकसभा में पहुँचे। फिर भी यह उल्लेखनीय है कि इनमें से सात आदिवासी-बहुल क्षेत्रों में विजयी रहे। यों छिंदवाड़ा जनरल सीट है, फिर भी उस जिले में आदिवासी की संख्या अधिक है, वहाँ से श्री कमलनाथ तथा ग्वालियर से माधवराव सिंधिया चुने गये। इस पराजय से क्षुब्ध होकर काँग्रेस ने श्री वोरा को भी हटा दिया। श्री श्यामाचरण शुक्ल नये मुख्यमंत्री हुए। 12-15 वर्ष काँग्रेस से बाहर रहने से वे वर्तमान स्थिति से लगभग अपरिचित ही थे। विधानसभा चुनाव के लिए उन्हें तीन माह से कम समय मिला। दूसरी ओर केन्द्र सरकार की बिगड़ी हुई छवि उन्हें विरासत में मिली। मार्च, 1990 में विधानसभा चुनाव हुए तथा काँग्रेस मध्यप्रदेश में भी पराजित हुई। 320 में से उसे केवल 55 स्थान मिले। श्री शुक्ल, श्री अर्जुनसिंह तथा श्री वोरा पुनर्निर्वाचित ज़रूर हुए। श्री शुक्ल प्रतिपक्ष के नेता हुए।

लोकसभा चुनाव के पूर्व ही श्री अर्जुनसिंह प्रदेश काँग्रेसाध्यक्ष मनोनीत कर दिये गये थे। साथ ही काँग्रेस कार्यकारिणी समिति तथा संसदीय मण्डल के सदस्य भी। श्री अर्जुनसिंह तथा काँग्रेस हाईकमान के रिश्ते एक पहेली बने हुए हैं। कभी उन्हें अनावश्यक रूप से प्रताड़ित किया जाता है तो कभी ऊँचा चढ़ा दिया जाता है। शायद हाईकमान मध्यप्रदेश में संतुलन बनाने के लिए यह कारीगरी करता हो। लेकिन जब अवसर आता है तो वे अपनी बात कहने में संकोच नहीं करते। काँग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक में संगठन को पुनः सक्रिय तथा जीवंत बनाने के उपायों पर चर्चा हुई तो उन्होंने श्री राजीव गाँधी को संक्षेप में ही राय दी कि वे काँग्रेस शताब्दी समारोह का अपना भाषण देख लें कि उसमें उठाये गये बिन्दुओं में से कितने का क्रियान्वयन किया गया और कौन से छूट गये। एक प्रकार से काँग्रेस की स्थिति पर यह तीव्र कटाक्ष था।

श्री अर्जुनसिंह के भविष्य के गर्भ में क्या है, कौन जाने!

☐ *मायाराम सुरजन— श्री मायाराम सुरजन दैनिक नवभारत, एम.पी. क्रॉनिकल के संपादक तथा दैनिक देशबन्धु के संस्थापक संपादक-प्रकाशक रहे हैं। आप प्रगतिशील विचारधारा के चिंतक, विचारक, लेखक रहे हैं। मध्यप्रदेश में पत्रकारिता के इतिहास के स्वर्णिम हस्ताक्षर मायारामजी आज हमारे बीच नहीं है। दैनिक देशबन्धु उनका स्मृति स्तम्भ है।*

हम दोनों दिलवाले हैं

बसंत साठे
(पूर्व केन्द्रीय मंत्री)

अर्जुनसिंहजी से पहली मुलाक़ात 1966 में हुई, जब वे युवा काँग्रेस के सिलसिले में दिल्ली आये थे। काफ़ी सक्रिय थे, उन दिनों श्री नारायणदत्त तिवारी अध्यक्ष हुआ करते थे। 1968 पंचमढ़ी में एक सम्मेलन हुआ था। 80 में वे मुख्यमंत्री बने एवं मैं 1972 में संसद् सदस्य बना। उनसे इस दौरान काफ़ी मेल-जोल रहा। युवा कार्यों में जो रुचि लेगा, स्वाभाविक तौर पर उसे सांस्कृतिक प्रश्नों में भी रुचि होती है, उनमें भी थी।

वे साहित्य में रुचि रखने वाले, व्यापक विषयों पर पठन एवं अध्ययन करने वाले आधुनिक दृष्टि के चिंतक हैं, वे स्वयं मितभाषी हैं परंतु जिस किसी भी विषय पर बोलते है, उस पर उन्होंने गहराई से सोचा होता है। मैंने अक़्सर काँग्रेस के भिन्न-भिन्न स्तरों पर जहाँ विचार-विनिमय, चर्चा गोष्ठी का प्रसंग आया है, यह देखा है कि वे केवल गहराई से ही नहीं सोचते, अपने विचार बड़े संतुलित-सार्थक शब्दों में रखने की क्षमता रखते हैं।

युवाओं से संबंधित सांस्कृतिक तथा खेलकूद के क्षेत्रों में उनकी श्रेष्ठ रुचि रही है और देश के साहित्य, संगीत-कला की जो श्रेष्ठ परंपरा रही है उसके बारे में उनके मन में आदर है और उसे बढ़ाना चाहिये इसकी तीव्र कामना है। जब-जब उन्हें मौक़ा मिला जैसे कि जब वे मुख्यमंत्री बने जब वे केन्द्र में आये, काँग्रेस के कार्यकारी अध्यक्ष की हैसियत के बतौर हर बार उन्होंने इन दोनों क्षेत्रों में काम करने वालों को प्रोत्साहन दिया। म.प्र. का **भारत-भवन** जो केवल भारत में ही नहीं विदेश में भी अपना स्थान बना चुका है, अर्जुनसिंहजी की ही देन माना जा सकता है। इस तरह से आज शिक्षा एवं संस्कृति, मानव संसाधन विकास मंत्री के रूप में उन्हें एक अत्यंत योग्य अधिकार और अवसर मिला है, भारत की इस धरोहर को और उजागर करने का जो कार्य वे बड़ी कुशलता से कर रहे हैं। हम दोनों साहित्य, संगीत, कला के क्षेत्र में समान रुचि रखते हैं, और दिली संवेदना के मामले में भी साथ ही हैं। इसलिए भी कि हम दोनों की बाईपास सर्जरी हुई है। इस तरह हम लोग दोनों दिलवाले हैं यह तो साबित हो ही गया है। मैं अर्जुनसिंहजी की दीर्घ आयु, आरोग्य, देश सेवा में यश की प्रार्थना करता हूँ।

☐ *बसंत साठे— पूर्व केन्द्रीय मंत्री, संसद् सदस्य, श्री बसंत साठे केन्द्र सरकार में महाराष्ट्र के प्रभावशाली प्रवक्ता और प्रतिनिधि रहे हैं। मराठी, हिन्दी और अँग्रेज़ी तीनों भाषाओं पर लिखने-पढ़ने और बोलने में समान अधिकार रखने वाले वयोवृद्ध नेता श्री बसंत साठे मराठी पत्र पत्रिकाओं में लिखते रहे हैं। प्रखर वक्ता के रूप में जाने जाते रहे हैं।*

संजीदगी से दायित्वों का निर्वहन

मोतीलाल वोरा
(कोषाध्यक्ष, अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी)

अर्जुनसिंहजी को विगत 24 वर्षों से, मैं विभिन्न पदों पर देखता आ रहा हूँ। चाहे वे विधायक रहे हों, चाहे प्रदेश में मंत्री रहे हों, मुख्यमंत्री रहे हों अथवा गवर्नर, केन्द्र में मंत्री रहे हों उन्होंने इन पदों पर रहकर अपने कर्त्तव्यों का, दायित्वों का निर्वहन अत्यंत ही संजीदगी के साथ किया है। किसी भी मामले की गहराई में जाकर और उस मामले में या किसी भी विषय पर उनका अध्ययन हमेशा रहा है और यही कारण है कि वे वर्तमान संदर्भ में व पुराने संदर्भों को ध्यान में रखकर कुशलतापूर्वक अपना कार्य कर रहे है।

जहाँ तक अर्जुनसिंहजी की प्रशासनिक क्षमता का सवाल है इसमें कोई दो राय नहीं कि उनकी पकड़ प्रशासन पर बराबर रही है। इतने बड़े प्रदेश की विभिन्न समस्याओं को हल करने का प्रयास उन्होंने सदैव किया है। अतएव यह कहा जा सकता है कि समस्याओं से वे दूर नहीं भागते, समस्याओं को हल करने में उनका विश्वास रहता है। वे एक अच्छे पार्लियामेंटेरियन हैं। एक अच्छे पार्लियामेंटेरियन के लिए ज़रूरी है कि वो उन विषयों के बारे में पूरी गम्भीरता के साथ तथ्यात्मक जानकारी रखते हुए कार्य करें। यह गुण अर्जुनसिंहजी में है।

इसमें दो राय नहीं है कि अर्जुनसिंहजी जब मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने तबसे मध्यप्रदेश में कला, साहित्य, संस्कृति को प्रचुर बढ़ावा मिला। यही कारणा है कि **भारत-भवन** के निर्माण में आरम्भ से अन्त तक नहीं थकने वाले प्रयत्न किये। यही कारण है कि आज पूरे देश में **भारत-भवन** ने म.प्र. को कला, साहित्य संस्कृति के मंच के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

हरिजन-आदिवासियों की समस्याओं को हल करने में अर्जुनसिंहजी ने काफ़ी दिलचस्पी ली है। उनके उत्थान के अनेक कार्यक्रम प्रदेश में उन्होंने लागू किये। मुख्य रूप से झुग्गीवासियों को मालिकाना हक़ दिलाने के संबंध में विधेयक 1984 में उन्होंने प्रस्तुत किया जो बाद में पारित हुआ, वह एक उल्लेखनीय योगदान है। तेंदूपत्ते की नीति की शुरुआत उन्होंने ही की थी और इस कार्य में उन्होंने काफ़ी कठिनाइयाँ भी झेलीं। उनके मुख्यमंत्रित्व काल के पश्चात् हम लोगों ने प्रदेश में तेंदूपत्ते की नीति को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। जिसका परिणाम था कि 1988-89 में तथा 89-90 में म.प्र. शासन को तेंदूपत्ता उद्योग से न केवल मुनाफा हुआ बल्कि तेंदूपत्ता तोड़ने वालों को समुचित पारिश्रमिक भी मिला। उन्हें बोनस देने का जो कार्यक्रम हमने तय किया था वह यद्यपि सफल रहा किन्तु प्रदेश में कॉंग्रेस की सरकार न रहने के बाद तेंदूपत्ते का कोई 113 करोड़ रुपया आज भी राज्य सरकार के पास जमा है और वह उन्हें प्राप्त नहीं हो सका।

साम्प्रदायिकता को मूल से समाप्त करने का प्रयास तो होता रहा किन्तु साम्प्रदायिक सौहार्द्र की जो भावना अर्जुनसिंहजी के मुख्यमंत्रित्व काल में थी आज वह कहीं दिखलाई नहीं पड़ती। जो साम्प्रदायिक शक्तियाँ हैं वे आतंक के वातावरण में इस मूल प्रश्न से परे हटकर जिस प्रकार कार्य कर रही हैं वह प्रदेश की साम्प्रदायिक सद्भावना को

बुरी तरह से ठेस पहुँचाने वाला है।

विधानसभा हो या लोकसभा, विचारों को हम संयत भाषा में ही प्रस्तुत करने के पक्षधर हैं। असंयत भाषा से मूल विषय की गम्भीरता समाप्त हो जाती है तथा उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अर्जुनसिंहजी काफ़ी शिष्ट भाषा का प्रयोग करते हैं तथा वे काफ़ी सुविचारित बोलते हैं।

ऐसे बहुत से क्षण हैं जिन्हें मैं आत्मीय क्षण कहना चाहूँगा। प्रदेश के विकास के मामले में कई बार चर्चाएँ की हैं। समय-समय पर उनसे तमाम चर्चाएँ होती रही हैं। वे क्षण तो अब लौट के नहीं आ सकते। लेकिन उन क्षणों को निश्चित रूप से हम लोग याद करते हैं, मैं तो याद करता हूँ।

☐ *मोतीलाल वोरा— उत्तरप्रदेश के पूर्व राज्यपाल, पत्रकार, राजनेता, मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा छत्तीसगढ़ प्रदेश काँग्रेस के अध्यक्ष तथा अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के कोषाध्यक्ष हैं। कठोर परिश्रम, सतत सेवाभावना तथा संगठन को समर्पित श्री वोरा प्रभावशाली लेखक एवं वक्ता हैं।*

श्री अर्जुनसिंह : मेरी नज़र में

सत्यप्रकाश मालवीय
(सदस्य-राज्यसभा)

पाँच नवम्बर को केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री श्री अर्जुनसिंह का 75वाँ जन्म-दिवस पड़ रहा है और इस अवसर पर मैं उनके दीर्घ तथा स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ वह एक परिपक्व तथा सूझ-बूझ वाले राजनैतिक नेता हैं तथा राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं की पीड़ा वह भलीभाँति समझते हैं। वह एक कुशल प्रशासक हैं तथा जिस विभाग में वह मंत्री रहते हैं उसकी पकड़ उनमें होती हैं।

मध्यप्रदेश में वह मंत्री से मुख्यमंत्री तक रहे, पंजाब में राज्यपाल रहे। काँग्रेस पार्टी के उपाध्यक्ष रहे। केन्द्र में संचारमंत्री रहे और अब मानव संसाधन विकास मंत्री हैं, इन पदों के दायित्व को उन्होंने समझदारी और योग्यता से निभाया है।

उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि उनमें संगठनात्मक शक्ति भी है। इधर साम्प्रदायिकता और निहित राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये धर्म और राजनीति के अपवित्र गठबंधन से उत्पन्न ख़तरे की ओर उन्होंने देशवासियों का ध्यान आकर्षित किया है तथा विभिन्न क्षेत्रों का दौरा भी किया है। उनका कहना है कि धर्मनिरपेक्षता हमारे संविधान के मूलसिद्धांतों में से एक है और आवश्यकता इस बात की है कि हम धर्मनिरपेक्षता के आधार को मज़बूत करें, इसके आदर्शों के प्रति अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त करें ओर लोगों को साम्प्रदायिक शक्तियों से निबटने के लिये प्रेरित करें। उनके इन विचारों से किसी के लिये भी असहमत होना मुश्किल है।

स्वर्गीय शेख अब्दुल्ला के जन्म-दिवस पर आयोजित समारोह में दिनांक 5 दिसम्बर 1991 को उन्होंने ठीक ही कहा था कि—आज आवश्यकता इस बात की है कि लोगों के दिमाग़ और दिल का मिलन हो और फूट पैदा करने वाले तत्वों से बचे रहने का दृढ़ संकल्प लिया जाये तथा अपनी समस्याओं को सभ्य एवं लोकतांत्रिक ढंग से हल करने के लिये हर संभव प्रयास किये जायें।

जो राजनीति में सक्रिय रहते हैं, उच्च पदों पर रहते हैं उनके राजनैतिक विरोधी भी बहुत होते हैं और यह बात श्री अर्जुनसिंह पर भी लागू होती है। अक़सर वह विवादों के घेरे में आ जाते हैं, लेकिन इसमें उनका दोष है, या दोष है इस देश की राजनैतिक शैली का, कहना मुश्किल है।

उन्होंने तिरुपति में अखिल भारतीय काँग्रेस के अधिवेशन में काँग्रेस कार्यकारिणी का चुनाव लड़ा और जीते भी लेकिन काँग्रेस अध्यक्ष ने उन्हें कार्यकारिणी के निवार्चित सदस्य से नामांकित सदस्य में परिवर्तित कर दिया और यह भी श्री सिंह की अनुमति से हुआ। काँग्रेस अध्यक्ष का यह कार्य अलोकतांत्रिक था तथा मतदाताओं का उपहास था। श्री अर्जुनसिंह ने इसके लिये अपनी सहमति देकर भूल की, ऐसी मेरी धारणा है। इसे मैं उनकी कमज़ोरी भी कहता हूँ। वह बराबर इस बात का एहसास दिलाते रहते हैं कि काँग्रेस में नेतृत्व में वह नम्बर दो पर हैं।

उनसे मेरी निकटता तो नहीं है फिर भी उनसे थोड़े बहुत सम्पर्क के कारण मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि श्री अर्जुनसिंह जैसे नेता किसी भी राजनैतिक दल और राजनैतिक कार्यकर्ताओं के लिये एक निधि और संबल है।

☐ *सत्यप्रकाश मालवीय— प्रभावशाली राजनेता, राज्यसभा सदस्य, श्रेष्ठ संसदीय वक्ता श्री सत्यप्रकाश मालवीय सक्रिय राजनीतिज्ञ-समाजसेवी हैं। आप काँग्रेस में समाजवादी विचारधारा के प्रबल पक्षधर तथा स्पष्टवादी टीकाकार एवं विश्लेषक के रूप में जाने जाते रहे हैं।*

उनके व्यक्तित्व में धैर्य, सरलता और सहनशीलता का समन्वय है

दिग्विजयसिंह
(पूर्व मुख्यमंत्री, म.प्र.)

मैं माननीय अर्जुनसिंहजी पर कुछ बोलूँ उससे पूर्व संस्कृत का एक श्लोक सुनाना चाहूँगा कि "अमन्त्रो अक्षरोनास्ति, नास्ति मूलो अनौषधम् अयोग्यो पुरुषो नास्ति,.... तत्र दुर्लभ।" अर्थात् ऐसा कोई अक्षर नहीं है जिससे कोई मंत्र प्रांरभ न होता हो, ऐसी कोई वनस्पति नहीं है जिससे कोई औषधि न बनती हो, ऐसा कोई पुरुष नहीं जिसकी कोई न कोई योग्यता न हो, दुर्लभ यदि कोई है तो वह है व्यक्तित्व। अर्जुनसिंहजी दुर्लभ व्यक्तित्व के धनी हैं। वे व्यक्ति की योग्यता की सही परख करते हैं और तदनुकूल उस प्रतिभा का समुचित उपयोग भी। मैं समझता हूँ कि इसके साथ-साथ उनमें प्रचुर राजनीतिक साहस है, व्यक्तिगत साहस का कोई अभाव नहीं है और कई बार निकट से ये बात उनमें हमें देखने को मिली है। उनके व्यक्तित्व की एक ख़ास विशेषता ये है कि ये बोलते बहुत कम हैं, सुनते ज़्यादा हैं। लोगों में विश्वास पैदा करने की अद्‌भुत क्षमता उनमें हैं, वे लोगों की बात को बहुत ध्यान से सुनते हैं। मैने तो बहुत निकट रहकर उनके साथ काम किया हैं, उनके जैसा व्यक्तित्व आज राजनीति में बहुत कम देखने को मिलता है।

अर्जुनसिंहजी की प्रशासनिक दक्षता तो अद्‌भुत है। किन्हीं भी प्रशासनिक प्रश्नों का हल उनके पास है। हम जब मंत्री थे और जब उनके साथ किसी फाइल पर चर्चा करने जाते थे तो गहन अध्ययन करके जाते थे ताकि हर मुद्दे पर किसी भी पहलू पर हम उनको राय दे सकें। मुझे ये कहने में ज़रा भी संकोच नहीं है कि कई बार कुछ मुद्दों पर उन्होंने कई ऐसे बिंदुओं की ओर संकेत किया जिस पर मैंने किसी भी कोण से ध्यान नहीं दिया था। किसी भी मुद्दें के पक्ष और विपक्ष दोनों पर सोचकर उसके अन्तिम परिणाम के बारे में सही निर्णय लेने की अद्‌भुत क्षमता उनमें है। यही वह कारण है जिसकी वजह से उनकी गिनती म.प्र. के उन मुख्यमंत्रियों में की जाती है जिनमें अद्‌भुत प्रशासनिक क्षमता है। जैसा कि मैंने कहा कि उनमें निर्णय लेने की अद्‌भुत क्षमता है इसका एक उदाहरण देता हूँ— प्रांत में अनेकों ऐसे परिवार हैं जिन्हें झुग्गी-झोपड़ियों में रहना पड़ रहा है, और जब उन्होंने ये निर्णय लिया कि प्रांत के जितने भी आवासहीन व्यक्ति हैं जो शहरों में आकर बस गए हैं लेकिन न तो उनके पास पैसा है मकान बनाने को, उनको ज़मीन के पट्टे दिए जाएँ। ग्रामीण क्षेत्रों में जो लोग सरकारी खाली ज़मीन पर रह रहे थे उन्हें वहाँ रहने दिया, यही बात वे शहरी क्षेत्र में देखना चाहते थे। शहरों में झुग्गी-झोपड़ीवासियों को पट्टा देने का काफ़ी विरोध हुआ। प्रशासकीय अधिकारी पूरी तरह से इसका विरोध कर रहे थे किंतु अन्ततोगत्वा अर्जुनसिंहजी की राजनीतिक इच्छाशक्ति सर्वोपरि रही और उन्होंने लाखों परिवारों को सम्मान से जीवन-यापन का अधिकार प्रदान किया। झुग्गी-झोपड़ीवासियों को न केवल पट्टा दिया अपितु प्रत्येक घर में एक बत्ती कनेक्शन भी दिया। उन्हें रोज़गार उपलब्ध कराने के लिए एक योजना भी क्रियान्वित की, इसके साथ साफ़-सफ़ाई के लिए भी कई योजना बनाई।

म.प्र. में कृषि के विकास में अर्जुनसिंहजी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके कार्यकाल में यहाँ सोयाबीन उत्पादन पर ज़ोर दिया गया जिसके कारण आज पूरे प्रांत में सोयाबीन के उत्पादन में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। छत्तीसगढ़ में उन्होंने जो रबी में मूँगफली उगाने का प्रयास किया उससे भी वहाँ अनेक क्षेत्रों में फ़ायदा हुआ है और मज़दूरों के पलायन पर रोक लग सकी है। ये दो मुद्दे ऐसे हैं जिस पर कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अर्जुनसिंहजी का कृषि के विकास में सराहनीय योगदान रहा। कर्ज़ा माफ़ी की बात उन्हीं के समय पूरे देश में हुई थी और ये भी सही है कि उनके समय ज्यादा फर्टिलाइज़र कन्ज़म्शन का ग्रोथ भी हुआ। गोबर-गैस प्लांट भी सबसे अधिक उन्हीं के समय में लगे। वे एक व्यक्ति ऐसे थे जो छोटी-छोटी बातों को जानते थे, समझते थे और प्रान्त के विकास की एक निश्चित रूपरेखा उनके पास थी। वे लम्बे समय तक म.प्र. की राजनीति से जुड़े रहे तो इसके कारण उनका मुख्यमंत्रीकाल मैं तो कहूँगा कि अदभुत काल रहा है, जिसमें म.प्र. में अत्यधिक विकास हुआ। लघु वनोपज के बारे में भी उन्होंने एक क्रांतिकारी निर्णय लिया था तेंदूपत्ते के विषय में, जब उन्होंने तेंदूपत्ता तोड़ने वाले मज़दूरों को इसका मालिकाना हक़ सौंपा था।

लोग कहते थे कि ये पॉलिसी फेल हो जायेगी लेकिन वे अपने निर्णय पर अडिग रहे और उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि जहाँ तेंदूपत्ते से आय सरकार को केवल 50 से 60 करोड़ रुपये होती थी, वह आय एक वर्ष में ही बढ़कर 275 करोड़ रुपये हो गयी। इस आय के आधे से अधिक हिस्सा-डेढ़ सौ करोड़ रुपया— मज़दूरों को बोनस के रूप में मिलता था, अगर वह बँट गया होता तो बस्तर के मज़दूरों को जहाँ आज पच्चीस रुपये प्रति सौ गड्डी मज़दूरी मिल रही है वहाँ उन्हें लगभग सत्तासी रुपये प्रति सौ गड्डी मिलती दूसरी ओर राजगढ़ जहाँ अच्छे स्तर की पत्तियाँ नहीं मिलती हैं वहँ भी लगभग बयालीस रुपये प्रति सौ गड्डी की क़ीमत मिलती, इसके कारण एक नई फिज़ा पूरे प्रान्त में मज़दूरों के बीच में बनी थी, जिसमें मज़दूरों को अपनी लघु वनोपजों पर अधिकार की उम्मीद जागी थी। दुःख इस बात का है कि इसे भी राजनीति से जोड़कर देखा गया, चूँकि अर्जुनसिंहजी ने निर्णय लिया था इसलिए उसे बदलने के लिए पुरज़ोर प्रयास किया गया, आज स्थिति यह है कि पूरे प्रान्त में तेंदूपत्ता व्यवसाय से न तो कोई आमदनी हो रही है और न ही मज़दूरों को कोई लाभ मिल रहा है।

वे एक अच्छे पार्लियामेंटेरियन हैं। वे लोकसभा में एक संसद सदस्य के रूप में तो बहुत कम बैठे। प्रायः वे मंत्री के पद पर ही रहे लेकिन जो भाषण हुए हैं वो अपने आप में काफ़ी प्रभावशाली रहे हैं। अभी पिछले सत्र में उन्होंने जिस प्रकार से— श्री नरसिम्हाराव के मंत्रिमण्डल के ख़िलाफ़ जो अविश्वास प्रस्ताव आया— भाषण दिया वह वाकई में अद्वितीय रहा। वे एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनका कि हिन्दी और अँग्रेजी दोनों पर बहुत अच्छा कमाँड है। शुरू में जब श्री नरसिम्हाराव लोकसभा में चुनकर नहीं आए थे, तब लोकसभा में लीडर ऑफ द हाउस अर्जुनसिंहजी थे उन दिनों में भी उन्होंने बड़े प्रभावी ढंग से सदन के नेता के रूप में सदन की कार्यवाही को संचालित करने में बड़ी सक्षमता से कार्य किया।

अर्जुनसिंहजी एक ऐसे व्यक्ति हैं जो स्वयं साम्प्रदायिक सद्भाव का उदाहरण हैं जब अर्जुनसिंहजी मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे तब साम्प्रदायिक सद्भाव पूर्ण रूप से था। अल्पसंख्यक समुदाय को पूरा भरोसा था अर्जुनसिंहजी पर जबकि आज अल्पसंख्यक पूरी तरह से भयभीत हैं एवम पूरी तरह से असुरक्षित अनुभव कर रहे हैं।

अर्जुनसिंहजी के बारे में एक भ्रम है कि पूरा कार्य गुटबाज़ी के आधार पर करते हैं तथा अपने राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियों (पक्ष और विपक्ष दोनों) के साथ काम नहीं कर सकते। लेकिन मेरा ये अनुभव रहा है कि जितने कार्य उन्होंने अपने राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियों के किये हैं इतने और दूसरों किसी के शायद नहीं किये होंगे। मै यह कह सकता हूँ कि जब उनका कोई राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी अपने किसी निजी कार्य के लिए गया हो अर्जुनसिंहजी ने बढ़कर उसकी मदद् की

है। अनेक बार उन पर पार्टी में भी गुटबाज़ी का आरोप लगता रहा है किन्तु उनका विरोध व्यक्ति के आधार पर नहीं रहा है वह मूल्यों के आधार पर रहा है। जो लोग पार्टी के साथ रहे, जिन्होंने इंदिरा गाँधीजी के नेतृत्व में, राजीवजी के नेतृत्व में विश्वास व्यक्त किया है, अर्जुनसिंह जी के संबंध हमेशा उनके साथ अच्छे रहे है। लेकिन कुछ ऐसी हस्तियाँ भी रहीं जिनका विश्वास इंदिराजी तथा राजीवजी पर नहीं रहा, उनके साथ अर्जुनसिंहजी का कोई निजी विवाद नहीं था। उनका विवाद पूर्णतः राजनीतिक बिंदुओं पर और राजनीतिक मुद्दों पर था। यही बात उनके व्यक्तित्व को एक पृथक् आभा प्रदान करती है।

राजनीति से परे हमारे वैयक्तिक संबंध काफ़ी सुमधुर हैं। दो घटनाएँ मुझे आज भी याद आती हैं जिन्हें मैं कहना चाहूँगा— एक बार हम लोग ग्वालियर से शिवपुरी के एक गाँव में— जहाँ डाकुओं ने हत्या कर दी थी, हरिजनों की हत्या हो गई थी— जा रहे थे। हमारा हैलिकॉप्टर ग्वालियर से उड़ा और बीच में पायलट ने ख़बर दी कि हैलिकॉप्टर में खराबी आ गई है और इसलिए हम गाँव नहीं पहुँच पायेंगे, इसलिए वापस लौटेंगे। इसकी गंभीरता तो तब ज्ञात हुई जबकि पायलट ने कई बार हैलिकॉप्टर नीचे लाने की कोशिश की लेकिन वह उतार नहीं पाया। हम चार-पाँच लोग थे, मैं था, अर्जुनसिंहजी, टुमनलालजी, दाऊ हनुमंतसिंहजी तथा श्री हरिवल्लभ शुक्ल भी थे। हम लोगों में स्वाभाविक रूप से घबराहट थी कि भई ये क्या हो रहा है? लेकिन अर्जुनसिंहजी का धैर्य और आत्मविश्वास उस दिन हमको देखने को मिला। इस पूरी घटना में उन्होंने अपना धैर्य नहीं खोया और अंत में पायलट को यही लिखकर दिया कि आप हैलिकॉप्टर को नीचे उतारिए और बाक़ी सब ईश्वर पर छोड़िए। वही हुआ, हैलिकॉप्टर नीचे उतरा और एक बहुत बड़ी दुर्घटना टल गई, क्रैशलैंडिग हुई लेकिन किसी को चोट नहीं आई। उस समय हम लोगों की घबराहट स्वाभाविक थी किन्तु अर्जुनसिंहजी की शक्ल पर कोई शिकन नहीं थी। आधे घंटे बाद दूसरा हैलिकॉप्टर आया और फिर उससे हम लोग गए। दूसरी घटना याद आती है, जबकि बड़ी राजनीतिक जोड़-तोड़ चल रही थी प्रांत में, हम लोकसभा के दो उपचुनाव— सागर और जबलपुर के हार चुके थे तब बड़ी ज़ोरदार अफ़वाहें उड़ रही थीं कि अर्जुनसिंहजी को मुख्यमंत्री पद से बदला जायेगा। ऐसी परिस्थिति में चीफ़ मिनिस्टर का परेशान होना स्वाभाविक ही था लेकिन उस समय भी मैंने हवाई जहाज में उन्हें नॉवेल पढ़ते हुए देखा है। किसी भी विराट परिस्थिति में उन्होंने अपना धैर्य नहीं खोया। उनमें धैर्य, सरलता और सहनशीलता का अद्‌भुत समन्वय है और किसी से इनकी तुलना आज के दौर में नहीं की जा सकती।

☐ *दिग्विजयसिंह— मध्यप्रदेश के दो बार मुख्यमंत्री, प्रदेश काँग्रेस महामंत्री, प्रदेश काँग्रेस अध्यक्ष तथा वर्तमान में अखिल भारतीय काँग्रेस के महामंत्री श्री दिग्विजय सिंह इंजीनियरिंग स्नातक हैं। आप कुशल संगठनकर्त्ता, रणनीतिकार तथा प्रभावशाली वक्ता हैं। मृदुल मुस्कान से शत्रुओं को मित्र बनाने में माहिर श्री दिग्विजयसिंह सफल राजनीतिज्ञ हैं।*

वे पूरी सद्भावना के साथ काम करते हैं

श्यामाचरण शुक्ल
(पूर्व मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश)

अर्जुनसिंहजी से मेरा परिचय 1957 में विधानसभा के सदस्य बनने के कुछेक दिन के ही बाद से है। उस समय वे स्वतंत्र रूप से चुन कर आए थ। कुछ ही दिनों बाद जब देश की राजनीति में बहुत उठा-पटक हो रही थी तब हम लोग निकट आए। काटजू साहब का जो उपचुनाव नरसिंहगढ़ का हो रहा था उसमें हमने साथ-साथ काम किया। तबसे हमारा परिचय ज़्यादा हुआ। व्यक्तिगत रूप से अर्जुनसिंहजी का मधुर स्वभाव है। बातचीत में भी "ओल्ड वर्ल्ड कर्ट्सी" वाली बात उनमें है। हमारे वैयक्तिक सम्बन्ध बहुत अच्छे हैं। पार्टी में काम करते हुए कई बार संघर्ष की स्थिति भी आई। उस समय मैं विधानसभा में नहीं था इसलिए कभी उनसे सीधा टकराव नहीं हुआ। वे पी.सी.सी.के अध्यक्ष भी रहे, बाद में मुख्यमंत्री भी हुए, विधानसभा में विपक्ष के नेता के रूप में संजीदगी का परिचय दिया। उनके साथ काम करने में हमें हमेशा सहूलियत रहती है। वे पूरी सद्भावना के साथ तथा सहयोग के साथ काम करते है। यद्यपि हमारे राजनैतिक दृष्टिकोण में फ़र्क़ ज़रूर रहा। हम लोगों की पृष्ठभूमियाँ भिन्न रहीं किन्तु संघर्ष की स्थिति नहीं हुई। इसलिए उनके साथ काम करने की मेरी जो स्मृतियाँ हैं वे सुखद हैं। वे उत्कृष्ट कोटि के पार्लियामेंटेरियन हैं। साथ ही उनकी प्रशासनिक दक्षता पर भी शक नहीं किया जा सकता।

☐ *श्यामाचरण शुक्ल— मध्यप्रदेश के सबसे वयोवृद्ध नेताओं में अग्रणी, पंडित श्यामाचरण शुक्ल वर्तमान में छत्तीसगढ़ में, उम्र के आख़िरी दशक में भी सक्रिय हैं। आप मध्यप्रदेश में दो बार मुख्यमंत्री तथा संसद् सदस्य रह चुके हैं। सहृदय, उदार, भले राजनेता के रूप में प्रतिष्ठित पंडित श्यामाचरण शुक्ल सतत समाजसेवा को समर्पित हैं।*

नमन करता हूँ श्री अर्जुनसिंह को

आरिफ़ नसीम खान
(पूर्व मंत्री, महाराष्ट्र)

मैं उन कुछ भाग्यशाली लोगों में से हूँ जिन्होंने श्री अर्जुनसिंह को जानने और उनकी कार्यशैली को समझने का अवसर मिला। कोशिश हमेशा इस बात की रहती हैं कि उनके दिखाए हुए रास्ते पर चलूँ। उन्होंने अपनी कार्यशैली में खुलापन और उदारता का जो रूप-स्वरूप अपना रखा हैं उसे अपनी कार्यशैली में अपनाने का प्रयास करूँ। उनके साथ विभिन्न विषयों पर चर्चा करने के कई बार मुझे अवसर मिले हैं। जितनी बार भी उनसे मिलकर उनके कक्ष से बाहर निकलता रहा हूँ पहली मुलाक़ात से ज़्यादा प्रभावित होता रहा हूँ। उनमें कुछ ऐसी कशिश हैं जिसकी वजह से आप खुद ही उनकी तरफ़ खिंचे चले जाते हैं। उनके विचारों में ऐसी सार्थकता और प्रौढ़ता है जिससे मुतासिर हुए बिना आप रह नहीं सकते। वह कभी भी आपको यह नहीं कहेंगे कि आप उनके कहे का अनुसरण करें लेकिन यह सच हैं कि उनके कहे और विचारों की आप अवहेलना करने का साहस भी नहीं कर सकते।

अर्जुनसिंहजी बहुआयामी व्यक्तित्व के मालिक हैं। शायद ही ऐसा कोई विषय होगा जिस पर उनकी पकड़ न हो। अगर किसी विषय में उनकी पूर्णता नहीं भी हैं तो अपने अधूरे ज्ञान को पूर्ण करने में उन्हें संकोच कभी नहीं रहा। शायद यही कारण हैं कि केन्द्र सरकार में उन्हें जो भी महकमे दिए गए उनके निर्वहन में उन्हें कभी दिक्क़त पेश नहीं आई। अलबत्ता ऐसे सभी मंत्रालयों में वह अपनी अलग सोच और छाप ही छोड़ते गए हैं। उन्होंने वाणिज्य मंत्रालय के काम को भी बख़ूबी अंजाम दिया था और संचार मंत्रालय में उनके कार्यों और उपलब्धियों की चर्चा आज भी होती हैं। यह उन दिनों की बात हैं जब आज जैसी उदार नीतियाँ वज़ूद में नहीं आई थीं। बावज़ूद इसके उनकी पैनी दृष्टि कठिनाइयों का हल तलाश ही लिया करती थी।

जहाँ तक मानव संसाधन विकास मंत्रालय का काम हैं अर्जुनसिंहजी पहले भी मंत्रालय का काम देख चुके हैं। लिहाज़ा उनके लिए इस मंत्रालय के सोच और मानसिकता को समझना मुश्किल नहीं है। अलबत्ता इस समय कुछ ऐसे कठोर निर्णय ज़रूर लेने पड़ रहे हैं जो उनकी दृष्टि में पहले की सरकार ने भावनाओं और भावावेश में आकर लिए थे। जिस राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वह शिक्षा को स्थापित करना चाहते हैं उसी दिशा में वह काम कर रहे हैं। अपने दायित्व को वह व्यावहारिक और रचनात्मक दृष्टि से देखते आए हैं। पिछले सत्ताधारियों के निर्णयों में अगर वह यहाँ वहाँ उलटफेर कर रहे हैं तो उसमें किसी तरह की बदले की भावना से वह ऐसा नहीं कर रहे हैं बल्कि सार्थक और व्यावहारिक सोच के कारण उन्हें ऐसे कदम उठाने पड़ रहे हैं। अर्जुनसिंहजी समस्याओं को समग्र रूप से देखते हैं, संकुचित दृष्टिकोण से नहीं। शिक्षा नीति में परिवर्तन का कारण उनकी इसी व्यापक और समग्र सोच का ही नतीजा हैं।

श्री अर्जुनसिंह में एक और खासियत हैं। वह बहुत ही अनुशासित और आस्थावान व्यक्ति हैं। जिससे वह जुड़ गए तो अंत तक उसका साथ देते हैं। वह अपने आपको काँग्रेस का अनुशासित सिपाही कहते और मानते हैं। इसमें

दो राय नहीं कि उन्होंने काँग्रेस पार्टी के हितों की सदैव रक्षा की है। जिन दिनों उन्हें काँग्रेस पार्टी का उपाध्यक्ष बनाया गया था, जिस तरह से पार्टी की एकजुटता के लिए उन्होंने काम किया था, उनके विरोधियों में हड़कंप मच गया था। लेकिन पार्टी की छवि सुधारने के लिए उन्होंने कभी कोई समझौता नहीं किया। यह उनका चारित्रिक बल है। अर्जुनसिंहजी ने इंदिरा गाँधीजी, राजीव गाँधीजी और सोनिया गाँधीजी के साथ काम करते हुए अपनी जिस निष्ठा का परिचय दिया उसकी प्रशंसा तो उनके विरोधी भी करते हैं, क्योंकि अर्जुनसिंहजी पारदर्शी सोच के व्यक्ति हैं इसलिए लुकाछुपी में विश्वास नहीं रखते। इसका यह मतलब भी नहीं कि वह गंभीर और गुप्त निर्णयों को भी सार्वजनिक करते हैं। अर्जुनसिंहजी अपने विचार हमेशा ही नपेतुले शब्दों में व्यक्त करते आये हैं। उनके मुँह में कोई अपने विचार ठूंसने का साहस नहीं कर सकता।

अर्जुनसिंहजी सभी को साथ लेकर चलने में विश्वास रखते हैं। मानव संसाधन विकास मंत्री के नाते जिस तरह से उन्होंने अल्पसंख्यकों के लिए कार्य किए हैं, इसे उनकी नई पहल के तौर पर माना जा सकता हैं। अर्जुनसिंहजी वही व्यक्ति हैं जिन्हें मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री पद की शपथ ग्रहण करने के बाद ही पंजाब के राज्यपाल का पद ग्रहण करने का आदेश दिया गया था। क्या मजाल कि उनके चेहरे पर कोई शिकन आई हो। पंजाब के राज्यपाल पद को भी उन्होंने यादगार दायित्व बना दिया था। जिस तरह से संत हरचंदसिंह लोंगोवाल की अकाली पार्टी और प्रधानमंत्री राजीव गाँधी में एकता स्थापित कर राज्य से आतंकवाद समाप्त करने का समझौता कराया था, उसे आने वाली पीढ़ियाँ भी नहीं भुला पाएगे। उनके व्यक्तित्व की इतनी शाखाएँ हैं जिनका बखान करने बैठे तो समय और काग़ज़ कम पड़ जाएँगे। मेरा नमन है अर्जुनसिंहजी को।

☐ *आरिफ़ नसीम ख़ान— पूर्व मंत्री, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति, महाराष्ट्र; विधायक, महाराष्ट्र, विधानसभा*

मै उन्हें नम्बर एक पर देखना पसन्द करूँगा

बाबूलाल गौर
(मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश)

माननीय अर्जुनसिंहजी से मेरा व्यक्तिगत परिचय 1974 से है जबकि मैं पहली बार विधानसभा का सदस्य बना। दक्षिण भोपाल क्षेत्र से मैं चुना गया था। तब वे शिक्षामंत्री थे। मैंने एक अलग चमक देखी है उनके व्यक्तित्व में। बहुत सुजान-चतुर-राजनीतिज्ञ हैं वे।

मध्यप्रदेश के सांस्कृतिक विकास में उनका बहुत बड़ा योगदान है। वे सृजनशील व्यक्ति हैं, संवेदनशील व्यक्ति हैं। उनमें कला, संगीत, शिक्षा तथा संस्कृति का व्यापक समन्वय है। इसलिए उन्होंने मध्यप्रदेश के **भारत-भवन** को भारत की कला संस्कृति का केन्द्र बनाने का प्रयास किया है। यहाँ कई बड़े-बड़े आयोजन हुए। श्रीमती इंदिरा गाँधी भी भोपाल पधारीं, **भारत-भवन** के इस आयोजन में मुझे भी जाने का अवसर मिला। मैं अर्जुनसिंहजी के इस व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हूँ।

एक मित्र के रूप में मेरे उनसे बहुत अच्छे संबंध रहे है। यद्यपि मध्यप्रदेश विधानसभा में मैं बहुत ही कटु बोलता था क्योंकि मुख्य सचेतक के नाते मेरा जो धर्म है विरोधी दल का, उसको निभाता था तो वे बजाए कटुता के स्नेहमय वातावरण में मुझसे बातें करते थे। मुझे वहाँ वे मॉनीटर के नाम से पुकारते थे यद्यपि विधानसभा में मॉनीटर जैसा कोई पद नहीं होता।

मध्यप्रदेश में अभी तक जितने भी मुख्यमंत्री हुए हैं उनमें लोकप्रियता के मामले में, मैं माननीय अर्जुनसिंहजी को नम्बर एक पर देखना पसन्द करूँगा। उनमें प्रशासनिक शक्ति बहुत ग़ज़ब की है। वो जिस चीज़ को चाहते हैं, करवा लेते हैं। उनके शासनकाल में 1980 से 85 तक मैं उनके साथ रहा। जब भी विरोध का स्वर बहुत उग्र होता था तो उसको शांत करने के लिए वो वार्ता क्षीण कर देते थे, जैसे मैंने नर्मदा भोपाल लानी चाही और उसको जनता का संबल प्राप्त होने लगा था। बहुत बड़ा आन्दोलन भूमि से खड़ा होने लगा था तो उन्होंने मुझे बुलाया और कहा कि हम इसके ऊपर आपके साथ सहयोग करना चाहते हैं और नर्मदा भोपाल लायेंगे, सौभाग्य से क्या हुआ कि डॉ. शंकरदयाल शर्मा भोपाल आये, उन्होंने भी नर्मदा भोपाल लाओ के अभियान में अपना सहयोग देने के लिए और अपना समर्थन देने की घोषणा की, तो उन्होंने समझा कि जब डॉ. शंकरदयाल शर्मा इसका सहयोग कर रहे हैं तो हो सकता है कि भोपाल बंद हो। भोपाल में जुलूस निकले और कई स्वयंसेवी संस्थाएँ और कार्यकर्ता नर्मदा की परिक्रमा करने के लिए भोपाल चले आयें। इस आशंका से उन्होंने एक ज्वाइंट मीटिंग बुलाई डॉ. साहब को तो शायद बुलाया या नहीं बुलाया मालूम नहीं लेकिन मुझसे कहा कि आप क्या चाहते हैं? तो हमने कहा कि भोपाल में नर्मदा लाई जाय तो उन्होंने कहा कि मैं सैद्धान्तिक रूप से इसके पक्ष में हूँ। मैंने कहा कि केवल ऐसा नहीं है बल्कि आप राज्यपाल के भाषण जो सरकार की नीति का प्रतीक होता है उसमें उनसे कहलायें तो उन्होंने

मेरी इस बात को स्वीकार कर लिया लेकिन नर्मदा नहीं आई। घुमाने में मैंने कहा न, वो चतुर सुजान है, किसी भी आन्दोलन को घुमाकर और उसकी शक्ति को क्षीण कर सकने की उनकी क्षमता है।

☐ बाबूलाल गौर— मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल गौर भाजपा के वरिष्ठतम विधायक रहे है। स्वयं श्रमिक फिर श्रमिक नेता से मुख्यमंत्री तक के सफर में श्री गौर अपनी वकालत कभी नहीं भूले। श्रेष्ठ संगठनकर्ता, प्रभावशाली वक्ता, दीन-हीन दुर्बल वर्ग की सेवा को समर्पित श्री गौर उम्र के सातवें दशक को पार कर प्रदेश की जनता की सेवा को समर्पित है।

उनकी राजनीतिक क्षमता अद्वितीय है

कैलाशनारायण सारंग
(पूर्व राज्यसभा सदस्य, भाजपा)

मैं मान्यवर अर्जुनसिंहजी को 1965 से जानता हूँ, न केवल जानता हूँ अपितु उनके विगत बीस वर्षों के राजनीतिक इतिहास का मैं प्रत्यक्षदर्शी हूँ। वे म.प्र. के एक कुशल व चतुर राजनीतिज्ञ है। 56 से लेकर आज तक चाहे वे विधायक रहे हों, चाहे वे मंत्री के रूप में रहे हों, चाहे उपमंत्री के रूप में रहे हों, मुख्यमंत्री के रूप में रहे हों, गवर्नर के रूप में रहे हों, या आज केन्द्रीय मंत्री के रूप में हैं, वास्तव में म.प्र. की दृष्टि से क्या, देश की दृष्टि से उनका एक सहृदय व्यक्तित्व है। देश की सभी ज्वलंत समस्याओं, प्रश्नों चाहे वो कश्मीर का प्रश्न हो, चाहे पंजाब का, या असम या फिर चाहे म.प्र. के विकास का प्रश्न हो, अर्जुनसिंहजी का रचनात्मक योगदान निःसंदेह उल्लेखनीय है। ये एक ऐसा व्यक्तित्व है जो अखबारों की सुखियों में विगत चालीस बरसों से दिखाई देता है और ये उनकी लोकप्रियता का परिचायक है। मैं उनकी जीवटता, उनकी चीज़ों को परखने, समझने तदनुसार एक्ट करने की जो क्षमता है उसका मैं सदैव प्रशंसक रहा। यद्यपि म.प्र. में शायद सबसे मुखरित आलोचक मैं उनका हूँ, लेकिन वे मेरे बड़े भाई के सदृश हैं। हम जब व्यक्तिगत रूप से मिलते हैं, बात करते हैं तो छोटे भाई-बड़े भाई का रिश्ता हमारा सदैव रहता है। मैं उनका सम्मान करता हूँ, परंतु राजनीतिक क्षेत्र में मैं उनकी सबसे अधिक कटु आलोचना करने के लिए विख्यात हूँ। ये बात वे भी जानते हैं। लेकिन उनकी राजनीतिक क्षमता वास्तव में अद्वितीय है।

ही इज़ ए वैरी गुड पार्लियामेंटेरियन। अपनी बात को बहुत अच्छे ढंग से, तीखे ढंग से, प्रभावी ढंग से सामने वाले को लाजवाब करने वाले ढंग से बात रखने वाले इने-गिने पार्लियामेंटेरियन में से हैं वे। यद्यपि बहुत अच्छे वक्ता नहीं है वे, लेकिन अपनी बात कहने में कहीं दिक्क़त नहीं आती वे अपनी बात बड़े प्रभावी ढंग से रखते हैं लोगों के दिलों को छू लेते हैं। वे बड़े शालीन हैं, वे बोलते बहुत कम हैं, सुनते बहुत अधिक है।

निःसंदेह म.प्र. की कला, साहित्य, संस्कृति के विकास में अर्जुनसिंहजी का योगदान उल्लेखनीय है। यद्यपि जिस तरीक़े से उन्होंने काम किया उससे मेरा मतभेद रहा, मैं बोला भी, परंतु इसमें मुझे कहने में ज़रा भी संकोच नहीं कि अर्जुनसिंहजी के पहले विगत 35 वर्ष म.प्र. की कला-संस्कृति के लिए शुष्क वर्ष रहे, कहूँ तो ग़लत नहीं होगा। अर्जुनसिंहजी के आने के बाद संस्कृति की सलिला वही, वह निःसंदेह उनके पाँच साल के प्रयत्नों का नतीजा है। उन्होंने नये आयाम दिए है, मध्यप्रदेश में कला और संस्कृति को। उनके पाँच वर्ष के कार्यकाल के अंतिम ढाई वर्ष तो अति उत्तम रहे। **भारत-भवन** जैसे कला-संस्कृति के केन्द्र की स्थापना में उनका महान् योगदान रहा, जिसके कारण देश में म.प्र. का नाम कला और संस्कृति के मानचित्र पर आ गया। **भारत-भवन** का महत्त्व है। उसमें अर्जुनसिंहजी को माइनस नहीं किया जा सकता। मैं राजनीति की दृष्टि से अर्जुनसिंहजी को माइनस करके **भारत-भवन** की कल्पना करूँगा— दैट इज़ रॉंग। **भारत-भवन** उनका प्रयत्न है, उनके मित्रों का प्रयत्न है। स्वाभाविक रूप से वे कलात्मक हैं ही।

मैं बड़े खुले मन से कहूँगा— ही इज़ ए फ़ाइन मैन। ये फ़ाइन शब्द बड़ा उच्च शब्द है उस आदमी के लिए

वे फ़ाइन मैन हैं— सहदय आदमी है। एक घटना याद आती है— हमने पं. दीनदयाल उपाध्यायजी का जन्म दिवस 25 सितम्बर मनाने का तय किया। पटवाजी से कहा कि अर्जुनसिंहजी को लाया जाए। हम दोनों उनके पास गए, उन्होंने कहा कि विचार करेंगे। हम फिर गए तो उन्होंने कहा कि आऊँगा, तुम मुझे काँग्रेस में नहीं रहने देना चाहते, उन्होंने हँसकर कहा। उन्होंनें वादा किया कि मैं आऊँगा। अनेक विरोधों के बावज़ूद भी वे उस मंच पर पधारे। जिससे मैंने दो मोटे-मोटे अर्थ लगाए कि एक तो वे अपनी धुन के पक्के हैं, अपने कमिटमेंट्स के प्रति ईमानदार हैं, दृढ़ हैं। दूसरी बात ये कि किसी भी महापुरुष— जो कि किसी भी विचारधारा का क्यों न हो— के प्रति उनके मन में अगाध प्रेम और श्रद्धा है, चाहे वो बी.जे.पी. का हो, चाहे वो आर.एस.एस. का हो, चाहे वो कम्युनिस्ट पार्टी का हो। ये दो पहलू अर्जुनसिंहजी के व्यक्तित्व के मुख्य अंग है।

एक और घटना याद आती है, मेरी बेटी की शादी थी। मैं एक सामान्य आदमी हूँ मेरी बेटी की शादी में वे डेढ़ घंटे रहे तब वे मुख्यमंत्री थे। बारात आने में देर हो रही थी, दस-बारह हज़ार लोगों की भीड़ थी, बैठने की जगह नहीं थी, लेकिन डेढ़ घंटे वे खड़े रहे और जब-जब में उनके पास क्षमा माँगने गया तब हँसकर उन्होंने मेरी पीठ पर हाथ रखकर मुझे समर्थन दिया, आत्मविश्वास प्रदान किया— लगा कि जैसे कोई बड़ा भाई कह रहा हो कि नहीं भाई कोई चिंता मत करो। ऐसा सहदय व्यक्तित्व है उनका।

जब भी मैं उनसे मिला वे बड़े मीठेपन से मिले। जब वे केन्द्र में मंत्री बने, मैं संसद सदस्य बना। सेंट्रल हॉल में मैंने उनको बधाई देते हुए कहा कि मैं तो आपको नम्बर वन देखना चाहता था, तो हँस के बोले कि— "यहाँ भी पॉलिटिक्स?" मैंने कहा— "नहीं" ये बधाई मैं हृदय से देना चाहता था। म.प्र. का कोई व्यक्ति— किसी भी पार्टी का हो शीर्षस्थ स्थान पर पहुँचता है उससे बड़ी खुशी मुझे और कोई हो नही सकती। हम दोनों देर तक हँसते रहे। एक इंसान के रूप में अर्जुनसिंहजी इज़ ए फ़ाइन मैन। उनमें एक और जो ख़ूबी है जिसके बारे में, मैं सबको बताना चाहता हूँ- वह है, उदारता विकट उदारता है उस आदमी में जो कि बहुत कम राजनीतिज्ञों में होती है। अपने विरोधियों के व्यक्तिगत कामों को करने में जो उदारता उनमें है वैसा मैंने किसी में नहीं देखा। किसी व्यक्तिगत परेशानी में अगर उनका दुश्मन भी होगा और अगर उनके पास फ़रियाद लेकर पहुँच जायेगा तो अर्जुनसिंहजी उस फ़रियाद को नकारेंगे नहीं, भरसक प्रयत्न करेंगे परेशानी को दूर करने का। मैंने कभी भी उनको अपना व्यक्तिगत काम बताया, विदाउट रिज़र्वेशन उन्होंने उस काम को तुरंत किया। ये उनके ऐसे मानवीय पहलू है जिनके कारण उनके चाहने वालों की संख्या भारी हैं, अगर आलोचकों की संख्या भारी है तो प्रशंसको की संख्या भी उस भारी संख्या से किसी भी कीमत में कम नहीं है। दोनों का कहीं न कहीं एक ऐसा बैलेंस है, जो एक बार अर्जुनसिंहजी का बना सो बना। अर्जुनसिंहजी फिर से अपने प्रेम के पाश में ऐसे जकड़ लेते है कि वह निकल नहीं सकता।

☐ *कैलाशनारायण सारंग— मध्यप्रदेश में भाजपा को सड़क से सिंहासन तक पहुँचाने के सफ़र में श्री सारंग ने कार्यालय मंत्री के रूप में सारथी की भूमिका निभाई है। सफल संगठनकर्ता, प्रभावशाली वक्ता, पूर्व सांसद श्री सारंग ने सम्पूर्ण जीवन भाजपा को समर्पित कर समाजसेवा की अलख जगा रखी है।*

वे राजनीतिक विरोधियों को भी देते हैं सम्मान

लखीराम अग्रवाल
(पूर्व सांसद् व वरिष्ठ भाजपा नेता)

अर्जुनसिंहजी, मध्यप्रदेश के संदर्भ में काँग्रेस संगठन के एक ऐसे नेता हैं जिन्हें उनके दल के कार्यकर्त्ताओं का बहुत प्यार व सम्मान मिला। मेरा पूरा जीवन तो काँग्रेस विरोध की राजनीति में ही बीता है इसलिए मैं यह बात तटस्थ भाव से कह सकता हूँ कि भले नेताओं से उन्हें विरोध झेलना पड़ा हो पर काँग्रेसजनों के वे सही अर्थों में 'नायक' हैं।

उनकी इस लोकप्रियता के मुझे दो स्पष्ट कारण समझ में आते हैं। पहला अपनी विचारधारा के प्रति समर्पण और आग्रह, दूसरा जो भी कोई उनके सम्पर्क में आया उसकी पूरी मदद-चिंता करने का स्वभाव। किसी भी सीमा तक जाकर संरक्षण देने व मदद करने के स्वभाव ने उन्हें अपने जनाधार को पुष्ट करने में सहयोग दिया। इस चीज़ ने काँग्रेस के कार्यकर्त्ताओं में उनके असंख्य प्रशंसक पैदा किए। छत्तीसगढ़-मध्यप्रदेश में एक पूरी की पूरी नई पीढ़ी को राजनीति के मंच पर लाकर स्थापित करने का प्रयास उन्होंने किया। काँग्रेस संगठन के परंपरागत नेतृत्व के विरोध के बावज़ूद वे इस कार्य में सफल रहे। उनके निकट सम्पर्क में आने वाले काँग्रेसजन किस तरह उनके प्रशंसक बन जाते हैं यह सीखने की चीज़ है।

प्रतिपक्ष द्वारा उनके मुख्यमंत्रित्वकाल में किए गए तमाम फैसलों की तीखी आलोचना के बावज़ूद वे हम सबके प्रति शालीन व्यवहार ही रखते थे। भाजपा के कई वरिष्ठ नेताओं सर्वश्री सुन्दरलाल पटवा, बाबूलाल गौर व कैलाश जोशी से उनकी व्यक्तिगत मित्रता थी। राजनीति के घमासान का असर उन्होंने कभी परस्पर संबंधों पर नहीं पड़ने दिया। मुख्यमंत्री के नाते विपक्ष के नेताओं की बातें वे ध्यानपूर्वक सुनते थे। आज के समय जैसी राजनीतिक असहिष्णुता उस दौर में न थी। लोग लोकतांत्रिक परंपराओं का सम्मान करते थे। राजनीतिक लाभ और दलीय प्रतिबद्धताओं के साथ-साथ मानवीय भावनाएँ एवं प्रदेश का हित सर्वोच्च होता था। मुझे याद है कि भोपाल में पं. दीनदयाल उपाध्याय की स्मृति में एक आयोजन था। उसमें हमारे दल के नेताओं के आग्रह पर वे न सिर्फ़ आए बल्कि समारोह को संबोधित भी किया। मुख्यमंत्री के रूप में इस आयोजन में उनकी उपस्थिति काँग्रेस व भाजपा कार्यकर्त्ताओं के बीच काफ़ी चर्चा में रही। राजनीतिक औदार्य व एक दूसरे को सम्मान देने के ऐसे उदाहरण आज के परिवेश में दुर्लभ हैं। राजनीतिक तौर पर एक-दूसरे का विरोध करते हुए भी अपने मित्रवत व्यवहार को बनाए रखने की कला में अर्जुनसिंह सिद्ध है।

उनके योगदान की याद करूँ तो छत्तीसगढ़ काँग्रेस के संगठन को व्यापक सामाजिक आधार दिलाना सबसे महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने इस क्षेत्र में पिछड़े, दलित, आदिवासी वर्गों के बीच से नया-प्रखर नेतृत्व विकसित किया। जो आज भी प्रदेश की राजनीति में महत्त्वपूर्ण बने हुए हैं। इसके साथ ही छत्तीसगढ़ क्षेत्र के अनाम शहीदों, समाज सुधारकों, स्वतंत्रता सेनानियों के योगदान का स्मरण कराना उनका दूसरा बड़ा योगदान है। संतवर गुरु घासीदास, पंडित सुंदरलाल शर्मा, शहीद वीरनारायण सिंह, डॉ. खूबचंद बघेल, ठाकुर प्यारेलाल सिंह के प्रदेश तथा राष्ट्र के लिए उनकी सेवाओं को

रेखांकित करने का कार्य भी उनके ही मुख्यमंत्रित्वकाल में हुआ।

राज्यसभा में कुछ समय उनके साथ सांसद् के रूप में कार्य करने का भी मौक़ा मिला। मैंने देखा कि वे बोलते कम थे लेकिन जो बात रखते बहुत दृढ़ता– गंभीरता और अध्ययन करके कहते थे। उन्हें मुझे निकट से जानने व देखने का मौक़ा दरअसल खरसिया के उपचुनाव में मिला। वे मुख्यमंत्री थे और खरसिया विधानसभा क्षेत्र से काँग्रेस के प्रत्याशी थे। प्रमुख विपक्षी दल होने के नाते भाजपा ने इस चुनाव को चुनौती के रूप में लिया। श्री दिलीपसिंह जूदेव, भाजपा के प्रत्याशी थे तथा मुझे चुनाव संचालक बनाया गया। खरसिया मेरा गृहनगर था और दिलीपसिंहजी जशपुर से यहाँ चुनाव लड़ने आए थे। खरसिया सीट वैसे भी काँग्रेस का गढ़ मानी जाती है। पूर्व में जीते प्रत्याशी 25-30 हज़ार वोटों के अंतर से चुनाव जीता करते थे। सो अर्जुनसिंहजी इस सीट को निरापद मानकर ही यहाँ आए थे। उनका बड़ा क़द तथा मुख्यमंत्री का पद काँग्रेस के अतिरिक्त आत्मविश्वास का बड़ा कारण था। निश्चय ही भाजपा हर दृष्टि से उनके सामने क़मज़ोर थी। लेकिन हमने जिस तैयारी और लक्ष्यभेदन की योजना से काम शुरू किया वह महत्त्वपूर्ण थी। किन्तु अर्जुनसिंह एक चतुर राजनीतिज्ञ हैं। वे जब नामांकन भरने आए तभी ज़मीनी स्थितियों को भाँप गए। काँग्रेसजनों के अति आत्मविश्वास को किनारे कर वे खरसिया में ही जम गए। पूरी ताकत झोंक दी, परिवार और विश्वस्तजनों को मैदान में उतार दिया। सत्ता-संगठन सबकी शक्ति लगा दी। आज मुझे लगता है कि अर्जुनसिंहजी की जगह कोई भी दूसरा नेता होता तो धोखा खा जाता। किन्तु माहौल को भाँपने-आँकने और हाथ से निकलते चुनाव को अपने पक्ष में करके वे कुशल रणनीतिकार साबित हुए। इतने घमासान चुनाव के बावज़ूद खरसिया में कोई अप्रिय घटना नहीं हुई। हिंसा की कोई वारदात न हुई। इसे भी मैं अर्जुनसिंह के संयम व कुशल नेतृत्व का ही परिणाम मानता हूँ। पुलिस छावनी सा दिख रहा पूरा क्षेत्र तनाव की आशंका से ग्रस्त था। चुनाव निपटा तो सबने राहत की सांस ली।

एक संदर्भ और मज़ेदार है- खरसिया एक छोटा कस्बा है। जहाँ रहने को बड़े होटल या धर्मशालाएँ नहीं थीं। उस समय वहाँ के 'अग्रसेन भवन' जिसका मैं ही अध्यक्ष हूँ में दोनों दलों के कार्यालय बने। बिना भेदभाव किए मैंने ऊपरी मंजिल काँग्रेस को तथा भूमितल भाजपा को दिया। एक ही भवन में कार्यालय होने, हज़ारों कार्यकर्त्ताओं की आवाजाही और नारेबाज़ी के बावज़ूद कभी कोई तनावपूर्ण स्थिति भी निर्मित नहीं हुई। मेरा अपना मानना है कि अर्जुनसिंहजी ने बहुत चुनाव लड़े हैं पर खरसिया जितना संघर्षपूर्ण चुनाव उन्होंने नहीं लड़ा होगा।

उम्र के इस मोड़ पर भी वे बेहद सक्रिय और चैतन्य हैं। उनकी ढेरों यादें हैं। एक जाती है तो तुरंत दूसरी आती है। वे शतायु हों यह कामना है।

☐ *लखीराम अग्रवाल— भाजपा के बुज़ुर्ग नेता। मध्यप्रदेश व छत्तीसगढ़ में भाजपा के प्रदेश अध्यक्ष/प्रभारी रहे। दो बार राज्यसभा सदस्य भी। कुशल संगठनकर्ता के रूप में पहचान। संपर्क : गीतानगर, रायपुर (छत्तीसगढ़)।*

कुशल रणनीतिकार हैं श्री अर्जुनसिंह

नंदकुमार साय
(प्रदेश अध्यक्ष, भाजपा, छत्तीसगढ़ एवं सांसद)

मैं 1997 में पहली बार तपकरा विधानसभा क्षेत्र से जीतकर विधायक बना। मध्यप्रदेश में जनता पार्टी की सरकार बनी, श्री कैलाश जोशी हमारे मुख्यमंत्री बने। यहीं नेता प्रतिपक्ष के रूप में काँग्रेस विधायक दल का नेतृत्व करने वाले श्री अर्जुनसिंह से पहली भेंट हुई। मैं नया-नया विधायक बना था सो सदन की गतिविधियों को बड़ी जिज्ञासा से देखता था। हर सत्र का हर दिन मैंने पूरी तरह 'अटेंड' करने की कोशिश की। वहाँ श्री अर्जुनसिंह की विपक्ष के नेता के नाते प्रभावी भूमिका के दर्शन हुए। विरोधीदल किस तरह से काम करता है, कैसे अपने विधायकों को अनुशासन में रखते हुए वे सत्तापक्ष पर आक्रमण करते थे, यह सीखने की चीज़ है। वे आक्रमक होने के बावजूद बड़ी धीर-गंभीर शैली में बहुत धीरे-धीरे बोलते थे, किन्तु उनकी इस शैली में एक आकर्षण था।

श्री अर्जुनसिंह मूलतः समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। सो उनके भाषणों में कुछ शब्द बार-बार लौटकर आते थे। 'सर्वहारा वर्ग', 'पिछड़े हुए लोग', 'अनुसूचित जातियों-जनजातियों की चिंता' का वे हर भाषण में उन दिनों ज़िक्र करते थे। वे इन वर्गों का व्यावहारिक तथा ज़मीनी रूप से कितना भला कर पाए यह बहस का विषय हो सकता है पर अपने भाषणों में वे सर्वहारा वर्ग की चिंता ज़रूर करते। मुझे लगता है कि हर राजनेता की तरह वे भी इन वर्गों में अपना जनाधार बनाने के लिए ऐसा करते होंगे।

मुझे उनके व्यक्तित्व का एक जीवंत पक्ष खरसिया विधानसभा के उपचुनाव में देखने को मिला। हम उनके विरोधीदल में हैं - हमारे पक्ष से श्री दिलीपसिंह जूदेव प्रत्याशी थे। वे अपनी अलग छवि के कारण छत्तीसगढ़ में जाने जाते हैं। किन्तु मैदान में मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह की उपस्थिति ने मुक़ाबले को रोमांचक बना दिया। व्यापक विरोध के बावजूद, संयम रखते हुए स्थितियों को कैसे अपने अनुकूल बनाया जाता है यह मैंने श्री अर्जुनसिंह में वहीं देखा। अपने क्षेत्र से सुदूर छत्तीसगढ़ के एक क्षेत्र से चुनाव लड़ने का उनका फ़ैसला, जैसी भी सोच से लिया गया हो, पर हालत संगीन देख उन्होंने ख़ुद मैदान संभाला। बहुत परिश्रम कर, साधनों को झोंककर मैदान जीत लिया। युद्ध में विजय का ही मूल्य होता है। अर्जुनसिंह ने ख़ुद को युद्ध में झोंककर यह जीत अंततः हासिल की। हमारे जैसे लोग तो मानकर चल रहे थे कि खरसिया से भाजपा जीतेगी और मुख्यमंत्री रहते हुए चुनाव हारने के श्री कैलाशनाथ काटजू के नाम के साथ एक नाम और जुड़ जाएगा। लेकिन श्री अर्जुनसिंह को विजयश्री मिली। यह श्री अर्जुनसिंह के रणकौशल का ही परिणाम था कि जैसे-जैसे मतदान का समय निकट आता गया वे चुनाव को अपने पक्ष में करते चले गए। चुनाव जीतकर उन्होंने स्वयं को एक कुशल संगठक व रणनीतिकार के रूप में स्थापित कर दिया।

एक समय था जब उन्हें काँग्रेस पार्टी में काफ़ी पीछे करने की कोशिशें की गईं। जब वे प्रदेश के दुबारा मुख्यमंत्री बने तो उन्हें तत्काल इस्तीफ़ा दिलवाकर पंजाब में राज्यपाल के पद पर भेज दिया गया। इतिहास गवाह है कि उन दिनों पंजाब किस तरह आतंकवाद की आग में झुलस रहा था। कठिन चुनौती व आतंकवाद से जलते क्षेत्र में उन्हें

भेजकर उनकी अग्निपरीक्षा ली गई। इन परिस्थितियों का धैर्यपूर्वक मुकाबला करते हुए उन्होंने संत लोंगोवाल से न सिर्फ समझौता कराने में सफलता पाई बल्कि पंजाब के हालात भी सामान्य होने शुरू हो गए। बस, बारूद जिस दुनिया के खिलौने हो गए वहाँ अपने प्रयासों से उन्होंने राष्ट्र की सेवा की। यह उनके अपरिमित कौशल का ही परिणाम है कि हिन्दू-सिख एकता को तोड़ने वाली कोशिशों को निराशा ही हाथ लगी। इससे न सिर्फ पार्टी में और देश में बल्कि पूरे विश्व में उन्हें प्रतिष्ठा और सम्मान मिला।

जहाँ तक लोगों से उनके व्यवहार की बात है, सदैव महत्त्वपूर्ण पदों पर रहने के बावजूद वे सहजता और सरलता से ही पेश आते है। आम आदमी की भी बात को बहुत शांति से सुनते हैं। कठिन परिस्थितियों में भी संयम से काम करना उनका खास गुण है। राजनीतिक दल के नेता के रूप में श्री अर्जुनसिंह का व्यवहार बहुत अच्छा है। प्रतिपक्ष के लोगों से भी बड़े प्रेम से मिलते हैं। व्यावहारिकता में सच कहें तो वे बहुत अग्रणी हैं। स्वयं कॉंग्रेस पार्टी में ही उन्हें कई बार भारी विरोध का सामना करना पड़ा लेकिन अपने बुद्धिकौशल से वे विरोधियों को चित करने में सफल होते है। शीर्ष नेतृत्व को अपने तर्कों से प्रभावित कर अपनी बात के पक्ष में वातावरण बना लेना उन्हें आता है। वे पार्टी नेतृत्व की मंशा समझते है, कई बार वे इसीलिए कुशल रणनीतिकार के रूप में सामने आते हैं। विरोधियों के तर्कों को धराशाई कर अपने 'सत्य' की स्थापना में वे कुशल हैं। अल्पसंख्यकवाद की राजनीति के सैद्धांतिक तौर पर मैं और मेरा दल विरोधी है। किन्तु श्री अर्जुनसिंह पार्टी की विचाराधारा के नाम पर इसका पोषण करते नज़र आते हैं। ऐसे अनेक विषय है जो हमारे और उनकी विचाराधारा में मतभेद का कारण हैं। पर बड़ी बात यह है कि श्री अर्जुनसिंह बहस से भागते नहीं, वे तर्क करते हैं, बहस चाहते हैं। लोकतंत्र के प्रति उनके मन में आदर है।

उनका सबसे बड़ा योगदान मैं यह मानता हूँ कि छत्तीसगढ़ के जिन महापुरुषों तथा स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को उनके ही दल के कुछ नेताओं ने उपेक्षित कर रखा था, को उन्होंने सम्मान दिलाया। उनके नाम और योगदान का स्मरण प्रथम बार श्री अर्जुनसिंह ने ही कराया। जिसके चलते सिर्फ प्रदेश में ही नहीं राष्ट्रीय स्तर पर छत्तीसगढ़ के महापुरुषों के व्यक्तित्व व कृतित्व को पहचान मिली। जिनमें संतवर गुरु घासीदास, शहीद वीरनारायणसिंह, पंडित सुंदरलाल शर्मा, ठाकुर प्यारेलालसिंह, श्री खूबचंद बघेल का नाम उल्लेखनीय है। बिलासपुर में गुरुवर घासीदासजी के नाम से विश्वविद्यालय की स्थापना में उनके योगदान का भी मैं स्मरण कराना चाहूँगा। ये ऐसे प्रयास थे जिससे प्रतीकात्मक रूप से ही सही छत्तीसगढ़ की अस्मिता व पहचान को आधार मिला। अनेक वैचारिक मतभेदों के बावजूद लोकतंत्र के प्रति उनकी आस्था, राष्ट्र के प्रति उनका समर्पण जगज़ाहिर है। मैं उनके इस अभिनंदन ग्रंथ के माध्यम से उनके शतायु होने तथा राष्ट्र की सेवा में लगे रहने की कामना करता हूँ।

☐ *नंदकुमार साय— वर्तमान में भारतीय जनता पार्टी छत्तीसगढ़ के प्रदेश अध्यक्ष एवं सरगुजा से सांसद है। पूर्व में म.प्र. भाजपा के अध्यक्ष, छत्तीसगढ़ में नेता प्रतिपक्ष के रूप में कार्य कर चुके श्री साय देश के महत्त्वपूर्ण आदिवासी नेता हैं।*

बौने नेताओं के बीच एक विराट व्यक्तित्व

रघु ठाकुर
(राष्ट्रीय अध्यक्ष, लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी)

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप लोग केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री श्री अर्जुनसिंह का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे है। श्री अर्जुनसिंह से मेरी भेंट 1973-74 में हुई थी जब वे मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री थे और मैं विश्वविद्यालय का छात्र नेता होता था। आमतौर पर शिक्षामंत्रियों और छात्र नेताओं में संबंध मधुर नहीं होते और वे भी तब, जब वे भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों या विचारधाराओं से संबद्ध हो। मैं सोशलिस्ट पार्टी की युवा शाखा समाजवादी युवजन सभा का भी पदाधिकारी था और श्री अर्जुनसिंह काँग्रेस सरकार के मंत्री थे। मैं उस पार्टी का सदस्य था जो काँग्रेस पार्टी की और नेहरू परिवार की कट्टर आलोचक थी जबकि श्री अर्जुनसिंह काँग्रेस और नेहरू परिवार के आजीवन समर्थक रहे हैं। यह वैचारिक भिन्नता कभी भी हमारे उनके संबंधों के आड़े नहीं आई।

आज के आम राजनेताओं के विपरीत श्री अर्जुनसिंह एक दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति हैं और बात के धनी हैं। अगर वे किसी बात पर सहमति व्यक्त करते हैं तो दृढ़ता के साथ उसके पीछे खड़े होते हैं और अगर किसी बात से वे असहमत होते हैं तो स्पष्ट इंकार करते हैं, भले ही उसके लिये उन्हें कोई भी, क़ीमत क्यों न चुकाना पड़े। अपने राजनैतिक जीवन के आरंभ से ही उनका विश्वास समाज परिवर्तन एवं धर्मनिरपेक्षता में रहा है। वे सदैव इन मुद्दों के साथ कितनी ही आलोचनायें और निंदा सहकर भी स्थिर भाव से खड़े रहे। 1980 में जब वे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने उसके बाद पहली बार उन्होंने सत्ता प्रतिष्ठान के सामाजिक चरित्र को बदलने का प्रयास किया और पिछड़े वर्ग के लोगों को आदिवासियों को, दलितों को, सत्ता प्रतिष्ठानों में प्रवेश कराकर, प्रतिष्ठित कराने का प्रयास किया। मध्यप्रदेश की राजनैतिक जड़ता जिसे विपक्ष के रूप में 60 व 70 के दशक में स्व. लोहिया के राजनैतिक प्रयोगों ने तोड़ने की शुरुआत की थी, को सत्ता के दुर्ग में तोड़ने की पहल सर्वप्रथम श्री अर्जुनसिंह ने ही की। इस के लिये उन्हें समाज के स्थापित व शोषक वर्गों के अनेक प्रकार की निंदा व टीका अभियान भी झेलना पड़े। परन्तु उन्होंने अपने सोच को क्रियान्वित करते समय कभी भी आगे पीछे या आजू-बाजू देखने का या नफ़ा नुक़सान देखने का प्रयास नहीं किया।

निजी रिश्तों को वे बहुत ईमानदारी से निभाते हैं ताकि जिससे उनके रिश्ते हैं, वह उनका विरोधी है या समर्थक यह उन्हें बहुत मायने नहीं रखता। उनमें लोकतांत्रिक सहिष्णुता ज़बरदस्त है। मुझे स्मरण है कि जब वे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे तब सतना में मेरे एक राजनैतिक साथी श्री मुरलीधर शर्मा बाँध की ऊँचाई जिसके कारण अनेकों गाँव डूब में आने वाले थे, बाँध की ऊँचाई कम करने की माँग को लेकर अनिश्चित कालीन अनशन पर बैठ गये। मध्यप्रदेश शासन ने कुछ दिनों पश्चात् बाँध की ऊँचाई कुछ कम करने का ऐलान भी किया, परन्तु उनका कहना था कि इससे डुबान की समस्या कम नहीं होगी अतः ऊँचाई और कम होना चाहिये ताकि जलभराव कम हो। उनका स्वास्थ्य लंबे अनशन की वजह से निरंतर गिरावट पर था और हम सभी चिंतित थे। इसी बीच एक दिन वे मंडला के दौरे से वापिस

लौटकर जबलपुर हवाई अड्डे से वापिस भोपाल जाने वाले थे। हमें सूचना मिली तो हम लोग, अचानक उनसे मिलने हवाई अड्डे पहुँचे। मैंने उनसे बाँध की ऊँचाई कम करने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा कि शासन ने कुछ ऊँचाई कम करने का निर्णय किया है। मैंने कहा कि वह अपर्याप्त है। उन्होंने पूछा कि फिर कितनी कम करना चाहिये। मैंने कहा कि इतनी कम कर दें जिससे श्री मुरलीधर शर्मा का अनशन टूट सके और शाम को भोपाल पहुँचते ही शासन की ओर से रेडियो पर बाँध की ऊँचाई पर्याप्त कम करने का ऐलान हो गया तथा, श्री मुरलीधर शर्मा का अनशन टूट गया। उनमें प्रशासन को नियंत्रित करने की विशिष्ट क्षमता है तथा वे एक ऐसे मुख्यमंत्री व केन्द्रीयमंत्री हुए जिनके प्रशासनिक आदेशों की अवहेलना करने का साहस शायद ही कोई नौकरशाह कर सका हो। आजकल नौकरशाह मुख्यमंत्रियों के व मंत्रियों के आदेशों को रद्दी की टोकरी में डालते रहते है, तथा तभी कुछ करते हैं जब लाचारी हो जाय। यह सत्ताधीशों की अक्षमता का ही प्रमाण है। परन्तु श्री अर्जुनसिंह इसके विपरीत एक कुशल व दृढ़ प्रशासक हैं। जो कह दिया वह करेंगे। जो कर दिया वह क्रियान्वित होगा यह उनका चरित्र व स्वभाव रहा है। अपने आदेशों की जिम्मेवारी को उन्होंने सदैव स्वीकार किया। एक बार मैंने उनसे अपनी पार्टी के प्रादेशिक कार्यालय के लिये शासकीय भवन का आवंटन आदेश कराया। मैंने उनसे पूछा कि इस आदेश के अनुसार सचिवालय से आदेश प्राप्त करने के लिये मुझे किससे मिलना होगा। उन्होंने कहा कि आप क्यों जायेंगे? शासन का अधिकारी शाम तक आदेश लेकर आपसे मिलेगा और शाम 5 बजे के पूर्व मुझे विधिवत भवन आवंटन आदेश मेरे निवास स्थान पर प्राप्त हो गया।

धर्मनिरपेक्षता में उनका महान् विश्वास है तथा वे सदैव राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा के विरुद्ध लड़ते रहे। यद्यपि उनके निजी संबंधों में कभी भी कोई कटुता नहीं आई। संघ के व तत्कालीन जनसंघ से अब भाजपा के निजी परिचितों, मित्रों के प्रति वे व्यवहार में सदैव सहिष्णु व उदार रहे। केन्द्र में एन.डी.ए. सरकार बनने के बाद उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में भगवाकरण का विरोध किया तथा अब केन्द्र में यू.पी.ए.सरकार बनने के बाद उन्होंने अपने उस विरोध को कार्यात्मक रूप दिया। अक़सर राजनेता, विरोध में कुछ और व सत्ता में कुछ और बोलते है उनकी भाषा व बोली बदल जाती है परन्तु श्री अर्जुनसिंहजी की यह विशेषता है कि वे सत्ता में हो या विरोध में, उनकी भाषा-बोली तथा कर्म में अंतर नहीं होता।

श्री अर्जुनसिंह को मैने सदैव संवेदनशील पाया तथा मानवीय सरोकारों की उनके निर्णयों में सदैव प्राथमिकता रही। पिछले दिनों केन्द्र ने एन.डी.ए. सरकार बनने के बाद तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री ने केन्द्रीय विद्यालय के कर्मचारियों को बड़े पैमाने पर स्थानांतरित किया। यहाँ तक की महिला कर्मचारियों को अपने परिवारों से हज़ारों हज़ार किलोमीटर दूर फेंक दिया था। कई बच्चियों को तो नौकरी से ही त्यागपत्र देना पड़ा परन्तु श्री मुरलीमनोहर जोशी ने किसी की भी मानवीय समस्या को ध्यान देना तो दूर सुनना भी पसंद नहीं किया। जब श्री अर्जुनसिंह केन्द्र में मानव संसाधन विकास मंत्री बने तथा मैंने उनके विभाग का पद ग्रहण करने के मुश्किल से एक सप्ताह के अंदर ही, महिला शिक्षकों की इस व्यथा को इंगित करते हुए एक पत्र, पत्रवाहक द्वारा भेजा तथा लिखा कि स्थानांतरण नीति में संशोधन कर महिलाओं को उनके परिवारजनों के समीप स्थानांतरित किया जाना चाहिये। तो वे महिला कर्मियों की पीड़ा का तीखा एहसास कर द्रवित हो उठे तथा मुश्किल से एक सप्ताह के अंदर उन्होंने नई स्थानांतरण नीति का निर्माण करा दिया व आज हज़ारों महिला शिक्षक जो 5-6 वर्षों से अपने परिवार व बच्चों से दूर असहनीय पीड़ादायक स्थितियों में काम करने को लाचार थी अपने परिवार के यथासंभव नज़दीक पहुँच गई।

वे जनता से सीधे संपर्क में और जनसमस्याओं को गहराई से जानने का निरन्तर प्रयास करते हैं। अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावज़ूद भी वे, उनके यहाँ समस्याओं को लेकर पहुँचने वालों से मिलने का उनकी समस्या सुनकर हल करने का प्रयास करते हैं। केन्द्र का शायद ही कोई और मंत्री सीधे जनता से ऐसा संपर्क रखता हो जो श्री अर्जुनसिंह

रखते हैं। वे केवल आवेदन संग्रह नहीं करते बल्कि एक-एक पत्र को या आवेदन को ध्यान से पढ़कर, उस पर सीधे आदेश ही करते है। यह उनकी कार्यशैली व संवेदनशील स्वभाव का हिस्सा है। मुझे स्मरण है कि जब वे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे वे दमोह के दौर से लौटे थे। मुझे अपने भोपाल अल्प प्रवास के बीच ही उनसे किसी जनसमस्या को लेकर मिलना था। उस दिन वे अवकाश पर थे, फिर भी उन्होंने मुझे बुलाया। जब मैं उनके निवास के कार्यालय पर पहुँचा तो मैंने देखा कि वे अपने रात्रि लिबास में बैठे उन सैकड़ों आवेदनों को छाँट रहे थे व उन पर टिप्पणियाँ लिख रहे थे, जो उन्हें एक दिन पूर्व दौरे में जनता ने दिये थे। श्री प्रकाशचन्द सेठी के बाद वे ही एक ऐसे मुख्यमंत्री थे जो जन शिकायतों के प्रति इतने उत्तरदाई व संवेदनशील थे।

मैं, उन्हें शुभकमानाएँ देता हूँ कि वे दीर्घायु होकर समाज सेवा में तत्पर रहें तथा अपने राजनैतिक जीवन की सफलता की सीढ़ियों पर अग्रसर होते रहें। हालाँकि अपने 40 वर्ष के राजनीतिक अनुभव के आधार पर मैं जानता हूँ कि हमारी राजनैतिक प्रणाली इतनी संकुचित और ईर्ष्यालु बन गई है कि व्यक्ति की योग्यता ही उसका सबसे बड़ा अवगुण बन जाता है। श्री अर्जुनसिंह को निरंतर उनके विरोधी सीढ़ियों से नीचे ढकेलते रहे और वे हर बार संभलकर पुनः अपने स्थान पर वापिस पहुँच गये। साँप सीढ़ी का यह खेल उनके राजनैतिक जीवन का एक स्थाई हिस्सा जैसा बन गया है। आज अगर वे देश के प्रशासनिक पद पर एक नंबर पर नहीं पहुँच सके तो शायद इसी अवगुण के कारण कि यद्यपि वे अपनी जमात में सर्वथा योग्य व्यक्ति है। परन्तु उनकी योग्यता बौने नेतृत्व को भयभीत करती है। शायद योग्यता ही उनकी सबसे बड़ी अयोग्यता है।

□ *रघु ठाकुर—* *लोकतांत्रिक समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री रघु ठाकुर प्रदेश के जुझारू जननेता हैं जन समस्याओं के समाधान के लिये सतत संघर्षशील व्यक्तित्व के धनी श्री रघु ठाकुर बुद्धिजीवी, चिंतक, विचारक एवं प्रखर ओजस्वी वक्ता हैं। छात्र जीवन से ही संघर्ष की सीढ़ियों से सफलता के सोपान पाते रहे हैं।*

चिड़िया की आँख पर रहती है उनकी नज़र

बृजमोहन अग्रवाल
(गृहमंत्री, छत्तीसगढ़ शासन)

मैं पहली बार 1990 में रायपुर विधानसभा क्षेत्र से चुनाव जीतकर मध्यप्रदेश की विधानसभा में पहुँचा तो श्री अर्जुनसिंह को नज़दीक से देखने का मौक़ा मिला। उनकी शार्पनेस, कम बोलना और सटीक बोलना जैसी चीज़ें उनके व्यक्तित्व में एक गरिमा भरती थीं। छात्र-आंदोलनों में सक्रिय रहने के कारण विद्यार्थी जीवन में भी उनके संपर्क में आने का मौक़ा मिला। उनके द्वारा समस्याओं के समाधान का जो तरीक़ा था, वह उनकी अपनी विशिष्ट शैली है। प्रशासनिक पकड़ के मामले में भी वे अप्रतिम हैं।

इसके साथ ही उनमें सबसे बड़ा गुण है नेतृत्व का मानस और संदेश समझने की क्षमता। नेतृत्व को प्रसन्न रखना, उसकी लाइन को दृढ़ता के साथ लोगों के बीच ले जाना, उसे लोक स्वीकृति दिलाना— ये उनसे सीखने लायक़ चीज़ें हैं। मुझे लगता है मुद्दों और नीतियों के प्रति उनके मन में बड़े साफ़ आग्रह रहते हैं। पर्याप्त सरलता-सहजता के बावज़ूद वे जल्दी समझौता करने वालों में नहीं हैं। मेरी राय में उनकी प्रशासनिक क्षमता का आज भी कोई अन्य उदाहरण खोजे नहीं मिलता।

जो लोग व्यक्तिगत रूप से उनके साथ जुड़े रहे हैं, उनकी चिंता करना, उन्हें स्थापित करना और उनके लिए किसी भी स्तर पर जाकर मदद करना, उन्हें अपने समय का महत्त्वपूर्ण नेता बनाता है। ये चीज़ें उन्हें जहाँ राजनीतिक क्षेत्र में स्थापित करती हैं वहीं उनके जनाधार को भी पुष्ट करती हैं। इस तरह समय की नज़ाकत को भाँपकर उसके अनुसार स्वयं को तैयार कर लेना उनका विशिष्ट कौशल है। मुझे याद आता है कि जब उन्होंने छत्तीसगढ़ के खरसिया विधानसभा क्षेत्र से उपचुनाव लड़ा था, तो यह चुनाव जब उनकी सोच, उनकी कल्पना के बाहर जाने लगा तो उन्होंने उस समर में स्वयं को झोंक दिया। वे स्वयं और उनका पूरा परिवार जीत हासिल करने के लिए कटिबद्ध हो गए, शासन-प्रशासन का भी पूरी तरह उपयोग कर उन्होंने यह कठिन लड़ाई अंततः जीत ली। इससे लक्ष्य प्राप्ति के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का पता चलता है। वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कोई भी रास्ता और साधन चुनने से नहीं हिचकते। महाभारत के 'अर्जुन' की भाँति उनकी नज़र भी 'चिड़िया की आँख' पर ही रहती है।

छत्तीसगढ़ के लिए भी उनका योगदान विशिष्ट है। यहाँ के स्वतंत्रता सेनानी, साहित्यकारों, कलाकारों को राष्ट्रीय फलक पर परिचित कराने में उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। शहीद वीरनारायणसिंह, ठाकुर प्यारेलालसिंह, पं.सुन्दरलाल शर्मा, गुरु घासीदास जैसी विभूतियों को छत्तीसगढ़ से बाहर समूचे राष्ट्र के परिदृश्य पर उनके योगदान को स्मरण कराने का काम उन्होंने किया। साथ में चुनाव सफलताओं के लिए जातीय समीकरण और जोड़तोड़ की राजनीति की शुरुआत का भी श्रेय उन्हें ही जाता है।

हम सब भारतीय जनता पार्टी के कार्यकर्त्ता होने के नाते से राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। इस दृष्टि से मैं उनके एक विशिष्ट गुण की ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाना चाहता हूँ- वह है अपने राजनीतिक विरोधियों

तथा विरोधी राजनीतिक दलों के लोगों से सौम्यता और सरलता से मिलना। उन्हें उपकृत करने की कोशिश करना। जाहिर है ये चीज़ें ही किसी राजनेता को महत्त्वपूर्ण बनाती हैं। आयु के इस मोड़ पर भी उनकी सक्रियता और जीवंतता बनी हुई है। हमारी शुभकामनाएँ हैं कि वे वर्षों तक देश की राजनीति में संवेदनशीलता और मानवीय गुणों की प्रासंगिकता बनाए रखें।

☐ *बृजमोहन अग्रवाल— छत्तीसगढ़ राज्य के गृहमंत्री हैं। रायपुर से लगातार 4 विधानसभा चुनाव जीत चुके इस नेता ने भाजपा के युवा नेताओं में खास जगह बनाई है। मध्यप्रदेश में पटवा सरकार में भी मंत्री रहे हैं।*

शहरी ग़रीब वर्ग में बनाया काँग्रेस का आधार

तरुण चटर्जी

(पूर्व मंत्री : छत्तीसगढ़ शासन)

देश की राजनीति में अग्रणी स्थान रखने वाले राजनेता श्री अर्जुनसिंह की असल पूँजी संवदेनशीलता, विचारधारा के प्रति आग्रह तथा कार्यकर्ताओं से उनका अनुराग है। वे सामान्य से सामान्य काँग्रेसजन के प्रति भी अत्यंत उदार हैं तथा उनकी व्यक्तिगत ज़रूरतों का भी प्रयास कर हल निकालते हैं। जहाँ तक मेरा संदर्भ है— मुझ पर उनकी कृपा सदैव रही है। आज राष्ट्रीय राजनीति के अत्यंत व्यस्त सितारे होने के बावजूद हम उनकी तरफ़ उम्मीद व श्रद्धा के मिलेजुले भावों से देखते हैं।

बात 1980 से 1985 के बीच की है। उन्हीं दिनों मैं पहली बार रायपुर ग्रामीण विधानसभा क्षेत्र से विधायक चुना गया था। संयोग से इसी अवधि में मुझे दो बार रायपुर का महापौर चुने जाने का सौभाग्य मिला। मेरे दूसरी बार महापौर चुने जाने पर काँग्रेस के ही हमारे साथियों ने तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह से मेरे ख़िलाफ़ शिकायतें कर मेरे निर्वाचन को अवैध क़रार देने का प्रयास किया। तत्कालीन परिस्थितियों में हमारे शिकायतकर्ता साथी श्री अर्जुनसिंह के क़रीबी हो चुके थे और उस समय मैं विद्याचरण शुक्लजी के साथ जुड़ा हुआ था। यह अलग बात है कि महापौर का दूसरा चुनाव मैंने विद्या भैया की मंशा के ख़िलाफ़ लड़ा था। तत्कालीन प्रभारीमंत्री डॉ. कन्हैयालाल शर्मा भी मुझसे ख़फ़ा थे। लोगों को और हमारे साथियों को लगता था कि शिकायत की आड़ में राज्य शासन मेरे महापौर चुनाव को शून्य घोषित कर देगा। लेकिन श्री अर्जुनसिंह ने मेरे ख़िलाफ़ शिकायत की अपने भरोसेमंद अफ़सरों से गोपनीय जाँच करवाई और शिकायतों को असत्य पाने पर मेरे चुनाव में किसी तरह के हस्तक्षेप से इनकार कर दिया। इससे उनकी निष्पक्षता की अमिट छाप मेरे मानस पटल पर सदैव के लिए अंकित हो उठी। यह ऐसा प्रसंग था जहाँ मुझे राहत की उम्मीद नहीं थी। मेरे विरोधी भी आश्वस्त थे। यह श्री अर्जुनसिंह की निष्पक्षता और गुटीय राजनीति को प्रश्रय न देने की भावना थी जिससे मुझे न्याय मिल सका। यह घटना मात्र एक उदाहरण है। ऐसे तमाम प्रसंग मेरे जैसे तमाम काँग्रेसजनों की स्मृतियों का हिस्सा हैं जिसके चलते श्री अर्जुनसिंह पार्टी के लाख़ों-लाख़ कार्यकर्ताओं की भावनाओं का केन्द्र बने हुए हैं। मेरा मानना है कि कार्यकर्ताओं को इतना समादर देने वाला नेता मैंने नहीं देखा। वे कभी उन्हें हतोत्साहित नहीं करते थे। उत्साहपूर्ण, प्रेरक व्यक्तित्व से सबको अपना बना लेते थे। जनहित के कार्यों को वे सर्वोच्च प्राथमिकता देते हैं। उनकी नज़र में राजनीति सेवा का माध्यम है। इसके बीच वे किसी प्रकार की गुटीय या क्षेत्रीय राजनीति उन्हें पसंद नहीं। विकास तथा जनहित के कार्यों में विलंब या अड़ंगेबाजी को वे बर्दाश्त नहीं करते। महापौर होने के नाते मेरा व्यक्तिगत अनुभव है कि वे कभी निराश नहीं करते थे। विधायक और महापौर के रूप में मैंने जब भी कोई समस्या उन्हें बताई, उन्होंने तत्काल निदान किया और शासन की ओर से भरपूर मदद पहुँचाई।

ग़रीब लोगों के बीच मेरे काम, ख़ासकर झुग्गी-बस्तियों के विकास के प्रति मेरी रुचि को उन्होंने हरदम

प्रोत्साहित किया। रायपुर सहित पूरे प्रदेश में झुग्गी-बस्तियों और झुग्गीवासियों के उद्धार के कार्यक्रमों को उन्होंने अपने कार्यकाल में इस क़दर प्रोत्साहन दिया कि पूरे देश में इसकी चर्चा होने लगी। इसके चलते झुग्गी बस्तियों के उन्नयन के मुद्दे ने बाक़ायदा एक आंदोलन का रूप ले लिया। यह आम लोगों के प्रति उनके ममत्व का ही परिचायक था। झुग्गियों में अभावग्रस्त जीवन जीते लोग, संघर्ष करते लोग उनकी दृष्टि में थे। उनका यह योगदान आज भी उनके प्रयासों से लाभान्वित हुए लोग नहीं भूल सकते। इसी दौर में रिक्शाचालकों को मालिकाना हक़ देने तथा झुग्गीवासियों को भूमि के पट्टे देने जैसे क्रांतिकारी निर्णय लेकर श्री अर्जुनसिंह ने शहरी ग़रीब वर्ग में काँग्रेस की पैठ को इतना मज़बूत कर दिया कि आज भी नगरों में काँग्रेस का आधार यही वर्ग बना हुआ है। उनका यह प्रयास किसी वोट गणित का खेल नहीं विशुद्ध संवेदनाओं से उपजी पहल थी। लेकिन इसका काँग्रेस संगठन को कितना लाभ हुआ यह अध्ययन का विषय है। सही और जायज फैसले, कमज़ोरों के पक्ष में दृढ़ता से खड़े रहना, उपयुक्त व्यक्ति की पहचान और उसे अवसर देना श्री अर्जुनसिंह के व्यक्तित्व का सर्वश्रेष्ठ गुण है।

सन् 1985 के बाद मेरी राजनीतिक दिशा बदल गई। विधानसभा चुनाव में मेरी टिकट कट जाने के बाद मैं शुद्ध रूप से संघर्ष की राजनीति करने के लिए विवश हो गया। इस बीच अर्जुनसिंहजी प्रदेश की राजनीति से हटकर लगभग केन्द्रीय राजनीति में रम से गए। मेरा उनसे प्रत्यक्ष संपर्क टूट सा गया। लेकिन स्नेह बराबर मिलता रहा। श्री अर्जुनसिंह काँग्रेस पार्टी में आज उन चुने हुए राजनेताओं में हैं जो नीति और सिद्धांत को आगे रखकर राजनीति करते हैं। ऐसे समय में जब भाजपा अपनी पूरी मंडली के साथ समाज के वातावरण को विषाक्त करने का खुला अभियान चला रही है, श्री अर्जुनसिंह सरीखे वैचारिक रूप से पुष्ट एवं प्रतिबद्ध नेताओं की उपस्थिति आश्वस्त करती है। उनका मार्गदर्शन एवं नेतृत्व ही हम सबका साहस और संबल है। जन सरोकारों, विकास के सवालों तथा राजनीतिक प्रतिबद्धता के साथ कला-संस्कृति के प्रति उनकें रुझानों से यह पता चलता है कि आज भी राजनीति में मानवीय मूल्यों का अपना स्थान है। श्री अर्जुनसिंह की भारतीय राजनीति में उपस्थिति उसे गरिमा और गंभीरता प्रदान करती है। उनसे जुड़कर, प्रेरणा पाकर न जाने कितने काँग्रेसजन पार्टी के कार्य को आगे बढ़ा रहे। उनके सरोकार तथा भावनात्मक लगाव से जुड़े कार्यकर्ता उन्हें लंबे समय तक सक्रिय और चैतन्य देखना चाहते हैं। ताकि वे लोगों के सपनों में रंग भर सकें। उनके स्वरूप-दीर्घायु जीवन के लिए प्रभु से प्रार्थना है कि वे उन पर अपना आशीर्वाद बरसाएँ।

☐ *तरुण चटर्जी— रायपुर के जुझारू राजनीतिक कार्यकर्ता। छत्तीसगढ़ की सरकार में लोक निर्माण मंत्री एवं रायपुर के महापौर रह चुके हैं। जनांदोलनों में, सक्रिय भागीदारी एवं उनका नेतृत्व।*

प्रोत्साहित किया। रायपुर सहित पूरे प्रदेश में झुग्गी-बस्तियों और झुग्गीवासियों के उद्धार के कार्यक्रमों को उन्होंने अपने कार्यकाल में इस क़दर प्रोत्साहन दिया कि पूरे देश में इसकी चर्चा होने लगी। इसके चलते झुग्गी बस्तियों के उन्नयन के मुद्दे ने बाक़ायदा एक आंदोलन का रूप ले लिया। यह आम लोगों के प्रति उनके ममत्व का ही परिचायक था। झुग्गियों में अभावग्रस्त जीवन जीते लोग, संघर्ष करते लोग उनकी दृष्टि में थे। उनका यह योगदान आज भी उनके प्रयासों से लाभान्वित हुए लोग नहीं भूल सकते। इसी दौर में रिक्शाचालकों को मालिकाना हक़ देने तथा झुग्गीवासियों को भूमि के पट्टे देने जैसे क्रांतिकारी निर्णय लेकर श्री अर्जुनसिंह ने शहरी ग़रीब वर्ग में काँग्रेस की पैठ को इतना मज़बूत कर दिया कि आज भी नगरों में काँग्रेस का आधार यही वर्ग बना हुआ है। उनका यह प्रयास किसी वोट गणित का खेल नहीं विशुद्ध संवेदनाओं से उपजी पहल थी। लेकिन इसका काँग्रेस संगठन को कितना लाभ हुआ यह अध्ययन का विषय है। सही और जायज फैसले, कमज़ोरों के पक्ष में दृढ़ता से खड़े रहना, उपयुक्त व्यक्ति की पहचान और उसे अवसर देना श्री अर्जुनसिंह के व्यक्तित्व का सर्वश्रेष्ठ गुण है।

सन् 1985 के बाद मेरी राजनीतिक दिशा बदल गई। विधानसभा चुनाव में मेरी टिकट कट जाने के बाद मैं शुद्ध रूप से संघर्ष की राजनीति करने के लिए विवश हो गया। इस बीच अर्जुनसिंहजी प्रदेश की राजनीति से हटकर लगभग केन्द्रीय राजनीति में रम से गए। मेरा उनसे प्रत्यक्ष संपर्क टूट सा गया। लेकिन स्नेह बराबर मिलता रहा। श्री अर्जुनसिंह काँग्रेस पार्टी में आज उन चुने हुए राजनेताओं में हैं जो नीति और सिद्धांत को आगे रखकर राजनीति करते हैं। ऐसे समय में जब भाजपा अपनी पूरी मंडली के साथ समाज के वातावरण को विषाक्त करने का खुला अभियान चला रही है, श्री अर्जुनसिंह सरीखे वैचारिक रूप से पुष्ट एवं प्रतिबद्ध नेताओं की उपस्थिति आश्वस्त करती है। उनका मार्गदर्शन एवं नेतृत्व ही हम सबका साहस और संबल है। ज़न सरोकारों, विकास के सवालों तथा राजनीतिक प्रतिबद्धता के साथ कला-संस्कृति के प्रति उनके रुझानों से यह पता चलता है कि आज भी राजनीति में मानवीय मूल्यों का अपना स्थान है। श्री अर्जुनसिंह की भारतीय राजनीति में उपस्थिति उसे गरिमा और गंभीरता प्रदान करती है। उनसे जुड़कर, प्रेरणा पाकर न जाने कितने काँग्रेसजन पार्टी के कार्य को आगे बढ़ा रहे। उनके सरोकार तथा भावनात्मक लगाव से जुड़े कार्यकर्ता उन्हें लंबे समय तक सक्रिय और चैतन्य देखना चाहते हैं। ताकि वे लोगों के सपनों में रंग भर सकें। उनके स्वरूप-दीर्घायु जीवन के लिए प्रभु से प्रार्थना है कि वे उन पर अपना आशीर्वाद बरसाएँ।

☐ *तरुण चटर्जी*— *रायपुर के जुझारू राजनीतिक कार्यकर्ता। छत्तीसगढ़ की सरकार में लोक निर्माण मंत्री एवं रायपुर के महापौर रह चुके हैं। जनांदोलनों में, सक्रिय भागीदारी एवं उनका नेतृत्व।*

ग्वालियर के कैंसर अस्पताल में उनका भरपूर योगदान है

शीतला सहाय
(पूर्व मंत्री, मध्यप्रदेश शासन)

अर्जुनसिंहजी के साथ मैं एक लम्बे समय तक रहा हूँ। विधानसभा में वे विभिन्न ओहदों पर रहकर तथा मैं विपक्ष का सदस्य रहकर एक दूसरे के सम्पर्क में रहे हैं। एक रचनात्मक कार्य, कैंसर चिकित्सालय की स्थापना के दौरान हमारा सम्पर्क और भी बढ़ा। कैंसर चिकित्सालय, ग्वालियर को जब अनुदान दिया जाना था तो तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री प्रकाशचन्द सेठी ने एक उपसमिति गठित की जो इस बात पर विचार कर रही थी कि क्या ग्वालियर कैंसर चिकित्सालय को अनुदान दिया जाए? इस समिति के संयोजक श्री श्यामसुन्दर नारायणजी, तत्कालीन वित्त मंत्री थे। अर्जुनसिंहजी शिक्षामंत्री थे तथा उसके सदस्य भी थे तथा कुमारी विमला वर्मा स्वास्थ्य राज्यमंत्री थीं, इन तीन लोगों की कमेटी थी। एक बार बैठक हुई, सभी सदस्य नहीं आ पाए। दूसरी बार बैठक होने पर सब लोग आयें ये मेरी इच्छा थी, मैंने अर्जुनसिंहजी से निवेदन किया कि आप उस बैठक में अवश्य रहें। अचानक ये हुआ कि वो दो दिन पहले इलाहाबाद चले गए। मैंने उनसे इलाहाबाद टेलीफ़ोन करके कहा कि परसों 29 तारीख़ को कैंसर चिकित्सालय मंत्रिमंडलीय उपसमिति की बैठक है; आप जब तक उपस्थित नहीं होंगे काम नहीं हो पायगा। उन्होंने अपने दौरे की कटौती की, वे भोपाल आए। समिति की बैठक में सम्मिलित हुए और उन्होंने निर्णय कराया कि कैंसर चिकित्सालय ग्वालियर को अनुदान दिया जाना चाहिए। यदि आपस में सम्बन्ध नहीं होते या कैंसर चिकित्सालय जैसे रचनात्मक काम को वे पसन्द नहीं करते तो शायद ये कार्य सम्भव नहीं था किन्तु वो पसन्द करते थे। मेरे सम्पर्क भी अच्छे थे और इसलिए उन्होंने मेरे इस निवेदन को स्वीकार किया।

एक और घटना मुझे याद है; जब वे मुख्यमंत्री थे तब मैंने उनसे कहा कि कैंसर चिकित्सालय को अनुदान 75 प्रतिशत आवर्ती तथा 50 प्रतिशत अनावर्ती मिला है। शेष जनविकास न्यास को इकट्ठा करना होता है। ग्वालियर जैसे स्थान पर ये मुश्किल होता है। मुझसे उन्होंने प्रस्ताव माँगा। मैंने कहा कि जो कुछ भी मैं रोगियों से प्राप्त करूँ उसे मेरा हिस्सा मान लिया जाए तथा वित्त-विभाग को ऐसे निर्देश दिये जायें कि जो निर्धारित फ़ार्मूला है कि ख़र्चे में से आमदनी काट दी जाती है और उसके पश्चात् पचहत्तर प्रतिशत लिया जाता है। इसके बजाए ये किया जाए कि कुल ख़र्चे के पचहत्तर प्रतिशत या पचास प्रतिशत आवर्ती-अनावर्ती जैसा प्रकरण हो वो ग्रान्ट-इन-एड की जाए और जो आमदनी होती है उसे मैं अपना शेयर करके बदला सकूँ। तो उन्होंने जनविकास न्याय की बैठक अपने चेम्बर में; भोपाल में बुलाई, और इस पर चर्चा की। अधिकारियों ने आपत्ति की। उनका कहना था कि मध्यप्रदेश में अनुदान के जो नियम हैं उसके तहत आमदनी ख़र्चे में से कट जाती है और उसके बाद जो ख़र्चा बचता है उसका पचहत्तर प्रतिशत संस्था को देना पड़ता है। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई अर्जुनसिंहजी के तर्क को सुनकर, उन्होंने कहा कि आप तो सरकारी अस्पतालों पर सौ फीसदी ख़र्च करते हैं। कोई चीज़ प्राप्त नहीं करते, कोई पैसा प्राप्त नहीं करते। कैंसर चिकित्सालय अगर पैसा प्राप्त करके अपना शेयर दे सकता है। यानि कि मनी रीज़नरेट करके अगर देता है तो इमसें वित्त-

विभाग को या स्वास्थ्य विभाग को कोई आपत्ति नहीं होना चाहिए। उन्होंने वहाँ निर्णय लिया कि जो कुछ भी कैंसर चिकित्सालय रोगियों से प्राप्त करेगा या और किसी तरह से पैसा आयेगा उसे खर्चे में से नहीं काटा जायेगा बल्कि न्यास के हिस्से के रूप में स्वीकार किया जायेगा। यह एक बहुत बड़ा योगदान था जो कैंसर चिकित्सालय के विकास में उन्होंने दिया।

एक और इसी प्रकार की घटना मुझे याद है। मैं विधायक नहीं था, कैंसर चिकित्सालय का अनुदान किन्हीं कारणोंवश कुछ दिनों के लिए रुक गया था। जब वे मुख्यमंत्री बने तब मैंने उनसे आग्रह किया कि एक बार फिर से कैंसर चिकित्सालय के प्रति शासन की नीति निर्धारित करें। अर्जुनसिंहजी ने पूछा कि इसकी क्या जरूरत पड़ गई। मैंने कहा जरूरत इसलिए पड़ गई कि कुछ वर्षों से कैंसर चिकित्सालय का अनुदान काटा जाता है। काटना तो अलग बात रही; रोक दिया जाता है। तो एक बार शासन ये तय कर ले कि क्या इस संस्था को मदद करना है या नहीं? अर्जुनसिंहजी ने कहा कि ये तो मैं बहुत पहले तय कर चुका हूँ कि इस संस्था की मदद करना है कितना अनुदान रुका हुआ है? कुछ लिखकर लाये है? मैंने कहा कि लिखकर तो नहीं लाये हैं। उन्होंने कहा कि मुझे डीटेल्स दे दीजिएगा। उन दिनों विधानसभा चल रही थी। मैं विधानसभा में उनके कक्ष में गया और पत्र उन्हें दिया। मैंने कहा कि दो दिन रह गए है आज तीस तारीख है, इकतीस तारीख तक ये अनुदान मिल जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि— शीतलासहायजी जब काम करना होता है तो दो दिन तो बहुत होते हैं, दो घंटे काफ़ी होते हैं। मुझे बड़ी प्रसन्नता है ये कहते हुए कि 31 तारीख की रात तक मुझे ये अनुदान प्राप्त हो गया।

मैं उनके विषय में तो एक बात ये कह सकता हूँ कि ये जो हिमालय जैसा काम मैंने अपने सिर पर ले लिया था इस काम के सफल निष्पादन में उनका अद्वितीय योगदान रहा है। मैं इस दृष्टि से कह सकता हूँ कि रचनात्मक कार्यों में उनकी रुचि रहती है। मैं समझता हूँ उनके विषय में, इतना भर मेरे लिए कहना सौभाग्य की बात है कि कैंसर चिकित्सालय में उनका भरपूर योगदान मिला है।

□ *शीतला सहाय— मध्यप्रदेश ग्वालियर (म.प्र.) के प्रभावशाली भाजपा नेता श्री शीतला सहाय सफल एडवोकेट एवं राजनीतिज्ञ रहे हैं। आप मध्यप्रदेश मंत्रिमंडल में लोक स्वास्थ्य मंत्री भी रहे। आपने ग्वालियर में कैंसर चिकित्सालय एवं अनुसंधान केन्द्र तथा नर्सिंग ट्रेनिंग कॉलेज की स्थापना की। सम्प्रति समाजसेवा को समर्पित।*

राजनीति में वे कुछ उद्देश्यों को लेकर काम करते हैं

गौतम शर्मा
(वरिष्ठ राजनीतिज्ञ)

अर्जुनसिंहजी ने कई दृष्टियों से, कई तरीक़ों से राजनीति की सेवा की है। वे राजनीति में जब से आये तब से मेरे साथ रहे हैं। हम लोगों ने साथ-साथ मिलकर कार्य किये हैं। उनकी राजनीतिक सूझ-बूझ और कार्यप्रणाली ने हमेशा मुझे प्रभावित किया है। राजनीति में वे कुछ उद्देश्यों को लेकर काम करते हैं और अपने उद्देश्यों की पूर्ति में पूरी ईमानदारी और पूरी शक्ति लगा देते हैं। यही कारण हैं कि उन्हें काफ़ी सफलताएँ मिलती हैं। उनकी कार्यप्रणाली को देखकर कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि वे बहुत ही व्यक्तिवादी ढंग से कार्य कर रहे हैं लेकिन उनकी ये व्यक्तिवादिता उनकी शक्ति है और उससे उनमें कर्मठता पैदा होती है, जिससे वे राजनीति में अधिक से अधिक काम कर पाते हैं। यही कारण है कि उन्हें जब भी जहाँ भी कोई काम दिया गया उस कार्य को उन्होंने सफलतापूर्वक संपादित किया।

अर्जुनसिंहजी की प्रशासनिक क्षमता निर्विवाद रूप से प्रशंसनीय है, वे काफ़ी अच्छे प्रशासक हैं। वे पंजाब के गवर्नर बनाकर भेजे गए वहाँ **राजीव-लोंगोवाल समझौते** को सम्पन्न कराने में श्री अर्जुनसिंह की काफ़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। ये समझौता अगर पूरी तरह लागू हो जाता तो वास्तव में पंजाब कि स्थिति सुधर जाती। ये राजनीति भी अजीब होती है, आज देश में जो राजनीति चल रही है वह राष्ट्र भक्ति की राजनीति नहीं बल्कि पद लोलुपता की राजनीति है। मुझे विश्वास है कि अब जिस तरह से शासन चलाया जा रहा है नरसिम्हारावजी के नेतृत्व में, उसमें हो सकता है कि वहाँ पर चुनाव करने के बाद एक स्थिति बने कि जिससे लोंगोवाल समझौते को कार्यान्वित करने का अवसर मिले और मैं समझता हूँ कि उससे पंजाब की समस्या के समाधान में काफ़ी सहायता मिलेगी।

अर्जुनसिंहजी एक अच्छे पार्लियामेन्टेरियन हैं, वे अच्छी सूझबूझ रखते हैं। मैं समझता हूँ कि एक सहयोगी के रूप में शायद म.प्र. में अन्य राजनीतिज्ञों की अपेक्षा मैं सबसे अधिक समीप रहा हूँ। हम लोगों में पारिवारिक संबंध काफ़ी दृढ़ रहा है। मुझे याद आता है कि जब राहुल जो अजयसिंह के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं, हम तो राहुल ही कहते रहे हैं, तो उनका जब वैवाहिक संबंध तय हो रहा था उस समय अर्जुनसिंहजी मुख्यमंत्री थे लेकिन वे मुझे अपने साथ प्लेन में सीधी ले गए थे। वहाँ उन्होंने एक नया बड़ा अच्छा डाक बंगला बनाया है, वैली के किनारे पर वह बड़ा सुन्दर स्थान है। वहाँ मुझे ठहराया था, वे स्वयं वहाँ आये थे और पूछा था कि यह स्थान कैसा है? इसे कैसे और ठीक किया जाए? मैंने कहा था कि ये वैली बड़ी ख़ूबसूरत है, अगर यहाँ बोगनवेलिया के फूल दिखाई देने लगें तो ये वैली बहुत अच्छी लगने लगेगी, तो उन्होंने कहा था कि हाँ ऐसा करेंगे। इस प्रकार की ढेरों स्मृतियाँ हमारे साथ हैं। उनकी पत्नी सरोजजी भी हमारे घर आती थीं हम लोग भी उनके घर जाते थे। हमारे पारिवारिक संबंध बहुत अच्छे रहे हैं। मुझे एक और घटना याद आती है, पहले मैं सिगार नहीं पीता था लेकिन पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र ने मुझे सिगार पीने की आदत डाली। अर्जुनसिंहजी भी हमारे साथ थे तो वे मेरे साथ कभी कभार सिगार पीते थे। लेकिन सरोजजी इसे नापसन्द करती थीं। तथा वे हमेशा अर्जुनसिंहजी को मना करती थीं। लेकिन इसके बावजूद भी मैं जब उनके

घर जाता था तो सरोजजी मेरे लिए सिगार ज़रूर रखती थीं और अर्जुनसिंहजी को भी सिगार देती तो थीं, किन्तु काफ़ी रोकती हुई। अर्जुनसिंहजी तो सिगार पीना छोड़ चुके लेकिन मैं बराबर सिगार पीता रहा।

अर्जुनसिंहजी जब प्रदेश के मुख्यमंत्री थे तब भी साम्प्रदायिक तत्व विद्यमान थे लेकिन आज ये तत्व काफ़ी उभर आए हैं। जहाँ तक अर्जुनसिंहजी का सवाल है वे साम्प्रदायिकता के मामले में एक स्पष्ट विचार रखते हैं। वे एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की कल्पना को साकार करना चाहते हैं इसमें कोई दो राय नहीं है। उस समय भी वे साम्प्रदायिकता के ख़िलाफ़ लड़ते थे और आज भी वे संघर्षरत हैं और दिल्ली में रहकर भी उस भूमिका को काफ़ी अच्छी तरह से निभा रहे हैं।

□ *गौतम शर्मा—* *स्वाधीनता संग्राम सेनानी, प्रखर पत्रकार, वरिष्ठ राजनीतिज्ञ श्री गौतम शर्मा साठ के दशक में स्वाधीन भारत के चाणक्य माने जाने वाले पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र के मंत्रिमंडल में प्रभावशाली खाद्य मंत्री थे। आप मिश्रजी के दाहिने हाथ भी कहे जाते थे। दैनिक नवप्रभात समाचार पत्र के चार दशक से अधिक समय तक प्रधान संपादक रहे हैं।*

निरन्तर कर्मशील व्यक्तित्व

श्रीनिवास तिवारी
(पूर्व विधानसभा अध्यक्ष, म.प्र.)

अर्जुनसिंहजी हमारे ही संभाग के, सीधी ज़िले के हैं। विद्यार्थी जीवन से ही मैं उन्हें जानता हूँ। विद्यार्थी जीवन में भी उनकी रुचि राजनीति में रही है और सबसे पहले तो उन्होंने विधानसभा का चुनाव एक निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में लड़ा था और उनको विजयश्री मिली थी, बाद में वे काँग्रेस पार्टी में शामिल हो गए। काँग्रेस पार्टी मे शामिल होने के उपरान्त वे निरन्तर अपनी कार्यकुशलता और क्षमताओं के कारण आगे बढ़ते चले गए। निश्चित रूप से उनके सामने राजनीति का एक लक्ष्य रहा है और उसकी पूर्ति के लिए वे सदैव संघर्षरत रहे हैं। ऐसा सदैव नहीं रहा कि वे हमेशा विजयपथ पर ही चले हों कई बार उन्हें ऊँचा नीचा देखना पड़ा, किन्तु वे निरन्तर संघर्ष करते हुए आगे बढ़ते रहे हैं। मुझे उनके साथ विधानसभा तथा राजनीति में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। उस दौरान मैंने अनुभव किया कि उनमें वे सारे गुण हैं जो किसी भी राजनीतिज्ञ में होना चाहिए, किन्तु साथ ही साथ वे एक उदारमना व्यक्ति भी हैं। उन्होंने लोगों के साथ जो कि उनके साथ जुड़े - आत्मीय व्यवहार किया तथा वे भरपूर सहायता भी करते थे। इसलिए अर्जुनसिंहजी में जो कुछ गुण हैं उनकी वजह से वे निरन्तर अब भी आगे हैं और मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि उनका व्यक्तित्व बहुआयामी है और वे निरन्तर प्रगति के पथ पर रहेंगे, हमें इसमें किसी प्रकार का कोई भी संदेह नहीं है।

विचारधाराओं का जहाँ तक प्रश्न है वे सदैव उन लोगों को समर्थन देने या सहायता करने या उनके लिए संघर्ष करने के लिए तत्पर रहे हैं जो लोग शोषित, पीड़ित हैं। उन पर अनेक आरोप भी लगे किन्तु वे इन बाधाओं को पार करके देश के एक अच्छे और चतुर राजनीतिज्ञ के रूप में स्थापित हो चुके हैं।

अर्जुनसिंहजी बहुत कम बोलते हैं लेकिन विधानसभा मे जब कभी भी वे बोलते थे— चाहे मुख्यमंत्री की हैसियत से या विरोधी दल में रहते हुए सदस्य की हैसियत से— वे निश्चित रूप से, जो कुछ भी बोलते थे तथ्यों के आधार पर बोलते थे। तथ्यों के आधार पर विरोधी दल या सत्ताधारी दल पर जब भी वे कटाक्ष करते थे तो निश्चित रूप से वे दूसरे को पराजित करने में सफल हो जाते थे।

आज भी विधानसभाओं में या लोकसभा में ऐसे लोग अभी हैं जो शोर-शराबे से दूर रहकर भी अपने व्यक्तित्व की छाप अपने वक्तव्यों के द्वारा तथा अपने कार्यकलापों के द्वारा छोड़ते हैं। अर्जुनसिंहजी उस शोर-शराबे के बीच में नहीं फँसे और उन्होंने जो कुछ भी विधानसभा में कहा या उनका जो भी परफॉरमेन्स रहा वह गरिमामय रहा। कभी उन्होंने अध्यक्ष की किसी बात की अवमानना की हो, मुझे ऐसा याद नहीं पड़ता।

उनकी प्रशासनिक दक्षता में किसी प्रकार का शक नहीं हो सकता क्योंकि जो कुछ भी वे करना चाहते थे वे अधिकारियों से करवा लेते थे।

अर्जुनसिंह जब म.प्र. के मुख्यमंत्री थे हमने वो दौर भी देखा है, आज का समय भी हम देख रहे हैं, अब

तो कुछ ज़्यादा ही बढ़ी है साम्प्रदायिकता। आज जो पार्टी प्रदेश में सत्ता में है वो साम्प्रदायिकता की नींव पर ही अपना महल बनाना चाह रही है। आज साम्प्रदायिकता को दुर्भाग्य से प्रशासन का संरक्षण प्राप्त हो रहा है। ऐसी स्थिति में उस ज़माने में और आज के ज़माने में बहुत फ़र्क महसूस होता है। पहले साम्प्रदायिकता जैसी कोई चीज़ नहीं थी, कभी आपसी झगड़े हो जायँ अलग बात थी लेकिन साम्प्रदायिकता नहीं थी।

अर्जुनसिंहजी एक सफल मुख्यमंत्री रहे हैं। हमारे व्यक्तिगत संबंध अच्छे हैं, सामान्य हैं। कभी उनसे मतभेद भी रहा किन्तु उन मतभेदों के बावज़ूद हमारे आपसी संबंधों में कभी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। अब तो वे मतभेद भी नहीं रहे। अब हम लोग इस बात का प्रयास कर रहे हैं कि जिस दल में हम लोग हैं उस दल को बढ़ाने में उसकी शक्ति को बढ़ाने में जितनी ताक़त लगाई जा सके उतनी ताक़त लगाई जाए। म.प्र. में उन्होंने अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ी ही है, मेरे अनुसार उन्होंने देश में भी अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ी है।

राजनीति से हटकर कई क्षण ऐसे भी आए हैं जबकि हम लोग साथ-साथ उठे-बैठे आपसी चर्चाएँ कीं, हँसी-मज़ाक भी किया, हल्की-फुल्की बातें भी हुई। वे कम बोलते हैं किन्तु कार्य अधिक करते हैं, वे अत्यन्त उदारमना हैं, ज़रूरतमंदों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहे हैं। दलगत विरोध ने कभी भी व्यक्तिगत संबंधों का अतिक्रमण नहीं किया।

□ *श्रीनिवास तिवारी— विन्ध्यप्रदेश में सफ़ेद शेर के नाम से विख्यात, श्रीयुत श्रीनिवास तिवारी वरिष्ठ विधायक, राजनेता, विचारक, चिंतक, सतत सेवारत समाजसेवी हैं। आप लम्बे समय तक मध्यप्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष रहे हैं। अनेक राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय संसदीय सम्मेलनों के सफल आयोजक रहे हैं।*

पहले से भी अधिक अडिग और सुदृढ़

यमुनाप्रसाद शास्त्री
(पूर्व सांसद, समाजवादी पार्टी)

श्री अर्जुनसिंह लोकतांत्रिक समाजवादी विचारों से अपने छात्र जीवन में ही प्रभावित हो गये थे। 1955 में, मैं जब गोवा के स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के बाद रीवा वापस आया, उसी समय उन्होंने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की सदस्यता ग्रहण की। उस समय से हम लोग एक दूसरे के बहुत निकट आ गये। 1956 में बम्बई में समाजवादी युवकों के अंतर्राष्ट्रीय संघ की एशियाई शाखा का एक सम्मेलन हुआ उसमें उन्होंने मेरे आग्रह पर भारत के समाजवादी युवकों का प्रतिनिधित्व किया। उस सम्मेलन में इस देश के "लोकतांत्रिक समाजवादी आंदोलन की उपयोगिता संपूर्ण विश्व के संदर्भ में" विषय पर उन्होंने जो विचार व्यक्त किये उससे एशिया के विभिन्न देशों से आये हुए सभी प्रतिनिधि बहुत अधिक प्रभावित हुए तथा उस सम्मेलन के बारे में जो रिपोर्ट बाद में प्रकाशित हुई उसमें श्री अर्जुनसिंह के विचारों का प्रमुख रूप से उल्लेख था। श्री अर्जुनसिंह ने उस सम्मेलन में यह कहा था कि— एक अरसे के बाद अधिनायकवादी तरीक़े से समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास विफल हो जाएगा तथा समूचे विश्व में आर्थिक और सामाजिक समानता का ध्येय लोकतांत्रिक तरीक़े से ही प्राप्त किया जा सकेगा। आज उनका कथन सत्य प्रमाणित हो गया। उस समय की श्री अर्जुनसिंह की कम उम्र को देखते हुए उनकी दूरदृष्टि एवं परिपक्व विचारों का परिचय मिलता है।

इसी तरह धर्मनिरपेक्षता के विषय में उनके जो विचार छात्र जीवन में ही प्रस्फुटित हुए थे उनमें आज भी उनकी आस्था पहले से भी अधिक अडिग और सुदृढ़ दिखाई देती है। सामाजिक न्याय के प्रति भी वे इतने अधिक प्रतिबद्ध रहे कि किसी निर्धन व शोषित व्यक्ति के विरुद्ध यदि उनके परिवार वालों ने भी अन्याय किया तो परिवार का भी विरोध करने से नही चूके।

मैं मानता हूँ कि इन्हीं सद्‌गुणों के कारण इतनी उच्चकोटि की सफलता प्राप्त हो सकी है।

☐ *यमुनाप्रसाद शास्त्री— विन्ध्यप्रदेश के प्रखर समाजवादी नेता, नेत्रहीन, फक्कड़ समाजसेवी, दो बार लोकसभा के लिये चुने गये, यमुनाप्रसाद शास्त्री विद्वान् लेखक, क्रांतिकारी नेता तथा सफल जनसेवक रहे हैं। मध्यप्रदेश में समाजवादी आन्दोलन को नवजीवन देने और गतिशील रखने में आपका अप्रतिम योगदान रहा है।*

उनमें तुरन्त निर्णय लेने का गुण है

कृष्णपाल सिंह
(पूर्व मंत्री— मध्यप्रदेश शासन)

अर्जुनसिंहजी से मेरा सम्बन्ध कॉलेज के दिनों से है। हम दोनों साथ-साथ कॉलेज में थे। अर्जुनसिंहजी कॉलेज में भी बहुत ब्राइट स्टूडेंट थे। उनमें साहित्यिक गुण भी हैं और कला के भी संस्कार हैं। मेरी प्रेसीडेंटशिप के दो या तीन प्रेसीडेंट के बाद वे भी कॉलेज के प्रेसीडेंट हुए। हम लोग पहले कभी नहीं सोचते थे कि वे कभी राजनीति में आयेंगे। उनके पारिवारिक जीवन में कुछेक ड्रॉ बैक हुए, उनके पिता के ख़िलाफ़ एक केस हुआ, इस बारे में सभी लोग जानते हैं, मैं उस पर अधिक बोलना नहीं चाहूँगा। इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए उन्होंने जो कष्ट के दिन भोगे हैं इसे ध्यान में रखते हुए राजनीति में उन्होंने जो ऊँचाई पाई है वह केवल अपनी कुशलता के कारण पाई है। राजनीतिक विचारों में वे बहुत अधिक परिपक्व हैं। राजनीति में हर आदमी महत्वाकाँक्षी होता है, वे भी हैं। मैं उनके साथ एक मित्र के रूप में बहुत समय तक रहा हूँ तथा उनकी मिनिस्ट्री में भी उनके साथ रहा हूँ। वे एक कुशल प्रशासक भी रहे हैं। वे 1980 में जब मुख्यमंत्री बने तब भी मैं उनके केबिनेट में मंत्री बना। तब मैंने उनकी प्रशासनिक क्षमता को बहुत अच्छी तरह से देखा तथा अनुभव किया। राजनीतिज्ञों में एक बहुत बड़ी कमी होती है और वह है त्वरित निर्णय ले सकने की क्षमता का न होना किन्तु अर्जुनसिंहजी में यह एक विशेष गुण है कि वे बहुत त्वरित निर्णय लिया करते थे। उन्होंने केबिनेट फंक्शनिंग को अच्छा महत्व दिया था, ऐसा नहीं था कि उनके मुख्यमंत्री होने के कारण वे केबिनेट के मिनिस्टर्स की बात को न सुनते हों। हम लोग अगर कोई बात कहते थे तो वे उसे काफ़ी गंभीरता से लेते थे, अपने सहकर्मियों, मंत्रियों की भावनाओं को पूरा-पूरा सम्मान देते थे। यद्यपि कई बार हमारे विचारों में फ़र्क़ आया, कार्यशैली में फ़र्क़ आया तथापि जब भी हमने केबिनेट में या बाहर भी कोई बात उनसे कही है तो उन्होंने उसको पूरा महत्व दिया है। वे त्वरित निर्णय लेते थे, अपने साथियों को बराबर महत्व देते हुए कार्य करते थे, उनके इन दो गुणों से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। एक वाक़या हमें याद आता है कि एक बार शहडोल में जब हमने एकाएक तीन-चार कॉलेज खुलवाने की माँग की तो उन्होंने त्वरित रूप से इसे स्वीकार कर लिया। यह वास्तव में एक ऐसा प्रश्न था जिस पर लोगबाग निर्णय लेने में काफ़ी देर करते हैं लेकिन अर्जुनसिंहजी ने देरी नहीं की।

राजीव-लोंगोवाल समझौता अर्जुनसिंहजी के सत्प्रयासों का परिणाम रहा। यदि यह समझौता कार्यान्वित हो गया होता तो मैं समझता हूँ आज देश के राजनीतिक वातावरण में घुला ज़हर समाप्त हो गया होता। अर्जुनसिंहजी का यह प्रयास वस्तुतः प्रशंसनीय है।

अर्जुनसिंहजी एक कुशल पार्लियामेंटेरियन हैं। विधानसभा में भी हर बात को बहुत अच्छी तरह से कहते हैं, एक मँजे हुए पार्लियामेंटेरियन की तरह से व्यवहार करते रहे हैं। वे जब मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने उस समय की तुलना अगर हम आज के दौर से करें तो पाते हैं कि निश्चित रूप से आज साम्प्रदायिकता बढ़ी है।

हमारा और उनका तो बहुत ही स्नेहपूर्ण व्यवहार रहा। एक कहावत है कि "लिटरेचर यूनाईट्स एण्ड पॉलीटिक्स् डिवाईड्स", उस समय कॉलेज में हम दोनों काफ़ी एक्टिव थे। हमने भी विशारद किया था और लिखते भी थे, वे भी बहुत ही इन्टेलेक्चुअल लेकिन बहुत ही सबमिसिव और शान्त स्वभाव के थे। उस समय की एक मज़ेदार घटना मुझे याद आती है, कि जूलियस सीज़र नाटक होना था मैंने सोचा कि सीज़र का पार्ट करने वाला कौन आदमी मिल सकता है जो रोमांस अच्छा क्रियेट कर सके। उस समय एक प्रोफ़ेसर ने कहा कि अर्जुनसिंह एक विद्यार्थी हैं उन्हें बुला लिया जाए, ही इज़ द बेस्ट ब्वॉय। मैने उन्हें बुलाया और उन्हें एक गाना सुनाने के लिए कहा तो उन्होंने कहा कि मिस्टर प्रेसीडेंट आर यू सीरियस? तो मैंने कहा हाँ भई, सभी प्रोफ़ेसर्स की तो यही राय है। उन्होंने एक गाना गाया और सिर झुकाकर चले गए, उसने मुझे इतना प्रभावित किया कि जिसका कोई जवाब नहीं। मैंने तब से उन्हें स्नेह करना प्रारंभ किया। उन्होंने उस नाटक में जूलियस सीज़र का पार्ट किया और बहुत ही अच्छा किया, उसकी बड़ी प्रशंसा हुई।

अर्जुनसिंहजी एक सफल मुख्यमंत्री हुए। आज भी तमाम सहमति-असहमतियों के बावज़ूद हमारे मित्रवत संबंध काफ़ी अच्छे हैं।

☐ *कृष्णपाल सिंह— विन्ध्यप्रदेश में समाजवादी आन्दोलन के प्रमुख सूत्रधारों में अग्रणी स्वर्गीय श्री कृष्णपाल सिंह सफल एडवोकेट, विधायक, मंत्री तथा सुप्रसिद्ध विचारक, चिंतक, संगठनकर्ता रहे हैं। आपने अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय समारोहों-सम्मेलनों में म.प्र. का प्रतिनिधित्व किया है। भारत नेपाल मैत्री संघ म.प्र. के संस्थापक अध्यक्ष रहे हैं।*

उनके लिए राजनीति एक निरन्तर प्रक्रिया है

सुभाष यादव
(अध्यक्ष, म.प्र. कॉंग्रेस कमेटी)

श्री अर्जुनसिंह कठिन परीक्षा में विश्वास करते हैं। उनके सामने कोई फ़र्जी आदमी टिक ही नहीं सकता। उनके कान अप्रमाणित बातों को सुनते ही नहीं हैं। वे कभी किसी से कोई दुराभाव भी नहीं रखते। अगर नाराज़गी भी हो तो उनके चेहरे पर वह झलकती ही नहीं है। वे छोटी-छोटी घटनाओं को इस तरह टाल जाते हैं कि आप खुद ही सोचने पर मजबूर हो जाएँ कि आख़िर बात क्या है।

मैंने उन्हें लम्बे समय से उदारता और सहृदयतापूर्वक राजनीति करते देखा है। उनके मन में पक्ष या विपक्ष का वैसा विभाजन नहीं है जैसा आमतौर पर दोस्त या दुश्मनों के बीच होता है। उन्होंने हमेशा ऐसी राजनीति की है जहाँ उनके दिल के द्वार सभी के लिए खुले रहते हैं। हमेशा उनके मन में बेचैनी बनी रहती है कि वे ग़रीब और असहाय लोगों के प्रति अधिकार क्षेत्र में क्या-क्या करते हैं। मुझे याद है कि मैं 1981 में जब खरगौन के अपेक्स बैंक का अध्यक्ष हुआ तो मुझे पता चला कि यहाँ तो गड़बड़ियाँ हैं पर उन्हें ठीक करने में अनेक झंझटें आएँगी। मैंने जब श्री अर्जुनसिंह को अपनी यह समस्या बताई तो उन्होंने तत्काल कहा कि जिस किसी ने भी ग़रीबों के साथ किसी भी प्रकार का अत्याचार किया हो उसे आप तुरंत क्रष कर दीजिए। मैं किसी को नहीं बचने दूँगा।

वे ग़रीब आदमी की मदद के लिये कोई प्रस्ताव स्वीकार करने में ज़रा भी देर नहीं करते थे। हमने बैंक के माध्यम से ग़रीबों के लिए आवास योजना, विकलांगों की सहायता, कर्ज़ से मुक्ति के लिये ग़रीबों को ऋण और विधवा स्त्रियों की सहायता आदि अनेक योजनाएँ श्री अर्जुनसिंह के अत्यंत संवेदनशील नेतृत्व में पूरी की हैं। उन्होंने 1988 में कृषक कल्याण आयोग की ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर डाली। मुझे याद है कि मेरे ख़िलाफ़ की गई झूठी शिकायतों की उन्होंने खोज-बीन करवाई और खुले रूप से म.प्र. की विधानसभा में मुझे निष्कलंक निरूपित किया।

श्री अर्जुनसिंह हमेशा प्रतिभाओं की तलाश करते रहते हैं और जैसा मैंने प्रारंभ में ही कहा कि कठिन परीक्षा के बाद उचित समय पर उपयुक्त दायित्व भी सौंपते हैं। उनसे जुड़ने वाला व्यक्तित्व किस तरह प्रतिष्ठा पाए इसके लिये वे हमेशा सचेत रहते थे। वे छोटे-छोटे अवसरों पर भी अपने साथियों के स्वाभिमान का ख्याल रखते हैं। मुझे याद है कि भोपाल में रिजर्व बैंक के अधिकारियों की एक बैठक हो रही थी और किसी कारणवश मुझे वहाँ पहुँचने में देर हो गई मैं जब पहुँचा तो बैठक शुरू हो गई थी संकोचवश मैं बाहर ही ठहरा रहा। पता नहीं कैसे श्री अर्जुनसिंह ने मुझे देख लिया और अपने बगल में बैठे एक अधिकारी को बाहर भेजकर मुझे तुरंत बुलवाया और अपने पास बैठाया। पल भर में मेरा सारा संकोच दूर हो गया। देर से आने का अपराधबोध उन्होंने इस तरह कराया।

एक और घटना जिसे मैं भूल नहीं पाता। यह बात उन दिनों की है जब वे अपने हृदय की शल्य चिकित्सा के लिये अस्पताल में भर्ती थे उन्हें डॉक्टरों ने चलने-फिरने से मना कर दिया था और कुछ ही दिनों में उनका ऑपरेशन होना था। मैं उनसे अस्पताल में मिलने गया था। जब मैं लौटने लगा तो वे सहज ही पूरी स्फूर्ति के साथ बिस्तर से

उनके लिए राजनीति एक निरन्तर प्रक्रिया है

सुभाष यादव
(अध्यक्ष, म.प्र. काँग्रेस कमेटी)

श्री अर्जुनसिंह कठिन परीक्षा में विश्वास करते हैं। उनके सामने कोई फ़र्जी आदमी टिक ही नहीं सकता। उनके कान अप्रमाणित बातों को सुनते ही नहीं हैं। वे कभी किसी से कोई दुराभाव भी नहीं रखते। अगर नाराज़गी भी हो तो उनके चेहरे पर वह झलकती ही नहीं है। वे छोटी-छोटी घटनाओं को इस तरह टाल जाते हैं कि आप खुद ही सोचने पर मजबूर हो जाएँ कि आख़िर बात क्या है।

मैंने उन्हें लम्बे समय से उदारता और सहृदयतापूर्वक राजनीति करते देखा है। उनके मन में पक्ष या विपक्ष का वैसा विभाजन नहीं है जैसा आमतौर पर दोस्त या दुश्मनों के बीच होता है। उन्होंने हमेशा ऐसी राजनीति की है जहाँ उनके दिल के द्वार सभी के लिए खुले रहते हैं। हमेशा उनके मन में बेचैनी बनी रहती है कि वे ग़रीब और असहाय लोगों के प्रति अधिकार क्षेत्र में क्या-क्या करते हैं। मुझे याद है कि मैं 1981 में जब खरगौन के अपेक्स बैंक का अध्यक्ष हुआ तो मुझे पता चला कि यहाँ तो गड़बड़ियाँ हैं पर उन्हें ठीक करने में अनेक झंझटें आएँगी। मैंने जब श्री अर्जुनसिंह को अपनी यह समस्या बताई तो उन्होंने तत्काल कहा कि जिस किसी ने भी ग़रीबों के साथ किसी भी प्रकार का अत्याचार किया हो उसे आप तुरंत क्रष कर दीजिए। मैं किसी को नहीं बचने दूँगा।

वे ग़रीब आदमी की मदद के लिये कोई प्रस्ताव स्वीकार करने में ज़रा भी देर नहीं करते थे। हमने बैंक के माध्यम से ग़रीबों के लिए आवास योजना, विकलांगों की सहायता, कर्ज़ से मुक्ति के लिये ग़रीबों को ऋण और विधवा स्त्रियों की सहायता आदि अनेक योजनाएँ श्री अर्जुनसिंह के अत्यंत संवेदनशील नेतृत्व में पूरी की हैं। उन्होंने 1988 में कृषक कल्याण आयोग की ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर डाली। मुझे याद है कि मेरे ख़िलाफ़ की गई झूठी शिकायतों की उन्होंने खोज-बीन करवाई और खुले रूप से म.प्र. की विधानसभा में मुझे निष्कलंक निरूपित किया।

श्री अर्जुनसिंह हमेशा प्रतिभाओं की तलाश करते रहते हैं और जैसा मैंने प्रारंभ में ही कहा कि कठिन परीक्षा के बाद उचित समय पर उपयुक्त दायित्व भी सौंपते हैं। उनसे जुड़ने वाला व्यक्तित्व किस तरह प्रतिष्ठा पाए इसके लिये वे हमेशा सचेत रहते थे। वे छोटे-छोटे अवसरों पर भी अपने साथियों के स्वाभिमान का ख्याल रखते हैं। मुझे याद है कि भोपाल में रिजर्व बैंक के अधिकारियों की एक बैठक हो रही थी और किसी कारणवश मुझे वहाँ पहुँचने में देर हो गई मैं जब पहुँचा तो बैठक शुरू हो गई थी संकोचवश मैं बाहर ही ठहरा रहा। पता नहीं कैसे श्री अर्जुनसिंह ने मुझे देख लिया और अपने बगल में बैठे एक अधिकारी को बाहर भेजकर मुझे तुरंत बुलवाया और अपने पास बैठाया। पल भर में मेरा सारा संकोच दूर हो गया। देर से आने का अपराधबोध उन्होंने इस तरह कराया।

एक और घटना जिसे मैं भूल नहीं पाता। यह बात उन दिनों की है जब वे अपने हृदय की शल्य चिकित्सा के लिये अस्पताल में भर्ती थे उन्हें डॉक्टरों ने चलने-फिरने से मना कर दिया था और कुछ ही दिनों में उनका ऑपरेशन होना था। मैं उनसे अस्पताल में मिलने गया था। जब मैं लौटने लगा तो वे सहज ही पूरी स्फूर्ति के साथ बिस्तर से

उठे और मुझे कमरे के द्वार तक छोड़ने आए। यह घटना अत्यंत छोटी-सी है पर उनके हृदय की अथाह गहराई का बोध कराती है उनका यही प्रेम हमें उनसे बाँधे हुए है और इसी के कारण कोई भी ताक़त हमें उनसे अलग नहीं कर सकती है। बहुत-से लोग हैं जो उनके इसी प्रेमपूर्ण व्यवहार से बँधे हुए हैं। वे उनके पास धन और सत्ता पाने के लिये नहीं जाते उनकी आत्मीयता पाने के लिये जाते हैं। अगर वे किसी से नाराज भी हो जाएँ तो उदारतापूर्वक सम्भलने का मौक़ा देते है। कहते कुछ नहीं उनकी अपनी एक संकेत भाषा है यदि आप उसे पढ़ने में माहिर है तो सम्भलने में कोई कठिनाई नहीं होती।

वे संक्षेप में बोलते हैं और सबकी विस्तार से सुनते हैं। अगर उन्हें लगता है कि सामने वाले को और सुना जाना चाहिए तो वे उसके लिये अतिरिक्त समय भी निकालते हैं। श्री अर्जुनसिंह के जीवन में टाईम मैनेजमेंट का बड़ा महत्व है। समय के प्रति इतनी सतर्कता मैने बहुत कम राजनेताओं में देखी है। वे जिसे जो समय देते हैं उसी समय पर उससे मिलते हैं। उनसे मिलने के लिए व्यर्थ की प्रतीक्षा नहीं करना पड़ती। मैंने यहाँ तक देखा है कि यदि किसी सभा में स्वयं उनके लिये बीस मिनिट का समय तय हो और उनका पूर्व वक्ता उनके हिस्से के दस मिनिट खा जाए तो श्री अर्जुनसिंह अपना काम दस मिनिट में ही बख़ूबी चला लेते हैं। वे समय को व्यर्थ जाने नहीं देते।

उनके बारे में बहुत कुछ कहने को है। वे एक ऐसे राजनेता हैं कि उनके लिये राजनीति एक निरंतर प्रक्रिया है। जहाँ राजनैतिक संघर्ष की चेतना का अभाव ही नहीं है। वे भारतीय राजनीति के रण क्षेत्र में चुनौतियों से मुक़ाबला करने का पर्याय बन चुके हैं। उन्होंने दीनता दिखाकर कभी कोई पद या प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं की। न वे अनुचित लाभ उठाते है और न ही किसी को उठाने देते हैं यही कारण है कि कोई भी उनको ब्लैकमेल नहीं कर सकता। उन्हें फर्ज़ी आदमी को पहचानने में और उसे दूर झटक देने में ज़रा-सी भी देर नहीं लगती। उनकी त्वरित निर्णय लेने की क्षमता हर क्षेत्र में अचूक है। मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि राजनैतिक संघर्ष की यह चेतना जिसके प्रतीक श्री अर्जुनसिंह बन गए है हमेशा हमारे साथ रहें और समाज के हर क्षेत्र में हमारा पथ प्रदर्शन करते रहें।

☐ *सुभाष यादव—* *राष्ट्रीय सहकारी आन्दोलन के प्रमुख नेता, अपेक्स बैंक, मध्यप्रदेश के पूर्व अध्यक्ष, सूती मिल, इंजीनियरिंग कॉलेज, पॉलिटेक्नीक आदि दर्जनों संस्थाओं के संस्थापक अध्यक्ष श्री सुभाष यादव मध्यप्रेदश के पूर्व उप मुख्यमंत्री हैं। कृषक नेता के रूप में स्थापित श्री यादव वर्तमान में म.प्र. कॉंग्रेस कमेटी के अध्यक्ष हैं।*

नये मध्यप्रदेश की राजनैतिक घटनाओं के बीच

राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल
(मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष)

किसी सुवासित मुक्ताकाश में पुष्प को देखकर वातावरण सुगंधित हो जाता है तथा देखने वालों की दृष्टि को इस पुष्प का सौन्दर्य तथा सौन्दर्य का प्रभाव अपनी ओर आकर्षित भी करता है किन्तु उस पुष्प के विकास और उद्‌भव की कहानी की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है विशेषकर जब वह पुष्प अपनी स्वाभाविक ऊष्मा में वनफूल के रूप में उठकर नाना प्रकार के विघ्नकारी हिम आतप को झेलते हुए जीवन के रसों से ओत-प्रोत हो, शनैः-शनैः विकसित होता है और अपने गौरव से अभिभूत हो शिष्ट शालीनता से सुगन्ध बिखेरता है। इस क्रम में एक सुदीर्घ संघर्ष का इतिहास सन्निहित है। श्री अर्जुनसिंह के संबंध में उनके व्यक्तित्व के विकास की कहानी को इससे अधिक और अच्छे ढंग से व्यक्त करना संभवतः उपयुक्त नहीं होगा। विंध्य के नाना प्रकार के विकास के मार्ग के अवरोधों तथा व्यवधानों को लाँघकर वहाँ की रूढ़ियों, परम्पराओं तथा प्रवृत्तियों से लड़ते हुए अपने आप को और ऊपर उठाते हुए प्रदेश के क्षितिज पर प्रभावी होना तथा प्रदेश की भी सीमाओं को लाँघकर सम्पूर्ण भारतीय जगत में अपने आपको शलाका पुरुष के रूप में स्थापित करना श्री अर्जुनसिंह के ही व्यक्तित्व के करिश्मे का परिणाम हो सकता है।

श्री अर्जुनसिंह के राजनीतिक उद्‌भव और विकास की कहानी के साथ-साथ उनके जीवन विकास की मानसिक और बौद्धिक यात्रा का अनुशीलन और अध्ययन उनके व्यक्तित्व के सही मूल्यांकन के लिये आवश्यक है। वास्तव में जितना दिखता है, वही सब कुछ पर्याप्त नहीं होता है। जो नहीं दिखता है, वह भी मनुष्य के व्यक्तित्व या संस्कृति के निर्माण में सहायक होता है। श्री अर्जुनसिंह ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से विधि स्नातक की डिग्री तो ली ही किन्तु वकालत शायद बहुत ही कम कर पाये हैं और सीधी तथा रीवा के सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में 1957 के आस-पास की समस्याओं तथा चुनौतियों ने उन्हें आक्रान्त कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके अंतःस्थल में एक ऐसी चिंगारी प्रज्वलित हो गई थी जिसके कारण सामान्य लीक पर चलते रहने की विवशता को उन्होंने अस्वीकार कर दिया और जनजीवन में राजनीति के माध्यम से सौजन्य, विनम्रता, संघर्षशीलता, पीड़ित तथा शोषितों के दर्द के प्रति सहानुभूति की भावनाओं ने उनके हाथ में एक ऐसी जलती हुई मशाल दी जिससे ये चेतना और प्रेरणा को सामूहिक रूप प्रदान कर राजनीतिक और सामाजिक जीवन में उस मशाल को सदैव ऊपर उठाते हुए चलते रहे और प्रसन्नता यह है कि श्री अर्जुनसिंह का हाथ अभी भी ऊँचा है तथा मशाल अभी भी जल रही है।

1957 की राजनीति में उनके प्रादुर्भाव की कहानी से मेरा ज़्यादा संबंध नहीं है क्योंकि उस समय समाचार-पत्रों तथा पुस्तकों के माध्यम से मुझे जानकारी प्राप्त होती रही है। वे पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र के मंत्रिमंडल में 1963 में कृषि राज्यमंत्री बनाये गये। राजनीति में अनेक लोग आते हैं, यश भी मिलता है तथा वे सफलता भी अर्जित करते हैं लेकिन श्री अर्जुनसिंह के राजनीति के संबंध में मैंने अनुभव किया कि अंतःस्थल में छिपी हुई गहरी संकल्प शक्ति

लेकिन बाहर से राजनीति में उनका मौन ही विशेष रूप से मुखर रहा है। संभवतः मध्यप्रदेश के ही नहीं, पूरे भारतवर्ष के वे ऐसे एकमात्र राजनीतिज्ञ होंगे जो कि अधिक से अधिक मौन रहकर अत्याधिक प्रासंगिक एवं आवश्यक अभिव्यक्ति प्रदेश, समाज तथा राष्ट्र को संप्रेषित करते हैं, इसलिये जब कभी भी वे राजनीति में और विशेषकर पद की राजनीति में उनका पदार्पण हुआ तो शीघ्रता से उन्होंने कोई कार्य नहीं किया। मुझे अच्छी तरह से स्मरण है कि जब वे श्री प्रकाशचन्द्र सेठीजी के कार्यकाल में 1972 में शिक्षामंत्री बनाये गये तो उन्होंने यह संकल्प लिया था कि वे शिक्षामंत्री बनने के बाद 4 महीने तक कहीं कोई वक्तव्य नहीं देंगे और न किसी समारोह में भाग लेंगे। किसी सत्ताधारी राजनीतिज्ञ के लिये इस प्रकार का लोभ संवरण कर पाना बहुत कष्ट साध्य होता है। पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र के शासनकाल में कृषिमंत्री के रूप में विधानसभा की एक घटना जो मुझे सदैव याद रहेगी— संभवतः यह 1965 के आस-पास की बात होगी जब कि मेरे मित्र श्री विनय कुमार दीवान, जो उस समय प्रजा समाजवादी पार्टी की ओर से विधानसभा सदस्य थे, उनका श्री अर्जुनसिंह के कृषिमंत्री के रूप में विभाग के किसी विषय को लेकर इतना गंभीर विवाद हो गया था कि श्री विनय कुमार दीवान ने श्री अर्जुनसिंह को विधानसभा के अंदर चुनौती दी थी और यह कहा था कि यदि यह असत्य हो तो वे त्याग-पत्र देने के लिये तैयार हैं। कालान्तर में ऐसा प्रतीत होता है कि वह विवाद परस्पर सामंजस्य से निराकृत हो गया, किन्तु ऐसे किसी विवाद में श्री अर्जुनसिंह को उत्तेजना में आते हुये या आपा खोते हुए मैंने कभी नहीं देखा।

श्री अर्जुनसिंह के स्वभाव में उनकी सबसे बड़ी सम्पदा, उनकी शिष्टता, उनका सौजन्य तथा व्यवहार में विनम्रता है। यह गुण आजकल राजनीतिज्ञों में सूखाग्रस्त क्षेत्रों में बरसात की बूँदों की तरह से अनुपस्थित पाया जाता है। अपने परिवारजनों से या अपने मित्रों से या अपने पास के लोगों से शालीन व्यवहार तो वे करते ही हैं किन्तु यह शालीनता उनकी और भी द्विगुणित हो जाती है जब कि वे अपने राजनैतिक प्रतिस्पर्धी अथवा प्रतिपक्ष के लोगों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करते हैं। यह शालीनता और शिष्टता चाहे राजनैतिक मंच, सार्वजनिक आमसभाओं के रूप में हो अथवा विधानसभा या लोकसभा का संसदीय मंच हो अथवा किसी कार्यालय में कार्य करते हुए हो, कभी ऐसा नहीं पाया गया कि उन्होंने शिष्टता और सौजन्य को अमर्यादित होने दिया हो। उनके कार्यालय में एक सूक्त वाक्य मैंने देखा जो अक्सर सुभाषित के रूप में लगा रहता था और जो इस प्रकार था—

If you are right should not loose temper and if you are wrong you can not afford to loose temper.

यह मनुष्य की उसके गंभीर चिन्तन, उसके स्वभाव की सरलता का परिचायक है, 1967 से तो मैं भी विधानसभा में हूँ और तब से लेकर आज तक मेरा श्री अर्जुनसिंह से सतत् सम्पर्क रहा है और वह निरन्तर बढ़ता ही रहा है। उनके विचारों में, उनके कार्यों में, उनके संबंधों में मैंने एक सच्चाई और एक हमदर्द सहयोगी का रूप देखा है और ऐसा मैंने नहीं महसूस किया कि किसी का इस्तेमाल करने के लिए और थोड़े समय के लिए उसका उपयोग करना चाहते हैं और बाद में उसको छोड़ देना चाहते हैं, ऐसी भावना मैंने नहीं महसूस की। रीवा के मेरे एक मित्र श्री मुनिप्रसाद शुक्ल, जो काफ़ी लम्बे अरसे तक मध्यप्रदेश की विधानसभा के सदस्य रहे हैं और 1980 से 85 तक श्री अर्जुनसिंह के मंत्रिमंडल में राज्यमंत्री से लेकर केबिनेट मंत्री तक हुए हैं, उन्होंने 1957 की विधानसभा के आम चुनाव की एक घटना का उल्लेख किया जिससे वो तो प्रभावित हुए, सुनकर मैं भी प्रभावित हुआ। घटना इस प्रकार की है कि श्री अर्जुनसिंह 1957 में एक निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में विधानसभा का चुनाव लड़ रहे थे और श्री मुनिप्रसाद शुक्ल संभवतः समाजवादी पार्टी की ओर से चुनाव लड़ रहे थे। चुनाव क्षेत्र में श्री मुनिप्रसाद शुक्ल अपनी जीप से भ्रमण कर रहे थे कि अचानक उनको ज्ञात हुआ कि उनकी गाड़ी में पेट्रोल समाप्त हो गया है और उनकी गाड़ी बिलकुल नहीं चल सकती है। दिन डूब रहा था। ठण्ड के दिन थे और जहाँ उनकी गाड़ी खड़ी हो गई थी वहाँ आस-पास कोई

बस्ती नहीं थी। इसलिये भय तथा चिंता होना स्वाभाविक था। उसी बीच श्री अर्जुनसिंह, जो निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में उनके विरुद्ध ही चुनाव लड़ रहे थे, उस मार्ग से निकले। श्री मुनिप्रसाद शुक्ल ने साहस बटोरकर अपने ड्रायवर को उनके पास पेट्रोल हेतु पूछताछ करने के लिये भेजा। श्री अर्जुनसिंह ने यह जानते हुए भी कि ये उनके विरोधी प्रत्याशी हैं, अपनी गाड़ी से न केवल उनको पेट्रोल दिया वरन् अपने साथ उनको अपनी गाड़ी में बैठाकर जिले के मुख्यालय तक भी ले आये। चुनाव का परिणाम जो होना था, वही हुआ किन्तु श्री मुनिप्रसाद शुक्ल, श्री अर्जुनसिंह की सज्जनता से जीवन भर के लिए उनके सहयोगी तथा मित्र हो गये। इस प्रकार का सहज, स्वाभाविक सौजन्य जो परस्पर संबंधों का सुख उत्पन्न करता है, श्री अर्जुनसिंह की विशेषता है।

1967 के उपरान्त भिन्न-भिन्न भूमिकाओं एवं धरातल पर मेरा श्री अर्जुनसिंह से निरन्तर निकट का सम्पर्क न केवल स्थापित हुआ, वरन् उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। दो बातें प्रारंभ से ही उनके जीवन, गतिविधियों तथा व्यक्तित्व के चतुर्दिक वातावरण पर परलक्षित होती रही हैं, किन्तु उससे किंचित भी अप्रभावित हुए बिना अपने लक्ष्य की दिशा की ओर आगे बढ़ते रहे। इन दोनों बातों में से पहली बात है उनको लेकर नाना प्रकार की भ्राँति एवं अनर्गल प्रचार तथा आरोपों की अवधारणा उत्पन्न करना तथा दूसरी बात है प्रारंभ से ही राजनीति के क्षेत्र में उनके विरोध में कुछ स्थाई तथा कुछ अस्थाई विरोधियों द्वारा व्यूह रचना करना। यहाँ मेरा उद्देश्य भ्राँतियों तथा आरोपों की चर्चा करना नहीं है क्योंकि राजनीति के क्षेत्र से भिज्ञ कोई भी व्यक्ति इनसे अपरिचित हो, ऐसा संभव नहीं है। उनके मित्रों की श्रृंखला और व्यूह रचना भी कभी अस्पष्ट नहीं रही। ये आरोप चाहे किसी भी प्रकार के हों, किसी के द्वारा भी लगाये गये हों तथा कभी भी लगे हों, उससे लोग तो विचलित भले हुए हों तथा श्री अर्जुनसिंह के समर्थकों में कदाचित उत्तेजना भी आई हो किन्तु मैंने सदैव ऐसी परिस्थितियों में श्री अर्जुनसिंह को शांत, गंभीर, निर्विकार और किसी दृढ़ निश्चय से परिपूरित देखा है। मेरे विधानसभा अध्यक्ष बनने के पहले तथा उसके उपरांत भी आरोपों की झड़ी लगती थी किन्तु उसको बड़े सहज रूप से शांत रहकर, हँसते हुए झेलने का उनका स्वभाव निःसंदेह श्लाघ्य है। व्यक्तिगत तिलमिलाहट पैदा करने वाले आरोपों के उत्तर जिस समय वह अविचलित होकर शांति और गंभीरता के साथ सदन में दिया करते थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे आरोपों का कोहरा सब एक साथ छँट गया। कभी यह भी देखा गया कि सारे विरोध और आरोपों के बाद जब भी जनता से या नागरिकों से इस प्रजातंत्र की प्रतिष्ठा के अनुरक्षण का प्रश्न उठा, सदैव पूर्वापेक्षा प्रबलतर से प्रबलतम मतों से श्री अर्जुनसिंह और सफल होते रहे तथा एक नहीं ऐसे अनेक अवसर आये कि राजनैतिक घेराबन्दी करने के बाद भी उनके विरोधियों को मुँह-की खानी पड़ी, लेकिन ऐसी कठिन परिस्थितियों में दो-दो हाथ करने के बाद भी विरोधियों के साथ भी उनके व्यवहार तथा कार्य में कभी दुर्भावना तथा कटुता उत्पन्न नहीं हुई तथा राजनीति में भी उन्होंने अपना सदैव एक स्तर बनाकर रखा, जिससे नीचे उतरना उनके लिए कभी भी स्वीकार्य नहीं था।

श्री अर्जुनसिंह को अपने जीवन में थोड़े समय के भीतर जितनी बाहुल्य भरी चुनौतियों का सामना करना पड़ा है, उतना शायद ही कम लोगों को करना पड़ा। अपने जीवन में उन्होंने लोकसभा से लेकर विधानसभा तक जितने भी चुनाव लड़े हैं और उनमें जितनी सफलताएँ प्राप्त की हैं, संभवतः दूसरों के लिये ऐसा अवसर शायद ही प्राप्त होगा। मुख्यमंत्री की शपथ ग्रहण करना और उसके दूसरे दिन ही पंजाब के राज्यपाल हेतु प्रस्थित होना, पंजाब के राज्यपाल के कुछ दिनों के कार्यकाल के उपरान्त दक्षिण दिल्ली से लोकसभा का चुनाव लड़ना, भारत-शासन का संचारमंत्री बनना, अखिल भारतीय काँग्रेस का उपाध्यक्ष होना तथा उसके बाद फिर मध्यप्रदेश का मुख्यमंत्री होकर आना, खरसिया से चुनाव लड़ना तथा पुनश्च 1990 में चुरहट से चुनाव लड़ना एवं 1991 से सतना से लोकसभा का चुनाव लड़ना। ये सारी घटनाएँ प्रतीत होती हैं जैसे कोई सूत्रधार इतिहास को अति नाटकीयता की ओर त्वरित गति से संचालित कर

रहा है। इन सारी घटनाओं में राजनैतिक तथा मानसिक अन्तर-द्वन्दों का घात-प्रतिघात और उससे अविचलित रहते हुए उनका सामना करना, यह किसी भी राजनीति के विद्यार्थी के लिए सदैव शोध का एवं अनुसरण का विषय हो सकता है। विधानसभा, राजनैतिक मंच तथा न्यायालयों में भी उन पर आरोप लगे और जिस प्रकार से आरोप लगे, उसी प्रकार से समुचित प्रयास के द्वारा ये आरोप छटते भी गये। चुनौतियाँ एक के बाद एक आती गई लेकिन श्री अर्जुनसिंह का सिद्धान्त सदैव यह रहा है— 'न दैन्यम न पलायनम्'। जो गीता में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन के लिये कहा था कि 'न ही दीनता दिखाओ और न ही युद्ध से पलायन करो।' इस सिद्धान्त को लेकर वे सदैव आगे ही बढ़ते रहे। सफलता किसी चीज़ को प्राप्त करने मात्र से नहीं है बल्कि व्यक्ति किसी घटना को, किसी कार्य को, किस रूप में अंगीकार करता है तथा उन क्षणों को कैसे जीता है, यह महत्व की बात होती है तथा इस दृष्टि से श्री अर्जुनसिंह का महत्व सदैव बढ़ता ही रहा। जितने संघर्ष, जितनी कठिनाई उनके सामने आई होंगी, उतनी किसी के सामने नहीं। 1990 और 91 में जिस भीषण, मर्मान्तक, घातक बीमारी की चपेट में वे आ गये थे, उस समय तो लगभग सभी को यह लग रहा था— मालूम नहीं कि श्री अर्जुनसिंह इससे कैसे उबर पायेंगे। चिकित्सकों ने पूरी लगन और मेहनत से तो चिकित्सा की, किन्तु उसमें जिस दृढ़ आत्म-विश्वास की आवश्यकता होती है, अगर वह श्री अर्जुनसिंह में नहीं होती तो उस बीमारी से पार पाना कठिन था और इसीलिये स्वस्थ होकर भोपाल आने पर जब उनका मध्यप्रदेश काँग्रेस कमेटी के भवन में काँग्रेसजनों द्वारा सम्मान किया जा रहा था तब मैंने श्री अर्जुनसिंह को मृत्युंजय के रूप में सम्बोधित किया था।

जब नये मध्यप्रदेश का गठन हुआ था तब श्री अर्जुनसिंह ने राजनीति के जीवन में पदार्पण किया। 31 दिसम्बर 1956 की रात्रि में मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री पंडित रविशंकर शुक्ल का स्वर्गवास हुआ। मध्यप्रदेश राज्य के पुनर्गठन में पंडित रविशंकर शुक्ल एवं पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र का बहुत बड़ा योगदान था। श्री रविशंकर शुक्ल के निधन के उपरान्त मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में डॉ. कैलाशनाथ काटजू का प्रादुर्भाव हुआ। डॉ. कैलाशनाथजी काटजू, पंडित जवाहरलाल नेहरू के अत्यधिक निकट, उद्भट विद्वान, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी तथा बेलाग मुख्यमंत्री थे। 1957 से 62 तक वे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री रहे। उनके संबंध में यह ज़रूर कहा जा सकता है कि वे इन 5 वर्षों में सर्वथा अनासक्त होकर एक निष्पक्ष प्रशासक के रूप में मध्यप्रदेश का शासन करते रहे। उन्हें विदेह की संज्ञा दी जा सकती है। डॉ. कैलाशनाथ काटजू का यह एक बहुत बड़ा गुण था, वहीं दूसरी ओर मध्यप्रदेश के राज-द्वेष से जुड़े हुए राजनीतिज्ञों के लिये उनका यह सबसे बड़ा अवगुण भी था। इस समय पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र सागर विश्वविद्यालय में कुलपति के रूप में विद्यमान रहते हुए राजनीतिक वनवास का समय काट रहे थे। मैं चूँकि उस समय सागर विश्वविद्यालय के स्नातक मण्डल का सदस्य था तथा वहाँ के कोर्ट और विद्या परिषद के निर्वाचित सदस्य के रूप में 1958 से चला आ रहा था। मेरा सागर तथा सागर के साथ ही भोपाल के विभिन्न सार्वजनिक, सामाजिक एवं शासकीय उपक्रमों से सम्बन्ध होने के कारण भोपाल से भी संबंध जुड़ा हुआ था। वह एक ऐसा समय था जबकि मध्यप्रदेश की काँग्रेस की राजनीति में ऊपर से परिस्थितियाँ बड़ी शांत दिखाई पड़ रही थीं लेकिन बाह्य धरातल के नीचे षड़यन्त्र की आग सुलग रही थी और यह डॉ. कैलाशनाथ काटजू के नेतृत्व के विरुद्ध किया जा रहा था।

1957 में श्री अर्जुनसिंह सीधी जिले के चुरहट विधानसभा क्षेत्र से निर्दलीय सदस्य के रूप में चुने गये। उन्होंने अपनी ऊर्जा, ऊष्मा, सक्रियता तथा संसदीय ज्ञान एवं शिष्ट व्यवहार से अपना एक सुनिश्चित स्थान बना लिया था। वे निर्दलीय विधायकों के नेता भी हो गये थे। इसी बीच श्री अर्जुनसिंह का व्यक्तिगत संबंध पं. जवाहरलाल नेहरू से स्थापित हुआ श्री अर्जुनसिंह चूँकि नेहरूजी से प्रभावित तो पहले से ही थे किन्तु उनके व्यक्तिगत सम्पर्क में आने

के उपरान्त उनमें एक नई संकल्प शक्ति का उदय हुआ और डॉ. कैलाशनाथ काटजू के नेतृत्व वाली विधानसभा में ही वे काँग्रेस पक्ष में सम्मिलित हो गये। इतिहास साक्षी है कि जब से वे काँग्रेस में सम्मिलित हुए, तब से आज तक लगातार अविचलित रूप से पूरी निष्ठा के साथ काँग्रेस से ही जुड़े हुए हैं तथा नेहरू परिवार के प्रति उनकी निष्ठा असंदिग्ध रही आई है।

डॉ. कैलाशनाथ काटजू के समय सेठ गोविन्ददास, श्री भगवन्तराव मण्डलोई, महन्त लक्ष्मीनारायण दास तथा बाबू तख्तमल जैन, जो कि अब सभी स्वर्गीय हैं, प्रभति सज्जनों ने काँग्रेस के अन्दर अपना एक अलग गुट बनाकर अप्रत्यक्ष रूप से संगठन पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए प्रयत्न करना शुरू किया था यह गुट डॉ. कैलाशनाथ काटजू के विरोध में काम करता रहा। इस सबका परिणाम यह हुआ कि 1962 के आम चुनाव में काँग्रेस को सबसे बड़े दल के रूप में सफलता तो प्राप्त हुई लेकिन बहुत स्पष्ट बहुमत नहीं मिल सका और न केवल इतना ही बल्कि डॉ. कैलाशनाथ काटजू को जनसंघ के श्री लक्ष्मीनारायण पाण्डे के द्वारा जावरा विधानसभा क्षेत्र से पराजय का मुँह देखना पड़ा। इस घटना ने प्रदेश के सभी काँग्रेसजनों को चौंका दिया तथा डॉ. कैलाशनाथ काटजू की पराजय ने पंडित जवाहरलाल नेहरू को हतप्रभ कर दिया तथा वे इससे बहुत ज़्यादा दुखी भी हुए। यह वह समय था जब कि चीन ने हिन्दी-चीनी भाई-भाई के सिद्धान्त के प्रति विश्वासघात करते हुए भारतवर्ष पर आक्रमण किया तथा उसकी वजह से कृष्ण मेनन को, जो रक्षामंत्री थे, अपना पद भी खोना पड़ा और यही वह समय था जबकि पंडित जवाहरलाल नेहरू को इस युद्ध के कारण मानसिक रूप से आघात पहुँचने की वजह से तथा अन्य कारणों की वजह से भी बीमारी का सामना करना पड़ा।

जहाँ तक मध्यप्रदेश का सवाल था, समय चक्र तेजी से परिवर्तित हो रहा था। पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र, जो कभी पं. जवाहरलाल नेहरू का विरोध करने के कारण काँग्रेस से अलग-थलग हो गए थे, वे भारत-चीन युद्ध के फलस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों में श्रीमती गाँधी के अत्यधिक निकट आ गये और राष्ट्रीय मंच से वे इंदिराजी को अपना समर्थन देने लगे। मध्यप्रदेश में राजनैतिक घटनाचक्र के अंतर्गत डॉ. कैलाशनाथ काटजू नरसिंहगढ़ से दुबारा चुनाव लड़कर विधानसभा के लिये विजयी हो गये किन्तु उस समय के मुख्यमंत्री श्री भगवंतराव मण्डलोई तथा देशलहरा गुट ने उनके पुनश्च मुख्यमंत्री बनने के प्रस्ताव में न केवल अपना विरोध प्रकट किया, वरन् व्यवधान भी उत्पन्न किया। 1963 में पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र काँग्रेस में शरीक होकर छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले के कसडोल विधानसभा क्षेत्र से चुनाव लड़कर अपने प्रतिद्वन्दी समाजवादी पार्टी के श्री कमलनारायण शर्मा को पराजित करके विधानसभा में आये तथा सितम्बर 1963 में काँग्रेस उच्च कमान के निर्देश पर कामराज योजना के अंतर्गत जिन कुछ मंत्रियों को संगठन के कार्य में लगाया गया, उनमें श्री भगवंतराव मण्डलोई भी थे और इस प्रकार से मुख्यमंत्री का पद रिक्त होने पर चुनाव की समस्या उत्पन्न हुई। पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने उस समय यह घोषणा की कि या तो सर्वसम्मति से काँग्रेस पक्ष के लोग डॉ. कैलाशनाथ काटजू को अपना नेता स्वीकार करें अन्यथा उनसे चुनाव लड़कर संघर्ष करने के लिये सामने आयें। स्वाभाविक था कि डॉ. कैलाशनाथ काटजू के विरोध में जो गुट कार्य कर रहा था, उसने काटजू को सर्वसम्मति से नेता चुनने में अपनी सहमति नहीं दी परिणामस्वरूप पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र और श्री तख्तमल जैन के बीच में चुनाव हुआ जिसमें पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र की विजय हुई। इस मंत्रिपरिषद् में श्री अर्जुनसिंह, पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र के अत्यधिक निकट आये एवं राज्यमंत्री कृषि विभाग का कार्यभार उन्होंने संभाला। मंत्रिपरिषद् के कार्यभार को संभालने के अलावा वे उस समय के तत्कालीन मुख्यमंत्री पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र के सर्वाधिक विश्वासपात्र राजनयिक के रूप में उभरे। उस समय वे मध्यप्रदेश के युवक काँग्रेस के अध्यक्ष के रूप में भी प्रतिष्ठित हुए।

श्री अर्जुनसिंह के उद्‌भव और विकास को देखकर विंध्यप्रदेश के तथा और अनेक क्षेत्रों के लोग स्वाभाविक

रूप से उनसे ईर्ष्या करने लग गये और इस प्रकार से उनके विरोधियों का एक पुनश्च गुट बन गया। श्री अर्जुनसिंह के काम करने का एक ढंग है। पहले वे स्पष्ट कल्पना अपनी कार्य योजना की कर लेते हैं, लक्ष्य भी निर्धारित कर लेते हैं तथा चित्र को स्पष्टतः सामने रखने के बाद वे उस दिशा में पूरी एकजुटता के साथ लग जाते हैं। उनका विरोध बढ़ता रहा किन्तु उनके समर्थक भी समग्र रूप से संकलित होते रहे। इन दोनों के साथ ही श्री अर्जुनसिंह की राजनीतिक विकास यात्रा आगे बढ़ती रही। विरोध का परिणाम यह हुआ कि 1967 में जब चुनाव हुआ तो तत्कालीन प्रजा समाजवादी पार्टी के नेता सीधी ज़िले के ही स्वर्गीय श्री चन्द्रप्रताप तिवारी चुरहट विधानसभा क्षेत्र से उनके मुक़ाबले में आये तथा पार्टी की अन्तर्निहित विश्वासघाती गतिविधियों के कारण 1967 के चुनाव में उनको पराजित होना पड़ा, लेकिन श्री अर्जुनसिंह परिस्थितियों से दबकर, न तो दयनीय होते हैं और न दैन्य को स्वीकार करते हैं। 1967 में चुरहट के चुनाव क्षेत्र में पराजय के उपरान्त तत्काल 2-3 महीने के भीतर ही विंध्य क्षेत्र के ही उमरिया विधानसभा क्षेत्र से रणविजयप्रताप सिंह के त्याग-पत्र के फलस्वरूप वह स्थान रिक्त घोषित किये जाने के उपरान्त वहाँ से चुनाव लड़कर वे पुनश्च विजयी हुए और 1 जून 67 को पचमढ़ी में योजना एवं विकास मंत्री के रूप में उन्होंने पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र के मुख्यमंत्रित्वकाल में केबिनेट मंत्री की शपथ ग्रहण की।

इस समय मध्यप्रदेश में एक घटना और घटित हो चुकी थी और वह यह थी कि ग्वालियर की राजमाता श्रीमती विजयाराजे सिंधिया जो पहले काँग्रेस में थीं और काँग्रेस के वोट से लोकसभा का चुनाव लड़ चुकी थीं, उनकी राजनीति में दखल की रणनीति के कारण तत्कालीन मुख्यमंत्री पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र से गंभीर मतभेद हो गये। उसका परिणाम यह हुआ कि पूरा का पूरा ग्वालियर संभाग अर्थात् मध्यभारत जो श्रीमती विजयाराजे सिंधिया के प्रभाव में था, उसके लिये एक ज़बरदस्त अस्तित्व की चुनौती सामने आ गई। इन सब परिस्थितियों के साथ 1967 का चुनाव हुआ जिसमें काँग्रेस को बहुमत तो मिल गया लेकिन स्पष्ट है कि वह बहुमत अधिक नहीं था, वह नाम-मात्र का बहुमत कहा जायगा। श्रीमती विजयाराजे सिंधिया जनसंघ की नेता के रूप में उभर चुकी थीं और 1967 में पूरे देश में एक नई फिज़ा काँग्रेस विरोधी सरकार बनाने की चल रही थी। बौद्धिक और वैचारिक धरातल पर डॉ. राममनोहर लोहिया इस हवा को चलाने में सबसे ज़्यादा अग्रणी थे और उस समय यह सिद्धान्त व्याप्त हो गया था कि चाहे जिस प्रकार भी हो, भले चुनकर भी बहुमत प्राप्त न हो, यदि दल बदल कर भी काँग्रेस सरकार को गिराया जा सकता हो तो ऐसा किया जाय और उसके लिये पीछे न रहा जाय। उत्तरप्रदेश में चौधरी चरणसिंह ने इसकी शुरुआत कर दी थी। हरियाणा ने भी उसका अनुसरण किया था। मध्यप्रदेश में भी दल-बदल की आहट सुनाई पड़ने लग गई थी। उस समय पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र की मंत्रिपरिषद् में, मैं गृह विभाग के संसदीय सचिव के रूप में कार्य कर रहा था तथा इन परिस्थितियों से मैंने स्वर्गीय श्री मिश्रजी को आगाह भी किया था किन्तु उनकी धारणा यह थी कि चुनी हुई सरकार को यदि दल परिवर्तन करने के आधार पर गिराने का प्रयास किया जाता है तो उन्हें अधिकार है कि वे मध्यावधि चुनाव की माँग करें और मध्यावधि चुनाव हेतु महामहिम राज्यपाल महोदय को अपनी स्वीकृति देनी होगी। इस विषय पर उन्होंने प्रारंभिक तैयारी तथा काँग्रेस हाईकमान से अनुमति भी प्राप्त कर ली थी। फिर तो घटनाक्रम इस तेजी से बदला कि काँग्रेस के चुने हुये 36 विधायक, जिसमें प्रमुख श्री गोविन्द नारायण सिंह थे, राजमाता श्रीमती विजयाराजे सिंधिया के साथ मिलकर एकाएक अज्ञातवास में चले गये तथा जिस दिन विधानसभा में वे प्रगट हुए, काँग्रेस अल्पमत में आ चुकी थी तथा उच्चकमान ने भी विधानसभा में शक्ति प्रदर्शन कराने के निर्देश दिये, जिसके कारण तत्कालीन काँग्रेस शासन कुछ मतों से पराजित हुआ और पराजित होने के कारण मध्यावधि चुनाव की माँग किये जाने का कोई वैधानिक औचित्य नहीं रह गया था।

काँग्रेस शासन के पराभव के उपरान्त जनसंघ, कम्युनिस्ट पार्टी, प्रजा समाजवादी पार्टी तथा काँग्रेस के 36 दल बदलने वाले विधायकों के सहयोग से एक संयुक्त विधायक दल का गठन हो गया और उसकी सरकार

श्रीमती विजयाराजे सिंधिया के नेतृत्व में श्री गोविन्दनारायणसिंह के मुख्यमंत्रित्व में स्थापित हुई। इस समय सारे घटनाचक्र में जिस प्रकार से राजनीति की और विशेषकर काँग्रेस की अन्तर्धाराएँ प्रभावित हो रही थीं, उनका मैं उल्लेख करना उचित नहीं समझता लेकिन इतना ही कह सकता हूँ कि बहुत सारी गतिविधियाँ काँग्रेस के हित विरुद्ध चल रही थीं तथा इन सबमें श्री अर्जुनसिंह की भूमिका नि:संदेह निष्ठावान एवं प्राणवान काँग्रेसियों के समान काँग्रेस को सहयोग देने के लिये ही थी।

संविद का शासन 18 माह तक ही चल पाया तथा भ्रष्टाचार और अन्तर्कलह से वह सरकार ध्वस्त हो गई। 1969 में पंडित श्यामाचरण शुक्ल मुख्यमंत्री हुए। उनके मंत्रिपरिषद् में श्री अर्जुनसिंह को स्थान नहीं मिल पाया, तथापि वे काँग्रेस से जुड़े रहे एवं उन्होंने अपनी गतिविधियों को मध्यप्रदेश के साथ-साथ दिल्ली में और अन्य प्रदेशों में भी फैलाया। इसी बीच उन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेष सत्र में भारत शासन की ओर से प्रतिनिधि के रूप में भेजा गया। जहाँ उन्होंने अपनी सफल और सशक्त भूमिका का निर्वहन किया। 1972 के आम चुनाव के कुछ ही पहले अर्थात् 1971 के लोकसभा के चुनाव के बाद ही श्री प्रकाशचन्द्र सेठी, जो भारत शासन के मंत्री के रूप में कार्य कर रहे थे, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में आये और 1972 का चुनाव श्री प्रकाशचन्द्र सेठी के ही नेतृत्व में ही सम्पन्न हुआ। काँग्रेस को अच्छी सफलता मिली। सदैव की भाँति छत्तीसगढ़ और महाकौशल ने काँग्रेस का साथ दिया। श्री प्रकाशचन्द्र सेठी के ही नेतृत्व में 1972 के अगस्त माह में श्री अर्जुनसिंह शिक्षामंत्री के रूप में सम्मिलित हुए और 1975 दिसम्बर तक इस रूप में कार्य करते रहे। शिक्षामंत्री के रूप में उनकी कार्य की पद्धति बहुत ही सराहनीय थी। उन्होंने अनेक नये कार्य किये। स्कूल शिक्षा विधेयक, विश्वविद्यालय विधेयक आदि पारित किये गये तथा जन सामान्य से, विधायकों से, काँग्रेस पक्ष से शिक्षामंत्री के रूप में उनका व्यवहार बड़ा मधुर तथा सहयोगात्मक तथा शिक्षा की गतिविधियों को आगे बढ़ाने वाला रहा।

दिसम्बर 1975 के अंतिम सप्ताह में पंडित श्यामाचरण शुक्ल पुनश्च मुख्यमंत्री हुए, जो 1977 के अप्रैल तक रहे। 1977 के फरवरी-मार्च के लोकसभा चुनाव में तथा बाद में जून के महीने में विधानसभा के चुनाव में काँग्रेस की ज़बरदस्त हार हुई। दिल्ली में भी जनता पार्टी की सरकार और मध्यप्रदेश में भी जनता पार्टी की सरकार स्थापित हुई। मध्यप्रदेश में उस समय बड़े-बड़े निष्ठावान काँग्रेस के लोग या तो चुपचाप घर बैठ गये या काँग्रेस के विरोध में चले गये अथवा संगठन काँग्रेस के नाम से इंदिराजी के नेतृत्व तथा उनकी काँग्रेस से अपना नाता तोड़ बैठे तथा निरन्तर उसके बाद के काँग्रेस के उप-चुनाव में विरोध भी करते रहे, लेकिन उस समय मध्यप्रदेश की विधानसभा में श्री अर्जुनसिंह इंदिरा काँग्रेस के साथ में रहते हुए काँग्रेस की आवाज को न केवल बुलन्द करते रहे, वरन् नेता प्रतिपक्ष के रूप में पूरे मध्यप्रदेश में काँग्रेस को एक नई शक्ति और जीवनी प्रदान करते रहे। 1977 से लेकर 1980 तक नेता प्रतिपक्ष के रूप में श्री अर्जुनसिंह की भूमिका निश्चित रूप से विपक्ष में कैसे काम किया जाना चाहिये, इसका अनुपम एवं अद्वितीय उदाहरण है। लोग आज भी महसूस करते हैं कि विपक्ष की भूमिका उसी प्रकार से अदा की जानी चाहिये। इस बीच वे स्व. संजय गाँधी के अत्यधिक निकट आये।

1980 में जनता पार्टी की सरकार अपने अंतर्कलह और अपने बोझ से दबकर स्वयं टूट गई तथा लोकसभा के और उसके उपरान्त मध्यप्रदेश विधानसभा के चुनाव हुए। मध्यप्रदेश विधानसभा के चुनाव में काँग्रेस को भारी बहुमत मिला और उसमें श्री अर्जुनसिंह मुख्यमंत्री के रूप में पदासीन हुए। 1980 से 85 तक का समय मध्यप्रदेश के काँग्रेस इतिहास का स्वर्णयुग कहा जायेगा जिसमें हरिजनों, आदिवासियों, पिछड़ा वर्ग, ग़रीबों आर्थिक दृष्टि से निर्बल वर्ग के लोगों तथा झुग्गी-झोपड़ी वालों के लिये अभूतपूर्व तथा ऐतिहासिक कार्य किये गये तथा मध्यप्रदेश के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ भी हासिल हुई।

काँग्रेस राजनेता के रूप में तथा एक मुख्यमंत्री के रूप में श्री अर्जुनसिंह का निर्णय, उनका संकल्प, उनकी मधुरता और उनकी कठोरता, उनका व्यक्तिगत गुण, निजी संबंध तथा सामूहिक शक्ति सभी के विराट दर्शन लोगों को हुए। मेरा भी निरन्तर उनसे सम्पर्क प्रारंभ से रहा आया। मध्यप्रदेश आवास संघ का मैं अध्यक्ष भी रहा, उस नाते भी मेरा उनसे सम्पर्क हुआ। पुलिस जनता संबंध समिति के अंतर्गत भी पुलिस और नागरिकों के बीच में कैसे संबंध स्थापित हों, इस दिशा में भी मैंने कार्य किया। इस बीच मध्यप्रदेश के काँग्रेस के संगठनों में बीच-बीच में अनेक परिवर्तन होते रहे, जिनका यहाँ उल्लेख करना प्रासांगिक नहीं है।

1985 का चुनाव श्री अर्जुनसिंह के नेतृत्व में ही लड़ा गया। कोटा विधानसभा क्षेत्र से काँग्रेस के टिकट से मैं चुनाव में खड़ा हुआ। वहाँ से जीतकर मैं आया और मध्यप्रदेश की विधानसभा के अध्यक्ष के रूप में सर्वसम्मति से निर्वाचित हुआ, किन्तु श्री अर्जुनसिंह इसके बाद मुख्यमंत्री की शपथ ग्रहण करने के दूसरे दिन पंजाब के राज्यपाल के रूप में कार्य करने के निर्देश के फलस्वरूप त्याग-पत्र देकर चले गये। स्व. श्री राजीव गाँधी का उन्हें अत्यधिक विश्वास प्राप्त था। वे श्री राजीव गाँधीजी के जीवन पर्यन्त अनन्य सहयोगी रहे हैं। उसके बाद की कहानी का कुछ उल्लेख मैं पहले कर चुका हूँ। 1991 में लोकसभा के चुनाव में सतना से जीतने के बाद वे मध्यप्रदेश के तथा भारतवर्ष के एक शक्तिशाली राजनैतिक व्यक्तित्व के रूप में लोकसभा में अपने प्रकाश से उद्दीप्त होकर सामने आये और उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ प्रधानमंत्री श्री पी.व्ही. नरसिम्हराव को अपना सहयोग दिया है। काँग्रेस कार्यसमिति के चुनाव में सर्वाधिक मत प्राप्त करना, यह उनकी लोकप्रियता को ही दर्शाता है। मध्यप्रदेश काँग्रेस कमेटी के अध्यक्ष के रूप में भी 1989 से लेकर फरवरी 1992 तक जो उन्होंने कार्य किया है और विपक्ष में रहकर जो आंदोलनों का नेतृत्व किया और इस बीच मध्यप्रदेश की विधानसभा में जो उनकी भागीदारी रही, वह संसदीय इतिहास में सदैव स्मरण की जायेगी। एक संसदीय नेता के रूप में जहाँ वे अपनी बात पर अडिग रहते हैं, वही उनकी तर्कशैली में काटने वाली या चिकोटने वाली या घटिया स्तर की कोई बात नहीं होती। बड़ी मधुरता और शिष्टता से वे बड़ी से बड़ी बात कह जाते हैं और इतने कम समय में अधिक से अधिक और गहरी बात कहने की कला में श्री अर्जुनसिंह पूरी तरह से पारंगत हैं। विधानसभा में सदन के नेता के नाते मेरा उनका बहुत ही निकट का संबंध और परिचय हुआ और मैंने देखा कि वे उत्कृष्ट परम्पराओं को स्थापित करने की दिशा में अपने निजी आलोचकों पर ध्यान न देते हुए, प्रतिपक्ष के साथ अधिक से अधिक सहयोग का ध्यान रखते हुए, संसदीय परम्पराओं का पालन करते थे।

मेरी ऐसी मान्यता है कि भारतवर्ष की राजनीति में उनका सूर्य लोकसभा में 1991 के चुनाव में फिर उदय हुआ है और जिस प्रकार से सुलझे हुए निष्ठावान काँग्रेस के वे सिपाही हैं तथा संसदीय ज्ञान से परिपूर्ण और एक सशक्त सार्वभौमिक जननेता के रूप में उनमें सारे गुण विद्यमान हैं, उनका भविष्य का इतिहास मध्यप्रदेश और देश को और कुछ अवदान देगा, ऐसी हम लोगों की आशा है तथा शुभकामना है।

☐ *राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल— मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ के वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ, एक सफ़ल विधिवेत्ता, कवि, साहित्यकार, विधायक, मंत्री, विधानसभा अध्यक्ष रह चुके श्री राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल एक सजग साहित्यकार हैं। सम-सामयिक घटनाओं के विश्लेषण में उन्हें महारत हासिल है। अर्जुनसिंहजी के मुख्यमंत्रित्व कार्यकाल में आप म.प्र. विधानसभा के अध्यक्ष रह चुके हैं।*

मेरे गुरु और पितातुल्य हैं वे

श्रीमती गंगा पोटाई
(पूर्वमंत्री : मध्यप्रदेश सरकार)

अर्जुनसिंहजी से मेरा रिश्ता सिर्फ़ राजनीतिक नहीं है, सही अर्थों में वे मेरे गुरु और पिता तुल्य हैं। अपने स्नेह और आशीर्वाद से उन्होंने मुझे सदा राह दिखाई। अंतिम व्यक्ति के लिए, वंचित वर्गों के लिए काम करने की प्रेरणा दी। वे मेरे नेता तो हैं ही इस सबसे बढ़कर उनसे मेरी आदरणीय भावनाएँ जुड़ी हैं। 1980 में पार्टी का टिकट माँगने से लेकर शुरू हुआ यह रिश्ता आज तक कायम है।

मुझे याद है यह 1980 का साल था, मैं भानुप्रतापपुर विधानसभा क्षेत्र से काँग्रेस का टिकट चाहती थी। उन दिनों अर्जुनसिंहजी सदन में प्रतिपक्ष के नेता थे और प्रदेश के प्रमुख नेता के रूप में पहचान बना चुके थे। श्री झुमुकलाल भेड़िया जी के बंगले पर मेरी उनसे भेंट हुई, मैंने उन्हें अपना बायोडाटा सौंपा और उम्मीद जताई कि टिकट के लिए उनका आशीर्वाद मुझे प्राप्त हो। मेरा बायोडाटा तो उन्होंने ले लिया और मुझसे तीन सवाल पूछे। पहला यह कि मैंने काँग्रेस कार्यकर्ता के रूप में क्या काम किया है? दूसरा कि क्या कभी मैंने पार्टी के आंदोलनों में हिस्सा लिया है? तीसरा यह कि क्या कभी जेल गई हूँ? मैं उन दिनों राजनीतिक तौर पर बहुत सक्रिय नहीं थी। सो मैंने अर्जुनसिंहजी को साफ़ बताया कि अभी मैं पार्टी की कोई सक्रिय कार्यकर्ता नहीं हूँ किन्तु मेरा परिवार संगठन के साथ नेहरूजी के समय से जुड़ा रहा है। साथ ही काँग्रेस संगठन के साथ मेरे परिवार की लंबी प्रतिबद्धता है। अर्जुनसिंहजी ने पूछा कि जब आप स्वयं सक्रिय नहीं हैं तो चुनाव कैसे जीत पाएँगीं? मैंने आत्मविश्वास से कहा कि मैं आप को भरोसा दिलाती हूँ कि अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि और मेहनत से यह चुनाव जीतकर दिखाऊँगी। अर्जुनसिंहजी को जाने क्या लगा उन्होंने मेरे आत्मविश्वास को देखकर शायद यह फैसला कर लिया कि टिकट बस्तर की इस लड़की को ही देना है। इस बीच श्री भेड़िया ने उन्हें मेरे परिवार तथा क्षेत्र के बारे में जानकारी दी। उन्होंने यह भी बताया कि मेरे दादाजी श्री रामप्रसाद पोटाई मनोनीत सांसद रहे हैं। इतना सुनकर अर्जुनसिंहजी ने एक ही बात कही - 'आप चुनाव की तैयारी करिए और आपको दिल्ली जाने की ज़रूरत नहीं है।' मुझे लगता है कि व्यक्ति की त्वरित पहचान, उसकी क्षमताओं का फौरी आकलन और तेज फैसले लेना उनका स्वाभाविक गुण है। आदिवासी, दलित, पिछड़े वर्गों में नेतृत्व का विकास, उनमें पढ़े-लिखे युवक-युवतियों को प्रोत्साहन उनकी प्राथमिकता रही। शायद यही कारण था कि भानुप्रतापपुर क्षेत्र से मुझे टिकट मिली और चुनाव जीतकर मैं विधायक बन गई। यह उनके आशीर्वाद का ही प्रताप था। तब से मैं उन्हें अपना गुरु मानती हूँ। राजनीतिक क्षेत्र में मैंने जो कुछ जाना, किया और उपलब्धियाँ हासिल की, उसका श्रेय अर्जुनसिंहजी को है। उनके मार्गदर्शन से राजनीतिक क्षेत्र में मैं आगे बढ़ती गई। विधायक बनकर भोपाल पहुँची तो उन्होंने आदिमजाति कल्याण विभाग की उपमंत्री के रूप में मंत्रिमण्डल में जगह दी। 1983 में प्रमोशन देकर कृषि राज्यमंत्री बनाया। पहली बार चुनाव जीती आदिवासी महिला को उन्होंने जो सम्मान दिया वह उनकी आदिवासियों के प्रति सहृदयता तथा सभी वर्गों को साथ लेकर चलने की भावना का प्रकटीकरण है।

मेरा अनुभव है कि श्री अर्जुनसिंह बात के धनी हैं - वे जो कहते हैं, उसे निभाते हैं। मुख्यमंत्री के रूप में उनका कार्यकाल उपलब्धियों से भरा रहा है। फैसले करना और उन पर अडिग रहना उनका स्वभाव है। बस्तर जैसे पिछड़े आदिवासी अंचलों की खास चिंता कर उन्होंने काफ़ी विकास के काम करवाए। आदिवासी वर्ग की समस्याओं को प्राथमिकता के आधार पर हल किया। महिलाओं के साथ-साथ समाज के हर वर्ग को आगे बढ़ने के अवसर उपलब्ध कराए। सबका बराबर सम्मान किया। स्वतंत्रता सेनानी हों, पार्टी कार्यकर्ता, कलाकार या सामान्य जन वे सबकी सुनकर उनकी समस्याओं के निदान का प्रयास करते ही हैं। कई बार अनेक जनप्रतिनिधि कुछ गलतियाँ भी करते तो वे उन्हें माफ़ कर ठीक करने का मौक़ा देते रहे हैं। कभी किसी के साथ बदले की भावना से मैंने उन्हें कार्रवाई करते नहीं देखा।

सदन में मुख्यमंत्री के रूप में वे बड़ी गंभीरता से अपनी बात रखते थे। धीर-गंभीर शैली में जब वे अपना बयान दे रहे होते हैं तो सदन में सन्नाटा सा फैल जाता है वे एक ऐसे मुख्यमंत्री रहे जिनकी बात हमेशा सम्मान से सुनी गई। विपक्ष के नेताओं से उनके रिश्ते बहुत अच्छे हैं। एक उदार लोकतांत्रिक मानस उनमें दिखता है। मंत्रिमण्डल के सहयोगियों के साथ अच्छे रिश्ते, उनके विचारों को ध्यान से सुनना, अपनी राय देना, किन्तु अपने विचारों को दूसरों पर न थोपते हुए रास्ता निकालना अर्जुनसिंहजी का गुण है। एक मुख्यमंत्री के रूप में वे बहुत प्रभावशाली साबित हुए। प्रशासनिक पकड़ तथा दक्षता में उनका कोई मुक़ाबला नहीं है। आदिवासियों के हित में उन्होंने तमाम कार्य किए। तेंदुपत्ता की नई नीति बनाकर उन्होंने मज़दूरों को उनका जायज़ हक़ दिलाया। उस समय मैं वनमंत्री के रूप में कार्यरत थी। मुझे गर्व है कि आदिवासियों को न्याय दिलाने का यह निर्णय उसी दौर में हुआ। इससे अर्जुनसिंहजी की संवेदनशीलता तथा आदिवासियों के प्रति उनके अनुराग का पता चलता है। इसके साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य व सिंचाई को वे बहुत महत्त्व देते थे। शिक्षा उनका प्रिय विषय था और आज भी है। पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र की सरकार में वे शिक्षामंत्री थे। आज भी केन्द्र में मानव संसाधन विकास मंत्री के नाते शिक्षा का विषय उन्हीं के पास है। वे दलित, आदिवासी, कमज़ोर वर्गों में शिक्षा के प्रसार पर जोर देते हैं। क्योंकि शिक्षा से इन वर्गों का उत्थान संभव है। इसी तरह सिंचाई और कृषि क्षेत्र के विकास की भी अपने कार्यकाल में वे बराबर चिंता करते रहे।

सबसे महत्त्व की बात यह है कि तमाम शासकीय पदों पर रहने के बावज़ूद काँग्रेस संगठन के काम को उन्होंने सर्वोच्च प्राथमिकता दी। वे सदैव यह मानते हैं कि संगठन की बदौलत ही सत्ता मिलती है और उसकी उपेक्षा किसी भी रूप में उचित नहीं है। शायद उनकी इन्हीं भावनाओं के मद्देनज़र उन्हें पार्टी के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष के रूप में भी काम करने का आलाकमान ने अवसर दिया। उस समय भी उन्होंने कुशलता के साथ राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में एक सफ़ल संगठनकर्ता के रूप में अपनी पहचान बनाई। उनके मुख्यमंत्रित्व काल में संगठन को ख़ास महत्त्व मिला, यही कारण था कि 1985 में पार्टी फिर भारी अंतर से सत्ता में आई। सही अर्थों में वे एक ऐसे राजनेता हैं जिसके मन में राष्ट्र के प्रति सच्चा प्रेम व समर्पण है। वे बड़े उदार व संवेदनशील राजनेता है। मैं उनके दीर्घायु व सक्रिय जीवन के लिए सदैव प्रभु से कामना करती हूँ ताकि वे लंबे समय तक राष्ट्र व समाज की सेवा तथा हम सबका मार्गदर्शन कर सकें।

☐ *श्रीमती गंगा पोटाई— छत्तीसगढ़ से महत्त्वपूर्ण आदिवासी महिला नेत्रियों में एक। भानुप्रतापपुर से दो बार विधायक रहीं। 1981 से 1990 तक मध्यप्रदेश सरकार में विभिन्न विभागों की मंत्री रहीं। महिला काँग्रेस की राष्ट्रीय उपाध्यक्ष तथा अखिल भारतीय काँग्रेस पार्टी की कार्यकारिणी सदस्य रहीं। संप्रतिः छत्तीसगढ़ प्रदेश काँग्रेस की उपाध्यक्ष हैं।*

छत्तीसगढ़ में विकसित किया नया नेतृत्व

बी.आर.यादव
(पूर्व मंत्री: म.प्र.सरकार)

यह उन दिनों की बात है जब 1977 के विधानसभा चुनाव में काँग्रेस विपक्ष में आ गई। सवाल था नेता प्रतिपक्ष कौन बने। इसी चुनाव में मैं पहली बार बिलासपुर से चुनाव जीतकर विधानसभा पहुँचा था। भोपाल के सर्किट हाउस में यहीं श्री अर्जुनसिंह के प्रथम दर्शन हुए थे। नेता प्रतिपक्ष पद के लिए वे प्रमुख दावेदार थे। छत्तीसगढ़ के प्रमुख नेता श्री बिसाहुदास महंत से दिल्ली से हाईकमान के प्रतिनिधि के रूप में आए श्रीकांत वर्माजी ने कहा कि इंदिराजी चाहती हैं कि आप नेता प्रतिपक्ष की ज़िम्मेदारी लें। महंतजी ने श्रीकांतजी से कहा कि आप इंदिराजी तक मेरा आग्रह पहुँचा दें कि मैं इस पद पर नहीं बैठना चाहता और इसके योग्य नेता श्री अर्जुनसिंह ही हैं। महंतजी ने यह भी कहा कि मुझे उम्मीद है कि श्री अर्जुनसिंह भविष्य में राज्य के बेहतर मुख्यमंत्री भी साबित होंगें। इस तरह श्री अर्जुनसिंह नेता प्रतिपक्ष के रूप में हमारे अगुआ और मार्गदर्शक बन गए। यह रिश्ता आज भी क़ायम है।

विपक्ष के नेता के रूप में उनका जोरदार व्यक्तित्व उभर का सामने आया। उन्होंने विधायक दल और काँग्रेस संगठन को बहुत धारदार नेतृत्व दिया। उनकी संगठन क्षमता अद्‌भुत है। निरंतर दौरे करना, मध्यप्रदेश के ही नहीं तब छत्तीसगढ़ क्षेत्र के भी ज़िलों-जिलों में पार्टी का संगठन खड़ा करना उनकी प्रमुख चिंता रही। बिलासपुर का दौरा बहुत बार किया, दौरों में हम साथ होते। इस दौरान उनके व्यक्तित्व की ख़ूबियों को निकट से देखने का मौक़ा मिला। वे छोटी-छोटी बातों को भी ध्यान देकर सुनते और समझते थे। सही फैसले करने का उनका स्वभाव रहा है। उनके भाषण विधानसभा में प्रभाव छोड़ते थे। जनहित के सवालों पर वे सरकार की आलोचना करने के बावज़ूद एक रचनात्मक दृष्टिकोण रखते थे। सिर्फ़ आलोचना के लिए आलोचना उनका स्वभाव नहीं है। जनता के बीच भी उनकी बातें ध्यान से सुनी जाती हैं। धीर-गंभीर अंदाज में अपनी बातों को समझाकर, सहजता से रखने का उन्हें अभ्यास है। अपनी बात को दृढ़ता से रखना और अपने आग्रहों पर क़ायम रहना उनसे सीखा जा सकता है।

उनका सबसे बड़ा योगदान छत्तीसगढ़ के लिए यह है कि उन्होंने यहाँ नया नेतृत्व विकसित किया। राज्य से समाज के हर वर्ग में प्रभावी नेतृत्व की खोजकर उन्हें काम करने का मौक़ा दिया। पिछड़ों में प्रभावी नेतृत्व एवं जागृति उन्हीं की देन है। काँग्रेस संगठन का इन प्रयोगों से सामाजिक आधार व्यापक हुआ। वे बिसाहूदास महंत, डॉ.भवरसिंह पोर्ते जैसे नेताओं का बहुत सम्मान करते थे। नेतृत्व की पहचान और सही अवसर देना उनका स्वभाव है। उन्होंने सदैव ऐसे लोगों को मौक़ा दिया जो जनता से जुड़े हैं तथा संगठन के लिए उपयोगी हैं। वे जानते थे कि सामाजिक तौर पर स्वीकृति के बिना काँग्रेस संगठन प्रभावी न होगा। छत्तीसगढ़ में आज काँग्रेस की जो नई पौध दिख रही है उनमें ज्यादातर अर्जुनसिंहजी की प्रेरणा से राजनीति में आए और प्रभावी बने।

बिलासपुर में गुरू घासीदास विश्वविद्यालय की स्थापना अर्जुनसिंहजी का बहुत बड़ा योगदान है। रेल्वे जोन की बिलासपुर में स्थापना का श्रेय कोई भी ले किन्तु उसकी सर्वप्रथम घोषणा अर्जुनसिंहजी ने ही की तथा लगातार प्रयास किया। बिलासपुर में एस.ई.सी.एल की स्थापना में भी उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। उनका सदैव प्रयास

रहा कि छत्तीसगढ़ अंचल का विकास हो। सामाजिक तौर पर वंचित लोगों को न्याय मिले राज्य के महापुरुषों को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने की उनकी कोशिश रही। आदिवासियों के प्रश्न पर उन्होंने बड़ी संवेदनशीलता के साथ काम किया। तेन्दुपत्ता नीति में बदलाव उनकी एक अग्रगामी पहल थी। वे चाहते थे काम करने वालों को उनकी मेहनत का हक़ मिले। वे पंडित जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हैं। उनके विचारों का श्री अर्जुनसिंह पर काफ़ी प्रभाव है। पं.नेहरू की प्रगतिशील विचारधारा, विकास के प्रति उनके चिंतन, सामाजिक न्याय से वे अपनी प्रतिबद्धता जताते रहे हैं। काम करने का उनका तरीक़ा बहुत लोकतांत्रिक है। मुझे मंत्री तथा विधायक दल के सदस्य के नाते उनके साथ काम करने का लंबा अवसर मिला। वे अपनी सोच कभी किसी पर थोपते नहीं दिखते। सबसे चर्चा, सबकी सुनकर किसी निर्णय पर पहुँचना उनका स्वाभाविक गुण है। उन्होंने 1981 में मुझे अपने मंत्रिमंडल में राज्यमंत्री के रूप में शामिल किया और 1983 में केबिनेट मंत्री बनाया। उनका व्यवहार सहयोगी मंत्रियों एवं विधायकों के प्रति बहुत आत्मीयतापूर्ण रहता था। उनकी सहजता के कई किस्से आज भी याद आते हैं। मुझे याद है कि वे उन दिनों नेता प्रतिपक्ष थे। सक्ती से वे ट्रेन से आ रहे थे गाड़ी का इंतज़ाम नहीं हो सका, मैं स्कूटर से स्टेशन पहुँचा। क्षमा माँगी, वे हँसे कहा 'गाड़ी हमेशा नहीं मिलती भाई।' और ताँगे पर बैठकर सर्किट हाउस आ गए।

संगठनकर्ता के नाते उन्होंने पूरे प्रदेश में घूम-घूमकर काँग्रेस का संगठन खड़ा किया। उनके ही श्रम का प्रतिफल था कि 1980 के चुनावों में काँग्रेस भारी बहुमत से विधानसभा में पहुँची।

इस भारी विजय से वे काँग्रेस के स्वाभाविक नेता बन गए। एक राष्ट्रीय दायित्व के तहत जब उन्होंने पंजाब के राज्यपाल का पदभार संभाला तो हम सब उनसे मिलने गए। श्री राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल भी साथ थे। उन्होंने एक ही बात कही कि हम सबको मिलकर काम करना होगा। राज्यपाल के रूप में उन्होंने संत लोगोंवाल से पंजाब समझौता करवाकर एक ऐतिहासिक कार्य किया। पंजाब में हिंसा व आतंकवाद का तांडव रोकने में मदद की। सामान्य स्थितियाँ बहाल हों इसके लिए बहुत श्रम किया। उन्हें पढ़ने का बहुत शौक है। कई बार हेलीकॉप्टर में उनके साथ दौरा करने का मौक़ा मिला। थोड़ी बातचीत होते ही वे कोई पुस्तक निकालकर पढ़ने बैठ जाते। उनकी अध्ययनशीलता बड़ी आदर्श है। संस्कृति तथा कलाओं के प्रति उनका प्रेम एवं समझ भी अद्‌भुत है। भारत-भवन का भोपाल में निर्माण इसकी जीवंत कथा है। सामान्य लोगों तथा गाँव के कलाकारों को भी उन्होंने पहचान दी। कठघोरा (कोरबा) की मिट्टीबाई नाम की महिला की खोज कर उसकी मिट्टी की कलाकृतियों को भारत-भवन में स्थान दिलाया। जबकि हम इस बिलासपुर संभाग के ही लोग अपने क्षेत्र की प्रतिभा से अपरिचित थे।

शिक्षा के प्रति भी उनकी खास रूचि है। देश की भावी पीढ़ी को बेहतर शिक्षा मिले यह उनकी प्रमुख चिंता है। वे आज भी मानते हैं शिक्षा से ही सारी सामाजिक विसंगतियों का समाधान संभव है। शिक्षा के क्षेत्र में उनके द्वारा आज भी लगातार प्रयास किए जा रहे हैं। इसके साथ ही उनके मित्रों की संख्या बहुत है। देश के नामवर साहित्यकार, कवि, पत्रकार, नौकरशाह, विपक्षी दलों के राजनेता, कलाकार, संस्कृतिकर्मी उनसे व्यक्तिगत रूप से जुड़े हुए हैं। व्यक्तिगत संबंधों का वे बहुत दूर तक निर्वाह भी करते हैं। उनका व्यक्तित्व इतने गुणों से आच्छादित है कि एक बात करें तो दूसरी छूट जाती है। समग्रतः वे अच्छे इंसान हैं। क्योंकि अच्छा इंसान ही अपनी हर भूमिका में खरा उतरता है। उनके सक्रिय जीवन को देखकर हमें खुशी होती है। वे लंबे समय तक पार्टी और देश की सेवा करते रहें। प्रभु से यही प्रार्थना है।

☐ *श्री बी.आर.यादव— बिलासपुर (छत्तीसगढ़) के लोकप्रिय पत्रकार, समाजसेवक तथा विधायक एवं मध्यप्रदेश के मंत्री रहे हैं। सफल कुशल प्रशासक, सरल सौम्य व्यक्तित्व के धनी श्री यादव पत्रकारिता की डगर से राजनीति में शिखर तक पहुँचने वाले नेता हैं।*

वे आदर्श हैं मेरे

सत्यनारायण शर्मा
(पूर्व शिक्षामंत्रीः छत्तीसगढ़ शासन)

अर्जुनसिंहजी देश की राजनीति में प्रतिबद्धता, संवेदनशीलता और वैचारिक राजनीति के पर्याय हैं। उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से ही हमारे जैसे न जाने कितने नौजवान राजनीति के क्षेत्र में आए और सक्रिय हैं। सही अर्थों में वे मेरे आदर्श हैं। छात्र जीवन से ही उनके प्रगतिशील विचारों, अग्रगामी सोच को हम सबने देखा और महसूस किया है। उनके व्यक्तित्व में एक गुरुत्वाकर्षण है जो अपनी ओर सहज ही खींचता है। समाज के दलित-वंचित वर्गों के प्रति उनके मन में करुणा के भाव हैं, वे उनकी बेहतरी चाहते हैं और सत्ता में इन वर्गों के प्रति विशिष्ट संवेदना देखना चाहते हैं। वे जनमानस की समझ रखने वालों, उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति में सहायक राजनेता हैं। उनका छत्तीसगढ़ के लिए सबसे बड़ा योगदान इस क्षेत्र के महापुरुषों का स्मरण कराने के लिए है। सामाजिक क्षेत्र में अप्रतिम योगदान करने वाले, स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रहे छत्तीसगढ़ के तमाम महापुरुष जिन्हें वक़्त के साथ हम भूलने लगे थे। उन्होंने उनकी याद दिलाई। यहाँ के लोगों को स्वर्णिम अतीत से परिचित कराया तथा बताया कि उनके क्षेत्र की विभूतियों ने राष्ट्रीय संदर्भ में कितना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। राष्ट्रीय स्वाभिमान की स्मृति को क्षेत्रीय जनभावना के साथ एकात्म कर उन्होंने छत्तीसगढ़ को विशिष्ट गौरव दिलाया। बिलासपुर में गुरु घासीदास विश्वविद्यालय की स्थापना कर उन्होंने दलितों की भावनाओं को समझा और साकार किया। इस विश्वविद्यालय की स्थापना की घोषणा अमर शहीद श्रीमती इंदिरा गाँधी ने कोरबा में की थी। श्रीमती गाँधी के उस समय व्यक्त किए गए विचार सदैव स्मरणीय रहेंगे।

इसके साथ ही शहीद वीरनारायणसिंह, छत्तीसगढ़ के गाँधी कहे जाने वाले पंडित सुन्दरलाल शर्मा की स्मृति को चिरस्थायी बनाने और छत्तीसगढ़ के स्वाभिमान को बढ़ाने का काम अर्जुनसिंहजी ने किया। उन्होंने अपने कार्यों के माध्यम से समाज के हाशिए पर खड़े लोगों को हमेशा न्याय दिलाने का प्रयास किया। रिक्शावालों को मालिकाना हक़ दिलाकर उन्होंने श्रमजीवियों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता का प्रदर्शन किया। 20 सूत्री कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन तथा अन्य कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से राज्य के आमजनों को सुविधाएँ प्रदान कराई। उनके द्वारा बनाई गई तेंदूपत्ता नीति सही अर्थों में उनकी संवेदनशीलता का, दलित वर्गों, मज़दूरों के प्रति उनके भावनात्मक संबंधों का परिचायक है। अपने मुख्यमंत्रित्व काल में जनहित के सवालों पर संवेदनशीलता से फ़ैसले लेकर उन्होंने साबित किया कि वे श्रीमती इंदिरा गाँधी के सच्चे अनुयाई तथा श्री राजीव गाँधी की भावनाओं के अनुरूप शासन चलाने वाले राजनेता हैं। काँग्रेस नेतृत्व तथा संगठन की वंचित वर्गों की बेहतरी करने की सोच को अमली जामा पहनाने का काम संयुक्त मध्यप्रदेश के संदर्भ में उन्होंने किया। राजनीति के इतिहास में समाज के कमज़ोर वर्ग के लोगों के लिए चाहे वे अल्पसंख्यक, पिछड़े, अनुसूचित जाति अथवा जनजाति के हों, उनकी उन्नति के लिए ईमानदारी और दृढ़ता से प्रयास श्री अर्जुनसिंह ने ही किए। वे सपनों को सच कर दिखाने वाले राजनेता हैं। मध्यप्रदेश के

संदर्भ में सामाजिक न्याय की परिकल्पना को मूर्त रूप देने वालों में उनका नाम प्रमुख है। इस काम को उनके उत्तराधिकारियों तथा अन्य काँग्रेसजनों ने भी आगे बढ़ाया पर इसके प्रारंभकर्ता और स्वप्नदृष्टा अर्जुनसिंहजी ही हैं। वे चाहते हैं कि ये चीज़ें रस्मी तौर पर सिर्फ़ नारेबाजी के लिए न हों। शायद इसीलिए विधायक दल से लेकर मंत्रिमण्डल और नौकरशाही में भी वे संवेदनशीलता के भाव भरना चाहते थे। मध्यप्रदेश में उनका मुख्यमंत्रित्व काल इसका उदाहरण है। पं.नेहरू, इंदिराजी, राजीवजी के सपनों को ज़मीनी हक़ीक़त में बदलने का ऐतिहासिक कार्य उनके द्वारा ही संभव हो सका।

उनका विचार, चिंतन, उनकी अध्ययनशीलता, संदर्भों का विशिष्ट ज्ञान उन्हें आज के राजनेताओं के बीच विशेष स्थान दिलाता है। वे सिर्फ़ राजनेता या समाजसेवी नहीं एक चिंतक व विचारक के रूप में भी उभरकर हमारे सामने आते हैं। उनके उद्‌गार एवं भाषण सिर्फ़ एक राजनेता के वक्तव्य नहीं बल्कि एक सुविचारित दृष्टिकोण होते हैं। वे संभलकर, सुसंगत और स्पष्ट बोलने में विश्वास रखते हैं। सिर्फ़ ख़बरें बनाने के लिए, बयान बाजियों में उनका यक़ीन कभी नहीं रहा। उनके वक्तव्यों तथा विधानसभा व संसद में उनके भाषणों में चिंतन की गहराई, राष्ट्र और लोक के मंगल का स्वप्न झाँकता है। वे पार्टी के विचारों के प्रति समर्पित हैं। गाँधीवाद-समाजवाद उनकी प्रेरणा है। समझौते उन्हें रास नहीं आते। वे अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के लिए सैनिक की तरह जूझते नज़र आते हैं। शायद इसीलिए उनके भाषण लोगों पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। काँग्रेस पार्टी के लिए उनका योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन में कई उतार-चढ़ाव देखे पर संगठन और गाँधी परिवार के प्रति उनके समर्पण में कभी कमी नहीं आई। संगठन किस तरह मज़बूत हो, वैचारिकता के तेज के साथ जनहित के सवालों पर काम करें, यह उनकी प्राथमिक चिंता रही। जिस बहादुरी और कर्मठता के साथ अर्जुनसिंहजी ने राजीव गाँधीजी के निधन के बाद श्रीमती सोनिया गाँधी का साथ दिया, वह उनकी निष्ठा, वफ़ादारी एवं ईमानदारी का जीवंत उदाहरण है।

प्रशासनिक पकड़ और नौकरशाही से काम लेने की क्षमता वाला, उनकी जोड़ का कोई दूसरा नेता मैंने नहीं देखा। वे अपनी व्यापक अध्ययनशीलता, संदर्भों के ज्ञान के चलते विद्वत् वर्ग में भी व्यापक प्रभाव रखते हैं। देश के महान शिक्षाविदों, कलाकारों, साहित्यकारों, पत्रकारों, संस्कृति कर्मियों से उनके व्यक्तिगत रिश्ते हैं। दूसरों के गुणों का आदर करना, उसे मान देना उनसे सीखने की चीज़ है। यह औदार्य ही उनके 'राजनीतिज्ञ' को महान और सरोकारी बनाता है। प्रशासनिक पकड़, बुद्धिजीवियों के साथ आत्मिक संबंध, शिक्षा के प्रति व्यापक दृष्टिकोण, समाज में समरसता लाने का प्रयास और भाईचारे को मज़बूत करने की भावना उनका श्रेष्ठ गुण है। इसने सही अर्थों में भारतीय राजनीति में उनका गौरव व मान तो बढ़ाया ही है, हमारे जैसे लोगों को प्रेरणा तथा दिशा दी है। अर्जुनसिंहजी ने बड़ी-बड़ी चुनौतियों का सामना साहस के साथ किया है। जब कभी भी हाईकमान ने उन्हें किसी भी मोर्चे पर जाने को कहा वे पीछे नहीं हटे। पंजाब के राज्यपाल के रूप में उन्हें मिला अवसर एक बड़ी चुनौती थी किन्तु राष्ट्र के वृहत्तर हित में आतंकवाद से दहकते राज्य में जाकर आपने सद्‌भावना विकसित करने का काम किया। एक कुशल राजनेता की भाँति मुख्यमंत्री एवं केन्द्र में विभिन्न मंत्रालयों के मंत्री के रूप में उन्होंने अपनी विशिष्ट छाप छोड़ी। नेता प्रतिपक्ष के रूप में भी मध्यप्रदेश की विधानसभा को उन्होंने उच्च स्तर की संसदीय बहस का मंच बनाया। वे सदन की मर्यादा एवं परंपराओं के जानकार हैं। उत्तेजित होना उन्होंने सीखा ही नहीं। धीर-गंभीर शैली से अपने राजनीतिक विरोधियों को लाजवाब करने की कला में वे सिद्ध हैं।

सभी क्षेत्रों में आलोचक एवं समालोचक दोनों प्रकार के लोग होते हैं। उनकी विशिष्टता है कि उन्होंने अपने आलोचकों को भी सम्मान के भाव से देखा। वे कभी किसी के प्रति दुर्भावना के भाव अपने पास फटकने भी

नहीं देते। इतना लोकतांत्रिक और उदार मन मानव आज की राजनीति में दुर्लभ है। व्यक्तियों की पहचान कर उन्हें अवसर देना अर्जुनसिंहजी का एक खास गुण है। यही कारण है मेरे जैसे लोग आज भी और आगे भी उनको अपना आदर्श मानते हुए आँखे बंद कर उनका अनुसरण करने से नहीं घबराते। उनकी विशेषता है कि वे हमारी उर्जा का सदैव सही इस्तेमाल ही करते हैं। वे हाईकमान के आदेशों का पालन स्वयं करते हैं, कार्यकर्ताओं से भी कराते रहे हैं। राष्ट्र के प्रति प्रेम उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। अपने इन्हीं गुणों की सुगंध आज वे देश में बिखेर रहे हैं। वे दीर्घायु हो, हमारा मार्गदर्शन करते रहें, राष्ट्र एवं संगठन की सेवा में रत रहें, यही कामना है।

□ *सत्यनारायण शर्मा— मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ सरकार में काफ़ी समय तक मंत्री रहे। संप्रति: मंदिर हसौद विधानसभा क्षेत्र से विधायक एवं अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के सदस्य हैं। सामाजिक-साहित्यिक गतिविधियों में सक्रिय तथा लेखन-अध्ययन में भी रुचि रखते हैं।*

उन्होंने दिया खरसिया का उत्तराधिकार

नंदकुमार पटेल

(पूर्व गृहमंत्रीः छत्तीसगढ़ शासन)

मैं उन सौभाग्यशाली लोगों में हूँ जिन्हें काँग्रेस के दिग्गज नेता अर्जुनसिंहजी का स्नेह बहुत क़रीब से मिला। हालाँकि उनकी संवेदनशील उदारता और समर्पण के साथ पार्टी और उसकी विचारधारा को दृढ़ता से साथ रखने के गुणों के सभी क़ायल हैं, पर मुझ पर उनका स्नेह विशेष है ऐसा मैं मानता हूँ। जून 1988 में उन्होंने छत्तीसगढ़ के खरसिया विधानसभा क्षेत्र से चुनाव लड़कर ऐतिहासिक जीत दर्ज़ कराई। मेरा भाग्य है कि हमारे इस यशस्वी नेता ने अपनी 'खरसिया' सीट छोड़ने के बाद मुझ अकिंचन को मौक़ा दिया। उनका स्नेह से सौंपा गया यह उत्तराधिकार मैं आज भी वहन कर रहा हूँ। संयुक्त मध्यप्रदेश में भी विंध्य क्षेत्र से जुड़े होने के बावज़ूद छत्तीसगढ़ से उनका ख़ास लगाव था। वे यहाँ की कला, साहित्य, संस्कृति और महापुरुषों के प्रति बराबर आदर व्यक्त करते रहे। शायद यह भावधारा ही उन्हें खरसिया लाई और वे यहाँ से चुनाव लड़कर विधानसभा में पहुँचें। मुझे गर्व होता है कि मैं अपने समय के एक महान नेता के क्षेत्र की सेवा करने का अवसर पा सका।

खरसिया उपचुनाव के समय वे राष्ट्रीय राजनीति के सितारे बन चुके थे। पंजाब के राज्यपाल के रूप में उनका योगदान राष्ट्र के लिए आदरणीय बन चुका था। उन दिनों हमारे जैसे सामान्य कार्यकर्ता के लिए माननीय अर्जुनसिंहजी जैसे नेता की स्नेह छाया स्वप्न सरीखी ही थी। जब वे खरसिया से मैदान में उतरे तो हमारे उत्साह का ठिकाना न रहा। मैं उस समय ग्राम पंचायत नंदेली का सरपंच था तथा ब्लॉक काँग्रेस कमेटी से जुड़ा था। यह चुनाव ही उस समय था जब हम अर्जुनसिंहजी के व्यक्तित्व की खूबियों और उनके मानवीय गुणों के मुरीद हो गए। हमारे जैसे साधारण कार्यकर्ता के लिए भी उनके मन में जो औदार्य दीखता था— वह हमें सदा के लिए उनके साथ जोड़ गया। जब उन्होंने खरसिया सीट पर अगले चुनाव में मेरे नाम का चयन किया तो यह सही अर्थों में उनकी उदारता और आशीर्वाद का ही प्रतिफलन था।

मैं उनका छत्तीसगढ़ के लिए सबसे बड़ा योगदान यह मानता हूँ कि उन्होंने इस क्षेत्र में राजनीतिक चेतना फैलाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। छत्तीसगढ़ के भूमिपुत्रों को झकझोर कर जगाया और उन्हें यह संबल दिया कि वे अपने राजनीतिक, सामाजिक अधिकारों व दायित्वों के लिए सक्रिय हो। मुख्यमंत्री के रूप में, पार्टी के नेता के रूप में उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण नेताओं को आगे लाने का काम किया। आदरणीय बिसाहूदास महंत, डॉ.टुमनलाल, भंवरसिंह पोर्ते जैसे नेताओं को बहुत सम्मान देते हुए एक पूरी नई पीढ़ी का विकास किया जो आज काँग्रेस की ताकत बने हुए हैं। वे जनता की नब्ज़ को पहचानने और जनभावनाओं के आधार पर चलने वाले राजनेता हैं। वे सही अर्थों में काँग्रेस की उस परंपरा के वाहक हैं जिसे दया, करुणा, संवेदनशीलता और जनसेवा के संस्कार विरासत में मिले हैं।

मेरी नज़र में आदरणीय अर्जुनसिंहजी एक ऐसे राजनेता हैं जो बराबर अपने 'राजनीतिज्ञ' का अतिक्रमण करते

है। शायद इसीलिए वे सिर्फ़ राजनीति नहीं कला, साहित्य, संस्कृति, शिक्षा और धर्मनिरपेक्षता के लिए एक साथ कई मोर्चों पर लड़ते नज़र आते हैं। 'सेकुलरिज़्म' के प्रति उनकी आस्था आज साम्प्रदायिक शक्तियों के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती बन गई है। वे जानते हैं कि यदि काँग्रेस ने साम्प्रदायिक शक्तियों के समक्ष घुटने टेक दिए तो यह देश नहीं बचेगा। अपनी इस भावना को राजनीतिक हानि-लाभ के गणित से ऊपर उठकर वे मान्यता देते है। इसी तरह सामाजिक न्याय उनकी आस्था का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण विषय है। छत्तीसगढ़ के संदर्भ में देखें तो उन्होंने इन वर्गों में सक्षम नेतृत्व को विकसित कर अवसर दिया। संगठन व सरकार में दलित वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित की। महात्मा गाँधी और बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर की संकल्पनाओं को ईमानदारी पूर्वक लागू करने में अर्जुनसिंहजी सदैव अग्रणी रहे। वे मानते हैं कि सामाजिक न्याय, प्रजातंत्र का मूलपाठ है। इसे उन्होंने अपनी कृति से कर दिखाया।

संवेदनशीलता उनका सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है। वे छोटी-छोटी चीज़ों के प्रति भी आत्मीय और उदार दृष्टिकोण रखते हैं। कला-संस्कृति के विकास में सरकार की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। छत्तीसगढ़ की कला और कलाकारों को सिर्फ़ मध्यप्रदेश नहीं वरन राष्ट्रीय परिदृश्य तक स्थापित करने में उनका योगदान भुलाया नहीं जा सकता। जिन चीज़ों पर वक़्त की राख जम गई थी, उसे उन्होंने झाड़ फूँककर साफ़ किया और मान्यता दिलाई। छत्तीसगढ़ के श्री वीरनारायण सिंह, पंडित सुन्दरलाल शर्मा, ठाकुर छेदीलालसिंह, वीर गुण्डाधुर जैसे सपूतों की याद उन्होंने ही हमें दिलाई। अतीत के गौरव से विस्मृत धरती को उसके महापुरुषों का स्मरण कराकर उन्होंने हमारे स्वाभिमान को बढ़ाया। छत्तीसगढ़ जैसे पिछड़े और शोषणयुक्त क्षेत्र के प्रति उनका अतिशय अनुराग उनकी संवेदना की ही निशानी है। 'तेंदूपत्ता' के सवाल पर उन्होंने मज़दूरों के हित में नई नीति बनाकर भी इसी भाव को प्रकट किया। काँग्रेस जैसे महान् दल की मूल प्रेरणा से प्रेरित उनका व्यक्तित्व सही अर्थों में एक मानवीय औदार्य से भरा-पूरा है। वे हमारे युग और हमारी पीढ़ी के नायक हैं, उनकी जीवन-यात्रा यूँ ही स्वस्थ-निरामय और निष्कंटक चलती रहे प्रभु से हम यही प्रार्थना करते हैं। उनकी उपस्थिति भारतीय राजनीति में एक ऐसे व्यक्ति की तरह है जो अपने विचारों की दृढ़ता के लिए, उदारता के लिए श्रेष्ठ प्रशासन के लिए जाना जाता है। वे शतायु हों।

हमारी शुभकामनाएँ।

☐ *नंदकुमार पटेल— नंदकुमार पटेल मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ शासन में गृह मंत्री रहे। वे छत्तीसगढ़ में काँग्रेस के एक लोकप्रिय नेता हैं।*

वे प्रशासनिक कुशलता के धनी हैं

रामानंद सिंह
(पूर्व विधायक, जनता दल)

मैं 1955 में जब दरबार कॉलेज रीवा में पढ़ने गया, इंटरमीडिएट फस्ट ईयर में, तब तक अर्जुनसिंहजी कॉलेज छोड़ चुके थे। लेकिन तब भी दरबार कॉलेज में एक मेधावी छात्र के रूप में उनकी चर्चा होती थी। वे हिन्दी और अंग्रेज़ी के अच्छे वक्ता भी थे। जब अर्जुनसिंहजी कॉलेज में पढ़ते थे तब एक बार भारत के उपराष्ट्रपति दरबार कॉलेज पधारे, उनके स्वागत में श्री अर्जुनसिंह ने अँग्रेज़ी में जो भाषण दिया था उसकी प्रशंसा आज भी कॉलेज व विश्वविद्यालय के लोग करते हैं। वे हिन्दी और अँग्रेज़ी के अच्छे ज्ञाता, वक्ता तथा मेधावी छात्र थे। जहाँ तक राजनीति की बात है निश्चय ही वे एक कुशल राजनीतिज्ञ हैं और उनकी सफलता का श्रेय दो बातों को जाता है— एक तो उनकी विद्वता व योग्यता और दूसरा उनका भाग्य भी। ऐसा लगता है कि विद्वता के साथ उनके भाग्य ने भी उनका साथ दिया है। वे बहुत ही शिष्ट राजनीतिज्ञों में से है। भाषा का बहुत ही सीमित प्रयोग करते हैं। जब मैं युवक था और पहली बार विधायक बना तब वे शिक्षामंत्री थे। एक बार चर्चा के दौरान किसी विवाद पर मैं हस्तक्षेप करने बीच में खड़ा हो गया। मैं युवक था, मेरी आवाज़ काफ़ी बुलंद थी। मेरी आवाज़ से सबकी आवाज़ दबी-सी जाती थी। उस ज़माने में 1967 से 72 में— ये फैक्ट है। तो अर्जुनसिंहजी ने तंग आकर भी बड़ी शालीनता से मुझसे कहा कि 'भाई रामानन्दजी आप मुझे भी तो अपनी बात कह लेने दीजिए।' उनकी इस शालीन और शिष्ट वाणी ने मुझे दबा दिया और मैं बैठ गया। उनमें शालीनता और शिष्टता का एक दैवीय गुण है जो उनको सफ़लता की ऊँचाइयों तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध हुआ है।

मै हमेशा अर्जुनसिंहजी के विरोधी दल में रहा। वे काँग्रेस में रहे, में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में रहा फिर जनता पार्टी में रहा तथा जनतादल में रहा। मैंने दलबदल नहीं किया लेकिन मेरे दल ने राष्ट्रीय स्तर पर जो फैसले किये मैं उसके साथ रहा। मैं कह सकता हूँ कि अर्जुनसिंहजी में प्रशासनिक कुशलता काफ़ी है। मुख्यमंत्री के रूप में शासन और प्रशासन में उनकी काफ़ी अच्छी पकड़ थी। उनके ज़माने में आई.ए.एस. या आई.पी.एस. अधिकारियों की मनमानी भी नहीं चलती थी। उन्होंने प्रशासन में काफ़ी अंकुश रखा, मिलजुल कर चलना तो एक अलग बात है। प्रशासन में लोगों को तारतम्य बैठाकर चलना चाहिए लेकिन प्रशासनिक कुशलता अपनी जगह एक अलग चीज़ है, जिसके चलते भी प्रशासनिक अधिकारी मुख्यमंत्री और सरकार का साथ देते हैं। इस दृष्टि से हम निश्चय ही यह कह सकने की स्थिति में हैं कि वे प्रशासनिक कुशलता के काफ़ी धनी मुख्यमंत्रियों में से एक हैं।

उन्होंने राज्य के संवर्धन और विकास के लिए हर दृष्टि से हर विभाग में प्रयास किया। मैं मोटे तौर पर उनकी इस बात से सहमत और अभिभूत हूँ कि उन्होंने मध्यप्रदेश की दलित और पिछड़ी जातियों को समझा, जो कि सामाजिक और शैक्षणिक रूप से तथा शासकीय नौकरियों के मामले में काफ़ी पिछड़ी है। इसके लिये उन्होंने स्वयं के विवेक से पहल करके **महाजन कमीशन** बनाया और उस महाजन कमीशन में दलित तथा पिछड़ी जातियों के यादव, कुर्मी तथा

लोधी भी सम्मिलित थे। उस महाजन कमीशन ने जो रिपोर्ट दी वह पंडित जवाहरलाल नेहरू के ज़माने में गठित **काका कालेलकर कमीशन** (1952-53) की रिपोर्ट की पृष्ठभूमि में थी। लेकिन **काका कालेलकर कमीशन** लागू नहीं हुआ था और जब महाजन कमीशन बना तब मण्डल कमीशन ठंडे बस्ते में चल रहा था। उस समय उसकी बैठकें ही चल रही थी। तथा उसकी रिपोर्ट पर केन्द्रीय सरकार कोई निर्णय नहीं ले पा रही थी। ऐसे समय में अर्जुनसिंहजी ने महाजन कमीशन बैठाकर तथा उसमें प्रदेश की पिछड़ी जातियों के विश्वास को जीता, यह सत्य है। अभी वे लोकसभा में मेरे ख़िलाफ़ चुनाव लड़े। जनता दल से मेरा टिकट पहले तय हो गया था। मुझे ज्ञात नहीं था कि वे लड़ेंगे। बाद में काँग्रेस की ओर से वे लड़े। मैं बड़े पशोपेश में पड़ गया कि अब एक बड़ा व्यक्तित्व मेरे विरुद्ध खड़ा है। अन्यथा मुझे विश्वास था कि यदि अर्जुनसिंहजी नहीं लड़े तो मैं अन्य किसी भी काँग्रेसी के ख़िलाफ़ आसानी से जीत जाऊँगा, 'भाजपा' को तो हारना ही था। हमने उनकी आलोचना की उन्होंने भी हमारी आलोचना की, इसके बावज़ूद हमारे संबंधों में कोई कड़वाहट नहीं आई। भिलाई रेस्ट हाऊस में जब वे वोट के बाद मिले तो मैंने कहा कि भाई साहब अगर आपको लड़ना था सतना से तो आप हमको बता तो देते तो हम विचार कर लेते अब जब हमारा कैन्डीडेचर घोषित हो गया, हमने फॉर्म भर दिया हम अगर अपना नाम वापिस ले लेते तो लोग कहते कि पलायन कर गये। इस पर वे मुस्कुराते रहे। तमाम विरोधों सहमति-असहमतियों के बावज़ूद हमारे संबंधों में कोई कड़वाहट नहीं है, हमारी मित्रता अक्षुण्ण है।

राजनीतिक विचारधारा में काँग्रेस तथा जनता दल में कोई खास मतभेद सैद्धांतिक स्तर पर तो अब रह नहीं गए है जब से काँग्रेस ने समाजवादी दर्शन को अपनाया है तब से मतभेदों की दीवार गिरना शुरू हुई है। पिछड़ी जातियों के संबंध में भी अर्जुनसिंहजी आरक्षण के पक्षधर हैं। केवल क्रियान्वयन में काँग्रेस की नीतियों में और जनता दल में जो थोड़ा-बहुत मतभेद रहा, उसी को लेकर मतभेद है, लेकिन बाक़ी कोई हमारा उनसे ऐसा बड़ा मतभेद नहीं है। अर्जुनसिंहजी से मेरे राजनीतिक मतभेद हैं लेकिन निजी संबंधों में एक बड़े भाई की तरह मैं उनका आदर करता हूँ और बहुत से मामलों में आज उनकी वैचारिक दूरियाँ भी नहीं हैं। हाँ मैं एक बात कहना भूल गया था मैं लड़ा था पिछड़े वर्ग की ओर से, अर्जुनसिंहजी चुनाव लड़े तो पिछड़े वर्ग के वोट भी उनको इसलिए मिल गये कि उन्होंने महाजन कमीशन की स्थापना की। यदि अर्जुनसिंहजी के बजाए कोई दूसरा केन्डीडेट होता तो पिछड़े वर्ग का एक भी वोट न पाता।

□ *रामानंद सिंह— जनतादल के नेता, पूर्व विधायक, दबंग समाजवादी श्री रामानन्द सिंह कुशल संगठनकर्ता तथा प्रभावशाली वक्ता हैं। आप भी विन्ध्य की राजनीति की ही देन हैं। आप प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, जनता पार्टी और फिर जनता दल में रहे। लोकसभा के लिये सतना से श्री अर्जुनसिंह के विरुद्ध चुनाव लड़कर पराजित हो चुके हैं।*

छत्तीसगढ़ की विभूतियों को दिलाई पहचान

केयूर भूषण

(पूर्व सांसद, रायपुर)

देश की दिशा को समझने वाले आज के इन गिने चुने राजनीतिज्ञों में अर्जुनसिंह की गणना होती है। उनका हर क़दम सोचा-समझा लक्ष्यभेदी बाण की तरह रहता है। लोग उनकी तुलना महाभारत के अर्जुन से करते हैं। उनकी दूसरी विशेषता है, वे सदा वंचित समाज के साथ रहते हैं। मानो वे साम्यवादी नेता हों और चुरहट रियासत के राजकुमार ने तथागत बुद्ध की तरह, अपनी ही रिआया की वेदना से द्रवित हो वैराग्य ले रखा हो। उनकी तीसरी विशेषता है, समाज की गति की दिशा को पहचानना, पहचानकर वहीं वार करना जहाँ आवश्यक हो। उस समय वे दूरदर्शी राजनीतिज्ञ के रूप में दिखाई देते हैं।

ऐसे दूरंदेशी, संघर्षशील व्यक्तित्व का निर्माण कैसे हुआ, यह खोज का विषय है। शोधार्थियों को इस पर काम करना चाहिए। मेरी समझ के अनुसार, बघेलखंड की धरती ने उनका निर्माण किया है। बघेलखंड की धरती सदा ही संघर्षशील एवं जनचेतना की वाहक रही है। अंग्रेज़ों के आगमन के पहले से संतों की इस पर कृपा रही। संत कबीर के प्रधान शिष्य धनी धरमदास, बांधवगढ़ के वंणिक पुत्र थे। अपने अपार धन-धान्य को छोड़कर वैराग्य ले अमरकंटक के घने जंगल में, नर्मदा के उद्गम स्थल पर तपस्या करने लगे। वहीं से उन्हें काशी के जुलाहे की वाणी सुनाई पड़ी। पीड़ित समाज के लिए मुक्ति का मार्ग दिखाई देने लगा। दौड़ पड़े काशी उन्हें ले आए अमरकंटक। दोनों की गहन चर्चा हुई है। जिस स्थान पर बैठकर चर्चा हुई वह स्थान आज भी कबीर चौरा के नाम से प्रसिद्ध है। छत्तीसगढ़ और बघेलखंड के बीचों बीच समतामूलक ज्ञान का दोनों ओर प्रसार हुआ। संत कबीर ने दोनों भूखंड के निवासियों को पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए समतामूलक ज्ञान दिया। जिसे हम कबीरपंथ के नाम से जानते हैं। वह छत्तीसगढ़ और बघेलखंड दोनों में व्याप्त है। उसका भरपूर असर श्री अर्जुनसिंह पर पड़ा है। इसीलिए उनका हृदय करुणा से लबालब भरा है। वे परदुखकातर हो उठते हैं। इसीलिए लोग उन्हें दलितों का मसीहा कहते हैं।

संघर्षशीलता भी उनका स्वाभाविक गुण है। वह भी उन्हें उसी धरती से मिला है। बघेलखंड सदा संघर्षशील रहा है। भले ही वह सामंती इलाका रहा। वहाँ के राजा-महाराजाओं पर सदा ही अंग्रेज़ों की निगाह सशंकित बनी रही। भले रीवा नरेश को 1857 के विद्रोह में शामिल नहीं होने के कारण अंग्रेज़ों ने उन्हें अपने पक्ष में रखने के लिए अमरकंटक का इलाक़ा छत्तीसगढ़ से निकालकर उन्हें दे दिया। पर उनकी वक्रदृष्टि उनपर बनी रहती थी। भले बघेलखंड के छोटे-बड़े रजवाड़े ब्रिटिश सल्तनत का विश्वासपात्र बने रहने का प्रयत्न करते रहे। परंतु वहाँ की जनता सदा अन्याय एवं सामंती व्यवस्था से टक्कर लेती रही। इसलिए राष्ट्रीय आज़ादी के आंदोलन का वहाँ व्यापक प्रभाव पड़ा। 1857 की बग़ावत से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक वह क्षेत्र आंदोलित रहा। श्री अवधेश प्रतापसिंह उसके नेता के रूप में उभरे। हज़ारों स्वयंसेवक सत्याग्रह कर जेल गए। रियासतों की जेल और किले सत्याग्रहियों से भरे रहते थे। गाँधी की आँधी से वह अंचल भी नहीं बच पाया। भले ही रजवाड़ों

को गाँधीजी ने कुछ छूट दे रखी थी।

सशस्त्र क्रांतिकारियों का भी बुन्देलखण्ड और बघेलखण्ड का इलाक़ा संरक्षण स्थल बना रहता था। इसका भी इस क्षेत्र पर प्रभाव पड़ा। चन्द्रशेखर आज़ाद तो ओरछा के मंदिर में बरसों पुजारी के रूप में रहकर क्रांतिकारियों का नेतृत्व करते रहे। उसी के कारण यहाँ समाजवाद का असर पड़ा। क्योंकि क्रांतिकारियों में ज़्यादातर समाजवादी विचारधारा से प्रेरित थे। फिर लोहिया एवं जयप्रकाश नारायण का नेतृत्व इस क्षेत्र को मिला। 1942 के आंदोलन का नेतृत्व इन्होंने ही किया। बघेलखंड के तमाम नौजवानों ने उन्हीं की राह पर चलने का संकल्प लिया। आगे भारत की स्वतंत्रता के बाद रजवाडों के विलीनीकरण के लिए आंदोलन हुआ। उस आंदोलन में संपूर्ण बघेलखंड की जनता आंदोलित हो उठी। उसका नेतृत्व वहाँ के नवयुवकों ने किया। लाठीचार्ज हुआ, गोलीकांड हुआ, स्वयंसेवक शहीद हुए। नवगाँव बलिदानी वीरों का तीर्थ बन गया। विलीनीकरण आंदोलन वहाँ पूर्ण रूप से सफल हुआ। उन सबसे प्रभावित रहे चुरहटकुमार, कुँवर श्री अर्जुनसिंह समाजवादी युवकों के साथ रहे। बघेलखंड का विलीनीकरण का आंदोलन जिन समाजवादी नवयुवकों के नेतृत्व में चला उनमें प्रमुख रूप से श्री जगदीश जोशी, श्री जमुनाप्रसाद शास्त्री, श्री कृष्णपालसिंह, श्री चंद्रप्रताप तिवारी, श्री अर्जुनसिंह, श्री श्रीनिवास तिवारी आदि शामिल थे। ये सब नेहरूजी की विचारधारा से भी प्रभावित रहे। उनमें से अधिकांश सोशलिस्ट पार्टी के बिखराव के बाद काँग्रेस में आ मिले। यहाँ भी इन लोगों ने अपनी पहचान बनाए रखी।

भाषावार प्रांत रचना के बाद नए मध्यप्रदेश की रचना हुई। श्री अर्जुनसिंह बघेलखंड क्षेत्र से विधायक के रूप में चुनकर आए। प्रथम मुख्यमंत्री पं.रविशंकर शुक्ल के देहावसान के बाद श्री कैलाशनाथ काटजू मुख्यमंत्री बने। वे राष्ट्रीय विभूतियों में एक थे। काँग्रेस के आंतरिक अन्तर्विरोध के कारण भीतरघात के चलते वे चुनाव में पराजित हो गए। पार्टी में भीतरघात की परंपरा तभी से शुरू हुई। मध्यप्रदेश में युवा नेतृत्व सामने आ रहा था। उन्हीं युवकों में श्री अर्जुनसिंह एक थे। तब संपूर्ण मध्यप्रदेश ने उनकी योग्यता को पहचाना। आगे पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र के पुनरुत्थान में भी श्री अर्जुन सिंह का योगदान था। पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र के साथ भी भीतरघात हुआ। राजमाता सिंधिया के प्रयत्न से देश में सर्वप्रथम दलबदल की बीमारी प्रारंभ हुई। गोविन्दनारायणसिंह उसके नायक बने। श्री अर्जुनसिंह निष्ठावान काँग्रेसी की हैसियत से काँग्रेस को संगठित करने में लगे रहे। मुख्यमंत्री के रूप में पं.श्यामाचरण शुक्ल को स्थापित करने में उनका सहयोग रहा। उन्होंने उनके मंत्रिमंडल में स्थान लेने से इनकार कर दिया था उन्होंने अपना धीरज नहीं खोया। काँग्रेस के प्रति उनमें अटूट निष्ठा बनी रही।

काँग्रेस में विभाजन हुआ। श्रमिक नेता वी.वी. गिरि राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशी बने। इंदिराजी के समर्थन से विजयी हुए। वामपंथी विचारधारा के कारण श्री अर्जुनसिंह, इंदिराजी के साथ रहे। सो संकट के समय भी इंदिराजी का साथ नहीं छोड़ा, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने, पंजाब के राज्यपाल बने, केन्द्र में मंत्री बने। नेता के आदेश और जनहित के लिए वे पदों का त्याग इस तरह करते थे जैसे वह हाथ में लगी हुई धूल हो। मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री रहते हुए उन्होंने दलितों, पिछड़ों और वनवासियों के लिए जो कार्य किए वे आज मील के पत्थर बन गए हैं। उनसे आगे कोई बढ़ नहीं पाया है। छत्तीसगढ़ के उपेक्षित पीड़ित समाज को सबसे पहले उन्होंने ही उनकी पहचान बताई। छत्तीसगढ़ की विभूतियों को ऊपर लाने तथा उन्हें सम्मानित करने का श्रेय श्री अर्जुनसिंह को ही जाता है। गुरु घासीदास, वीर नारायणसिंह, पं.सुंदरलाल शर्मा जो भूले-बिसरे हो गए थे, उनके योगदान को स्मरण करा कर श्री अर्जुनसिंह ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया। बिलासपुर का गुरुघासीदास विश्वविद्यालय उन्हीं की देन है। वीर नारायण सिंह की स्मृति से जुड़ा सोनाखान नाम का स्थान भारत में शहीदों की कर्मभूमि के नाम से जाना गया तो इसका श्रेय भी श्री अर्जुनसिंह को ही है। डॉ.खूबचंद बघेल बेराज और मिनीमाता बाँध

उन्हीं के द्वारा निर्मित हुए। इस तरह छत्तीसगढ़ के स्वाभिमान को जगाने वालों में श्री अर्जुनसिंह का नाम आता है। आज भी वे देश को सांप्रदायिक शक्तियों से मुक्त कर भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन का भागीरथ प्रयत्न कर रहे हैं। यह उनका राष्ट्र के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान होगा। इस वृद्धावस्था में भी वे एक सैनिक की तरह संघर्ष कर रहे हैं। ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि वे इस संघर्ष में विजयी हों, दीर्घायु हों ताकि राष्ट्र को उनका मार्गदर्शन मिलता रहे।

☐ *केयूर भूषण—* *गाँधीवादी कार्यकर्ता एवं विचारक। छत्तीसगढ़ की संस्कृति एवं सामाजिक इतिहास के गंभीर अध्येता। दो बार रायपुर सीट से लोकसभा के सदस्य रहे। कई पुस्तकों के लेखक। सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय।*

नीचे के कार्यकर्ता को काफ़ी महत्त्व देते हैं

जगतपाल सिंह

(पूर्व महामंत्री— मध्यप्रदेश कॉंग्रेस-ई और पूर्व राज्यसभा सदस्य)

अर्जुनसिंहजी किसी पर्टिकुलर सेक्शन के लीडर नहीं हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने जो कार्य अपने राजनीतिक जीवन में किये है वो आम जनता के लिए हैं। जाति, धर्म से ऊपर उठकर ये कार्य किये हैं। यही कारण है कि जब भी मध्यप्रदेश में आते हैं हज़ारों लोग उनसे मिलने जाते हैं। उन्नीस सौ सत्तावन में, मैंने उनको **आनन्द-भवन** में देखा, जब वे पं. नेहरू से मिलने गए थे, फिर धीरे-धीरे मैं उनके संपर्क में आया। जब काटजू साहब चीफ़ मिनिस्टर थे तब अर्जुनसिंहजी निर्दलीय विधायक के रूप में चुने गए थे तब मैंने उनका भाषण सुना। इस भाषण को सुनकर मैंने वो सब चीज़े उनमें पाई जो एक महान नेता में होती है। उनमें एक आकर्षण है अपने कार्यों का, नीतियों का। ही इज़ ए स्टेट्समेन, पॉलिटीशियन, डिप्लोमेट एण्ड ऑर्गेनाइज़र। गिने चुने इन्टेलेक्च्यूअल ही पॉलिटिक्स में है, वे उनमें से एक हैं। जो सूझ-बूझ दूरदर्शिता महान नेताओं में रही है, उनमें भी है। कॉंग्रेस और उसकी नीतियों के प्रति जितनी श्रद्धा उनमें है उतनी बहुत कम लोगों में है। उन्होंने पद पर होने के कारण सेवा नहीं की। उन्होंने सेवा की इसलिए उनको पद मिले है और ये सेवायें निचले तबके के लोगों के लिए रही है, जैसा कि गाँधी जी ने कहा था कि सबसे नीचे जो है उसे सबसे पहले हमें देखना है।

अपनी ही पार्टी के अन्दर अपने साथियों व सहकर्मियों से वैचारिक मतभेद अर्जुनसिंहजी का भले ही रहा हो किन्तु व्यक्तिगत रूप से किसी प्रकार का कोई आरोप उन्होंने नहीं लगाया। कभी व्यक्तिगत दुश्मनी किसी से नहीं की, हाँ एप्रोच में अन्तर हो सकता है। दिल्ली जाने के अलग-अलग रास्ते हैं। एक रास्ता व्हाया इलाहाबाद होकर जाता है, एक सीधे दिल्ली जाता है, तो रास्तों में अन्तर हो सकता है लेकिन अल्टीमेट उनका जो एम है वह कॉंग्रेस को ताक़त देना है, आज भी है, कल भी रहेगा मुझे पूरा-पूरा विश्वास है।

भारत में जितने गिने-चुने एडमिनिस्ट्रेटर्स हैं उनमें से अर्जुनसिंहजी एक हैं। एड्मिनिस्ट्रेशन में जितनी पकड़ उनकी है बहुत कम लोगों की होती है। उनके ज़माने में मैंने देखा कि सभी अधिकारी ये अच्छी तरह से जानते थे कि हम अर्जुनसिंहजी को ब्लफ नहीं कर सकते। इसलिए उनके जो भी आदेश होते थे उनका निर्वाह तुरंत और सही रूप में होता था, जो आज नहीं होता। उनसे अच्छा एडमिनिस्ट्रेटर मध्यप्रदेश की राजनीति में मैंने आज के युग में कोई दूसरा नहीं देखा। उन्होंने हरिजनों, आदिवासियों, झुग्गी-झोपड़ी वासियों को सबसे पहले ज़मीन का मालिकाना हक़ दिलवाया। एक बत्ती बिजली कनेक्शन फ्री दिया, सड़कें बनवाईं। वे बहुत सॉफ्ट हार्टेड हैं, बोलते कम हैं, समझते ज़्यादा हैं। उन पर कुछेक फिज़ूल के आरोप लगाये जाते है, वो केवल व्यक्तिगत रूप से छवि को कलंकित करने का प्रयास है और यह उचित नहीं है।

आज प्रदेश में साम्प्रदायकिता बढ़ रही है, धर्म का ह्रास हो रहा है। धर्म जब शोषण का माध्यम बन जाता है, धर्म जब पॉलिटिकल पॉवर कैप्चर करने का माध्यम बन जाता है तब धर्म भी गिरता है, राजनीति भी गिरती है।

धर्म और राजनीति एक गाड़ी के दो पहिए हैं। अर्जुनसिंहजी के मुख्यमंत्रित्व काल में प्रदेश में साम्प्रदायिकता तो थी लेकिन न्यूनतम रूप में। आज स्थिति बहुत बेकार है।

जहाँ तक श्री अर्जुनसिंह का पार्टी ऑर्गेनाइज़ेशन का वर्किंग रहा है बहुत ही डेमोक्रेटिक रहा है। वे कोई भी निर्णय बग़ैर अपने साथियों के पूछे नहीं लेते थे, हरेक की राय लेते थे। आप देखें कि जहाँ-जहाँ वे जिस भी पोज़ीशन में रहे हैं उनकी ऑर्गनाइजिंग कैपेसिटी सामने है। आज न सिर्फ मध्यप्रदेश में बल्कि वे उत्तरप्रदेश में, बिहार में, राजस्थान में जहाँ भी जाएँ हज़ारों लोग उन्हें रिसीव करने आते है। आज भोपाल को ले लीजिए, जहाँ हम बैठे है आज कोई भी कार्यकर्त्ता न जाए, किसी से कुछ न कहे तो भी चार-पाँच हज़ार आदमी उन्हें रिसीव करने पहुँचते हैं। ये क्या बताता है? ये दिखाता है उनके कृत्यों से, कर्मों से जनता अभिभूत है— ए मैन कैन बी जज्ड बाई द रिज़ल्ट ही प्रोड्यूस। वे नीचे के कार्यकर्ता को काफ़ी महत्व देते हैं। उन्होंने हमेशा अपने विरोधियों को ज़्यादा महत्व दिया।

पहली पीढ़ी के हमारे जितने महान नेता हुए हैं मैं उसी श्रेणी में अर्जुनसिंहजी को भी देखता हूँ। मैंने उन्हें पार्लियामेंट में भी सुना है। जिस तरह से वे तर्क देते हैं और जितना इन्टेलेक्च्यूअल एप्रोच उनका है वैसा बहुत कम लोगों में होता है। वे एक बहुत अच्छे पार्लियामेंटेरियन हैं।

मध्यप्रदेश में कला, साहित्य, संस्कृति के विकास में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। **भारत-भवन** इसका जीता जागता उदाहरण हैं। इंदिराजी की इच्छा थी, एक विचार था उनका, उस विचार को अर्जुनसिंहजी ने मूर्त रूप प्रदान किया। आज न केवल म.प्र. में अपितु पूरे देश में उनके इस योगदान के बारे में चर्चा है। आज जो विभाग उनके पास है वह दिन-दूनी, रात चौगुनी तरक्क़ी कर रहा है।

उन्होंने हर धर्म के लिए काम किया है। उर्दू के मदरसों को उन्होंने अनुदान दिया। उर्दू के मास्टरों को उन्होंने बढ़ाया। उन्होंने मस्जिदों के लिए ग्रान्ट्स दी, उन्होंने मंदिर बनवाए। चर्चो को सहायता दी। एक सेक्यूलर कैरेक्टर होने के कारण उन्होंने सभी धर्मों के लिए काम किया। लोग केवल नारे लगाते हैं लेकिन उन्होंने काम किया।

आज़ादी से पहले प्रदेश के जितने मुख्यमंत्री हुए हैं, उनकी पुरानी गुडविल थी, काँग्रेस की, साख का सहारा था और उसका उन्हें फ़ायदा भी मिला, लेकिन कालांतर में इधर जो चीफ़ मिनिस्टर्स हुए उनमें लोकप्रियता के लिहाज़ से अर्जुनसिंहजी को मैं नम्बर एक पर देखता हूँ। अर्जुनसिंहजी के साथ कार्य करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता है।

☐ *जगतपाल सिंह— संगठन-विशेषकर काँग्रेस सेवा दल एवं मध्यप्रदेश काँग्रेस को समर्पित रहे श्री जगतपाल सिंह ऐसी शख़्शियत रहे हैं जिनने पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इंदिरा गाँधी, श्री राजीव गाँधी, श्री अर्जुनसिंह एवं श्री दिग्विजयसिंह सभी के साथ कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त किया है। वे आज हमारे बीच नहीं है। आप मध्यप्रदेश से राज्यसभा सदस्य भी रहे थे।*

वे सबकी सुनते हैं

मुनिप्रसाद शुक्ल
(पूर्व राजस्व मंत्री, मध्यप्रदेश)

मैंने और माननीय कुँवर अर्जुनसिंहजी ने सन् 1957 में मँझौली विधानसभा क्षेत्र ज़िला सीधी म.प्र. के अन्तर्गत आमने-सामने होकर चुनाव की प्रतिस्पर्धा की थी, उस समय मैं काँग्रेस पार्टी से और कुँवर अर्जुनसिंहजी स्वतंत्र चुनाव लड़े थे। मुझे आज भी याद है कि कुँवर साहब चुनाव के दौरान अपने चेहरे में हमेशा की तरह प्रसन्नचित्त रहते थे। उनके चेहरे में मैंने कभी भी परेशानी की झलक नहीं देखी। जब भी चुनाव के समय हम दोनों मिलते, तो हम दोनों के बीच मित्रतापूर्ण व्यवहार रहता था। ये लगता ही नहीं था कि जैसे हम दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हों। आज भी वो बात मुझे याद है, कि मैं चुनाव सभा करके आ रहा था, तो रात्रि के समय मेरी जीप रामपुर नैकिन के पास पेट्रोल ख़त्म हो जाने की वजह से रुक गई थी, और मुझे जल्द ही दूसरी मीटिंग में जाना था, तभी कुँवर साहब अर्जुनसिंहजी अपने चुनाव की मीटिंग करके आ रहे थे, मैंने उनकी गाड़ी रोकी और कहा कि मुझे दूसरी जगह चुनाव मीटिंग में जाना है, आप मुझे थोड़ा-सा पेट्रोल दे दीजिये। कल सुबह आपकी गढ़ी (सांडा) में पेट्रोल पहुँचा दूँगा। कुँवर साहब ने मुझे शीघ्र ही अपनी गाड़ी से पेट्रोल दिया और कहा कि आप अपने चुनावी मीटिंग में जाइये, और ये पेट्रोल मुझे मत भिजवाइयेगा। नहीं तो मुझे इसका गहरा दु:ख होगा। कुँवर साहब का यह मित्रतापूर्ण व्यवहार आज भी मुझे याद आता है, जब मैं आज के परिवेश में राजनीतिक माहौल को देखता हूँ।

जब म.प्र. में संविद शासन बनने की लहर चल रही थी, उस समय कुँवर साहब अर्जुनसिंहजी उमरिया विधानसभा क्षेत्र ज़िला शहडोल से चुनाव लड़ के जीते थे मैंने उनसे पूछा कि संविद शासन शायद म.प्र. में बनने वाला है, एवं आपके ऊपर भी राजनीतिक दबाव शायद पड़ेगा क्या आप भी संविंद शासन में शामिल होंगे। उस समय कुँवर अर्जुनसिंहजी ने मुझसे कहा था, कि मैं काँग्रेस पार्टी कभी नहीं छोड़ूँगा, चाहे मुझे अपना विधायक पद क्यों न छोड़ देना पड़े। इसके बाद इन्होंने मुझसे कहा कि इस स्थिति में आप क्या करेंगे, मैंने यही जवाब दिया, जो आप करेंगे वहीं मैं भी करूँगा।

कुँवर अर्जुनसिंहजी के मुख्यमंत्रित्व काल में, मैं भी उनके मंत्रिमण्डल का सहयोगी था। जब कभी भी मंत्रिमण्डल की बैठक होती तो सभी मंत्रीगण प्रदेश की समस्या को उठाते रहते व उस पर चर्चा करते मगर कुँवर अर्जुनसिंहजी चुपचाप बैठे सभी सहयोगी सदस्यों की बातें सुनते रहते एवं अधिकारियों की बात भी सुनते रहते । बाद में अपने विचार रखते थे। कुँवर अर्जुनसिंहजी जो विचार रखते थे उस पर सभी मंत्रिमण्डल के सहयोगी सदस्य एकमत से सहमत रहते थे।

मैंने एक बार कुँवर साहब से कहा कि हम लोग जब भी चर्चा करते हैं, आप बीच में कुछ भी नहीं बोलते, आप अगर प्रदेश की समस्याओं के बारे में बोल दिया करें, तो समस्याएँ पहले ही सुलझ जाया करें, कुँवर अर्जुनसिंहजी ने कहा मैं आप लोगों के विचार सुन लेता हूँ, उसके बाद ही अपने विचार रखता हूँ, ताकि आप लोगों के विचार पूर्णतः जान सकूँ।

कुँवर साहब ने अपने मुख्यमंत्रित्व काल में अपने मंत्रिमण्डल के सहयोगियों को अपना काम करने की पूर्ण स्वतंत्रता दी एवं उन्होंने कभी भी राजनीति के अंदर अपने सहयोगियों के काम में कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

☐ *मुनिप्रसाद शुक्ल— विन्ध्यप्रदेश के समाजवादी नेता, पूर्व गृहमंत्री, पूर्व विधायक श्री मुनिप्रसाद शुक्ल पहली बार श्री अर्जुनसिंह से ही विधानसभा चुनाव में पराजित हुए थे, किन्तु वे आजीवन उनके साथ, साथी-सहयोगी के रूप में रहे। आप राजनीति के साथ ही सफल एडवोकेट भी रहे।*

कमज़ोर तबके में उन्होंने आत्म विश्वास जगाया है

झुमकलाल भेड़िया
(पूर्व मंत्री म.प्र.)

अर्जुनसिंहजी एक समझदार व्यक्ति हैं, एक संवेदनशील व्यक्ति है। मैं उनको इसलिए बहुत ज़्यादा चाहता हूँ क्योंकि उन्होंने पिछड़े वर्ग के बारे में बहुत सोचा है। आदिवासी, हरिजन, ग़रीबों के बारे में उनके अंतर में करुणा का भाव दिखाई दिया है। हमारे देश के कमज़ोर तबके में उन्होंने आत्मविश्वास जगाया है। आत्मसम्मान को बढ़ाया है, इसलिए मैं उनका सम्मान करता हूँ और उनकी इस सहृदयता से प्रभावित भी हूँ। मैंने कभी भी उन्हें स्वयं को नेता कहकर आत्मप्रक्षेपण करते नहीं पाया बल्कि प्रदेश व देश के एक सेवक के रूप में उन्हें कार्यरत देखा। यहाँ मैं यह कहना चाहूँगा कि कमज़ोर तबके से मेरा मतलब सिर्फ़ हरिजन-आदिवासी ही नहीं ऐसे बहुत सारे सवर्ण भी उसमें सम्मिलित है जो कि आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर थे।

एक बार मैंने अपने क्षेत्र में, जंगली इलाक़े में एक सामूहिक विवाह का आयोजन किया था, उसमें अर्जुनसिंहजी को मैंने निमंत्रित किया था। इस वैवाहिक आयोजन में माननीय अर्जुनसिंह जी आये, साथ में उनकी पत्नी भी आईं। पहले मैं विश्वास करता था कि मंत्री, मुख्यमंत्री या बड़े लोग सिर्फ़ बड़े लोगों के वैवाहिक समारोहों में ही जाते हैं, ग़रीब लोगों की शादी में ये लोग नहीं जाते, आदिवासी क्षेत्रों में ये लोग नहीं जाते, किंतु सौभाग्य से मेरा यह विश्वास टूटा, अर्जुनसिंहजी अपनी अर्द्धांगिनी के साथ पधारे, आदिवासियों के वैवाहिक रीति-रिवाज़ों को निकट से देखा। इससे आदिवासियों के आत्म-सम्मान को संबल मिला। इसके अतिरिक्त अर्जुनसिंहजी ने उन व्यक्तियों को भी अपूर्व सम्मान प्रदान किया जो कि आदिवासियों की भावनाओं से जुड़े हुए थे, उनके हित में सोचते थे। श्री वीरनारायणसिंह जो कि आदिवासियों की ओर से संघर्ष करते हुए शहीद हुए। वे शोषण के ख़िलाफ़ अंग्रेज़ों के ज़माने से संघर्षरत रहे और उस समय के सामंतवादियों ने उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया। आदिवासी लोग श्री वीरनारायणसिंह को श्रद्धांजलि देते हुए उनका शहीदी दिवस मनाते है। माननीय अर्जुनसिंहजी कई बार इस पावन आयोजन में पधारे। आदिवासियों ने उनमें आत्मीयता का अनुभव किया। आदिवासियों को ज़मीन के मालिकाना हक़ दिलाने में भी अर्जुनसिंहजी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई ऐसी योजनाएँ क्रियान्वित कीं कि जिससे आदिवासियों, ग़रीबों को क़ानूनी सहायता भी मिले, शिक्षा का विकास हो, कोई विपत्ति आये तो उनके लिए राहत की भी व्यवस्था हो और मुख्य रूप से आदिवासियों की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

अर्जुनसिंहजी की राजनीतिक इच्छाशक्ति बहुत दृढ़ है। वे अपने सहयोगियों से बराबर परामर्श लेते रहते हैं, सभी के विचारों पर ध्यान देते हैं, एकतरफा निर्णय नहीं लेते। प्रजातांत्रिक मूल्यों पर उनकी असीम अस्था है। उनकी प्रशासनिक दक्षता क़ाबिले तारीफ़ है। अधिकारी वर्ग सदैव उनके विश्वास में रहता था, केबिनेट के किसी फ़ैसले के सिलसिले में वे बराबर इस बात का ख़्याल रखते थे कि उनके मंत्रिमंडल के सभी सहयोगी उन्हीं की तरह ईमानदारी और ज़िम्मेदारी के साथ काम करें।

उन्होंने पार्टी के कार्यक्रमों को, नीतियों को अधिक महत्व दिया। उनका हमेशा यह मानना रहा कि जब तक पार्टी के सिद्धांतों में पूर्ण आस्था नहीं होगी, पार्टी के कार्यक्रमों को ईमानदारी से आयोजित नहीं किया जायगा, पार्टी मज़बूत नहीं हो सकती। इस तरह से वे पार्टी में तालमेल बैठाने में प्रयासरत रहे। कई बार कई कमेटियाँ बनीं जिसमें सत्ता के लोग भी रहे और संगठन के कार्यकर्त्ता भी। इतना ही नहीं, समाज के हर वर्ग के लोगों को वे साथ लेकर चले। कदाचित् अर्जुनसिंहजी की सरकार म.प्र. की पहली सरकार थी जिसने आदिवासियों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया। अनुसूचित जाति, पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यकों में मुस्लिमों को ईसाई व सिक्खों को भी यथेष्ठ प्रतिनिधित्व हर क्षेत्र में प्रदान किया। सामान्य जनता से उनका काफ़ी संपर्क रहा, विशेषकर ग़रीब तबके के लोगों से उनका काफ़ी मेल-मिलाप रहा है।

अर्जुनसिंहजी को प्रकृति से अगाध प्रेम है, हम लोग साथ-साथ बस्तर के जंगलों में बहुत घूमे हैं, साथ-साथ खाना खाया है और बहुत से आत्मीय क्षण हमारे साथ आज स्मृति के रूप में रह रहे हैं।

अर्जुनसिंहजी के साथ कार्य करने में बहुत आनंद आता था क्योंकि ग़रीब तबकों का सबसे ज़्यादा हिमायती कोई मुख्यमंत्री यदि रहा है तो वह निःसंदेह अर्जुनसिंहजी ही हैं। वे बहुत नामी राजनीतिज्ञ हैं, वे एक अच्छे पार्लियामेंटेरियन हैं, मैंने अपने राजनीतिक जीवन में उनकी टक्कर का कोई दूसरा व्यक्ति आज तक नहीं देखा।

☐ *झुमकलाल भेड़िया— छत्तीसगढ़ के प्रभावशाली नेता श्री झुमकलाल भेड़िया आदिवासियों के हितों के संरक्षक तथा सेवक के रूप में जाने जाते हैं। आप मध्यप्रदेश के प्रायः सभी काँग्रेसी मुख्यमंत्रियों के मंत्रिमंडल के सदस्य रहे हैं। सांसद तथा प्रदेश काँग्रेस उपाध्यक्ष के रूप में भी आपने सेवाएँ दी हैं।*

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर उनके विचार स्पष्ट हैं

बालकृष्ण गुप्त
(भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ नेता)

जहाँ तक मेरा और श्री अर्जुनसिंह का संबंध है, पहले तो मैं बहुत कुछ इनके बारे में सुनता रहता था। हमारे स्वर्गीय शाकिर खाँ एम.एल.ए. जो यहाँ के सबसे बड़े स्वतंत्रता संग्राम सैनिक रहे हैं और लगातार पिछले बीस साल तक विधानसभा में भी रहे हैं। उनका बहुत निकट से श्री अर्जुनसिंह से संबंध रहा है। मेरे मित्र होमीदाजी, जो पार्लियामेंट के सदस्य भी रहे, जो एक बड़े ट्रेड यूनियन नेता भी हैं, राजनीतिज्ञ भी हैं- वे भी श्री अर्जुनसिंह के निकट के दोस्त रहे हैं। मेरा तो सीधा सम्पर्क बहुत कम हुआ, इन सबके द्वारा जो कुछ मैं सुनता रहा उससे उनकी छवि के बारे में उनके व्यक्तित्व के बारे में मेरे भी कुछ इम्प्रेशन थे। जहाँ तक उनके राजनैतिक व्यक्तित्व का प्रश्न है, जिस चीज़ ने सबसे ज़्यादा प्रभावित किया वो कुछ ऐसे मुद्दे थे जिसे मैं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे कह सकता हूँ। अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर विश्वशांति आंदोलन, जो कि आज के समय में या किसी ज़माने में बहुत ही महत्वपूर्ण आंदोलन रहा। शीतयुद्ध को समाप्त करने का सवाल, हथियारों की होड़ ख़त्म करने का सवाल, इस संबंध में श्री अर्जुनसिंह के बहुत ही स्पष्ट विचार थे। उपनिवेशवाद, आणविक युद्ध, साम्राज्यवाद, नव-उपनिवेशवाद, इस सबके बारे में भी उनके विचार बिल्कुल स्पष्ट थे। मुझे याद पड़ता है कि वे एक अन्तर्राष्ट्रीय शांति सम्मेलन में जो कि मास्को में हुआ था, उसमें भी गये तथा वहाँ उनका योगदान सराहनीय रहा। इस दृष्टि से मैं उनका सम्मान करता हूँ। घरेलू मामलों में भले ही कितने ही मतभेद हों किन्तु विश्वशांति के मामले में उनके विचार बहुत ही स्पष्ट रहे हैं। दूसरा मामला जिस पर श्री अर्जुनसिंह के विचारों से मैं प्रभावित हुआ हूँ वह है वह राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय अखण्डता का सवाल। वे म.प्र. में रहे हों या पंजाब के राज्यपाल रहे हों-जहाँ-जहाँ भी रहे राष्ट्रीय एकता व अखण्डता के मुद्दे पर उनके विचार स्पष्ट थे। वे व्यापक दृष्टिकोण से इन पर विचार करते थे, सोचते थे। तीसरा मामला है सम्प्रदायवाद। इस देश को बहुत बड़ा ख़तरा सम्प्रदायवाद से है। मध्यप्रदेश की राजनीति में रहने के कारण क्योंकि यहाँ जनसंघ, भाजपा इनके सम्प्रदायवाद से उन्हें लड़ना ही पड़ा था और इस अनुभव के आधार पर वे सम्प्रदायवाद के ख़िलाफ़ हर क्षेत्र में संघर्षरत रहे हैं। इसीलिए उन्होंने अपने दौर में कभी कोई समझौता सम्प्रदायवाद के साथ नहीं किया। आज भी मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि हिन्दुस्तान की राजनीति में उनका विशेष स्थान सम्प्रदायवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष की वज़ह से बना है।

श्री अर्जुनसिंह जब म.प्र. के मुख्यमंत्री थे तब साम्प्रदायिकता तो थी विशेषकर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ अपनी जड़ें जमाने में लगा हुआ था लेकिन तब से अब काफ़ी बड़ा अन्तर आया है। सम्प्रदायवाद बजाए कम होने के हर क्षेत्र में फैला और बढ़ा है, विशेष रूप से अब इसने सांस्कृतिक क्षेत्र में भी अपनी दख़ल बढ़ाई है,इसलिए आज कुछ ज़्यादा ख़तरे हैं उस सम्प्रदायवाद से। जैसा अभी-अभी **विद्याभारती** के नाम पर शैक्षणिक क्षेत्र में दख़ल दिया गया है। इसी तरह **भारत-भवन** को भी एक स्वस्थ राष्ट्रीय साहित्यिक-सांस्कृतिक मंच बनाने के बजाए अपनी साम्प्रदायिक

विधानसभा का बैलट बनाना आरंभ किया है। हम सभी साथी के विधानसभा क्षेत्र और उस क्षेत्र से सभी बनाना पड़ेगा।

मुख्यमंत्री के रूप में श्री अर्जुनसिंह का कई मुद्दों पर आलोचक रहा है। विधायक के रूप में मैंने, उन्होंने सेतुपत्ता के उत्पादन के लिए योजनाबद्ध किया तथा क्षेत्रीय समस्याओं को उठाया है, उन्होंने भी और भी अन्य मूलभूत समस्याओं को हल करने में सहयोग दिया, किन्तु आज विधानसभा सभा में मैं हूँ, मैं हूँ, छोपड़ी वासियों को पट्टे भी दिये और इसमें आपत्ति है कि उनको विधायकों को कैसे अलग अलग नहीं है कि अलग है कि वे झुग्गी झोपड़ी वासियों को स्थानीयता नहीं दे सकते नहीं थे।

निश्चित ही श्री अर्जुनसिंह का साथ का प्रयास रहा है और यह साथ मैंने कई मौकों पर, विशेष अधिवेशन सभा में, साम्प्रदायवाद के खिलाफ लड़ने के समय, इमरजेंसीपरान्त के विधानसभा चुनाव के समय में कांग्रेस चाहने वाले व्यक्ति हैं, तमाम व्यस्तताओं के बावजूद भी अध्ययन करते हैं। समाजवाद को विकसित और अन्तर्राष्ट्रीय है उनके बारे में उन्होंने काफी गहन अध्ययन किया है। कांग्रेस में नहीं वरन् समाज के अर्जुनसिंह विशेष से बात है ज्ञान के बारे में, समाज के बारे में। यही वजह है कि हर संकट या दुरूह विषयों पर मुझसे विचार-विमर्श किया है।

आज श्री अर्जुनसिंह पर बातचीत करते हुए मुझे अफसोस की अनुभूति हो रही है, सम्बन्ध सम्बन्धित के बावजूद श्री अर्जुनसिंह के साथ मेरे वैयक्तिक संबंध काफी अच्छे हैं। उन्होंने मुझसे सहयोग चाहा है, जब मैं दिल्ली जाता हूँ तो उनसे मिलता हूँ। मेरा बेटा और बहू अभी सूरिनाम में नर्स अफसर हैं, उन्हें आशीर्वाद देने के लिए भी बुलाएँगे।

☐ *बालकृष्ण गुप्त— मध्यप्रदेश भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य, भोपाल जेल, पत्रकार, कॉमरेड बालकृष्ण गुप्त भोपाल के विलीनीकरण आन्दोलन के अग्रणी नेता रहे। भोपाल के विधानसभा और लोकसभा चुनाव लड़कर पराजित भी हुए, लेकिन अंतिम साँस तक भोपाल की जन समस्याओं के लिए संघर्षशील रहे।*

संसदीय परम्पराओं के संरक्षक

धीरेन्द्र कुमार सिंह
(पूर्व विधायकःअकलतरा)

देश के महान् नेता अर्जुनसिंहजी से मेरी पहली भेंट 1967 में दिल्ली स्थित मध्यप्रदेश भवन में हुई थी। तब मध्यप्रदेश में संविद सरकार थी और श्री गोविन्द नारायणसिंह राज्य के मुख्यमंत्री थे। हम दोनों मुख्यमंत्रीजी से मिलने के लिए गये थे। वहीं श्री गोविद नारायणसिंहजी ने अर्जुनसिंहजी से मेरा परिचय करवाया। अर्जुनसिंहजी तब युवा थे - उनके सुदर्शन एवं धीर-गंभीर व्यक्तित्व ने पहली मुलाक़ात में ही मुझे उनका मुरीद बना दिया। मुलाक़ात के पूर्व प्रतीक्षा करने जब हम बैठे थे तो वहाँ कुछ पुराने अख़बार पड़े थे अर्जुनसिंहजी उन्हें बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ रहे थे। तथा मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि पुराने अख़बारों में किसी की क्या रुचि हो सकती है। मुख्यमंत्रीजी ने जब हमें परस्पर मिलाया तो अच्छा लगा। वहाँ से हम साथ लौटे। मैंने अपनी जिज्ञासा प्रकट की कि पुराने अख़बारों को आखिर वे इतनी तल्लीनता से क्यों पढ़ रहे थे। अर्जुनसिंहजी ने अपनी गंभीर शैली में उत्तर दिया मैं नाहक बेकार बहस में अपनी ऊर्जा नष्ट कर, इधर-उधर की बातें करने में यकीन नहीं रखता। दिल्ली के ये अख़बार सुदूर विंध्य क्षेत्र में नहीं मिल पाते। मैंने इनमें से काफ़ी सूचनाएँ व जानकारियाँ प्रतीक्षा के वक़्त पढ़ लीं। उनके इस जवाब से मुझे अध्ययन के प्रति उनके लगाव, समय के सद्उपयोग तथा बहस में समय न गँवाने जैसी तीन शिक्षाएँ मिलीं।

मेरे बड़े भैया स्व. श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह उन दिनों विधायक थे। यह 1972 का साल रहा होगा। वे अस्वस्थ रहा करते थे। सो मैं प्रायः उनके साथ ही रहा करता था। 1977 में काँग्रेस को विपक्ष में बैठना पड़ा। नेता प्रतिपक्ष के चयन का सवाल उठा। अर्जुनसिंहजी, इस पद के लिए सशक्त उम्मीदवार थे। समस्या यह थी कि जीते विधायकों में ज्यादातर छत्तीसगढ़ क्षेत्र से थे। सो उनकी यह माँग थी कि नेता प्रतिपक्ष छत्तीसगढ़ का ही व्यक्ति चुना जाए। बैठक में गर्मागर्म बहस हुई। अर्जुनसिंहजी बेहद शालीनता से बैठक से बाहर आ गए और कहा मेरी कुर्सी बाहर ही लगा दें ताकि मेरी उपस्थिति के चलते जो लोग अपनी खुली राय देने में संकोच कर रहे हों वे भी अपनी बात कह सकें। अंततः फैसला उनके ही पक्ष में रहा। वे नेता प्रतिपक्ष बने। 1979 के साल में उन्होंने मुझसे अकलतरा क्षेत्र से विधानसभा चुनाव लड़ने को कहा। मैं मन नहीं बना पा रहा था। वे मुझे लेकर श्रीमती इंदिरा गाँधी के पास गए और मुझे मैदान में उतार दिया। इस तरह उनकी कृपा से मैं पहली बार विधानसभा में पहुँचा।

अर्जुनसिंहजी मुख्यमंत्री बने और मुझे विधायक दल का सचिव बनाया गया। इस दौरान उनके साथ काफ़ी काम करने और उनकी कार्यशैली को समझने का मौक़ा मिला। सदन की गरिमा के प्रति वे बेहद सजग थे। संसदीय परंपराओं और उसके मूल्यों के प्रति ऐसी निष्ठा और सजगता मैंने किसी मुख्यमंत्री में नहीं देखी। वे हमेशा यह चाहते कि सदन के एक-एक क्षण का उपयोग हो, विधायकगण चर्चाओं में उत्साह से भाग लें और बहस का स्तर कभी न गिरे। वे जितनी संजीदगी और तैयारी के साथ सदन में आते, वह चीज़ हमें प्रेरणा देती। वे हमें बराबर सदन की गरिमा को बढ़ाने के लिए प्रेरित करते। जो कमज़ोर सदस्य थे, सदन में प्रायः चुप रहते उन्हें भी मौक़ा मिले-इसके

लिए संसदीय दल को प्रोत्साहित करने को कहते। वे चाहते थे कि हम ऐसे सदस्यों की तैयारी कराकर, उन्हें भाषण व विषय की पूरी सामग्री दें। कई बार हमें बुरा भी लगता। किन्तु आज लगता है कि उनकी सोच कितनी प्रगतिशील थी। वे हर स्तर के सदस्य की सदन की कार्रवाई में सहभागिता चाहते है। सदन में विपक्ष के अत्यंत भद्दे आरोपों पर भी वे कभी उत्तेजित नहीं होते। इतनी शालीनता से जवाब देते कि विपक्ष निरुत्तर होकर बगलें झाँकने लगाता। एक बार की बात है ग्वालियर क्षेत्र से जीतकर आए एक विधायक ने उनके पिता पर एक विपरीत टिप्पणी कर दी। बात नागवार थी। सदस्यों को बुरी भी लगी। मुख्यमंत्री अर्जुनसिंहजी ने इतने संवेदनशील मुद्दे पर भी बड़ी शालीनता से सिर्फ़ इतना कहा कि हममें से किसी को अपने माता-पिता चुनने का हक़ नहीं है। इस नैसर्गिक बात को जानते हुए भी यदि आप ऐसी बातें करते हैं तो मुझे कुछ नहीं कहना है। उनके जबाव से सदन सन्न रहा। सब खामोश हो गए। सदन में वे अजातशत्रु थे। जब वे बोलने के लिए खड़े होते तो एक गरिमामय वातावरण स्वतः बन जाता था। लोग उन्हें बहुत ध्यान से सुनते हैं। विपक्ष के साथ उनका व्यवहार बेहद सौम्यतापूर्ण होता है। कोई कैसी भी आलोचना करे वे उसके प्रति कभी अनुदार नहीं होते हैं। सबके काम मेरिट के आधार पर करते हैं। पक्ष-विपक्ष के नाम पर उन्होंने शायद ही कभी भेदभाव किया हो। वे जब विपक्ष में रहे तब भी बड़ी गरिमा और सौजन्यता के साथ सदन की कार्रवाईयों में अपना योगदान दिया। सिर्फ़ विरोध के लिए विरोध करना उन्होंने सीखा ही नहीं है।

उनका एक महत्त्वपूर्ण गुण यह है कि वे पढ़ने-लिखने वाले इंसान हैं। देश-दुनिया के विविध संदर्भों को उन्होंने बड़ी रुचि से पढ़ा और उसका अनुशीलन किया है। सो वे पढ़े-लिखे लोगों का आदर भी करते हैं। वे चाहते रहे कि उनके विधायक ही नहीं अधिकारी भी अपने कामों के प्रति जवाबदेह हों। वे छत्तीसगढ़ क्षेत्र को सदैव विशेष महत्त्व देते रहे। मुख्यमंत्री तथा नेता प्रतिपक्ष पद पर रहते हुए उन्होंने सर्वाधिक दौरे छत्तीसगढ़ के किए। यहाँ के सांस्कृतिक वैभव को पहचानने और चर्चा दिलाने में उनका विशिष्ट योगदान है।

उनके मुख्यमंत्री काल में विधायकों का सम्मान बेहद बढ़ा। उनके नौकरशाही को साफ़ निर्देश थे कि विधायक उस क्षेत्र का मुख्यमंत्री है जो भी अधिकारी विधायकों की भावना का अनादर करेगा उसे मुश्किल होगी। मैं आज मानता हूँ कि उस समय विधायकों का जो दबदबा व प्रभाव था - वह आज दुर्लभ है। नौकरशाही पर ऐसा अनुशासन रखने वाला मुख्यमंत्री भी दुर्लभ है। मैंने यह अनुभव किया कि श्री अर्जुनसिंह काम करने और उसकी ज़िम्मेदारी लेने वाले व्यक्ति हैं। उन्होंने कभी अफ़सरों की न क़लम फसाई न उनका इस्तेमाल किया। अपने आदेश अपनी क़लम से किए। यह उनके आत्मविश्वास और प्रशासनिक समझ का ही उदाहरण है। बीच में कुछ समय मेरे उनसे मतभेद हो गए। यह 1981-82 का दौर रहा होगा। उन्होंने मुझे बुलाया और समझाया। उनकी उदारता के ऐसे किस्से अनेक हैं। साफ़गोई भी उनमें बहुत है। मैं दुबारा विधानसभा में पहुँचा तो उन्होंने मुझसे कहा देखो मैं तुम्हें मंत्री नहीं बना सकता। इसलिए तुम्हें कोरबा भेज रहा हूँ। उसी समय मुझे कोरबा में साडा अध्यक्ष का पद मिला। कई बोर्डों का उन्होंने मुझे सदस्य नामित किया। उनकी साफगोई, उदारता, संवेदनशीलता, सहजता, अध्ययनशीलता ऐसे गुण हैं जो आज की राजनीति में दुर्लभ हो चले हैं।

☐ *धीरेन्द्रकुमार सिंह— अकलतरा (छत्तीसगढ़) से दो बार विधायक रहे। साडा (कोरबा) के अध्यक्ष तथा मध्यप्रदेश विधानसभा में काँग्रेस विधायक दल के सचिव रहे।*

प्रतिबद्धता : श्री अर्जुनसिंह की राजनीति की बुनियाद

अजीत जोगी
(पूर्व मुख्यमंत्री, छत्तीसगढ़)

राजनीति यदि परिवर्तन का सबसे सशक्त वाहन है तो यह भी सच है कि राजनीति और सत्ता जब पर्याय बन जाते हैं तब भी सत्ता के माध्यम से राजनीतिज्ञ उन परिवर्तनों को कार्यरूप दे सकता है जिनके प्रति वह प्रतिबद्ध हो। आदर्श स्थिति में हर राजनीतिज्ञ की कुछ मौलिक प्रतिबद्धताएँ होनी चाहिए और उन मौलिक प्रतिबद्धताओं को सत्ता के माध्यम से कार्यान्वित करना ही प्रत्येक राजनीतिज्ञ का अंतिम उद्देश्य होता है। यदि कोई राजनीतिज्ञ किन्हीं मूल-भूत उद्देश्यों और सिद्धांतों के प्रति पूर्ण रूप से अर्पित और समर्पित नहीं है तो उसका राजनीति में होना अर्थहीन हो जाता है। भारत में बीसवीं शताब्दी के अंतिम चार या पाँच दशकों में ऐसे लोग राजनीति में ज़रूर आए हैं जिनकी प्रतिबद्धता किन्हीं सिद्धांतों के प्रति नहीं रही है किन्तु जो मात्र व्यक्तिगत आकांक्षाओं, महत्त्वाकांक्षाओं और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही राजनीति में हैं। स्थिति तो यहाँ तक भौतिकवादी हो गई है कि कुछ परिवार राजनीति को केवल अर्थ व सुविधा अर्जन का माध्यम मानकर जानबूझकर अपने परिवार से कुछ लोगों को काँग्रेस में, तो कुछ को भाजपा में और कुछ को जनता दल में इसलिए सक्रिय कर देते हैं जिससे सरकार किसी की भी हो उनका व्यापार और काम बिना किसी रुकावट के चलते रहना चाहिए। ऐसे लोग राजनीति के सर्वोच्च धरातल दिल्ली– के सिंहासन से लेकर ठेठ गाँव और पंचायत के स्तर पर देखे जा सकते हैं। श्री अर्जुनसिंह भारतीय राजनैतिक पटल के उन बिरले लोगों में से हैं जिन्होंने राजनीति को अपने अध्ययन, चिन्तन और मनन के आधार पर किए गए संकल्पों की प्रतिबद्धता का एक सशक्त माध्यम माना है। जब वह राज घराने के आराम और सुविधाओं को छोड़कर राजनीति की स्पर्धा, ईर्ष्या और प्रतिद्वन्द्विता के आँगन में आये तो उन्हें मालूम था कि राजनीति उन्हें सत्ता के सिंहासन तक ले जाए या नहीं किन्तु झंझावातों में अवश्य ले जाएगी जहाँ अधिकतर अच्छे से अच्छे योद्धा भी कुर्बान हो जाते हैं। अपनी नौजवानी में जब उन्होंने राजनीति में पदार्पण करने का निश्चय किया तो इसके पीछे एक गहरी प्रतिबद्धता और उस प्रतिबद्धता से उठने वाले संकल्प ही थे।

यद्यपि मैंने श्री अर्जुनसिंह को बहुत क़रीब से देखा और समझा है और मेरे और उनके समीकरण अन्य राजनीतिज्ञों से कुछ भिन्न– अत्यन्त ही अनौपचारिक से रहे हैं तथापि मैं भी निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि राजनीति के इतने निराशाजनक और कतिपय अपमानजनक परिवेश में, जो उनके पूज्य पिता जी के साथ घटित कराया गया था एक नौजवान के रूप में उन्होंने राजनीति को क्यों अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। यदि वे राजनीति में नहीं आते तो भी उनका जीवन बहुत आराम से व्यतीत होता और सम्भवत: उनको किसी भी भौतिक साधन या संसाधन की कमी नहीं होती किन्तु शैशव व तरुणाई के महत्त्वपूर्ण वर्षों में उनके जीवन में ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुई जिन्होंने उन्हें समाज में परिवर्तन के सबसे सशक्त वाहन अर्थात् राजनीति में सक्रिय भाग लेने के लिए मज़बूर कर दिया।

सामन्ती परिवार में जन्म लेकर उन्होंने सामन्तशाही के वे आयाम देखे जो निष्ठुरता और शोषण की पराकाष्ठा

को स्पर्श करते हैं। अधिकतर ऐसा होता है कि जो बालक अपने चारों ओर ऐसा वातावरण देखता है जहाँ शोषण करना उसे अपना जन्मसिद्ध अधिकार लगता है, और जो ग़रीबों व असहायों की कीमत पर सत्ता, सुख, समृद्धि एवं ऐश्वर्य पाना अपनी नियति मानता है वह उसी वातावरण में घुल-मिल जाता है। उस वातावरण में उसे कुछ भी असामान्य नहीं लगता इसलिये वह सामन्तशाही सुविधा को आत्म-सात कर लेता है। यदा-कदा ही कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपने इस सुविधा सम्पन्न वातावरण के ख़िलाफ़ बग़ावत करके उस व्यवस्था को चुनौती देने लगते हैं जो उनकी सम्पन्नता और सुविधा का आधार होती है। सच पूछा जाए तो श्री अर्जुनसिंह इस पीढ़ी के उन अपवादों में से है जिन्होंने केरल के नम्बूद्रीपाद की तरह सम्पन्न परिवार में जन्म लेकर पूँजीवाद व सामन्तवाद के ख़िलाफ़ ही लड़ाई को अपने सार्वजनिक जीवन का मुख्य आधार माना।

इस ग़ैर पारम्परिक आचरण के पीछे बहुत से कारण रहे होंगे। सुना है कि बाल्यकाल में जब उन्होंने ग़रीब का शोषण और ग़रीबी की लाचारी तथा शोषित की सहायता को बहुत क़रीब से देखा तो उनका हृदय प्रतिकार के लिए संकल्प कर बैठा। यह भी हुआ कि जब उन्होंने अध्ययन करना प्रारम्भ किया तब उन्हें लगा कि बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह विश्व किसी भी ऐसी व्यवस्था को सहन नहीं करेगा जो अन्याय, अत्याचार तथा शोषण को किसी भी प्रकार से प्रश्रय देगी। जब वे शिक्षा के लिए इलाहाबाद गए तो वहाँ विश्वविद्यालय में उन्हें सौभाग्य से आचार्य नरेन्द्र देव और लोहिया के उस समाजवाद के दर्शन से साक्षात्कार हुआ जो स्वतंत्र भारत में ऊँच-नीच, ग़रीबी-अमीरी तथा अभिजात्य व आम आदमी के अन्तर को कम करके समाजवाद तथा समता के सिद्धांतों के लिए कृतसंकल्पित था। वास्तविकता तो यह है कि उनके राजनैतिक जीवन की प्रतिबद्धता केवल परिस्थितिजन्य और सत्ता एवं स्वार्थ प्रेरित नहीं है अपितु वे उनके शैशव से लेकर जवानी तक के अनुभवों व अध्ययन तथा सानिध्य से उपजे हुए संकल्पों पर आधारित है।

बहुत-सी घटनाएँ हैं जिनका कभी उन्होंने या कभी उनके परिवार ने ज़िक्र किया है। उन घटनाओं ने उनके जीवन दर्शन को बनाने में प्रारंभिक वर्षों में अमिट छाप छोड़ी। सहृदयता और संवेदनशीलता उनके जीवन और चरित्र के ऐसे अभिन्न अंग हैं जिन्होंने उनके जीवन की लगभग सभी दिशाओं और निर्णयों का निर्धारिण किया है। बचपन में जब उन्होंने शोषण को बहुत क़रीब से देखा और यह भी पाया कि जो व्यवस्था उस शोषण के लिए ज़िम्मेदार है वह किसी न किसी प्रकार उनके सामन्तवादी इतिहास से जुड़ी है तो उनका मन उस परम्परा, इतिहास तथा सामन्तवादी धारणाओं के विरुद्ध कड़ा रुख अपनाकर ग़रीबों और शोषितों के हितों में फ़ैसले किए। चाहे वह झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले शहरी ग़रीबों को पट्टे देने का फ़ैसला हो या फिर मध्यप्रदेश के लाखों आदिवासी ग़रीबों को तेंदूपत्ते के व्यवसाय में 'मज़दूर से मालिक' बनाने का निर्णय हो अथवा साईकल रिक्शा चालकों को स्वामित्व देने की बात हो या चाहे मालिकों की ज़मीन पर बसे हुए ग़रीब कृषि मज़दूरों को उनकी भूमि के मालिकाना हक़ देने की बात हो– इन सबके पीछे वही संकल्प है जो सामन्ती परिवेश की प्रतिक्रिया से उत्पन्न एक व्यवहारिक चिन्तन के रूप में, भारत में समाजवाद की उपादेयता को रेखांकित करता है।

वह अपने पिता के सबसे बड़े पुत्र और चुरहट के वैधानिक उत्तराधिकारी नहीं हैं। उनके पिता श्री शिवबहादुर सिंहजी चुरहट के इलाक़ेदार और बाद में वर्षों विन्ध्यप्रदेश सरकार के प्रभावीमंत्री भी थे। इस क्षेत्र के लोग ऐसा मानते हैं कि उन्होंने अपने इलाक़े का उत्तराधिकार तो अपने बड़े पुत्र श्री रणबहादुरसिंह को सौंपा किन्तु प्रतिभा तथा रुझान को देखते हुए उन्होंने अपना राजनैतिक उत्तराधिकार अपने दूसरे पुत्र श्री अर्जुनसिंह को ही सौंपा। कई बार लोग उनके पिता के जीवन के उन अंतिम दिनों का उल्लेख करते हैं जो इस वैभवशाली परिवार के लिए काले व उदास दिन थे। श्री अर्जुनसिंह और उनका पूरा परिवार तथा विन्ध्यप्रदेश के अधिकांश लोगों की यह मान्यता

है कि उनके पिता पूर्णतया निर्दोष थे और उन्हें जानबूझकर एक सुनियोजित षड्यंत्र के अंतर्गत फँसाया गया था। इस षड्यंत्र के पीछे एक लम्बी कहानी है जिसमें रीवा के महाराजा और उनके इलाकेदारों की दरबारी व स्वार्थात्मक राजनीति, रीवा के महाराजा स्वर्गीय श्री मुलाबसिंह को अँग्रेज़ों द्वारा उनकी गद्दी से हटाया जाना और उसके बाद चुरहट, रामपुर बघेलान तथा सोहागपुर जैसे इलाकों और इलाकेदारों की राजनैतिक दाँव-पेंच की लम्बी दास्तान है। जो भी हो जब श्री अर्जुनसिंह अपने पिता को उनके जीवन के अंतिम दिनों में जेल तक छोड़ने गए थे तो उन्होंने जेल के सीखचों को पकड़कर अपने पूज्य पिता की उपस्थिति में यह कसम खाई थी कि वे चुरहट परिवार पर जो अकारण लाँछन का धब्बा लगा है उसे मिटाने के लिए अपने जीवन का हर क्षण समर्पित कर देंगे। एक नौजवान राजपूत का यह संकल्प श्री अर्जुनसिंह की सफलता का आधार है और हर विफलता के बाद नए उत्साह से पुनः संघर्ष करने की उनकी प्रवृत्ति का आधार भी।

समग्र रूप से जो भी श्री अर्जुनसिंह के राजनैतिक जीवन को समझना चाहते हैं उन्हें पहले इन तीन बातों को ध्यान में रखना होगा कि उनकी पूरी राजनीति का आधार सामन्तवाद के खिलाफ़ प्रतिक्रियाओं, औपचारिक शिक्षा के दौरान आचार्य नरेन्द्र देव के समाजवाद के प्रति आकर्षण तथा उनके वैभवशाली परिवार पर अकारण लगे लाँछन को मिटाने के संकल्प पर ही आधारित है। उन्होंने पहला चुनाव एक निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में लड़ा था। निर्दलीय विधायक के रूप में वे अपने भाषणों, सक्रियता और प्रहारों के कारण खूब चमके। एक निर्दलीय विधायक के रूप में उन्होंने अपने आदर्श पंडित नेहरू को वह प्रसिद्ध पत्र लिखा जिसकी अनेकों बार चर्चा होती है। आज की आपाधापी को देखते हुए यह कल्पना करना सम्भव नहीं है कि भारत जैसे विशाल राष्ट्र के प्रधानमंत्री को एक निर्दलीय विधायक के बहुत लम्बे पत्र को पढ़ने का और उत्तर देने का समय मिल सकता है, पर यह सच है कि पंडितजी ने उनके पत्र को पढ़ा और श्री अर्जुनसिंह को तत्काल उत्तर भी दिया। वे काँग्रेस में लिए गए और इसके बाद म.प्र. के राजनीति के भीष्म पितामह पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने उन्हें अपने दत्तक पुत्र की तरह अपना लिया। योग्यता और संकल्प तथा प्रतिबद्धता के आधार पर वह निरन्तर आगे बढ़ते गए। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्हें उनकी कुर्सी उनका सम्मान और ऐश्वर्य दिलाती है किन्तु श्री अर्जुनसिंह उन व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने हर उस पद और कुर्सी के वैभव को बढ़ाया है जिस पर वे आसीन हुए।

एक राजनीतिज्ञ के रूप में तथा उससे बढ़कर एक स्वाभाविक नेता के रूप में मेरे जैसा व्यक्ति जिसने उन्हें पिछले तीस वर्षों में क़रीब से देखा और जाना है बहुत लम्बे लेख लिख सकता है। उनके व्यक्तित्व का हर पहलू विश्लेषण और उल्लेख का रुचिकर विषय हो सकता है। एक प्रशासक के रूप में, राजनीतिज्ञ के रूप में, नेता के रूप में, पिता/पति/परिवार के मुखिया के रूप में, एक सहृदय के रूप में, एक सहृदय संगीत, साहित्य और संस्कृति प्रेमी के रूप में, उनके व्यक्तित्व के अनेक ऐसे आयाम हैं जिन पर किताबें लिखी जा सकती हैं।

अपने परिचय के प्रारम्भिक दशक में मैंने उन्हें एक प्रशासक के रूप में बहुत क़रीब से देखा। म.प्र. के मुख्यमंत्रियों में वे सफलतम मुख्यमंत्री माने जाते हैं। उनकी प्रशासनिक क्षमता के बहुत से सोपान हैं। वे न तो एक ऐसे निष्ठुर और निर्मम प्रशासक रहे हैं जो बड़ी सख़्ती से प्रशासन चलाते हैं। न ही उनकी छवि ऐसी रही जिसके अनुसार उनको एक लचर और कमज़ोर प्रशासक कहा जा सके। इन दोनों के बीच एक आदर्श प्रशासक की स्थिति बनती है जो कि न निष्ठुर होता है और न लचर। वे जानते हैं कि प्रशासन तो प्रशासक के 'इकबाल' से चलता है। प्रशासक न तो हर जगह उपस्थित हो सकता है और न ही हर निर्णय स्वतः ले सकता है। ऊपर से नीचे तक प्रशासक की जो छवि बनती है उसी के आधार पर उसका प्रशासन चलता है। वे बार-बार कहते हैं कि भारत का प्रशासन तंत्र एक मज़बूत घोड़े की तरह है जो अपने प्रशासक को ठीक उसी तरह पहचान लेता है जैसे एक घोड़ा अपने

सवार को पहचानता है। घोड़े को यदि महसूस हो कि सवार निपुण और सिद्धहस्त है तो वह सवार की आज्ञा पालन करते हुये सवार की इच्छा से चलता है पर यदि उसे यह लगने लगे कि उसका सवार कायर और कमज़ोर है तो वह घोड़ा अपनी स्वयं की इच्छा से चलता है और मौक़ा मिलते ही वह सवार को पटकने से भी नहीं चूकता। इसलिए वे सबसे पहले अपने अधीनस्थ प्रशासकों को यह महसूस करा देते हैं कि वे सवारी करना जानते हैं और उनकी इच्छा अनुसार ही प्रशासक को अपनी गति और दिशा निर्धारित करनी होगी।

इसके बाद प्रशासन उनके लिए आसान हो जाता है। वे अपनी एक अलग शैली से प्रशासन चलाते हैं। प्रशासक उनको अंधकार में नहीं रख सकता क्योंकि अपने कार्य क्षेत्र के बारे में उनके स्वत: के इतने स्वतंत्र सूचना सूत्र बन जाते हैं कि नीचे से लेकर ऊपर तक वास्तव में क्या हो रहा है इसकी जानकारी उन्हें होती है। वे स्वत: बहुत परिश्रम करते हैं। आमतौर पर उनका कार्य-दिन सोलह से अठारह घंटों का होता है। इस कारण उनकी राजनैतिक व्यस्तताओं के बावज़ूद उनके पास फाइलों का अम्बार इकट्ठा नहीं होता। वे मीटिंगों, कार्यालयीन कार्य और अपने अधिकारियों से चर्चा के लिए तमाम राजनैतिक व्यस्तताओं के बावज़ूद पर्याप्त समय निकाल लेते हैं। उनका व्यक्तिगत स्टाफ का चयन वे बड़ी सावधानी से करते हैं। परिश्रमी, निष्ठावान, ईमानदार और उनकी तीव्र गति में उनकी चाल से चाल मिलाकर चलने वाले व्यक्ति ही उनके व्यक्तिगत स्टाफ में स्थान पाते हैं। दूसरों की तरह वे इस चयन में राजनैतिक प्रतिबद्धता न देकर दक्षता को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

सहृदयता उनके प्रशासन का आधार स्तम्भ है। हर निर्णय के पीछे वे यह जरूर ध्यान में रखते हैं कि उस निर्णय का आम आदमी पर क्या असर पड़ेगा। एक बार निश्चय करने के बाद वे राजनैतिक जोखिम लेने से नहीं डरते। इसके बहुत से क्रांतिकारी व प्रशासनिक निर्णयों का मैं साक्षी रहा हूँ। उदाहरण के लिए तेंदूपत्ता व्यापार से बिचौलियों को समाप्त करने का ऐतिहासिक निर्णय है। यह सच है कि यह निर्णय उन्होंने खरसिया उपचुनाव के दौरान लिया था। तेंदूपत्ते के व्यापार में पत्ता तोड़ने वाले आदिवासी और ग़रीब लोगों के शोषण की उनको पूर्व से ही जानकारी थी। खरसिया में उन्होंने उस शोषण को बहुत नजदीक से देखा। उन्होंने देखा कि एक ओर जेठ माह की गर्मी में पत्ता तोड़ने वाले मज़दूरों को उनका पेट भरने के लिये पर्याप्त मज़दूरी नहीं मिलती थी वहीं दूसरी ओर एअर कंडिशन्ड् कमरों में रहने वाले प्रदेश के गिने-चुने 40-50 व्यापारी इसी व्यापार से करोड़ों रुपये कमाते हैं। जब उन्होंने इस नीति की घोषणा की तो उस समय पत्ता तोड़ने वाले मेहनतकश लोग मुश्किल से औसतन 10 रुपये, प्रतिदिन कमाते थे वहीं दूसरी ओर इन धन्ना सेठों की 12 से 15 लाख रुपये प्रतिदिन की आमदनी इन 40-50 दिनों के व्यापार में होती थी। इस शोषण ने खरसिया विधानसभा क्षेत्र में उनको घूर कर देखा। वहाँ एक ओर पत्ता तोड़ने वाले ग़रीब आदिवासी मतदाता थे जिनके तन पर कपड़े नहीं, पेटभर खाने के लिए अन्न नहीं और जीवन की कोई मौलिक सुविधा उपलब्ध नहीं, दूसरी तरफ़ तेंदूपत्ता व्यापार करने वाले शोषक व्यापारियों की अट्टालिकाएँ थीं जिनका आयाम और आकार प्रत्येक वर्ष बढ़ता जाता था। चुनाव प्रचार के दौरान ही इस विषमता को देखते ही उन्होंने तो निर्णय कर लिया था। मुझे याद है जब प्रचार की आख़िरी सभा को सम्बोधित करने हम लोग जा रहे थे। मैं और वे एक ही जीप में सवार थे। उन्होंने मुझे इशारा किया था कि वे तेंदूपत्ता व्यापार से बिचौलियों को पूरी तरह समाप्त करने की घोषणा उस सभा में करेंगे। उसी क्षेत्र का निवासी होने के कारण मुझे मालूम था कि यह घोषणा होते ही सभी तेंदूपत्ता व्यापारी एक होकर आने वाले दो दिनों में ज़मीन आसमान इसलिये एक कर देंगे कि श्री अर्जुनसिंह को हराया जा सके। आख़िर उस घोषणा के माध्यम से श्री अर्जुनसिंह उनकी करोड़ों की आदमनी छीनने जा रहे थे इसलिए वे क्योंकर चुप रहेंगे। वे अपनी पूरी ताक़त और पैसा उनको हराने में लगायेंगे। मैं चाहता था कि यह फैसला हो किन्तु मैं यह भी चाहता था कि इस फैसले की घोषणा खरसिया के चुनाव के बाद ही की जाए। मैंने उन्हें कहा कि वे यदि ऐसी घोषणा करते हैं तो प्रदेश के सारे तेंदूपत्ता के व्यापारी उनको हराने में कोई कसर नहीं रख छोड़ेंगे। वे अंतिम दो दिनों में पानी की तरह पैसा

बहायेंगे। खरसिया चुनाव वैसे ही कठिन दिख रहा था इसलिये वे उनका जीतना मुश्किल भी कर सकते हैं। इसलिये मैंने अपनी तरफ़ से हर तरह की कोशिश की कि वे उस दिन यह ऐतिहासिक घोषणा न करें। पर वे अपने निर्णय पर टिके रहे। उनका कहना था कि हर चीज़ राजनैतिक लाभ या हानि के दृष्टिकोण से नहीं देखी जानी चाहिए। जहाँ लाखों-करोड़ों ग़रीबों के शोषण का सवाल है वहाँ एक विधानसभा चुनाव की हार-जीत का भय उनको फ़ैसले से नहीं हटा सकेगा। मैं तेंदूपत्ता के व्यापारियों के प्रभाव और क्षमता से भिज्ञ था इसलिये आख़िर तक उनसे यही अनुरोध करता रहा कि प्रचार की अंतिम सभा के अंतिम भाषण में वे यह घोषणा न करें। वे कम बोलते हैं इसलिए उनके हाव-भाव से यह भी लगा कि शायद वे मुझसे सहमत हो गए हैं। पर जब हम लोगों के प्राथमिक भाषणों के बाद वे अपना मुख्य भाषण देने के लिये खड़े हुये तो उन्होंने पहली चर्चा तेंदूपत्ता व्यापार के विषय में ही की और अपना निर्णय पूरे प्रदेश को बता दिया। मैं और हमारे साथी चिंतित और हतप्रभ थे। हुआ भी वही जो हमें आशंका थी। प्रदेश के सभी तेंदूपत्ता व्यापारियों ने उन दो दिनों में अपनी पूरी ताक़त उनको हराने में लगा दी। जो चुनाव हम 20 से 25 हज़ार मतों से जीतने वाले थे वह बड़ी मुश्किल से 9 हज़ार मतों से ही जीत पाए। यदि वह चुनाव श्री अर्जुनसिंह हार जाते तो उनकी राजनीति ही समाप्त प्राय थी पर अपनी प्रतिबद्धता के आगे और ग़रीब आदिवासियों से शोषण को देखकर उनके दिल में जो आग लगी थी उसने इतने बड़े ख़तरे के सामने भी उनको हिलने नहीं दिया।

लिखने को तो मैं ऐसे ही न जाने कितनी घटनाओं का उल्लेख कर सकता हूँ जो हर प्रशासनिक निर्णय के पीछे उनकी सर्वहारा के भले, समता और समानता के संघर्ष के संकल्प को रेखांकित करती है। उन सब का उल्लेख तो उस पुस्तक में करना होगा जो मैं कभी न कभी उनके जीवन और कार्यशैली और सिद्धांतों पर अवश्य लिखूँगा। यदि एक वाक्य में कहना चाहूँ तो उनका हर प्रशासनिक निर्णय समाजवाद, धर्म-निरपेक्षता और सर्वहारा के कल्याण की नींव पर ही आधारित रहा है। वे राजनीति के चाणक्य हैं पर जब सिद्धांतों की बात आती है तो राजनैतिक व्यवहारिकता को भी दाँव पर लगाने से नहीं चूकते। जो लोग उनकी प्रतिबद्धता पर संदेह करते हैं उन्हें कभी वह लेख पढ़ना चाहिए जो उन्होंने अपनी "ओपन हार्ट सर्जरी" के पहले लिखा था। उस समय उन्हें यह स्पष्ट लग रहा था कि उस ऑपरेशन के बाद वे जीवित रहेंगे या नहीं यह नहीं कहा जा सकता। इसलिए उन्होंने अपने जीवन के मूल्यों और प्रतिबद्धताओं को रेखांकित करते हुए उस लेख के माध्यम से स्पष्ट कर दिया था कि उनकी प्रतिबद्धता इस राष्ट्र में सर्व-धर्म समभाव और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की संस्कृति और परम्परा को निर्वाह करने की रही है और अपनी वसीयत के रूप में उन्होंने यही चाहा था कि आने वाली पीढ़ियाँ उन सिद्धांतों को बनाए रखने में पूरी शक्ति से जुड़ जाएँ। ईश्वर से भी उन्होंने अपना जीवन न माँग कर यही माँगा था कि इस राष्ट्र में सर्व-धर्म समभाव, प्यार तथा भाईचारा बना रहे। यदि प्रतिबद्धताओं का मुखौटा राजनीति के इस चाणक्य का केवल एक सोचा-समझा दाँव ही होता तो "एसकॉर्ट अस्पताल" में शैय्या पर पड़े बेहोश होने से चंद मिनट पहले यह विचार उनकी लड़खड़ाती तूलिका से कदाचित् न लिखे जाते। मेरे जैसे अनेक शिक्षित और प्रबुद्ध लोग उनके मार्ग को इसी प्रतिबद्धता के कारण, उचित मानकर उनके साथ हैं। उनका प्रशासन भी उनकी सोची-समझी रणनीति, चिंतन और प्रतिबद्धता का ही एक प्रतिबिम्ब है।

☐ *अजीत जोगी— पूर्व आई.ए.एस., सांसद, छत्तीसगढ़ के प्रथम मुख्यमंत्री। अध्येता, ओजस्वी वक्ता, कुशल कूटनीतिज्ञ, श्री अजीत जोगी इंदौर के कलेक्टर के रूप में अधिक प्रसिद्ध रहे हैं। पिछले 2003 के लोकसभा चुनाव में छत्तीसगढ़ के महाबली नेता श्री विद्याचरण शुक्ल को पराजित कर लोक सभा सदस्य चुने गये हैं।*

काश! ये कुछ साल पहले हुए होते

विष्णुदत्त नागर
(आर्थिक विशेषज्ञ)

ऐसा लगता है कि पिछले चार वर्षों के मध्यप्रदेश के आर्थिक विकास ने संत कवि गोस्वामी तुलसीदास की उक्ति– 'संत विटप सरिता गिरि धरनी, पर हित हेतु सबनि की करनी'– को सार्थक करने की दिशा में मज़बूत क़दम उठाये हैं। पिछले चार वर्ष विकास के चार स्तम्भों-विटप, सरिता, गिरि और धरनी ने न केवल वर्तमान की आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ की बल्कि भविष्य के लिए आशा भी बधाई है। अनेकों वर्षों से मध्यप्रदेश की विपुल खनिज और वन सम्पदाओं के व्यवस्थित दोहन की चर्चा तो की जाती थी पर दोहन को वैज्ञानिक आधार नहीं मिल रहा था। इन चार वर्षों में प्रदेश की धरती और पहाड़ों में छिपे पदार्थों का अधिक उत्खनन ही नहीं किया गया बल्कि गहन सर्वेक्षण और अनुसंधान का संबल लेकर अनेकों छिपी सम्पदाओं का पता भी लगाया।

पिछले चार वर्षों की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रमुख उपलब्धि आर्थिक विकास की बुनियादी आवश्यकताओं का विकास है। अब तक आर्थिक विकास तो हो रहा था पर विद्युत, सिंचाई, सड़क, पानी, यातायात जैसी बुनियादी आवश्यकताओं के प्रसार प्रभाव को अनदेखा किया जा रहा था। सिंचाई, विद्युत एवं यातायात आवश्यकताएँ प्रसारक हैं, प्रचारक नहीं। पिछले चार वर्षों ने इन मूल आवश्यकताओं को प्रचारक श्रेणी से निकाल कर प्रसारण श्रेणी में ला दिया। सच तो यह है कि राज्य की छठी योजना के पिछले चार वर्ष मूल संरचना योजना के विकास वर्ष थे। अब यह आशा पक्की बंध गई है कि मूल संरचना की बुनियादी आवश्यकताओं के प्रसार से राज्य औद्योगिक और कृषि विकास में अपनी मंज़िल की ओर तीव्र गति से बढ़ेगा। राज्य की 66 प्रतिशत आबादी को बिजली उपलब्धि और 20 प्रतिशत से अधिक सिंचाई क्षेत्रफल की सफलताओं को निमंत्रण दे रही है। इन बुनियादी आवश्यकताओं के संतुलित और व्यवस्थित विकास ने एक ओर विकेन्द्रित औद्योगीकरण की आशा बंधाई है तो दूसरी ओर सकल घरेलू आय की वृद्धि में अपनी ओर से 2 प्रतिशत से 3 प्रतिशत की आर्थिक वृद्धि का योगदान भी सुनिश्चित किया है। अब उद्योग, कृषि, सेवाओं इत्यादि का कर्त्तव्य है कि इस विकास यज्ञ में बुनियादी संरचनाओं के अपने योगदान की सहायता दें। आज तो नहीं पर भविष्य में जब भी आज का इतिहास लिखा जायगा तब इन चार वर्षों की उपलब्धियों के रूप में प्रमुख दो बातों का उल्लेख भी होगा। एक तो विद्युत और उर्वरक उत्पादन हेतु भारी उद्योगों की स्थापना का श्रीगणेश और दूसरा राज्य में विकेन्द्रित लघु उद्योगों का विस्तार। पिछली 31 मई 1984 को प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने गुना ज़िले में उर्वरक उत्पादन के जिस बड़े कारख़ाने के निर्माण का शुभारम्भ किया है वह इन चार वर्षों की प्रमुख औद्योगिक उपलब्धियों में से एक है। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि उद्योगों का फैलाव ऐसे क्षेत्रों में हो रहा है जो अब तक पिछड़े क्षेत्र थे। इन उद्योगों की स्थापना से पिछड़े क्षेत्रों का विकास तो होगा ही साथ ही आय और रोज़गार वृद्धि के अनेक अवसर भी उपलब्ध होंगे। इनके दीर्घकालीन प्रभाव इस शताब्दी के अंत तक देखने को मिलेंगे और तब इतिहासकार इनका वास्तविक मूल्यांकन कर सकेंगे।

इन चार वर्षों की कहानी का एक दिलचस्प अध्याय बदलते हुए निवेश स्वरूपों का भी है। अब तक मध्यप्रदेश में ऐसे उद्योगों की दौड़ लगी हुई थी जो मूलत: शोषक अधिक पोषक कम थे। ये उद्योग ऐसे क्षेत्र में थे जहाँ के पानी, बिजली इत्यादि पदार्थों का भोग तो लगा लेते थे पर राज्य की आय, रोज़गार वृद्धि या सहायक निवेश और अन्य मितव्यताओं को जन्म नहीं देते थे या नगण्य रूप में देते थे। मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह की सरकार विशेष रूप से बधाई की पात्र है कि इन चार वर्षों में उन्होंने निवेश का स्वरूप ही बदल दिया। पोषक उद्योगों का विस्तार और आय और रोज़गार में वृद्धि आर्थिक विकास का उल्लेखनीय बिन्दु रहा।

पिछले चार वर्षों ने सरकार के सामने चुनौतियाँ भी रखीं और अवसर भी। प्रथम दो वर्ष सूखे और राहत के वर्ष थे। इन दो वर्षों ने अर्थ-व्यवस्था पर अनुत्पादक ख़र्च का बहुत भार डाला। बाद में दो वर्षों पर अनुत्पादक ख़र्च का प्रभाव तो पड़ा फिर भी घरेलू आय में 7.7 प्रतिशत वृद्धि और प्रति व्यक्ति आय में 5.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। सुखद बात तो यह रही कि राज्य का वित्तीय अनुशासन ठीक रहा है और मध्यप्रदेश ही देश के कुछ राज्यों में ऐसा राज्य था जो अपने आपको ओवरड्राफ्ट के भार से मुक्त कर सका। यहाँ पर प्रदेश के वित्तमंत्री के बजट भाषण का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा जिसमें उन्होंने कहा कि दक्षतापूर्ण वित्तीय प्रशासन किसी राज्य में सुयोग्य प्रबंध की मूलभूत आवश्यकता होती है। उन्होंने कहा कि सभी विकासशील अर्थ-व्यवस्थाओं के विरुद्ध सर्वाधिक तीखी आलोचना यह की जाती है कि उनके अल्प संसाधनों का दक्षतापूर्ण उपयोग, विकास की सद्गति और परिणामत: संसाधनों के निम्न स्तर की उपलब्धि आदि का दूषित चक्र तैयार हो जाता है। इस दूषित चक्र को तोड़ने की ओर एक ऐसा तरीक़ा निकालने की सही तौर पर कोशिश की है जिससे न केवल ज़्यादा से ज़्यादा संसाधन जुटाये जा सकेंगे वरन् जनकल्याण के कार्य में उनका सर्वाधिक दक्षता से उपयोग भी हो सका है। सरकार ने सचमुच ही राज्य की अर्थ-व्यवस्था को कम साधन तथा कम जनकल्याण के दूषित चक्र से ऊपर लाने में प्रशंसनीय कार्य किया है।

प्रधानमंत्री के नये बीस सूत्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत राज्य ने सामाजिक न्याय और अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए प्रसारक प्रयत्न किये हैं। विश्वबैंक द्वारा शुष्क खेती के विकास के लिए देश में जो चार योजनाएँ स्वीकार की गई हैं उनमें से एक परियोजना मध्यप्रदेश को मिली है जिसके अंतर्गत सीहोर और भोपाल जिलों में बत्तीस हज़ार हैक्टेयर्स पर शुष्क खेती का विकास छोटे किसानों के लिए विशेष रूप से लाभप्रद होगा। इन प्रयत्नों से निश्चित ही ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों को ग़रीबी रेखा लाँघने में सहायता मिलेगी। ग्रामीण रोज़गार बढ़ाने हेतु अगले वर्ष की 10 परियोजनाएँ उत्साहवर्धक होंगी। पिछले वर्ष ही दो करोड़ सत्तावन लाख मानव दिवस की रोज़गार उपलब्धि ने केवल अपने लक्ष्यों को ही नहीं लाँघा बल्कि रोज़गार प्रसार की नई केन्द्रीय योजनाओं को भी निमंत्रण दिया। 2800 व्यापारिक तथा सहकारी बैंकों द्वारा अधिकाधिक साख प्रसार के आँकड़े वित्तीय सफलताओं को तो बतलायेंगे पर भौतिक उपलब्धियाँ मिलने में कुछ देरी लगेगी। हाल ही में सरकार ने प्राथमिक शिक्षा और लड़कियों को सभी स्तर पर शिक्षा प्रसार में जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं वे शैक्षणिक क्रांति का मज़बूत आधार रखने में सहायक होंगे। इतिहासकार इन चार वर्षों को विकास के चार स्तम्भों—विटप, सरिता, गिरि और धरनी-के पर हित प्रसारक के रूप में लिखेंगे। बुनियादी आवश्यकताएँ, सिंचाई, विद्युत उत्पादन, यातायात और संचार एवं शिक्षा प्रसार इन चार स्तम्भों को पक्की नींव प्रदान करेंगे। छठी योजना ने तो नींव डाल दी और स्तम्भ खड़े कर दिये अब बारी है सातवीं योजना की उस पर ख़ुशहाली की मज़बूत इमारत बनाने की। इन उपलब्धियों के बीच हमें कुछ सावधानियाँ भी नहीं भूलना चाहिए। एक तो साधनों के विकास की तलाश में मूल वित्तीय साधनों के स्रोत सदा के लिये समाप्त नहीं किये जाने चाहिये। दूसरे सिंचाई व्यवस्था के रख-रखाव

और राजस्व वसूली, विशेषकर बड़े किसानों पर पूरा नियंत्रण रखा जाना चाहिये। तीसरे सार्वजनिक उपक्रमों पर उपयोगिताओं विशेषकर विद्युत बोर्ड और परिवहन निगम से आय-वृद्धि की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। चौथे, राज्य स्तर पर योजना व्यय और अनुत्पादक व्ययों पर नियंत्रण रखने हेतु एक व्यय आयोग का गठन किया जाना चाहिये जो समय-समय पर व्यय विश्लेषण कर सकेगा। पाँचवें विद्युत, सिंचाई, यातायात तथा वृक्षारोपण इत्यादि की स्थापित क्षमताओं एवं सम्भावनाओं का पूरा उपयोग किया जाना चाहिए।

☐ *विष्णुदत्त नागर— प्रो. विष्णुदत्त नागर मध्यप्रदेश के चोटी के विद्वान्, आर्थिक विश्लेषक, बजट विशेषज्ञ प्रदेश की योजनाओं पर स्पष्ट-तीखी टिपण्णीकार के रूप में जाने जाते हैं। आपके लेखन में गंभीर अध्ययन और विश्लेषण की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। दो दशक पूर्व लिखा यह आलेख म.प्र. की तत्कालीन दशा और दिशा को स्पष्ट करता है।*

CAREER COLLEGE
ACC.No.....
Book No.....
Date.....
B.H.E.L. BHOPAL
26921

श्री अर्जुनसिंह : एक राजनीतिक चिंतक

ललित श्रीवास्तव
(पूर्व महामंत्री, म.प्र. काँग्रेस कमेटी-ई)

मुझे श्री अर्जुनसिंह के नज़दीक रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। विगत अनेक वर्षों से मुझे उनका सानिध्य, उन्हें बहुत क़रीब से देखने, सुनने और 'पढ़ने' के अनेक अवसर मिले हैं इसलिये मैं यह कह सकता हूँ कि श्री अर्जुनसिंह मानवीय गुणों से ओतप्रोत ऐसे संवेदनशील नेता हैं जिन्हें मनुष्य के अन्तर्मन की गहरी पैठ है और जो अनुभूति उन्होंने प्राप्त की है उसे बहुत ही सजीवता के साथ अभिव्यक्त भी किया है। श्री अर्जुनसिंह की एक बहुत लम्बी राजनीतिक यात्रा है जहाँ वे काँग्रेस संगठन के एक साधारण सदस्य से लेकर म.प्र. के सबसे गौरवशाली पद मुख्यमंत्री तक पहुँचे। इस राजनीतिक जीवन की ऊहा-पोह में भी वे यदि सर्वाधिक मुखरित हुए हैं तो सर्वहारा वर्ग के उन्नयन के लिए। उन्होंने अद्वितीय-अभूतपूर्व और ऐतिहासिक कार्य किये हैं। झुग्गी झोपड़ी में रहने वाले लाखों ग़रीबों को एक मुश्त ज़मीन, जिस पर वह रह रहे हों, उसका मालिकाना हक़ देना और उसे सुव्यवस्थित करने के लिए एक बत्ती कनेक्शन देना इतना बड़ा कार्य है जिसका उल्लेख विश्व के इतिहास में भी नहीं मिलता कि एक साथ इतने ग़रीबों को आवास के लिए शासकीय पट्टा उपलब्ध कराना और इस बात का ध्यान रखना कि वो आवासीय पट्टा शासकीय अधिकारी ग़रीबों को उनकी देहरी पर पहुँचकर दें। उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि इस पट्टे को प्राप्त करने में कोई अड़चन न हो इसलिये उन्होंने कहा भी कि हम इस कार्य के लिए न किसी वकील, न किसी दलील और न किसी अपील की सुनवाई करेंगे। ऐसे अनेक संवेदनशील और कल्याणकारी कार्य गिनाये जा सकते हैं। उन्होंने पीड़ित मानवता को समझा और उन्होंने उनके दु:ख-दर्द को दूर करने के लिये ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया।

यह तो बीहड़ राजनीति का एक पड़ाव है इसी तरह श्री अर्जुनसिंह ने अपने देश, अपनी पार्टी और अपने नेता के प्रति सदैव समर्पण की भावना रखी। अनेक ऐसे अवसर आये जब श्री अर्जुनसिंह को अपने समर्पण और अपनी निष्ठा की अग्नि परीक्षा भी देनी पड़ी। ऐसे अवसर तो राजनीति में निर्मित होते ही हैं, जब शतरंज की बिसात पर एक के बाद एक मोहरे पिटते चले जाते हैं तब अपनी बुद्धि और कौशल से ही ऐसे राजनीतिक वातावरण से बाहर निकला जा सकता है और ऐसा हुआ है। वह दिन मुझे अच्छी तरह याद है जब श्री अर्जुनसिंह के नेतृत्व में, जब वे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे, तब जनता ने 1984 के लोकसभा चुनाव में मध्यप्रदेश की 40 की 40 सीटें काँग्रेस की झोली में डाल दी थीं और चुनाव को उन्होंने ऐतिहासिक बना दिया था। इतनी बड़ी सफलता के बाद चारों ओर से श्री अर्जुनसिंह की वाह-वाही इसलिये भी और हो रही थी कि उन्होंने विधानसभा में काँग्रेस को पूर्ण बहुमत दिलाया। वे पुन: मुख्यमंत्री बने लेकिन अपने नेता राजीवजी के आदेश के अनुसार आठ दिन के अंदर ही उन्हें धधकते हुए पंजाब की ज्वलंत समस्याओं को सुलझाने के लिए पंजाब का राज्यपाल बनाया गया। यह श्री अर्जुनसिंह की राजनीतिक यात्रा का सबसे महत्त्वपूर्ण और दुर्गम पड़ाव था जहाँ राजनीति के बड़े-बड़े पण्डित अनेक तरह की चर्चाएँ कर रहे थे और ऐसी भविष्यवाणियाँ भी हो रही थीं कि श्री अर्जुनसिंह एक बड़ी कूटनीतिज्ञ साजिश के शिकार हुए हैं। अपने स्वभाव

कर दिया है कि उनके लिखे हुए अंश साहित्य की अमूल धरोहर हैं। 1980 जबलपुर में प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन में श्री अर्जुनसिंह ने जो भाषण दिया था वह कल भी प्रासंगिक था, आज भी प्रासंगिक है, और कल भी प्रासंगिक और शाश्वत रहेगा। साहित्य मनीषी श्री अर्जुनसिंह, विचारक श्री अर्जुनसिंह और राजनेता श्री अर्जुनसिंह– वह श्री अर्जुनसिंह हैं जो देश की एकता और अखण्डता एवं काँग्रेस पार्टी के मूलभूत सिद्धांतों धर्म निरपेक्षता, समाजवाद और लोकतंत्र की रक्षार्थ एक कर्मवीर योद्धा की तरह संघर्षशील हैं। श्री अर्जुनसिंह के द्वारा साहित्य और संस्कृति के पक्ष में अनेक उल्लेखनीय कार्य किये गये हैं जो अपने आप में इतने महान हैं कि उन पर पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। जैसे **भारत-भवन** और विश्वविद्यालयों में साहित्यकारों के नाम से अनेक पीठों की स्थापना करना। सभी भाषाओं की समृद्धि उनके उन्नयन और अनुसंधान के लिए अकादमी स्थापित करना आदि प्रमुख हैं। साहित्यकारों के प्रति उनके हृदय में सदैव सम्मान और अनुराग बना रहा है।

अपनी साहित्यिक अभिरुचि और गंभीर चिंतन के कारण श्री अर्जुनसिंह देश की वर्तमान राजनीति में धार्मिक उन्माद के कारण बहुत चिंतित हैं और एक जागरूक नेता की तरह वे इस विषम परिस्थिति में मूकदर्शक बनकर नहीं रह सकते, इसीलिये उन्होंने यह भाँप लिया कि यदि आज इन साम्प्रदायिक शक्तियों से संघर्ष नहीं किया गया तो देश का उज्जवल भविष्य खतरे में पड़ सकता है। तभी उन्होंने तिरुपति के काँग्रेस महाधिवेशन में राजनीतिक प्रस्ताव में काँग्रेस के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को बरकरार रखने, साम्प्रदायिक शक्तियों का डटकर मुकाबला करने से लेकर प्रधानमंत्री श्री पी.व्ही. नरसिंहराव के राजनीतिक सलाहकार श्री जितेन्द्र प्रसाद को लिखा पत्र इस बात के गवाह हैं कि वे सच्चे हृदय से लम्बित समस्याओं का निराकरण चाहते हैं। उनका वह पत्र काँग्रेस का महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है।

☐ *ललित श्रीवास्तव— शिक्षक, कवि, लेखक, पत्रकार तथा विगत दो दशक राजनीति में चर्चित रहे श्री ललित श्रीवास्तव आज हमारे बीच नहीं है। आप मध्यप्रदेश काँग्रेस के महामंत्री तथा कुछ वर्ष प्रदेश काँग्रेस प्रवक्ता भी रहे हैं। मधुरभाषी, मिलनसार श्री ललित श्रीवास्तव राजीव गाँधी शिक्षा मिशन की प्रादेशिक कार्यसमिति में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा मनोनीत सदस्य भी रहे थे।*

बहुआयामी व्यक्तित्व और प्रेरक नेता

दीपचन्द यादव

(पूर्व महापौर, नगरपालिक, निगम, भोपाल, महामंत्री, म.प्र.काँग्रेस कमेटी)

जीवन का कोई लक्ष्य निर्धारित करना और इसकी प्राप्ति के लिए सार्थक संघर्ष करना स्वयं में एक उपलब्धि है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्म करने के कौशल को ही योग कहा है। (योग: कर्मसु कौशलम्) राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी गीता से प्रेरणा लेकर स्वाधीनता आंदोलन का परिचालन और नेतृत्व किया था। गाँधीजी की यह अद्भुत नेतृत्व क्षमता ही थी कि उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के नेताओं और कार्यकर्ताओं के मन और मस्तिष्क में कर्म करने की, अपने कर्त्तव्य को पूरी निष्ठा से सम्पन्न करने की भावना भर दी थी। कर्त्तव्य के प्रति समग्र निष्ठा और कर्म करते रहने की अद्भुत क्षमता के समन्वित प्रतीक का नाम ही श्री अर्जुनसिंह है, जिनसे देश के लाखों-जन, खासतौर से काँग्रेस की युवा पीढ़ी प्रेरणा लेती है।

अर्जुनसिंहजी ने राजनीति के कण्टकपूर्ण पथ पर जिस दिन क़दम रखा था, उन्हें उन तमाम घुमावदार मोड़ों का एहसास था जिनसे उन्हें रूबरू होना था। उन्हें इस बात का अन्दाज़ भी था कि उन्हें इस भारत राष्ट्र की सेवा करनी है जिसमें अनेक धर्म, अनेक जातियाँ, अनेक भाषाएँ, अनेक सम्प्रदाय और अनेक आचार-विचार वाले समुदाय रहते हैं। जिस व्यक्ति के सामने एक विराट उद्देश्य रहता है, इसे उन तमाम परिधियों को लाँघना होता है जो व्यक्तित्व को बौना बनाती हैं। अर्जुनसिंहजी ने ऐसे तमाम मोड़ों पर संकीर्णतावादी विचारधारा से अपनी विशिष्ट शैली में संघर्ष किया। सिद्धांतों के विवाद में उन्होंने व्यक्तियों को महत्त्व नहीं दिया और राजनीतिक प्रतिस्पर्धा को व्यक्तिगत कटुता से दूर रखा। इसीलिए उन्हें अपने राजनीतिक विरोधियों से भी उच्च स्तरीय व्यक्तिगत और पारिवारिक संबंधों के साथ जीते देखा जा सकता है। इस तरह के संबंध ने कई बार उनके लिए राजनीतिक उलझनें खड़ी की हैं, पर इससे विचलित होते कभी नहीं देखा गया।

अर्जुनसिंहजी के व्यक्तित्व पर सबसे ज़्यादा प्रभाव पंडित जवाहरलाल नेहरू का है। लगता है उन्होंने नेहरूजी को पढ़ा ही नहीं, आत्मसात किया है। अर्जुनसिंहजी की धर्मनिरपेक्षता में गहरी आस्था, जातिवाद और साम्प्रदायिकता का घोर विरोध, देशप्रेम और अन्तर्राष्ट्रीय समझ में नेहरूजी का चिन्तन देखा जा सकता है। पंडितजी के समान ही प्रजातांत्रिक मूल्यों में गहरी आस्था, काँग्रेस पार्टी के आदर्शों पर गहरी आस्था और देश के भविष्य निर्माण की निरन्तर चिन्ता अर्जुनसिंहजी में भी देखी जा सकती है। विश्व साहित्य और मानव-मूल्यों से उसके सरोकारों का जैसा अध्ययन अर्जुनसिंहजी में है वैसा वर्तमान नेताओं में कम ही दिखाई पड़ता है। उनकी सांस्कृतिक चेतना को भारत-भवन का आकार मिला और विश्व के श्रेष्ठतम कलाकारों ने इसकी प्रशंसा की। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गाँधी ने तो भारत-भवन देखने के बाद भोपाल को देश की सांस्कृतिक राजधानी ही कह दिया था। कला और संस्कृति के क्षेत्र में कोई हस्तक्षेप न कर अर्जुनसिंहजी ने सिद्ध कर दिया कि वे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के कितने बड़े पक्षधर हैं।

इस संदर्भ में प्रेस के साथ अर्जुनसिंहजी के रिश्तों का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। अनेक लोगों को पत्रकारों

से उनके मधुर रिश्ते देखकर आश्चर्य ही नहीं ईर्ष्या भी होती है। प्रजातांत्रिक समाज में प्रेस के महत्त्व को अर्जुनसिंहजी ने समझा ही नहीं, माना भी है। वे इसे जन-भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम समझते हैं। इसीलिए प्रतिकूल टिप्पणी करने वाले पत्रकारों के साथ भी उनका संवाद उतना ही स्नेहपूर्ण होता है जैसा अनुकूल टिप्पणी करने वालों के साथ। प्रतिकूल टिप्पणियों को वे आत्म-विश्लेषण का माध्यम बना लेते हैं और जीवन्त संवाद के द्वारा अपने तर्क भी प्रस्तुत करते हैं। पत्रकारों को यह खुला संवाद रुचिकर लगता है इसीलिए वे अर्जुनसिंहजी के साथ नैकट्य स्थापित कर लेते हैं। स्वर्गीय जवाहरलालजी ने एक बार कहा था कि प्रेस की स्वतंत्रता पर किसी तरह आँच नहीं आने दी जायगी। अर्जुनसिंहजी के पूरे राजनीतिक जीवन की समीक्षा करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रेस की स्वाधीनता को उन्होंने सर्वोच्च महत्त्व दिया। उनके प्रखरतम विरोधी पत्रकार भी यह स्वीकार करते हैं कि अर्जुनसिंहजी प्रेस को न केवल सम्मान देते हैं बल्कि एक जीवन्त संवाद स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

दृष्टि की इस व्यापकता के कारण ही अर्जुनसिंहजी के निकट आने पर उनके विरोधी भी उनकी सहज संवेदनशीलता से अभिभूत हो उठते हैं। उनके भीतर जो मानवीय गुण छिपे हैं उनका ज्ञान होते ही वे धारणाएँ निर्मूल हो जाती हैं जो अर्जुनसिंहजी से दूरी होने पर बना ली जाती हैं। आज देश का कोई विरल नेता ही होगा जिसे उसके समर्थक इतने प्यार और सम्मान से देखते हैं। काँग्रेस पार्टी में उनके प्रशंसकों की बड़ी संख्या है, पर राजनीति से हटकर सांस्कृतिक, सामाजिक, व्यावसायिक गतिविधियों से जुड़े लोग भी बहुत बड़ी संख्या में उनके प्रशंसक और समर्थक हैं। इसका कारण केवल यही है कि वे धैर्यपूर्वक सबकी समस्याएँ सुनते हैं और यदि उसकी वास्तविकता से सहमत हो जाते हैं तो उसका समाधान करने का यथाशक्ति प्रयास करते हैं। उनकी संवेदनशीलता कभी-कभी भावुकता की सीमा को छूती दिखाई देती है। अर्जुनसिंहजी के इस स्वभाव का कुछ स्वार्थी तत्वों ने कभी-कभी दुरुपयोग भी किया है। पर उनकी मान्यता रही है कि पीड़ित व्यक्ति को राहत और ज़रूरतमन्द को सहायता देना किसी भी कल्याणकारी राज्य का प्राथमिक कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य निर्वहन में वे कभी विचलित नहीं होते। श्री अर्जुनसिंह का हृदय उदार है, दृष्टिकोण व्यापक है और कर्म के प्रति निष्कामता अलौकिक गुण है। एक नेता के रूप में उनकी व्यापक मान्यता के पीछे भी यही गुण है। कार्यकर्त्ता महसूस करते हैं कि विपत्ति के समय एक वरद्हस्त उन्हें प्राप्त है। अर्जुनसिंहजी तक पहुँचने और उनसे अपनी बात कहने में किसी भी कार्यकर्त्ता को कोई हिचक नहीं होती। श्री सिंह कार्यकर्त्ताओं को अपने परिवार के सदस्य की भाँति स्नेह देते हैं। वैयक्तिक स्तर पर नेता और कार्यकर्त्ता के बीच संबंध सूत्रों का दृश्य आज के वातावरण में एक अजूबा ही है।

भारतीय जन-जीवन का मानस मूलत: उदार है। संकीर्णता के लिए भारतीयों के हृदय में जगह नहीं है। प्रेम, करुणा, धैर्य और संयम भारतीय प्रकृति के मूलभूत तत्त्व हैं। भारत में ही वसुधैव कुटुम्बकम् की कल्पना की गई थी। भारत में रचे शास्त्रों में लोक कल्याण की बात कही गई। श्री अर्जुनसिंह की मानवीय दृष्टि और उदात्त सोच देखने के बाद नि:संकोच कहा जा सकता है कि वे भारतीय संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि हैं। संस्कृति उनके विचार और व्यवहार में रची और बसी है। मध्यप्रदेश के सर्वाधिक पिछड़े क्षेत्र से उभरकर राष्ट्रीय राजनीति के नक्शे में श्री सिंह के व्यक्तित्व का उभार उनके आंतरिक गुणों की अभिव्यक्ति और जनता द्वारा उसकी स्वीकृति की कहानी है। प्रतिभा की पहचान तो सरल है पर उसे जन-मान्यता तभी प्राप्त होती है जब जन-आकांक्षाओं के साथ उसका तादात्मय स्थापित हो जाता है। इसमें थोड़ा-सा भी असंतुलन किसी भी नेता को हाशिये में फेंक देता है। अर्जुनसिंहजी ने नेता और जनता की आकांक्षाओं के बीच संतुलन न केवल बनाये रखा, बल्कि उसके आधार को निरन्तर बढ़ाया। ऐसा लगता है कि यह संतुलन, यह समन्वय उन्हें भारत की ऐतिहासिक परम्परा के गहन अध्ययन से सहज ही प्राप्त हुआ है। वे आस्थावादी हैं लेकिन दुनिया के प्रगतिशील विचारों को स्वीकार करने में उन्हें कोई झिझक नहीं होती। वे सामन्ती परिवार में

जन्म लेकर भी समाजवादी विचारों से प्रभावित हैं। वे पार्टी के सिद्धांतों के प्रति वफ़ादारी में और नेता के प्रति निष्ठा में भेद नहीं करते, लेकिन अपने विचारों को साफ़ तौर पर प्रस्तुत कर देने की उनकी अपनी शैली है। अर्जुनसिंहजी को रोमिया-रोलों के इस विचार ने काफ़ी प्रभावित किया है कि अपने मकान की खिड़कियाँ पूरी तरह खोल कर रखो ताकि ताज़ी हवा के झोंके आपको नई जीवनी-शक्ति देते रहें। यही भारतीय चिन्तन का भी निचोड़ है। अर्जुनसिंहजी की इस भारतीय चिन्तन शैली से यदि आम जनता तादात्म्य स्थापित कर लेती है तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। एक झुग्गी झोपड़ी में रहने वाला ग़रीब इंसान और सुदूर गाँव में रहने वाला ग़रीब किसान श्री सिंह की धड़कनों में अपनी आकांक्षाओं की गूँज सुनता है। आम आदमी में और जनता के ग़रीब वर्ग में उनकी लोकप्रियता का यही राज है।

श्री अर्जुनसिंह के राजनीतिक व्यक्तित्व और कृतित्व पर विस्तार से लिखा जा सकता है। विधायक से मंत्री फिर मुख्यमंत्री, फिर राज्यपाल, फिर काँग्रेस के उपाध्यक्ष, फिर केन्द्रीय मंत्री के रूप में उनकी कार्यशैली और सफलता का विस्तृत विवेचन राजनीति के छात्रों के लिए रोचक शोध का विषय हो सकता है। मुझ जैसे लोग जो उनके समर्थक ही नहीं, अनुयायी हैं यदि इस संबंध में लिखेंगे तो उसे मात्र प्रशस्ति-गान समझने की भूल की जा सकती है। यह भी सम्भव है कि मुझ जैसे लोगों में इस पूरी राजनीतिक यात्रा का तटस्थ विश्लेषण और वस्तु-परक मूल्यांकन करने में चूक हो जाय। क्योंकि यह स्वीकार करने से मुझे कोई हिचक नहीं कि हम जैसे हज़ारों कार्यकर्त्ता उनके राजनीतिक आभा मण्डल की छाया में ही विकसित हुए हैं और उनसे बेहद प्रभावित हैं। उनके व्यक्तित्व ने हमारे सोचने और कार्य करने के तरीक़े को दिशा दी है, मार्गदर्शन दिया है। किसी ने व्यक्तित्व को परिभाषित करते हुए तीन तत्वों का उल्लेख किया था। व्यक्तित्व को समग्रता प्रदान करने वाले तीन तत्व हैं– साहसिकता, वेशभूषा, संबोधन की शैली ये तीनों तत्व अर्जुनसिंहजी में अपनी समग्रता के साथ मौजूद हैं। इसलिए उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाना हम जैसे लोगों के लिए नितांत स्वाभाविक है। परन्तु इस व्यक्तित्व ने अपने प्रभाव से जो राजनीतिक प्रशिक्षण मुझ जैसे हज़ारों कार्यकर्त्ताओं को दिया उसका उल्लेख करना आवश्यक है।

पार्टी कार्यकर्त्ता के नाते अनुशासन का महत्व वचन से नहीं, कर्म से सिखाने के लिए पूरी पार्टी उनकी कृतज्ञ रहेगी। एक दौर ऐसा आया था जब अचानक ही उन्हें मुख्यमंत्री पद से त्याग-पत्र देने को कहा गया। भोपाल में उनके समर्थकों में बेचैनी फैली और वे काँग्रेस हायकमान के फ़ैसले पर अपना क्षोभ सार्वजनिक रूप से प्रकट करने लगे। श्री सिंह ने अपनी बिदाई के समय कहा था– "मैं पार्टी का अनुशासित सिपाही हूँ। मुझे आदरणीय राजीवजी जो भी दायित्व सौंपेंगे पूरी निष्ठा से उसे निभाऊँगा।" इस एक वाक्य ने सभी कार्यकर्त्ताओं के व्यवहार को संयमित कर दिया था। पार्टी के प्रति और नेता के प्रति वफ़ादारी का यह सबक हमारे जीवन का अंग बना।

प्रदेश के मुख्यमंत्री के नाते उन्होंने झुग्गी-झोपड़ी वासियों को पट्टे देने का निर्णय जब घोषित किया तो कुछ काँग्रेसजन भी विरोध का स्वर गुँजाते दिखाई दिये। तभी उन्होंने एक बत्ती कनेक्शन की घोषणा भी कर दी। हम जैसे अनेक कार्यकर्त्ताओं को यह समझने में देर नहीं लगी कि समाज के सबसे उपेक्षित वर्ग सत्ता में बैठे दल की प्राथमिकता सूची में होने चाहिए।

प्रदेशाध्यक्ष के रूप में श्री सिंह का संगठन कौशल देखकर लोग आश्चर्यचकित थे। संगठन में कार्यकर्त्ताओं को कैसे सक्रिय किया जाता है, छोटे कार्यकर्त्ताओं को कैसे प्रोत्साहित किया जाता है और पार्टी में अपने से भिन्न राय रखने वालों को कैसे साथ रखा जाता है यह बातें सीखने योग्य थीं। राजनीतिक कार्यकर्त्ता को सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करने की, सार्वजनिक हित के प्रश्नों पर सजग रहने की, संगठन को निरन्तर सक्रिय बनाये रखने की प्रेरणा देने में श्री सिंह ने जो कुछ किया, वह ताज़ा इतिहास है। वे पार्टी संगठन के कुशल सारथी और प्रदेश-

प्रशासन के कुशल चालक के रूप में अपनी क्षमताओं को अनेक बार प्रगट कर चुके हैं। प्रत्येक सक्रिय कार्यकर्त्ता के योग्य काम देने की उनकी प्रतिभा अद्‌भुत है और इस सारी सक्रियता के बीच अध्ययन करते रहने की उनकी प्रकृति, व्यक्तिगत संबंधों का निर्वाह करने का उनका स्वभाव, कार्यकर्त्ताओं की पीड़ा समझने की उनकी संवेदनशीलता, अपने विरोधियों के प्रति दिखाई जाने वाली उनकी उदारता अर्जुनसिंहजी को एक वरेण्य व्यक्तित्व की गरिमा से युक्त करते हैं। हमारा सौभाग्य है कि हमें उनके कुशल नेतृत्व और मार्गदर्शन में कार्य करने का अवसर मिला।

☐ *दीपचन्द यादव— भोपाल के पूर्व महापौर, प्रतिष्ठित एडवोकेट, सक्रिया राजनयिक श्री दीपचन्द यादव चार दशक से समाज सेवा और राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय हैं। सम्प्रतिः मध्यप्रदेश काँग्रेस कमेटी के प्रभावशाली महामंत्री हैं। प्रखर वक्ता, सम-सामयिक विषयों पर निरन्तर चिंतन-लेखन एवं गतिशील जनसम्पर्क द्वारा शुभचिंतकों के विराट समूह का सम्मान प्राप्त सफल संगठनकर्ता।*

अनवरत संघर्ष की धारा

अशोक तरंगी
(वरिष्ठ पत्रकार)

पहली बार जब मेरी अर्जुनसिंहजी से मुलाक़ात हुई, तब वे एक संघर्ष में ही जुटे हुए थे। 1967 के घटनापूर्ण वर्ष की बात है। उस समय वे पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र के मंत्रिमण्डल में थे। विधानसभा चुनाव आ गया था और चुरहट विधानसभा क्षेत्र से श्री चन्द्रप्रताप तिवारी उनके मुक़ाबले में खड़े हुए थे और उन दिनों ही मैं अर्जुनसिंहजी को हराने के लिए ख़ास तौर से भोपाल से गया था। एक पत्रकार के रूप में उन पर जितने प्रहार किये जा सकते थे, उन सबका पुलिंदा लिये मैं रीवा गया था और संघर्ष के उन कठिन दिनों में ही पहली बार अर्जुनसिंहजी से मुलाक़ात हुई थी।

चुनाव के दिनों का वह उत्तेजनापूर्ण वातावरण, कौनसे हथकंडे नहीं अपनाये जा रहे थे, चुनाव जीतने के लिये। मैं उन दिनों अर्जुनसिंहजी की चुनाव सभाओं में उनको सुनने के लिये इसलिये जाता था कि उनके कथनों से ही उन पर प्रहार किया जा सके। मन में कितनी धारणाएँ लिये गया था— सामंतशाही के प्रतीक, जातिवाद को प्रश्रय देने वाले, अपनी ताक़त पर क्षेत्र के लोगों को आतंकित करने वाले, ठाकुरवाद के प्रमुख सेनानी, पैसे के बलबूते पर राजनीति करने वाले अर्जुनसिंहजी।

लेकिन ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, सारे भरम टूटते गये और लगा कि जैसे इस व्यक्ति के ख़िलाफ़ बोलकर, लिखकर अन्याय कर रहा हूँ, इस क्षेत्र के लोगों के साथ, उस क्षेत्र के विकास के साथ... और खुद अपने साथ भी। लेकिन राजनीति के कुछ तक़ाज़े इतने निर्मम हैं कि समय की पुकार पर बहुत कम लोग उन छद्म बेड़ियों को तोड़ पाते हैं जिनके ख़िलाफ़ ख़ुद उनका मन चीत्कार कर उठता है।

और सबसे पहला भरम तो यही टूटा था कि अर्जुनसिंहजी के व्यवहार में कोई जननेता नहीं, सामंत बोलता है। मुझे वह दिन आज भी याद है जब मैं अन्य साथियों के साथ जीप बिगड़ जाने के कारण एक जगह फँसा पड़ा था। हवा गरम थी कि उनके समर्थक विरोधियों की मौक़े पर पिटाई भी कर देते हैं। उनके बारे में एक अजब से असहिष्णु व्यक्ति का चित्र मानस पर खिंचा हुआ था। जब जीप बिगड़ी थी, तब मैं मज़ाक में कह रहा था कि अगर ऐसे में ठाकुरों का दल आकर अपनी पिटाई कर दे तो क्या होगा। मेरे वरिष्ठ साथी श्री सुशील दीक्षित ने इस पर कहा था कि ऐसा होगा तो अपने हिस्से का प्रसाद चुपचाप ग्रहण कर लेंगे।

बात अभी चल ही रही थी कि अचानक दूर से आती एक जीप दिखाई दी। पीछे और भी जीपें थीं। साथ के कुछ लोगों ने ऐसा कुछ कहा कि अब खैर नहीं, पर तभी जीप आकर रुक गई और उस चिलचिलाती धूप में धूल से सना जो व्यक्ति सबसे पहले उतरा वे थे अर्जुनसिंहजी। हँसते हुए पास आये और पूछा कि क्या कर सकते हैं। सुशील दीक्षित ने नमस्कार करने के बाद जब मेरा परिचय देना चाहा तो हँसते हुए ही बोले कि मैं इनको जानता हूँ। भोपाल से मुझे हराने के लिये आये हैं। किसी भी वजह से आये हों आये तो सही, अपने ज़िले में स्वागत है।

और इस अगले पाँच मिनट में ही मेरे सारे भरम टूट गये थे। मुझको एक क्षण को भी कहीं से यह अहसास नहीं हुआ कि मैं किसी सामंत से, बातें कर रहा हूँ। मेरे सामने तो एक अत्यंत सौम्य और मृदुल व्यवहार का जैसे आदर्श प्रतिमान खड़ा था। सारे जाले टूट गये थे। इस व्यक्ति के व्यवहार में आतंक की बात तो कहीं से आ ही नहीं सकती, वह अपनी जनसभाओं में जितना विनम्र था, वैसा जीवन के दिन प्रतिदिन के व्यवहार में था।

उस चुनाव में यद्यपि अर्जुनसिंहजी हार गये थे लेकिन पन्द्रह-बीस दिन के उस समय में, मैं परास्त हो चुका था और पराजय की उस वेला में भी जब मैं उनसे मिला तो अर्जुनसिंहजी के चेहरे पर वह निराशा या क्षोभ नहीं था, जो ऐसे अवसरों पर एक संयमी व्यक्ति के चेहरे पर भी छलक आया करता था। उन्होंने हँसते हुए कहा था कि इस पराजय से उनको संघर्ष की और प्रेरणा मिली है। वे एक नहीं पचास पराजयों का ख़तरा मोल लेने को तैयार हैं, लेकिन संघर्ष का जो पथ उन्होंने चुन रखा है, उससे वे हटेंगे नहीं। विजय के उन क्षणों में मेरा मन अवसाद से भर गया था, लेकिन अर्जुनसिंहजी की संघर्ष भावना और बलवती हो गई थी।

उस घटना को आज 37 साल बीत गये हैं, लेकिन तब की एक-एक बात तरोताज़ा है। मेरे भाई राजोरिया इस बात के गवाह हैं कि उन दिनों मैंने अर्जुनसिंहजी के ख़िलाफ़ क्या नहीं लिखा होगा लेकिन मेरा हर शब्द उनकी सहनशीलता, सौम्यता और अनवरत संघर्ष की सहज प्रवृत्ति की प्राचीर से टकरा कर गिर गया। अर्जुनसिंहजी तो उन शरों को कब का विस्मृत कर चुके हैं, परन्तु मुझे आज भी कभी-कभी उन शरों के घावों की अनुभूति होती है।

यह वास्तव में एक बहुत बड़ी विडम्बना है कि हम लोग किसी भी प्रकार के सार्वजनिक जीवन में कार्यरत व्यक्ति के बारे में कभी पूरी गहराई में जाकर नहीं देखते। हम पुराने इतिहास से उसको जोड़े रखते हैं और उसी के अनुसार उसके प्रति मन में अवधारणाएँ बनाते हैं। अर्जुनसिंहजी के साथ भी यही हुआ। वे काफी पहले से सार्वजनिक जीवन में आ गये थे और उन्होंने एक से एक नई शुरुआतें भी कीं, लेकिन उनकी प्रतिभा को कुंठित और सीमित रखने के लिये प्रदेश के राजनैतिक सामंतों ने इस तरह की दीवारें खड़ी कर दी थीं कि उनको तोड़ना और किसी के लिये असंभव नहीं तो अत्यंत कठिन तो अवश्य ही था।

और आज मैं कह सकता हूँ कि अर्जुनसिंहजी ने इन दीवारों को तोड़ने में जिस अदम्य संकल्प और संघर्ष का परिचय दिया है वह वास्तव में अनुकरणीय है। असल बात तो यह है कि स्कूल की सीमा से बाहर आते ही उन्होंने इस संघर्ष को प्रारंभ कर दिया था और इस संघर्ष की शुरुआत उन्होंने खुद अपने से की थी।

अगर यह कहा जाये कि अर्जुनसिंहजी ने अपने छात्र जीवन से ही संघर्ष को प्रारंभ कर दिया था तो ग़लत न होगा। ज़रा कल्पना कीजिए उस युग की जब भारत स्वाधीन नहीं हुआ था। 1930 में जन्मे अर्जुनसिंहजी रीवा राज्य के एक प्रभावशाली और संपन्न परिवार के पुत्र थे और उनका बचपन उस स्थान पर बीत रहा था जहाँ किसी तरह की राजनैतिक चेतना नहीं के बराबर थी। उनके लिये सुख-सुविधा और ऐश्वर्य से जीवन बिताने के लिये सब साधन मौज़ूद थे लेकिन ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गई उनमें संघर्ष का मूल भाव प्रबल होता गया। बचपन से ही अपने आसपास फैले अभाव, ग़रीबी और दैन्य ने उनको व्याकुल कर दिया था और वे इन सारी पुरानी व्यवस्थाओं को बदलने का संकल्प पालते रहे और यदि यह कहा जाय कि आज भी उनकी मानसिक धारा उसी दिशा की ओर है तो ग़लत न होगा।

1947 में जब भारत स्वाधीन हुआ उस समय किशोर अर्जुनसिंहजी कॉलेज के द्वार पर ही पहुँचे थे लेकिन कॉलेज के जीवन में अर्जुनसिंहजी की चेतना पढ़ाई के साथ अपने क्षेत्र को बढ़ाने की ओर कहीं अधिक लगी रही। जिन दिनों में लड़के घूमने-फिरने और आमोद-प्रमोद में समय लगाते हैं उन दिनों अर्जुनसिंहजी समाज की विभिन्न व्यवस्थाओं के अध्ययन में लगे हुए थे और उनके मन में यह धारणा प्रबल होती जा रही थी कि केवल समाजवाद से ही देश की दशा सुधारी जा सकती है।

और इसके साथ-साथ ही उनमें बैठा एक संघर्षशील व्यक्तित्व अपने आप में दिन प्रतिदिन दृढ़ होता जा रहा था। 1952 में वे रीवा के दरबार कॉलेज के छात्र संघ के अध्यक्ष चुने गये और उन दिनों अपने ओजस्वी भाषणों से वे लोगों को झकझोर दिया करते थे। आगरा विश्वविद्यालय से क़ानून का स्नातक बनने के बाद रीवा में जब वकालत शुरू की तो उस समय तक वे एक पक्के समाजवादी बन चुके थे लेकिन अर्जुनसिंहजी अदालत और क़ानून की वीथियों में खोने के लिये नहीं आये थे, धन कमाना उनका उद्देश्य नहीं था और इसीलिये वे 1957 में पहली बार विधानसभा के लिए खड़े हुए और मंझोली से एक निर्दलीय विधायक के रूप में चुनकर आये। तब से, एक छोटे से अंतराल को छोड़कर विधानसभा या लोकसभा के लिये चुने जाते रहे हैं।

1960 में वे पं. जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा पर काँग्रेस में शामिल हुए और आज तक उसके लिये समर्पित सिपाही की भूमिका निभा रहे हैं। इस बीच में कई बार मंत्री पद पर आये, विश्व युवक समारोह और संयुक्त राष्ट्र में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व भी किया और भारत के सबसे विशाल राज्य के मुख्यमंत्री बने, परन्तु इस सारे काल में उनका संघर्ष जारी रहा। वे जहाँ भी जिस स्थिति में रहे उन्होंने ग़रीबी और पिछड़ेपन, अशिक्षा और अन्याय के ख़िलाफ़ अपनी लड़ाई ज़ारी रखी है। वे मर्यादाओं को, समाज के विकास और उत्थान की मर्यादाओं को स्थापित करने के संघर्ष में निरंतर जुटे रहे और इसमें कभी एक क्षण का विराम नहीं किया है।

मैंने अर्जुनसिंहजी के जीवन के संघर्ष पक्ष पर इतना बल इसलिये दिया है कि क्योंकि यह एक स्थापित सत्य है कि अर्जुनसिंहजी जिस परिवेश से सेवा और त्याग के क्षेत्र में आये, उसको छोड़ पाना, जिस समय वे आये, एक असंभव-सी बात लगती थी। सवाल यह था कि उनको क्या ज़रूरत थी कि वे एक सुखी संपन्न जीवन को छोड़ कर गाँव-गाँव और पहाड़-पहाड़ इसलिये घूमते रहें कि जिससे वहाँ के रहने वालों के जीवन में परिवर्तन का एक छोटा-सा बिन्दु ही ला सकें। वे पीढ़ियों से चले आ रहे अपने सामंती परिवेश को तोड़ रहे थे, पुरानी मान्यताओं को एक तरफ़ रख कर अर्जुनसिंहजी उस पिछड़े और दलित आदमी को अपने गले से लगा रहे थे, जो शताब्दियों से किसी भी सामंत को देखते ही उसके सामने बिछ जाने का आदी हो गया था।

उनकी उम्र के अन्य सामंत पुत्र जिन दिनों मौज-मस्ती के दिन गुजारते थे उन दिनों वे अपने कुछ साथियों के साथ किसी भी पिछड़े अंचल में निकल जाया करते थे और ऐसे सेवा शिविर लगाते थे, जिनमें वे उन लोगों की सेवा करते थे जो पीढ़ियों से उनके पुरखों की सेवाएँ करते आये थे। उन्होंने आराम, सुस्ती और ऐश्वर्य से परिपूर्ण एक निरर्थक जीवन की बजाय सेवा और त्याग तथा कष्टों का एक कंटीला किन्तु सार्थक जीवन का रास्ता चुना था और वे एक बार जब उस पर चले तो फिर उन्होंने कभी मुड़कर नहीं देखा, भले ही उनके पैर कितने लहूलुहान हो गये हों, और कष्टों तथा निराशाओं ने उनको कितनी ही चुनौतियाँ क्यों न दी हों।

भारत की राजनीति के चरित्र पर यदि नज़र डालें तो इस बात का सहज अंदाज़ हो जायगा कि अर्जुनसिंहजी के लिये इस सेवामय राजनीति का मार्ग कितनी बड़ी चुनौतियों से भरा था और उनके मार्ग में सबसे बड़ी चुनौती थी उनके क्षेत्र में फैला घनघोर जातिवाद। जमींदारियों और बाद में रजवाड़ों की समाप्ति के पश्चात् भारत के सब रजवाड़ों में एक अलग ही राजनीति चल रही थी। रीवा में भी राजनीति का स्वरूप किन्हीं सिद्धांतों और आदर्शों की बजाय जातिपरक कुछ अधिक ही हो गया था। रीवा में एक ओर राजनीति पर ब्राह्मणों का वर्चस्व था तो दूसरी ओर राजपूतों का। और यह एक सत्य है कि काफ़ी समय तक यह जातिवाद रीवा में एक बहुत बड़ी भूमिका निभाता रहा, लेकिन अर्जुनसिंहजी तो इस जाल को काटने के लिये संकल्पबद्ध थे। वे अपने पुराने परिवेश को बदलने के साथ हमेशा इस प्रयास में लगे रहे कि राजनीति जातिवाद के पुराने कुएँ से निकल कर आदर्शों और सिद्धांतों के स्तर पर आये और इसीलिये वे निरंतर जातिवाद से संघर्ष करते रहे।

जातिवाद के इस जाल को तोड़ने के लिये वे शुरू से ही जुटे थे। वे काँग्रेस में आ गये थे, लेकिन उनके मन में बैठा समाजवादी हमेशा सक्रिय रहा और इस जाल को काटने के लिये वे न केवल अपने जिले ही अपितु पूरे संभाग के एक से एक दूरस्थ अंचलों में गये, उन्होंने जाति को एक तरफ़ रख कर हर आदमी को अपने साथ लिया। अपनी पूरी शक्ति से उनके लिये काम किया और यह बात कही जा सकती है कि इस काम में उनको सफलता भी मिली। आज रीवा के दूरस्थ अंचल में एक आदिवासी भी उनको चाहता है तो ब्राह्मणों को उनमें अपने अभाव और कष्टों का मुक्तिदूत नज़र आता है। ठाकुर समुदाय को भी उनसे आशाएँ बँधी हैं तो अन्य समुदायों को इस बात का विश्वास है कि वे सबसे अधिक उनका ध्यान रखते हैं। संक्षेप में अगर यह कहा जाये कि आज रीवा संभाग के हर जाति और वर्ण के लोगों को अर्जुनसिंहजी पर विश्वास और उनसे आशाएँ हैं तो ग़लत न होगा।

लोग कहते हैं कि पद के साथ हर व्यक्ति से यह विशेषताएँ जुड़ जाया करती हैं और ख़ास कर जब वह मुख्यमंत्री हो तो इस बात के दावे हो सकते हैं कि वे सबसे हितैषी हैं। इस तर्क को पूरी तरह से नकारा नहीं जा सकता कि ऐसा भी हुआ करता है परन्तु अर्जुनसिंहजी के बारे में यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि उन्होंने अपना जनाधार बहुत मेहनत से और गहरा बनाया है। उनके समर्थक जातियों से नहीं उनके कर्त्तव्य से बँधे हैं। मैंने खुद सीधी ज़िले के आज भी मुश्किल से पहुँच पाने वाले इलाकों में ग़रीब, अपढ़ आदिवासियों और दूसरे लोगों से भेंट की है और इस बात को पाया है कि अर्जुनसिंहजी किस तरह से वहाँ पर धूल फाँकते हुए घूमे हैं और इतना ही नहीं उन्होंने अपने क्षेत्र के लोगों से हमेशा जीवंत संपर्क रखा है।

आख़िर यह उनके जीवंत सम्पर्क का ही तो प्रमाण था कि 1977 के आम चुनावों की उस आँधी में, जिसमें रीवा में देवता की तरह पूजे जाने वाले महाराज मार्तण्डसिंह तक पराजित हो गये, उसमें अर्जुनसिंहजी कभी भी नहीं डगमगाये। वे पहले की तरह शान से ही जीते, आँधी के ख़िलाफ़ जीते। इस जीत के पीछे उनके सेवा और लगन के उस अतीत का पुष्ट आधार था जिसे वह आँधी ज़रा भी नहीं हिला सकी। यह जीत ही इस बात को प्रमाणित करने के लिए काफ़ी थी कि अर्जुनसिंहजी ने शुरू से सामंती परिवेश, जातिभेद, ऊँच-नीच, ग़रीब-अमीर की दीवारों को तोड़ने का जो काम पिछले बीस बरस से चला रखा था, वह कितनी पुख़्ता नींव पर था। 1977 की उस आँधी में श्री अर्जुनसिंह खुद नहीं खड़े थे, उनके साथ क्षेत्र के हर वर्ग और वर्ण का मतदाता खड़ा था और वह अर्जुनसिंहजी की लड़ाई को अपनी लड़ाई मानकर लड़ रहा था और जिस व्यक्तित्व के पीछे समर्पित सामान्य जनों की इतनी बड़ी शक्ति हो उसको कौन डिगा सकता था।

1977 के बाद से 1980 तक का वह काल। मुझे याद है कि 1977 में जनता पार्टी की प्रचंड विजय के बाद काँग्रेस किस हताशा की मनोदशा में थी। यह स्वाभाविक था भी। भला कोई कल्पना कर सकता था कि इंदिराजी प्रधानमंत्री पद पर रहते हुए भी आम चुनाव हार जायँगी। लेकिन वे हारीं और इसके पश्चात् जनता पार्टी के इंदिरा प्रतिशोध से भरा संत्रास का एक सिलसिला। दिल्ली में शाह आयोग तो मध्यप्रदेश में देवास आयोग। काँग्रेस एक गहन संकटकाल में थी और कुछ लोगों को लगा कि अब काँग्रेस का राजनीति में अंत सन्निकट है पर इस धारणा के साथ जो होना था, वही हुआ। काँग्रेस से जाने वालों का तांता लग गया और इस तरह के अवसरवादी जनता पार्टी के लोगों की हाँ में हाँ मिला कर इंदिरा जी की निंदा में लग गये।

संघर्ष के उन चुनौतीपूर्ण दिनों में एक बार फिर अर्जुनसिंहजी का व्यक्तित्व अपने अद्‌भुत निखार पर आया। हताशा के उन दिनों में उन पर राज्य विधानसभा में विरोधी दल के नेता की भूमिका निभाने का दायित्व आया। उन दिनों में यह एक अत्यंत कठिन काम था। आपातकाल के व्यंग्यबाण प्रतिपल चलते थे और अन्य तरह के प्रहार उन पर किये जाते थे। जब काँग्रेस का फिर से विभाजन हो गया और अर्स आदि दूसरी तरफ़ चले गये तो उन

पर पार्टी को संगठित रखने का दायित्व था तो दूसरी और सत्तारूढ़ पार्टी के प्रहारों का जवाब देने का भी था।

जिन लोगों ने अर्जुनसिंहजी को मध्यप्रदेश विधानसभा में विरोधी दल के नेता की भूमिका को अदा करते देखा है उनसे यदि पूछा जाय तो सब एकमत से कहेंगे कि उन्होंने जैसा जीवंत नेतृत्व प्रदान किया उतना पहले बिरला ही देखा गया था। विरोधी दल के नेता के रूप में हर क्षण चौकस रहते थे, जनता सरकार की हर गतिविधि की उनको ख़बर थी और वे हमेशा मौक़े पर इस प्रकार के प्रहार किया करते थे कि देखते ही बनता था। उनको इस बात का पूरा पता रहता था कि कब किस बात को किस सीमा तक उठाना है, कहाँ दुलारना है तो कहाँ सरकार को पानी पिला देना है।

राजनीति के हर पहलू को वे जानते थे, लेकिन इसके बावज़ूद विरोधी दल के नेता के रूप में भी उनकी हरचंद यह कोशिश थी कि प्रदेश के ग़रीब व पिछड़े लोगों हरिजन व आदिवासियों के लिये सरकार कुछ करे। इन मामलों पर वे कभी समझौता करने को तैयार नहीं थे, इसका प्रमाण भी मिला जब कनाड़िया में कुछ हरिजनों की हत्या होने पर वे न केवल स्वयं वहाँ गये ही अपितु उस साल उन्होंने अपनी दीवाली उस गाँव में उन हरिजनों के साथ अँधेरे में बिताई जिनके कई जीवन दीपों को जाति का प्रेत लील गया था। अपने कर्त्तव्य के लिये एक समर्पित व्यक्तित्व का वह घटनाक्रम सबके लिए एक प्रेरक प्रसंग है।

यही सब कारण थे कि 1980 के मध्यप्रदेश में इंका के पुनः सत्ता में आते ही राज्य के रथ का संचालन उनको सौंपा गया। कुछ लोगों का विचार था कि नये मध्यप्रदेश की चारों इकाइयों में सबसे छोटी इकाई के इस प्रतिनिधि को शायद मौक़ा न मिले लेकिन अर्जुनसिंहजी तो उन सीमाओं से कब के पार जा चुके थे। वे शताब्दियों पुरानी सीमाएँ-रेखाएँ तोड़ चुके थे इसलिये एक प्रदेश के भीतर की रेखाओं को पार करना उनके लिये कोई बड़ा काम नहीं था। जनता शासन की समाप्ति के बाद वे हर प्रकार से इस पद के अधिकारी थे और अंत में हुआ भी वही जो जनता का बहुमत चाहता था। अंततोगत्वा उनको राज्य के मुख्यमंत्री पद का भार सौंपा गया।

अर्जुनसिंहजी का मुख्यमंत्री पद पर आना एक और बात का प्रमाण था। इससे यह बात प्रमाणित हुई कि अनुशासन और निष्ठा से किया गया काम कभी अधूरा नहीं रहता। आखिर को प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के सामने भी तो सब कुछ साफ था। उन्होंने खुद इस बात को देखा था कि अर्जुनसिंहजी की राजनीति कैसी रही, उनकी निष्ठा, लगन और योग्यता— सभी कुछ नज़रों में था और इसलिये उन्होंने इस पद का भार उनको सौंपा।

1980 से 85 तक मध्यप्रदेश का मुख्यमंत्रित्व संभालने वाले अर्जुनसिंहजी मध्यप्रदेश के ऐसे पहले मुख्यमंत्री थे जिसने पूरी समयावधि तक अपने दायित्व का निर्वाह किया। मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने इस पिछड़े राज्य के लिये जो किया उसकी फेहरिस्त लम्बी है। उसके विवरण में न जाते हुए इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि श्रीमती इंदिरा गाँधी के बलिदान के बाद अर्जुनसिंहजी के राजनैतिक जीवन में एक बड़ा मोड़ आया जब मध्यप्रदेश का दुबारा मुख्यमंत्री पद संभालने के बाद दूसरे दिन ही वे पंजाब के राज्यपाल का पद संभालने के लिए चंडीगढ़ चले गये।

1985 का वह काल। सारा देश इंदिराजी की हत्या के सदमे से उबर नहीं पाया था। पंजाब उस समय देश की सबसे बड़ी समस्या थी। कोई उस तरफ झाँकना तक नहीं चाहता था। हर क्षण वहाँ मृत्यु जैसे सामने खड़ी थी। राजनीति पूरी तरह ठप हो चुकी थी। किसी राजनेता में इतना साहस नहीं था कि पंजाब में जाकर कुछ कर पाता। समस्या कठिन थी। एक तरफ़ इंदिराजी की हत्या से क्षुब्ध देश और दूसरी ओर दिल्ली में इंदिराजी की हत्या के बाद कुछ विक्षुब्ध लोगों ने सिखों पर जिस तरह से हमले किये उससे आहत सिख भावनाएँ। दोनों ओर चुनौतियाँ। जब कोई एक दूसरे को देखने तक को तैयार नहीं था तब किसी तरह की राजनैतिक प्रक्रिया शुरू करना, पंजाब में क़ानून का राज पुनः लाना, लोगों में शासन के प्रति विश्वास जमाना एक बहुत बड़ी चुनौती थी।

इस प्रकार पंजाब के राज्यपाल के रूप में अर्जुनसिंहजी ने देश की राजनीति में प्रवेश किया और अभी तक का रिकार्ड गवाह है कि उन्होंने पंजाब में शांति और सद्भाव लाने के लिए जो प्रयास किये वे आज भी हर प्रयास की आधारभूमि हैं। राजीव-लोंगोवाल समझौता अर्जुनसिंहजी की उपलब्धि का ऐसा दस्तावेज है जो विरले लोगों को नसीब हुआ होगा।

पंजाब के बाद दिल्ली में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में संचार मंत्री के रूप में काम, दिल्ली के लोकसभा चुनाव में चुनौतीपूर्ण विजय, काँग्रेस के उपाध्यक्ष के रूप में काम, एक बार पुनः मध्यप्रदेश में मुख्यमंत्री के रूप में वापसी और फिर दिल्ली रवानगी। अर्जुनसिंहजी राष्ट्रीय मंच पर जितने सहज और स्वाभाविक रूप से स्थापित हो गये इसका जैसे लोगों को पता ही नहीं चला। वे अपने आप देश के शीर्षस्थ नेताओं की पंक्ति में आ गये।

आख़िर शरीर की भी क्षमताएँ हुआ करती हैं। अर्जुनसिंहजी ने कभी अपने स्वास्थ्य की ओर इतना ध्यान नहीं दिया और नतीजे में उनको हृदय के जटिल आपरेशन के दौर में से भी गुज़रना पड़ा। सच तो यह है कि अर्जुनसिंहजी की यह प्रबल संघर्ष शक्ति थी कि वे एक कठिन बीमारी से भी सफलतापूर्वक जूझ कर विजयी हुए। मई 1991 में पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी की हत्या के बाद देश का राजनैतिक परिदृश्य एकदम से बदल गया। वस्तुतः राजीव गाँधी की हत्या से देश में राजनीति के एक लम्बे अध्याय का समापन हो गया था। पिछले चार दशक से देश की चक्रवर्तिन सत्ता पर गाँधी-नेहरू वंश की छत्रछाया एकदम ही समाप्त हो गई। राजनीति का यह एक ऐसा विचित्र शून्यकाल था जिसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। देश से अधिक काँग्रेस के लिये यह बड़ा संक्रमण काल था। वह अपनी यात्रा के ऐसे चौराहे पर आ गई थी जहाँ हर दिशा कंटकाकीर्ण थी। पार्टी के जीवन में यह ऐसा पहला मौक़ा था जब कोई महानायक सामने नहीं था।

हताशा और परेशान देश की नज़रें उस समय जिन लोगों पर उम्मीद से टिकीं उनमें अर्जुनसिंहजी स्वाभाविक रूप से सबसे पहले थे। इसके अनेक कारण थे। केन्द्र की राजनीति में देर से प्रवेश करने के बाद अपनी दूरदृष्टि और सक्षमता से वे अपने आप देश के शीर्ष प्रशासन पुरुषों की पंक्ति में आ गये थे। पार्टी के उपाध्यक्ष पद को उन्होंने जिस कुशलता से संभाला था, उसके कारण उनका एक देशव्यापी आधार बना था। संकट के इन क्षणों में उन्होंने अपने स्वास्थ्य की भी चिंता नहीं की और इस प्रयास में लग गये कि देश, पार्टी को स्थिरता मिले। वे इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि पार्टी का एक विशाल वर्ग उनकी ओर आशा भरी निगाहों से देख रहा है लेकिन अर्जुनसिंहजी तो जीवन भर अनुशासन की लड़ाई लड़ने वाले सेनानी रहे हैं। सत्ता का मोह उनको कभी विचलित नहीं कर पाया है और उनके लिये देश और पार्टी का हित सर्वोपरि रहा है। देश व पार्टी की ख़ातिर अर्जुनसिंहजी के लिये कोई भी पद या अधिकार कभी भी महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है और मौक़ा आने पर उन्होंने उसे तिलांजलि देने में एक क्षण की भी हिचक नहीं की है।

यही वजह थी कि संकट के उन कठिन क्षणों में अर्जुनसिंहजी ने अपूर्व दूरदृष्टि और संयम का परिचय दिया और अपनी सारी शक्ति श्री नरसिंहराव के पीछे लगा दी। वे जानते थे कि पार्टी जिस चौराहे पर खड़ी है, उसमें श्री नरसिंहराव से बेहतर सेनापति और कोई नहीं हो सकता। इसलिये उन्होंने बिना एक क्षण गँवाये श्री नरसिंहराव को अपना समर्थन दिया और आने वाली चुनौतियों का सामना करने में जुट गये।

यह बताने की ज़रूरत नहीं है कि राजीव गाँधी की हत्या उस समय हुई जब देश लोकसभा के मध्यावधि चुनाव के मतदान के दौर में था। मात्र 17 महीने के अंतराल से हो रहा यह दूसरा मतदान बहुत संघर्षपूर्ण था और काँग्रेस को अपनी पूरी ताक़त लगाना पड़ रही थी। काँग्रेस को एक ओर हिन्दी राज्यों में भारतीय जनता पार्टी तो दूसरी ओर अन्य राज्यों में दूसरी पार्टियों ने चुनौती दी थी। वस्तुतः उन दिनों समस्त राजनैतिकं चित्र इतना

अस्पष्ट था कि कोई कुछ नहीं कह सकता था कि मतदान के क्या नतीजे होंगे। देश में एक अजीब अनिश्चितता का माहौल था।

और मतदान के नतीजे भी वैसे ही आये। किसी पार्टी को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला लेकिन काँग्रेस सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभर कर सामने आई। चूँकि और कोई पार्टी सरकार बनाने की स्थिति में नहीं थी इसलिये राष्ट्रपति ने श्री नरसिंहराव को सरकार बनाने के लिये बुलाया। अर्जुनसिंहजी संप्रति इसी सरकार में मानव संसाधन विकास मंत्रालय का काम संभाल रहे हैं। कुछ लोगों ने उस समय कहा था कि इस मंत्रालय में कुछ खास करने-धरने के लिये नहीं है लेकिन अर्जुनसिंहजी के स्पर्श का चमत्कार है कि मानव संसाधन विकास मंत्रालय आज देश के विकास का एक प्रमुख जरिया बन गया है। उनके आने के साथ ही इस मंत्रालय से विकास की जितनी नई धारायें फूटी हैं, जितने नये क्षेत्र इसने खोले हैं, प्रतिभाओं के विकास और उत्थान के कितने नये सोपान खुले हैं, इनके बारे में कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है।

1991 के चुनाव की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें काँग्रेस ने उस भारतीय जनता पार्टी को करारी शिकस्त दी जहाँ पिछले चुनाव में बुरी तरह से धराशाई हुई थी। 1989 में मध्यप्रदेश में काँग्रेस को केवल 8 सीटें मिली थीं और भाजपा 28 सीटों पर विजयी हुई थी। शेष 4 पर जनता दल की जीत हुई थी। लेकिन 1991 में आँकड़े उलट गये। इसमें काँग्रेस ने 27 सीटें जीतीं जबकि भाजपा केवल 12 सीटें ही जीत पाई। इतने बड़े राजनैतिक परिवर्तन की किसी ने कल्पना नहीं की थी। लेकिन जानने वाले जानते हैं कि इसके पीछे अर्जुनसिंहजी की प्रमुख भूमिका थी। वे जनता शासन के आने के बाद ही मध्यप्रदेश काँग्रेस के अध्यक्ष पद पर आ गये थे और इसमें उन्होंने पार्टी को निरंतर गतिमान बनाये रखा।

यह तो राजनीति की बातें हैं। मैं तो केवल इतना कहना चाहूँगा कि अर्जुनसिंहजी की सबसे बड़ी शक्ति उनका अदम्य संघर्ष और इच्छाशक्ति है। वे वास्तव में देश के उन विरले लोगों में से हैं जिनमें विपरीत परिस्थितियों से लोहा लेने की अपार क्षमता है। एक बार निश्चय करने के बाद उनको कोई डिगा नहीं पाया है। अपने अपूर्व आत्मविश्वास और कुशल रणरचना से वह हर संघर्ष में सफल होकर ही निकलते रहे हैं। उन्होंने कभी किसी चुनौती से मुँह मोड़ना नहीं सीखा। इसकी बजाय अगर यह कहा जाये कि वे ललकार कर चुनौती का सामना करते हैं तो ग़लत नहीं होगा।

प्रशासनिक स्तर पर अर्जुनसिंहजी की उपलब्धियों की एक लम्बी सूची है। उनके विस्तृत विवरण में जाये बिना इतना ही कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी राजनीति मानव संवेदन की जिस भावभूमि से प्रारम्भ की थी, वह निरंतर आगे बढ़ती ही रही है। समाज के आख़िरी छोर पर खड़े निर्बल आदमी के प्रति उनके मन में करुणा का जो पौधा उनकी किशोरावस्था में पनपा था वह निरंतर बढ़ता ही गया और आज उसने एक वटवृक्ष का आकार ग्रहण कर लिया है। कोई एक बार इस बात पर दृष्टिपात तो करे कि आवासहीन, रोज़गारहीन, पीढ़ियों से शोषित मज़दूरों और महिलाओं के लिये उन्होंने कितनी योजनाएँ और कार्यक्रम प्रारम्भ किये। शिक्षा से लेकर स्वास्थ्य तक और कृषि से लेकर संस्कृति और इतिहास तक अर्जुनसिंहजी ने एक के बाद दूसरे विकास और काम के नये दरवाज़े खोले हैं। वह किसी भी पद पर रहे हों, किसी भी विभाग का प्रभार उनके हाथ में रहा हो उसके व्यापक लोकपक्ष को उन्होंने सदा सामने रखा है। शोषण और अत्याचार के ख़िलाफ़ उन्होंने निरंतर संघर्ष किया है और छोटे से छोटे अधिकार के लिये वे किसी भी मोर्चे पर जूझने से कतराये नहीं हैं। कोई आलोचना, विरोध या पूर्वाग्रह उनको अपने पथ से विचलित नहीं कर पाया है।

अर्जुनसिंहजी की यह संघर्ष यात्रा आज भी जारी है। राजनीति के व्यस्त उत्तरदायित्वों के बावजूद उनकी रचनात्मकता का प्रवाह अनवरत रूप से जारी है। वे आज भी शोषितों और दलितों के लिये कहीं से भी समय

निकाल रहे हैं और अपने स्तर पर राहत और सांत्वना देने के लिये कहीं भी दौड़े चले जाते हैं। वस्तुत: उन्होंने अपने संघर्ष से ही सेवा का वह महान् पथ बनाया है जो व्यापक कल्याण की ओर जाता है। यही कारण है कि आज सारे देश में अर्जुनसिंहजी के प्रशंसकों की कमी नहीं है। राजनीति से कहीं अधिक बढ़कर समाज का एक विशाल वर्ग इसीलिये सदा अर्जुनसिंहजी के लिये पलक पाँवड़े बिछाये खड़ा रहता है क्योंकि वह जानता है कि अर्जुनसिंहजी उनके लिये संघर्ष करने में कभी भी पीछे नहीं हटेंगे। एक ही नज़र में सामने आ जायेगा कि अर्जुनसिंहजी ने आज देश की राजनीति और आम भारतीयों के मन में अपने लिये जो स्थान बनाया है, वह उनकी इस अबाध संघर्ष यात्रा की ही परिणति है। उनका सारा जीवन एक शानदार संघर्ष यात्रा का ऐसा प्रेरणा सूत्र है जो राजनीति में सेवा को नया आयाम देता है। इस संघर्ष यात्रा का सबसे उजला पक्ष यह है कि राजनीति का यह सिपाही अपने जीवन भर दलितों, शोषितों और ग़रीबों के लिये ही लड़ता रहा है और आज भी लड़ रहा है।

☐ *अशोक तरंगी— दैनिक सांध्यप्रकाश, भोपाल के सम्पादक रहे श्री अशोक तरंगी आजकल एक स्वतंत्र पत्रकार के रूप में गतिशील हैं। सम-सामयिक विषयों पर आपके लेख विचारोत्तेजक तथा चर्चित रहे हैं। पुरानी पीढ़ी के पत्रकारों में आप प्रतिष्ठित प्रेरक माने जाते हैं।*

भारत के लोकप्रिय नेता

डालचन्द जैन
(पूर्व सांसद)

माननीय अर्जुनसिंहजी से मेरा निकट का सम्पर्क 1967 से है, जब मैं तथा वे साथ-साथ मध्यप्रदेश विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए थे। माननीय स्व.पं. द्वारकाप्रसाद जी मिश्र के मंत्रिमंडल में वे प्रथम बार उपमंत्री मनोनीत हुए और उनका यह मनोनयन उनको शिखर तक पहुँचाने के लिये पहली सीढ़ी थी। तदुपरांत वे पं.श्यामाचरण शुक्लजी एवं श्री प्रकाशचंद सेठी के मंत्रिमण्डल में केबिनेट मंत्री मनोनीत किये गये एवं उन्हें जो भी विभाग सौंपा गया, उसी में उन्होंने अपनी कार्यशैली, सूझबूझ एवं कार्य के प्रति लगनशीलता से ख्याति अर्जित की एवं मंत्रिमण्डल में अपना विशिष्ट स्थान अपने कार्यों से बनाया।

1980 में वे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री निर्वाचित हुए और अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल सफलतापूर्वक पूर्ण ही नहीं किया बल्कि प्रदेश को हर क्षेत्र में विकास की ओर अग्रसर किया। प्रदेश में अनेकों कल्याणकारी योजनाएँ क्रियान्वित की, जो मध्यप्रदेश के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। अपनी संस्कृति के प्रति उनकी गहरी अभिरुचि, है, जिसका प्रतीक "**भारत-भवन**" भोपाल है। युगों-युगों तक यह सांस्कृतिक चेतना केन्द्र मार्गदर्शन करता रहेगा।

राजनैतिक उतार-चढ़ाव में अपने देश में कम ही मुख्यमंत्री अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल पूर्ण कर पाते हैं, लेकिन सफलताओं एवं उपलब्धियों में अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल पूर्ण ही नहीं किया बल्कि वे फिर से अगले पाँच वर्षों के लिये सर्वसम्मति से मुख्यमंत्री हुए, जो उनकी लोकप्रियता, प्रशासनिक क्षमता एवं उनके प्रति उनके सहयोगियों का विश्वास एवं स्नेह का प्रतीक है। दूसरे कार्यकाल के लिये निर्वाचित होने के तत्काल बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. श्री राजीव गाँधी, जिनका उन्हें अटूट विश्वास एवं स्नेह प्राप्त था, के निर्देशानुसार पंजाब के राज्यपाल का पद सम्भाला एवं वहाँ भी उन्होंने अलौकिक सफलताएँ प्राप्त कीं। उन्होंने पंजाब में आतंकवाद को समाप्त करने के लिये अथक प्रयास किया एवं उसी की शृंखला में "राजीव लोंगोवाल समझौता" हुआ, जो एक ऐतिहासिक घटना थी। पंजाब में उन्हें राष्ट्रीय स्तर की समस्या हल करने में जो अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई, उससे वे राष्ट्र के विशिष्ट राजनीतिज्ञों में गिने जाने लगे एवं उन्हें केन्द्रीय मंत्रिमंडल में केबीनेट मंत्री मनोनीत किया गया, जिसके लिये उन्होंने दिल्ली से ही लोकसभा का चुनाव लड़ा एवं अपनी लोकप्रियता के कारण इस प्रतिष्ठापूर्ण चुनाव में वे विजयी रहे। केन्द्रीय मंत्रिमंडल में आप वाणिज्य एवं संचार मंत्री रहे। दोनों मंत्रालयों को आपने नई गति दी एवं अपनी प्रशासनिक क्षमता एवं कार्यशैली की छाप छोड़ी।

सरकार में रहते हुए आपने जो उपलब्धियाँ एवं लोकप्रियता अर्जित की, उससे प्रभावित होकर भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के अध्यक्ष श्री राजीव गाँधी ने कॉंग्रेस को और अधिक संगठित एवं क्रियाशील बनाने के उद्देश्य से संगठन में नया महत्त्वपूर्ण पद उपाध्यक्ष का सृजन किया एवं आपको उस पद पर पदस्थ किया। उपाध्यक्ष बनते ही पूरे देश में दौरा करके कॉंग्रेस पार्टी को एक सूत्र में बाँधा एवं क्रियाशील किया। वे वर्तमान में केन्द्रीय मंत्रिमंडल में केबीनेट मंत्री

हैं एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय को एक नई दिशा एवं गति देकर शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रांति लाये हैं, उससे हम सभी परिचित हैं।

वे एक मृदुल स्वभावी हैं। अपने कार्य के प्रति सदैव जागरूक रहकर आगे बढ़ना, उनका सदैव ध्येय रहता है। विपत्तियों एवं बाधाओं की परवाह किये बग़ैर आगे बढ़ते रहते हैं तथा एक के बाद एक ऊँचाईयों को छूते हुए आज शीर्षस्थ नेताओं में से एक हैं। तिरुपति अधिवेशन में कार्यकारिणी के चुनाव में सर्वाधिक मत प्राप्त कर उन्होंने यह प्रमाणित किया कि वे केवल मध्यप्रदेश के ही नहीं पूरे भारत के एक लोकप्रिय नेता हैं। पूरे देश का उन पर अटूट विश्वास और स्नेह है। इससे मध्यप्रदेश गौरवान्वित हुआ है।

वे अपने हृदय की शल्य चिकित्सा के तत्काल उपरान्त पुनः देशसेवा में सक्रिय रूप से लग गये। एस्कॉर्ट हॉस्पिटल, दिल्ली में जब मैं उनसे मिलने गया, तब उनमें अभूतपूर्व आत्मविश्वास पाया एवं वह प्रसन्न मुद्रा में बहुत ही आत्मीयता से मिले तथा अनेकों विषयों पर चर्चा की। उनसे मिलकर मैं भी आत्मविभोर हो गया। माननीय अर्जुनसिंहजी हमारे लोकप्रिय नेता हैं, जिन्होंने एक के बाद एक सीढ़ी चढ़ी है, वे न किसी सीढ़ी पर रुके हैं और न ही वापिस लौटे हैं।

मैं पिछले क़रीब 38 वर्षों से उनके साथ भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के एक सक्रिय कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य कर रहा हूँ। शासन एवं संगठन में उनके साथ कार्य करने का मुझे अवसर मिला है। 1967 से 72 तक तथा 1972 से 77 तक उनके साथ विधानसभा सदस्य रहा हूँ। 1984 से 1989 तक जब मैं संसद सदस्य था, तब प्रदेश के विकास के लिये मार्गदर्शन प्राप्त करता रहता था। मेरे संसद सदस्य के कार्यकाल में प्रदेश को जो उपलब्धियाँ प्राप्त हुई हैं, उनको प्राप्त करने में उनकी प्रेरणा भी एक स्रोत रहा है। मैं उनके स्वस्थ, सुदीर्घ एवं यशस्वी जीवन की मनोकामना करता हूँ।

☐ डालचन्द जैन— *सागर के सुस्थापित प्रतिष्ठित समाजसेवी एवं व्यवसायी। जैन समाज के अध्यक्ष, संतसेवक, पूर्व विधायक, पूर्व सांसद श्री डालचंद जैन वर्षों मध्यप्रदेश काँग्रेस कमेटी के कोषाध्यक्ष रहे हैं। समाज के कमज़ोर वर्ग, पत्रकारों और समाजसेवी कार्यकर्ताओं की सदैव सहायता करने में आप अग्रणी रहे हैं।*

हर दिल अज़ीज़ कुँवर साहब

फ़ख़रुद्दीन
(समाज सेवी)

श्री अर्जुनसिंह जो विन्ध्य क्षेत्र में कुँवर साहब के नाम से जाने जाते है, चहुँमुखी प्रतिभा एवं प्रभावशील व्यक्तित्व के धनी हैं। वे जब पहली बार स्वतंत्र विधायक के रूप में चुनकर भोपाल आये और विधायक विश्राम गृह में उनके निवास का प्रबंध नहीं हुआ था, तो केपीटल होटल में ठहरे। चूँकि उस समय केपीटल होटल का प्रबंध मेरे अधीन था, अतः मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और जब-जब विधानसभा की बैठकें होती थीं वे केपीटल होटल में ही ठहरते थे। इस प्रकार उनसे मेरा सम्पर्क घनिष्ठ होता गया।

श्री अर्जुनसिंह एक निहायत ही शरीफ़ व्यक्ति हैं और मैंने उनमें एक बहुत अच्छा इन्सान पाया है। हमेशा उनका उसूल रहा है कि उन्होंने कभी छोटे से छोटे शख़्स को भी नहीं झिड़काया। मैं उनके सम्पर्क में लगातार शुरू से ही रहा हूँ। जब वे मध्यप्रदेश के मंत्रिमण्डल में मंत्री के रूप में शामिल किये गये और बाद में शिक्षा मंत्री के रूप में, तब मुझे और क़रीब से उन्हें जानने और समझने का मौक़ा मिला। मुझे ऐसा लगा कि वाक़ई कोई मसीहा, मंत्री बनकर आ गया है जो हमारी समस्याओं को हम से ज़्यादा समझता है। उसी ज़माने में मैंने यह महसूस किया कि उनकी यही कोशिश रहती है कि आम आदमी को किसी तरह जितनी सुविधा दी जा सकती है दी जाय। जब वे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने तब भी अपनी व्यस्तताओं के बावज़ूद भी, यथासंभव उन्होंने अपना अमूल्य समय निकालकर, छोटे से छोटे आदमी से मुलाक़ात की, उसकी व्यथा सुनी और उसके हित में जो भी संभव हुआ किया, चाहे वह व्यक्ति किसी भी समुदाय का हो। धर्मनिरपेक्षता में उनका पूर्ण विश्वास है। आज भी वे केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में होने के बावज़ूद भी लोगों की कठिनाइयों को दूर कराने में उतनी ही दिलचस्पी लेते हैं जितनी कि वे मध्यप्रदेश के मंत्री या मुख्यमंत्री के रूप में लेते रहे हैं। मैंने उन्हें बहुत ही संवेदनशील पाया। उनके द्वारा अल्पसंख्यकों के लिये कार्य करने का सवाल तो मैं नहीं समझता कि उन्होंने केवल अल्पसंख्यकों के लिये प्रदेश में उर्दू भाषा को सम्मान, उर्दू अकादमी की स्थापना, बरकतउल्ला विश्वद्यिालय का नामकरण, स्कूलों में उर्दू की शिक्षा, मस्जिद कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि, ताजुल मसाजिद की ज़मीन का पट्टा आदि कार्य किये बल्कि उन्होंने हर मामले में धर्म से हटकर पूरी-पूरी मदद की है। यह मैं दावे के साथ इसलिए कह सकता हूँ कि शक़िरअली ख़ान, जो राजनीतिक रूप से उनकी पार्टी के विरोधी होने के बावज़ूद भी, श्री अर्जुनसिंह ने उनकी यादगार के रूप में शाक़िरअली ख़ान अस्पताल का नामकरण किया। इसी प्रकार उन्होंने पंडित उद्धवदास मेहता की यादगार में आयुर्वेद महाविद्यालय को उनका नाम दिया। वास्तव में, उन्होंने कभी भी धर्म वाले के सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों में कोई रुकावट नहीं डाली बल्कि उन्हें बढ़ावा तथा सहयोग दिया। उनकी धर्मनिरपेक्षता में पूर्ण आस्था है जो उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है।

उनकी सहृदयता एवं सहयोग की मैं एक मिसाल देना चाहूँगा, कि जब मुझे अपने दिल के मर्ज के इलाज

के लिये लंदन जाने की बात आई तो उन्होंने इस बात का इंतज़ाम किया कि मुझे फॉरेन एक्सचेंज के लिये किसी प्रकार की रुकावट न आये। उनमें यह खूबी है कि वे आदमी से व्यक्तिगत तौर पर बहुत ज़्यादा स्नेह रखते हैं। आज भी वे केन्द्र में मंत्री होने और सियासत में इतने मशगूल होने के बावजूद भी जब कभी उनसे मुलाक़ात होती है वे मेरी ख़ैरियत के बारे में पहले पूछते हैं। मैं तो यह उनका बड़प्पन समझता हूँ। मुझे पूरा यकीन है कि जब-जब भी अच्छी शख़्सियतों की गिनती की जायगी, उनमें श्री अर्जुनसिंह का नाम हमेशा आता रहेगा।

इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी के ओहदे पर रहने से यह बात मुमकिन है कि आदमी हर मामले में यह नहीं कह सकता कि उसका फ़ैसला बिल्कुल सही है। मैं जानता हूँ कि श्री अर्जुनसिंह में यह ख़ूबी है या कमी कह लीजिये कि वे हर एक शख़्स की बात को सही मानकर फ़ैसला कर लिया करते हैं। वे यह नहीं सोचते कि फलाँ आदमी उनका ख़ैरख़्वाह है या बदख़्वाह और फ़ौरन उसके काम में फ़ैसला ले लेते हैं और उसकी मदद कर देते हैं। इसी वजह से कभी-कभी धोखा खाते हैं। लेकिन मैं समझता हूँ कि यह उनका बड़प्पन ही है। उनके इरादे मज़बूत हैं और अपने मज़बूत इरादों से ही वे देश की ख़िदमत करते रहे हैं। ग़रीब और कमज़ोर वर्ग के लोगों को, जैसी उनकी आदत है ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा पहुँचाना वे अपनी ज़िम्मेदारी और फ़र्ज़ समझते हैं। उन्हें मध्यप्रदेश और ख़ास तौर पर भोपाल की हरदिल अज़ीज़ शख़्सियत कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

मैं बहुत छोटा हूँ फिर भी मेरी दुआयें उनके साथ हैं और मुझे पूरा यकीन है कि देश की तरक़्क़ी, एकता, अखण्डता और धर्मनिरपेक्षता क़ायम रखने के लिये वे हर वक़्त अपनी खिदमत देते रहे हैं और भविष्य में भी देते रहेंगे।

□ *फ़ख़रुद्दीन—* *मियाँ फ़ख़रुद्दीन भोपाल के सर्वाधिक प्रभावशाली अल्पसंख्यक नेता, सफल व्यवसायी तथा सबसे पुराने और सबसे बड़े सैफ़िया कॉलेज के संस्थापक एवं सचिव रहे हैं। बोहरा समाज के वे आदर्श थे। मृदुभाषी फ़ख़रुद्दीन साहब, सैकड़ों ग़रीब, बेसहारा, असहाय लोगों की मदद कर ग़रीबों के हमदर्द माने जाते थे।*

चिन्तनशील राजनीतिज्ञ

हनुमानप्रसाद वर्मा
(वरिष्ठ पत्रकार)

कुँवर अर्जुनसिंह उस दिन सोलह वर्ष और दो सौ चौरासी दिन के थे जिस दिन भारत आज़ाद हुआ था। तो सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि जब वे युवावस्था में पहुँचे तो देश आज़ाद हो गया था। एक युवा मन का आज़ादी का सपना क्या हो सकता है? एक किशोर मन पर गुलामी की छाप क्या हो सकती है? भारत की आज़ादी के समय जो घटनाएँ घटित हुई और जिन घटनाओं के फलस्वरूप किशोर आँखों का भारत विभाजित हुआ तथा जिन आँखों ने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की आज़ाद भारत में पहली शहादत देखी— उन आँखों की दृष्टि के आयाम क्या हो सकते हैं?

ये तो सहज प्रश्न है उस पीढ़ी के लिए जो 1930 के आसपास इस देश में पैदा हुई है। पर, ये प्रश्न अपना एक विशेष महत्त्व रखते हैं उस व्यक्ति के लिए जो इस देश के एक पिछड़े इलाक़े में जो कि एक प्रकार से दुहरी गुलामी का शिकार था, उसमें जन्मा था। मध्यप्रदेश का सीधी जिला आज भी एक पिछड़ा हुआ जिला है तो आज़ादी के समय उसकी क्या स्थिति रही होगी? और इससे भी पूर्व जब श्री अर्जुनसिंह का जन्म हुआ होगा? क्षेत्र की सामान्य जनता और उसके अभिजात वर्ग के बीच अंतर जितना पिछड़ेपन के कारण दिखाई देता है उतना उस क्षेत्र के विकसित होने पर नहीं, क्योंकि विकास की प्रक्रिया और उसके मानक इस अंतर पर एक कृत्रिम आवरण डाल देते हैं, जिससे ग़रीब और अमीर के भेद की भयावहता की प्रतीति नहीं होती है। श्री अर्जुनसिंह को ग़रीब और अमीर की भयावहता की प्रतीति उसी दिन से हो गई थी जिस दिन उन्होंने अपने आँगन से बाहर क़दम रखा था। शिशु और किशोर अनुभूतियों की सबसे बड़ी देन जीवन की निष्कपटता होती है। यह निष्कपटता फिर जीवन में कभी कलंकित नहीं होती है और कभी-कभी तो यह हमारे आचरण के सारे नियोजित और अर्जित तत्वों को पीछे धकेल कर आगे आ जाती है और व्यक्ति की सारी परिकल्पनाएँ बिखरकर खो जाती हैं और वह सामने के कपटी तत्वों को भी निष्कपट भाव से ग्रहण कर लेता है। उसके मन में कहीं कोई संदेह का प्रश्न ही नहीं उठता है, और जहाँ संदेह नहीं, संशय नहीं, दुविधा नहीं, वहाँ भय कैसा? और जहाँ भय और संदेह नहीं है, वहाँ सिवा विश्वास के क्या हो सकता है? और जहाँ विश्वास है वहाँ असफलता का प्रवेश नहीं हो सकता है।

कुँवर अर्जुनसिंह एक राजनैतिक व्यक्ति हैं और राजनीति के विषय में यह मान्यता है कि वह कपट का ही खेल है। तो इस कपट के खेल में कोई निष्कपट व्यक्ति क्यों जायेगा? यदि श्री अर्जुनसिंह इस खेल में सम्मिलित हुए हैं तो अवश्य ही उनकी किशोर अनुभूतियों में वह निष्कपटता नहीं होगी जो उन्हें इस कपट के खेल से दूर रखने में समर्थ होती। पर, क्या राजनीति अपने आप में कपट का खेल है? अथवा इस खेल को खेलने वालों ने अपने कपटी नियम बना लिए हैं? महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू भी तो राजनीति में थे पर उन्होंने तो कोई कपट नहीं किया। राजनीति के खेलों का ओलंपिक तो **महाभारत** है जिसमें कपट और निष्कपट राजनीति के

उदाहरणों की भरमार है। इसी कपट और निष्कपट राजनीति के महाभारत का वह अद्भुत प्रसंग है जिसमें द्रौपदी का चीरहरण एक सबसे बड़े राजनैतिक स्थल बनकर उपस्थित हुआ था। इस स्थल पर ऐसा कौन-सा महाभारत का वीर पुरुष था जो उपस्थित नहीं था। सभी थे– भीष्म पितामह और आचार्य द्रोण से लेकर कर्ण और अर्जुन तक, पर किसी ने भी आगे आकर उस चीरहरण को नहीं रोका– यहाँ तक कि कृष्ण ने भी नहीं। उन्होंने केवल द्रौपदी की लाज की रक्षा की पर चीरहरण को नहीं रोका। ऐसा क्यों हुआ? इसमें कौन-सी कपट की राजनीति थी? अथवा क्या यह पांडवों की निष्कपट राजनीति का परिणाम था जो चीरहरण के रूप में सामने आया? यदि इसे निष्कपट पांडव-नीति का परिणाम माना जाता है तो फिर यह भी स्वीकार किया जाना चाहिये कि चीरहरण भले हो पर द्रौपदी की लाज कभी भी निष्कपट राजनीति के कारण नहीं जायेगी।

आश्चर्य, किसी को भले हो पर मुझे यह कहने में तनिक भी संदेह नहीं है कि अर्जुनसिंहजी की राजनीति एकदम निष्कपट है। उनकी राजनीति में जब भी सबसे अधिक निष्कपटता उभर कर आती है कपटशील राजनीति में उतनी ही तेज़ी के साथ तहलका मच जाता है क्योंकि कपटशील राजनीति अपने सम्मुख निष्कपट राजनीति को देखकर अपना आत्मबल खो देती है। श्री अर्जुनसिंह की राजनीति भी कोई है ऐसा मुझे कभी-कभी संदेह होता है क्योंकि मैंने उनके जो समाचार-पत्रों में वक्तव्य पढ़े अथवा कभी-कभी उनके संभाषणों को सुना तो मुझे यह महसूस हुआ कि यह कोई ग़ैर राजनैतिक नेता बोल रहा है। चुनाव सभाएँ जो मात्र राजनीति के लिए ही आयोजित होती हैं उनमें भी श्री अर्जुनसिंह के विचारों में कोई तात्कालिक लाभ की बात देखने को नहीं मिली। जो कुछ भी कहा उसमें स्वविवेक को ही कुरेदने की कोशिश की गई। किसी पर प्रहार अथवा आक्षेप का प्रश्न ही नहीं उठा किसी ने यह भी नहीं कहा कि श्री अर्जुनसिंह ने चुपचाप कोई कानाफूसी की है। सभी ने यही कहा कि कुँवर साहब बहुत कम बोलते हैं। सुनकर किसी की बात पर वे प्रतिक्रिया भी व्यक्त नहीं करते हैं। आश्वासन भी वे बहुत कम देते हैं। कार्य हो जाता है पर वे यह भी नहीं कहते हैं कि उन्होंने उस कार्य को पूरा कर दिया। विधानसभा अथवा उनके बाहर भी वे कभी यह नहीं कहते हैं कि अमुक कार्य उन्होंने किया है। कार्य का सारा श्रेय वे अपने सहयोगियों और पार्टी के नेताओं को देते हैं। उनके आचार और व्यवहार में कहीं कोई अंतर नहीं है। यदि वे कहते हैं कि "मैं पार्टी का सिपाही हूँ और अपने नेता के आदेश का पालन करता हूँ।" तो बराबर उन्हें इस स्थिति में देखा गया। उन्हें पार्टी अथवा उसके नेता के द्वारा जो कार्य दिया गया उन्होंने उसे बेहिचक बिना किसी अवरोध के स्वीकार कर लिया।

विगत वर्षों में विशेषकर 1985 के बाद उनको अनेक प्रकार की ज़िम्मेदारियाँ सौंपी गई और वे बिना किसी संकोच के उनको निबाहते चले गये। 1985 में मुख्यमंत्री बने और दूसरे दिन उन्हें पंजाब का राज्यपाल बना दिया गया तो वे वहाँ चले गये। पंजाब की समस्यामूलक स्थिति के बीच 'लोंगोवाल-समझौता' और चुनाव दोनों ही सम्पन्न करा दिये तो फिर उन्हें राजीव गाँधी ने केन्द्रीय मंत्री परिषद का सदस्य बना दिया, फिर काँग्रेस का उपाध्यक्ष और फिर केन्द्र में संचारमंत्री और फिर मुख्यमंत्री, आदि-आदि। इस बीच चुनाव भी– दिल्ली और खरसिया से लड़े और जीत गये। राजीव गाँधी और उनकी माता श्रीमती इंदिरा गाँधी दोनों के ही विश्वासपात्र रहे। पं. नेहरू के कहने से तो वे काँग्रेस में आये अन्यथा निर्दलीय ही बने रहते। प्रदेश की राजनीति में वे पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र के विश्वासपात्र बनकर उनके मंत्रिमण्डल में सम्मिलित हुए तो प्रकाशचंद सेठी के मंत्रिमण्डल में पार्टी हाईकमान की राय पर सम्मिलित हुए। पं. श्यामाचरण शुक्ल के मंत्रिमण्डल में उन्हें नहीं लिया गया तो वे बाहर रहे। जब काँग्रेस 1977 में विपक्ष की भूमिका के लिए चुनी गई तो वे विपक्ष के नेता बनकर विधानसभा में बैठे। एक बार विधानसभा के चुनाव में वे अपने ही क्षेत्र के समाजवादी नेता चन्द्रप्रताप तिवारी से हार गये तो पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र ने उन्हें दूसरे क्षेत्र से चुनकर अपने मंत्रिमण्डल में शामिल कर लिया।

श्री राजीव गाँधी और श्रीमती इंदिरा गाँधी के आदेशों का जैसा पालन उन्होंने किया ठीक उसी प्रकार का पालन वे वर्तमान प्रधानमंत्री और काँग्रेसाध्यक्ष श्री नरसिंहराव का भी करते हैं। श्री नरसिंहराव ने उन्हें मानव संसाधन विकास मंत्रालय का भार सौंपा और जो सहयोगी और सलाहकार दिये उन्होंने स्वीकार कर लिया। तिरुपति में सर्वाधिक मतों से काँग्रेस कार्यकारिणी के लिए चुने जाने के बाद भी जब श्री नरसिंहराव ने उन्हें निर्वाचित श्रेणी से हटाकर मनोनीत सदस्य की श्रेणी में कार्यकारिणी का सदस्य बनाया तो और भी प्रसन्न हुए और कहा कि उन्हें अध्यक्ष और सदस्यों का विश्वास प्राप्त हुआ है।

विभिन्न पदों और विभिन्न परिस्थितियों में रहकर उन्होंने जो कार्य किया है उसकी आलोचना सुनने में नहीं आई। जो कुछ सुनने में आया वह यह कि श्री अर्जुनसिंह कोई बड़ी चाल चलने जा रहे हैं। वह चाल अभी तक सामने नहीं आई है जो कुछ सामने आया है वह है कुछ लोगों का विरोध जो समाचार-पत्रों के पृष्ठों पर तो देखा गया पर पार्टी में अथवा उनकी किसी नीति के विरुद्ध नहीं दिखाई दिया। कुछ का कहना है कि श्री मोतीलाल वोरा, पंडितश्यामाचरण शुक्ल और श्री माधवराव सिंधिया उनके बड़े विरोधी हैं, पर, वे प्रदेश काँग्रेस के अध्यक्ष रहे कहीं विरोध नहीं हुआ। फिर उन्होंने श्री दिग्विजय सिंह को अध्यक्ष बनाया तो कहीं विरोध नहीं दिखा किसी ने कहा था कि श्री अजीत जोगी श्री अर्जुनसिंह के आदमी हैं तो अब उन्हें राज्यसभा में नहीं भेजा जाएगा, पर वे राज्यसभा में गये। तो इस प्रकार विरोध की चर्चाएँ जितनी सामने आई उनके ठोस प्रमाण तो कहीं नहीं दिखलाई दिये। फिर, भारतीय जनता पार्टी ने उन पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया और चुरहट लॉटरी कांड की धूम मचाई तो उसके भी कोई विशेष परिणाम सामने नहीं आये। उनके निवास केरवा डेम की चर्चा भी उठाई गई तो उसके काग़ज़ात भी इनकम टेक्स विभाग ने देख लिए। पर चर्चाएँ अभी भी ज़ारी हैं और श्री अर्जुनसिंह की निष्कपट राजनीति के क़दम बढ़ते जा रहे हैं।

इन्हीं क़दमों में एक क़दम भारतीय जनता पार्टी के द्वारा उठाये गये अयोध्या में मंदिर-मस्जिद का विवाद है जिसको श्री अर्जुनसिंह भारतीय प्रजातंत्र और संविधान के भविष्य के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। भारतीय जनता पार्टी की आज की वोट्-राजनीति को वे उतना महत्त्व नहीं देते हैं जितना महत्त्व वे उस सिद्धांत पर होने वाले प्रहार को दे रहे हैं जो आगे चलकर भारतीय संविधान के मूल को नष्ट कर देगा और इस महादेश की एकता और समरसता को समाप्त कर देगा। वे जानते हैं कि भारतीय जनता पार्टी क्या है? वे इस पार्टी की आड़ में पनप रहे धर्मान्धता और संकुचित राष्ट्रवाद को देख रहे हैं जिसने सदियों से दुनिया के देशों को तबाह किया है। दो विश्व युद्धों के पीछे कौन-सी धारणाएँ थीं और आज वे धारणाएँ किस रूप में सामने आ रही हैं। जाति, धर्म और भाषा की विविधता का जो सुख और सौन्दर्य ईश्वर ने मनुष्य को दिया है उस सौन्दर्य को नष्ट करने वाले लोग किसी ईश्वरीय सत्ता में विश्वास नहीं करते हैं। उनकी मानसिकता में भावगत सत्ता का कोई स्थान नहीं है। वे एक पिशाच सत्ता के पुजारी बनकर चलते हैं जो भाई-भाई में शत्रुता पैदा करते हैं और जो भी शिव और सुंदर है उसको नष्ट कर उस पर मिथ्या तत्व की स्थापना कर देते हैं। पिशाच सत्ता की राजनीति कपट की राजनीति होती है। वह सत्य को त्याग कर मिथ्या तत्वों को लेकर चलता है। इन तत्वों पर प्रहार गाँधीजी ने सत्य और अहिंसा से जब किया तो अँग्रेज़ी सत्ता की हिंसा क़ाफूर हो गई और इसी प्रकार जब झूठी सभ्यता और संस्कृति का ढिंढोरा पीटने वालों के सामने पंडित नेहरू ने भारत की खोज प्रस्तुत कर दी तो वे सब घरोंदे उनकी पवित्र गंगा में बह गये।

श्री अर्जुनसिंह, गाँधी और नेहरू की उस काँग्रेस की अनुभूतियों को संजोकर रखे हैं जो उन्होंने बीस वर्ष की आयु में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अपने अध्ययन काल में संजोयी थीं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की शैक्षणिक परम्पराएँ और उसके परिसर से लगा हुआ "स्वराज्य-भवन" जो नेहरू ख़ानदान की याद दिलाता है। गंगा-जमुना का संगम

और भारद्वाज ऋषि का आश्रम युवा अर्जुनसिंहजी के लिये कोई धार्मिक तीर्थ-स्थल नहीं था वह उनके युवामन की उस शाश्वत और सनातन शक्ति का प्रेरक स्थल था जिसके माध्यम से उन्होंने अपने मन-वचन और कर्म की संरचना की है। राजनैतिक जीवन तो उनके उस कर्म की घोषणा करता है जो अख़बार नवीसों और फोटोग्राफ़रों को दिखाई देता है पर वह मन और वचन की संरचना क्या है जिसमें झुग्गी-झोपड़ी, रिक्शा चालक और गिरिजन, वे आदिवासी आते हैं जिनके जीवन का आधार वनोपज है? वह मन क्या है जिसमें साहित्य अकादमियों और भारत-भवनों के सपने संजोये गये? वह कौन-सी भावुकता है जो कलाकारों, साहित्यकारों, देशभक्तों और प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों की पीड़ा के साथ अपने को एक बना लेती है? समाज में अपाहिज, वृद्ध, प्रताड़ित महिलाओं की करुण रूदन को सुनने वाली श्रवण शक्ति को किन अनुभूतियों ने सँवारा है? वह किस अनुभूति का प्रभाव है जो मुख्यमंत्री की गौरव मंडित अहंकार की सत्ता को एकाएक हटाकर किसी रुग्ण कलाकार के पास श्री अर्जुनसिंह को पहुँचा देती है, अथवा किसी अपने मातहत कर्मचारी जगदीश शर्मा को केवल इसलिए पुरस्कृत करती है कि उसने नियमों के अंतर्गत मुख्यमंत्री को भी बाँधकर रख दिया।

राजनीति यदि कुटिल और कपटी है। राजनीति यदि सत्ता मोहक और अहंकार की उद्घोषक है। तो कहना होगा कि श्री अर्जुनसिंह कतई राजनीति के आदमी नहीं है क्योंकि उनके चरित्र और व्यवहार में यह बातें नहीं हैं। आधुनिक प्रजातंत्र में यदि राजनीति फूहड़ बन गई है अथवा मिथ्याचारियों के द्वारा उसका अपराधीकरण कर लिया गया है तो फिर यह राजनीति भी श्री अर्जुनसिंह की नहीं है तब फिर उनकी राजनीति क्या है? उनकी राजनीति पार्टी स्तर पर काँग्रेस की वह राजनीति है जिसकी समझ उन्होंने तब पाई थी जब वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में छात्र थे। अर्थात् राष्ट्रीय आंदोलन के आदर्श और उन आदर्शों पर बनाया गया भारत का संविधान और उस संविधान के अनुरूप भारतीय समाज का निर्माण करने का वह संकल्प जो संविधान के निर्माताओं ने लिया था। भारतीय संविधान को जब अंगीकृत किया गया था तब श्री अर्जुनसिंह बीस वर्ष के थे। जिस पार्टी ने सत्य और अहिंसा को मान्यता नहीं दी बल्कि एक अस्त्र मानकर स्वाधीनता का संग्राम लड़ा था उस पार्टी के आदर्श और उसके महान नेताओं की प्रेरणा ही श्री अर्जुनसिंह की पार्टीगत राजनीति है।

पार्टीगत राजनीति के आदर्शों को जब जन-सहमति प्राप्त होती है तो वह प्रजातंत्र में सत्ता की पर्याय बनकर सामने आती है। श्री अर्जुनसिंह ने सत्ता में रहकर उस पार्टी की सत्तागत नीति का निर्धारण किया। उनकी ओर से लिखे गए अधिकारियों, विधायकों अथवा सरपंचों को पत्र इस बात के उदाहरण हैं कि वे प्रजातंत्र में राजसत्ता का संचालन कैसा चाहते हैं। उच्च अधिकारियों की बैठक में उन्होंने कहा– "यहाँ मैं इस बात पर जोर देना चाहूँगा कि ऐसी बातें या सूचनाएँ जो अच्छी न लगने वाली हों, उनको छिपा लेने की वृत्ति ठीक नहीं है, इससे स्वयं का ही नुक़सान होता है।... हर जानकारी मुक्त रूप से प्राप्त होने की व्यवस्था हो।" आज के युग में जानकारी अपने आप में एक शक्ति है। यदि जनता को मुक्त जानकारी प्राप्त होती है तो वह सशक्त बनती है और शासन तंत्र की उसकी समझदारी बढ़ती है।

प्रजातंत्र का जो आदर्श श्री अर्जुनसिंह का है उसमें जनता की समझदारी महत्त्वपूर्ण है और यह समझदारी बिना "मुक्त जानकारी" के संभव नहीं है इसलिये प्रशासन तंत्र में वे छिपाव-दुराव नहीं चाहते हैं और चाहते हैं कि अच्छी-बुरी कोई भी चीज़ को छिपाया न जाये। जो भी लोग शासन में कार्य करते हैं उनके भीतर सेवा और संवेदनशीलता होनी चाहिये। इस संबंध में उनकी यह बात उल्लेखनीय है–

"वे लोग पिछड़े हुए हैं क्योंकि उनके पास साधनों का अभाव है, वे अपढ़ हैं और इसलिए हमसे कुछ संवेदनशीलता की आशा रखते हैं।... प्रजातांत्रिक व्यवस्था ने हमें एक उत्तरदायित्व सौंपा है कि हम उनकी आशाओं और आकाँक्षाओं

को मूर्तरूप दें। आशा जैसे कि आप जानते हैं एक बड़ा अस्त्र होती है और उससे बड़े करिश्मे सम्पन्न हो सकते हैं। साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि निराशा और हताशा जनित दु:साहस भी उतनी ही बड़ी प्रेरणा के स्रोत हैं। इन दोनों के संतुलित संमिश्रण ने, इतिहास साक्षी है, बहुत से राष्ट्रों का हुलिया बदल दिया है। लेकिन अगर यह संतुलन बिगड़ गया तो जो व्यवस्थाएँ अपने को बहुत महत्त्वपूर्ण समझती हैं, अपने को बहुत प्रासंगिक समझती हैं... उन्हें चुपचाप इतिहास के गर्त में ढकेल दिया जाता है।"— (10 फरवरी 1984)

उपरोक्त विचारों की ऐतिहासिक सच्चाई आज हमारे सामने है। सोवियत संघ का विघटन हुआ और संतुलन के बिगाड़ की बात वहाँ की समाजवादी व्यवस्था के संदर्भ में देखिए। वह व्यवस्था जो अपने को प्रासंगिक समझती थी उसे इतिहास के गर्त में ढकेल दिया गया। श्री अर्जुनसिंह ने ये शब्द जिनके बीच कहे थे वे भी इस तंत्र और व्यवस्था के अंश हैं। जन आकाँक्षाओं को मूर्त रूप न दे सकने के फलस्वरूप यदि निराशा और हताशा सामने आती है तो उसके परिणाम क्या होंगे? यह कोई विचारक और बुद्धिजीवी ही सोच सकता है। इस अर्थ में अर्जुनसिंह सचमुच एक बड़े विचारक और बुद्धिजीवी हैं। सामान्यत: राजनैतिक व्यक्ति अपने सामने की समस्याओं को ही जानता है और उन्हीं पर विचार कर अपनी राय दे सकता है पर, श्री अर्जुनसिंह यह नहीं करते हैं। उनके सामने समस्याएँ आती हैं तो वे उनके आकार और विस्तार को देखते हैं और फिर उनके परिणामों पर विचार करते हैं।

श्री अर्जुनसिंह ने शिक्षामंत्री और मुख्यमंत्री के रूप में सभी समस्याओं को हल करने की चेष्टा ही नहीं की वरन् उन्होंने उसे हल भी कर दिया। आज इस प्रदेश में एकीकृत विश्वविद्यालय अधिनियम है और उच्चशिक्षा अनुदान आयोग है। इन दोनों के माध्यम से प्रदेश की उच्चशिक्षा में व्याप्त वे सारी कठिनाइयाँ समाप्त हो गई हैं जो छात्रों और उनके अभिभावकों को झेलनी पड़ती थीं। शिक्षकों के ज्ञान वार्धक्य को ध्यान में रखकर उन्होंने ही शिक्षकों की सेवाएँ साठ वर्ष तक रखने का शासकीय निर्णय लिया। शिक्षकों, महिलाओं, आदिवासियों और अनुसूचित जाति तथा अल्पसंख्यकों के लिये उन्होंने जितनी कल्याणकारी योजनाएँ लागू कीं उतनी किसी ने नहीं कीं क्योंकि उन्होंने यह महसूस किया कि समाज के विकास का आधार कमज़ोर वर्ग है और यदि यह वर्ग कमज़ोर बना रहा तो समाज के विकास में गतिहीनता आना स्वाभाविक है। इतना ही नहीं इस गतिहीनता के साथ-साथ समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग विकास की यात्रा से अलग हो जायेगा। उसके अलग होने का अर्थ है कि समाज पंगु हो जायेगा।

श्री अर्जुनसिंह ने विकास प्रक्रिया का अध्ययन एक अच्छे समाजशास्त्री और अर्थशास्त्री के रूप में किया और जीवन की गुणवत्ता को जहाँ एक ओर अर्थसत्ता के साथ जोड़ा तो दूसरी ओर उसे शैक्षणिक और सांस्कृतिक आयामों से जोड़ा। **भारत-भवन** जैसे अनूठे राष्ट्रीय सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना और भाषा अकादमियों का निर्माण उनकी सांस्कृतिक सूझ के ही परिणाम हैं। राजनैतिक व्यक्ति अपने अस्तित्व और लोकप्रियता के लिए कभी भी यह नहीं चाहता है कि जनता में ज्ञान-विज्ञान का विकास हो। वह प्रबुद्ध बने और शासन तंत्र में भागीदारी निबाहने के लिए तैयार हो क्योंकि इस प्रक्रिया में उसे भय रहता है कि वह कहीं अपनी मिडलची बुद्धि और ओछे क़द के कारण अलग न कर दिया जाये। अपने नेतृत्व को ख़तरे से बचाने के लिए कितने ही क्यों, प्राय: सभी नेता यह प्रयत्न करते हैं कि उनके आसपास अदने क़द के लोग एकत्रित हों और उनके सामने का जनसमूह अपढ़ ग़रीब और अज्ञान हो। पर, अर्जुनसिंहजी की नीति ठीक इससे विपरीत रही है और आज भी है। वे जनता को प्रबुद्ध बनाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं और अपने आसपास वे प्रबुद्ध अधिकारी तथा सहयोगी रखते हैं जिनकी राय और सलाह का वे सम्मान करते हैं। वे राजनैतिक व्यक्तियों से अधिक बुद्धिजीवियों, लेखकों और कलाकारों के माध्यम से कार्य करना पसंद करते हैं। पंजाब के राज्यपाल पद पर रहकर उन्होंने जो पंजाब की समस्या का हल निकाला वह वहाँ के पत्रकारों, अध्यापकों और लेखकों के माध्यम से ही निकाला। उनके भाषणों में जनता को शिक्षित करने

का प्रयास होता है। कहीं लफ्फ़ाजी या आत्म-प्रशंसा नहीं होती है। कितनी ही बार उनके भाषणों को सुनकर पं. जवाहरलाल नेहरू की याद आ जाती है। पं. जवाहरलाल नेहरू जनता के सबसे बड़े शिक्षक थे। वे आमसभाओं में बोलते कम थे जनता के साथ प्रगट सह-चिंतन करते थे। कितने अवसरों पर उन्होंने बड़ी-बड़ी नीतियों को पहले जनता के सामने रखा बाद में वे काँग्रेस कार्यकारिणी अथवा संसद के सामने आई। कभी-कभी नेहरूजी किसी प्रेस के व्यक्ति को कुछ नीतियों पर दीक्षित कर देते थे और फिर उसके बाद उससे कहते थे इस पर जनमत आने दो और जब जनमत सामने आ जाता था तो फिर उसके बाद नीतियाँ सामने आ जाती थीं।

क्या ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि श्री अर्जुनसिंह 'सर्वहारा' की चर्चा करने के बाद यह देखने का प्रयास कर रहे हैं कि देखें सर्वहारा के लिए कौन क्या करने की सोचता है? सर्वहारा की परिभाषा में कौन आता है? और सर्वहारा क्या पाकर सबसे पहले खुशी के नगाड़े बजायेगा। मुख्यमंत्री अर्जुनसिंह ने 'सर्वहारा' शब्द का प्रयोग कितनी बार और कब-कब किया है इसकी मीमांसा की जाये और फिर देखा जाये कि उन्होंने सर्वहारा की परिभाषा में किसको शामिल किया और उसको क्या सबसे पहले दिया जिससे वह खुशहाल हुआ? उनके 'सर्वहारा' समाज में वह आदिवासी आया जिनके वनों का लाभ दूसरे उठा रहे हैं तो वनोपज में उसकी भागीदारी की योजना शुरू हो गई और तेंदूपत्ते तक से उसके मालिकाना अधिकार सहकारिता के माध्यम से जोड़ने का प्रयास किया गया। वे उस योजना को साकार नहीं कर पाये और प्रदेश से चले गये पर, उस योजना को तोड़ने की अब हिम्मत नहीं है, भले ही निहित स्वार्थ हेर-फेर कर लें। श्री अर्जुनसिंह का दूसरा सर्वहारा वर्ग वह है जो झुग्गी-झोपड़ी में रहता है पर वह भी उसकी नहीं है– वह मिट्टी की संतान है पर वह अपनी माँ को माँ नहीं कह सकता है– इस स्थिति को बदला गया। उनका तीसरा 'सर्वहारा' वह है जो मेहनत कर रिक्शा चलाता है पर वह उसका नहीं है। यह उसे मिल जाये तो उसे स्वर्ग मिल गया क्योंकि अब दो-जून की रोटी वह रिक्शे का स्वामी बनकर कमा सकता है। महिलाएँ और वृद्ध, पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यक ये यदि सर्वहारा नहीं तो भी इनकी स्थिति सर्वहारा वर्ग के कठिनाइयों के बीच ही बनी हुई है इसलिए इनके लिए भी योजनाएँ बनाई जानी चाहिए। श्री अर्जुनसिंह ने जो कार्य इन वर्गों के लिए किया उसका ही यह परिणाम है कि आज श्री अर्जुनसिंह कहीं भी चले जायें– उनके आसपास एक ही नारा गूँजेगा– 'ग़रीबों का मसीहा– अर्जुनसिंह।'

यह नारा किसी पार्टी कार्यकर्त्ता ने उन्हें नहीं दिया है यह नारा उनके बीच से ही उपजा है। यदि ग़रीबों के मसीहा के रूप में श्री अर्जुनसिंह ने अपनी स्थिति समाज के निचले और पिछड़े वर्ग में बनाई है तो शिक्षा, संस्कृति और कला के पारखी की स्थिति उन्होंने बुद्धिजीवियों के बीच बनाई है। आज देश और प्रदेश का कोई अध्यापक, कलाकार, लेखक अथवा रंगकर्मी नहीं है जो यह न कहता हो कि श्री अर्जुनसिंह के रहते शिक्षा या खेलकूद अथवा कला के लिए धन की कमी नहीं हो सकती है। बुद्धिजीवियों और कलाकारों की उनके लिए कोई पार्टी नहीं है– जहाँ भी इनका सम्मेलन हो ये जाने के लिए तैयार हैं। **प्रगतिशीतल लेखक** संघ वामपंथियों का संगठन है। उसके प्रदेश में होने वाले राष्ट्रीय अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष बनने में उन्होंने गौरव का अनुभव किया। यह सब कुछ एक विशुद्ध राजनेता का कार्य नहीं है– इसके पीछे एक कलाकार, एक बुद्धिजीवी, एक बहुत ही श्रेष्ठ और सुसंस्कृत जीव की आत्मा कार्य करती है। यह आत्मा मानवी जीवन के सर्वांगीण विकास की एक यात्री आत्मा है जो श्री अर्जुनसिंह को परिचालित करती है। उनके भीतर यह शक्ति अथवा इस आत्मप्रकाश की स्थिति को सहज ही निर्मित करना संभव नहीं है। अवश्य ही इसके लिए अध्ययन, मनन और चिंतन की दीर्घ साधना की आवश्यकता हुई होगी। इस आवश्यकता को उन्होंने किस-किस प्रकार से पूर्ण किया होगा। यह तो उनका आत्म चरित्र ही बता सकता है। पर, जो उनके व्यक्तित्व से दिखलाई देता है और उनकी वाणी की स्वर लहरियों और छन्दों से गुंजित

होता है, उससे तो यह कहा जा सकता है कि साधना में मौन, मानस में अविरल स्निग्ध चिंतन हृदय में समरसता और विवेक के लिए असीम शून्य मन:स्थली का आग्रहपूर्ण आमंत्रण उनके पास है जो लौकिक दृष्टि से एक विरल सम्पत्ति है। नि:संदेह उनके अध्ययन में गहराई और उनके चैत्य पुरुष की निर्लिप्त जीवन यात्रा ही उनके निरंतर व्यक्तित्व के विकास की साक्षी है। उनके जिस रूप को राजनीति में देखा जा रहा है वह उनका रूप नहीं है और यही कारण है कि हर राजनैतिक विरोधी अंत में उनके बढ़ते कदमों के पीछे ही हो जाता है या दर-किनार कर दिया जाता है क्योंकि इतिहास की देवी का लक्ष्य श्री अर्जुनसिंह के लिए वह नहीं है जो उनके विरोधी समझते हैं।

और अंत में—

श्री अर्जुनसिंह एक द्विविधा जन्य ऐसी राजनैतिक पीढ़ी के सदस्य हैं जिसने गर्भावस्था में देश की स्वाधीनता का संकल्प लिया पर स्वाधीनता के आगमन पर यह पीढ़ी विवेक शून्य बनकर सामने आई। जैसे-जैसे स्वाधीनता पल्लवित और पुष्पित हुई वैसे-वैसे यह पीढ़ी एक प्रकार की वत्सलता से ग्रसित होती चली गई और उसके भीतर की क्षमता, प्रौढ़ता के बोझ से उत्साहहीन बनकर समझौतों के गिरोह में फँस गई— एक ओर समझौता इसने अपनी पूर्व पीढ़ी से कर अपने विद्रोह और नूतनता के स्वर को दबा लिया और दूसरी ओर आगे आने वाली पीढ़ी को अपनी साख और मर्यादा के हित में विद्रोही बनने से रोका और लकीरों के बीच ही चलने को बाध्य किया। इस सब प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ कि अब जो इस पीढ़ी के बाद की पीढ़ी की संतानें हैं वे मर्यादाओं, साखों और सीमाओं के अतिक्रमण में विश्वास करने लगी हैं और अपनी आधी-अधूरी समझ और अधकचरे मानस को लेकर जो कुछ करने जा रही है उसके लिए श्री अर्जुनसिंह जैसे ही कुछ लोग हैं जो अपनी पीढ़ी की पूर्वाग्रह युक्त मानसिकता से दूर हटकर एक नया दृष्टि पथ उपस्थित कर सकते हैं।

☐ *हनुमानप्रसाद वर्मा*— *प्रो. हनुमान प्रसाद वर्मा जबलपुर (मध्यप्रदेश) के जाने माने पत्रकार हैं। आपको हिन्दी और अँग्रेज़ी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार है। दैनिक नवीन दुनिया में आपके आलेख और विचारोत्तेजक टिप्पणियाँ चर्चा का विषय रही हैं। आप अँग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर और हिन्दी में लेखक-पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध हैं।*

बुद्धिजीवियों से बातचीत

कुछ मुलाक़ातें

कला संबंधी निर्णय सत्ता नहीं लेगी

साहित्यकार शानी की मुलाक़ात

शानी : मध्यप्रदेश ने इधर अपनी सांस्कृतिक गतिविधियों और कला संबंधी अनेक पहल करके सारे देश का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। यह पिछले अरसे से ही हुआ है। क्या इस आकस्मिक चेतना के पीछे सरकार की दृढ़, सुदीर्घ, सुविचारित योजना है?

अर्जुनसिंह : यह आकस्मिक नहीं है। आपको याद होगा, क्योंकि तब आप भी मध्यप्रदेश में थे, काँग्रेस सरकार ने 1973 में ही इस ओर अपनी पहल कर दी थी और तभी संस्कृति विभाग की स्थापना की नीति भी स्वीकृत कर ली गई थी और गतिविधियाँ आरम्भ हो गई थीं। क्या आप भूल गये 1973 में ही उत्सव का आरम्भ हुआ था और बड़े व्यापक पैमाने पर इसकी सराहना हुई थी। यही नहीं और भी कई आयोजन हुए थे और उनका सिलसिला चल निकला। हाँ, बीच के तीन साल ज़रूर ऐसे रहे, जब तत्कालीन सरकार की उदासीनता या किसी कारण से मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक गतिविधियाँ वैसी नहीं रहीं। इसलिए मैं आपसे सहमत नहीं हूँ कि यह आकस्मिक है। दरअसल, यह उसी शृंखला में आगे रखे जाने वाले क़दम हैं और यह केवल संस्कृति विभाग के संदर्भ में ही सच नहीं है और विभागों और क्षेत्रों में भी जो हो रहा है, आप देख ही रहे हैं।

शानी : मध्यप्रदेश पूरे देश के संदर्भ में एक पिछड़ा हुआ क्षेत्र माना जाता है, और एक हद तक है भी। बावज़ूद कला, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में इसके योगदान के। सच तो यह है कि उत्तरप्रदेश, दिल्ली या बिहार जैसे अन्य प्रदेशों की तुलना में एक अरसे तक इसे गंभीरतापूर्वक या ज़्यादा गंभीरतापूर्वक नहीं लिया गया। इधर प्रदेश ने जो अपना नया रूप रखा है, वह कहीं हीनग्रन्थि के कारण तो नहीं है?

अर्जुनसिंह : मैं नहीं मानता कि यह किसी हीन भावना के कारण है। जैसा कि मैंने पहले ही कहा है, अपना राज्य सांस्कृतिक दृष्टि से किसी से पीछे नहीं रहा। अगर मध्यप्रदेश को वैसा माना जाता रहा है, जैसा आप कहते हैं तो इसके पीछे सिवाय पूर्वाग्रह के और कोई बात नहीं है; और शायद इसीलिए मध्यप्रदेश को पूरे देश के संदर्भ में वह मान्यता या स्वीकृति नहीं मिली, जो मिलनी चाहिए थी। पर्याप्त प्रोत्साहन या मंच के अभाव में जो शिथिलता आ गई थी, दरअसल हम उसी बैक-लॉग को मेकअप करने की कोशिश कर रहे हैं। अगर ये गतिविधियाँ बहुत ज़्यादा दिखाई देती हों तो मैं कहूँगा कि आप इसे तुलनात्मक दृष्टि से न देखें। ये इसलिये बड़ी दिखाई देती हैं क्योंकि पहले इस ओर कुछ नहीं हुआ था। सच यह है कि इसमें व्यक्तिगत रूप से मेरी दिलचस्पी रही है और मैंने इसमें हर

स्तर पर और हर अवसर पर प्रयत्न किये हैं कि यह मूर्त रूप ले सकें। मेरा विश्वास है कि मध्यप्रदेश केवल खनिज या वन-प्रान्तर की सम्पदा के लिए ही समृद्ध नहीं है बल्कि इसकी सांस्कृतिक चेतना भी उत्कृष्ट है। इस चेतना को अभिव्यक्ति देने के लिए कोई-न-कोई मंच और अवसर तो चाहिए ही। हमने सिर्फ़ मंच देने की कोशिश की है।

शानी : मेरी जानकारी में आप उन चंद राजनेताओं में से हैं, जिनकी साहित्यिक, सांस्कृतिक और कला संबंधी पकड़ किसी भी रचनाकार से कम नहीं। पूर्ववर्ती शासनकाल में भी जब आप मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री थे, आपने इसके अनेक उदाहरण रखे हैं। मैं यह मानता हूँ कि आपके मुख्यमंत्रित्व काल में शुरू किए गए संस्कृति विभाग के मूल में आपकी व्यक्तिगत दिलचस्पी और अनुराग ही है। इस महत्त्वपूर्ण शुरुआत ने सारे देश के लेखकों, कलाकारों और कला से जुड़े लोगों में एक उथल-पुथल सी मचा दी है। अब जबकि सांस्कृतिक कारणों के लिए सारा देश मध्यप्रदेश की ओर मुख़ातिब है, क्या आपको नहीं लगता कि अपने इस अनुराग और प्रभाव को आप और प्रदेशों तक भी फैलायें—ऐसे कि स्वयं केन्द्र अपनी सांस्कृतिक नीतियों पर पुनर्विचार करे और सारे मुल्क में एक सांस्कृतिक जागरण का माहौल बन जाये, वह इसलिए कि आप यह कर सकते हैं?

अर्जुनसिंह : आपका संकेत मैं समझ सकता हूँ। जो बात आपने कही है, वह महत्त्वपूर्ण है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इस दिशा में, मैं सोचूँगा और पहल करूँगा।

शानी : कला और राजसत्ता के संबंधों को लेकर एक चिरन्तन विवाद चला हुआ है। हिन्दी में वात्स्यायनजी (अज्ञेय) जैसे वरिष्ठ लेखक इसे ख़तरनाक मानते हैं। क्या आप बतायेंगे कि कला की स्वायत्तता के आप किस हद तक विरोधी या पक्षधर हैं। क्या आपको नहीं लगता कि सत्ता के अधिकाधिक प्रश्रय से कला की दुनिया एक हद तक भ्रष्ट और बाँझ हो सकती है। वह इसलिए कि हर बड़ा रचनाकार बुनियादी तौर पर व्यवस्था विरोधी होता है?

अर्जुनसिंह : कला और सत्ता का संबंध एक नाज़ुक चीज़ है। जैसा कि आपने कहा यह विवाद चिरन्तन है। यह हमेशा चलता रहा है और चलता रहेगा, क्योंकि इसका निर्णायक उत्तर कभी नहीं दिया जा सकता और यह अच्छी बात है। जिस दिन यह विवाद समाप्त हो जायगा, वह दिन दोनों के लिए ख़तरनाक साबित होगा। आपके सामने रूस का उदाहरण बिलकुल साफ़ है, जहाँ कला सत्ता के पूरी तरह अधीन होकर अपनी सत्ता खो चुकी है। आप स्वयं जानते हैं कि कलाकार की मन:स्थिति तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और ऐतिहासिक स्थितियों के दबाव या टकराव से बनती है। सत्ता का रूप भी ये ही तत्त्व निर्धारित करते हैं और इसलिए इन दोनों को एक-दूसरे से अलग कर देखा जाना ठीक नहीं होगा। आपने जिस विवाद की बात कही है, यह नहीं भूलना चाहिए कि वह केवल प्रजातांत्रिक देशों में ही संभव है। व्यक्तिगत रूप से मैं सत्ता के कला में हस्तक्षेप को बहुत स्वस्थ नहीं मानता, लेकिन इसका एक दूसरा पक्ष भी है और हम उसे नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते। मैं आपको याद दिलाना चाहूँगा एक विश्व प्रसिद्ध उपन्यास के बारे में। आपको याद होगा, वह **लौलिता** था और उसके अश्लील और गंदा होने को लेकर कोई बीस बरस पहले बहुत हंगामा मच रहा था। लोग उसे यहाँ ज़ब्त करवाना चाहते थे और इसके पक्ष या विपक्ष में कई तरह की बातें कहीं जा रही थीं। जब देश के इतिहास में पहली बार स्वयं प्रधानमंत्री पं. नेहरू को हस्तक्षेप करना पड़ा था और उन्होंने **लौलिता** के पक्ष में निर्णय देकर यह साबित किया था कि वे कलाकार की स्वतंत्रता या कला की स्वायत्तता के पक्षधर हैं। दूसरे शब्दों में सत्ता का हस्तक्षेप कला में कला को स्वायत्तता देने के लिए ही हुआ

था। अभी हाल ही में इसका दूसरा उदाहरण सामने आया जो आप जानते ही हैं प्रसिद्ध नाटक **घासीराम कोतवाल** को प्रदर्शन के लिए विदेश भेजे जाने के विरुद्ध काफ़ी जनमत तैयार था। लोग उसके विरोधी थे। इस बार प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने सीधे हस्तक्षेप कर नाटक के पक्ष में निर्णय दिया और उसे एक कलाकृति की तरह बाहर भेजने में भूमिका निभाई। लेकिन तो भी मैं मानता हूँ कि वह दिन देश के लिए बहुत दुर्भाग्यपूर्ण होगा, जब सत्ता में बैठे लोग कला के संबंध में अंतिम निर्णायक होंगे। जहाँ तक सत्ता के अधिकाधिक प्रश्रय से कला की दुनिया के बाँझ होने का आपका सवाल है, यह रचनाकर्मियों के स्वयं निर्णय करने की बात है कि वे इसे स्वीकार करें या न करें।

शानी : कुछ लोग यह मानते हैं कि भारत जैसे ग़रीब मुल्क में संस्कृति भद्र और संपन्न वर्ग का चोचला है। मध्यप्रदेश में आज जो भी हो रहा है, वह भोपाल के अलावा चंद शहरों तक ही सीमित है, गाँव की दुनिया को इसका लाभ मिले, इस दिशा में आप या आपका विभाग क्या सोचता है?

अर्जुनसिंह : मैं नहीं मानता कि संस्कृति भद्र और सम्पन्न लोगों का चोचला है। जो लोग ऐसी धारणा रखते हैं वे अतिरेक कर रहे हैं और उसके पीछे पूर्वाग्रह ही नहीं, समस्या को सरलीकृत करके देखने की भूल है। किसी भी संस्कृति का निर्माण पूरे समाज के द्वारा होता है और कलाकार या रचनाकार उसके विभिन्न रूपों को केवल अभिव्यक्ति देने का माध्यम भर होता है। समाज से पृथक् दीखने वाला रचनाकार भी मूलत: और अपरिहार्य रूप से समाज से जुड़ा होता है क्योंकि उसकी सार्थकता समाज के अधिकाधिक लोगों तक पहुँचने में ही है। यह सही है कि अभी हमारे कार्यक्रम भोपाल या चंद शहरों तक ही सीमित हैं, लेकिन अब हम इसे और अधिक व्यापक बनाने की कोशिश कर रहे हैं और करेंगे।

शानी : मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक परंपरा और धरोहर से दूसरे प्रदेशों को या दूसरे प्रदेशों की सांस्कृतिक विशिष्टताओं से अपने राज्य को परिचित कराने के लिए क्या आपके यहाँ कोई अंतर-राज्यीय आदान-प्रदान की योजना है?

अर्जुनसिंह : हाँ, ऐसी एक योजना पर विचार हो रहा है। आगामी 1 नवम्बर 1981 को मध्यप्रदेश की रजत जयंती पड़ती है, उस अवसर पर हम इसे मूर्त रूप देने का सोच रहे हैं।

शानी : एक वर्ग है जो एक अरसे से मानता और हल्ला मचाता आया है कि मध्यप्रदेश, बाहर और ख़ासकर दिल्ली वालों के लिए चारागाह बना हुआ है जबकि स्वयं मध्यप्रदेश के अधिकांश लेखक और कलाकार उपेक्षित हैं। यह एक विशिष्ट मान्यता और पूर्वाग्रह के कारण होता है। आपके क्या विचार हैं?

अर्जुनसिंह : संस्कृति ही क्यों, मध्यप्रदेश तो हर क्षेत्र में बाहर वालों का चारागाह बना हुआ है, यह स्थिति खेदजनक है लेकिन अब हम अपनी सामर्थ्य पर यह प्रयास कर रहे हैं कि प्रदेश के कलाकारों की अपने ही राज्य में उपेक्षा न हो।

शानी : मध्यप्रदेश में जो सांस्कृतिक गतिविधियाँ अब तक हुई हैं या हो रही हैं, उन्हें देखने पर ऐसा लगता है जैसे कविता ही एकमात्र साहित्य की विधा है, क्या साहित्य की दुनिया कविता से आरम्भ होकर कविता पर ही समाप्त हो जाती है। क्या आप भी मानते हैं कि उपन्यास या कथा की विधा दूसरे दर्ज़े की है। अगर हाँ तो क्या टॉलस्टॉय, दोस्तोएवस्की,

चेखव या अपने यहाँ के प्रेमचन्द दूसरे दर्ज़े के हैं? प्रेमचन्द की जन्म शताब्दी के सिलसिले में आपके यहाँ क्या हुआ या होने जा रहा है?

अर्जुनसिंह : यह कहानी या कहानीकार के प्रति अनादरभाव नहीं है, लेकिन मैं समझता हूँ कि बात बिलकुल उल्टी है। कविता अपने फॉर्म-कन्टेन्ट या मिज़ाज की सीमाओं के कारण कम लोगों तक ही पहुँचती है और उसी हद तक वह प्रभावकारी भी है, जबकि उपन्यास या कहानी अधिक सामर्थ्य और प्रभावकारी विधा है और इसीलिए ज़्यादा सार्थक है। जहाँ तक प्रेमचन्द शताब्दी संबंधी कार्यक्रम का सवाल है, कुछ हुआ तो है, लेकिन इसे ज़्यादा बड़े पैमाने पर हम करने का विचार कर रहे हैं।

शानी : मध्यप्रदेश में आपने साहित्य के अलावा दूसरी कलाओं के लिए एक लाख का पुरस्कार स्थापित किया है जबकि साहित्य या शब्दों के रचनाकारों के लिए अधिकतम पुरस्कार राशि इक्कीस हज़ार की है। कला की दो एक-सी महत्त्वपूर्ण विधाओं के बीच यह रुख क्या सौतेला नहीं लगता?

अर्जुनसिंह : आपकी बात सोचने लायक है। ऐसा क्यों हुआ, मैं नहीं कह सकता। मैं मानता हूँ कि ऐसा नहीं होना चाहिए था।

शानी : आपने अपने प्रदेश में कला को लेकर देश का सबसे बड़ा एक लाख का पुरस्कार स्थापित किया और उसकी घोषणा भी हो गई लेकिन अज़ीब बात है कि देशव्यापी या अखिल भारतीय स्तर पर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। क्या यह खेदजनक नहीं है और आपकी दृष्टि में इसके क्या कारण हो सकते हैं?

अर्जुनसिंह : मुझे इस पर स्वयं आश्चर्य है कि ऐसा क्यों नहीं हुआ। देखिए शायद इस कमी की पूर्ति आगे हो जाय। इस पुरस्कार के वितरण के लिए हमने प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी से अनुरोध किया है। अगर वे आ सकीं तो शायद....।

(नई दुनिया, इन्दौर, बुधवार 29 अप्रैल, 1981)

तनाव घटाने की कोशिश हर क्षेत्र में रही

पत्रकार राजेन्द्र माथुर से साक्षात्कार

अपने कार्यकाल से पहले वर्ष का सिंहावलोकन करते हुए मुख्यमंत्री तीन सफलताओं का ज़िक्र करते हैं। सबसे पहले तो वे मानते हैं कि उन्हें एक चौपट प्रशासन विरासत में मिला था, जिसे बड़ी मुश्किल से वे थोड़ा बहुत पटरी पर ला पाये हैं। दूसरे, उनकी राय है कि पिछले एक साल में उन्होंने चारों ओर तनाव घटाने के लिए महती प्रयत्न किया है चाहे वह सत्तारूढ़ पार्टी के अन्दर मौजूद गुटीय तनाव हो, या बाहर के सामाजिक तनाव हों, हर बार उन्होंने मुठभेड़ टालने की कोशिश की है। तीसरे, श्री अर्जुनसिंह की कोशिश यह रही है कि इस राज्य की सही राजनीतिक पहचान विकसित हो। हरिजनों, आदिवासियों और पिछड़ी जातियों का जितना अनुपात मध्यप्रदेश की जनसंख्या में है, उतना ही वज़न उन्हें प्रदेश की राजनीति में भी मिले। कोई हर्ज़ नहीं अगर एक दिन ऐसी स्थिति आ जाय कि पिछड़े वर्गों के नेता के अलावा म.प्र. में कोई मुख्यमंत्री ही न बन पाए।

मुख्यमंत्री मंथर और संयत लहज़े में हर शब्द को तौलकर बोलते हैं। इसलिए प्रश्नों से उत्तेजित होकर हड़बड़ में वे कोई ऐसा वाक्य उगल देंगे, जो ख़बर बन जायगी, इसकी उम्मीद कम रहती है। जिन चीज़ों की वे चर्चा करते हैं, वे भी अमूर्त और वैचारिक अधिक होती हैं। वे इस सूक्ति को जानते हैं कि सज्जन लोग मुद्दों की चर्चा करते हैं, और असज्जन लोग व्यक्तियों की।

भोपाल में उनके निवास पर हुई इस मुलाक़ात में मैंने उनसे पूछा कि आपका मंत्रिमण्डल कुल मिलाकर इतना बेनूर क्यों है और उसमें सही मंत्रियों को ग़लत विभाग तथा ग़लत मंत्रियों को सही विभाग सौंपे गये क्यों प्रतीत होते हैं? मुख्यमंत्री ने इनकार नहीं किया। वे बोले कि मैं प्रतिभा का बाहर से आयात तो कर नहीं सकता। विधानसभा में जो लोग हैं, उनके बीच से ही चुनना होता है लेकिन उन्होंने आश्वासन दिया कि अगली बार जब आप मुलाक़ात के लिए आयँगे, तब तक यह शिकायत नहीं रहेगी।

मैंने उनसे पूछा कि आप हमेशा सबको साथ लेकर चलने और मुठभेड़ टालने की कोशिश करते रहे हैं, इस बात से आपके कई मंत्री साथी सहमत नहीं होंगे। कई ऐसे मौक़े आये हैं जब केबिनेट की बैठकों में ही नहीं, बल्कि विधानसभा में भी मंत्रिमण्डल बँटा हुआ नज़र आया है? मुख्यमंत्री ने जवाब दिया कि कई लोगों का यह मंत्रिपद का पहला अनुभव है, वे समय के साथ परिपक्व होंगे। जहाँ तक मंत्रिपरिषद् के तनावों का प्रश्न है, तो मैंने अपनी ओर से उन्हें बढ़ाने की पहल कभी नहीं की। मैंने चाहा है कि प्रजातांत्रिक प्रक्रियाओं से सारे काम हों, और अधिकाधिक तालमेल व सौमनस्य हो।

ज़ाहिर है कि ऐसे गुटीय विवादों में भोपाल की हर सरकार की काफ़ी शक्ति ख़र्च होती है। मध्यप्रदेश इतना विविध है और यहाँ दबाव इतने अधिक हैं कि प्रतापसिंह कैरो जैसा कोई नेता यहाँ कभी उपज ही नहीं सकेगा? मुख्यमंत्री सहमत थे कि यह दिक्क़त तो है।

पिछले एक साल में अख़बारों में जो भष्टाचार की कहानियाँ छपी हैं, उनका ज़िक्र मैंने मुख्यमंत्री से किया तेंदूपत्ता काण्ड, पाठ्य पुस्तक निगम काण्ड, डिस्टिलरियों का ठेका, इत्यादि। लोग ऐसी कथाओं पर सहज विश्वास ही कर लेते हैं। अत: भष्टाचार विहीन शासन की छवि बनाने के लिए सरकार ने क्या किया है?

श्री अर्जुनसिंह ने कहा कि अख़बारों में जब लगातार छपता रहता है, तो कलंक निर्दोष लोगों पर भी चिपका रह जाता है। इस बारे में अख़बारों को सोचना चाहिए, क्योंकि यदि ऐसा ही माहौल रहा तो सिर्फ़ वे लोग राजनीति में आ पायेंगे, जो अपनी चरित्र हत्या का जोख़िम उठाने के लिये तैयार हैं। जैसे तेंदूपत्ता वाले किस्से को ही लीजिए। क्या कहीं सिद्ध हुआ है कि नियमों का उल्लंघन किया गया था या किसी पक्ष में पलड़ा झुकाया गया? लेकिन फिर भी लोग चर्चायें करते रहते हैं।

मुख्यमंत्री से मैंने कहा कि अगर तबादलों के लिए कोई संस्थागत मशीनरी खड़ी की जा सके तो प्रशासन काफ़ी बड़ी बदनामी से बच जायगा। — उन्होंने जवाब दिया कि शासन से अलग कोई मशीनरी बनाना सम्भव नहीं है। अपने कर्मचारियों की योग्यता और उपयोगिता के बारे में निर्णय लेने से शासन कैसे बच सकता है। लेकिन हाँ, मेरी राय में शिक्षकों के तबादले बिलकुल नहीं होने चाहिये। इस सिलसिले में 1974 में एक शैक्षणिक संहिता हमने बनाई थी, जिसे अब कोई याद नहीं रखता।

श्री अर्जुनसिंह ने कहा कि हम इस बात की भी समीक्षा कर रहे हैं कि राज्य परिवहन निगम ने जितनी रूटें अपने लिए आरक्षित कर ली हैं, उनमें से कितने मार्गों पर वह पर्याप्त वाहन चलाने की स्थिति में है? जहाँ सेवाएँ अपर्याप्त है, वहाँ प्रायवेट बस मालिकों को तीन या चार साल के लिए रूट की नीलामी की बात हम सोच रहे हैं लेकिन बसों का राष्ट्रीयकरण समाप्त करने की बात से मुख्यमंत्री सहमत नहीं थे।

जहाँ तक बेरोज़गारी का प्रश्न है। मुख्यमंत्री का ख़्याल है कि प्रदेश के लोग कई बार छोटे-छोटे हुनर वाली नौकरियों के क़ाबिल भी नहीं पाये जाते। अत: बाहर से आयात करना पड़ता है। अब तकनीकी शिक्षा संचालनालय तक स्कीम बना रहा है, जिससे अधिकाधिक लोगों को हुनर सिखाये जा सकेंगे। भूमि सेना की रोज़गार सम्भावना के प्रति भी श्री अर्जुनसिंह आशान्वित थे।

उद्योग के क्षेत्र में पिछले बारह महीनों में किसी महती सफलता का उल्लेख उन्होंने नहीं किया, लेकिन कहा कि एक ही सरकारी खिड़की पर उद्योगपतियों की सारी अर्जियों का निपटारा करने की योजना हम शीघ्र लागू कर रहे हैं। यों भी कई रियायतें दी गई हैं, जिसके कारण म.प्र. के बारे में काफ़ी पूछताछ बाहर से की जा रही है।

हरिजन आदिवासी अपनी अस्मिता पहचान सकें, इस सिलसिले में विकेन्द्रीकरण की बात भी उठी। सिर्फ़ सरकारी अनुदानों और विभागीय कार्रवाइयों से तो यह काम होगा नहीं। जब तक पंचायत, नगरपालिका, मण्डी और सहकारी समितियों के चुनाव नहीं होंगे, तब तक पिछड़े वर्गों को अपना महत्त्व पहचानने का अवसर कैसे मिलेगा?

मुख्यमंत्री सहमत थे। उन्होंने कहा कि दिसम्बर तक स्वायत्त संस्थाओं के चुनाव जरूर हो जायेंगे। वे इस बात के लिए भी प्रयत्नशील हैं कि वनों की उपज का सही माने में राष्ट्रीयकरण हो जाये और हर्रे, सालबीज, तेंदूपत्ते के एकत्रीकरण में भी जितने बिचौलिए हैं, वे क्रमश: समाप्त कर दिये जायें।

आदिवासी जब अपनी पहचान खोजने की चेष्टा करते हैं, तो वे कंठीवाले बाबा की तरफ मुड़ जाते हैं, मैंने मुख्यमंत्री से कहा। —वे इससे सहमत नहीं थे। उनका कहना है कि बस्तर में कंठीवाला बाबा भी हम सवर्णों ने ही खड़ा किया है, ताकि आदिवासियों को बहकाया जा सके।

शहरों के मास्टर प्लानों की सरासर अवहेलना करके सरकार कई जगह भूमि के ग़लत उपयोग की इजाज़त क्यों दे रही है, मैंने मुख्यमंत्री से पूछा। — वे तनाव न बढ़ाने के लिए कृत संकल्प थे। इसलिए उन्होंने उत्तर नहीं दिया

लेकिन वे सहमत थे कि मास्टर प्लानों पर अमल होना चाहिए।

अगले साल उनका लक्ष्य और आग्रह क्या होगा? — उनका अमूर्त-सा उत्तर था कार्यक्रमों पर समयबद्ध क्रियान्वयन करेंगे।

सिर्फ़ एक प्रश्न मैंने ऐसा पूछा, जो म.प्र. के परे था। संजय गाँधी और आपके चरित्र में ज़मीन आसमान का फ़र्क़ रहा है। आप धैर्य, सुसंस्कार और विधि-विधानों को मूल्य देते हैं जबकि संजय गाँधी अधैर्य की मूर्ति थे। आपके बीच आकर्षण के बिन्दु कौन-से हो सकते हैं?

मुख्यमंत्री ने हँसते हुए कहा कि शायद चरित्रों की विपरीतता के कारण ही यह आकर्षण पैदा हुआ। मैंने उनसे पूछा कि राजीव गाँधी के पदार्पण के बाद क्या राज्यों के मुख्यमंत्री बदले जा सकते हैं? उन्होंने कहा कि ऐसा कतई ज़रूरी नहीं है, हालाँकि यह सच है कि संजय गाँधी से जितनी निकटता पिछले वर्षों में स्थापित हुई, राजीव गाँधी से नहीं है।

वह उनका इंटरव्यू दिवस था। वे पचमढ़ी से आये थे और दूसरे दिन गढ़वाल जाने वाले थे। और भी लोग प्रथम वर्ष के सिंहावलोकन के सिलसिले में उनसे मुलाक़ात की प्रतीक्षा कर रहे थे। 45 मिनिट तक हमने (याने मदन मोहन जोशी और मैंने) गुजार दिये थे और रात के सवा नौ बज गये थे। ताल के किनारे उस परिसर में 30-40 भेंटातुर लोग डोल रहे थे। हम चले आये। पता नहीं मुख्यमंत्री का दिन कब ख़त्म हुआ होगा।

☐ *राजेन्द्र माथुर— दैनिक नई दुनिया इंदौर के वर्षों संपादक रहने के बाद आप नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली के भी सम्पादक रहे हैं। प्रगतिशील विचारधारा के सशक्त हस्ताक्षर राजेन्द्र बाबू ने कई अंतर्राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं साहित्य सम्मेलनों में अग्रणी भूमिका निभाई। प्रखर पत्रकार, ओजस्वी वक्ता, फक्कड़ मित्र के रूप में याद किये जाते हैं।*

ग़रीबों के लिए हमारी प्राथमिकताएँ और नीतियाँ निर्धारित हैं

पत्रकार एन.के. सिंह की बातचीत

एन.के. सिंह : आप मध्यप्रदेश के पहले मुख्यमंत्री हैं जो अपने भाषणों और लेखन में 'सर्वहारा' जैसी क्रांतिकारी शब्दावली का उपयोग करते हैं। राज्य में पिछले 25 वर्षों में सत्तारूढ़ सरकारों ने सर्वहारा वर्ग की भलाई के लिये क्या क़दम उठाए है?

अर्जुनसिंह : क्रांतिकारी शब्दावली से आपका क्या मतलब है? यह समाज के उस वर्ग का सही, सामाजिक और वैज्ञानिक वर्णन है जिसे अस्पष्ट रूप में 'ग़रीब' कहा जाता है।

मध्यप्रदेश में भूमि सुधार के क्षेत्र में विशेष रूप से अच्छा कार्य हुआ है काफ़ी पहले 1959 में मध्यप्रदेश पहला राज्य था जिसने भू-राजस्व संहिता को लागू किया, जिससे सम्पूर्ण राज्य में विभिन्न प्रकार की भूमि की पट्टेदारी समाप्त हो गई और भूमि पर हक़ रखने वाले सभी लोग भूमिस्वामी या पूर्ण मालिक बन गए। इसके बाद फिर हमारा राज्य उन अग्रणी राज्यों में से था जिसने भूमि सीमाबंदी लागू की जिसे बाद में घटाया गया और पहले दी गई छूटों को समाप्त कर दिया गया। हमने निजी जंगलों की ज़मीनों पर भी सीमाबंदी लागू की। इस राज्य में खेतिहर मज़दूरों का वेतन न्यूनतम वेतन अधिनियम के तहत नियंत्रित है और इस पर प्रभावशाली अमल के लिये आवश्यक प्रशासकीय ढाँचा स्थापित किया गया है। हमने क़ानून बनाकर उन भूमिहीन खेतिहर मज़दूरों और ग्रामीण कारीग़रों को उन भू-खण्डों का मालिकाना हक़ दिलवाया है जिन्होंने अपने मकान शासकीय या निजी ज़मीन पर बनाए थे। इसके साथ ही इन वर्गों द्वारा कृषि कार्यों के लिये शासकीय भूमि पर किए गए अतिक्रमण का व्यवस्थापन भी साधारणतया उनके ही पक्ष में कर दिया गया है। इन वर्गों द्वारा लिये गये क़र्ज़ भी अधिकतर प्रकरणों में क़ानूनन माफ़ कर दिए गए हैं और उनके द्वारा रहन या गिरवी रखी गई संपत्ति उनको वापस दिला दी गई है। शोषक साहूकारों को भी दंडित किया गया है। हमने क़ानून बनाकर बंधक श्रमिक प्रथा को समाप्त कर दिया है वर्तमान बंधक के रूप में रखे गए श्रमिकों का पता लगाने और उनको मुक्त कर उनका पुनर्वास करने के लिये सर्वेक्षण किया जा रहा है। छोटे और सीमांत कृषकों को कई योजनाओं से लाभ पहुँचा है। विशेषकर हमारी जनता के कमज़ोर वर्ग की सुविधा के लिये सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ किया गया है।

एन.के. सिंह : चूँकि, आप 'सर्वहारा' के समान शब्द का प्रयोग कर रहे हैं इसलिए आपसे वर्ग समाज और ऐसे वर्ग जैसे सामंतशाही, बुर्जुवा, राष्ट्रीय बुर्जुवा और तथाकथित क्रांति समर्थक बुर्जुवा जैसे वर्गों के अस्तित्व स्वीकार करने की आशा की जा सकती है। आपके विचार में भारत में आज कौन-सा वर्ग राज्य शक्ति को नियंत्रित करता है?

अर्जुनसिंह : कोई भी इतना अनजान नहीं होगा कि वह इससे इनकार करे कि हमारा एक विभिन्न वर्गों वाला समाज है। हमारे देश की एक सबसे बड़ी वास्तविकता एक जातिगत रूप में विभाजित समाज है। जो आपके द्वारा उल्लेखित वर्ग विभाजन से अधिक जटिल है। हमारा अनेकता वाला एक समाज है और भारत में किसी एक वर्ग को राज्य शक्ति को नियंत्रित करने वाला बताना स्थिति को बहुत ही सरल और अवास्तविक तरीक़े से बताना होगा। श्रीमती इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में हमारी पार्टी को हमारे देश के ग़रीबों का प्रबल जनादेश प्राप्त हुआ है। इन्ही ग़रीबों के लिये हमारी प्राथमिकताएँ और नीतियाँ निर्धारित हैं और चूँकि राज्य सत्ता सर्वहारा वर्ग के हितों को पूरा-पूरा समर्धन दे रही है इसलिये हमारे यहाँ वर्गीय अंतर्विरोध की परिणिति अराजकतापूर्ण गृह युद्ध तक नहीं पहुँच सकी है जिससे आरामतलब सिद्धांतवादी परेशान हैं, श्रीमती इंदिरा गाँधी वैचारिक आवरण को परे रखकर देश की वास्तविक स्थिति के तकाज़े को पूरा करने में सफल हैं।

एन.के. सिंह : राज्य के रजत जयंती समारोह के अवसर पर जारी भारी प्रकाशन सामग्री ने स्थिति का बहुत ही लुभावना चित्रण किया है – खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि, सिंचाई सुविधाएँ, विद्युत उत्पादन, साक्षरता में बढ़ोत्तरी की दर, उद्योग, सड़कें आदि। परन्तु पिछले 25 वर्षों में अमीर अधिक अमीर हुए हैं और ग़रीब अधिक ग़रीब हुए हैं यह भावना क़ायम है, आर्थिक विषमता बढ़ रही है। ऐसा क्यों है?

अर्जुनसिंह : हमने लुभावना और ख़ूबसूरत चित्र (एक पूँजीवादी उपमा) नहीं प्रस्तुत किया है। वरन् हमने अपनी मेहनत के पसीने से जो कुछ प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है उसका एक अंश बताने का प्रयास किया है। लोगों ने अपने त्याग से जो प्राप्त किया है उसका कम आकलन करना उचित नहीं होगा। समाज द्वारा उत्पादित सम्पदा का वितरण कुछ अंश में अनचाही दिशा में गया है फिर भी हमने ग़रीबों को और अधिक ग़रीब होने से बचाने और अमीरों को ग़लत तरीक़ों से लाभार्जित करने से रोकने के लिये परिश्रमपूर्वक और समझबूझकर प्रयास किए हैं। मैं इससे सहमत नहीं हूँ आर्थिक विषमता बढ़ी है। केवल विषमता के प्रति जागृति बढ़ी है स्थिति में परिवर्तन के कारण आक्रामक खपत और जीवन की अच्छी वस्तुओं के प्रति चाह बढ़ने से हमारे समाज में पुराने समय से विद्यमान असमानता स्पष्ट हो गई है।

एन.के. सिंह : विकास के आँकड़ों के बावज़ूद स्थिति बहुत अधिक सुखदायी नहीं है। स्थाई मूल्य सूचकांक प्रति व्यक्ति वार्षिक आय निरंतर कम हो रही है। वर्ष 1970-71 में 488 रुपये से वर्ष 1979-80 में 367 रुपये और ग़रीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की संख्या बढ़ रही है। टिप्पणी करें।

अर्जुनसिंह : अस्तित्व के लिये होने वाले संघर्ष के परिणामस्वरूप ग़रीबी और सुविधाओं के अभाव की परिणति अधिक अभाव में होती है। हमारी जनसंख्या ने हमारे आर्थिक विकस का अतिक्रमण कर दिया है और स्रोतों की कमी को नहीं विचारें तब भी अपर्याप्त विकास की कमियों ने विकास में गतिरोध उत्पन्न किया है। हमारी सर्वाधिक कीमती संपदा 'जन शक्ति' को फलदायक और उत्पादन कार्य में लगाना काफ़ी जटिल कार्य है तथा उसके लिये तुरन्त और आसान हल नहीं खोजे जा सकते हैं। फिर भी हम इस दिशा में प्रयासरत हैं और हमने इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये कई कार्यक्रम शुरू किए हैं। हमने भूमि सेना का गठन किया है, सामाजिक वानिकी शुरू की है, अधिक रोज़गार दिलाने वाले छोटे सिंचाई कार्यों और कृषि उन्मुख योजनाओं को शुरू किया है साधारण रूप से इनके परिणाम दिखने में समय लगेगा।

यह सही है कि केवल विकास से अपने आप समानता नहीं आ जाती है। इसलिये आज हितग्राही उन्मुख योजनाओं पर ज़ोर अधिक दिया जा रहा है परन्तु दुर्भाग्य से उनमें नाटकीयता या व्यापकता नहीं होती कि जन संचार के माध्यम उन पर ध्यान दे सकें। ये माध्यम बग़ैर मानवीय रुचि के नाटकीय घटनाओं और बड़ी परियोजनाओं की ओर ही ध्यान देते हैं। मैं चाहता हूँ कि बेहतर ज़िन्दगी के लिये किये जा रहे मानवीय संघर्ष और एक व्यक्ति को अपने कार्य को बेहतर तरीक़े से करने के लिये दी जा रही मदद के विशिष्ट प्रकरण भी वह (माध्यम) देखें।

एन.के. सिंह : पिछले 25 वर्षों में ढाँचे में परिवर्तन के लिये क्या किया गया है?

अर्जुनसिंह : ढाँचे में सर्वाधिक महत्त्व का आधारभूत परिवर्तन जागीरदार, मालगुज़ार और बड़े भूमिस्वामियों जैसे सभी बिचौलियों की समाप्ति और केवल एक श्रेणी 'भूमिस्वामी' की उत्पत्ति है। एक उल्लेखनीय परिवर्तन पंचायतीराज के माध्यम से राजनैतिक शक्ति का प्रजातांत्रिक ढंग से विकेन्द्रीकरण रहा है।

मैं इस तथ्य के प्रति सतर्क हूँ कि इस संस्था ने अपनी जड़ें अभी गहरी नहीं जमाई हैं और पुष्ट और ताक़तवर बनाने के लिये अभी बहुत कुछ किया जाना बाक़ी है। हम ऐसा करने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ हैं और हमने अपने पुराने अनुभवों और ग़लतियों से शिक्षा ली है।

राष्ट्रीय स्तर पर सार्वजनिक क्षेत्र, विशेषकर अर्थ-व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में दी गई प्राथमिकता वह क़दम है जिसने आधारभूत रूप से हमारी अर्थ-व्यवस्था के ढाँचे को प्रभावित किया है पिछले वर्षों में विकसित करारोपण की नीतियों ने भी अर्थ-व्यवस्था के ढाँचे में असंतुलन को दूर करने का प्रयास किया है इसमें कोई संदेह नहीं कि अभी बहुत कुछ किया जाना बाक़ी है। परन्तु इससे आप भी सहमत होंगे कि किसी समाज का ढाँचा एक रात में नहीं बदला जा सकता और हमें यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि हमने सही दिशा में क़दम बढ़ाया है।

एन.के. सिंह : राज्य का प्रमुख उद्देश्य आधारभूत ढाँचे का विकास प्रतीत होता है। यह जनोन्मुख होने के बजाय आँकड़ों पर आधारित दिखाई देता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि 200 मीटर लम्बे और 50 मीटर ऊँचे पुल का निर्माण किसी दूर दराज के गाँवों में एक भूमिहीन खेतिहर मज़दूर को न्यूनतम वेतन सुनिश्चित करने से अधिक भव्य प्रतीत होता है। टिप्पणी कीजिये।

अर्जुनसिंह : मुझे इस बात का दु:ख है कि आप ग़लती पर हैं। भूमि सुधारों पर अमल उपलब्ध अतिरिक्त कृषि भूमि के वितरण, हरिजन और आदिवासी भूमिस्वामियों की मिल्कियत की सुरक्षा और उनकी ज़मीन के हस्तान्तरण को रोकने, भूमिहीन खेतिहर मज़दूरों को न्यूनतम वेतन के भुगतान और साहूकारों और सिद्धांतहीन व्यापारियों से शोषण को रोकने को हम सर्वाधिक महत्त्व देते हैं। आप इससे सहमत होंगे कि आर्थिक विकास और विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के लिए यह काफ़ी नहीं है परन्तु इसके बग़ैर ख़ुशहाली प्राप्त नहीं की जा सकती। इसीलिए हमने काफ़ी सोच विचार कर हमारे स्रोतों के एक भाग को आधुनिकीकरण के लिये अनिवार्य आधारभूत ढाँचे और हमारे अर्थ-व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण के लिये रखा है जिससे कि वह वर्तमान युग की आवश्यकताओं और जन आकांक्षाओं की पूर्ति कर सके।

एन.के. सिंह : मेरे विचार को और अधिक स्पष्ट करने की ज़रूरत है। आपकी सरकार ने आज तक सर्वाधिक क्रांतिकारी क़दम-आदिवासियों की भूमि के ग़ैर आदिवासियों को हस्तान्तरण को अवैध घोषित करने और उसे पिछली तारीख़ 1959 से लागू कर उठाया है। राज्य की कुल जनसंख्या के पाँचवें भाग आदिवासियों की भूमि का हस्तान्तरण

उनके शोषण का प्रमुख ज़रिया रहा है। लगभग एक वर्ष व्यतीत हो चुका है परन्तु आज तक मुझे केवल एक आदिवासी को उसकी ज़मीन का एक हक़ पुनर्स्थापित करने के मामले की जानकारी हो सकी है। प्रगति निश्चित रूप से काफ़ी धीमी है।

अर्जुनसिंह : मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि पिछले कई वर्षों से आदिवासियों के साथ हो रहे अन्याय को दूर करने के लिये हमारे द्वारा उठाए गए क़दम का महत्त्व आपने स्वीकार किया है। वास्तविकता की जानकारी के लिये पिछले बीस वर्षों में की गई ख़रीदी-बिक्री के रिकॉर्ड की जाँच आसान काम नहीं है। विशेषकर उस स्थिति में जबकि लाभान्वित होने वाले लोग उनको पहुँचाई गई सुविधा से अनजान हैं। हमने राजस्व प्रशासन को सक्रिय किया है उस पर भूमि सुधारों पर अमल की महत्त्वपूर्ण ज़िम्मेदारी सौंपी गई है। इस प्रकार हस्तान्तरण के 13,000 मामले दर्ज किए गए हैं और उनमें से 10,000 प्रकरणों का निपटारा किया गया है जिसमें 1,500 आदिवासियों को 2,400 हैक्टर भूमि का पुनः मालिकाना हक़ दिलाया गया है।

एन.के. सिंह : प्रगति की गति धीमी होने का कारण ग़ैर-आदिवासियों को अपने रिटर्न भरने के लिये एक वर्ष की दी गई समयावधि नहीं, बल्कि नियमों पर अमल के लिये जवाबदार राजस्व विभाग द्वारा कार्रवाई नहीं किया जाना है। मैं समझता हूँ कि राजस्व विभाग ने आपकी सरकार द्वारा उठाए गए इस सर्वाधिक क्रांतिकारी क़दम पर अमल के लिए बहुत कम प्रारंभिक कार्य किया है। कोई काग़ज़ात तैयार नहीं किए गए हैं। बहुत कम आँकड़ें उपलब्ध हैं और आदिवासियों को क़ानूनी संरक्षण उपलब्ध कराने के लिये कोई तरीक़ा ईजाद नहीं किया गया है। मुझे जानकारी मिली है कि इस स्थिति से विवश होकर आपको ग़ैर-आदिवासियों को रिटर्न भरने के लिये दी गई समयावधि बढ़ाना पड़ी है। क्या यह सच है?

अर्जुनसिंह : मुझे दुःख है कि आपने ग़लत समझा। राजस्व विभाग भूमि सुधारों पर अमल के लिए गंभीरता से प्रयासरत है परन्तु कार्य इतना विशाल और जटिल है कि उसे पूरा करने में कुछ समय लगेगा। उदाहरण के लिये पिछले बीस वर्षों से अधिक की समयावधि में सभी आदिवासियों की भूमि के हस्तांतरणों और ग़ैर-क़ानूनी हस्तांतरणों का पता लगाने के लिये पिछले बीस वर्षों से अधिक की समयावधि में किए गए सौदों के रिकॉर्ड की जाँच तुरन्त नहीं हो सकती है। वास्तव में हमने ऐसे सौदों का पता लगाने के लिए अशासकीय सदस्यों वाली एक परीक्षण समिति का गठन किया है।

एन.के. सिंह : इस क़ानून पर अमल के लिये आपकी प्रशासकीय मशीनरी—राजस्व विभाग भ्रष्ट है। ग्रामीण क्षेत्रों में किसी भी प्रकार के सुधार में तहसीलदार और पटवारी सबसे बड़े अड़ंगे हैं। फिर भी आप उन्हीं पर भरोसा कर रहे हैं। आप कैसे परिणामों की आशा करते हैं?

अर्जुनसिंह : एक पूरे विभाग को भ्रष्ट कहना ठीक नहीं है। यह नहीं है कि हम निचले स्तर पर राजस्व प्रशासन की ख़ामियों के प्रति अनजान हैं, हमें यह भी विश्वास है कि उन्हें अच्छे कार्य के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इससे अधिक क्या हो सकता है कि हमने राजस्व निरीक्षक मण्डल स्तर की जन समितियाँ गठित करने का अभिनव प्रयोग किया है और इन्हें कुछ राजस्व मामलों में जैसे शासकीय भूमि का वितरण, आवासीय भू-खण्डों, अतिक्रमण का व्यवस्थापन आदि के क़ानूनी अधिकार मिल गए हैं। उन्हें बंधक श्रमिकों का पता लगाने के और उन्हें स्वतंत्र कराने की भी ज़िम्मेदारी सौंपी गई है। जैसे-जैसे ये समितियाँ अनुभव प्राप्त करती हैं, वैसे-वैसे उन्हें और जवाबदारी दी जा सकती है।

एन.के. सिंह : राज्य में सिंचाई क्षमता के उपयोग की दर केवल 30 प्रतिशत है। क्या आप इससे सहमत हैं कि ऐसा भूमि सुधारने पर धीमी गति से अमल होने के कारण है? कम से कम कुछ अर्थशास्त्री ऐसा ही सोचते हैं?

अर्जुनसिंह : सिंचाई क्षमता के उपयोग में वृद्धि के लिये भूमि सुधारों पर अमल महत्त्वपूर्ण है परन्तु मेरे विचार से इससे अधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्ध जल का उचित उपयोग है। साथ ही हम खेत से खेत सिंचाई के अकुशल तरीक़े का इस्तेमाल करते हैं, खेत में पानी ले जाने के लिये नालियों की कमी है और उपलब्ध जल का ज़रूरत से ज़्यादा उपयोग किया जाता है। सिंचाई की क्षमता का मुख्य भाग चूँकि अभी हाल के वर्षों में निर्मित हुआ है। इसलिये उपलब्ध सिंचाई साधनों का ठीक से उपयोग सीखने में किसानों को कुछ समय लगेगा। ली जाने वाली फसलों का भी निर्धारण हो जाएगा और खेत की ज़रूरतों के मुताबिक सिंचाई की आवश्यकताओं का आकलन करना होगा। मुझे नहीं मालूम कि आपने किस समयावधि का आँकड़ा बताया है। परन्तु अब वह काफी बढ़ गया है।

एन.के. सिंह : हमारे आर्थिक और सामाजिक विकास की कुंजी भूमि सुधार में निहित है। शायद इसी कारण आपकी पार्टी ने इसे अपने कार्यक्रम में शामिल किया है। परन्तु पिछले बनाए गए भू-सुधार क़ानून लाभ पहुँचाने में सफल नहीं हुए हैं। क्या ऐसा इसलिये नहीं कि आपकी पार्टी महाराजा सिंधिया, खैरागढ़ के राजकुमार, सरगुजा की रानी, सारंगगढ़ की राजकुमारियों और दिग्विजयसिंह और सुरेन्द्रसिंह नीमखेड़ा जैसे जागीरदारों और सामंतशाही से भरी पड़ी है। फिर आपकी पार्टी में गृह राज्यमंत्री श्री हजारीलाल रघुवंशी जैसे लोग हैं जिन्होंने खुले आम यह कहा है कि उनके परिवार के पास 200-300 एकड़ ज़मीन है। आपके मंत्रिमण्डल के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आदिवासी मंत्री श्री झुमुकलाल भेड़िया की भी रईस किसान परिवार की पृष्ठभूमि है।

अर्जुनसिंह : आपने मेरी पार्टी के सहयोगियों के साथ मुझे भी भूतपूर्व सामंत नहीं बताया, आपके द्वारा प्रदर्शित इस सहृदयता के लिये मुझे आपका आभार मानना चाहिये। मुझे इस बात की ख़ुशी है कि आपने हमारी पार्टी द्वारा भूमि सुधारों को दिए गए महत्त्व को स्वीकार किया है और आप उन प्रगतिशील क़दमों से भी वाक़िफ़ हैं जो भूमि सुधारों के लिये मध्यप्रदेश में उठाए गए हैं। क्या आप गंभीरता से इस बात में विश्वास करते हैं कि मनुष्य में पैदायशी प्रवृत्तियाँ होती हैं और वह उस स्थिति से उबर नहीं सकता? हमारी पार्टी की एक निश्चित विचारधारा और कार्यक्रम है। क्या यदि हमें उनमें विश्वास है तो हम उसका अनुसरण नहीं कर सकते? मुझे यह स्पष्ट कर देने दीजिए कि किसी भी काँग्रेसजन ने चाहे उसकी व्यक्तिगत हैसियत कुछ भी हो, न तो पार्टी की नीतियों और कार्यक्रमों पर अमल में अड़ंगा डाला है और न ही उसे ऐसा करने की इजाज़त दी जाएगी।

एन.के. सिंह : आपकी सरकार किसानों के हित में अधिक झुकी प्रतीत होती है। व्यापारियों पर लगाई गई गेहूँ की लेव्ही ने पिछले साल खुले बाज़ार में गेहूँ के भाव बढ़ा दिये। इसी प्रकार सरकार को गेहूँ और चावल बेचने पर किसानों को प्रोत्साहन राशि देने से भी बड़े किसानों को लाभ होगा। किसानों को केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित समर्थन मूल्य से दस रुपये अधिक देने का निर्णय भी विशेष रूप से विवादास्पद है क्योंकि यह किसानों को किसी प्रकर का अतिरिक्त प्रोत्साहन नहीं दिए जाने के निर्देश के बाद लिया गया है। टिप्पणी करें।

अर्जुनसिंह : हमारी अर्थ-व्यवस्था मुख्य रूप से खेती पर आधारित है और इसमें उत्पादन वृद्धि सीधे रूप से हमारे किसानों के कार्य पर निर्भर है। क्या राज्य को कृषि-उत्पादन बढ़ाने और उनकी उपज का उचित मूल्य सुनिश्चित

करने में उनको मदद नहीं करनी चाहिये? मध्यप्रदेश में केवल कुछ ही बड़े किसान हैं। बाज़ार में बड़ी संख्या में छोटे किसानों द्वारा थोड़ी-थोड़ी मात्रा में अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए अपना अतिरिक्त खाद्यान्न बेचा जाता है। इसलिये यह कहना ग़लत होगा कि सरकार द्वारा दी जाने वाली प्रोत्साहन राशि केवल कुछ धनी किसान ही प्राप्त करते हैं। जैसा कि स्थिति है हमारे राज्य में उत्पादकता कम है और जब हमने प्रोत्साहन राशि की घोषणा की उस समय हमारे किसान इस शताब्दी के सबसे विनाशक सूखे से उबर रहे थे। दूसरा तथ्य यह है कि हमें हमारी विशाल जनसंख्या के एक बड़े हिस्से की पूर्ति करने वाली सार्वजनिक वितरण-व्यवस्था के लिये बफर स्टॉक बनाना था। ऐसे विवाद की बात करने से क्या लाभ जहाँ कोई विवाद ही नहीं है।

एन.के. सिंह : पूर्व में ग्रामीणों पर लगाए गए सभी कर वापस ले लिए गए। क्या आप उन पर कर लगाने का विचार कर रहे हैं?

अर्जुनसिंह : यह कहना ग़लत है कि ग्रामीण धनिकों पर लगाए गए सभी कर वापिस ले लिए गए। कुछ ऐसे कर जो प्रतिगामी साबित हुए उनका पुनरीक्षण किया गया, उनको कम किया गया या हटा दिया गया। यह विचार कि ग्रामीण धनिकों को कोई कर नहीं देना पड़ता, गलत है क्योंकि इस तथाकथित ग्रामीण धनिक वर्ग को काफ़ी परोक्ष कर देना पड़ते हैं। क्या मैं भावी कर प्रस्तावों को आपके समाचार-पत्रों के कॉलमों में उजागर करूँ?

एन.के. सिंह : योजना आयोग के कार्यकारी दल ने सुझाव दिया था कि भू-सुधारों पर अमल में उससे लाभान्वित होने वाले लोगों का सहयोग लिया जाए। क्या आपने इस दिशा में कोई क़दम उठाए हैं?

अर्जुनसिंह : भू-सुधारों पर अमल में प्रारंभिक कार्रवाई करने का काम बीस सूत्रीय कार्यक्रम क्रियान्वयन जनसमितियों को सौंप दिया गया है। निश्चित तौर पर भू-सुधारों पर अमल में लाभान्वित होने वाले लोगों का सहयोग उसमें होगा। चूँकि राज्य के मंत्रीगण और विधायक भी इन समितियों के सदस्य हैं इसलिये प्रशासकीय मशीनरी भी अपने दायित्वों का निर्वहन करने में सतर्क रहेगी।

एन.के. सिंह : राज्य में खेतिहर मज़दूरों को संगठित करने के लिये क्या किया गया है?

अर्जुनसिंह : मैंने शुरू में ही सामाजिक विषमताओं के प्रति बढ़ रही जागरूकता की बात की थी और इससे खेतिहर मज़दूरों में जुझारू प्रवृत्ति जागृत होगी। यद्यपि खेतिहर मज़दूरों में अभी मज़दूर संगठनों जैसी गतिविधियाँ नहीं हैं परन्तु अब कहीं-कहीं उनमें सामूहिक हितों के प्रति जागृति हो रही प्रतीत होती है। मैं इससे सहमत नहीं हूँ कि राज्य स्वयं खेतिहर मज़दूरों को संगठित करने का काम अपने हाथ में ले, क्योंकि किसानों के हित में कोई स्वयंसेवी संगठन ही बेहतर तरीक़े से काम कर सकता है।

(इंडियन एक्सप्रेस के संवाददाता को दिया गया साक्षात्कार मार्च - 1982)।

□ *एन.के. सिंह— इंडियन एक्सप्रेस, इंडिया टुडे के भोपाल में ब्यूरो प्रमुख रह चुके श्री एन.के. सिंह अपनी तटस्थता, ईमानदारी और खरेपन के लिये पहचाने जाते हैं। झुकना, समझौता करना और अहसान जैसे शाब्दिक आडम्बरों से दूर, कलम के धनी, बिहार की माटी के सपूत श्री सिंह सम्प्रति दैनिक भास्कर, जयपुर के सम्पादक हैं।*

हमने शुरुआत की और आगे बढ़ गये

इवान फैरा की बातचीत

इवान फैरा : आकाशवाणी, दूरदर्शन और फ़िल्म पर लगे सेंसर की नीति के बावज़ूद आपकी सरकार केंद्रीय शासन को कला और संस्कृति के क्षेत्र में उदार नीति अपनाने के लिये कैसे सप्रणाम सन्तुष्ट कर सकी?

अर्जुनसिंह : इस संबंध में केंद्र से कोई सलाह लेने का अवसर नहीं आया और न ही उन्होंने सलाह दी। हमने शुरुआत की और आगे बढ़ गये। 1974-75 में एक छोटी-सी समस्या अवश्य आई थी। उन दिनों मैं मंत्री था। केंद्रीय शासन द्वारा यह प्रश्न रखा गया कि सरकार का कला और संस्कृति के क्षेत्र में कितना नियंत्रण हो। मैं प्रदेश के मुख्यमंत्री को यह समझाने में सफल रहा था कि सरकार को इस क्षेत्र में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए। चेष्टा तो यह होना चाहिए कि शासन द्वारा हस्तक्षेप करने की नौबत ही न आए। इस प्रकार समस्या का समाधान ढूँढ लिया गया।

इवान फैरा : मध्यप्रदेश उत्तर भारत के तीन प्रदेशों में से एक है जहाँ ग्रामीण अंचलों में अनेक जातियाँ और सम्प्रदायों के बीच और आदिवासियों के प्रति हिंसक घटनाओं में वृद्धि होती रही। जहाँ एक ओर राजनीति से जुड़े लोग हिंसक घटनाओं में खुद ही सम्मिलित हों वहाँ कला और संस्कृति के क्षेत्र में अत्यंत सहिष्णु नीति अपनाई जाये, इस संदर्भ में प्रश्न उठता है, कला का सामाजिक उद्देश्य क्या है?

अर्जुनसिंह : आपके प्रश्न का पहला अंश मेरे ख़्याल से मध्यप्रदेश के सही हालात को सामान्यत: प्रतिबिम्बित नहीं करता। मैं मध्यप्रदेश की तुलना अन्य प्रदेशों से नहीं करना चाहता। यदि केवल मध्यप्रदेश की बात करें तो हम देखते हैं कि यहाँ वैसी हिंसक घटनाएँ नहीं हुई हैं। केवल कुछ ऐसी असम्बद्ध घटनाओं को छोड़कर जो अन्य राज्यों में भी घटी हैं। परन्तु मध्यप्रदेश में उस प्रकार का विभाजन और तनाव नहीं है, इस बात से मैं सहमत नहीं हूँ। विभाजन और तनाव हमारे यहाँ भी मौज़ूद है पर हमारी प्रगति और वह जिस रफ़्तार से हो रही है, वह किस ढंग से तथा किस दिशा में चलना चाहिये, इस पर लोगों की प्रतिक्रिया हो वह सांस्कृतिक अथवा कला मंच पर मुखर हो, उस सीमा तक वे तनाव और विभाजन आमूल विकास में सीधा योग दे सकते हैं। इस संदर्भ में हबीब तनवीर के नाटक अच्छा उदाहरण पेश करते हैं। तनवीर जो पक्ष प्रस्तुत करना चाहते थे उसके लिये उन्होंने पात्रों को कला के संसार में नहीं खोजा, बल्कि गाँव के सामान्य लोग उनके दल के सदस्य बने हैं। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से प्रदेश के जीते-जागते अंचल छत्तीसगढ़ में व्याप्त असमानता, वहाँ के लोगों की आशाएँ और आकांक्षाएँ और दूसरी अच्छी बातें दर्शाई हैं। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यह नाटक इसलिए ही लोकप्रिय नहीं हुआ कि हबीब तनवीर द्वारा इसका निर्देशन किया गया है, बल्कि इसकी थीम आम लोगों से जुड़ी है। यह जीवन की वास्तविकता का प्रतिबिम्ब है। इसका निश्चितत: असर होता है। इन लोगों को परिस्थितियों का अहसास हुआ और

अहसास होना ही अपने आप में एक बड़ी चीज़ है। इसके बाद तो अनेक बातों का सिलसिला शुरू हो सकता है।

इवान फैरा : हाल ही में जब आप विदेश यात्रा पर गये थे तब एक असामान्य घटना घटी। राज्यपाल ने मंत्रिपरिषद् की बैठक आमंत्रित की। इस संबंध में आपकी प्रतिक्रिया क्या रही?

अर्जुनसिंह : मैं समझता हूँ कि यह घटना कुछ अप्रासंगिक समझी गई और बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई। अनेक ऐसी बातें हैं जिनसे केवल राज्यपाल की हैसियत से नहीं वरन् राजनीतिज्ञ की हैसियत से भी उनका सीधा संबंध है और उनका अपना दृष्टिकोण भी है। वर्षों से वे लोगों से व्यक्तिगत रूप से और मंत्रियों से सामूहिक रूप से चर्चा करते रहे हैं जैसे सिंचाई, वनों आदि के संबंध में। यह पहला मौक़ा है जब उन्होंने केवल चार या पाँच को नहीं बल्कि सभी को आमंत्रित किया, इसलिये मैं नहीं समझता कि कुछ असामान्य घटित हुआ।

इवान फैरा : यह कहा गया कि आप विदेश जाने के पूर्व स्वयं मंत्रिपरिषद् की बैठक बुलाने की व्यवस्था कर सकते थे। क्या आपने स्वत: ऐसी संभावना पर विचार किया था?

अर्जुनसिंह : मैं क्यों मंत्रिपरिषद् की बैठक बुलाने की व्यवस्था करता? मंत्रिपरिषद् की बैठक कभी भी बुलाई जा सकती है। इसमें पूर्व व्यवस्था की क्या आवश्यकता है? ऐसा कुछ नहीं है कि मंत्रिमण्डल की बैठक बुलाई नहीं जा सकती थी, इसलिए राज्यपाल ने यह बैठक बुलाई। यदि उस बैठक में कुछ निर्णय लिये गये होते तो बात कुछ और होती परन्तु किसी अनौपचारिक बैठक में वे किसी एक, दो या पन्द्रह भी मंत्रियों को बुलाते हैं उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। राज्यपाल को निश्चित रूप से यह जानने का अधिकार है कि कहाँ क्या हो रहा है। साथ ही उन्हें परामर्श देने का अधिकार है और यह उनका संवैधानिक अधिकार है।

इवान फैरा : नई दिल्ली ने शायद इस बैठक को, प्रदेश में जो असन्तोष उभर रहा है, उसका जायज़ा लेने का उपयोग करना चाहा हो?

अर्जुनसिंह : जहाँ तक मुझे जानकारी मिली है ऐसी कतई कोई बात नहीं है। आभास लेने को कोई पहल नहीं की गई।

इवान फैरा : कुछ प्रेक्षकों ने प्रदेश में उभरती हुई असहमति के संदर्भ में हरिजन आदिवासियों की तीसरी शक्ति के अभ्युदय की बात की है और कहा है कि आपका शासन इस वर्ग की आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पा रहा है।

अर्जुनसिंह : मैं समझता हूँ असहमति, असन्तोष, तीसरी शक्ति आदि शब्दों का उपयोग प्रदेश की राजनीति के संदर्भ में कल्पनात्मक है। असलियत यह है कि हरिजन आदिवासियों के उत्थान के कार्यक्रमों को मूर्त रूप देने और इस उद्देश्य के लिये काम करने के लिये सभी अवसर विद्यमान हैं। तब मध्यप्रदेश में हरिजन आदिवासियों की जिस तीसरी शक्ति की चर्चा की जाती है उसके लिये कोई अवसर नहीं है। मैं यह बात किसी आलोचना के रूप में नहीं कह रहा हूँ किन्तु प्रदेश में सभी मुख्य राजनैतिक तथा आर्थिक मामलों के विभाग आदिवासी तथा हरिजन मंत्रियों के जिम्मे हैं। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। हरिजन कल्याण, आदिवासी कल्याण, राजस्व, सिंचाई, उद्योग, वन, वित्त, पृथक् राजस्व सब उनके

पास हैं। अब क्या बचता है? प्रदेश मंत्रिपरिषद् में संसदीय सचिवों को मिलाकर कुल संख्या 38 है। इनमें से 20 आदिवासी हरिजन तथा अन्य पिछड़े वर्गों के सदस्य हैं। आप और क्या चाहते हैं? दरअसल में यह सब कुछ ऐसे लोगों का ख़याल है जो ऐसे काल्पनिक विवादों को हवा देने में लगे रहते हैं।

इवान फैरा : काँग्रेस (इंदिरा) दल में असहमति रखने वालों के बारे में आपका क्या ख़्याल है? उनका प्रभाव आपके व्यक्तित्व और प्रभुत्व पर पड़ता है। क्या आप सोचते हैं कि इन तत्वों को ख़त्म किया जाना चाहिए?

अर्जुनसिंह : मैं सोचता हूँ कि मेरे प्रदेश में असन्तुष्टों की गतिविधियों का अंततः कोई विशेष अर्थ नहीं है। यह बात तो समझ में आती है कि ऐसे कुछ लोग हमेशा रहते हैं। जो आपको पसंद नहीं करते और आपके स्थान पर किसी और व्यक्ति को लाना चाहते हैं किन्तु ऐसे व्यक्तियों की संख्या हमेशा बहुत कम होती है। उनकी संख्या तब बहुत अधिक हो जाती है जब आम लोग यह समझने लगते हैं कि स्थानीय अथवा प्रदेश स्तर पर चीज़ों से जुड़ नहीं पा रहे हैं या उनको अलग-अलग रखा जा रहा है। इसलिये मेरा सदैव यही ईमानदार प्रयास रहा है कि बिना किसी भेद-भाव के अधिकाधिक लोगों को प्रदेश के विकास संबंधी कार्यक्रमों से संबद्ध करूँ।

इवान फैरा : क्या आप यह कहेंगे कि असन्तुष्टों की गतिविधियाँ उन प्रदेशों में अधिक हैं जहाँ मुख्यमंत्री नेतृत्व प्रदान नहीं कर सके अथवा विकास योजनाओं को गति नहीं दे सके?

अर्जुनसिंह : निश्चय ही आप इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं।

इवान फैरा : क्या आप यह सोचते हैं कि काँग्रेस (इंदिरा) हाई कमांड की राय में कुछ असन्तुष्ट लोग रहे तो मुख्यमंत्री को ठीक रास्ते पर रखने में सहायता मिलती है?

अर्जुनसिंह : यह एक सिद्धांत है जो कई स्तरों पर प्रतिपादित किया गया है किन्तु मैं नहीं सोचता कि प्रधानमंत्री का यह रुख़ है। पहले तो कभी मैं ऐसा नहीं सोचता कि वे लोग जो मुझसे पूरी तरह असहमत हैं उनकी हर बात बुनियादी तौर पर ग़लत है। मैं यह मानकर चलता हूँ कि असहमति रखने वाले व्यक्ति की बात में भी कुछ ऐसे तथ्य होंगे जिन पर मुझे विचार करना चाहिए। इसके अलावा मैं नहीं सोचता कि असहमति पनपने को अपरोक्ष रूप से इसलिए बढ़ावा दिया जा रहा है कि ऐसी परिस्थिति का निर्माण हो जिसमें हाई कमांड को हस्तक्षेप करना पड़ता है, सन्तुलन बनाये रखने के लिये कार्रवाई करनी पड़ती है। मैं ऐसा नहीं सोचता क्योंकि प्रधानमंत्री ने समय-समय पर जो विचार व्यक्त किए हैं उनसे स्पष्ट आभास मिलता है कि हमें इस बात की प्रबल इच्छा है कि हम एक निश्चित समय सीमा के भीतर दिये गये वायदों को पूरा कर रहे हैं। यदि असहमति का दायरा बढ़ जाए और मुखर हो जाये तो जनता से किये गये वायदों को पूरा करना संभव नहीं होगा और दल के नेता के रूप में मैं यह भी नहीं कह सकता कि जो लोग मुझसे असहमत है, वह डूब मरें। आख़िरकार वे भी मेरी तरह दल के अभिन्न अंग हैं और यदि उन्हें सचमुच आभास कराया जा सके कि उनकी शिकायतों पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जायेगा तो यह सबके हित में होगा।

इवान फैरा : आज की राजनैतिक संस्कृति में प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री के बीच आदर्श संबंधों के बारे में आपकी क्या राय है, इस संबंध में कई प्रकार की धारणाएँ हैं?

अर्जुनसिंह : मैं कह सकता हूँ कि प्रदेश के हित के लिये जो भी कार्य करता हूँ उसमें कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि प्रधानमंत्री ने उसमें हस्तक्षेप किया हो अथवा मेरी अवगणना की हो। मैं ईमानदारी से कह सकता हूँ। मैंने उनसे जो कुछ कहा है उसे उन्होंने अक्षरश: मान लिया हो यह हमेशा नहीं हुआ और यह संभव भी नहीं है। कार्य करने के मामले में मुझे कोई काम करने अथवा बिलकुल न करने के निर्देश उन्होंने कभी नहीं दिये। दल की नेता होने के कारण मैं उनके पास अपनी कोई समस्या लेकर जाता हूँ और ऐसे अवसरों पर परामर्श मेरे लिये बहुमूल्य और वज़नदार होता है।

इवान फैरा : क्या आप यह सोचते हैं आज की राजनैतिक संस्कृति मुख्यमंत्री को स्वतंत्र रूप से कार्य करने दे सकती है?

अर्जुनसिंह : मेरा विचार है कि यदि वे चाहें तो कर सकते हैं।

इवान फैरा : क्या आप यह समझते हैं कि समस्याओं के समाधान के लिये सबसे सहज रास्ता यह है कि दिल्ली से परामर्श लिया जाये ताकि यदि कोई समस्या उत्पन्न हो तो यह कहा जा सके कि यह आपने ही मुझे करने को कहा था?

अर्जुनसिंह : मेरी समझ में यह समस्या को देखने का ठीक दृष्टिकोण नहीं है क्योंकि यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं प्रधानमंत्री तक कम से कम समस्याएँ ले जाऊँ और उनके पास अपनी समस्याओं का अम्बार न लगाऊँ। जहाँ मार्गदर्शन आवश्यक हो उसकी बात अलग है।

इवान फैरा : आपने कहा था कि तीर्थ यात्रा की प्रगति महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है भक्ति और निष्ठा। एक समय समाचार छपा था कि आपने मंत्रिपरिषद् के सभी सदस्यों के साथ दिल्ली जाने की योजना बनाई थी?

अर्जुनसिंह : मुझे इस योजना का संदर्भ याद नहीं है किन्तु मेरे सहयोगियों ने ऐसी इच्छा व्यक्त की थी और मैंने सोचा था कि इसमें क्या हर्ज है किन्तु अंतत: यह पाया गया कि यह सही नहीं है। इसलिये मैंने कहा कि बात ख़त्म।

इवान फैरा : जब संजय गाँधी जीवित थे तब दल पर कड़ा अंकुश था और राजीव के नेतृत्व में उतना नहीं है। क्या आपको कोई अन्तर दिखता है?

अर्जुनसिंह : जहाँ तक पार्टी के केंद्रीय नेतृत्व और मुख्यमंत्री के बीच संबंधों का सवाल है, में कोई मूलभूत फ़र्क़ नहीं देखता फिर भी व्यक्तिगत तौर-तरीक़ों में अंतर होता ही है।

इवान फैरा : वंशानुगत उत्तराधिकार के संबंध में आपके क्या विचार है?

अर्जुनसिंह : इसमें क्या हर्ज है यदि 10 वर्ष बाद राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बन जायें। परन्तु यदि कोई वंशानुगत उत्तराधिकार की बात करे तो लोकतंत्र में उचित नहीं है।

इवान फैरा : आपके एक साथी, बिहार के मुख्यमंत्री प्रेस की आज़ादी पर अंकुश लगाने के लिए एक विधेयक के द्वारा पहल कर रहे हैं।

अर्जुनसिंह : मैं अपनी बात कर सकता हूँ। डॉक्टर जगन्नाथ मिश्र की ओर से नहीं, मैं स्वयं इस प्रकार के क़ानून बनाने के पूर्व मौजूदा क़ानूनों की सहायता से समस्या का समाधान ढूँढने का प्रयास करूँगा।

इवान फैरा : आपके मुख्यमंत्रित्वकाल की सबसे बड़ी उपलब्धि कौन-सी है?

अर्जुनसिंह : जनता पार्टी के समय में शासन की साख, विश्वसनीयता चौपट हो गई थी उसे हमने काफ़ी हद तक पुन: स्थापित किया है और इसका श्रेय केवल मुझे ही नहीं दिया है वरन् मेरे सहयोगियों और अधिकारी वर्ग को भी है। आदमी तभी कुछ काम कर सकता है, जब उसकी साख हो।

☐ *इवान फैरा— प्रखर पत्रकार, स्तम्भ लेखक एवं साक्षात्कार विशेषज्ञ के रूप में जाने पहचाने जाने वाले इवान फैरा दो टूक बात कहने और करने के लिये लोकप्रिय हैं। आपकी सफलता आपकी अजस्र प्रवाहित लेखनी है।*

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी कि हर ख़्वाहिश पे दम निकले...

पत्रकार त्रिभुवन यादव की बातचीत

त्रिभुवन यादव : मुख्यमंत्रीजी, आपके प्रशासन के तीन वर्ष पूर्ण होने पर हार्दिक बधाई। प्रशासन की विभिन्न सीढ़ियों को पार करते हुए आपको इस सर्वोच्च प्रशासकीय पद के माध्यम से प्रदेश की जनता की सेवा करने का संयोग मिला है। यह सर्वथा स्वाभाविक ही है कि आज से 18-20 वर्ष पूर्ण की युवा अवस्था में आपके मन में अपनी कुछ कल्पनाओं ने प्रदेश की खुशहाली और जनता की सेवा के संदर्भ में जन्म लिया होगा। प्रशासनिक पद्धति में ऐसे सर्वोच्च पद पर पहुँचने की आकांक्षा भी सर्वथा स्वाभाविक होती है। क्या आप अपनी ही उन कल्पनाओं के अनुरूप प्रदेश को ऐसा कुछ अनूठा दे सके हैं जिसका आप सगौरव उल्लेख कर सकें और जनता भी तुलनात्मक दृष्टि से उनका मूल्यांकन कर सके?

अर्जुनसिंह : अगर मध्यप्रदेश से आपका मतलब उसके वर्तमान स्वरूप से, जो 1956 में कायम हुआ है, तो मैं कहना चाहूँगा कि मैंने जन-जीवन में कार्य करने का निर्णय इसके गठन के कई वर्ष पूर्व ही ले लिया था। 1956 के पहले मैंने अपने इलाक़ों की समस्याओं को नजदीक से देखा था। 1956 से उसी के साथ-साथ व्यापक परिप्रेक्ष्य में पूरे प्रदेश की समस्याओं को देखने का सिलसिला शुरू हुआ। तभी मेरे मन में यह बात उठी कि इन इलाक़ों का विकास एकांगी रूप से नहीं हो सकता और इस पूरे व्यापक भू-भाग जिसे मध्यप्रदेश के रूप में बनाया गया है, की जुड़ी हुई और समन्वित नियति ही हो सकती है। बाहरी रूप से देखने से लग सकता है कि यहाँ पर अलग-अलग क्षेत्रों में काफ़ी फ़र्क़ है परन्तु यदि थोड़ा ग़ौर करके देखें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि यहाँ की प्राकृतिक संपदा और मानवीय उद्यम एक-दूसरे के पूरक होकर ही ऐसी तरक्क़ी का रास्ता खोल सकते हैं, जो सबके साथ न्याय करता हो। मैं यह भी जानता हूँ कि ऐसी स्थिति में सार्वजनिक जीवन में कार्य करने वाले व्यक्ति के लिये अपने-आप के लिये क्षेत्रीय नेता बनने का आसान विकल्प सामने रहता है और उसके तात्कालिक लाभ भी मिल सकते हैं। मेरी रुचि सौभाग्य से ऐसी क्षेत्रीयता में नहीं रही। शुरू से कुछ वर्षों में क्षेत्रीयता के प्रति कुछ अतिरिक्त लगाव, सामान्य जन में जितना नहीं नेताओं में कुछ अधिक रहा है। परन्तु धीरे-धीरे यह वृत्ति दूर होती गयी। पिछले कुछ वर्षों में, मैं मानता हूँ कि मध्यप्रदेश की एक एकीकृत छवि उभर रही है। अपने मुख्यमंत्री होने के पिछले तीन साल में यदि इसे हासिल करने में मेरी कुछ भूमिका रही है तो मैं उसे अपने लिये एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानूँगा। जहाँ तक अपनी कल्पनाओं के अनुरूप मध्यप्रदेश को कुछ अनोखा दे सकने की बात है तो ऐसा दम्भ मुझमें नहीं है। वैसे भी कोई मुख्यमंत्री किसी एक चीज़ में सफल या असफल नहीं हो सकता। उसकी सफलता या असफलता कई मोर्चों पर एक साथ होगी। जैसे मैंने कहा है, अगर प्रदेश के समन्वित विकास में यहाँ की जनता में पिछले तीन वर्षों के दौरान आस्था बढ़ी है, तो यह अपने आप में एक बड़ी चीज़ है। उसके साथ ही हमारे पड़ोसी राज्यों के साथ हमारी जितनी भी समस्याएँ हैं और जिनका समाधान वर्षों से नहीं हो पा रहा, ऐसी समस्याओं का कोई

न कोई हल हमने निकाल लिया है। अब ऐसा लग रहा है कि प्रदेश अब अपनी क्षमता के अनुरूप विकास कर सकता है।

त्रिभुवन यादव : क्रियाशील और लगन के धनी व्यक्तित्व को अपने ही कामों से पूर्ण संतोष नहीं होता है। मुख्यमंत्रित्वकाल में ऐसे कौन-से क्षेत्र और विषय है, जो अभी तक अछूते रहे हों? आपने उन्हें हाथ में लिया हो किन्तु फिर भी आप स्वत: संतुष्ट न हो पाये हों। और ऐसे क्षेत्रों में क्या-क्या काम किया जाना आपकी दृष्टि में ज़रूरी है?

अर्जुनसिंह : आपके विशेषणों के लिये धन्यवाद। इतना बड़ा प्रदेश है कि इसकी समस्याएँ इतनी व्यापक है कि कोई भी व्यक्ति अपने कार्यकाल में सारी चीज़ों के साथ एक-साथ न्याय नहीं कर सकेगा। ज़रूरी यह है कि अपनी क्षमता व समय-सीमा को देखते हुए कुछ प्राथमिकताएँ तय की जावें और मैंने हमेशा अपने कार्य का आकलन उन प्राथमिकताओं के परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयास किया है और जहाँ तक कुछ कर पाने की इच्छा का सवाल है, बकौल ग़ालिब साहब –

हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी कि हर ख़्वाहिश पे दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।

मध्यप्रदेश के बारे में कुल मिलाकर यही सही है कि जो जितना करता है, वह उतना ही कम है।

त्रिभुवन यादव : मुख्यमंत्री जी, क्या किन्हीं क्षणों में आपको यह अनुभव होता है कि आपकी 'उदारता' कहिए या 'संवेदनशीलता' के परिणामस्वरूप आपके निर्देशों का भी उचित पालन नहीं हो पाता है। उदाहरण के लिये– मंत्रियों, निगम के अध्यक्षों और यहाँ तक की अधिकारियों तक की मोटरों में 'लाल बत्तियों' का प्रचलन नये निर्देश के बाद भी स्थिति यथावत् जैसी ही है। लोगों की धारणा बनती है कि जब सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित होने वाली बातों के संदर्भ में स्थिति यह है तो गूढ़ प्रशासकीय कार्यों के संदर्भ में क्या होता होगा?

अर्जुनसिंह : मुझे नहीं मालूम कि मैं कितना उदार और कितना संवेदनशील हूँ। परन्तु इतना ज़रूर है कि मुझमें काफ़ी धैर्य है। अपने किन्हीं निर्देशों या आदेशों को मैंने कभी झूठी प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनाया। अगर किसी बात को मैंने सही माना है तो इस बात की कभी जिद नहीं की कि महज इसलिये उन पर अमल किया जाये कि वे मेरे अनुसार सही हैं। मैंने हमेशा अगर मेरी बात सही है तो दूसरे को भी यह अहसास कराने का प्रयास किया है कि वह सही है। इसका असर अच्छा भी हुआ है। जहाँ तक गाड़ी में लाल बत्ती लगाने का सवाल है, यह महज एक प्रतीक है कि हम किस तरह से चीज़ों को देखते हैं। मैं जानता हूँ कि धीरे-धीरे लोग मेरी बात समझ लेंगे ही। परन्तु जहाँ तक प्रदेश की बड़ी या किसी महत्त्वपूर्ण समस्या का प्रश्न है सौभाग्य से मेरे कार्यकाल में ऐसा कोई अवसर नहीं आया जब मेरी ऐसी किसी बात पर अमल न हुआ हो जिसका कि प्रदेश के सार्वजनिक जीवन पर कोई प्रतिकूल असर पड़ा हो। अगर ऐसा होने की स्थिति बनी है तो मैंने सख़्त क़दम उठाने में भी कभी कोई हिचकिचाहट नहीं की भले ही मेरी कार्यवाही को दूसरे तरीक़े से देखा गया है।

त्रिभुवन यादव : यों तो कुछ प्रकोष्ठों में आपकी संवेदनशीलता और उदारता का कुछ अन्य ही अर्थ लिया जाता है। आप किन कार्यों और किन विषयों के प्रति उदार और संवेदनशील है? यों तो मध्यप्रदेश पूरा ग़रीब है, उसे

यों ही उदारता की जरूरत है। क्या कुछ विशिष्ट तत्वों ने आपकी इस प्रवृत्ति का अनुचित लाभ नहीं उठाया है? कुछ लोगों की धारणा है कि आपके दल के राजनीतिज्ञ और प्रजातंत्र के सजग प्रहरियों ने अनुचित लाभ उठाया है या कि आपकी ओर से अनुचित लाभ दिया गया?

अर्जुनसिंह : किसी भी बात का कोई भी अर्थ निकाला जाये तो इसमें भी क्या उसकी ग़लती निकाली जाएगी जिसने यह बात कही हो। दरअसल उदार होना या संवेदनशील होना अपने आप में कोई बड़ी बात नहीं है। यह निजी गुण या अवगुण हो सकता है। पता नहीं यह विशेषण मेरे साथ क्यों चिपक गए हैं। मैं मानता हूँ कि मध्यप्रदेश को उदारता या संवेदनशीलता की जितनी जरूरत नहीं है, उससे कहीं ज्यादा समझ और समझदारी की जरूरत है। अगर मेरे किन्हीं गुणों-अवगुणों से दूसरे लोगों ने ग़लत फ़ायदा उठाया तो इसमें मेरी ग़लती क्या हो सकती है। परन्तु अगर ये गुण मेरी कमज़ोरी की श्रेणी में आते हों और उस कारण से प्रदेश के किसी सार्वजनिक महत्त्व के सवाल पर कोई असर पड़ा हो तो ज़रूर ही आपत्तिजनक बात है। परन्तु मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरे व्यक्तिगत प्रभाव के कारण किसी मोर्चे पर कोई ग़लत कार्रवाई की गई हो।

त्रिभुवन यादव : ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के लिये जो सुविधाएँ शासन दे रहा है उनका ठीक-ठाक उपयोग हो रहा है। यह सुनिश्चित करते ही वर्तमान व्यवस्था से क्या आप संतुष्ट हैं, अगर नहीं तो क्या करने का इरादा है?

अर्जुनसिंह : ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिये शासन ने कई योजनाएँ बनाई हैं और उनसे काफ़ी लाभ भी ग्रामीण क्षेत्रों को मिल रहा है। यह ज़रूरी है कि कहीं-कहीं हमें दुरुपयोग या उदासीनता भी देखने को मिलती है। इनको दूर करने के लिये हमने दो तरह से संस्थागत उपाय किये हैं — एक तो प्रशासन तंत्र को इस तरह से विकेन्द्रित करने का सिलसिला हमने प्रारंभ किया है जिससे योजनाओं का लाभ स्थानीय अधिकारियों के मार्फ़त सीधे ही जनता तक पहुँच सके। अभी हाल में गठित प्रशासनिक सुधार आयोग भी इस संबंध में और क्या किया जाना चाहिए, उस पर विचार कर रहा है और मुझे उम्मीद है कि इसके बहुत ही अच्छे परिणाम सामने आयेंगे। दूसरी ओर जो भी कार्य हो रहा है वह सतत् रूप से जनता की निगरानी में रहे, इस दृष्टि से हमने 20 सूत्रीय कार्यक्रम के तहत जनसमितियों का गठन किया है। अब विकासखण्डों के आधार पर उनका पुनर्गठन किया जा रहा है। इसका उद्देश्य यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों की योजनाओं पर प्रभावी रूप से अमल हो सके और वहाँ के जनप्रतिनिधि लगातार इस संबंध में चौकसी बरत सकें।

त्रिभुवन यादव : ग्रामों तक शासन की बात अलग-अलग विभागों द्वारा धन व्यय करने के बावजूद भी समन्वय तथा दिशाहीनता के अभाव में पहुँचाने के लिये विभिन्न प्रचार-प्रसार साधनों का प्रभावी उपयोग नहीं हो पा रहा है, क्या आप इससे सहमत हैं? इस दिशा में आप क्या करने का इरादा रखते हैं?

अर्जुनसिंह : यह सही है कि प्रचार-प्रसार की दृष्टि से हम समन्वित रूप से बहुत कम कर पा रहे हैं। हमारे जैसे बड़े प्रदेश में जन संचार साधनों की कमी है। इस कारण से जितना व्यक्तिगत संपर्क का असर यहाँ पर हो सकता है उतना प्रचार-प्रसार के साधनों का नहीं। हमारे सभी विभागों की जो ऐसी एजेन्सियाँ हैं, जो प्रचार-प्रसार का कार्य कर रही हैं उनको अब समन्वित रूप से कार्य करने के लिये सूचना प्रकाशन संचालनालय के माध्यम से पुनर्गठित किया जा रहा है। संचालनालय के माध्यम से ही इस वर्ष प्रत्येक विकासखण्ड के स्तर पर एक सूचना शिविर का आयोजन किया जायेगा। प्रदेश की प्राथमिकता के अनुसार निश्चित रूप से हम उतनी राशि इस कार्य के लिये

नहीं दे पा रहे हैं जितना असरदार कार्य के लिये ज़रूरी है परन्तु निश्चित रूप से इस वर्ष के दौरान कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा सकेगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

त्रिभुवन यादव : मुख्यमंत्रीजी नर्मदा घाटी विकास की बात एक वर्ष पूर्व जहाँ थी वहीं है, ऐसा लगता है कि क्या आप इस मामले में कुछ हो रहा है, उस पर प्रकाश डालेंगे?

अर्जुनसिंह : निश्चित रूप से ऐसा नहीं है कि नर्मदा घाटी विकास की बात अपने जगह पर रखी हुई है। इस बीच हमने इसके लिए स्वायत्त अधिकरण का गठन किया है, जिसमें अपना कार्य प्रारंभ कर दिया है। योजनाएँ तैयार की गई हैं और उनको केंद्र शासन व अन्य अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों के समक्ष रखा गया है। यह ज़रूर है कि ज़मीन पर कार्य ज़्यादा नहीं हो पाया है परन्तु ताबड़तोड़ जल्दी में कार्य शुरू कर देने के भयावह नतीजे हो सकते हैं। ख़ासकर बड़ी सिंचाई योजनाओं के संबंध में यह सही है। तजुर्बा यह रहा है कि बड़ी सिंचाई योजनाएँ जितनी समस्याओं का समाधान करती हैं, उसके साथ ही उतनी ही नई समस्याएँ पैदा कर देती हैं। इसलिये उनका सर्वांगीण अध्ययन करने के बाद ही उन पर अमल किया जाये तो उनका सही लाभ जनता को मिल सकता है। इस दृष्टि से जो कुछ भी योजनागत या अकादमिक कार्य इस दौरान हुआ है, वह काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। अब मैं सोचता हूँ कि ज़मीन पर इनके नतीजे शीघ्र ही दृष्टिगोचर होने लगेंगे।

त्रिभुवन यादव : साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में आपने जो किया है उसने प्रधानमंत्रीजी से भी प्रशंसा अर्जित की है किन्तु क्या भोपाल में **भारत-भवन** और **मध्यप्रदेश कला परिषद्** ऐसे बरगद सिद्ध नहीं हो रहे हैं, जिनके नीचे और कुछ पनप ही नहीं सकता?

अर्जुनसिंह : **भारत-भवन** और **मध्यप्रदेश कला परिषद्** ने कुल मिलाकर प्रदेश में कला चेतना का अभूतपूर्व विस्तार किया है और ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें अज्ञात और अल्पज्ञात कलाकार और कलाकृतियाँ उनके माध्यम से सामने आयी हैं। इन दोनों ही संस्थाओं ने कलाओं के लिये पूरे प्रदेश में नये रसिक खोजे हैं और जन रुचि को भी किसी हद तक प्रभावित किया है। अगर ऐसा नहीं होता तो **भारत-भवन** देखने आने वाले दर्शकों की दैनिक संख्या पाँच सौ के आसपास कैसे होती और भोपाल और अन्य संभागीय नगरों में होने वाले **उत्सवों** में टिकिट लेकर कार्यक्रम देखने साधारण जन की इतनी बड़ी-बड़ी संख्या कैसे जुड़ती? यह कहना उपयुक्त नहीं है कि सामान्य जनजीवन पर इस सांस्कृतिक पहल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, जो आज की अपेक्षा कहीं अधिक लोग कलाओं की ओर आकर्षित हैं तो यह इस प्रभाव का ही साक्ष्य है। बंगाल और तमिलनाडु में जो सांस्कृतिक संस्कार साधारण जन तक पहुँचा है वह अनेक वर्षों की अनवरत साधना के बाद। मध्यप्रदेश में यह सब शुरू हुए कम वक़्त गुज़रा है। कम से कम मैं उसके नतीजों के प्रति आशान्वित हूँ।

त्रिभुवन यादव : आपने दो 'अनूठे' काम किये हैं —एक तो **भूमिसेना** का गठन और दूसरा **संजय प्रशिक्षण संस्थान**। क्या ऐसे कदमों से प्रदेश की जनता में और विशेष रूप से युवकों में रचनात्मक प्रवृत्ति का संचार हुआ है? अगर नहीं तो इस दिशा में आप क्या ठोस करना चाहते हैं?

अर्जुनसिंह : **भूमिसेना** और **संजय प्रशिक्षण संस्थान** दोनों ने अपना काम शुरू ही किया है। युवकों को प्रदेश के पुनर्रचना के कार्य में संलग्न करने के लिये दो साल का समय बहुत बड़ा नहीं होता। मैं मानता हूँ कि निश्चित

रूप से प्रदेश के युवकों में रचनात्मक कार्यों के प्रति लगाव बढ़ा है। मेरे सामने ऐसा एक ही सबसे बड़ा प्रमाण है कि शहरी क्षेत्रों में हो या ग्रामीण क्षेत्रों में, यहाँ का युवक किसी प्रतिक्रियावादी या निषेधात्मक कार्य में नहीं लगा है। जहाँ तक इन दो संस्थाओं के मार्फ़त कोई बड़ी चीज़ होने का सवाल है उसमें समय लगना स्वाभाविक है और यह काम कोई तात्कालिक कीर्ति हासिल करने के लिये ही नहीं किया गया। मेरी कोशिश यह है कि ये दो संस्थाएँ, विशेषकर, यहाँ के ग्रामीण युवकों के संदर्भ में, एक नयी रचनात्मकता पैदा कर सकें जिसके बिना इस प्रदेश में और कुछ भी हासिल करना एक तरह से व्यर्थ ही होगा।

त्रिभुवन यादव : भोपाल एक सुन्दर नगर है इसमें संदेह नहीं और प्रधानमंत्रीजी ने भी इसकी सुंदरता की सराहना की है और इसे और अधिक सुन्दर बनाने पर बल दिया है। इस दिशा में पहले कुछ प्रयास भी हुए – जैसे दो उद्देश्यी केरवां बाँध का निर्माण – मुख्यमंत्री निवास के नीचे लेक-व्यू रोड-रेतघाट की सफ़ाई, मयूर पार्क का निर्माण, किन्तु जनता शासनकाल से गाड़ी कुछ उल्टी चल पड़ी। जान पड़ता है – भोपाल गंदी बस्तियों के बदनुमा धब्बों के रूप में विकसित हो रहा है।

अर्जुनसिंह : निश्चित रूप से ही भोपाल ख़ूबसूरत शहर है और हम सबकी कोशिश होनी चाहिए कि इसकी ख़ूबसूरती क़ायम रह सके। हमें इसमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शहर जितना सैलानियों के लिये नहीं होता उससे ज़्यादा वहाँ के बाशिंदों के लिये होता है। इसलिये झुग्गी-झोपड़ी की समस्या को शहर की ख़ूबसूरती के साथ नहीं जोड़ना चाहिये। आखिर झुग्गी-झोपड़ी में कौन लोग रहते हैं? वहाँ पर इस शहर के सबसे ज़्यादा ग़रीब, जो शायद इस शहर की ज़्यादा सेवा करते रहते हैं। वे लोग चाहे घर की गंदगी साफ़ करते हों या मोहल्लों की, वे लोग रहते हैं और उनकी रिहाइशी समस्या का जब तक हम सक्षम हल नहीं ढूँढ लेते तब तक महज इस आधार पर कि उससे भोपाल की ख़ूबसूरती पर पैबंद लगता है, रोक लगाना इस शहर के साथ ही अन्याय होगा। दरअसल पहले कुछ ऐसा हुआ है कि शहरी नीति समृद्ध वर्ग के हित में ज़्यादा बनी और इस बात का ध्यान नहीं रखा गया कि यदि शहर का विकास हुआ तो आसपास के ग्रामीण अंचलों से हज़ारों लोग काम की तलाश में स्वाभाविक रूप से आयेंगे ही। यदि इनकी आवास-समस्या का हमने पहले से ही ध्यान नहीं रखा है तो निश्चित रूप से वे शहर में जहाँ भी संभव हो सके अपने लिये रेन-बसेरा बना ही लेंगे। हम कोशिश यह कर रहे हैं कि एक ओर जहाँ ऐसे इलाक़ों में पर्यावरण सुधार का कार्य किया जाए वहीं जहाँ आवश्यक हो झुग्गी-झोपड़ी में रहने वालों के लिये अच्छी वैकल्पिक व्यवस्था की जाये और उसके बाद ही उनको वहाँ से हटाने के बारे में सोचा जाये। यह काम न सरल है और न ही बहुत जल्दी में संभव है। इस दिशा में हमने कुछ महत्त्वपूर्ण कदम उठाये हैं और अब यहाँ के नव-निर्वाचित नगर निगम व अन्य सरकारी संस्थाओं के माध्यम से मुझे उम्मीद है कि इसका समाधान हो जायेगा। जहाँ तक नई चीज़ों का सवाल है **भारत-भवन** जिसका आपने उल्लेख किया है, अपने आप में भोपाल के लिये एक बड़ी चीज़ है। इसी तरह से यहाँ हॉकी के लिये एस्ट्रो टर्फ बनाने की पहल की जा रही है और भी छोटी बड़ी कई चीज़ें हैं।

त्रिभुवन यादव : मुख्यमंत्रीजी कोलार पानी भोपाल में आपके मुख्यमंत्री काल में ही आ जाए, भोपालवासी यही चाहेंगे किन्तु उसके बाद बड़े तालाब का विकास किस रूप में किया जाये? क्या विकास का केंद्र सैलानियों का आकर्षण रहेगा या कुछ और भी?

अर्जुनसिंह : हम यह प्रयास कर रहे हैं कि कोलार का पानी जल्दी से जल्दी भोपाल में आ सके। उसके बाद

निश्चित रूप से भोपाल के ताल का हम अच्छा विकास कर सकेंगे। पर्यटन विकास निगम ने अभी वहाँ पर नौका विहार चालू करने की पहल की है उसे और विकसित किया जाएगा। मुझे ऐसा लगता है कि भोपाल शहर का केंद्र बिन्दु बड़ा ताल है। हर शहर की कोई रूह या आत्मा होती है और भोपाल का ताल उसकी आत्मा है। आत्मा का कोई विकास नहीं होता और न ही उसकी ख़ूबसूरती बढ़ाने की दिशा में कोई दख़लन्दाज़ी करनी चाहिए।

त्रिभुवन यादव : आपके अपने दल के 'नये ख़ून और पके ख़ून' में ऐसा लगता है कि 'पद और प्रतिष्ठा' प्राप्ति के बाद ही दल और प्रदेश की सेवा करने की प्रवृत्ति पनपी है। क्या आप इससे सहमत हैं और क्या यह उचित है?

अर्जुनसिंह : सार्वजनिक जीवन में कोई भी कार्यकर्त्ता आता है तो कुछ हद तक यह स्वाभाविक ही है कि उसे इस बात की चिन्ता रहे कि उसे कोई पद मिला है या नहीं। दरअसल प्रजातांत्रिक प्रक्रिया की यह नियति ही है कि लोगों को अधिक से अधिक प्रासंगिक और सार्थक काम करने का मौक़ा मिल सके। पिछले तीन वर्षों में मैंने यही प्रयास किया है कि ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को किसी न किसी तरह से रचनात्मक कार्य से जोड़ सकूँ, जिससे उनकी क्षमता का उपयोग प्रदेश के हित में हो सके। निश्चित रूप से पद और प्रतिष्ठा के सवाल गौण हैं। परन्तु यदि पद और प्रतिष्ठा से कोई अच्छे कार्य में संलग्न होता है तो इसमें अपने आप में कोई बुराई नहीं है।

(जून 1983 में दिया गया साक्षात्कार)।

☐ *त्रिभुवन यादव— नवभारत, भोपाल के पूर्व संपादक तथा मध्यप्रदेश विधान सभा के पूर्व सदस्य श्री त्रिभुवन यादव आजीवन पत्रकार रहे। आप कास्मोपोलिटन इन्स्टीट्यूट ऑफ़ पब्लिक अफ़ेयर्स (सीपा) से भी सम्बद्ध रहे। आज वे हमारे बीच नहीं हैं।*

एक छोटी-सी चर्चा

डॉ. देवव्रत जोशी
(प्रख्यात साहित्यकार)

शामला हिल, भोपाल, प्राकृतिक परिवेश। **मुख्यमंत्रीजी** का बंगला। परिसर में लोगों की भीड़। विकलांग, मज़दूर, किसान, विद्यार्थी, अफसर, कर्मचारी। राज्य के विभिन्न अंचलों से आए लोग-फरियादें शिकायतें, माँगें। एक मौन चहल-पहल।

वर्षों से परिचित था श्री अर्जुनसिंह से। एक साहित्यप्रेमी, सुलझे मन-मस्तिष्क के सौम्य-सरल व्यक्तित्व। प्रदेश की सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर आसीन श्री सिंह से साहित्य और कला पर बातचीत करने का लोभ संवरित न कर सका।

श्री अर्जुनसिंह तनावरहित, सौम्य स्वभाव के व्यक्ति हैं। तीखे से तीखे प्रश्न उन्हें उत्तेजित नहीं कर सकते। राजनीति और प्रशासन के पेंच, गुरुत्तर दायित्व और निरन्तर यात्राएँ, फिर भी समय से वल्लभ भवन सचिवालय पहुँचकर फाइलें निपटाना, मुलाक़ातें देना, जनसाधारण से मिलना उनकी चर्या के मुख्य अंग हैं।

'कला का प्रयोजन क्या होना चाहिए आपकी दृष्टि में?'— मैंने पहला प्रश्न किया।

मुख्यमंत्रीजी — 'कला का क्या प्रयोजन हो सकता है?'

दूर तक उनसे सहमत होते हुए भी मैंने तुलसीदास को उद्धृत किया—

कीरति, भनिति, भूति भलि सोई। सुरसरि-सम सब कँह हित होई।।

इससे वे सहमत थे, किन्तु कला में उपयोगितावाद या 'नारे' को वे वर्जित मानते हैं।

'सिंह साहब, आर्थिक सम्पन्नता के अभाव में कलाओं की उन्नति कैसे हो सकती है? आर्थिक स्वावलम्बन रचनाधर्मिता का सम्बल है। इस परिप्रेक्ष्य में म.प्र. के कलाकारों के लिए कुछ कर रहे हैं आप?'

—'आर्थिक सम्पन्नता ज़रूर होनी चाहिए, तभी लोकनाट्य, लोकसंगीत तथा कला की अन्य विधाएँ पनपेंगी। लेकिन आर्थिक विपन्नता कहाँ और कब आड़े आई है कलाकार के लिए। दुनिया के बड़े कलाकार कभी समृद्ध नहीं रहे। मध्यप्रदेश में कला के, विकास की जो पहल हो रही है, उससे आप भिज्ञ ही हैं।'— वे बोले।

—'शिक्षा, कला, टेक्नॉलॉजी में एक आन्तरिक समन्वय होना चाहिए। आपका क्या ख़याल हैं?'— मैंने पूछा।

—'कला और विज्ञान। पं. नेहरू कहते थे — 'कला के साथ स्पिरिचुअल साइंस की मैरिज होनी चाहिए।' —उन्होंने कहा।

(थोड़ा अन्तराल)

—'एब्जार्व करने की केपेसिटी होनी चाहिए कलाकार में, तब अभिव्यक्ति में प्रखरता आएगी।'— वे फिर बोले।

– 'मैं कला की आनुषंगिक प्रयोजनशीलता के सवाल पर फिर से आना चाहता हूँ।'– मैंने कहा।

वे बोले – 'बेहतर आदमी। और आदमी की बेहतरी के लिये ही सब लिखा और किया जाना चाहिए। सवाल यह है कि जो लिखा या किया जाता है, लोग उसे किस तरह लेते हैं।'

बीच-बीच में वे फाइलें भी देखते जा रहे थे। अफसरों, मंत्रियों को फोन पर निर्देश भी दे रहे थे, किन्तु मुझे कहीं ऐसा नहीं लगा कि वे प्रश्नों की गंभीरता या गहराई से विरक्त हों। एक संवेदनशील, कलात्मक रुझान वाले मुख्यमंत्री का ज़्यादा वक्त लेना मैंने उचित नहीं समझा, हालाँकि वे खुद इस चर्चा में रस ले रहे थे।

मैंने आख़री सवाल किया – 'रचनाकारों को क्या आप कोई संदेश या सुझाव देना पसंद करेंगे।'

उन्होंने जवाब दिया – "मैं ऐसी ग़लती करना कभी नहीं पसंद करूँगा।"

उनसे इसी उत्तर की अपेक्षा थी ....

☐ *डॉ. देवव्रत जोशी— प्रख्यात साहित्यकार एवं शिक्षाविद्, नवगीत व नई कविता के प्रखर कवि।*

लोगों के सामने

श्री अर्जुनसिंह की प्रदेश के नागरिकों से बातचीत

प्रश्नकर्ता : श्री अरुण बंसल, रीवा (म.प्र.)

प्रश्न : आप मुख्यमंत्री के पद पर कब तक रहना चाहते हैं?

उत्तर : आपका प्रश्न तनिक विचलित करने वाला है, क्योंकि यह व्यक्तिगत आशा को छूता है। आप विश्वास करें या न करें लेकिन मैं उस क्षण तक ही मुख्यमंत्री बना रहना चाहता हूँ, जब तक मेरी नेता श्रीमती इंदिराजी का मुझ पर विश्वास है और इस प्रदेश के नागरिक मुझे इस लायक़ समझते हैं।

प्रश्नकर्ता : श्री दामाद मंदसौरी, बेनीगंज कम्पाउंड, छतरपुर (म.प्र.)

प्रश्न : पाश्चात्य सभ्यता के भारतीय जनमानस में प्रभाव से स्वराष्ट्र की संस्कृति का क्या स्वरूप होगा?

उत्तर : इतिहास इस बात का साक्षी है कि जहाँ विदेशी सभ्यता और संस्कृति ने हमारे देश के जनमानस को प्रभावित किया है, वहीं हमारी सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव विदेशों पर भी दिखाई पड़ा। आपके नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि आप बुंदेलखण्ड के निवासी हैं और मालवा क्षेत्र के दामाद हैं। अत: आपने स्वयं अनुभव किया होगा कि मालवा और बुंदेलखण्ड की संस्कृति के समन्वय का कैसा प्रभाव आपके ऊपर पड़ा है।

प्रश्नकर्ता : श्री सुरेन्द्र सिंह कछवाह, शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, देवराज, सतना (म.प्र.)

प्रश्न : सरकारी नौकरियों में हरिजन आदिवासियों को प्राथमिकता दी जाती है जबकि सामान्य जाति के लोगों को यह सुविधा उपलब्ध नहीं है। यही स्थिति छात्रवृत्तियों के संबंध में है। इसका क्या कारण है?

उत्तर : यह तो आप जानते ही होंगे कि प्रजातंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के समान अवसर प्राप्त करने का अधिकार है। आप यह भी जानते हैं कि हमारे देश की बहुसंख्यक जनता अशिक्षित और पिछड़ी हुई है। ऐसे लोगों को जब तक कुछ प्रोत्साहन नहीं मिलेगा, वे सामान्य वर्ग के समकक्ष नहीं आ सकते, इस बात को ध्यान में रखकर ही हमारे संविधान के निर्माताओं ने हरिजन, आदिवासियों के लिये शिक्षा तथा नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था की है। यह ठीक है कि इन वर्गों के छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं किन्तु शासन द्वारा सामान्य वर्गों के छात्रों को उनके पालकों की आय-सीमा के अनुसार छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं। मैं तो चाहूँगा कि सामान्य वर्ग के छात्र मनोयोग से अध्ययन

कर प्रावीण्यता पाकर इस सुविधा का लाभ लें।

प्रश्नकर्ता : श्रीमती उषा सक्सेना, बांधवगढ़ कॉलोनी, सतना, पंडित गेवालाल परदेसी, महोबा (म.प्र.)

प्रश्न : दहेज़ उन्मूलन के लिये मध्यप्रदेश सरकार कौन-से रचनात्मक उपाय कर रही है?

उत्तर : आपका प्रश्न अत्यन्त सामयिक है। प्रदेश शासन दहेज़ के कलंक को दूर करने के लिये सजग और प्रयत्नशील है। बिना दहेज़ विवाह के लिये शासन के समाज कल्याण विभाग के माध्यम से सामूहिक विवाहों के आयोजन के लिये आर्थिक सहायता दी जाती है। यह सहायता इन विवाहों के लिये गठित विशेष समितियों, पंजीकृत सामाजिक अथवा स्वायत्त संस्थाओं को ही दी जाती है। इसके लिये कुछ शर्तें भी हैं; जैसे कि — (1) वर, वधू की आयु क़ानून के अनुसार हो और विवाह पूर्ण रूप से विधि-सम्मत हो। (2) दहेज़विहीन सामूहिक विवाहों के लिये एक स्थान पर 25 जोड़ों के लिये 2500 रुपये, 50 जोड़ों के लिये 5000 रुपये, और उससे अधिक प्रत्येक जोड़े के लिए 100 रुपये के हिसाब से दिया जाता है। (3) कमज़ोर वर्ग के कम-से-कम 10 जोड़ों के बिना दहेज़ सामूहिक विवाह के लिये 1000 रुपये तक का अतिरिक्त अनुदान कलेक्टर द्वारा स्वीकृत किया जाता है।

प्रश्नकर्ता : श्री घनश्याम प्रसाद, असाटी, बड़ा मलहरा, छतरपुर (म.प्र.)

प्रश्न : क्या भ्रष्टाचार की जननी रिश्वत कभी उच्च अधिकारियों का साथ छोड़ सकती है?

उत्तर : उच्च अधिकारियों के संबंध में एक सामान्य प्रकार का आरोप लगा देना उचित नहीं है। रिश्वत में दो पक्ष हैं — एक लेने वाला, दूसरा देने वाला। रिश्वत लेने वाला अपराधी तो है ही, किन्तु उससे कहीं अधिक बड़ा अपराधी और समाज का दुश्मन रिश्वत देने वाला है। इसमें एक पक्ष दलालों का भी होता है। यदि नागरिक इन दलालों के चंगुल से बचकर कुछ तक़लीफ़ उठाकर नियमानुसार काम कराने की पद्धति अपनायें तो रिश्वत पर काफ़ी सीमा तक काबू पाया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : श्री भुवनेश्वर 'भारतीय', ग्राम-भंडारगाँव, पोस्ट-डाइगाँव, जिला सरगुजा (म.प्र.)

प्रश्न : गौतम बुद्ध का उपदेश है कि शराब पाप की जननी है। इससे सदा दूर रहो। फिर क्या कारण है कि शासन ने शराब पीने की छूट दे रखी है? आदिवासी अंचलों में शराब घर-घर बन रही है और लघु व्यापार का रूप ले रही है।

उत्तर : गौतम बुद्ध ने शराब से दूर रहने का उपदेश दिया और हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने नशाबंदी के लिये अभियान भी चलाया। यह एक सामाजिक बुराई है, जो महात्माओं, मनीषियों के उपदेशों के बावजूद चली आ रही है और अब हमारे समाज का एक विकृत अंग बन गई है। विडंबना यह है कि इस विकृत अंग को काटकर अलग नहीं किया जा सकता; क्योंकि इसके दूसरे परिणाम सामने आते हैं। आपने देखा होगा कि जहाँ नशाबंदी की गई, वहाँ ज़हरीली शराब बनने लगी और अनेक लोगों ने अपनी जान से हाथ धोया अथवा विकलांग हो गये। इस कारण सरकार को शराब

की बिक्री के लिए मजबूर होना पड़ा है तो भी इसे निरुत्साहित करने के लिए संभव प्रयास हो रहे हैं। आदिवासी क्षेत्रों में शराब के ठेकेदार उनका शोषण करते हैं। बस्तर में लगभग छः करोड़ रुपये से अधिक शराब हर वर्ष बेची जाती है और शासन को उससे केवल डेढ़ करोड़ रुपये की आय होती है। आदिवासियों को शोषण से बचाने के लिए शासन ने उनके द्वारा स्वयं शराब बनाने की पुरानी प्रथा की छूट दे दी है, जिससे उनका शराब पर अनावश्यक खर्च न हो।

प्रश्नकर्ता : श्री रमेशचन्द्र मालवीय, खण्डवा (म.प्र.)

प्रश्न : एक मुख्यमंत्री के लिए ये विशेषतायें और गुण आवश्यक हैं, जैसे कि आकर्षक व्यक्तित्व, सहनशीलता, स्वच्छ पृष्ठभूमि, मज़बूत घरेलू आर्थिक स्थिति, दृढ़ संकल्प आदि। यह आप में हैं, किन्तु इसके बावजूद आपके मंत्रिमण्डल के कुछ सदस्य आपके विरुद्ध यह व्यूह रचना कर रहे हैं। भ्रष्टाचार दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा है, आलीशान बंगलों और कॉम्प्लेक्स पर लाखों रुपये खर्च किये जा रहे हैं। क्या इन सब से आपकी छवि धूमिल होने का खतरा नहीं है?

उत्तर : आप बिना किसी प्रशस्ति के अपना सीधा सवाल पूछते तो बेहतर होता। यह कहना सही नहीं है कि मेरे मंत्रिमण्डल के सदस्य मेरे विरुद्ध व्यूह रचना कर रहे हैं। कांग्रेस एक प्रजातांत्रिक संस्था है। मंत्रियों को अपनी असहमति व्यक्त करने का अधिकार है और उनकी जो बात मानने लायक़ होती है, मानी जाती है। भ्रष्टाचार के निवारण के लिये हमने सख्ती से क़दम उठाये हैं। बंगलों पर कोई अनावश्यक व्यय नहीं हो रहा है, सरकारी कार्यालय के लिये कॉम्प्लेक्स प्रशासनिक सुविधा और कार्य की सक्षमता को बढ़ाने की दृष्टि से ही बनाये गये हैं। सभी कार्यालय एक स्थान पर ही होने से अनावश्यक व्यय की भी बचत होती है।

प्रश्नकर्ता : श्री के.के. राव 'बन्धु' और श्रीमती शीलाराव, प्रेमनगर, कटनी (म.प्र.)

प्रश्न : भारत में ग़रीबी कब ख़त्म होगी? 'ग़रीबी हटाओ' का नारा क्या सिर्फ़ एक मुहावरा रह जायेगा?

उत्तर : विदेशी दासता ने हमारे देश को ग़रीब बना दिया है, ग़रीबी हटाना एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया विकास योजनाओं के माध्यम से राष्ट्र पुनर्निर्माण के द्वारा क्रियान्वित की जा रही है। हमारे इन कार्यक्रमों के फलस्वरूप देश और जनता की हालत में परिवर्तन स्पष्ट लक्षित होता जा रहा है और आपने भी इसे स्वयं अनुभव किया होगा। ग़रीबी हटाओ नारा नहीं, एक निश्चित कार्यक्रम है जिसे अब क्रांतिकारी 20 सूत्री कार्यक्रम के रूप में आदरणीया प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी की प्रेरणा से कार्यान्वित किया जा रहा है।

प्रश्नकर्ता : श्री ओ.पी. शर्मा, गरम सड़क, मुरार, श्री विष्णु प्रसाद, श्री बुद्धेश्वर प्रसाद भट्ट, शक्ती, जगपति सिंह ग्राम-इटौरा, तहसील-कटनी, जिला जबलपुर (म.प्र.)

प्रश्न : बेरोज़गारी के निवारण के लिये शासन की नीति क्या है? प्रदेश में सरकारी नौकरी के लिये बेरोज़गारों के लिये आयु-सीमा 30 वर्ष रखी गई है, जबकि शासकीय कर्मचारियों के लिये यह आयु-सीमा 38 वर्ष है। बेरोज़गारों और शासकीय कर्मचारियों के लिये आयु-सीमा में यह अन्तर क्या बेरोज़गारों के साथ भेदभाव नहीं है?

उत्तर : बेरोज़गारी की समस्या का निवारण एक लोक कल्याणकारी राज्य का प्रमुख कर्त्तव्य है। प्रदेश में बेरोज़गारों की सहायता के लिये 62 रोजगार कार्यालय हैं। इसके साथ ही स्वयं के उद्योग-धंधे खोलने के लिये सुलभ ऋण की सहायता प्रदान की जाती है। इस वर्ष हमारी चालू योजना में एक लाख 60 हज़ार व्यक्तियों को नियमित रोजगार के अवसर प्रदान करने की योजना है। चूँकि सभी बेरोज़गारों को नियमित रोज़गार देना संभव नहीं है, अत: छठी योजना में स्वरोज़गार के अवसरों को प्रोत्साहन देने का लक्ष्य रखा गया है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम के अंतर्गत इस वर्ष 228 लाख मानव-दिन के रोज़गार-अवसर निर्मित करने की योजना है। साथ ही ट्रायसेम योजना के अंतर्गत स्वयं के रोज़गार के लिये सहायता दी जाती है। भूमि-सेना-योजना के अंतर्गत भी ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराये जा रहे हैं। यह कहना सही नहीं है कि सरकारी नौकरी में शासकीय कर्मचारियों के लिये आयु-सीमा 38 वर्ष है। वास्तविकता यह है कि शासकीय सेवाओं में सीधी भर्ती में निम्न पदों पर कार्य करने वाले कुछ कर्मचारियों को नियमानुसार उच्च पदों के लिये आवेदन की अनुमति दी जाती है। उन्हें सेवा का जितने वर्ष का अनुभव प्राप्त होता है, उसके आधार पर आयु में उतनी छूट दी जाती है, जबकि अधिकतम सीमा 7 वर्ष की है।

प्रश्नकर्ता : श्री तोरनलाल राठे, पिपरिया (म.प्र.)

प्रश्न : भ्रष्टाचार और महँगाई दोनों भाई-बहिन हैं। इनसे देश को छुटकारा किस प्रकार मिल सकता है?

उत्तर : भाई और बहिन का रिश्ता अत्यंत पवित्र है। इसकी तुलना भ्रष्टाचार और महँगाई जैसी बुराइयों से करना इस पवित्र रिश्ते का ही अपमान करना है। महँगाई और भ्रष्टाचार समाज-विरोधी तत्वों का ऐसा घृणित गठबंधन है, जिसके विरुद्ध जनमानस तैयार कर इससे निजात पायी जा सकती है। अच्छा हो, युवा-वर्ग इस दिशा में सार्थक प्रयास करे।

प्रश्नकर्ता : श्री एच. नटराज, ग्राम-पोस्ट सुगवा, तहसील कटनी, जबलपुर (म.प्र.)

प्रश्न : प्रदेश में भ्रष्टाचार में कमी लाने के लिये आपकी ओर से क्या प्रयास किये गये हैं?

उत्तर : भ्रष्टाचार एक ऐसी बुराई है जिससे प्रशासन की छवि धूमिल होती है और उसके प्रति जन-अविश्वास बढ़ता है। इस बात को ध्यान में रखकर ही हमारी प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने देश में स्वच्छ और संवेदनशील प्रशासन देने का वचन दिया है। उनके इस पवित्र संकल्प को मूर्त रूप देने का प्रयास हम पिछले दो वर्षों से कर रहे हैं। इन प्रयासों की शृंखला में पहले लोकायुक्त की स्थापना की गई और उसकी परिधि में मुख्यमंत्री को भी शामिल किया गया, जिससे किसी तरह की गुंजाइश न रहे। इस शृंखला की दूसरी कड़ी मध्यप्रदेश विनिर्दिष्ट भ्रष्ट आचरण निवारण अध्यादेश जारी किया गया इसके तहत ऐसे लोगों के ख़िलाफ़ कठोर कार्रवाई का प्रावधान है, जो वनों की अवैध कटाई अथवा वनोपज की चोरी में सहायता करते हैं, ज़हरीली शराब बनाते अथवा बेचते हैं, घटिया किस्म के निर्माण कार्य करते हैं, आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति में कठिनाई उत्पन्न करते हैं, बिक्री-कर की चोरी करते हैं, शहर में अवैध बस्तियाँ बनाते हैं, अपनी पदोन्नति या तबादले के लिये ग़लत तरीक़े अपनाते हैं। इस क़ानून पर अमल के लिये सक्षम अधिकारियों की नियुक्ति कर दी गई है। जिनके पास भ्रष्ट

आचरण की रिपोर्ट की जा सकती है। हमने भ्रष्टाचार दूर करने के लिये जो प्रयास किये हैं, उनमें नागरिकों से पूरे सहयोग की अपेक्षा है और मुझे आशा है कि वे इस संदर्भ में अपनी जागरूकता और उत्तरदायित्व का परिचय देंगे।

प्रश्नकर्ता : श्री भगवान देव इसरानी, नार्थ टी.टी. नगर, भोपाल (म.प्र.)

प्रश्न : आज की बढ़ती महँगाई के लिए व्यापारियों को दोष देना कहाँ तक उचित है? क्या इसके लिए शासन की कराधान नीति उत्तरदायी नहीं है?

उत्तर : अर्थ-व्यवस्था में वस्तुओं की कीमतें, उनकी आपूर्ति और माँग के सिद्धान्त पर निर्भर करती हैं। आपूर्ति कम होने और माँग बढ़ने पर वस्तुएँ महँगी होती हैं। इस सन्दर्भ में आज की बढ़ती महँगाई के लिये व्यापारियों का दोष यह है कि वे कभी-कभी कृत्रिम अभाव कर महँगाई को बढ़ाते हैं, जिससे कालाबाज़ारी को प्रोत्साहन मिलता है। यही कारण है कि उन्हें महँगाई के लिए दोषी ठहराया जाता है। जहाँ तक शासन की कराधान नीति का प्रश्न है, वह महँगाई बढ़ाने के लिये किंचित ही उत्तरदायी है। कराधान करते समय सभी पहलुओं और विशेषकर उपभोक्ताओं पर पड़ने वाले भार का ध्यान रखकर कराधान किया जाता है। होता यह है कि कराधान की आड़ में व्यापारी ग़लत प्रचार कर वस्तुओं के भाव बढ़ा लेते हैं, जिससे महँगाई बढ़ती है।

प्रश्नकर्ता : डॉ. के.एस. नेमा, गाँधी वार्ड, नरसिंहपुर (म.प्र.)

प्रश्न : भारतीय राजनीति में 1967 के बाद लगभग सभी प्रदेशों में सत्तारूढ़ दल के कुछ असन्तुष्ट सदस्य मुख्यमंत्रियों के कार्यकाल पूर्ण होने के पूर्व उन्हें बदलने का प्रच्छन्न अथवा खुला अभियान नि:संकोच चलाते हैं, जिससे सार्वजनिक जीवन में अशुद्धि तो आई है, साथ ही राजनैतिक तथा प्रशासनिक अस्थिरता को जन्म मिला है। क्या आप बतलायेंगे कि इस संदर्भ में आदर्श मुख्यमंत्री की क्या कल्पना हो सकती है?

उत्तर : इस संबंध में दो मत नहीं हो सकते कि 1967 में दलबदल की प्रक्रिया आरम्भ होने से भारतीय राजनीति में विसंगति आयी है। यह एक विडम्बना है कि सत्तारूढ़ दल में असंतुष्ट सदस्यों की गतिविधियों को न्यस्त स्वार्थों द्वारा अधिक प्रचारित किया जाता है। जनतांत्रिक व्यवस्था में और ख़ासकर काँग्रेस संगठन में सदस्यों को असहमति व्यक्त करने का अधिकार है किन्तु इसे मुख्यमंत्रियों को उनके कार्यकाल के बीच बदलने के लिए प्रच्छन्न अथवा खुले अभियान की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। काँग्रेस संगठन में सभी सदस्य एक अनुशासन में बँधे हुए हैं और परिस्थिति विशेष में आम सहमति से ही मुख्यमंत्री बदले जाते हैं। इस बदलाहट से राजनैतिक तथा प्रशासनिक अस्थिरता आने का प्रश्न नहीं उठता। मेरी कल्पना के अनुसार आदर्श मुख्यमंत्री वह है, जो सभी को साथ लेकर चलने का प्रयत्न करे तथा जन-कल्याणार्थ के कार्यों को सक्षमता से और त्वरित गति से संचालित कर अपने प्रदेश में ख़ुशहाली लाने के लिये सतत् प्रयत्नशील रहे।

प्रश्नकर्ता : श्री लोकेश कुमार वर्मा 'पुजारी' ताटीवन, रायपुर (म.प्र.)

प्रश्न : हमारे देश, समाज में भ्रष्टाचार, अवैधानिक कार्यों की बाढ़ सी आ गयी है। इन्सान की इंसानियत सो गई है। मनुष्य अपना कर्त्तव्य भूल गया है। मुख्यमंत्रीजी, वह समय कब आयेगा, जब इन्सान गाँधीजी के आदर्शों पर चलकर समाज का, राष्ट्र का कल्याण कर सकेगा?

उत्तर : यह कहना सही नहीं है कि देश और समाज में भ्रष्टाचार और अवैधानिक कार्यों की बाढ़ आ गयी है। हमारे समाज में इस तरह की जो बुराइयाँ नज़र आ रही हैं, उसका मुख्य कारण है कि आज़ादी के बाद देश में पुनर्निर्माण के कार्यों को बड़े व्यापक पैमाने पर लिया गया है, जिनके संचालन के लिये हमारे पास राष्ट्रीय चरित्र के निष्ठावान व्यक्तियों की आज भी कमी है। इन्सान की इन्सानियत अभी सोई नहीं है। यदि आपके समान जागरूक व्यक्ति अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वहन के लिये दृढ़ता के साथ सामने आयेंगे, तो आप उसी इन्सानियत के दर्शन कर सकेंगे, जिसकी आपको अपेक्षा है। यदि नागरिक गाँधीजी के बताये सादगीपूर्ण जीवन को अपनाकर राष्ट्र और समाज के व्यापक हित में कार्य करने के लिये तैयार हों, तो गाँधीजी के रामराज्य की कल्पना नि:संदेह साकार हो सकेगी और समाज तथा राष्ट्र का कल्याण होगा।

प्रश्नकर्ता : श्रीमती एस. डिड्डी, टी.टी. नगर, भोपाल (म.प्र.)

प्रश्न : ऐसी मान्यता है कि शासन कभी ग़लती नहीं करता, भले ही उसकी नीतियों, उसके कुछ निर्णयों को न्यायालय द्वारा पलट दिया गया हो। क्या शासन के ध्यान में लायी गई किसी भूल-चूक अथवा त्रुटियों को सुधारने में संकोच किया जाता है?

उत्तर : प्रयास सही निर्णय लेकर उन्हें कार्यान्वित करने का ही होता है लेकिन त्रुटियाँ होना स्वाभाविक मानवीय कमज़ोरी है, जिसे न्यायालय के द्वारा या अन्य किसी माध्यम से उजागर किया जाता है। अपनी भूल स्वीकार करके उसे सुधारना, मैं तो शासन का कर्त्तव्य समझता हूँ। इसमें हिचक का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रश्नकर्ता : श्री अजीत कुमार जैन, मझपुरा मोहल्ला, टीकमगढ़ (म.प्र.)

प्रश्न : वर्तमान समय में सिफ़ारिश के सामने योग्यता का कोई महत्त्व क्यों नहीं है?

उत्तर : मैं आपके विचार से सहमत नहीं हूँ। शासन की नीति और प्रयास यही है कि निर्धारित योग्यता के आधार पर ही व्यावसायिक शिक्षा और नौकरियों के लिये व्यक्तियों का चुनाव हो। आपको विदित ही होगा कि हमने मेडिकल कॉलेजों में भर्ती के लिये पी.एम.टी., इंजीनियरिंग और एग्रीकल्चर कॉलेजों और पोलीटेक्निक संस्थानों में प्रवेश के लिये पूर्व परीक्षाओं की व्यवस्था की है। मैं आपको बताना चाहूँगा कि इन परीक्षाओं में मंत्रिमण्डल के सदस्यों तथा राज्य शासन के उच्च अधिकारियों के बच्चे भी असफल हुए हैं और वे इन संस्थाओं में प्रवेश से वंचित रहे हैं। नौकरियों के लिये भी लोक सेवा आयोग द्वारा प्रतियोगितात्मक परीक्षाएँ ली जाती हैं। अन्य विभागों द्वारा भी विभिन्न पदों में भर्ती के लिये योग्यता के अनुसार चयन किया जाता है। अत: आपका यह कहना सही नहीं है कि सिफ़ारिश के सामने योग्यता का कोई महत्त्व नहीं है। यदि आपकी नज़र में कोई प्रकरण हो, तो उसे मेरे पास भेजने का कष्ट करें।

प्रश्नकर्ता : सलमा बेगम ख़ान और रफ़ीक़ ख़ान, अंबिकापुर (म.प्र.)

प्रश्न : मुख्यमंत्रीजी बतायें कि आपके मुख्यमंत्री बनने का मुख्य उद्देश्य क्या था? क्या है? क्या रहेगा? साथ ही यह बतायें कि प्रत्येक इन्सान का नेता बनने का क्या उद्देश्य होता है?

उत्तर : मेरे मुख्यमंत्री बनने का उद्देश्य प्रदेश की जनता की सेवा करना था, है और रहेगा। मैंने मुख्यमंत्री पद ग्रहण करने के पश्चात् अपने प्रथम प्रसारण में इस बात को स्पष्ट कर दिया था। प्रत्येक इन्सान नेता नहीं बनता और आप आश्वस्त रहें कि मैं नेता नहीं हूँ, केवल आप सबका प्रथम सेवक हूँ और जनसेवा के पुनीत कार्य को संपादित करने का भरसक प्रयास कर रहा हूँ। जनता की सेवा और राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना से कार्य करने वाले व्यक्ति को ही जनता नेता बनाती है और जनसेवा ही उसका लक्ष्य और उद्देश्य होता है।

प्रश्नकर्ता : श्री शिवरतन प्रसाद, ग्राम-कनकाना, जिला पन्ना (म.प्र.)

प्रश्न : परिवार नियोजन कार्यक्रम में कौन-कौन से दोष हैं, जिसके कारण लोग डरते हैं?

उत्तर : परिवार नियोजन कार्यक्रम में कोई दोष नहीं है। अशिक्षा और अज्ञान के कारण ही लोगों में कुछ भ्रम पैदा होता है। देश के भविष्य को सुरक्षित करने के लिये परिवार नियोजन का कार्यक्रम विशेष महत्त्व रखता है।

प्रश्नकर्ता : श्री रऊफ ख़ान 'सौरभ' छतरपुर (म.प्र.)

प्रश्न : मानवता-प्रधान हमारा भारत देश धर्मान्ध विकार से ग्रसित क्यों हो रहा है?

उत्तर : अज्ञान, अशिक्षा, सामाजिक रूढ़ियों और कुरीतियों के कारण ही हमारा मानवता-प्रधान देश धर्मान्धता से ग्रसित है। जैसे-जैसे शिक्षा का प्रकाश फैलेगा, विकार रूपी यह अंधकार दूर होगा और देश में मानवता के सही दर्शन होने लगेंगे।

प्रश्नकर्ता : श्री घनश्याम प्रसाद असाटी, बड़ामलहरा, छतरपुर (म.प्र.)

प्रश्न : क्या बुंदेलखंड में डाकू-समस्या के निवारण के लिये शासन सक्षम है?

उत्तर : शासन पूरी तरह सक्षम और तत्पर है और इस दिशा में मुस्तैदी से कार्रवाई कर रहा है। पिछले दिनों आपके ज़िले में चार्ली राजा और अन्य डाकू दल समाप्त किये गये हैं, वह इस बात का प्रमाण है। आवश्यकता इस बात की है कि डाकूग्रस्त क्षेत्र के नागरिक हिम्मत से काम लें और डाकुओं की हलचल और उन्हें संरक्षण देने वाले समाज-विरोधी तत्वों की सही जानकारी पुलिस को दें।

प्रश्नकर्ता : श्री घनश्याम असाटी, बड़ामलहरा, छतरपुर (म.प्र.)

प्रश्न : मध्यप्रदेश में मंदिरों की पुरानी धातु मूर्तियों की चोरी का पता लगाने में पुलिस सक्षम क्यों नहीं है?

उत्तर : हमारे प्रदेश में पुरातत्वीय सामग्री इतने विशाल क्षेत्र में बिखरी हुई है कि सभी स्थानों पर पुलिस की व्यवस्था करना सम्भव नहीं है। पुरातत्वीय वस्तुओं की चोरी में कुछ लोगों की साँठगाँठ होती है, जिनमें कुछ व्यापारी और सरकारी अमले के लोग भी शामिल रहते हैं। यदि नागरिक समय पर इन वस्तुओं की चोरी की सूचना पुलिस को दें, तो कोई कारण नहीं कि उनका पता न लगाया जा सके। पुरातत्वीय वस्तुएँ हमारे प्रदेश और देश का गौरव हैं और उनकी रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।

प्रश्नकर्ता : श्री सनत कुमार दुबे, अमानगंज, पन्ना (म.प्र.)

प्रश्न : सरस्वती के सरोवर में साहित्य ही कमल के रूप में खिलकर चारों ओर अपना स्निग्ध सौरभ वितरण कर रहा है। सरोवर में यदि कोई भैंस की तरह अपनी शारीरिक अभाव की पूर्ति के लिये निर्मल जल-राशि को गंदला करे, तो उसे अपने काम से संतोष भले ही हो जाये, पर वह कमल के सौरभ का यथार्थ अनुभव नहीं कर सकता। ऐसे नर-सौरभ को हम क्या कहेंगे?

उत्तर : ऐसे व्यक्तियों को नर-सौरभ की संज्ञा देना सौरभ का अपमान करना है। यह सभी का उत्तरदायित्व है कि वह ऐसे स्वार्थी और बहशी व्यक्ति को तिरस्कृत कर उसका बहिष्कार करे, तभी कद्रदान साहित्य के रस का रसास्वादन कर सकेंगे। मुझे आश्चर्य तो इस बात पर है कि प्रबुद्ध वर्ग क्यों अब तक अपने इस दायित्व के निर्वहन में उदासीन रहा है।

प्रश्नकर्ता : श्री रामअधीन सेठ, कृषि महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

प्रश्न : क्या शासन के पास कोई ऐसी योजना है, जिसके तहत फलदार वृक्षों के रोपण और उनकी उपज के आधार पर रसीले फलों का रस निकाल कर डिब्बों में बन्द करने जैसा उद्योग स्थापित कर उनके उत्पादन का निर्यात किया जा सके?

उत्तर : कृषि विभाग द्वारा फलदार वृक्षों को रोपण की योजना राज्य के सभी जिलों में कार्यान्वित की जा रही है। रसीले फलों का रस निकाल कर उन्हें डिब्बों में बन्द कर बेचने का उद्योग मध्यप्रदेश राज्य कृषि उद्योग विकास निगम द्वारा संचालित किया जा रहा है। इस उत्पादन का उपयोग फिलहाल राज्य में ही किया जा रहा है। इस तरह के उद्योग लगाने की और भी योजनाएँ निगम के विचाराधीन हैं। सेठजी, यदि आपके पास कोई ऐसी योजना हो, तो उसे अवश्य हमारे निगम को भेजें। वह उस पर विचार करेगा।

प्रश्नकर्ता : श्री भुवनेश्वर 'भारतीय' भंडारगाँव, जिला सरगुजा (म.प्र.)

प्रश्न : क्या आप नियमित रूप से ईश्वरोपासना करते हैं? पाप-पुण्य की सही परिभाषा भी बताने का कष्ट करें।

उत्तर : धर्म और आस्था प्रत्येक व्यक्ति का निजी प्रश्न है, जिसके लिये वह किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। मैं ईश्वर पर आस्था भी रखता हूँ और अपने तरीक़े से नियमित उपासना भी करता हूँ। पाप और पुण्य की परिभाषा करने की क्षमता मुझमें नहीं है। सामान्य रूप से मेरी

मान्यता है कि परोपकार ही पुण्य कमाने का माध्यम है और दूसरे को बिना कारण पीड़ा पहुँचाना ही पाप है।

प्रश्नकर्ता : श्री संजय अंत्रीवाले, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.)

प्रश्न : हमारे प्रदेश का युवा-वर्ग जब हिन्दी माध्यम से महाविद्यालयीन शिक्षा पूर्ण कर विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठता है, तो उनमें से अधिकांश अक्सर असफल होते हैं। अखिल भारतीय प्रतियोगी परीक्षाओं में अंग्रेज़ी माध्यम वाले प्रतियोगी अधिकतर हाथ मार ले जाते हैं। इसको देखते हुए युवा-वर्ग यह धारणा बना रहा है कि हिन्दी माध्यम द्वारा रोज़गार के लिये सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती। इस संबंध में आपका क्या विचार है?

उत्तर : मैं आपकी इस धारणा से सहमत नहीं हूँ। अँग्रेज़ी माध्यम वाले प्रतियोगी इसलिये ज़्यादा सफल होते हैं; क्योंकि वे अध्यवसाय और परिश्रम से एक विदेशी भाषा पर अधिकार करते हैं और उसके माध्यम से प्रतियोगी-परीक्षा में भाग लेकर सफल होते हैं। मुझे आश्चर्य तो इस बात पर है कि हिन्दी हमारी मातृभाषा है और इस माध्यम से बैठने वाले अनेक उम्मीदवार सही हिन्दी भी नहीं लिख पाते और इसका दोष वे माध्यम को देते हैं। मुझे ऐसा कोई कारण नज़र नहीं आता कि अपनी मातृभाषा के माध्यम से छात्र परिश्रम और अध्यवसाय से अंग्रेज़ी माध्यम वालों से अधिक क्षमता हासिल न कर पायें। जहाँ तक राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा प्रतियोगी-परीक्षा लेने का सवाल है, उसके द्वारा उम्मीदवारों को हिन्दी या अँग्रेज़ी में परीक्षा देने का विकल्प दिया गया है। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित परीक्षाओं में भी हिन्दी या अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से प्रतियोगी-परीक्षा देने की सुविधा है। बेहतर होगा कि जिस माध्यम से प्रतियोगी-परीक्षा देना चाहें, वह उस भाषा पर अधिकार करने का प्रयास करे, तो सफलता नि:संदेह उसे मिलेगी।

प्रश्नकर्ता : श्री एल.आर. सोनी, सीकर, दतिया (म.प्र.)

प्रश्न : बेकारी-विस्फोट, बाढ़ की चोट, सूखे की लपेट एवं महँगाई की चपेट के क्या कारण हैं? इनका सामना करने के लिये मध्यप्रदेश सरकार क्या कारगर क़दम उठा रही है?

उत्तर : बेकारी के विस्फोट का कारण आबादी में विस्फोट, बाढ़ की चोट और सूखे की लपेट का कारण वनों की अवैध और अंधाधुंध कटाई और इस अवैध कार्य के प्रति नागरिकों की उदासीनता है। और इन सबका परिणाम है महँगाई का बढ़ना। प्रदेश सरकार बाढ़ और सूखे का सामना करने के लिये बाँधों का निर्माण और वनों का रोपण कर रही है। महँगाई पर नियंत्रण के लिये कृषि और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाया जा रहा है; लेकिन सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि सामान्य नागरिक भी इन महत्त्वपूर्ण विषयों से संबंधित अपने दायित्वों को निभाने पर विचार करें।

प्रश्नकर्ता : सुश्री गायत्री देवी, छतरपुर (म.प्र.)

प्रश्न : जन समस्याओं का शीघ्र निराकरण हो, इस हेतु प्रशासन को चुस्त बनाने के लिये आपने क्या क़दम उठाये हैं? ज़िला दफ़्तर तथा सचिवालय फाइलों के 'परसू' रोग से ग्रस्त हैं। इस रोग से निवारण के लिये आप क्या क़दम उठा रहे हैं?

उत्तर : प्रशासन में गति लाने और शासकीय कार्य के शीघ्र निपटारे के लिये निर्देश दिये गये हैं। उनके अनुसार प्रति सप्ताह बुधवार को कोई बैठक न होगी। बैठक सप्ताह में दो बार गुरुवार और शुक्रवार को दोपहर बाद ढाई बजे से रखी जायेगी। भोपाल स्थित कार्यालय के मुख्य अधिकारियों को गुरुवार और शुक्रवार को चर्चा के लिये बुलाया जायेगा। भोपाल के बाहर के प्रमुख अधिकारियों को माह में तीन बार से अधिक नहीं बुलाया जायेगा। इन निर्देशों के अनुसार सचिवालय में मिलने के लिये आने वाले व्यक्तियों को दोपहर ढाई बजे के बाद की अनुमति दी जाती है। यह सब इसलिये किया गया कि सचिवालय के अधिकारियों और मंत्रियों को अपने कार्य को निपटाने के लिये काफ़ी समय मिले। इन निर्देशों से आपको यह स्पष्ट हो जायेगा कि शासन जनसमस्याओं के शीघ्र निराकरण के लिये पूरी तरह सजग है और यह कहना सही नहीं है कि सचिवालय और जिला दफ़्तर के लिये उनमें शिक्षा के माध्यम से अपने अधिकारों के प्रति चेतना जागृत करनी होती है। इस बात को ध्यान में रखकर आदिवासी अंचलों में 22 हज़ार स्कूल चलाये जा रहे हैं। चार लाख छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जा रही हैं। इन्हें छात्रावास की सुविधा भी उपलब्ध है। इन वर्गों की प्राथमिक कक्षा तक की छात्राओं को गणवेश देने का भी प्रावधान किया गया है। आज ऐसा कोई कार्यक्षेत्र नहीं है जहाँ इन वर्गों के लोगों का प्रतिनिधित्व न हो। इन्हें सचिव, विभागाध्यक्ष, कलेक्टर और एस.पी. के पदों पर नियुक्तियाँ प्राप्त हो रही हैं। हरिजन-आदिवासी किसानों का सिंचाई, रासायनिक खाद के उपयोग और उन्नत खेती के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। क्या यह इनके आर्थिक उत्थान का सबूत नहीं है?

प्रश्नकर्ता : श्री मस्तराम पाठक, तरहटी चौकी के पास, रीवा (म.प्र.)

प्रश्न : महँगाई असाध्य रोग है अथवा साध्य?

उत्तर : महँगाई असाध्य नहीं, साध्य है। इस पर रोकथाम के लिये नागरिकों को अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों का बोध होना चाहिये। बढ़ती आबादी को इस माहौल में उत्पादन से माँग अधिक होने के कारण वस्तुएँ महँगी होती हैं। यदि हम अपनी माँगों पर कुछ क़ाबू कर लें, तो सभी को वस्तुएँ सरलता से मिल सकेंगी और उनके दाम भी नहीं बढ़ेंगे। जमाखोरी करने से महँगाई बढ़ती है, चाहे वह व्यापारियों द्वारा की जाये अथवा नागरिकों द्वारा।

प्रश्नकर्ता : श्री कृपाशंकर द्विवेदी, श्री श्यामलाल वैश्य व अन्य, बरगंवा-घिनहागाँव-सीधी (म.प्र.)

प्रश्न : आपके मुख्यमंत्रित्व काल में सीधी ज़िले की सामाजिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक स्थिति क्या वही रहेगी, जो पिछले कई वर्षों से चली आ रही है?

उत्तर : मुख्यमंत्री किसी ज़िले विशेष का नहीं, वरन् पूरे प्रदेश का होता है। आपका प्रश्न शायद इस धारणा से प्रेरित है कि मैं सीधी का हूँ इसलिये सीधी का विकास प्राथमिकता के आधार पर हो। मेरी मान्यता है कि जिस ज़िले में विकास की जो भी संभावनाएँ हैं, उनका यथासम्भव दोहन किया जाये। सीधी में विकास की असीम संभावनाएँ हैं और उसी आधार पर उनके दोहन के लिये योजनाएँ बनाई जा रही हैं। ज़िले में लगभग 1200 मेगावाट के दो सुपर थर्मल पावर स्टेशन लगाये जा रहे हैं, जिन पर

2400 करोड़ रुपये से अधिक खर्च होगा। सिंगरौली में एक आधुनिक नगर की रूपरेखा मूर्त रूप ले रही है। 450 करोड़ रुपये की बाणसागर परियोजना से सीधी में 32 हजार हैक्टर में सिंचाई होगी। सीधी में 20 हजार मेगावाट ताप विद्युत उत्पादन की संभावना की दृष्टि से और भी योजनाएँ बनाई जा रही हैं। क्या यह सीधी के निश्चित विकास की रूपरेखा नहीं है?

प्रश्नकर्ता : श्री परमानन्द मन्या, ग्राम-गुलगंज, छतरपुर (म.प्र.)

प्रश्न : लोग भ्रष्टाचार क्यों करते है? क्या इस बुराई के कारण का शासन उन्मूलन नहीं कर सकता?

उत्तर : धन, वैभव और सुविधा के लालच के कारण लोग भ्रष्ट आचरण में लिप्त होते हैं। दायित्वों तथा कर्त्तव्यों के बोध के साथ जब नागरिकों में राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण होगा, तभी इस बुराई पर क़ाबू पाया जा सकेगा। शासन द्वारा इस बुराई के उन्मूलन के लिये जो क़ानून बनाये गये हैं, उनकी सफलता नागरिकों के सहयोग पर ही निर्भर है।

प्रश्नकर्ता : डॉ. के.एल. चौरसिया, ग्राम-पो. गंज, जिला पन्ना (म.प्र.)

प्रश्न : ग्रामीण अंचलों में महंतों, पंडों और पंच जैसे लोगों से भोली-भाली जनता को जातिवाद, छुआछूत, ऊँच-नीच जबरन मनवाने से कैसे रोका जा सकता है?

उत्तर : शिक्षा के प्रसार और सामाजिक जागरूकता से महंतों, पंडों और पंचों की समाज-विरोधी गतिविधियों पर नियंत्रण किया जा सकता है। आपने अनुभव किया होगा कि देश में अभी तक जो प्रगति हुई है, उससे अंध-विश्वास फैलाने वाले लोगों की बातों में कम लोग आते हैं।

प्रश्नकर्ता : श्रीराम जी सोनी, ग्राम रिमारी, सतना (म.प्र.)

प्रश्न : खेतिहर मज़दूरों, अपंगों तथा आदिवासियों को जो सुविधा सरकार द्वारा दी जाती है, वह उन्हें नहीं मिल पाती। यह देखा गया है कि इस सुविधा का लाभ प्रभावशाली व्यक्तियों के द्वारा हथिया लिया जाता है। इसकी रोकथाम के लिये सरकार क्या कोई कार्रवाई करेगी?

उत्तर : खेतिहर मज़दूरों, अपंगों और आदिवासियों को दी जाने वाली सुविधाओं का लाभ उन्हें ही मिले, इसके लिये शासन निरंतर प्रयत्नशील है। इसके साथ यह ज़रूरी है कि जिन वर्गों को लाभ मिलता है, वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों और उनसे अनुचित लाभ उठाने वालों के संबंध में शासन को जानकारी दें। तभी इस तरह की गतिविधियों पर नियंत्रण किया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : श्री देवीसिंह गहरवार, मिठूल, जिला सीधी (म.प्र.)

प्रश्न : मैं गाँव में शाला भवन का निर्माण करवाना चाहता हूँ। क्या मेरे नाम पर शाला का नाम रखा जा सकता है?

उत्तर : अपने गाँव में शाला भवन के निर्माण के लिए आप अपने जिले के कलेक्टर अथवा संभाग के कमिश्नर से सम्पर्क करें। शाला भवन का नाम दानदाता के नाम पर रखा जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : श्री शैलेन्द्र कुमार चतुर्वेदी, सक्ती, बिलासपुर (म.प्र.)

प्रश्न : शिक्षा के गिरते हुए स्तर के लिये आप किसे ज़िम्मेदार मानते हैं? परीक्षा, परीक्षाफल या परीक्षार्थी?

उत्तर : स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद शिक्षा में सुधार के लिये मुदलियार आयोग, राधाकृष्णन आयोग और कोठारी आयोग बैठाए गये। इन सभी आयोगों ने वर्तमान शिक्षा-पद्धति को दोषी माना है। परीक्षा-पद्धति में सुधार से अध्यापन की विधियों में स्वाभाविक रूप से सुधार आयेगा। इसमें परीक्षार्थी की समझ, कौशल, विचार-शक्ति, विश्लेषण-शक्ति, मौलिकता, आदि के मूल्यांकन के लिये भी प्रावधान ज़रूरी है।

प्रश्नकर्ता : श्री मोहन गुहा, श्री राजू अय्यर तथा होटल मज़दूर यूनियन के सदस्य, रायपुर (म.प्र.)

प्रश्न : होटलों में काम करने वाले कर्मचारी दिन और रात काम करते हैं। इनकी सेवाओं के संबंध में प्रदेश शासन द्वारा क्या कोई नियम अथवा क़ानून बनाया गया है?

उत्तर : होटलों में काम करने वालों पर मध्यप्रदेश दुकान एवं संस्थान अधिनियम लागू होता है। इसकी धारा 14 के अंतर्गत रेस्टोरेंटों और होटलों के खुलने का समय सुबह 5 बजे और बंद होने का समय रात डेढ़ बजे तय किया गया है। इसके साथ शर्त यह है कि इन कर्मचारियों से एक दिन में 9 घंटे से अधिक काम नहीं कराया जा सकता है। इस क़ानून में मई 1982 में संशोधन कर काम के घंटे सप्ताह में 48 घंटे और एक दिन में अधिक से अधिक 9 घंटे रखने का प्रावधान किया गया है।

प्रश्नकर्ता : श्री बाबूसिंह यादव, ग्राम-उच्चा टोला, सतना (म.प्र.)

प्रश्न : देश की 80 प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है इसलिये गाँवों का विकास होना बहुत ज़रूरी है, लेकिन ऐसा क्यों नहीं होता है?

उत्तर : यह सही है कि देश की 80 प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है और इस बात को ध्यान में रखकर ही ग्रामीण विकास की अनेक योजनाओं पर अमल किया जा रहा है। ग्रामों के विकास में पंचायतों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, यदि ग्रामीण भाई पंचायतों के कार्य में सक्रिय रूप से भाग लें, तो कोई कारण नहीं कि विकास कार्यों का लाभ उन तक न पहुँचे। बेहतर होगा कि ग्रामवासी आपसी दलबंदी से ऊपर उठकर ग्रामों के सर्वांगीण विकास के लिये किये जा रहे कार्यों की पूरी जानकारी लें, और उनका लाभ लेने के लिये जनप्रतिनिधियों के माध्यम से पहल करें।

प्रश्नकर्ता : कु. सुनीता वियोगी, महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

प्रश्न : मध्यप्रदेश सरकार का मानव-एकता के लिये मौन साधना में सहयोग कैसे प्राप्त हो सकता है?

उत्तर : साधना में स्वयं शक्ति होती है और यह साधना स्वप्रेरणा से होती है। इस शक्ति से आप जितने अधिक लोगों को आकर्षित कर सकेंगी, यह कार्य उतनी ही तेज़ी से आगे बढ़ेगा। सरकारी सहायता लेने से इस कार्यक्रम की गरिमा और उसके प्रति श्रद्धा घट जाती है। इसके साथ ही वह आलोचना का विषय भी बन जाता है।

प्रश्नकर्ता : श्री हरिविलाससिंह, तोमर, तरसमा-जिला-मुरैना, श्री बुद्धेश्वर प्रसाद भट्ट-ग्राम मसनिया कलाँ, तहसील-सक्ती, जिला बिलासपुर (म.प्र.)

प्रश्न : जनता पार्टी शासन के अंतिम समय में सभी शिक्षित बेरोज़गारों को बेरोज़गारी भत्ता देने की घोषणा की गई थी। आपके शासनकाल में अभी तक इस योजना पर विचार क्यों नहीं किया गया?

उत्तर : शिक्षित बेरोज़गारों को बेरोज़गारी भत्ता उनकी समस्या का निदान नहीं है। राज्य के रोज़गार-कार्यालयों से 1 जून 1982 तक शिक्षित बेरोज़गारों के संबंध में जो जानकारी मिली है, उसके अनुसार 8 लाख 76 हज़ार से अधिक व्यक्ति बेरोज़गार की हैसियत से पंजीबद्ध हैं। यह संख्या निरंतर बढ़ती भी जाती है। शासन द्वारा विभिन्न विकास योजनाओं के माध्यम से रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराने का प्रयास किया जा रहा है। छठी पंचवर्षीय योजना में 4 लाख 57 हज़ार नियमित रोज़गार के अवसर तथा 5 हज़ार 70 लाख से अधिक मानव-दिवस रोज़गार के अवसर निर्मित करने का प्रावधान है, जिससे अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को रोज़गार मिले। बेरोज़गारी भत्ता, जनता पार्टी के द्वारा उस समय घोषित किया गया था, जबकि केन्द्र से उनकी सरकार उखड़ गई थी और राज्यों में वे अंतिम साँसें गिन रहे थे। उन्होंने बेरोज़गारी भत्ता और इसी तरह की अन्य संजीवनी के माध्यम से जनाधिकार प्राप्त करने का प्रयास किया था किन्तु इसमें उन्हें करारी मात खानी पड़ी। इससे स्पष्ट है कि बेरोज़गारी भत्ते की बात को स्वयं जनता के बहुमत ने अमान्य किया है। इसके अलावा यह अल्प संतोष का साधन हो सकता है, दीर्घकालीन समस्या का निदान नहीं। मैं तो चाहूँगा कि हमारी सरकार द्वारा शिक्षित बेरोज़गारों के लिये स्वरोज़गार के जो अवसर उपलब्ध कराये जा रहे हैं, उनका अधिक-से-अधिक लाभ उठाकर वे न केवल स्वावलंबी बनें, वरन् अन्य बेरोज़गारों को काम दें, उन्हें रोज़गार देने का श्रेय प्राप्त करें।

प्रश्नकर्ता : श्री जयराम प्रसाद शुक्ल, ग्राम तिवरगंवा, पोस्ट-चुरहट, जिला सीधी (म.प्र.)

प्रश्न : शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों में जनसाधारण के अमन-चैन और प्रगति-मार्ग के बाधक तत्वों की रोकथाम और इन्हें शिथिल बनाने के लिये आपके द्वारा कौन-कौन से नये प्रयास किये गये हैं और उनमें क्या सफलता प्राप्त हुई है?

उत्तर : प्रदेश में शांति-व्यवस्था बनाये रखने के लिये असामाजिक तत्वों के विरुद्ध दण्ड प्रक्रिया संहिता, मध्यप्रदेश सुरक्षा और सामाजिक व्यवस्था क़ानून तथा राष्ट्रीय सुरक्षा क़ानून के तहत कारगर कार्रवाई की गई है। शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों में नये पुलिस थाने और चौकियाँ खोली गई। पुलिस बल भी बढ़ाया गया है। उसे सक्षम बनाने के लिये आधुनिक सज्जा भी दी गई है। डाकूग्रस्त इलाक़ों में पुलिस की सक्षम कार्रवाई से डाकू दलों का सफ़ाया किया गया है अथवा उन्हें आत्मसमर्पण के लिये बाध्य किया गया। आप समाचार-पत्रों में पढ़ते ही होंगे कि कई डाकुओं ने आत्मसमर्पण किया और कुछ आत्मसमर्पण के लिये कोशिश कर रहे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि नागरिकों के सहयोग से हम प्रदेश में शांति और व्यवस्था को संतोषजनक ढंग से बनाये रखेंगे। हमें इस बात के लिये गर्व भी है कि अन्य सूबों की तुलना में हमारे यहाँ बेहतर शांति और व्यवस्था है।

प्रश्नकर्ता : श्री जमुना प्रसाद मिश्र, ग्राम-इमलाज, कटनी, जबलपुर (म.प्र.)

प्रश्न : शिक्षक को राष्ट्र का निर्माता माना जाता है किन्तु शासकीय आदेशों और अभिलेखों में निम्न श्रेणी के नाम से सम्बोधित किया जाता है, जिसका अर्थ 'तुच्छ' होता है। मुख्यमंत्री महोदय, शिक्षक के आगे लगने वाले 'निम्न' शब्द को अलग करने के लिये आदेश प्रसारित करेंगे?

उत्तर : शिक्षकों की यह भावना शासन के ध्यान में है। निम्न श्रेणी शिक्षकों को आमतौर पर सहायक शिक्षक कहकर ही संबोधन किया जाता है औपचारिक रूप से पदनाम में उपयुक्त संशोधन करने के बारे में शासन द्वारा विचार किया जा रहा है और शीघ्र ही निर्णय लिया जायेगा। अपनी भूमिका के संबंध में शिक्षकों की इस संवेदनशीलता को देखते हुये मैं उनसे कहना चाहूँगा कि राष्ट्र-निर्माण का वास्तविक कार्य ग्रामीण अंचलों में होता है। ग्रामीण शालाओं में लगन से कार्य कर ही शिक्षक सही अर्थों में राष्ट्रनिर्माता बनेगा।

प्रश्नकर्ता : श्री रामकृष्ण शर्मा, श्रद्धानंद पथ, विदिशा (म.प्र.)

प्रश्न : स्वतंत्रता के बाद हमारी सरकार ने हरिजन-आदिवासियों को अपने उत्थान के लिये बहुत-सी सुविधाएँ प्रदान की हैं। फिर क्या कारण है कि इन वर्गों के लोग 35 वर्षों में भी अपने स्तर को उठा नहीं सके हैं? इनके उत्थान में और कितना समय लगेगा?

उत्तर : शर्माजी, मैं आपके इस मत से सहमत नहीं हूँ कि स्वतंत्रता के 35 वर्ष बाद भी हरिजन-आदिवासी अपने स्तर को नहीं उठा सके हैं। सामान्य वर्गों में परिवर्तन का प्रभाव जल्दी नज़र आता है; किन्तु जिन लोगों ने शोषण और उत्पीड़न के कई दौर झेले हों और जिनमें कई निर्योग्यताएँ हों, ऐसे लोगों का उत्थान एक कठिन कार्य है। यदि हम अपने कार्यक्रमों को हरिजन-आदिवासियों के उत्थान से नियंत्रित कर सकें तो हमारे योजनाबद्ध कार्यक्रमों का अपेक्षित लाभ नागरिकों को मिल सकेगा।

प्रश्नकर्ता : श्री कृष्णकुमार सिंह, बीड़ा, ज़िला रीवा, श्री आनंद श्रीवास्तव, भोपाल (म.प्र.)

प्रश्न : आपके मुख्यमंत्रित्वकाल में किसानों की प्रगति हेतु कौन-कौन से कार्य किये गये और इससे किसानों की कितनी प्रगति हुई?

उत्तर : किसानों की प्रगति के लिये प्रदेश में अनाज, दलहन और वाणिज्यिक फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिये उन्हें हर सम्भव सहायता देने का प्रयास किया गया। 1978-79 में 117.27 लाख टन खाद्यान्न उत्पादन के मुक़ाबले 81-82 में 127.72 लाख टन अनाज का उत्पादन हुआ। दलहन का उत्पादन जो कि 78-79 में 21.23 लाख टन था वह बढ़कर 81-82 में 23.70 लाख टन हो गया। इसी तरह 78-79 में तिलहन का उत्पादन 6.46 लाख टन था वह 81-82 में बढ़कर 10.62 लाख टन हो गया। कपास का उत्पादन भी 77-78 की तुलना में 81-82 में 65 हज़ार गठान बढ़ा। प्रदेश में प्रति हैक्टर उत्पादन बढ़ाने का विशेष प्रयास किया गया है। किसानों को राहत देने के लिये किसान राहत कोष की स्थापना की गई है, सिंचाई कर के बकाया भुगतान में उन्हें दण्ड ब्याज में रियायत दी गई है और उनके लिये फसल बीमा योजना भी लागू की गई है। उनका उत्पादन समर्थन मूल्य पर ख़रीदा जाता है।

प्रश्नकर्ता : श्री हरीनाथ प्रसाद, ग्राम-रायगढ़, जिला सीधी (म.प्र.)

प्रश्न : मैं नेता बन राजनैतिक दल में शामिल होना चाहता हूँ। इसके लिये मुझे क्या करना पड़ेगा?

उत्तर : नेता बनने के लिये जनसेवा पहली सीढ़ी है। आप अपने क्षेत्र की जनता की सेवा कर उसका विश्वास अर्जन करिये। यही विश्वास आपकी आकांक्षा की पूर्ति में सहायक होगा। जिस दल में आप सम्मिलित होना चाहते हैं, उसमें विधिवत् प्रवेश के लिये जिले की इकाई में आवेदन पत्र दें।

प्रश्नकर्ता : श्री यशवंतसिंह, ग्राम-खिरकिट, जिला-शिवपुरी (म.प्र.)

प्रश्न : ग्रामीण अंचलों में साहूकारों द्वारा की जा रही आयकर और बिक्री-कर की चोरी तथा कालाबाज़ारी रोकने के लिये नागरिक किस प्रकार शासन की सहायता कर सकते हैं?

उत्तर : जहाँ तक आयकर का संबंध है, यह केन्द्र सरकार का विषय है और उसके द्वारा ही इस कर के अपवंचन में कार्रवाई की जाती है। बिक्री कर राज्य सरकार का विषय है। इस कर के अपवंचन में नागरिक कर की चोरी करने वाले या कालाबाज़ारी करने वाले व्यापारी के संबंध में ठोस जानकारी के आधार पर मौखिक या लिखित शिकायत संबंधी क्षेत्र के बिक्री कर विभाग को वरिष्ठ अधिकारी या उड़नदस्ता के प्रभारी अधिकारी को दे सकते हैं। यह जानकारी मिलने पर अधिकारी ऐसे व्यापारियों के ख़िलाफ़ कार्रवाई करते हैं। कर अपवंचन के संबंध में सूचना के आधार पर पकड़ी गई कर की चोरी का 10 प्रतिशत या पाँच हज़ार रुपये जो भी कम हो, सूचना देने वाले नागरिक को पुरस्कार के रूप में देने का नियम है।

प्रश्नकर्ता : श्री बृजलाल साहू, सूरजपुर-सरगुजा (म.प्र.)

प्रश्न : छात्र वर्ग को शिक्षा के प्रति प्रोत्साहित करने के लिये आपके शासनकाल में कौन-कौन से कारगर क़दम उठाये गये हैं?

उत्तर : छात्र वर्ग में शिक्षा के प्रति रुझान पैदा करने के लिये सुविधाजनक स्थानों पर नयी शालाएँ खोली गई हैं। जो छात्र कठिनाई के कारण बीच में पढ़ाई छोड़ देते हैं, उनके लिये औपचारिकेत्तर शिक्षा की व्यवस्था की गई है। शिक्षकों की कमी दूर करने के लिये अतिरिक्त शिक्षक नियुक्त किये गये हैं। चालू शिक्षा सत्र से हरिजन, आदिवासी और पिछड़े वर्ग की बालिकाओं के लिये 2 करोड़ 50 लाख रुपये मूल्य की पोशाकें देने की व्यवस्था की जा रही है। कक्षा तीन से ग्यारह तक में पढ़ने वाले हरिजन-आदिवासी छात्रों को बुक बैंक योजना के माध्यम से पाठ्य-पुस्तकें दी जायेंगी, वे उनसे वापस नहीं ली जायेंगी। शाला-भवनों के सुधार के लिये इस वर्ष 2 करोड़ 50 लाख रुपये अतिरिक्त उपलब्ध कराये जा रहे हैं। राज्य के 350 केन्द्रों में 'पढ़ो और कमाओ' योजना संचालित की जा रही है।

प्रश्नकर्ता : श्री रामाधार खांडेकर, देवागाँव, कु. सविता चिंचोलकर, बिलासपुर (म.प्र.)

प्रश्न : बिलासपुर में महंत घासीदास विश्वविद्यालय की स्थापना की घोषणा हो चुकी है। इस विश्वविद्यालय

को आगामी सत्र से खोलने के लिये क्या कार्रवाई की जा रही है? क्या इस विश्वविद्यालय में पत्रकारिता के पाठ्यक्रम के लिये व्यवस्था रहेगी?

उत्तर : महंत घासीदास विश्वविद्यालय की घोषणा के बाद मेरे द्वारा इस विश्वविद्यालय के भवन का शिलान्यास 16 जून 1983 को किया जा चुका है। विश्वविद्यालय के लिये कुलपति और कुलसचिव की नियुक्ति की जा चुकी है। विश्वविद्यालय में कौन-कौन से पाठ्यक्रम रहें, इसका फैसला तो विश्वविद्यालय द्वारा ही किया जायेगा।

प्रश्नकर्ता : श्री देवप्रसाद, रामनगर-सरगुजा (म.प्र.)

प्रश्न : विकलांगों के लिये राज्य परिवहन की गाड़ी में यात्रा करने पर शासन की ओर से क्या सुविधा है?

उत्तर : पैर से अपंग और स्वयं चलने में असमर्थ विकलांग को राज्य परिवहन निगम द्वारा संचालित नियमित वाहन सेवा में अकेले यात्रा करने पर एक चौथाई किराया देना होता है। किसी सहायक के साथ यात्रा करने पर अपंग व्यक्ति को नि:शुल्क यात्रा करने दी जाती है, परन्तु उसके सहायक से पूरा किराया वसूल किया जाता है। परिवहन निगम के नियमित वाहनों में विकलांगों के लिये दो सीटों की व्यवस्था है।

प्रश्नकर्ता : श्री रामकुमार मिश्रा, गहिरा-रीवा (म.प्र.)

प्रश्न : क्या हरे पेड़ों के काटने पर कोई क़ानूनन रोक है? यदि हाँ, तो इसे पालन कराना किस अधिकारी का काम है?

उत्तर : शासकीय वनों से पेड़ों की कटाई भारतीय वन अधिनियम 1927 और उसके तहत बनाये गये नियमों के अनुसार ही की जा सकती है। इन नियमों का पालन कराना वन अधिकारियों का काम है। राजस्व विभाग की भूमि और निजी भूमि पर लगे पेड़ों की कटाई मध्यप्रदेश भू-राजस्व संहिता के द्वारा नियंत्रित होती है। इस पर अमल कराना राजस्व विभाग के अधिकारियों का काम है।

प्रश्नकर्ता : कु. मंजू, जबलपुर (म.प्र.)

प्रश्न : मैं अनुसूचित जाति की एक संपन्न परिवार की छात्रा हूँ। हमें आर्थिक सहायता की ज़रूरत न होने पर भी मुझे आरक्षण के तहत आर्थिक सहायता दी जाती है। संपन्न परिवारों के लोगों को मात्र जातिगत आधार पर सहायता देना क्या निम्न आय वालों के साथ अन्याय नहीं है?

उत्तर : आपने जिस भावना का इज़हार किया है, वह सराहनीय है। अनुसूचित जातियों के छात्र-छात्राओं को सहायता क़ानूनों और नियमों के अनुसार दी जाती है। क़ानून में संशोधन करने से अनेक छात्र-छात्राओं के लिये कठिनाइयाँ उपस्थित हो जायेंगी। बेहतर होगा कि आप जैसे संपन्न परिवार के लोग स्वेच्छा से यह सहायता न लें, ताकि वह अन्य ज़रूरतमंद छात्र-छात्राओं के लिये उपलब्ध हो सके।

प्रश्नकर्ता : कु. स्मृति, निसरपुर-तहसील-कुक्षी-धार (म.प्र.)

प्रश्न : शासकीय सेवा में कार्यरत, पति-पत्नी को एक ही जगह रखा जाए, यह शासन का आदेश हैं, किन्तु विभागीय अधिकारी इस नियम की अवहेलना करते हैं। क्या इन अधिकारियों पर शासन की ओर से कोई कार्रवाई की जाती है?

उत्तर : सामान्य प्रशासन विभाग द्वारा ऐसा कोई आदेश जारी नहीं किया गया है, जिसके अनुसार शासकीय सेवा में कार्यरत पति-पत्नी को एक ही स्थान पर रखा जाना अनिवार्य हो। सामान्य रूप से यह प्रयास ज़रूर किया जाता है कि जहाँ तक सम्भव हो, पति-पत्नी को एक स्थान पर ही पदस्थ किया जाए।

प्रश्नकर्ता : श्री सुनील चिंचोलकर, विकास नगर, बिलासपुर (म.प्र.)

प्रश्न : शासकीय वाहनों के दुरुपयोग रोकने संबंधी आदेश जारी कर आपने एक अच्छा काम किया। क्या इसी प्रकार शासकीय अधिकारियों के निवास पर लगे टेलीफोनों के व्यापक दुरुपयोग को रोकने के लिये शासन कोई आदेश जारी करेगा?

उत्तर : आपको यह जानकर संतोष होगा कि टेलीफोन के दुरुपयोग को रोकने के लिये समय-समय पर आदेश जारी किये गये हैं। इन आदेशों के अनुसार मंत्रियों और शासन सचिवों को छोड़कर किसी अधिकारी का टेलीफोन का बिल 500/- प्रतिमाह से अधिक नहीं होना चाहिये। इस राशि में टेलीफोन यंत्र का किराया शामिल नहीं है। मंत्रियों को भी मितव्ययिता बरतने के निर्देश दिये गये हैं। एस.टी.डी. की सुविधा पर भी बंदिश लगाई गई है।

प्रश्नकर्ता : श्री श्याम कुमार मेश्राम, बारा सिवनी-बालाघाट (म.प्र.)

प्रश्न : अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्रों को छात्रवृत्ति आदि के लिये जाति प्रमाण-पत्र देना पड़ता है, जिसमें धर्म का उल्लेख करना होता है, क्या जाति प्रमाण-पत्र में धर्म के संबंध में जानकारी होना आवश्यक है?

उत्तर : अनुसूचित जनजाति के छात्रों के लिये प्रमाण-पत्र लेने के लिये धर्म के उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु अनुसूचित जाति के प्रमाण-पत्र में धर्म का उल्लेख ज़रूरी है, क्योंकि संविधान में यह स्पष्ट कहा गया है कि सिक्ख अथवा हिन्दू धर्मावलंबियों के अलावा कोई अन्य धर्मावलंबी, अनुसूचित जाति के अंतर्गत मान्य नहीं किया जा सकता।

प्रश्नकर्ता : श्री राजेन्द्र कुमार मिश्रा, ग्राम-असाटी, ज़िला टीकमगढ़ (म.प्र.)

प्रश्न : कॉलेजों में प्रथम वर्ष में प्रवेश लेने वाले छात्रों की रेगिंग को रोकने के लिये शासन क्या क़दम उठा रहा है?

उत्तर : कतिपय महाविद्यालयों में नये प्रवेश लेने वाले छात्रों के प्रति रेगिंग के नाम पर दुर्व्यवहार को शासन

ने गंभीरता से लिया है और शासन द्वारा रेगिंग को पूरी तरह समाप्त करने के लिये निर्देश जारी किये गये हैं। बेहतर होगा कि महाविद्यालयों के वरिष्ठ छात्र इस कुप्रथा को दूर करने के लिये स्वयं अग्रणी पहल करें।

प्रश्नकर्ता : श्री रतनसिंह ठाकुर, कोटेला-चारामा, जिला जगदलपुर (म.प्र.)

प्रश्न : क्या पुराने मालगुज़ारों द्वारा हड़पी गई भूमि 20 सूत्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत वापस मिल सकती है? यदि हाँ, तो किस प्रकार?

उत्तर : यदि मालगुज़ार ने अवैधानिक रूप से कब्ज़ा कर लिया है, तो सिविल न्यायालय में मुक़दमा दायर किया जा सकता है। यदि संबंधित व्यक्ति आदिवासी है तो वह भूमि वापस प्राप्त करने के लिये भू-राजस्व संहिता की धारा 170 के अंतर्गत अनुविभागीय दण्डाधिकारी के न्यायालय में कार्रवाई कर सकता है।

प्रश्नकर्ता : श्री शैलेन्द्र कुमार चतुर्वेदी, पोस्ट शक्ती-जिला-बिलासपुर (म.प्र.)

प्रश्न : बेरोज़गार छात्रों को रोज़गार दिलाने हेतु जो स्वरोज़गार योजना चलाई जा रही है, उसमें सरकार ने ऋण के लिये किसी ज़मानतदार के नाम से बेरोज़गार छात्रों को गुमराह किया जा रहा है। कृपया स्पष्ट करें कि शासन की क्या नीति है?

उत्तर : स्वरोज़गार योजना के तहत आवेदकों के ज़मानत लेने का प्रावधान नहीं है। प्रदेश में कार्यरत सभी बैंकों के वरिष्ठ कार्यालयों के अधिकारियों का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित कर उन्हें सूचित किया गया है कि वे अपने अधीन बैंकों की सभी शाखाओं को निर्देश दें कि स्वरोज़गार योजना पर सही रूप में अमल किया जाये।

प्रश्नकर्ता : रूपकिशोर वशिष्ठ, शिवपुरी (म.प्र.)

प्रश्न : मध्यप्रदेश शासन ने ऐसे कौन-से काम किये हैं, जिनसे एकता को बल मिलता है? जलियावाला बाग स्मारक में शासन द्वारा क्या कुछ धन दिया गया है?

उत्तर : राष्ट्रीय एकता बढ़ाने के लिये राज्य सरकार द्वारा प्रदेश-स्तर पर राष्ट्रीय एकता समिति और ज़िला स्तर पर भी ऐसी ही समितियाँ गठित की गई हैं। इन समितियों में स्थानीय सांसद्, विधायक, प्रत्येक राजनैतिक दल के प्रमुख और धार्मिक समूहों के प्रमुखों को प्रतिनिधित्व दिया गया है। सांस्कृतिक एकता भी राष्ट्रीय एकता का एक प्रमुख अंग है। इसे ध्यान में रखते हुए संस्कृति विभाग का गठन किया गया है। यह विभाग सांस्कृति समारोहों का आयोजन कर सांस्कृतिक एकता की भावना को बढ़ाने के लिये कार्य कर रहा है। राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ाने के लिये सूचना तथा प्रकाशन संचालनालय द्वारा प्रचार-कार्य किया जा रहा है। राष्ट्रीय एकता के लिये कार्य कर रही संस्थाओं को भी सहायता दी गई है। प्रदेश शासन द्वारा अमृतसर में जलियावाला बाग राष्ट्रीय स्मारक न्यास को दो लाख रुपये का सहायता अनुदान 1981 में दिया गया है।

प्रश्नकर्ता : श्री रामायण प्रसाद मिश्र, ग्राम रक्शा, शहडोल (म.प्र.)

प्रश्न : 20 सूत्री पदयात्रा के दौरान जनसाधारण द्वारा की गई शिकायत की जाँच आपकी सरकार द्वारा की जा रही है या नहीं? यदि की जा रही है तो कार्रवाई का परिणाम कब तक निकलेगा?

उत्तर : 20 सूत्री पदयात्रा के दौरान की गई शिकायतों आदि के निराकरण का निश्चित प्रावधान किया गया है। हर ज़िले में इस कार्य के लिये एक कक्ष बनाया गया है जो एक समय-सीमा के भीतर उन शिकायतों आदि का निराकरण करता है। शिकायतों, सुझावों आदि के निराकरण की ज़िम्मेदारी कलेक्टरों को दी गई है।

प्रश्नकर्ता : श्री प्राणनाथ वाजपेयी, ग्राम-गुल्लू, जिला-रायपुर (म.प्र.)

प्रश्न : यह देखा जा रहा है कि तहसील स्तर पर पदस्थ अधिकारियों में स्वेच्छाचारिता की भावना बढ़ रही है। अनेक अधिकारी नियमानुसार और समय पर कार्यालयों में न आकर अपने निजी कार्यों में लगे रहते हैं। इन अधिकारियों पर प्रशासनिक पकड़ को मज़बूत करने के लिये और अनियमितताओं को रोकने के लिये क्या शासन कोई क़दम उठा रहा है?

उत्तर : शासन के कार्य के स्वच्छ और सक्षम संचालन के लिये पहले से ही नियम बने हैं। ज़रूरत के अनुसार समय-समय पर निर्देश जारी किये जाते हैं। आपने तहसील स्तर के अधिकारियों की जिस भावना की ओर इशारा किया है, उससे संबंधित कोई भी प्रकरण शासन के सामने आने पर आवश्यक कार्रवाई की जाती है। यदि जनप्रतिनिधि तहसील स्तर के अधिकारियों के कार्यकलापों के प्रति पूरी तरह जागरूक रहें तो इस तरह की शिकायत का मौक़ा नहीं आयेगा।

प्रश्नकर्ता : श्री नरसिंह पारकर, ग्राम बड़ेखेमड़ा, जिला रायपुर (म.प्र.)

प्रश्न : अंतर्जातीय विवाह होना शासन की दृष्टि के क्या अनुचित है? यदि नहीं, तो समाज की ओर से बंधन क्यों? तथा इसके लिये शासन समाज के प्रति क्या कार्रवाई कर सकता है?

उत्तर : अंतर्जातीय विवाहों से जातीय संकीर्णता की भावना दूर होती है और सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता की भावना को बल मिलता है। यही कारण है कि किसी हरिजन लड़की या लड़के से विवाह करने वाले सवर्ण लड़के या लड़की को शासन द्वारा पुरस्कृत किया जाता है। जहाँ तक सामाजिक बंधनों का सवाल है, इन्हें शिथिल करने के लिये समाज के प्रगतिशील लोगों और ख़ासकर युवा वर्ग को पहल करनी होगी।

प्रश्नकर्ता : मो. सलीम ख़ाँ, मौहारपारा, मनेन्द्रगढ़ (म.प्र.)

प्रश्न : वर्तमान वित्तीय वर्ष में सामाजिक असमानताओं को पटाने के लिये कराधान नीति का प्रयोग सरकार द्वारा किस रूप में होगा?

उत्तर : सामाजिक असमानताओं को दूर करने के लिये यह बात तो ज़रूरी है कि ग़रीब और कमज़ोर वर्ग

के लोगों पर करों का बोझ कम-से-कम पड़े और जो संपन्न लोग हैं, वे करों का अधिक भार उठायें। कर लगाते समय शासन की यही नीति रही है कि आम उपयोग में आने वाली वस्तुओं पर या तो करों में पूरी छूट दी जाये या उनकी दरों में कमी की जाये और इस नीति का पालन प्रदेश में चालू साल के बजट में किया भी गया है। लेकिन आर्थिक असमानताओं को केवल करों का भार कम करके ही दूर नहीं किया जा सकता। इसके लिये यह ज़रूरी है कि समाज के ग़रीब तबके को अधिक से अधिक सामाजिक सेवाएँ उपलब्ध कराने और उनके जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिये शासन प्रयत्न भी करे। इस दिशा में शासन ने दो उल्लेखनीय क़दम हाल ही में उठाये हैं। एक तो नगरीय क्षेत्रों में झुग्गी-झोपड़ीवासियों को उनकी रिहायशी भूमि के लिये पट्टे दिये हैं और यह भी कोशिश की है कि ग़रीब लोगों को उद्योग धंधे लगाने में सहायता मिले। दूसरा महत्त्वपूर्ण क़दम शासन ने ग़रीब किसानों के तकाबी क़र्ज़ों को माफ़ कर के उठाया है, जिससे शासन पर क़रीबन 65-66 करोड़ रुपये का भार आया है। शासन की इन नीतियों से आपको यह अहसास होगा कि शासन कराधान नीति में ग़रीब तबकों को रियायतें देने के साथ-साथ उनकी माली हालत सुधारने के लिये अन्य सुविधायें भी मुहैया करा रहा है।

प्रश्नकर्ता : श्री के.के. ध्रुव, नयापारा, रायपुर (म.प्र.)

प्रश्न : शासन के निर्माण-कार्यों में काम करने वाले अनेक मज़दूर और श्रमिक साक्षर हैं। फिर भी यह देखा जाता है कि भुगतान-पत्र में सभी मज़दूरों के अँगूठे लगे रहते हैं। क्या शासन ऐसे निर्देश देगा कि साक्षर मज़दूर भुगतान-पत्र पर अपने हस्ताक्षर करें?

उत्तर : शासन के अधीन निर्माण-कार्यों में ही नहीं, वरन् दूसरे कार्यों के भुगतान पत्रों, जैसे कि मस्टर रोल, वाऊचर फार्म आदि पर काम करने की तारीख़, काम की मात्रा, भुगतान की राशि दर्शाते हुये साक्षर श्रमिकों से हस्ताक्षर कराये जाते हैं और निरक्षर श्रमिक अँगूठा लगाते हैं। यदि आपको साक्षर मज़दूरों द्वारा अँगूठा लगाने के संबंध में पक्की जानकारी हो तो, उसे मेरे ध्यान में लायें।

प्रश्नकर्ता : श्रीमती कमला खरे, भोपाल, श्री अशोक कुमार रावत, छतरपुर (म.प्र.)

प्रश्न : आगामी सत्र से 10+2 की शिक्षा प्रणाली प्रदेश में लागू की जावेगी। वर्तमान प्रणाली की तुलना में इस प्रणाली में क्या-क्या विशेषताएँ होंगी? छात्रों को क्या लाभ मिलेगा?

उत्तर : प्रदेश में 10+2 शिक्षा प्रणाली इसी शैक्षणिक सत्र से लागू हो रही है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली की तुलना में 10+2 प्रणाली की विशेषताएँ ये हैं कि कक्षा 10 तक सभी विद्यार्थियों को सामान्य शिक्षा दी जायेगी। +2 स्टेज पर विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार विषयों का चयन कर सकेगा तथा इस स्टेज पर शिक्षा के व्यवसायीकरण करने का प्रावधान है। +2 स्टेज पर व्यवसायीकरण का प्रावधान होने के कारण काफ़ी संख्या में विद्यार्थी रोज़गार के लिये विभिन्न व्यवसायों में जा सकते हैं, जिससे महाविद्यालयों में विद्यार्थियों के प्रवेश का दबाव कम होगा। इस प्रकार यह प्रणाली छात्रों को आत्मनिर्भर और रोज़गारोन्मुखी बनाने में सहायक सिद्ध होगी।

प्रश्नकर्ता : श्री दामीप्रसाद शर्मा, अकोला, पोस्ट आटेबंद, जिला-दुर्ग (म.प्र.)

प्रश्न : सांसद और विधायक बनने के बाद नेता क्षेत्र के गाँवों में पाँच वर्ष में एक-दो बार ही जाते हैं। क्या कोई ऐसा नियम नहीं बनाया जा सकता जिससे कि उनका हर वर्ष कम से कम एक बार अपने क्षेत्र के गाँवों में जाकर वहाँ की समस्याओं से अवगत होना ज़रूरी हो?

उत्तर : सांसद और विधायक जनप्रतिनिधि हैं और उनका यह कर्त्तव्य है कि वे समय-समय पर क्षेत्र का दौरा कर वहाँ की समस्याओं से अवगत हों। आपको विदित ही होगा कि हमारी पार्टी के जनप्रतिनिधियों ने गत वर्ष अपने निर्वाचन क्षेत्रों में इसी उद्देश्य से पदयात्राएँ भी की थीं।

प्रश्नकर्ता : श्री हरीश मंगलानी, जबलपुर (म.प्र.)

प्रश्न : प्रदेश के पत्रकार सदैव आपको संवेदनशील कहा करते हैं, ऐसा पत्रकारों ने आपमें क्या देखा है?

उत्तर : मैंने प्रदेश के नागरिकों के प्रथम सेवक के रूप में कार्य करने की जो शैली अपनाई है। नागरिकों की समस्याओं को सुनने और उनके समाधान के लिये मैं भरसक कोशिश करता हूँ। शायद यही कारण है।....

श्री अर्जुनसिंह ने मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री रहते हुये आकाशवाणी के माध्यम से प्रदेश के नागरिकों द्वारा पूछे गये हज़ारों प्रश्नों के उत्तर दिये। उनमें से कुछ चुने हुए प्रश्नोत्तर।

परिवार और स्नेही परिजन

ਸਤਿਗੁਰ ਸਿਖਿ ਸਭਿ ਸਤਸੰਗ

चुरहट : इतिहास के झरोखे से

मोहम्मद युनुस
(पत्रकार एवं समाजसेवी)

गुजरात के चालुक्य वंशी राजपूत, बाद में सोलंकी कहलाये। इन्हीं के वंशज व्याघ्र देव (बाघ राव) इस प्रदेश के बघेलों के आदि पुरुष ई. सन् 1177 (वि.सं. 1234) में गुजरात से चलकर, इस भू-भाग में पहुँचे, और अपनी सत्ता स्थापित की।

कालिंजर से 16 मील उत्तर पूर्व की ओर पहाड़ी पर, एक मरफा नाम का प्राचीन क़िला था, यह क़िला खाली पड़ा हुआ था। यह क़िला पहले महोबा के चंदेलों के अधिकार में था, और उस समय "वीसलदेव भर राजा" के अधिकार में था।

व्याघ्र देव ने अपना प्रभुत्व इसी क़िले में स्थापित किया, तथा रक्षार्थ उन्होंने अपने साथ में आये हुये लोगों की बस्ती बसाई, जिसका नाम "बघेल बारी" पड़ा। इनका प्रभुत्व इस समय क़िले से 15 मील उत्तर "बघेल भवन" और 15 मील दक्षिण "बाघेलान" नामक स्थान तक था।

कुछ दिनों के पश्चात्, इन्होंने "भर राजा" से कालिंजर भी छीन लिया। कहा जाता है कि कालिंजर के क़िले का निर्माण पुरुवंशी राजा दुष्यन्त (शकुन्तला-दुष्यन्त) के पौत्र कालिंजर (कोल) ने अपने नाम पर कालिंजर का क़िला बनवाया था। साथ ही पड़ोसी राजवंशी राजा मण्डीहा को भी जीत लिया, और इनके रहने के लिए "पाथर कछार" का क़िला दे दिया। लोधियों को हरा कर, गहोरा राज्य को अपने अधिकार में करके गहोरा को अपनी राजधानी बनाया।

पार्श्ववर्ती राज्य तरोहा के परिहार शासक मुकुन्ददेव चन्द्रावत ने अपनी एकलौती बेटी "सिन्दूरमती" का ब्याह, व्याघ्र देव के साथ कर दिया, और कोई पुत्र न होने के कारण, अपना राज्य भी इन्हीं को सौंप दिया। इसके पश्चात् इन्होंने परदवाँ और तरिहार प्रान्त भी जीत लिया। इस प्रकार एक विस्तृत भू-भाग पर इनका राज्य स्थापित हो गया।

व्याघ्र देव की परिहारिन रानी से पाँच पुत्र हुये। सबसे बड़े करण देव गहोरा के अधिकारी, दूसरे सूरत देव- नि:संतान, तीसरे कीरत देव- दक्षिण में चले गये, चौथे श्यामदेव-गुजरात गये और पाँचवे कंधर देव को कसौटा (शंकरगढ़) और परदमा मिला। श्री अर्जुनसिंह इसी कसौटा शाखा से निर्गत बघेल राजपूत हैं।

रीवा इलाहाबाद मार्ग पर स्थित रायपुर के कलचुरियों की एक शाखा का राज्य रीवा के दक्षिण में था, जो "चंदनियाँ" कहलाता था। इन्हीं में से सोमदत्त करचुली के अधिकार में बान्धवगढ़ का क़िला था। सोमदत्त ने अपनी पुत्री ("पद्यकुंवरि") का ब्याह, करणदेव से कर दिया, और बान्धवगढ़ का क़िला दहेज़ में दे दिया। अब इस राज्य की उत्तरी राजधानी गहोरा और दक्षिणी राजधानी बान्धवगढ़ हो गयी।

करणदेव संस्कृत के धुरंधर विद्वान थे। इन्होंने ज्योतिष शास्त्र का एक अच्छा ग्रन्थ लिखा है। इसी बान्धवगढ़ के कारण यह राजवंश कालांतर में "बान्धवेश महाराजा" कहलाया।

सारंग देव (करण देव के पौत्र) के युवराज काल में इनकी मुठभेड़ परमर्दिदेव चंदेल राजा से हुई, जिसके फलस्वरूप उसने वि.सं. 1268 के लगभग एक बहुत बड़ी सेना लेकर, बान्धवगढ़ पर चढ़ाई करने के लिए अपने प्रसिद्ध सामन्त ऊदल को भेजा। घोर संग्राम के बाद सारंग देव ने ऊदल को पकड़ कर बान्धवगढ़ क़िले की एक कोठरी में बंद कर दिया, जिसे आज भी "ऊदल की कोठरी" कहते हैं। ऊदल जैसे अजयवीर को जीत लेने के कारण इन्हें "संग्राम सिंह" भी कहा जाता था।

वि.सं. 1300 के आस-पास सारंग देव के पश्चात्, इनके पुत्र विलासदेव राजा हुये। इन्होंने अपने राज्य का विस्तार किया। वर्तमान बिलासपुर पहले एक गाँव था जिसे बिलासा नाम की एक, मछुई (मल्लाहिन) ने बसाया था, तब उसका नाम "बिलसिया" था। इसी को बिलासदेव ने शहर के रूप में आबाद कर इसका नाम बिलासपुर रखा। इन्हीं के शासनकाल में राज्य की सीमा बस्तर तक पहुँच गयी।

बघेलवंश में बीरसिंह देव महान प्रतापी राजा हुये। इन्होंने वि.सं. 1590 में, गढ़ा मण्डला को भी अपने अधिकार में कर लिया था। गढ़ा मण्डला के राजा गाधिपति शाह (दलपतिशाह वि.सं. 1587-1605) द्वारा माफ़ी माँग लेने पर, उसको अपना आश्रित राजा बनाकर, उसका राज्य वापस कर दिया।

गहोरा राजधानी होने के कारण, बान्धवगढ़ पर, इस समय तक कुरुवंशी राजा नारायणदास का अधिकार हो गया था। वि.सं. 1592 में चढ़ाई कर, बान्धवगढ़ को पुनः अपने अधिकार में ले लिया। कुरुवंशी अपने को कमर क्षत्री कहते हैं, बान्धवगढ़ के आस-पास इनकी आबादी भी है। रीवा राज्य के दक्षिणी पूर्वी भाग में कोरिया राज्य की नींव इन्हीं ने डाली। डॉ. हीराचंद शास्त्री तोमर राजपूत की उत्पत्ति भी इसी जाति से मानते हैं।

जून 1527 में बाबर ने राणा सांगा पर चढ़ाई की थी, तब वीरसिंह देव ने चार हज़ार घुड़सवारों के साथ कनवाहा के मैदान में, राणा सांगा की ओर से बाबर का सामना किया था। यद्यपि इस युद्ध में राणा सांगा की हार हुई थी किन्तु स्वयं बाबर ने अपने बाबरनामा में वीरसिंह देव को भारत के तीन प्रसिद्ध महाराजाओं में स्थान दिया था। उसी समय बाबर ने मित्रता करके बान्धवराज वीरसिंह देव को नानकार प्रदान किया था।

वीरसिंह देव ने छोटा नागपुर नागवंशी राजा विक्रमादित्य को हरा कर, उस पर अपना अधिकार कर लिया। मंडला के राजा संग्राम शाह के उदण्ड हो जाने पर वीरसिंह देव ने पुनः चढ़ाई की। राजा भाग कर जंगल में चला गया। इस समय बस्तर में चौहानों का राज्य था यहाँ के राजा से भी कर वसूल किया। वीरसिंह देव की प्रधान रानी उक्ल नरेश की कन्या कुलपालिका देवी थीं। कुलपालिका देवी से उदयकर्ण पैदा हुए जो अपने मामा कपिलेन्द्र के पुत्र पुरुषोत्तम के यहाँ चले गये, इन्हीं के वंशज आजकल उड़ीसा के खण्डपारा ठिकाने के अधिकारी हैं।

शेरशाह के भय से जब हुमायूँ अफगानिस्तान भाग रहा था, तब हुमायूँ की बेग़म दमीदा का साथ छूट गया। बेग़म जब गंगा पार कर रही थीं, शेरशाह के सिपाहियों ने नाव डुबा देनी चाही। वीरभानु देव, जो पिता वीरसिंह देव की मृत्यु के पश्चात् सिंहासनारूढ़ हुये थे, संयोग से उस समय अरैली (प्रयाग) में ही थे जो उस समय रीवा राज्य के अंतर्गत था, जैसे ही बेग़म के बारे में समाचार मिला, वे अपने नामी वीरों को लेकर गंगा के किनारे पहुँचे, और बेग़म की जान बचा कर उन्हें शरण दी।

शेरशाह बराबर बेग़म का पीछा कर रहा था, इसीलिये बेग़म को मुकुन्दपुर, (सतना जिला) की गढ़ी में रखा गया और ख़र्च के लिये मुकुन्दपुर का परगना ही लगा दिया। 15 अक्टूबर 1542 को यहीं पर, गर्भवती बेग़म

से अकबर का जन्म हुआ।

शोध के अभाव में इतिहासकार अकबर का जन्म अमरकोट मानते हैं, जो ग़लत है। मुकुन्दपुर की गढ़ी में अकबर की छठी के बाद, वीरभानु देव, नवजात शिशु अकबर को लेकर बान्धवगढ़ चले गये। शेरशाह पीछा करते हुये रनबहादुरगंज (वर्तमान रीवा का बिछिया मोहल्ला) तक आ गया। इसके आगे जाने की उसकी हिम्मत न हुई। अपने पुत्र सलीम शाह को यहीं छोड़कर, शेरशाह वापस चला गया। रीवा महाराजा का वर्तमान क़िला, जिसमें इस वंश के अंतिम शासक महाराजा मारतण्डसिंह जू देव रहते हैं, इसकी नींव सलीमशाह ने ही डाली। यहीं पर सलीमशाह को अपने पिता शेरशाह की मृत्यु का समाचार मिला और वह अधबना क़िला छोड़कर, कालिंजर चला गया। अधूरे क़िलों को पूरा करा कर, विक्रमादित्य ने, रीवा को अपनी राजधानी बनाई। और नाम के साथ बान्धवेश महाराजा लिखा जाने लगा।

मुकुन्दपुर में अकबर के जन्म और मुकुन्दपुर का परगना बेग़म के ख़र्च के लिये दिये जाने का सबसे बड़ा सबूत है, मुग़लवंश के अंतिम शासक और 1857 की स्वतंत्रता संग्राम के नायक बहादुरशाह जफ़र का वह पत्र जो उन्होंने रीवा नरेश, महाराजा रघुराजसिंह को लिखा था। इस पत्र में बादशाह ने महाराजा को लिखा था कि मुकुन्दपुर का परगना जो 'कलेवा' में दिया गया था, जिसकी आमदनी बराबर आगरा और दिल्ली भेजी जाती रही है, उसे पुन: भिजवाना प्रारंभ करा दिया जाये।

यह पत्र रीवा के प्रो. अख्तर हुसैन निज़ामी के पास है, जो उन्हें रीवा के मोहफिज खाने में मिला था। इस पत्र के साथ प्रो. निज़ामी को एक ताम्रपत्र भी मिला था। आशा की जा रही थी कि प्रो. निज़ामी, इतिहास के इस बंद पृष्ठ को खोलेंगे, किन्तु उन्होंने इस दिशा में कोई प्रयास नहीं किया। हाँ, गुरु रामप्यारे अग्निहोत्र ने अवश्य, शेरशाह सूरी और हुमायूँ को घटनाक्रम और मुकुन्दपुर में जन-जन में व्याप्त इस विश्वास को कि इस गढ़ी में अकबर का जन्म हुआ, इस गढ़ी में छठी हुई, और यहाँ से बान्धवगढ़ ले जाये गये, के आधार पर यह माना है कि अकबर का जन्म मुकुन्दपुर में ही हुआ था।

अकबर और उसके बाद, मुग़ल बादशाहों का रीवा राज्य से मैत्रीपूर्ण व्यवहार जो महाराजा रामचन्द्र को बंधुवत् मानते थे और अन्त में बहादुरशाह ज़फ़र का पत्र, पर्याप्त साक्ष्य है, अकबर के मुकुन्दपुर में जन्म का। हुमायूँ की बेग़म को पकड़ने के लिये रीवा से आगे बान्धवगढ़ न जा पाने से चिढ़कर ही शेरशाह ने कालिंजर के क़िले पर चढ़ाई की थी और अपने पुत्र सलीमशाह को रीवा छोड़ गया था।

वीरभानु देव ने शिशु अकबर और उसकी माँ को अपने 400 सिपाहियों के साथ सकुशल हुमायूँ के पास अमरकोट भिजवा दिया।

वि.सं. 1612 में हुमायूँ जब दिल्ली के सिंहासन पर बैठा तो उसने इस उपकार के बदले, कालिंजर और उसके आस-पास का प्रान्त पुन: वीरभानु देव को दे दिया। और अपने एक सिक्के में एक ओर (क) ख़्वाजे सिक्का अल्लाहो अकबर, और दूसरी ओर (ख) बुबादेवा क़िले बान्धो बराबर, खुदवाकर अपने बन्धुभाव को प्रगट किया। इसी वर्ष जब वीरभानु देव के पौत्र वीरभद्र पैदा हुये तो बादशाह ने तोहफ़ा भेजा था।

महाराजा रामचन्द्र सिंह देव को प्रसिद्ध इतिहासकार बदायूँ ने, विलक्षण दानी महाराजा लिखा है। ये स्वयं संगीतज्ञ और कला के पुजारी थे। इन्होंने तानसेन की एक ही तान पर एक करोड़ सोने की मोहरें दे डाली थीं। बादशाही महाकवि हरनाथ महापात्र, अर्थाभाव के कारण, महाराजा रामचन्द्र के दरबार में पहुँचे। इनकी एक कवित्त पर एक लाख का पुरस्कार महाराजा ने दिया। महाकवि हरनाथ जन, पुरस्कार लेकर रीवा दरबार से जा रहे थे, रास्ते में

उन्हें रीवा राज्य का एक दीन ब्राह्मण "कलेक" मिला। उसके एक दोहे से प्रसन्न होकर दानी महाकवि ने, महाराजा से मिले पुरस्कार को, कलेक को दे दिया। इसी प्रकार अब्दुल रहीमख़ान ख़ाना के एक दोहे पर एक लाख रुपये उस ब्राह्मण को दिये, जो ख़ानख़ाना के परचे को लेकर आया था। इसी परचे में वह दोहा लिखा हुआ था।

वि.सं. 1621 में कड़ा के गवर्नर गाज़ी ख़ाँ तातारी को महाराजा द्वारा गहोरा में संरक्षण देने और अकबर के सरदार आसफ ख़ाँ को माँगने पर गाज़ी ख़ाँ, को गहोरा से बान्धवगढ़, लेकर चले जाने के कारण आसफ ख़ाँ ने अकबर से अनुमति लेकर गाज़ी ख़ाँ को पकड़ने के लिए बान्धवगढ़ को भी घेर लिया। बान्धवगढ़ से, रामचन्द्र ने अपना दूत अकबर के पास भेजा। अकबर के आदेश से, आसफ ख़ाँ ने घेरा उठा लिया और गाज़ी ख़ाँ को छोड़ दिया गया।

आसफ ख़ाँ बान्धवगढ़ से चला तो गया, किन्तु कड़ा सहित गहोरा के आसपास का भाग और कसौटा का प्रान्त भी सदा के लिये रीवा से अलग हो गया। कसौटा का संबंध रीवा राज्य से न रहकर मुग़ल दरबार से हो गया। वि.सं. 1621 में, रीवा राज्य की राजधानी बान्धवगढ़ हो गई। वि.सं. 1626 में महाराजा ने स्वयं कालिंजर की चाभी, बादशाह के पास भिजवा दी।

वि.सं. 1641 में अकबर द्वारा रीवा राज्य के दो रत्नों, तानसेन और प्रसिद्ध अवलख मोती, जिसका मूल्य कई लाख रुपये माँगने पर भी रामचन्द्र ने मना कर दिया। अकबर बहुत नाराज़ हुआ और एक विशाल सेना लेकर, बान्धवगढ़ पर चढ़ाई करने के लिये प्रस्थान कर दिया। जिस समय बादशाह का पड़ाव फतेहपुर सीकरी में था, युवराज वीरभद्र (पुत्र रामचन्द्र जो अकबर के ही दरबार में रहते थे) के समझाने पर अकबर ने बीरबल और जेन ख़ाँ कोका को तानसेन को लेने बान्धवगढ़ भेजा। बीरबल, रीवा दरबार से ही बादशाह की दरबार में गये थे। बीरबल का जन्म, चुरहट इलाक़े के ग्राम घोघरा में हुआ था। यह बचपन से ही चण्डी के परम भक्त थे। चण्डी के इस मंदिर में अभी भी हर वर्ष मेला लगता है।

बीरबल और स्वयं तानसेन के समझाने पर, महाराज ने तानसेन को अकबर के पास भेज दिया।

चुरहट के राव

इनका खानदान 16वीं शताब्दी के तृतीय चरण में, कसौटा के महाराव करनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र विक्रमाजीतसिंह से स्थापित हुआ है। विक्रमाजीत कहीं बाहर थे, तभी इनके छोटे भाई मेदनीसिंह कसौटा की गद्दी में बैठ गये। छोटे भाई से विवाद न कर, महाराव विक्रमाजीतसिंह, महाराजा रामचन्द्रसिंह देव की सेवा में बान्धवगढ़ चले आये। यहाँ इन्हें राव की पदवी और चुरहट ठिकाना 85 गाँव, जिनकी आमदनी 35,000 रुपये थी, जागीर में मिली। चंवर, लंगर, डंका, निशान आदि मंसब भी प्रदान किया गया।

चुरहट के आदि पुरुष राव विक्रमाजीतसिंह ने मड़वास के बालेन्दु राजा को हराकर, अपने आधीन कर लिया। कलचुरी राज्य के समाप्त हो जाने पर, बालेन्दु राजाओं ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया और मड़वास को राजधानी बनाया था।

तब, मड़वास के जंगलों में जंगली हाथी बहुतायत से पाये जाते थे, और बान्धवगढ़ हाथियों के बिक्री का प्रमुख केन्द्र था। महाराजा रघुराजसिंह जू देव के शासन काल वि.सं. 1927 में, मड़वास के जंगल से 30 हाथियों के पकड़े जाने का उल्लेख मिलता है। विश्वप्रसिद्ध दुर्लभ सफेद शेर मोहन, रीवा के अंतिम शासक महाराजा मारतण्ड सिंह

जूदेव को, मड़वास के ही जंगल में मिला था। राव विक्रमाजीतसिंह के पश्चात् इनके पुत्र गणेशसिंह, गणेशसिंह के पुत्र संग्रामसिंह और इनके पुत्र मदनसिंह चुरहट गद्दी पर बैठे।

राव मदनसिंह की पहली यानी बड़ी रानी से 12 पुत्र व छोटी रानी से पाँच पुत्र हुये। किन्तु छोटी रानी से पहले पुत्र करनसिंह हुये। बड़ी रानी को बाद में पुत्र प्राप्त हुये। उत्तराधिकार के लिये हुये विवाद के कारण राव मदनसिंह, बड़ी ठकुराइन के बारह पुत्रों को लेकर रामपुर नेकिन चले गये, और दोनों ठिकानों की सरहद बाँध दी। घुघरी नदी के पूर्व दिशा में चुरहट इलाक़ा और पश्चिम में रामपुर नेकिन वालों को "लल्लू साहब" की उपाधि दी गयी।

महाराजा गुलाबसिंह ने, अपने शासन के लगभग अन्तिम दौर में, रामपुर के लल्लू साहब को "राव" की उपाधि दी।

राव मदनसिंह के रामपुर नेकिन चले जाने से इनके ज्येष्ठ पुत्र करनसिंह चुरहट की गद्दी पर बैठे। इनके दूसरे भाई लालशाह को मोहनिया, जोरावरसिंह को बरखड़ा, बैरीसाल को लकोड़ा और पाँचवे भाई पृथ्वीसिंह को घोघरा मिला। मोहनिया में यह अंधविश्वास व्याप्त था कि यहाँ के ठाकुर का वंश नहीं चलेगा, इसलिये लालशाह नाराज़ होकर रीवा दरबार में चले आये, और चामू का इलाक़ा प्राप्त किया। इन्हीं के वंशज चामू के ठाकुर शत्रुघ्नसिंह के तृतीय पुत्र कर्नल, लालजनार्दनसिंह, जो महाराजा वेंकटरमणसिंह जू देव के निजी सचिव थे, इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर, महाराज ने तालाब इलाक़ा प्रदान किया। इनके पुत्र कुँ. यशवन्तसिंह, महाराजा गुलाबसिंह के निजी सचिव और बाद में सचिव का पद मंत्री में बदल गया, इन्हीं श्री यशवन्तसिंह के पुत्र कुँ. मोरध्वजसिंह वर्तमान महाराजा मारतण्डसिंह जू देव के ए.डी.सी. हैं।

मेनपुरी के चौहान राजा उदयभानसिंह के छोटे भाई गणेशराय की रिश्तेदारी चुरहट के बघेलों के यहाँ थी। इसी कारण इनके पुत्र भू गाँव से वि.सं. 1729 में चुरहट आये। इन्हें यहाँ टिका लिया गया और निर्वाह के लिये देवगढ़ दे दिया।

रीवा महाराजा अवधूतसिंह (वि.सं. 1759-1812) के समय हृदयशाह बुन्देला ने रीवा पर चढ़ाई की थी। इस युद्ध में, चौहान बन्धु रुद्रशाह और विरुद्धशाह प्रशंसनीय वीरता के साथ वीरगति को प्राप्त हुये। इसी युद्ध में मर्दनशाह कलचुरी, जो उसी दिन नवपरिणिता पत्नी के साथ घर आये थे, हाथ-पाँव कट जाने के बाद भी अनुपम वीरता से लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुये थे। रीवा क़िले के अंदर इनकी एक मात्र छतरी अभी भी बनी हुयी है।

चौहान बन्धुओं की वीरता से प्रसन्न होकर, बघऊँ इलाके के कुछ गाँव, पटपरा, बढ़ोना, हटवा, पहाड़ी, कमजीं, कोल्हूडीह, तेन्दुआ और खड़बरा, चौहानों को दे दिया गया।

बालेन्दु राजा भीषमशाह तक, मड़वास लगभग ढाई सौ वर्ष तक, चुरहट के अधीन रहा। चुरहट के राव ज़बरदस्त सिंह (वि.सं. 1860-1893) के समय में, मड़वास, पथरोला, आदि के इलाक़ों का सीधा सम्बन्ध रीवा दरबार से हो गया।

5 अक्टूबर 1812 (वि.सं. 1869) को, अंग्रेजी सरकार और रीवा महाराजा जयसिंह के बीच संधि हुई। इसी संधि के अंतर्गत अंग्रेज़ों ने रेल, तार और डाक की व्यवस्था प्रारंभ कर दी। एक डाक घर चुरहट में भी खोला गया। राव जबरदस्तसिंह की शह पर, अंग्रेज़ी सरकार की डाक लूट ली गयी। अंग्रेज़ों को महाराजा जयसिंह पर संदेह हो गया। वि.सं. 1872 में अंग्रेज़ों ने रीवा पर चढ़ाई कर दी। अंग्रेज़ों का शिविर जब ग्राम सथिनी के पास

पड़ा था, कुछ लोगों ने छापा मारकर, अंग्रेज़ों को भारी नुकसान पहुँचाया। इस प्रकार रीवा राज्य में अंग्रेज़ों से पहला विद्रोह, चुरहट वालों ने ही किया। अंग्रेज़ी सेना में खलबली मच गयी। इसकी सूचना जब जयसिंह को मिली, उन्होंने स्वयं अंग्रेज़ों के शिविर में जाकर, चढ़ाई में अंग्रेज़ों के ख़र्च हुये पैंतालीस हज़ार, एक सौ तिहत्तर रुपये राजकोष से देने और विद्रोहियों का दमन करने का वचन दिया।

चढ़ाई का जो ख़र्च दिया गया, उसके बदले में चुरहट के इलाक़े का बघऊ परगना राज्य में मिला लिया गया। बघऊ इलाक़े के आठ गाँव पहले ही चौहानों को दिये जा चुके थे।

वि.सं. 1876 में, बर्दा के राजा अजीतसिंह ने, रीवा महाराजा अजीतसिंह की आधीनता स्वीकार कर ली। इसी के साथ चौहानों का चौहान खण्ड और वेणुवंशियों का सिंगरौली राज्य भी रीवा राज्य के अधीन आ गया।

☐ *मोहम्मद युनुस— सीधी ज़िले के पूर्व सक्रिय युवा नेता इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त सीधी जैसे पिछड़े ज़िले के सक्रिय पत्रकार। साप्ताहिक समाचार पत्र का संपादन-प्रकाशन भी किया। आठवें दशक से श्री अर्जुनसिंह के विश्वस्त सहयोगी कार्यकर्ता। सम्प्रतिः निज सचिव के पद पर कार्यरत।*

बचपन की लकीरें

मोहम्मद युनुस

दशहरा, 'क्षत्रित्व का विजयपर्व' आज के दिन रीवा राज्य के सभी सामन्त अपने राजकुँवरों सहित राजसी परिधान में, महाराजा रीवा के दरबार में सम्मिलित होते थे।

रीवा राज्य के सभी 38 सामन्त परिवारों के राजकुँवरों से चुरहट के राजकुँवर सबसे ख़ूबसूरत माने जाते हैं। राजकुँवरों का पुलकित मन और आँखों में क्षत्रित्व का तेज़, उनकी कांति को और बढ़ा रहे हैं।

दोपहर ढलते ही चुरहट हाउस के प्रमुख सेवकों की आपा-धापी बढ़ जाती है। हर **कारिंदा** अपना काम समय से पूर्व पूरा करने को उतावला इधर से उधर दौड़ रहा है। ख़ुशी और डर का मिला-जुला अज़ीब भाव हर सेवक के चेहरे पर स्पष्ट पढ़ा जा सकता है। **राजा** की ख़ुशी पर ख़ुश होना **रहमत** की **नियति** है, और किसी भूल पर भगवान भी मालिक नहीं— क्योंकि राजा तो भगवान का दूसरा रूप होता है। तभी तो दशहरे के दिन राजा और नीलकंठ पक्षी का दर्शन साल को शुभ-शुभ गुजारता है।

सेवक अपने-अपने "कुँवर साहब" को तैयार करने में लग गए हैं। पर "मंझिले कुँवर साहब" का सेवक रूआँसा हो रहा है— छः वर्षीय मंझिले कुँवर साहब ने राजसी पोषाक पहनने को दृढ़ता से मना कर दिया है। सेवक बहुत मनाता है, फिर थक हार कर डरता हुआ कामदार पं. हरिहरप्रसाद को बताता है। कामदार साहब सेवक को ही डाँटते हुए, जल्दी से तैयार करने को कहते हैं। मँझिले कुँवर साहब फिर मना कर देते हैं— कहते हैं मैं यह राजसी पोषाक ही क्यूँ पहनूँ? पं. हरिहरप्रसाद समझाते हैं— आज के दिन सभी आमंत्रितों को महाराजा के दरबार में राजसी पोषाक ही पहन कर जाना होता है। किसी भी आडम्बर का विद्रोही यह बालक फिर दृढ़ता से कहता है— "मैं जाऊँगा तो अपने मन पसंद कपड़े ही पहनकर।" अपनी समझाइश का कोई असर न होता देख, पंडितजी ने अर्जुन पर ब्रह्मास्त्र छोड़ा— थोड़ा गुस्सा दिखाते हुए बोले— बड़े कुँवर साहब और छोटे कुँवर साहब तैयार होकर हुजूर के पास पहुँच चुके हैं, मैं जाकर कह देता हूँ, आप तैयार नहीं हो रहे हैं। देरी आप कर रहे हैं। देरी करने पर हुजूर के गुस्से को आप जानते हैं।" पर यह कोई साधारण बालहठ तो था नहीं जो पुचकारने, मनुहारने या डराने से दूर हो जाय। यह तो आने वाले कल का विद्रोही तेवर है, जिसे आडम्बरहीन होकर, सहजता और सरलता से **मानव** मूल्यों को समर्पित अपने आचरण का एक इतिहास लिखना है।

पर, राव साहब का आज जो गुस्सा होगा, वह साधारण न होगा, क्योंकि उनकी भी अपनी निर्धारित मान्यताएँ हैं। उन्हें तोड़ने का कोई दुःसाहस करे, यह उनके जैसे कठोर अनुशासनप्रिय और तेजस्वी मर्द के लिये कभी संभव नहीं। हर कहीं उनके गुलाब से खिले लाड़ले, विशिष्टों के बीच भी अपनी अलग आभा बिखेरें इसी चाह में, अंग्रेज़ धाय, इन सुकुमारों का लालन-पालन, देखरेख, कठोर अनुशासन में कर रही हैं।

कामदार साहब का भी प्रयास विफल होता देख, सेवक फफक कर रो पड़ा। रोने की आवाज़ कमरे के बाहर न जा पाये इस प्रयास में मुँह अंगोछे से दबा लिया। ग़रीब असहाय की विवशता के आँसुओं ने; मंझिले कुँवर

साहब की दृढ़ता को पिघला कर रख दिया। मंझिले कुँवर की दृढ़ता का स्थान करुणा ने ले लिया। सहज भाव से पूछ बैठे तू क्यों रोता है, कारिंदा और ज़ोर से रो पड़ा। रोते-रोते बोला— आपने ये पोषाक नहीं पहनी तो मेरी नौकरी तो चली ही जायेगी, बीबी-बच्चे भूखे मरेंगे ही, और न जाने क्या-क्या बीते।

जिस बालक को आगे चलकर करोड़ों दुखियारों के आँसू पोंछना थे, वह आज भला इस विवश सेवक के आँसू कैसे न पोंछते? राजसी आडम्बर के विद्रोही इस बालक ने, आज तक के अपने जीवन में पहली और आख़िरी बार, परिस्थिति से समझौता किया था। नौकर से बोले— "ले आओ जो-जो पहनाना हो सब पहना दो, मुझे दशहरे के हाथी जैसे सजा दो।"

मित्रों या सहकर्मियों से औपचारिकता स्वीकार नहीं

तीनों राजकुँवरों की प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था चुरहट की गढ़ी में ही की गयी थी। अंग्रेज़ी के लिये एक अंग्रेज़ गर्वनेस, संस्कृत-हिन्दी के लिये पंडित बृजवासीलाल पाण्डेय, उर्दू के लिये एक मौलवी साहब रखे गये थे। पं. बृजवासी के बड़े लड़के मनमोहनलाल पाण्डेय (स्वर्गीय) श्री अर्जुनसिंह के समवयस्क थे, ये उन्हें मोहन कहा करते थे, और मोहन इन्हें कुँवर साहब। कुँवर साहब का संबोधन, श्री अर्जुनसिंह को अच्छा नहीं लगता था। सहपाठियों के बीच औपचारिकता कैसी? श्री अर्जुनसिंह ने मोहन से पूछा— मोहन, तुम मुझे अर्जुन कहकर क्यों नहीं बुलाते? मोहन ने कहा आप राजा के लड़के, मैं साधारण पंडित का लड़का, क्या मेरी आफ़त आयी है, जो ऐसी धृष्टता करूँ। अर्जुनसिंहजी ने कहा, इससे क्या, हैं तो हम सहपाठी, जब मैं तुम्हें मोहन कहता हूँ, तो तुम्हें भी मुझे अर्जुन कहकर बुलाना पड़ेगा। पर सामन्ती भय इतना साधारण नहीं था, कि बालक मोहन, श्री अर्जुनसिंह की बात उतनी ही सहजता से मान लेता, जितनी सहजता से मंझिले कुँवर साहब कह रहे थे। मोहन के बाल मन में समाया डर बहुत प्रयास के बाद श्री अर्जुनसिंह छुड़ा पाये और मोहनजी जब तक जीवित रहे, अर्जुन ही कहते रहे।

कोई दुविधा या संशय नहीं

अभयं सत्व संशुर्द्धिज्ञानयोज्ञ, व्यवास्थितिः।
दानं दमच्श यज्ञच्श स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिर पैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं हरिचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है, हे अर्जुन! भय का सर्वथा अभाव, अन्तकरण की पूर्ण निर्मलता, सात्विक, दान, इंद्रियों का दमन, ईश्वर को मानने वाला, गुरुओं का आदर करने वाला, स्वधर्म पालन के लिये कष्ट सहना, शरीर, व इन्द्रियों सहित अन्तःकरण की सरलता, मन, वाणी और शरीर से किसी को आहत न करना, यथार्थ व प्रिय बोल-बोल तभी प्रिय होगा, जब वह सच होगा, सच तभी होगा, जब अन्तःकरण और इंद्रियों के द्वन्द्व से मुक्त होगा। अपकारी पर भी क्रोध न करना, उपकार में अभिमान का त्याग, स्थिर चित्त, परनिन्दा से दूर, सब भूतप्राणियों में हेतुरहित दया, कोमलता, तेज, क्षमा, धैर्य, शत्रुभाव से दूर और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव आदि दैवीय सम्पदा को लेकर पैदा हुए सत्पुरुष के ये सब लक्षण हैं।

अर्जुनसिंहजी का 46 वर्षों का राजनैतिक जीवन, सिर्फ़ राजनैतिक जीवन ही क्यों समूचा उनके बचपन से लेकर आज तक का जीवन और उनका आचरण, गीता में भगवान कृष्ण के बताये सदगुणों की कसौटी पर हर परिस्थिति, हर चुनौती पर ख़रा उतरा है। घोर से घोर विरोधी भी अर्जुनसिंह जी के 74 वर्षीय जीवन में इन्हें जो

जितना जानता हो, जितने वर्षों से जितना जानता हो, वह एक सिर्फ़ एक भी ऐसा उदाहरण या घटना बता नहीं सकता जब अर्जुनसिंहजी अपने स्थापित मूल्यों से डिग गये हों।

कैसे कर पाये, आख़िर, अर्जुनसिंह जी यह सब। यह रास्ता इतना सरल सहज तो नहीं। सत्य के रास्ते में तो चुनौतियाँ हैं, ऊबड़-खाबड़ रास्ते में काँटे ही काँटे हैं, षड्यंत्र हैं, नीरसता है, सत्य का रास्ता कठिन सही, किन्तु असंभव नहीं। हाँ संशय, द्वन्द्व या असमंजस की स्थिति से उबरना होगा। तभी अन्त:करण निर्मल होगा और आत्मविश्वास की ऊर्जा उसे **जीवनपर्यन्त** लक्ष्य की ओर गतिशील रखेगी।

द्वापर के अर्जुन का संशय द्वन्द्व या असमंजस को भगवान कृष्ण ने दूर किया था, जिसे गीता का उपदेश कहा गया। पर आज के इस अर्जुन को ये सब गुण जन्मजात मिले हैं। हाँ ये गुण माताजी के संरक्षण में परवान चढ़े हैं। श्री अर्जुनसिंह के जीवन में माताश्री का प्रभाव सर्वाधिक रहा है। होश संभालते ही श्री अर्जुनसिंह प्रकृति की ओर बढ़ गये। गर्मी, बरसात या कड़कड़ाती ठंड, सब में समभाव से अडिग खड़ा पहाड़ और उसी से सटी कलकल करती, हर अवरोध का सीना फाड़ कर, सतत गतिशील नदी, श्री अर्जुनसिंह की प्रेरणा बनी और इन्हीं के बीच प्रकृति पुत्र गोंड-झीलों का सान्निध्य श्री अर्जुनसिंह के हर संताप को तिरोहित कर देता। रात में करमा नाच पर, मादर पर पड़ती थाप, कोयल की कूकती उनकी आवाज़, श्री अर्जुनसिंह की थकान को संगीत-सा लयबद्ध कर, नई ऊर्जा भर देती।

विन्ध्य श्रेणी पर्वत मालाओं के कैमोर पर्वत के बीच महान् नदी व सोन नदी के संगम पर, नौढ़िया ग्राम में एक बहुत पुराना शिकारगाह है। यहाँ जो रेस्ट हाउस है, वह सिर्फ़ लकड़ी का बनाया गया था। अब यह लगभग उजड़-सा गया। कभी लोग इस कठ बंगले को सिर्फ़ देखने आते थे। यह वह स्थान है, जहाँ आज भी अर्जुनसिंहजी, अपने व्यस्ततम क्षणों में से कुछ क्षण साल में एक बार वहाँ जाने के लिए निकाल लेते हैं। श्री अर्जुनसिंह के मुख्यमंत्रित्व काल में अब यहाँ पर एक अति आधुनिक, बहुत ही ख़ूबसूरत सर्किट हाउस बन गया है। इसके अतिरिक्त श्री अर्जुनसिंह का एक और प्रेरणा स्थल है, कुसमी-सीधी जिले के दक्षिण के अन्तिम छोर पर बसे कुसमी यहाँ जाने का दु:साहास कोई बिरला ही, अभी 20 वर्ष पूर्व तक, कर सकता था। पर, प्रकृति की गोद में कुसुम (फूल) सा खिला यह गाँव, श्री अर्जुनसिंह को अपने पास खींच ही लाता। यह एक ऐसा गाँव था, जहाँ सिर्फ़ गोंड आदिवासी ही रहते थे।

असमंजस की स्थिति के बारे में अर्जुनसिंह का दृष्टिकोण एकदम साफ़ है। वे कहते हैं— "हम जो करना चाहते हैं, उसे हम कह नहीं पाते। कह इसलिये नहीं पाते कि जो करने का मूल्य है, उसे हम चुकाना नहीं चाहते।"

जीवन में हिंसकता का कोई स्थान नहीं

प्रतिभा और पुरुषार्थ के धनी इस अत्यन्त संवेदनशील, बहुमुखी व्यक्तित्व को, जिससे आज सभी परिचित हैं, इसकी स्पष्ट छाया, इनके बाल काल से ही मिलती है। इसी क्रम में आगे आइये देखते हैं जब वे किशोरावस्था की ओर बढ़ रहे थे—

तीनों भाई बन्दूक चलाना सीख चुके थे। अभ्यास के लिये चुरहट हाउस के नज़दीक मारतण्ड होस्टल के पास वाले पेड़ में, जिसमें चिड़ियों का समूह हमेशा चहचहाता रहता था, उन पर निशाना साधा जाने लगा। जैसी ही चिड़ियाँ आकर बैठतीं, भाइयों में से कोई या कोई दोस्त चिड़ियों पर निशाना साधने लगता। यह बात मँझले कुँवर को अच्छी न लगी। इन्होंने इसका विरोध किया। — "अपने खेल के लिये, अभ्यास के लिये निरीह चिड़ियों की जान लेकर, प्रसन्न होना क्या पाशविकता नहीं है?" इसका उत्तर यद्यपि मित्र मण्डली में किसी के पास न था, फिर भी अभ्यास जारी रहा है। मजबूर होकर "अर्जुन" चिड़ियों को उड़ा देते। अर्जुन की इस हरकत पर चिढ़कर सब मित्र मण्डली उन्हें अर्जुन की जगह "बनिया" कहने लगे। सब चिढ़ाते अर्जुन तो महात्मा गाँधी का चेला हो गया है, यह भी बनिया है।

बेगारी प्रथा के विरुद्ध विद्रोह

यह मित्र मण्डली गर्मियों की छुट्टी में, जंगली जानवरों के शिकार के लिये जाते हैं। शिकार में हाकें और मदद के लिये स्थानीय गाँव वालों को, जिनमें मुख्यत: आदिवासी होते हैं, साथ ले लिये जाते हैं। दिन भर के प्रयास में जो जंगली जानवर, छिगार, सांभर और जंगली सुअरों को मारा जाता है उन्हें उठाकर ले चलने की बात आती है। दिन भर के भूखे-प्यासे आदिवासियों को ही इस काम के लिये कहा जाता है वे मना कर देते हैं। राजा के लड़कों को ही बेग़ारी के लिये मना कर दिया जाये, यह सामन्ती सोच के किशोरों को भला कब बर्दाश्त होता है। रइयत से बेग़ारी लेने का अधिकार तो हर बड़े आदमी को प्राप्त है। फिर इनकी क्या मज़ाल कि ये लोग, राजा और इलाक़ेदारों के लड़कों के हुकुम बजा लाने से मना कर दें। दण्ड देने के लिये जैसे ही एक दो साथी आगे बढ़ते हैं, मँझिले कुँवर साहब (श्री अर्जुनसिंह) दृढ़ चट्टान की तरह, उन निरीह आदिवासियों की ढाल बन कर खड़े हो जाते हैं और कहते हैं, दिन निकलने से पहले से ही ये लोग हम सबके साथ दौड़ रहे हैं, खाना तो दूर आप में से क्या किसी ने इनसे पूछा या जानना चाहा कि इस तपती धूप में इन्हें पीने को पानी तक क्या मिला है? ये हमारे जैसे उजले कपड़े पहने न सही, पर हैं तो हमारे जैसे ही हाड़-मांस के बने। इन्हें भी हमारे जैसी ही भूख और प्यास लगती है। **इन पर यह अत्याचार मैं नहीं होने दूँगा। हार कर मित्र मण्डली को अपना शिकार छोड़ कर आना पड़ता है।**

धार्मिक सहिष्णुता

रीवा के सभी नरेशों में जो विशेष गुण समान पाये गये हैं, वे हैं धार्मिक सहिष्णुता और साहित्य व कला के प्रेमी और पारखी। संस्कृत के एक छंद पर एक लाख मुद्राएँ दान देने वाले रीवा के नरेश ही हुए हैं। वीर रस के प्रसिद्ध कवि मनीराम को "भूषण" की उपाधि रीवा दरबार में ही मिली। तानसेन रीवा से और चुरहट से बीरबल, जाकर अकबर के नौ रत्नों में शामिल हुए। हिन्दी के प्रथम नाटककार महाराजा विश्वनाथसिंह यहीं के हैं। संस्कृत, हिन्दी और फारसी के मूर्धन्य विद्वान इस राजवंश में कई हुए हैं। जिन्होंने कई ग्रन्थ लिखे हैं।

धार्मिक सहिष्णुता की यह स्थिति थी कि प्रतापी नरेश वीरभानु (वि.सं. 1596-1692 तक) महात्मा कबीरदास के प्रधान शिष्यों में थे। मुस्लिम सूफी-सन्तों पर इतनी अटूट आस्था थी कि रीवा राज्य में जितनी भी दरगाहें हैं, वह सब रीवा दरबार की बद्दौलत। हिन्दू-मुसलमान में फ़र्क़ भी हो सकता है, यह बात कल्पना से परे थी। यही कारण रहा कि रीवा राज्य से पाकिस्तान जाने वाला शायद ही कोई परिवार हो, देश के बँटवारे के समय यहाँ के मुसलमानों में एक ही चर्चा थी, हम इस माटी के हैं, इसी माटी में दफ़न होंगे।

यह धार्मिक सहिष्णुता अर्जुनसिंहजी को विरासत में मिली। एक बार किशोर "अर्जुन" की तबियत कुछ ज़्यादा ख़राब रहने लगी। यह समय था जब भारतीय युवाओं के मन-मस्तिष्क में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का जादू छाया हुआ था। "जय हिन्द" का जुनून रक्त की धमनियों में प्रवाहित हो रहा था। दवा-इलाज से कोई फ़ायदा नहीं हो रहा था। तब स्वयं श्री अर्जुनसिंह ने कहा मुझे मऊगंज वाले हाफ़िजजी के पास ले चलो। सब ठीक हो जायगा और ईश्वरी चमत्कार कि हाफ़िजजी की दुआ से सब ठीक हो गया।

श्री अर्जुनसिंह के मन में हर धर्म में आस्था व उसके प्रति आदर का भाव सदा से रहा है। इसी संदर्भ में एक और घटना का उल्लेख प्रासंगिक होगा। यद्यपि यह घटना काफ़ी बाद की, 1973 की है, जब श्री अर्जुनसिंह शिक्षामंत्री थे। शिक्षामंत्रीजी सीधी प्रवास पर थे। शिक्षा विभाग की गाड़ी दौरे में गई थी उसका ड्राइवर एक मुसलमान था, जो रोज़ा-नमाज़ का पाबंद था। शिक्षामंत्रीजी अपने गृहग्राम सांडा में रूके थे। रात के खाने में क्या बनेगा यह पूछने नौकर सुग्रीव आया। परिवार के किसी सदस्य ने मुर्गा बनाने को कहा। श्री अर्जुनसिंह तत्काल बोल उठे, मुर्गे को ड्राइवर

से हलाल करवा लेना ताकि वह भी खा सके। छोटे से छोटे लोगों का उनकी मान्यताओं के अनुरूप, उनका ख़्याल रखना, यह श्री अर्जुनसिंह जैसे व्यक्तित्व के ही बस की बात है।

राजनैतिक चेतना

9 अगस्त 1942 को, जब महात्मा गाँधी ने "अंग्रेज़ों भारत छोड़ो" का नारा दिया, समूचे भारत में "करो या मरो" का उफान आ गया। हर भारतीय के मन मस्तिष्क में आज़ादी की अकुलाहट दिनदूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। अकुलाहट के इस सैलाब में डूबने से वह बालक भला कैसे बच पाता।

इलाहाबाद से प्रकाशित अंग्रेज़ी दैनिक "दि लीडर" की कुछ प्रतियाँ रीवा आती थीं। उनमें से एक प्रति चुरहट हाउस भी आती थी। दैनिक समाचार-पत्र इसी समय से श्री अर्जुनसिंह की दैनिक आवश्यकता बन गया। श्री अर्जुनसिंह राष्ट्रीय और प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक घटनाओं को गंभीरता से पढ़ते, उनकी कटिंग रखते। उस समय के अख़बारों की कटिंग का एलबम आज भी उनके पास सुरक्षित है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और पं. जवाहरलाल नेहरू इनके आदर्श बन चुके थे। नेताजी से तो इतना अधिक प्रभावित हो चुके थे कि 'आज़ाद हिन्द फौज' में भर्ती होने की इच्छा मित्रों से व्यक्त करते रहते थे। पर ऐसा कोई साथी या मित्र न था, जिससे ये अपने मन की बात खुलकर कह पाते। देश की आज़ादी की लहरें मन-मस्तिष्क में हिलोरें मारतीं, इन्हें अशांत कर चुकी थीं। अपनी अकुलाहट और छटपटाहट को दबाये रखने से ये तनावग्रस्त हो गये थे।

जनवरी 1946 में लाहौर से एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, — "Formation and growth of the Indian National Army" यह पुस्तक 28 जनवरी 1946 को श्री अर्जुनसिंह ने अपने मास्टर साहब श्री गुरुप्रसाद श्रीवास्तव को पढ़ने को दी। मास्टर साहब ने घर में जब इस पुस्तक को देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जनवरी में लाहौर से प्रकाशित यह पुस्तक इतनी जल्दी इस बच्चे के हाथ आ गई और उसे इतनी जल्दी पढ़ भी लिया। पर अभी तो श्रीवास्तव साहब के सामने इससे भी बड़ा आश्चर्य आना था। दूसरे दिन जब शाम को पढ़ाने मास्टर साहब पहुँचे, तो पहला सवाल उनके सामने था— मास्टर साहब आपने पढ़ा? पढ़ा तो अवश्य था मास्टर साहब ने पर वह नहीं जिसे यह किशोर पढ़ाना चाहता था। तब श्री अर्जुनसिंह ने बताया कि पुस्तक के ऊपर अख़बार का जो कवर चढ़ा है और उसमें जो पेन से रेखांकित है, उसे पढ़िये। यह 24-9-45 का 'दि लीडर' अख़बार था। समाचार जिसे श्री अर्जुनसिंह ने पढ़ाना चाहा था वह था पं. जवाहरलाल नेहरू का वह वक्तव्य जिसमें आज़ाद हिन्द फौज के सेनानियों पर मुक़दमा चलाये जाने का विरोध किया गया था। यह भी घोषणा की गई थी कि काँग्रेस में एक डिफेन्स कमेटी बनाई जायेगी।

किसानों से अनुराग

हाईस्कूल के बाद श्री अर्जुनसिंह आगे की पढ़ाई के लिये इलाहाबाद आ गये। गर्मी की छुट्टियों में जब वे चुरहट गये तो किसानों ने फरियाद की कि अकाल पड़ जाने के कारण वे भूख से मर रहे हैं, लगान कहाँ से दें। रीवा राज्य का यह वर्ष था, जब यहाँ की सम्पूर्ण व्यवस्था बिगड़ गई थी। नमक, तेल, कपड़ा सब ग़ायब हो गया था। किसानों की फरियाद से द्रवित होकर, श्री अर्जुनसिंह ने लगान माफ़ कर दिया था।

राव साहब ने अपने चारों बेटों का बँटवारा कर दिया था। श्री रणबहादुरसिंह को सेमरिया और चुरहट, श्री अर्जुनसिंह को बरहोंपर (चुरहट से पूर्व की ओर का इलाक़ा), डॉ. सज्जनसिंह को चौफाल और सबसे छोटे श्री गंगासिंह को अकौरी मिला था। पिता को मालूम हुआ कि अर्जुन ने अपने इलाक़े का लगान माफ़ कर दिया है। किसानों ने लगान नहीं दिया है, तो वे बहुत नाराज़ हुए। इस समय राव शिवबहादुरसिंह, विन्ध्यप्रदेश में उद्योगमंत्री थे। राव साहब के आदेश पर लगान वसूल कर लिया गया। दो एक हिम्मती किसानों ने जो श्री अर्जुनसिंह के निकट

आ चुके थे, उन्होंने इलाहाबाद पत्र लिखकर सूचना दी कि कुँवर साहब आपने तो लगान माफ़ कर दिया था, किन्तु आपके दाऊ साहब ने लगान बड़ी बेरहमी से वसूल करवा लिया है।

श्री अर्जुनसिंह को इस घटना से आत्मिक पीड़ा हुई। तत्काल इलाहाबाद से चुरहट चल दिये। न्याय के लिये पुत्र पिता के सामने खड़ा था। पुत्र ने पिता से मौलिक प्रश्न किया— जब आपने यह इलाक़ा मुझे दे दिया, इस पर मेरा अधिकार दे दिया, तब मेरे निर्णय के विरुद्ध आपने लगान क्यों वसूल करवाया? पिता के पास इस मौलिक प्रश्न का कोई उत्तर तो था नहीं; वात्स्लय का ही सहारा लेना पड़ा पिता को। पिता ने प्रतिप्रश्न किया— लगान नहीं लोगे तो तुम्हारा खर्च कहाँ से चलेगा? पर, पुत्र कोई साधारण पुत्र तो था नहीं। पुत्र का बहुत स्पष्ट जवाब था— आपने जो मुझे दिया है, उसमें से मैं अपना निर्वाह किस प्रकार करूँगा, यह सोचना मेरा काम है।

पिता का वात्सल्य

1952 के चुनाव प्रचार के दौरान 10 जनवरी की एक ठंड से कड़कड़ाती रात में, दो अनाथ भाई-बहन कहीं से चलकर, श्री अर्जुनसिंह के कंधवार कैम्प में, आग तापने की लालच में पहुँच गये। 10 वर्षीय अन्धे भाई और 11 वर्षीय बहन की करुण कथा सुनकर वे इतने द्रवित हुए, कि इन्हें अपने पुत्र-पुत्री के रूप में रख लिया। करुणा का बस नियति पर कब चला है? इन मासूम बच्चों को पिता तुल्य आश्रय मिल चुका था। दोनों बच्चे, बाल सुलभ चंचलतावश मकर-संक्राति के मेले में गये पर फिर कभी लौट न सके। मेले से लौटते समय दोनों बच्चे, एक बाढ़ से उफनते नाले में बह गये। इन बच्चों से इनका कितना लगाव और प्यार हो गया था, और इस दुर्घटना से श्री अर्जुनसिंह को कितना गहरा आघात लगा, यह सब लोग 30 वर्ष बाद जान पाये। जब 28 जनवरी 1982 को, करुणामयी मदर टेरेसा की उपस्थिति में, अपने सार्वजनिक भाषण में, इन्होंने इस घटना का उल्लेख किया। शायद, किसी के लिये भी यह पहला अवसर रहा होगा, जब लोगों ने श्री अर्जुनसिंह के गले को दुःख से अवरुद्ध होते और आँखों में आँसू भरे देखा होगा। बड़ा से बड़ा दुःख, गहरे से गहरा आघात, प्यार व वितृष्णा सब को श्री अर्जुनसिंह अपने विशाल हृदय के किसी कोने में छिपा लेते हैं, यह आज तक निकट से निकटतम व्यक्ति भी न जान पाया। इनका पुरुषार्थ व संघर्ष दुःख की अभिव्यक्ति को रोकते हैं, तो अनुराग, आडम्बर में न बदल जाये इसे इनका स्थिर चित्त रोके रहता है। लोग कहते हैं, आज के इस मशीनी युग में समुद्र की गहराइयों में उतर जाना संभव है, पर साहब के मन की बात का अनुमान लगा पाना असंभव है।

अंधविश्वास से परहेज़

आदिवासियों में निश्छलता, निर्मलता और गज़ब की जीवटता होती है। इसी कारण श्री अर्जुनसिंह आदिवासियों से अत्याधिक प्रभावित है। शिकार ने दोनों के बीच की दूरी समाप्त कर दी है। आज भी अर्जुनसिंह अपने मांगलिक कार्यों में, हर प्रमुख आदिवासी मुखिया को निमंत्रित करते हैं तो वे सरल हृदय भी अपनी बात बेहिचक इनके सामने रख देते हैं। 1973 में शिक्षा मंत्री (श्री अर्जुनसिंह) का कार्यक्रम बरका गाँव में चल रहा था। कलेक्टर से लेकर, सभी प्रमुख जिला अधिकारी की उपस्थिति में दो आदिवासी, अपने कुँवर साहब के कान में कुछ कह रहे थे और मंत्रीजी हल्के से मुस्करा रहे थे, यह पता नहीं चला। बाद में मंत्रीजी ने स्वयं कलेक्टर और जिला वन अधिकारी को बताया कि यहाँ पर बाघों का जो जोड़ा आया हुआ है, उनकी निगरानी गंभीरता से की जाये। मंत्रीजी ने बताया कि ये दोनों उनके पुराने शिकारी साथी है, जो बाघों के शिकार के लिये कह रहे थे। इन आदिवासियों को क्या पता था कि बाघ या किसी का शिकार अब प्रतिष्ठा की बात नहीं, अब इनके संरक्षण में प्रतिष्ठा है।

आदिवासियों के सरल मन में अंधविश्वास जल्दी स्थान पा लेता है। इस अंधविश्वास को तोड़ने का जब भी अवसर आया, कुँवर साहब ने तोड़ा। इसी बरका ग्राम में शिकार के लिये कुँवर साहब का डेरा पड़ा हुआ था।

15-16 वर्षीय किशोरवय का मन तो सिर्फ़ शेर ही अधिक से अधिक मारने का था। बातों-बातों में पता चलता है कि डीह (आदिवासियों के सबसे बड़े देवता-ठाकुर देव का चबूतरा) के पास वाले जंगल के छिगार (हिरण जाति का, बकरी की कदकाठी समान) का कोई शिकार नहीं कर सकता। इनकी रक्षा स्वयं ठाकुर देव करते हैं। कुँवर साहब ने निश्चय कर लिया, कल छिगार ही मारेंगे। छिगार के झुण्ड पर निशाना चूक गया। आदिवासी शिकारी साथियों ने कहा— कुँवर साहब ये मार में नहीं आयेंगे, आप परेशान न हों। दृढ़निश्चयी किशोर कब इस चुनौती से भागने वाला था। दूसरे रोज़ एक नहीं तीन छिगार मारे गये। कुँवर साहब ने ठाकुर देव में आस्था भी व्यक्त की; अंधविश्वास को भी तोड़ा।

न्याय के पुजारी

न्याय की लड़ाई में, द्वापर के अर्जुन ने गाण्डीव रख दिया था। हाथ जोड़ भगवान कृष्ण से पूछते हैं— हे माधव! मैं अपने ही परिजनों पर बाण कैसे चलाऊँ कैसे चलाऊँ पितामह पर बाण, जिनकी गोद में मुझे पिता का वात्सल्य मिला और युद्ध करने को मना कर देते हैं। इस अर्जुन के संशय को दूर करने के लिये कृष्ण थे पर यहाँ कोई कृष्ण नहीं। थी, बस माता जिन्होंने दुलार के साथ-साथ आज के इन "अर्जुनसिंह" का व्यक्तित्व गढ़ा था।

1952-53 की बात है। राव साहब अपने मुक़दमे में व्यस्त होने के कारण अधिकांशत: चुरहट से बाहर रहते थे। उन्होंने अपने अधिकार बड़े कुँवर साहब श्री रणबहादुरसिंह को सौंप रखे थे। राव साहब के पारिवारिक चिकित्सक डॉ. इन्द्रपति मिश्र चुरहट की गढ़ी में ही रहते थे। डॉ. इन्द्रपति मिश्र के बड़े लड़के श्री दयाशंकर मिश्र, श्री रणबहादुर सिंह, श्री अर्जुनसिंह और डॉ. सज्जनसिंह के समवयस्क थे, साथ-साथ पढ़े-लिखे भी इसलिये सभी मित्रवत थे।

एक बार राव साहब काफ़ी समय तक चुरहट नहीं आये। श्री दयाशंकर मिश्र उस समय राव साहब के फार्म हाउस में बने कच्चे घर में रहते थे। श्री मिश्र ने बड़े कुँवर श्री रणबहादुरसिंह से कहकर एक हज़ार रुपये में फार्म हाउस का वह झोपड़ीनुमा घर और उसी से लगी कुछ एकड़ ज़मीन मोल ले ली। विधिवत लिखा-पढ़ी हो गयी। कुछ दिन बाद जब राव साहब चुरहट आये और उन्हें पता चला कि फार्म हाउस की कुछ एकड़ ज़मीन और घर श्री दयाशंकर मिश्र ने ले लिया है, तो वे बहुत नाराज़ हुए। गुस्से में उन्होंने मिश्र जी को कहा— "दया तुमने एक हज़ार में मेरी कोठी भी क्यों नहीं लिखवा ली। तुम जकीड़ा खाली कर दो, बदले में दूसरी जगह कहीं भी ज़मीन ले लो।" मिश्र जी ने अनुरोध किया कि घर मैं कैसे खाली कर दूँ, उसमें मेरा परिवार रह रहा है कहाँ जायेगा, मेरा परिवार। पर, उनकी एक नहीं सुनी गई और घर जल्दी खाली करने का हुक्म दे दिया गया। लाचार मिश्रजी, कुँवर अर्जुनसिंह के पास जो अब सांडा में ही रहते थे, गये। फरियाद की। अर्जुनसिंहजी ने कहा— घर व ज़मीन तुमने ख़रीदे है, उस पर तुम्हारा अधिकार है। दाऊ साहब कैसे खाली करा रहे हैं। तुम घर खाली न करना। मैं दाऊ साहब से बात करूँगा। कुँवर अर्जुनसिंह का प्रयास विफल रहा। अन्तत: राव साहब ने कारिन्दों को भेजकर घर उजाड़ने का हुकुम दे दिया। यह ख़बर किसी तरह सांडा भी पहुँच गई कि राव साहब के आदेश से दयाशंकर को जबरन बेदख़ल किया जा रहा है। श्री अर्जुनसिंह सांडा से सीधे घटनास्थल पहुँचे और कारिन्दों को वहाँ से भगा दिया। लोग बताते है, उस दिन का अर्जुनसिंहजी का गुस्सा देखने लायक़ था। घर उजड़ने से बच गया और कुँवर साहब वापस गुस्से में तपती धूप में पैदल ही क़रीब आठ किलोमीटर सांडा चले गये। राव साहब के पास भी ख़बर पहुँच गई कि अर्जुनसिंह ने कारिन्दों को भगा दिया है। वे आग बबूला हो गये। राव साहब ने सीधा अपना अपमान माना। हाथ में बन्दूक लेकर स्वयं घटना स्थल पर पहुँच गये। पर, भगवान की कृपा से कुँवर साहब तब तक जा चुके थे। एक अनहोनी टल गयी।

कुँवर साहब ने श्री मिश्र से पुलिस में रिपोर्ट करवाई और न्यायालय सीधी में मुक़दमा दायर करवाया। श्री मिश्र के वकील थे श्री केशवप्रसादसिंह, जो सीधी जिले के सोसलिस्ट पार्टी के एक बड़े नेता भी थे। वकील साहब ने जब मिश्रजी के गवाहान की सूची में पहला नाम कुँवर अर्जुनसिंह का देखा तो दंग रह गये। बोले यह नहीं हो सकता। पिता के विरुद्ध पुत्र गवाही कभी नहीं देगा। मिश्रजी के विश्वास दिलाने पर वकील साहब ने कहा अच्छा मेरे कहने पर, जरा एक बार फिर पूछ आओ। मिश्रजी ने जब वकील केशवप्रसादसिंह की बातें बतायीं तो श्री अर्जुनसिंह ने पत्र लिखकर अपनी दृढ़ता दोहराई वे न्याय के लिये पिता के भी विरुद्ध गवाही देंगे। मुक़दमा कायम हो गया। एक दो पेशी के बाद श्री अर्जुनसिंह की गवाही थी। गवाही के लिये ये सीधी पहुँच चुके थे किन्तु इसी बीच आपसी रज़ामंदी के भी प्रयास तेज़ी से चल रहे थे। जिस रोज़ श्री अर्जुनसिंह को गवाही देनी थी, संयोग से उसी रोज़ आपसी रज़ामंदी की भी दरख्वास्त लग जाने से मुक़दमा ख़ारिज हो गया। रज़ामंदी कराने में मुख्य भूमिका दयाशंकर जी के पिता डॉ. इन्द्रपति मिश्र की थी।

ग़रीब का सहारा–लाठी

ऐसी ही एक घटना इससे तीन-चार साल पूर्व और घट चुकी थी। संयोग से उस रोज़ भी साथ में श्री दयाशंकर मिश्र थे। कुँवर अर्जुनसिंह, श्री दयाशंकर मिश्र के साथ अपनी फिएट से रीवा से चुरहट आ रहे थे। रामपुर नैकिन और कंधवार के बीच अचानक एक ग़रीब किसान ने उनको रोका। उसने रोते-रोते अपना दुखड़ा सुनाया कि उसकी पकी फसल अमुक ठाकुर साहब कटवा कर ले गये और उसे पीटा भी। श्री अर्जुनसिंह ने उसे अपनी गाड़ी में बैठने को कहा। गाड़ी में किसान अपनी लाठी नहीं रख पा रहा था। मिश्रजी ने कहा— लाठी छोड़ दो और बैठ जाओ। श्री अर्जुनसिंह यह सुनकर, लाठी स्वयं रखने लगे और मिश्रजी से बोले– दयाशंकर ग़रीब का सहारा यह लाठी है, इसे कैसे छोड़ दे।

रामपुर वापस लौटते समय मिश्रजी को पता चला कि कुँवर साहब तो ठाकुर साहब की रिपोर्ट लिखाने थाने जा रहे हैं। मिश्रजी ने कहा कुँवर साहब आप यह क्या करने जा रहे हैं? इस गंवार के लिये आप अपने ही ख़ून के विरुद्ध थाने में रिपोर्ट लिखवायेंगे? तब तक गाड़ी थाने में पहुँच चुकी थी। थाने में कुँवर साहब को स्वयं आया देखकर हड़कम्प मच गई और जब यह पता चला कि एक गंवार के पक्ष में कुँवर साहब अपने ही रिश्तेदार के विरुद्ध रिपोर्ट लिखाने आये हैं, तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ। थानेदार ने सोचा यह सब गंवार किसान को सान्त्वना के लिये कुँवर साहब कर रहे हैं। थानेदार ने विनती की कि आप पधार जायें, मैं रिपोर्ट लिख दूँगा। कुँवर साहब ने भी थानेदार के मनोभावों को पढ़ लिया था, उन्हें लगा कि थानेदार उनके जाते ही इस ग़रीब की रिपोर्ट तो लिखेगें नहीं उल्टे इसे मार कर भगा देंगे। थानेदार से ज़ोर देकर रिपोर्ट लिखवाई और चेतावनी भी देते गये कि इस रिपोर्ट को काटा न जाये, अपितु कार्रवाई की जाये।

श्री अर्जुनसिंह ने मुख्यमंत्री बनने के तत्काल बाद यह आदेश दिया कि थाने में प्राप्त होने वाली हर शिकायत की रिपोर्ट लिखी जाय, एफ.आई.आर. में क्रमांक डाला जाय, और उसकी नकल शिकायतकर्ता को दी जाय। संभवत: इस आदेश की पृष्ठभूमि में उपरोक्त वर्णित घटना ही है।

स्वाभिमानी

जब पिता की इच्छा के विरुद्ध कुँवर अर्जुनसिंह, श्री दयाशंकर मिश्र की सहायता के लिये फार्म हाउस पहुँचे और घर उजाड़ रहे कारिंदों को भगा दिया। इससे नाराज़ होकर राव साहब ने श्री अर्जुनसिंह की मोटर सांडा से मँगवा ली।

मोटर न होने से, श्री अर्जुनसिंह को कहीं आना-जाना एक समस्या बन गयी। तब फिएट कार साढ़े सात हज़ार की आती थी। तय हुआ कि कैरा बाँध बेचकर कार ली जाये। कैरा बाँध चुरहट इलाके का बहुत प्रसिद्ध बांध था। कैरा बाँध को दो-चार बड़े किसान एक मुश्त ख़रीद लेना चाहते थे, किन्तु श्री अर्जुनसिंह ने मना कर दिया। बड़े किसानों ने साढ़े सात हज़ार के स्थान पर दस हज़ार रुपये में ख़रीदना चाहा। श्री अर्जुनसिंह ने दृढ़ता से मना कर दिया और कहा कि बाँध सिर्फ़ साढ़े सात हज़ार में बिकेगा और जितने भी अधिक से अधिक लोग लेना चाहेंगे, सभी को मिलेगा और कुँवर साहब के इस निर्णय की खबर ग़रीब की झोपड़ी तक पहुँच गयी। झोपड़ी का एक खेतिहर-मजदूर, जिसके पास सम्पत्ति के नाम पर एक पुस्तैनी बटुआ था। विशेष अवसरों पर ज़्यादा लोगों के लिए भोजन बनाने का फूल (एलाय) का बड़ा बर्तन, जो हण्डी जैसा होता है, उसे लेकर सांडा पहुँचा। एक बटुआ के बदले, उस ग़रीब को भी कुछ ज़मीन कुँवर साहब दे देंगे। यह इसका विश्वास था। मंझिले कुँवर साहब के प्रति ग़रीबों, बेसहारा के विश्वास का यह पहला प्रतीक था। डरता, सहमता, बटुए को छाती से चिपकाये, जीर्ण-शीर्ण शरीर वाला बुड्ढा ग़रीब, कुँवर साहब के घर पहुँच गया।

छोटे किसानों को, जो जितना पैसा दे, उस हिसाब से ठीक-ठीक ढंग से बाँध की ज़मीन दे दी जाये, यह ज़िम्मेदारी कुँवर साहाब ने श्री दयाशंकर मिश्र को सौंपी थी। बिल्कुल सहकारी ढंग से बाँध की बिक्री की जानी थी। पहले एक सूची बननी थी, जिससे उनके नाम के सामने, यह लिखना था कि अमुक ने कितना रुपया दिया। साढ़े सात हजार रुपये पूरे होते ही, हिसाब लगाकर, ज़मीन का मालिकाना हक़ दिया जाना था। बटुए वाला भी जब मिश्रजी के पास पहुँचा, तो उन्होंने इसे दुत्कार दिया। ग़रीब अनुनय करने लगा, पर मिश्रजी तैयार नहीं हो रहे थे। अपना खेत होने की काफ़ूर होती आशा से उसका मन टूट गया। अन्तिम आशा, अन्तिम विश्वास अभी जीवित था। ग़रीब खेतिहर-मज़दूर ने मिश्रजी से एक गुहार लगाई, उसे कुँवर साहब से मिलने दिया जाये। हल्लागुल्ला सुन कर कुँवर साहब बाहर आये उन्होंने मिश्रजी से जानना चाहा क्या बात है। तब वह ग़रीब अपनी व्यथा और खेत होने की आशा में आने की बात बताना शुरू कर चुका था। श्री अर्जुनसिंह ने मिश्रजी से गुस्से में पूछा आख़िर इसको ज़मीन देने में क्या परेशानी है? मिश्रजी ने बताया कि यह एक कुनबी (पटेल) रुपये नहीं, बटुआ लेकर आया है। इस बटुआ का क्या होगा? कितनी होगी इसकी क़ीमत? मिश्र जी के इन प्रश्नों को सुनकर बहुत ही साधारण ढंग से कुँवर साहब ने कहा- उससे पूछ लो बटुआ कितने रुपये का है, जितने रुपये का हो उतना पैसा मेरे हिस्से में प्राप्ति लिख लो और हिसाब से उसे ज़मीन दे दी जाये। उससे अपना बटुआ भी घर ले जाने को कहो।

''अर्जुन प्रतिज्ञा''

5 मार्च 1954 को, उच्चतम न्यायालय का भी फैसला राव शिवबहादुरसिंहजी के विरुद्ध गया। पिता को रीवा की जेल में छोड़, वहीं पर जेल के सींखचों को पकड़कर। ''अर्जुन प्रतिज्ञा'' की— ''परिवार में लगे इस दाग़ को धोकर रहूँगा।''

पर, क्या इतना आसान था, इस दाग़ को धो पाना। आज जब इतने घृणित अपमान के तीर, अर्जुन के हृदय को छलनी कर देने को चलाये जाते हैं, तब सहज ही कल्पना की जा सकती है कि उस समय श्री अर्जुनसिंह पर क्या कुछ नहीं आरोप लगाये गये होंगे। पर श्री अर्जुनसिंह ने हर चुनौती को सहज ढंग से लिया और संघर्ष से कभी मुँह नहीं मोड़ा।

श्री अर्जुनसिंह ने; बचपन से लेकर किशोरावस्था तक, अपने चरित्र की एक छाप छोड़ी थी। लोगों में एक विश्वास पनप चुका था कि यह बालक, सामान्तशाही का पोषाक नहीं, उसका विद्रोही है। यह विश्वास संघर्ष के लिये खड़े

होने की आधारशिला बन गया। दिल-दिमाग़ के द्वन्द्व से मुक्त, मन-वचन, सोच और कर्म को एकाकार कर "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफल हेतुर्भूर्भा ते संगोऽस्त्वकर्मणि" का व्रत लिये यह हठयोगी चलता-चलता यहाँ तक पहुँच गया, और आगे बढ़ता ही जा रहा है।

वातावरण में एक गूंज है—

राम काज कीन्हें बिना मोहि कहाँ विश्राम।

☐ *मोहम्मद युनुस— सीधी जिले के पूर्व सक्रिय युवा नेता इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त सीधी जैसे पिछड़े जिले के सक्रिय पत्रकार। साप्ताहिक समाचार-पत्र का संपादन-प्रकाशन भी किया। आठवें दशक से श्री अर्जुनसिंह के विश्वस्त सहयोगी कार्यकर्ता। सम्प्रतिः निज सचिव के पद पर कार्यरत।*

उन्हें देखता हूँ खुश होता हूँ

के.सी. चतुर्वेदी
(श्री अर्जुनसिंह के सहपाठी, रीवा)

मैं अर्जुनसिंहजी को 1948 से जानता हूँ जबकि मैं और अर्जुनसिंहजी बी.ए. में एक साथ इलाहाबाद में पढ़ते थे। ये बी.ए. प्रथम वर्ष में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी आए थे। एज़ ए डेलिगेसी स्टूडेंट। उन्होंने यूनिवर्सिटी ज्वाइन की थी। वे अपने बंगले थ्री-कैनिंग रोड पर रहते थे। यूनिवर्सिटी में अंग्रेज़ी साहित्य की क्लास में हमारी पहली मुलाक़ात हुई। मैं ये क्लेम नहीं करूँगा कि उन दिनों मेरी उनसे घनिष्ठ मित्रता थी। यूनिवर्सिटी का मामला था। सैकड़ों विद्यार्थी थे। सब क्लास में मिलते रहते थे। एक अच्छे घराने के, शरीफ़, वेल पॉलिश्ड स्टूडेंट वे दिखाई पड़ते थे। इसलिए मित्रता हो गई। अच्छी जान पहचान हो गई। साथ उठने-बैठने लगे। कभी-कभी पास-पास बैठते थे। बी.ए. फाईनल तक उनकी शादी हो गई थी। इस दौरान वे रीवा काफ़ी आया-जाया करते थे, प्रायः हर हफ्ते। काफ़ी एब्सेंट भी रहने लगे यूनिवर्सिटी से। तब मालूम पड़ा कि उनकी शादी हो गई। हम लोगों ने कहा कि भई बड़ी जल्दी शादी कर ली तुमने। बहरहाल बी.ए. के बाद उन्होंने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी छोड़ दी। तब वे रीवा चले गए।

अर्जुनसिंह आरंभ से ही कला, साहित्य एवम् संस्कृति प्रेमी रहे हैं। एक वाक्या इस प्रसंग में मुझे याद आ रहा है। यहाँ एक आई.ए.एस. अफसर थे, सेक्रेटरी टू लेफ्टिनेंट गवर्नर— मिस्टर के. संथानम। उनकी वाइफ मिसेज़ प्रशारडी, और यहाँ एक ईसाई मिशन था जिसके हेड थे मिस्टर फ्रोमन। मिसेज़ प्रशारडी तथा मिसेज़ फ्रोमन ने एक ड्रामा तय किया। एक इंग्लिश ड्रामा प्ले करने का तय हुआ। उन्हें तीन लड़कों की ज़रूरत थी जो ठीक से अंग्रेज़ी बोलते हों। रीवा में जिनसे भी पूछा गया उन्होंने अर्जुनसिंहजी, मेरा तथा दरबार कॉलेज के एक लेक्चरर थे मिस्टर विश्वनाथन का नाम सुझाया। उस प्ले में पाँच पात्र थे। वो प्ले हुआ। उसमें अर्जुनसिंहजी ने बहुत अच्छा एक्ट किया।

बी.ए. करने के बाद वे रीवा चले आए। यहाँ आकर उन्होंने लॉ प्रीवियस और एम.ए. प्रीवियस ज्वाइन किया था। जो आज टी.आर.एस. कॉलेज है। उस समय दरबार कॉलेज कहा जाता था, वे यहाँ की स्टूडेंट पोलिटिक्स में इन्वॉल्व हो गए। बाद में इसी कॉलेज में वे प्रेसिडेंट भी हुए। मैं इलाहाबाद में एम.ए. करता रहा। मेरे पिताजी तब तक रीवा में आ गए थे। विंध्यप्रदेश बन गया था। मेरे पिता जी सुहावल स्टेट के दीवान थे। जब विंध्यप्रदेश बना तो वे डिप्टी सेक्रेटरी ज्यूडीशियल हो कर रीवा आ गए थे। एम.ए. करने के बाद जब मैं रीवा आया तो मालूम पड़ा कि अर्जुनसिंहजी लॉ फाईनल में हैं। पहले वे दरबार कॉलेज के प्रेसिडेंट रह चुके हैं। इस बार उन्होंने जो उम्मीदवार लड़ाया था, वह हार गया है और वे अब यूनियन में लीडर ऑफ ऑपोजीशन हैं। मैंने भी दरबार कॉलेज में लॉ प्रीवियस ज़्वाइन किया। उस समय मैं रीवा में केवल अर्जुनसिंहजी को जानता था। जब मैं अपने घर से चलता तो रीवा में एक चुरहट हाउस था जहाँ आज सिविल लाइन्स की कोतवाली है— वहाँ जाता था। अर्जुनसिंह को साथ लेकर कॉलेज जाता था। इसी दौरान हमारी परस्पर घनिष्ठता बढ़ी। तब मैंने उनके रीयल टैलन्ट को देखा।

दरबार कॉलेज की यूनियन जो थी वह बिल्कुल एक विधानसभा या पार्लियामेंट की तरह से थी। ऐसी ट्रेनिंग यहाँ पर लड़कों को दी जाती थी कि वे राजनीति को ठीक-ठीक ढंग से समझ सकें। यहाँ स्पीकर पॉलिटिक्स के एक प्रोफेसर हुआ करते थे। वे ट्रेनिंग देते थे। किस तरह से कट-मोशन मूव करना चाहिये। किस तरह किसी चीज़ को प्रजेंट करना चाहिए। सब समझाते थे। एक दिन जब बजट पेश हो रहा था तो अर्जुनसिंहजी मेरे बाजू में बैठकर जो कट-मोशन ड्राफ्ट कर रहे थे। मैंने वो ड्राफ्टिंग देखकर पूछा कि भई ये ड्राफ्टिंग तुमने कहाँ से सीखी। तो बोले इसी कॉलेज ने सिखाई, इसी यूनियन ने सिखाई। बहरहाल, आज अर्जुनसिंहजी जिन राजनीतिक ऊँचाइयों को स्पर्श कर रहे हैं उसकी ग्राउंडिंग दरबार कॉलेज रीवा से ही प्रारंभ हो गई थी। मैं लॉ-प्रीवियस में था। मुझसे उन्होंने कहा कि चतुर्वेदी साहब आपको लॉ सोसाइटी के प्रेसिडेंटशिप का चुनाव लड़ना है। मैंने कहा कि हमें यहाँ कौन जानता है जो हमें वोट देगा। तो वे बोले कि आप थोड़े ही लड़ रहे हैं वो तो मैं लड़ रहा हूँ। आप तो खड़े भर रहिए। मैंने कहा कि आप जो चाहें करवाइए। आप जहाँ चाहें खड़ा करवा दीजिए। मैं खड़ा हो जाऊँगा। और पहला साल, न कोई जान-पहचान किसी से, कुछ नहीं फिर भी लॉ सोसाईटी के प्रेसीडेंटशिप का चुनाव इतना कॉन्टेस्टिंग हुआ। एक वोट से मैं हारा। प्रिंसीपल को, हेड आफ लॉ डिपार्टमेंट को ये लगा कि कहीं ये लोग इतना ऊधम न कर दें कि सोसायटी न चले। प्रिंसीपल ने मुझे बुलाया और कहा कि तुम वाइस प्रेसिडेंट हो जाओ लॉ सोसायटी के। मैंने कहा साहब, मैं क्या हो जाऊँ। मैं जरा पूछ लूँ। जब वो लोग कहेंगे कि हो जाओ तो हो जाऊँगा। जिन लोगों ने मुझे लड़ाया था उन लोगों से पूछूँगा। अगर वो कहेंगे कि आफर एक्सेप्ट कर लो तो कर लूँगा।

अर्जुनसिंहजी बहुत की कल्चर्ड किस्म के, उस ऐज़ में स्टूडेंट वर्ल्ड में थे। वे इस प्रकार के लड़के थे जिनसे बात करने पर ख़ुशी होती थी। कोई फालतू किस्म की बात नहीं करते थे। पढ़ने-लिखने में सदा ही उत्तम रहे, वे महत्वपूर्ण और सामाजिक विषयों पर बात करते थे। ऐसा लगता था कि ही He is a man of very ideals, he was not a commoner. I mean, even that type when he use to give this impression that he was not a commoner. That is Arjunsinghji फिर जब वे एल.एल.बी. हो गए उसके बाद उन्होंने अपने को एज़ एन एडव्होकेट एनरोल कराया। मुझे सरकारी नौकरी मिल गई थी। अर्जुनसिंहजी का रीयल पॉलिटिक्स में प्रवेश होने का चल रहा था। हम लोग उनसे कहते रहे कि भई वकालत करो, ये क्या राजनीति में पड़ रहे हो। क्यों टाइम वेस्ट कर रहे हो। वे कहते थे कि एनरोल तो मैंने करा लिया अपने को लेकिन न तो मैं वकालत करूँगा न कोई नौकरी करूँगा। मुझे तो पॉलिटिक्स ही करनी है। यानि इस टाइम पर ही उन्होंने अपना ये कैरियर चुन लिया था कि मुझे पॉलिटिक्स में आना है। ही वॉज ए वैरी स्टूडियस पर्सन। बड़ी किताबें पढ़ा करते थे। हर तरह की किताबें। उपन्यास भी पढ़ते थे। पॉलिटिकल बुक्स भी पढ़ते थे। आई मीन ही वाज़ ए वैरी गुड स्टूडेंट। इसमें कोई शक नहीं!

वे आज इतनी ऊँचाई पर हैं किन्तु आज भी हमारे मित्रवत संबंध वैसे ही हैं, जैसे पूर्व में थे। उसमें कोई अन्तर नहीं आया है। वे जब मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने और जब भी रीवा आते थे तो लोग उनको रिसीव करने जाते थे। एयरपोर्ट पर। मैंने सोचा कि मैं नहीं जाता हूँ, अर्जुनसिंहजी शायद मुझसे नाराज़ हो जायें। तो मैं एकाध बार गया। वहाँ तो माला पहनाने वाले और बढ़चढ़कर जय बोलने वाले बहुत थे। मैं ज़रा पीछे था। मैं ये सब करता नहीं था। एक बार वे जब कार में बैठ गए और उनकी नज़र मुझ पर पड़ी कि मैं खड़ा हुआ हूँ। तो उन्होंने गाड़ी रुकवाई और मुझे लगा कि वे चाहते हैं कि मैं उनके पास आऊँ। मैं गया। वे बोले कि चतुर्वेदी साहब आप क्यों खड़े हैं। मैंने कहा कि कुछ नहीं आपके वैलकम के लिए आया था। आपके रिसेप्शन के लिए। उन्होंने पूछा कोई काम तो नहीं। मैंने कहा नहीं कोई काम नहीं। तो बोले कि आप ऐसे मत आया करो। उसके बाद से मैंने जाना बन्द कर दिया। कितनी बार

आए होंगे, गए होंगे लेकिन फंक्शंस में मिलते थे। बड़ी अच्छी तरह से मिलते थे और वे जब मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे तब मैं उनसे मिलने भोपाल गया। संचारमंत्री थे तब दिल्ली गया।

कोई फ़र्क नहीं साहब। मेरा कोई अपॉइन्टमेंट नहीं। दिल्ली में सिक्यूरिटी वालों ने कहा कि क्या आपका अपॉइन्टमेंट है। मैंने कहा कि मेरा कोई अपॉइन्टमेंट नहीं है। बस मैं उनका मित्र हूँ, रीवा से आया हूँ, मिलना चाहता हूँ। आप मेरी ये चिट उन तक पहुँचा दें। अगर वे कह दें कि मुझे नहीं मिलना, तो मैं लौट जाऊँगा। तो बाहर के गेट से अन्दर तक चला गया। अन्दर सेक्रेटरी लोग बैठे थे। वहाँ उस कमरे में तीस-चालीस लोग अर्जुनसिंहजी से मिलने के लिए बैठे थे। वहाँ मुझसे पूछा गया कि क्या आपका अपॉइन्टमेंट है। मैंने कहा कि मेरा कोई अपॉइन्टमेंट नहीं है। मैं उनसे मिलना चाहता हूँ बस। कहने लगे कि वो बहुत व्यस्त हैं। मैंने कहा कि आप ये चिट भिजवा दीजिए। मेरा नाम देखकर वे बुला लेंगे तो ठीक है, नहीं तो चला जाऊँगा। उस दिन उनसे डॉ. फ़ारूख अब्दुल्ला मिल रहे थे। जब उनकी मुलाक़ात ख़त्म हुई। फ़ारूख अब्दुल्ला साहब की गाड़ी आई। एक सज्जन मेरे साथ थे। मैंने उनसे कहा कि आओ, चेहरा भर देख लें अर्जुनसिंहजी तो ये बुला ही लेंगे। वही हुआ। उन्होंने फ़ारूख साहब को सी-आफ किया। मेरी ओर देखा, देखते ही मुस्कुराये। ये बोले आप कैसे। आइये, मैं उनके साथ चला गया।

अभी कुछ दिनों पहले मानस भवन में एक कार्यक्रम हुआ था। वे आए। एक वीकली पेपर यहाँ से निकल रहा है। उसका विमोचन उन्हें करना था। मैं गया। जैसे ही उन्होंने देखा, मुस्कराए। जो फूल माला उनको दी गई थी, पहनाई गई थी वे हमसे गले मिले, जितनी मालाएँ उन्हें दी गई थीं सबकी सब हमें पहना दीं। साथ में डायस तक ले गए। लोग बड़े आश्चर्यचकित हुए क्योंकि अर्जुनसिंहजी से मिलने के लिए मुश्किल होती है और वो इनसे मिल रहे हैं। इनको फूल मालाएँ पहना रहे हैं, आख़िर ये व्यक्ति कौन हैं। तो मुझे आज तक उनके व्यवहार में अपने प्रति कोई फ़र्क नहीं लगता। अगर उनसे कोई बात कही है तो उन्होंने उसको याद भी रखा। आई एम मच सेटिस्फाईड आफ माई रिलेशन्स। और ये फ़र्क तो है ही। एक ज़माना था जब उनसे हम लोग कहते थे कि टाइम वेस्ट कर रहे हो। क्यों नेतागिरी करते हो। क्यों मारे-मारे घूमते हो। नाऊ टू डे ही इज ए शाइनिंग स्टार आफ द कंट्री एण्ड द वर्ल्ड। हम लोग अपनी-अपनी जगह बैठे हुए हैं। उन्होंने अपना जो ऐम बनाया था लाइफ का, कैरियर का। उसको इतनी अच्छी तरह से परस्यू किया कि आज इतनी ऊँचाई पर हैं।

मैं हर मैग्ज़ीन पढ़ता हूँ। जबसे वे ह्यूमन रिर्सोसेस मिनिस्टर हुए तबसे शायद हर मैग्ज़ीन उनके बारे में बहुत कुछ छापती है। तारीफ़ भी लिखती है, बुराई भी लिखती है। बुराई लिखती है तो हमें बुरा लगता है। तारीफ़ लिखती है तो एक वाइकेरियस ग्लोरी की फीलिंग आती है कि मेरे मित्र की तारीफ़ हो रही है। उनके इन्टरव्यू पढ़ता हूँ। उन्हें टी.वी. पर देखता हूँ तो तबियत ख़ुश होती है। जो वे जवाब देते हैं तो मैं अपनी टेबिल पर बैठा-बैठा कहता हूँ वाह! ये जवाब श्री अर्जुनसिंह ही दे सकते हैं। नो बॉडी कैन कैच हिम ऐनी वे। ही गिब्ज सच ए बैलेंस रिप्लाई। अर्जुनसिंहजी की ये सिफ़त है कि उनके पास जो चला जाए और अगर वो उसके काम को कर सकते हैं तो वे उसे ज़रूर करते हैं।

मध्यप्रदेश में रविशंकरजी जब प्रथम मुख्यमंत्री हुए तब मैं सरकारी अफसर था। जब अर्जुनसिंह जी मुख्यमंत्री हुए तब मैं एक सिटिजन प्रैक्टीसिंग लॉयर था। मैंने हर चीफ़ मिनिस्टर का रिजीम देखा, आज भी देख रहा हूँ। मुझे तो अर्जुनसिंह जी ही टॉप पर दिखाई देते हैं।

□ *के.सी. चतुर्वेदी— अर्जुनसिंह जी के अभिन्न मित्र-सहपाठी। मध्यप्रदेश में पाँचवें-आठवें दशक के बीच अधिकारी रहे। इलाहाबाद और रीवा में साथ पढ़े। कॉलेज स्टुडेंट यूनियन का चुनाव भी लड़ा। खट्टी-मीठी यादों के झरोखे से देख रहे हैं अपने सहपाठी को। सम्प्रतिः एडवोकेट।*

एक संस्मरण

गुरुप्रसाद श्रीवास्तव

(श्री अर्जुनसिंह के शिक्षक)

बात 1945-46 की है, जब कुँवर अर्जुनसिंहजी हाईस्कूल के छात्र थे। तब रीवा एक रियासत थी जिसकी राजधानी रीवा ही थी। उन दिनों रीवा नगर के मार्तण्ड हाईस्कूल की अपनी ख्याति थी। हाईस्कूल अजमेर बोर्ड से सम्बद्ध था और प्राय: प्रतिवर्ष मार्तण्ड हाईस्कूल का कोई न कोई छात्र बोर्ड की प्रावीण्य-सूची में रहता ही था। उसी मार्तण्ड स्कूल में उन दिनों अर्जुनसिंहजी दसवीं कक्षा के छात्र थे और मैं उनकी कक्षा में विज्ञान और गणित पढ़ाता था। शाम को उन्हें और उनके छोटे भाई सज्जनसिंह को घर पर भी विज्ञान और गणित पढ़ाने जाता था। मेरा पूरा प्रयास था कि ये अच्छे इंजीनियर, डॉक्टर या वैज्ञानिक बनें। परन्तु हर व्यक्ति के जीवन की दिशा उसकी उस अन्त:चेतना से प्रभावित होती है जो उसके अंतरंग में निहित है। सामान्यतया शिक्षक को भी प्रारंभ में आभास नहीं हो पाता। परन्तु कभी-कभी एकाध घटनाएँ ऐसी भी होती हैं जो बालक के भावी जीवन की दिशा-बोध करा देती हैं।

ऐसी ही एक घटना से मुझे लगा कि जो मैं इन्हें बनाना चाहता हूँ वह, वह नहीं है— जो इस बालक को होना है। इन्हें तो एक ऐसी अकुलाहट थी, जिसे कभी सीधे-सीधे व्यक्त तो नहीं किया परन्तु उस अकुलाहट की वेदना ने स्वत: उनके जीवन की दिशा को ऐसा मोड़ दे दिया, जिसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। वही पीड़ा इनकी प्रेरणा बनी। लगन और निष्ठा ने नई राह दिखाई और अध्ययन के उपरान्त जन-सेवा व समाजसेवा इनके जीवन के पर्यायवाची बने, जिसके फलस्वरूप राजनीति में प्रवेश आवश्यक हुआ और लगन, निष्ठा, मेहनत और ईमानदारी ने 1945-46 के इस छात्र को मध्यप्रदेश का माननीय मुख्यमंत्री बनाया।

बात 28 जनवरी, सन् 1946 की है। शाम को जब मैं पढ़ाने गया तो लौटते समय इन्होंने एक पुस्तक 'Formation and Growth of the Indian National Army' भेंट की। पुस्तक के ऊपर अख़बारी काग़ज़ चढ़ा था। सोचा, पुस्तक स्वच्छ रखने की दृष्टि से काग़ज़ चढ़ाया होगा। घर आकर पुस्तक को ध्यान से देखा। यह पुस्तक 6, लोअर माल, लाहौर, हीरो प्रकाशन द्वारा जनवरी 1946 में प्रकाशित हुई थी। पुस्तक में **आज़ाद हिन्द फौज** के बारे में विवरण है तथा नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के द्वारा प्रसारित कुछ आदेशों के उद्धरण हैं। एक विचार आया कि जो पुस्तक जनवरी में प्रकाशित हो वह इतनी जल्दी इनके पास आई कैसे और इन्होंने किस उद्देश्य से मुझे यह पुस्तक दी। वैसे उस समय पूरे देश में विदेशी सत्ता को हटाने का वातावरण अपने उत्कर्ष पर था। लोगों में एक जोश था कि देश को जैसे भी हो स्वतंत्र करायेंगे। परन्तु मेरी कल्पना में सच में यह नहीं था कि रीवा— जैसी छोटी जगह का हाईस्कूल का विज्ञान व गणित पढ़ने वाला छात्र इतनी कम उम्र में भी राजनैतिक गतिविधियों से भली-भाँति परिचित ही नहीं है बल्कि उनमें गहरी रुचि भी ले रहा है।

इससे भी अधिक आश्चर्य तब हुआ, जब मैं दूसरे दिन पढ़ाने गया तो इन्होंने पूछा, 'मास्टर साहब (आज भी इसी नाम से सम्बोधित करते हैं), आपको पुस्तक कैसी लगी? मेरा संक्षिप्त उत्तर था— 'बहुत अच्छी।' परन्तु

इस उत्तर से इन्हें कहाँ सन्तोष होने वाला था। पुनः पूछा कि पुस्तक के ऊपर जो काग़ज़ चढ़ाया था, क्या वह भी आपने देखा है? मुझे लगा कि पुस्तक के ऊपर चढ़ा हुआ अख़बारी काग़ज़ का कवर (Cover) भी क्या पढ़ने की चीज़ है। मेरे न कहने पर उन्होंने कहा कि उस कवर में कुछ अंश मैंने विशेष रूप से रेखांकित कर दिये थे। मैंने कहा कि तब अवश्य देखूँगा।

घर आकर देखा पुस्तक के कवर में दैनिक पत्र 'The Leader' 24-9-45 का कुछ भाग फाड़ कर चढ़ाया गया है जिस अंश को रेखांकित किया था, उसे ज्यों-का-त्यों नीचे उद्धृत कर रहा हूँ :

Pandit Jawaharlal Nehru moving the resolution pointed out that when the British evacuated Singapore, Malaya and Burma, they constructed those troops of the Indian Army left behind to act in a manner they thought would serve their best interests. When the Japanese came over, some of the Indian troops joined the Indian National Army sponsored by the Japanese. Now the British were back in Singapore, Malaya and Burma. Those Indians were being treated like criminals.

"We demand that they shall not be prosecuted on charge of treason and punished vindictively", declared Pt. Nehru and announced that "the Congress was forming a Defence Committee consisting of Sir Tej Bahadur Sapru, Mr. Bhulabhai Desai, Dr. K.N. Katju, Pandit Jawaharlal Nehru, Mr. Raghunandan Saran and Mr. Asif Ali (Convener), which shall see that these patriotic men were properly defended when tried... (illegible) Panditji said that the Defence Committee would invite applications from the accused or their relations for arrangements for their...."

Pandit Jawaharlal Nehru continued that there was no difference between the role of the Burma National Army and the Indian National Army, yet the treatment meted out to the Indian National Army differed from that given to the Burma National Army."

उस अंश को पढ़कर ऐसा लगा कि इस बालक के भीतर जो ज्वाला धधक रही है, वह इसे राजनीति के क्षेत्र में एक कर्मठ कार्यकर्ता व जननेता बना कर रहेगी। अब जीवन की दिशा बहुत स्पष्ट थी। समय की गति के साथ-साथ ये न मालूम कितने कटीले-पथरीले मार्गों पर भी क़दम-दर-क़दम चलते रहे और आज 1946 के हाईस्कूल के इस छात्र को हमने देश के सबसे बड़े प्रदेश के मुख्यमंत्री के पद पर देखा।

मुझे माननीय मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह के पूज्य पिताश्री के सान्निध्य का भी मौक़ा मिला है। मृदुभाषिता, बोलना कम-सुनना अधिक, बोलना भी तो धीरे-धीरे बोलना, विषम से विषम परिस्थिति में भी अपने को संतुलित बनाये रखना, यह इन्हें पैत्रिक-देन के रूप में मिला है।

उनके जीवन के मोड़ की प्रतीक वह पुस्तक आज भी मेरे पास थाती के रूप मे सुरक्षित है। जब भी इस पुस्तक को देखता हूँ तो मुझे 1946 के उस बालक की तस्वीर दिखती है। दूसरे ही क्षण वह बालक नहीं रह जाता—केवल दिखते है माननीय अर्जुनसिंहजी। यही शिक्षक की सबसे बड़ी प्रसन्नता है।

☐ *गुरुप्रसाद श्रीवास्तव— मार्तण्ड हाई स्कूल, रीवा के अवकाश प्राप्त शिक्षक। स्कूल और घर में श्री अर्जुनसिंह के विज्ञान और गणित के शिक्षक। सुयोग्य शिष्य के अनुभवी आदर्श शिक्षक रहे श्री गुरुप्रसाद श्रीवास्तव ने किशोरावस्था में ही अर्जुनसिंहजी के हृदय की ज्वाला को पहचाना-परखा और स्मरण किया है।*

यशस्वी पुरुष

रघुवीर सहाय
(अवकाश प्राप्त प्राचार्य)

सुगठित देह, अपूर्व आभा से दीप्त मुख-मंडल, चौड़ा ललाट, पतले-पतले होंठ, चश्मे के भीतर से झाँककर सब कुछ देखने और समझने की क्षमता रखने वाले तेज़युक्त चमकीले नेत्र, सुडौल भौहे, मुस्कुराता हुआ चेहरा, तना हुआ सीना, विनम्र और मधुर वाणी तथा पर्वत जैसी विशालता, सागर जैसी गहराई, धरती जैसी उदारता और सहनशीलता और सम्पर्क में आने वालों के हृदय जीत लेने की सहजता, सौम्यता और शालीनता—इस सबको मिलाकर जो एक लुभावना चित्र उभरकर हमारे सामने आ खड़ा होता है, वह है हमारे जनप्रिय नेता श्री अर्जुनसिंह का।

हमारे लोकप्रिय नायक श्री अर्जुनसिंह निस्संदेह एक प्रतिभापुत्र हैं। उनका व्यक्तित्व आकर्षक और प्रभावशाली तथा कृतित्व बहुरंगी और गौरवमय है। उनका जीवन संघर्षों की एक लंबी शृंखला है—राजनीति का काँटों भरा पथ चुनने के लिये सामंती परिवेश के विरुद्ध संघर्ष, राजनीति में आकर अराजकता फैलाने वाले तत्वों के विरुद्ध संघर्ष, ग़रीबों का ख़ून चूसने वाले आर्थिक ढाँचे के विरुद्ध संघर्ष, देश की आज़ादी के नाम पर साम्प्रदायिकता का ज़हर फैलाने वाली राष्ट्रघाती शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष और अपनी ही पार्टी के अन्दर घुसे हुए गद्दारों के विरुद्ध संघर्ष। आज़ादी और अमन के इन सभी दुश्मनों के षड़यंत्रों के ख़िलाफ़ उन्होंने एक ज़ोरदार टक्कर ली है तथा उनकी एक-एक गतिविधि का पता लगाकर उसकी धज्जियाँ उड़ाई है।

नवगठित मध्यप्रदेश के नवनिर्मित विधायक विश्राम गृह के उद्घाटन के लिए राष्ट्रनायक पं. जवाहरलाल नेहरू 1 नवम्बर, 1958 को भोपाल पधारे थे। उस दिन उस समारोह में, तत्कालीन राज्यपाल महोदय स्व. श्री हरिविनायक पाटस्कर ने मुझे भी आमंत्रित किया था। उस दिन के सभी कार्यक्रमों में, मैं पंडित नेहरूजी के साथ ही रहा था। स्व. डॉ. कैलाशनाथ काटजू उन दिनों इस राज्य के मुख्यमंत्री थे। श्री अर्जुनसिंह इस राज्य की तत्कालीन विधान सभा में निर्दलीय विधायक दल के नेता की भूमिका का निर्वाह कर रहे थे।

मानवता के मंदिर के पुजारी एवं ग़रीबों के मसीहा राष्ट्रनायक श्री नेहरू इस देश के एक बहुत ही सजग और सचेष्ट प्रधानमंत्री थे। उद्घाटन मंच पर जाते समय वे, अपने अगल-बगल बने हुए उन चूल्हों के सभी निशानात बड़े ग़ौर से देखते गए थे, जहाँ इस विधायक विश्राम गृह के निर्माण के दौरान मज़दूर लोग अपना खाना बनाया करते थे। अत: मज़दूरों का सारा दर्द अपने सीने में उतारकर वे खिन्न मन से मंच पर चढ़े, प्रतीक्षारत विशाल जन-समुदाय का हाथ जोड़कर अभिवादन किया और एक सेकण्ड में ही उद्घाटन-कार्य समाप्त कर मंत्रिमंडल के सदस्यों, विधायकों, जन-नेताओं प्रशासनिक अधिकारियों एवं उपस्थित विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुए उन्होंने अपने प्रेरक भाषण में उस दिन जो कुछ भी कहा, वह सब अब इतिहास बन चुका है। उन्होंने कहा था

कि— "ठीक है, कर चुका उद्घाटन मैं, महलनुमा बने इस विधायक विश्राम गृह का। अब मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि इन आलीशान भवनों के निर्माताओं के लिये आप लोगों ने क्या किया? वे तो मज़दूर हैं, जो फटेहाल हैं, जो ख़ानाबदोश हैं, जो कड़ी सर्दी तेज़ धूप और मूसलाधार बारिश की तमाम तक़लीफ़ें अपने नंगे बदन पर झेलकर, अपनी जी तोड़ मेहनत से ये बड़ी-बड़ी आरामदेह इमारतें बनाकर तो आप लोगों को भेंट कर जाते हैं, लेकिन अपने खुद के सिर छिपाने को एक झोपड़ी भी नहीं खड़ी कर पाते। तो मैं पूछना चाहता हूँ आप लोगों से कि उनके लिये आपने क्या किया है? इस देश में समाजवाद क्या आप इसी तरह से लायेंगे? और क्या राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के सपनों के भारत की यही तस्वीर है?"

दीन-हीन और असहायों के प्रति राष्ट्रनायक श्री नेहरू द्वारा व्यक्त इस वेदना ने श्री अर्जुनसिंह के युवा-मन पर सीधी चोट की थी। वे 1960 में काँग्रेस में विधिवत् शामिल होकर राष्ट्रनायक पं. जवाहरलाल नेहरू के एक अत्यंत विश्वसनीय और वफ़ादार सैनिक बन गये। आगे चलकर श्रीमती इंदिरा गाँधी के सत्ता में आने पर वे एक बेजोड़ सेनानी के रूप में प्रतिष्ठित हुए। आज तक उनकी, वफ़ादारी, प्रतिबद्धता और विश्वसनीयता में रत्ती भर भी कमी नहीं आ सकी है तथा वे इंका के एक सर्वमान्य नेता के रूप में विख्यात होकर राष्ट्रीय नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में ही पूरी निष्ठा और समर्पित भावना के साथ संलग्न हैं।

सामन्ती परिवेश में जन्मे और पले-पोसे गये ऐसे युवा साथी विरले ही देखने को मिलते हैं, जिन्होंने कभी ग़रीब, मासूम और अनाथ बच्चों की जिन्दगी सँवारने का सपना संजोया हो और उसे साकार करने में अपने अमूल्य जीवन के दशक-के-दशक खपा दिये हों, किंतु संकल्प के धनी और धुन के पक्के श्री अर्जुनसिंह इस प्रदेश के ऐसे ही सपूत हैं, जिन्होंने दर-दर की ठोकरें खाने वाले दलितों, शोषितों और पीड़ितों की वीरान और सुनसान ज़िन्दगी को ख़ुशहाली में बदल दिया है। उन्होंनें अपना यह स्वप्न सोन नदी के किनारे, प्रकृति की सुरम्य गोद में बसे सीधी जिले के चुरहट के सर्रागाँव में श्रीमती इंदिरा गाँधी के परम अनुग्रह से **संजय गाँधी शिशु एवं परिवार कल्याण केंद्र** की स्थापना के रूप में साकार किया है। इस पवित्र कार्यार्थ उन्होंने अपनी निजी सम्पत्ति से 7 एकड़ भूमि दान में देकर अपनी दानवीरता का परिचय भी दिया है। सौभाग्य से इस केंद्र के भवन का शिलान्यास करुणा और विनम्रता की जीवन्त प्रतिमा तथा ममता की साक्षात् देवी मदर टेरेसा के कर-कमलों द्वारा उनके पवित्र स्नेहाशीर्षों के साथ, 28 जनवरी, 1982 को उस सुरम्य स्थली में सम्पन्न हुआ है, जहाँ एक ओर प्रकृति का असीम सौन्दर्य बिखरा पड़ा है, और दूसरी ओर दूर-दूर तक फैला हुआ ग़रीबी और पिछड़ेपन का साम्राज्य है।

CAREER COLLEGE
Book No.....
Date.....
26921

संजय गाँधी शिशु एवं परिवार कल्याण केंद्र की स्थापना का यह प्रसंग श्री अर्जुनसिंह के मर्मस्थल पर चोट करने वाली एक ऐसी घटना से जुड़ा हुआ है, जिसके स्मरण-मात्र से उनका संवेदनशील हृदय सिहर उठता है और आँखें नम हो जाती हैं। उनके चुनाव केम्प में 10 जनवरी 1952 को दस और ग्यारह वर्षीय भाई-बहिन के एक ऐसे अनाथ जोड़े ने शरण ली थी, जिनके माँ-बाप हैजे के शिकार होकर मौत के मुँह में समा गये थे। दया से द्रवित होकर श्री अर्जुनसिंह ने बड़े प्यार और दुलार से उन अनाथ बच्चों के सिर पर हाथ रखकर उनके संरक्षण और पालन-पोषण का सारा भार अपने ऊपर ले लिया था तथा उनके आशा (बहन का) और विश्वास (भाई का) नाम भी रख दिये थे। चार दिन बाद 14 जनवरी, 1952 को वे दोनों पास के ही एक गाँव में संक्रान्ति का मेला देखने गए और अपने ख़र्च के लिये श्री अर्जुनसिंह से पैसे भी लेते गये। संयोगवश, उस रोज़ ज़ोर की बारिश हुई थी। इस कारण मार्ग में पड़ने वाला नाला पूर होकर तीव्र गति से बह रहा था। अंत: वापसी पर इसे पार करते समय दोनों बच्चों के पैर उखड़ गये और पूर आये नाले की तेज़ धार में बहकर वे दोनों काल के ग्रास बन गये। इस हृदय विदारक घटना ने श्री अर्जुनसिंह को शोक से भर दिया, उनकी 'आशा' चूर-चूर हो गई और 'विश्वास' खंडित हो गया।

इन अनाथ बच्चों की स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिए श्री अर्जुनसिंह बस उसी दिन से एक सपना संजो बैठे कि वे एक ऐसा घर बनाने में सफल हों, जो उन सभी बच्चों का एक उपयुक्त आश्रय-स्थल बन सके, जो निराश्रित हैं, बेघर हैं, बेसहारे हैं, अनाथ हैं, जिन्हें जीवन की बुनियादी सुविधाओं की ज़रूरत है, जिन्हें अंगों की ज़रूरत है, जिन्हें संरक्षण की ज़रूरत है।

प्रदेश को स्वच्छ, सक्षम, कुशल और गतिशील प्रशासन देने के लिए कृतसंकल्प श्री अर्जुनसिंह जहाँ अपने कर्मचारियों की समस्याओं के प्रति पूर्णत: जागरूक रहे हैं, वहीं उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार, लालफीताशाही और कामचोरी की प्रवृत्ति पर भी उनकी कड़ी निगाह रही है। अपने राज्य की प्रशासनिक छवि को धूमिल होते देखना उन्हें किसी भी क़ीमत पर पसन्द नहीं। यही कारण है कि बेईमानी, अक्षमता, अकर्मण्यता और घूसखोरी के प्रमाण मिलते ही वे बड़ी-से-बड़ी प्रशासनिक हस्तियों पर भी तत्परता और निर्भीकता के साथ प्रहार करते हुए देखे गये हैं। कहाँ क्या हो रहा है, यह जानने के लिए किसी भी दफ़्तर में अचानक पहुँच जाना तथा कर्मचारियों में सनसनी फैला देना, उनके लिए आम बात हो गई। वे यह किसी भी हालत में बर्दाश्त नहीं कर सकते कि शासकीय सेवक अपने किसी निहित स्वार्थ की पूर्ति के लिए प्रकरणों को अनावश्यक रूप से लम्बित रखें, आदेशों की अवहेलना करें और अपने सम्पर्क में आने वालों के साथ अमानवीय व्यवहार करें। इस संदर्भ में सिर्फ़ एक ही उदाहरण काफ़ी होगा—

एक नेत्रहीन महिला को संगीत शिक्षक के पद पर नियुक्त करने के लिये मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह ने 22 जुलाई, 1980 को, स्वयं अपनी लेखनी से आदेश दिया किन्तु जब उन्हें यह विदित हुआ कि उनका यह आदेश हो चुकने के दस माह बाद भी उस अंधी महिला की नियुक्ति नहीं की गई है, तो इस आज्ञा उल्लंघन पर नौकरशाही को आड़े हाथों लेते हुए उन्होंने प्रकरण में जो टीप दी, वह आँखें खोल देने वाली है। उन्होंने लिखा कि—

"नौकरशाही की निर्ममता का यह विशिष्ट प्रकरण है, जिसमें मानवीय आधार पर विचार का अभाव है। मूल मुद्दा यह है कि ऐसे प्रशासन के कन्धों पर एक कल्याणकारी राज्य कितनी दूर तक जा सकता है। मुझे इससे न केवल धक्का लगा है और मैं न केवल क्षुब्ध हूँ, बल्कि दु:खी हूँ। मैं सब सम्बन्धितों को, उच्च स्वर से, स्पष्ट रूप से यह संदेश देना चाहता हूँ कि ऐसे प्रशासन की अध्यक्षता करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है, जो मानवीय दु:खों के प्रति निर्मम है तथा जो सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति असंवेदनशील है। इस आधार पर होने वाली त्रुटि को दायित्व के प्रति जागरूकता की कमी तथा प्राथमिक कर्तव्य पूरा करने में चूक समझी जायेगी और संबंधित व्यक्ति की गोपनीय चरित्रावली में इसे दर्ज़ किया जायेगा।"

तन से स्वस्थ, मन से विराट, मस्तिष्क से सशक्त और जन-जीवन की समस्याओं के प्रति सदैव सतर्क रहने वाले श्री अर्जुनसिंह उन महान् नेताओं में से हैं, जो विरोधी पक्ष की गतिविधियों से किंचित् मात्र भी विचलित न होकर अपनी दृष्टि सदैव लक्ष्य-सिद्धि की ओर रखते हैं। वे एक चतुर राजनीतिज्ञ हैं और सही मौक़े पर सही क़दम उठाने के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुके हैं। अपनी पार्टी को शुद्ध और स्वस्थ रखने के लिये उन्हें अपने मंत्रिमंडल पर उठे हुए फोड़ों का कई बार ऑपरेशन भी करना पड़ा है, जिसे उन्होंने बड़ी सूझबूझ और सतर्कता के साथ किया है। इनमें से 30 जून, 1983 को किया गया ऑपरेशन उनके मंत्रिमंडल का सबसे बड़ा कूटनीतिक ऑपरेशन था, जिसे देखकर धुरन्धर असन्तुष्ट नेताओं तक ने अपने दाँतों तले उंगली दबायी थी। समय पर उठाए गए इस साहसिक क़दम ने असुन्तुष्टों के खेमों में ख़लबली मचा दी और अपनी समस्त खुराफ़ातें भूलकर वे अपना अन्त:करण शुद्ध करने में संलग्न हो गये, ताकि जनता की अदालत में उनकी छवि विकृत न हो।

ग़रीबों और कमज़ोर वर्गों के उत्थान के लिए बनाए गए श्रीमती इंदिरा गाँधी के 20 सूत्रीय कार्यक्रम को, लगन और तत्परता से सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर क्रियान्वित करने में भी श्री अर्जुनसिंह सबसे आगे हैं। गहन रुचि होने के कारण, उन्होंने यह विभाग अपने पास ही रखा तथा इसके राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में वे गीता के कर्मयोगी की तरह जुट गये। विक्रम की न्यायपीठ पर बैठकर वे समाज में व्याप्त अन्याय, असमानता, शोषण और उत्पीड़न समाप्त कर, सत्य, न्याय, समता और सदाचार पर आधारित नई समाज-रचना के लिये आतुर हैं।

श्री अर्जुनसिंह ने अपने राज्य और देश में ही नाम कमाया हो सो बात नहीं है। अपनी विदेश-यात्राओं के दौरान भी, भारत की सामाजिक संस्कृति का प्रचार कर उन्होंने देश की बड़ी सेवा की है।

1964 में मास्को में आयोजित विश्व युवा समारोह में, उन्होंने भारतीय प्रतिनिधिमंडल के उपनेता के रूप में भाग लेकर देश का नाम ऊँचा किया। 1969 में वे संयुक्त राष्ट्र के लिये भारतीय सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल के सदस्य मनोनीत होकर न्यूयार्क प्रस्थित हुए। उसके बाद उन्होंने 1970 में बेलग्रेड में संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित मानव-अधिकार-परिसंवाद में भारत का सफल प्रतिनिधित्व किया।

इस विदेश भ्रमण के दौरान, अनेक संभ्रान्त विदेशियों के संपर्क में आने पर, जहाँ श्री अर्जुनसिंह को उनके सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश का निकट से अध्ययन करने का अवसर मिला, वहाँ उन्होंने भी विदेशियों को भारत के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और शान्ति के गौरवमय संदेश दिये। इस आदान-प्रदान से दोनों पक्ष लाभान्वित हुए तथा मानव-बन्धुत्व की भावना को काफ़ी बल मिला।

इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व एवं गरिमामय कृतित्व की यह परिक्रमा अर्जुन की गौरव-गाथा की परिक्रमा है, जिनका लक्ष्य-बेध राम-बाण की तरह अमोघ है, जो कभी भ्रष्ट होना नहीं जानता। उन्होंने राष्ट्र की तरुणाई को गति दी है, कर्मठता दी है और विक्रम की न्याय-पीठ, गीता की कर्म-पीठ पर एवं भवानी की शक्ति-पीठ पर एक साथ आसीन होकर देश और प्रदेश के नवोत्कर्ष के लिये, समस्त विघ्न-बाधाओं को चीरते हुए, अपने गन्तव्य की ओर द्रुत गति से, अविराम बढ़े चले जा रहे हैं।

☐ *रघुवीर सहाय— भारत सरकार के वरिष्ठ अधिकारी। पंडित नेहरू के साथ कार्य कर चुके श्री रघुवीर सहाय उन गिने चुने बुद्धिजीवियों में से एक हैं जिन्हें पंडित नेहरू और श्री अर्जुनसिंह को अत्यन्त निकट से देखने-परखने का अवसर मिला। क्रमबद्ध तिथिवार संस्मरण पूर्ण यह आलेख आदर्श, आत्मीयता और अपनत्व का अमृत बिखेरता है।*

एक गाँव की पीड़ा में साझेदारी

शिवकुमार झालानी
(पूर्व विधायक और समाजसेवी)

रतलाम जिले के आलोट तहसील का एक हरिजन बहुल ग्राम कनाड़िया एक इतिहास बन गया है। इतिहास बना है तो इसलिये कि एक संवेदनशील व्यक्तित्व ने उसे अपने में समा लिया है।

किस्सा प्रारम्भ होता है जब अर्जुनसिंहजी मध्यप्रदेश के जनता शासन में काँग्रेस पार्टी की ओर से विरोधी दल के नेता थे। कनाड़िया ग्राम में एक वर्ग-संघर्ष या कहें ज़मीन को लेकर झगड़ा हुआ और 4 हरिजन ग्रामीण, सवर्णों के हाथों मारे गए। न्यायालय ने 20-21 सवर्णों को जिनमें अधिकांश युवक थे, लम्बी जेल की सज़ा दी। दोनों वर्ग इस हादसे से मर्माहत थे। 300-400 की आबादी वाला यह गाँव सभी तरह से उजड़ गया, रह गई एक लम्बी ख़ामोशी और उदास चेहरे।

श्री अर्जुनसिंह ने इस घटना पर विधानसभा में और बाहर भी तीक्ष्ण प्रतिक्रिया व्यक्त की और इन घटनाओं को रोकने के लिए तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री कैलाश जोशी को सहयोग देने तथा साथ ही कनाड़िया जाने एवं भाई-चारा पैदा करने के लिए कहा, किन्तु राजनीति क्रूर होती है। सत्तारूढ़ जनता पार्टी ने उनकी अपील पर ध्यान नहीं दिया। अर्जुनसिंहजी की आत्मा इस घटना से हाहाकार कर उठी और अपनी ज़िम्मेदारी महूसस करते हुए वे स्वयं ऐन दीपावली के दिन प्रात: अचानक रतलाम आ गए।

उनके भोपाल से रवाना होने के तत्काल बाद ही आदरणीय भाभी श्रीमती सरोजसिंह का फोन मेरे पास आया और उन्होंने भाई साहब अर्जुनसिंहजी के आने की जानकारी दी। साथ ही उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखने की हिदायत भी दी। उन दिनों अर्जुनसिंहजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था।

उनके रतलाम आते ही हम लोग कुछ साथियों के साथ रवाना हो गए। जावरा से जीप ली और आलोट पहुँचे। दोपहर से ही उन्होंने ग्रामीण भाइयों से जनसंपर्क किया और रात्रि में ग्राम कुनी खाखा में एक आमसभा को संबोधित किया। दूसरे दिन प्रात: मिठाइयाँ तथा पटाखे लेकर आसपास के ग्रामीणों से मिलते हुए कनाड़िया पहुँचे।

सारे भारत में यह रात्रि जहाँ प्रकाश पूजा के रूप में मनाई जा रही थी, वहाँ उन्होंने स्वयं अपने घर में दीपावली नहीं मनाई। उनका सारा परिवार छटपटाता रहा, लेकिन रघुवंश के इस नायक ने भारत की हृदय स्थली के एक गाँव में आकर जिसमें घोर-निराशा और भय का अंधेरा था, स्वयं ग्रामवासियों के आँसू पोंछे।

मैं अर्जुनसिंहजी को गत् 18-20 वर्षों से जानता हूँ लेकिन उनकी इस संवेदना से हम सब भी हिल गए और इस घोर काली रात में इस प्रदेश के एक ऐतिहासिक पुरुष को जन्म लेते देखकर सुखद भविष्य के लिये आश्वस्त हुए। हुआ भी यही, देश की राजनीति ने करवट बदली श्रद्धेय इंदिराजी तथा इंका को देश की जनता ने पुन: सत्तारूढ़ किया। 9 जून, 1980 को इस प्रदेश के युवा मुख्यमंत्री के रूप में अर्जुनसिंहजी के नेतृत्व में इस प्रदेश की बागडोर आई।

शपथ-ग्रहण समारोह के तत्काल बाद 3-4 दिनों में ही अर्जुनसिंहजी मुख्यमंत्री के रूप में 13 जून 1980 को पुनः कनाड़िया गाँव आए। यह संयोग भी अपने आप में कम महत्त्व नहीं रखता। अर्जुनसिंह जी ने कनाड़िया को नहीं भुलाया और मुख्यमंत्री बनते ही हरिजनों, कमज़ोर वर्ग के बीच आकर उन्होंने अपने शासन की ओर से उन्हें पूर्ण सुरक्षा प्रदान करने की घोषणा की तथा कनाड़िया ग्राम को आदर्श ग्राम घोषित किया। इस घटना के साथ श्री अर्जुनसिंह ने कनाड़िया को अपना गाँव मानकर मुख्यमंत्री की हैसियत से प्रति वर्ष आकर दलित, कमज़ोर, शोषित, पीड़ित लोगों में विश्वास पैदा किया।

कनाड़िया की दु:खद बातें अब एक इतिहास बन गई हैं। आदर्श ग्राम महक रहा है। भाईचारे ने अपनी जड़ें गहरी की हैं। बालवाड़ी, विद्यालय, चिकित्सालय, सड़कें, पीने का पानी, सिंचाई के साधन, सद्‌भावना भवन, पुलिस चौकी, आदि से कनाड़िया एक आदर्श ग्राम बन रहा है। सारे प्रदेश के कमज़ोर वर्ग की सुखद आशाओं का प्रतीक कनाड़िया श्री अर्जुनसिंह के विश्वास का जीता-जागता केंद्र है।

☐ *शिवकुमार झालानी— मध्यभारत के रतलाम नगर से अनेक बार चुने गये पूर्व विधायक, पूर्व नगर पालिका अध्यक्ष, उद्योगपति, सहृदय मित्र, पारिवारिक सदस्य समान निकटस्थ सहयोगी, अनन्य अनुयायी। समाजसेवा को सतत समर्पित प्रतिष्ठित समाजसेवी।*

मेरे पति : जिनकी आँखें बोलती हैं...

श्रीमती सरोजसिंह
(धर्मपत्नी—श्री अर्जुनसिंह)

सभी की तरह मुझे भी शिकायत है इनसे, ये बोलते बहुत कम हैं। संयोग यह है कि मुझसे चुप नहीं रहा जाता। मुझे बात करने का शौक है और इन्हें चुप रहने का। साथ रहते 56 वर्ष हो गये— याद नहीं आता कभी इनसे लगातार तीस मिनट भी बातें की हों। यह स्वभाव शायद इन्हें इनके पिता से विरासत में मिला है। हमारे आदरणीय श्वसुर— इनके पिताजी श्री शिवबहादुरसिंहजी भी शालीन, मृदुभाषी तथा इनके ही समान धीर, गंभीर थे। उन्होंने कभी किसी को नहीं डाँटा पर घर में सभी उनसे बहुत डरते थे। बड़ा प्रभाव और दबदबा था उनका। चुरहट की कोठी में उनकी मर्ज़ी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता था। मैं तो बहुत छोटी-किशोरी अवस्था की थी जब ब्याह कर आई थी, जाने क्यों उनका स्नेह मुझ पर बहुत अधिक था। कभी-कभी सोचती हूँ, काश! वे आज होते तो कितना अच्छा होता? पढ़ने और लिखने का इन्हें आरंभ से ही शौक है। बहुत कम लोग जानते होंगे कि इनकी अभिलाषा एक अच्छा पत्रकार बनने की थी। संयोग था कि राजनीति में आ गये। मुझे न तो पसन्द है और न हमारे स्वभाव के अनुकूल है राजनीति की अनचाही पगडंडियों पर चलना। कॉलेज में ये 'स्टूडेन्ट्स यूनियन' के प्रेसिडेंट का चुनाव लड़े थे और सहपाठियों ने ज़िन्दाबाद करते हुए इन्हें कंधों पर उठा लिया था, खुशी मुझे भी उस दिन बहुत हुई थी। चुनाव जीतने की वह ख़ुशी कितनी सुखद, उत्प्रेरक, आह्लादकारी थी आज सोचने भर से मन पुलक जाता है। राजनीति के रण में इनने कई चुनाव जीते— एक हारे भी। मेरे मन में इन चुनावों की हार-जीत की आज तक वैसी प्रतिक्रिया नहीं हुई जैसी कि कॉलेज चुनाव के समय की अनुभूति थी। आज मुझसे श्री राजोरिया द्वारा जब लेख लिखने को कहा गया, मैं सोच-सोच कर थक गई, कहाँ से शुरू करूँ और क्या लिखूँ? मैं घर परिवार का दायित्व निभा रही हूँ विगत 56 वर्षों से और बाहर साथ आते-जाते हुए भी मैं घर की समस्याओं से ही घिरी रहती हूँ।

खाने का शौक अवश्य है इन्हें, पर बोलने जैसे ही खाते भी बहुत कम हैं। रेडियो-रिकार्ड प्लेयर सुन लेते हैं, कभी-कभी, मगर गुनगुनाते मैंने नहीं सुना, बाथरूम में भी। इतना सब होने पर भी अच्छी बात यह है कि मुस्कुराहट इनकी सदाबहार सौग़ात है। परिवार में घर-बाहर कभी भी किसी ने भी इन्हें क्रोध, दु:ख, पीड़ा या भावावेश में नहीं देखा होगा। हर परिस्थिति में शान्त रहना और मुस्कुराना कोई इनसे सीखे। बोलते बहुत कम हैं। सूत्र में बात कहते हैं। नये व्यक्ति कभी-कभी इनके कहे एक-दो शब्द का सही अर्थ नहीं समझ पाते। मैं तो चश्मे के पीछे बोलती आँखे देखकर अनुभव कर लेती हूँ, इन्हें कब क्या चाहिए, पलक उठाकर देखना या पढ़ते-लिखते हुए व्यवधान होने पर कनखियों से देखना कब क्या कह रहा है मुझे समझ लेना होता है, अब तो बच्चे और पुराने नौकर भी कुछ-कुछ इनकी आँखों की भाषा समझने लगे हैं।

राजनीति मेरा रुचिकर विषय नहीं है। न ये मुझसे कहते हैं और न मैं राजनीति की चर्चा सुनना पसन्द करती

हूँ। हमारे दो लड़के हैं और एक लड़की। दोनों लड़कों और लड़की के विवाह हो चुके हैं, बच्चे भी हैं उनके। इन्हें तो पूरे देश और प्रदेशों की चिन्ता है। हर पल एक नई समस्या रहती है इनके सामने। पहले कुछ नियमित थे। दोपहर-शाम का भोजन साथ ही होता था। आजकल तो यह भी नहीं हो पाता। सौ-सौ बार कहने पर भी न समय पर खाते हैं और न समय पर सोते हैं। सुबह छः साढ़े छः बजे उठने से लेकर रात बारह-दो बजे तक व्यस्त रहते हैं। मैं चिंतित रहती हूँ, अक्सर उनके बारे में सोचती हूँ। हँसकर वायदा कर लेते हैं, अच्छा आज से देर नहीं होगी। मगर फिर वही ढाक के तीन पात, अब टोकना कम कर दिया है। मगर कहे बग़ैर रहा नहीं जाता। आदत जो है मुझे बोलने की।

व्यक्तिगत संबंधों को निभाना कोई इनसे सीखे। बड़े से बड़े राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी से भी हँसकर बात कर लेंगे। पूरे सम्मान के साथ उनकी अगवानी करेंगे। हँसेंगे-बोलेंगे, साथ बात करेंगे मगर जहाँ राजनीति का सवाल है फिर वही छत्तीस का आँकड़ा। सहिष्णुता और हृदय की निर्मलता ऐसी है कि यदि दूसरा पक्ष दुराग्रह या हठधर्मी छोड़ दें तो ये तत्काल सब कुछ भूलकर शत्रु को भी गले लगा लेते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि इनका मित्र वर्ग बहुत लम्बा चौड़ा हो। बहुत कम रिश्ते जोड़ते हैं और जुड़ जायँ तो निभाते हैं, अपनी ओर से। राजनीतिक मतभेद होने पर भी इन्होंने व्यक्तिगत संबंधों में अंतर नहीं आने दिया है कभी। जो लोग इस सत्य को जानते हैं, वे इस तथ्य से भलीभाँति परिचित भी हैं।

पढ़ने का बहुत शौक है इन्हें। राजनीति, धर्म, शिक्षा, दर्शन, मनोविज्ञान, इतिहास, पुरातत्व सभी विषयों की नई से नई किताबें ख़रीदना, पढ़ना इनका गहरा शौक है। थकान मिटाने के लिये कभी-कभी मासिक साहित्य या फ़िल्म पत्रिका भी पलट लेते हैं, मगर पढ़ते हैं हर समय। विशेषकर प्लेन, ट्रेन या कार में अवश्य ही। लिखने, पढ़ने, बोलने में पहले इन्हें अंग्रेज़ी सुहाती थी, धीरे-धीरे हिन्दी में भी रुचि हुई और आजकल तो हिन्दी-अंग्रेज़ी दोनों ही भाषाओं में समान अधिकार से लिखते-पढ़ते हैं। अंग्रेज़ी बहुत अच्छी लिखते हैं। आजकल उतनी ही अच्छी हिन्दी भी लिखते हैं।

साहित्य, ललितकला, संगीत से लगाव है। कलाकारों और साहित्यकारों के लिये बहुत अधिक सम्मान हैं इनके दिल में। नाटक, संगीत, समारोह, चित्र-कला प्रदर्शनी आदि के लिये व्यस्ततम् समय में से भी समय निकाल लेते हैं। तनाव से मुक्ति ऐसे ही कुछ आयोजनों में जाने से हो जाती है।

बच्चों को प्यार करते हैं बहुत। हमारा पहला लड़का जब हुआ था उस समय महीनों इनने उसे गोद में नहीं लिया। घर में हमारी सास ही सम्हालती थी दीपू को। दीपू घर में दुलार से कहते हैं, नाम है अभिमन्यू सिंह। छोटे को राहुल कहकर पुकारते हैं नाम है अजयसिंह। वीणा हमारी एकलौती बिटिया है, उससे और उसके बेटे "बनी" से बहुत प्यार करते हैं ये। प्यार तो मुझे भी सभी से है, मगर इनका स्नेह 'बनी' से बहुत अधिक है। बड़ा बेटा 'अभिमन्यु' बंगलौर में है। पिछले दिनों आया था तो उसके बेटे 'अभिजीत' से घर में बड़ी रौनक़ हुई। जब तब जहाँ कहीं से आते 'अभिजीत' को ज़रूर पूछते, बुलाते और प्यार करते। 'बनी' के साथ कभी बाल और कभी क्रिकेट खेल लेने का भी समय निकालते रहे हैं। आज 'बनी' नहीं है, 'अभिजीत' है, खेल रहा है। बहुत चंचल है। चार बार आकर डिस्टर्ब कर चुका है। समझ रहा है कि मैं कोई लेटर लिख रही हूँ।

कपड़े साफ़-सुथरे सलीक़े से पहनते हैं। ख़रीदते खुद नहीं। मैं ही जाती हूँ इनके लिए कपड़े ख़रीदने। जो ला दिया सब ठीक है। टेलर जो एक पसन्द आ गया सो आ गया। वर्षों से उसी से सिलवाते हैं हम। पैन्ट-बुशर्ट इनकी प्रिय पोशाक है। सर्दियों में सूट पहनते हैं। जूते-चप्पल के शौकीन हैं। अक्सर बदल-बदल कर पहनते हैं।

घूमने का, देश-विदेश देखने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देते। दर्जनों बार हम लोग विदेश भ्रमण कर चुके हैं। मैं हमेशा साथ रही हूँ। दिल्ली आने के बाद से सफ़ारी सूट पहनने लगे हैं।

व्रत-उपवास और पूजा-पाठ अन्य सभी भारतीय गृहणियों के समान मेरे ही ज़िम्मे है। स्वयं पूजा-पाठ नहीं करते। त्योहार आदि पर कहने को साथ बैठ जाते हैं। नास्तिक नहीं हैं और अन्धविश्वासी भी नहीं। दीन-दु:खियों के लिये करुणा का सागर है इनके हृदय में। दु:ख देखा नहीं जाता। सबकी सहायता करने को सदैव तत्पर रहते हैं। उचित काम के लिये हमेशा तैयार लेकिन अनुचित काम कोई इनसे करा नहीं सकता, किसी भी क़ीमत पर। कही-सुनी बातों पर ध्यान नहीं देते हैं। चुगली और चापलूसी को सहज ही समझ लेते हैं। अपनी ओर से ऐसे किसी भी व्यक्ति को कभी प्रोत्साहन नहीं देते, जो चुगली अथवा चापलूसी से लाभ लेना चाहे। शिष्ट, हास्य और व्यंग्य की चुटकियाँ तो कभी-कभी ऐसे लेते हैं कि बरबस श्री हरिशंकर परसाई और शरद जोशी जी की याद आ जाती है।

समय के बहुत पाबन्द हैं। घड़ी की सुइयाँ इन्हें धोखा नहीं दे सकतीं। भीड़ और व्यस्तता इन्हें अपने 'शेड्यूल' से कम ही डिगा पाती हैं। मेरी शिकायत सिर्फ़ यह है कि हर समय, समय का ध्यान रखने वाले मेरे पति आप सभी के 'साहब' समय पर खाते और सोते नहीं हैं इन दिनों। मैं तो कह-कह कर थक गई, शायद किसी सहृदय पाठक के कहने से ये मान जायँ। आज इनके जीवन के 74 वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। सिद्धान्तों और आदर्शों पर जिस अडिगता से ये समर्पित हैं, ईश्वर से यही प्रार्थना है कि ये देश-विदेश के दीन-दु:खियों की सेवा में लगे रहें। यही इनका सन्तोष है और इसी में मेरा भी। बस।

☐ *श्रीमती सरोजसिंह—श्री अर्जुनसिंह की धर्मपत्नी।*

न दैन्यं, न पलायनम्

शिवमंगलसिंह सुमन
(श्रीमती सरोजसिंह के चाचाजी : सुप्रतिष्ठित कवि)

विश्व साहित्य में महाभारत युद्ध के अप्रतिम वीर अर्जुन की अटल प्रतिज्ञा अत्यंत संतुलित और सारगर्भित मानी जाती है। वे जानते थे कि युद्ध, युद्ध है, उसमें कोई छाती ठोककर विजयी होने का दावा नहीं कर सकता। अतएव उन्होंने बिना किसी आवेश अथवा आवेग के धीर, गंभीर और संयत स्वरों में केवल इतना ही कहा था कि— "अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्।" अर्थात् अर्जुन की दो ही प्रतिज्ञाएँ हैं कि न किसी के सामने दीन बनूँगा और न पीठ दिखाऊँगा। पता नहीं किस मुहूर्त में माता-पिता ने मध्यप्रदेश के इस युवा कर्णधार का नाम अर्जुन रख दिया कि उक्त उक्ति उस पर पूर्णतया चरितार्थ हो गई। शेक्सपियर ने नाम का महत्व नहीं माना है, उसके अनुसार गुलाब को कोई नाम दे दो, उससे उसकी सुगंध में कोई अंतर नहीं पड़ता। परन्तु गुरुदेव रवीन्द्रनाथ नाम को बहुत महत्व देते थे। उन्होंने अपने प्रसिद्ध निबंध "काव्येर उपेक्षिता उर्मिला" में आदि कवि बाल्मीकि से इस बात की शिकायत तो की है कि उन्होंने रामायण की रचना में उर्मिला के साथ न्याय नहीं किया पर उसके नामकरण पर उन्हें जी खोलकर बधाई दी है। जिसके समस्त जीवन में भावनाओं की उर्मियाँ ही उठती रह गई। उसका उर्मिला से बढ़कर दूसरा नाम नहीं हो सकता था। श्री अर्जुन के संबंध में भी यह उक्ति सटीक घटित होती है।

उनका समस्त जीवन निष्ठा और अप्रतिहत संघर्ष की कहानी है। लोग विश्वास नहीं करेंगे कि सर्वसुविधासम्पन्न गृह में जन्म लेने पर भी उन्होंने बचपन से ही अभावग्रस्तों का अभिनंदन करना सीखा और सर्वप्रथम अपने सामंतवादी परिवेश के विरुद्ध ही विद्रोह का झंडा उठाया। प्रारंभ से ही समाजवादी विचारधारा के प्रति आकर्षित होने के कारण अपने विद्यार्थी काल में छात्र संघ के चुनावों में ये सदा सामंती व्यवस्था के विरुद्ध जेहाद छेड़े रहते थे। घर वाले कभी-कभी उनकी इन प्रवृत्तियों से चिंतित भी हो उठते थे। राजनैतिक क्षेत्र में भी इन्होंने समाजवादी दल के प्रतिनिधि के रूप में ही प्रवेश किया था और निर्दलीय विधायक दल के नेता के रूप में ही प्रथम दीक्षा ली थी। उनके धीर, गंभीर, संतुलित संयत स्वभाव में प्रातः स्मरणीय पिताश्री का व्यक्तित्व पूर्णतया प्रतिबिम्बित दिखता है। उन्हीं के समान शालीन मुद्रा, प्रशस्त ललाट, होठों ही होठों में विलीन हो जाने वाली मंद-मंद मुस्कान और प्रथम भेंट में नवागन्तुक को उबा देने वाला निस्पृह मौन। उनका मितभाषी स्वरूप स्वभावगत ही नहीं है, परंपरागत भी है, यह संयमशील पिता की पवित्र वसीयत। मध्यप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री प्रसिद्ध विधिवेत्ता डॉ. काटजू ने इस मौन अंतःरूप में अन्तर्निहित भावाकुल नवोन्मेष को सर्वप्रथम परखा था। 35 वर्ष के इस नवयुवक ने अपने मंत्रित्व के प्रथम दौर में ही अद्‌भुत कौशल का परिचय दिया। जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर की स्थापना उस नवसर्जना की प्रथम बानगी थी।

सीधी जिले की चुरहट जागीर की आलीशान गढ़ी में अर्जुनसिंह का जन्म 5 नवम्बर 1930 को हुआ। ये राव साहब के द्वितीय पुत्र हैं। बालकपन से ही उन्हें प्रकृति के अंचल में परिभ्रमण करना और अपनी जागीर के अभावग्रस्त

दीन-हीन जनों की व्यथा-कथा सुनना विशेष प्रिय रहा है। सीधी को दुहरी-तिहरी पहाड़ियों, नदी-नालों-झरनों और गहन-गंभीर कांतारों के नयनाभिराम परिवेश में इनके व्यक्तित्व का विकास हुआ है। आस-पास की अटवी में निरुद्देश्य भटकना, झरनों के किनारे बैठकर घंटों सोचना-विचारना, शेरों की माँद के आस-पास निर्भय भटकना और किसी सुदूर कल्पना लोक के सपनों में खोये रहना इनकी किशोरावस्था की विशेष प्रवृत्तियाँ रही हैं। उसी अवस्था से विरोधी परिस्थितियों से जूझने और खतरा मोल लेने में इन्हें विशेष आनंद आने लगा था। प्रारंभ से ही घुड़सवारी, शिकार और महापुरुषों की आत्मकथा के अध्ययन में इनकी विशेष रुचि रही है। अभी ये 13, 14 वर्ष के ही रहे होंगे कि हाँका करते समय एक घायल शेर से इनका सामना हो गया। लगभग 20 गज की दूरी से दहाड़कर झपटे उसके खूँखार आक्रमण से ये तनिक भी विचलित नहीं हुए और दुर्धर्ष शौर्य से एक गोली में ही उसका काम तमाम कर दिया। परिजन और पुरजन उस कच्ची उम्र में ही इनके शौर्य और पराक्रम को देखकर चकित रह गये थे। बड़ी से बड़ी चुनौती स्वीकारने की यह वृत्ति बचपन से ही इनके रक्त में घुलीमिली-सी प्रतीत होती है। इस घटना से विस्मय विमुग्ध पिताश्री राय साहब तभी से इनके भव्य भविष्य के प्रति आश्वस्त हो उठे थे और अपनी संतानों में इनके धुनी स्वभाव के प्रति विशेष उत्कंठित रहते थे।

ऊपर से प्रशांत पर भीतर से प्रज्ज्वलित अबूझ पहेली-सा इनके व्यक्तित्व का विरोधाभास ही इनकी सबसे बड़ी शक्ति है। एक ओर कराल काल को ललकारने की दुर्दमनीयता और दूसरी ओर दीन-दु:खी की व्यथा से विगलित हो उठने की करुणा-कातरता। 27 जनवरी 1982 को नोबल पुरस्कार विजयिनी मूर्तिमान करुणा मूर्ति मदर टेरेसा से इनकी मुलाक़ात स्वयं ही एक मर्मस्पर्शी एवं प्रेरणामयी कहानी है। अपनी पिछली भोपाल-यात्रा में, मैं अतिथि कक्ष में अत्यन्त सादगी से प्रदर्शित उस चित्र को मंत्रमुग्ध-सा देखता रह गया था जिसमें मदर टेरेसा मुख्यमंत्री को ऐसे निहार रही है जैसे अबोध शिशु को देखकर ममतामयी माँ का अगाध वात्सल्य उमड़ पड़ रहा हो। दुनिया की नज़रों में पहेली लगने वाले मुख्यमंत्री भी उस चित्र में शुद्ध बुद्ध शिशु की भाँति माँ के ममत्व से अभिभूत दिखाई पड़ते हैं। माँ के बगल में बैठी सरोज (श्रीमती अर्जुनसिंह) भी अपने जीवन संगी की इस भोली-भाली मुद्रा को विस्मय विमुग्ध-सी निहारती प्रतीत होती है। यह भी अद्‌भुत संयोग है कि इसके अतिरिक्त उस कक्ष में सामने की दीवाल पर शोभित मुख्यमंत्रीजी के पिताश्री का एक मात्र चित्र था, जैसे वे चुपचाप अपने पुत्र के सौभाग्य पर गर्वित और गद्‌गद् हो रहे हों। 28 जनवरी 1982 को संजय गाँधी शिशु एवं परिवार कल्याण केंद्र, चुरहट के उद्‌घाटन के अवसर पर मदर टेरेसा जैसी समर्पित विभूति के अभिनंदन में मुख्यमंत्री की भाव-भीनी प्रशस्ति गंगोत्री के उत्स सी फूटती दिखाई पड़ी जब उन्होंने कहा कि "मैं सिर्फ़ यही कह सकता हूँ कि अपनी सौम्य उपस्थिति से आज आप एक और घायल आत्मा को राहत देने वाले स्पर्श दे रही हैं, जो समूचे संसार में फैली आपकी उस अक्षौहिणी में जुड़ जायगी जिसने आपकी दयामय चेष्टाओं, मातृवत् चिन्ता और करुणामय दान से सान्त्वना और गतिशीलता पाई है। अनजाने में ही अक्षौहिणी शब्द के प्रयोग ने पारंपरिक अर्जुन के चित्र को सजीव-सा कर दिया। इस प्रसंग में दो अनाथ बालकों, दस वर्ष के अंधे बालक और ग्यारह वर्ष की उसकी बहन की करुणार्द्र कथा ने वातावरण को और भी मर्मस्पर्शी बना दिया था। संभवत: करुणा के इन्हीं भाव सीकरों से अभिसिंचित मदर टेरेसा का ममत्व उन्मुक्त आशीर्वाद के रूप में इन शब्दों में फूट पड़ा था कि I have come to bless your house अर्थात् मैं तुम्हारे परिवार की मंगलकामना के लिए आई हूँ। आज का स्वार्थ लिप्त गर्हित राजनीति में आकंठ मग्न अवसरवादी इस तथ्य को शायद ही समझ सके कि प्रदेश के क्षितिज पर उभरते हुए इस नक्षत्र ने सत्ता के स्थान पर सेवा का ही वरण किया है। यह बहुत कम लोगों को विदित है कि चीनी आक्रमण के समय सिपाही के रूप में अपना नाम दर्ज़ कराने के लिये ये भरती के दफ़्तर में उपस्थित हो गये थे। उस समय ब्रिगेडियर से हुई इनकी

चर्चा में राष्ट्र के लिए उत्सर्ग हो जाने की युवकोचित व्यग्रता विशेष मर्मस्पर्शी थी।

मेधावी ग्राहिका शक्ति और बुद्धि की प्रखरता को देखकर यह जान सकना कठिन है कि इनकी शिक्षा-दीक्षा बी.ए. तक ही हुई है। अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन उज्जैन (All India oriental conf. Ujjain) में शिक्षा -मंत्री के रूप में इनका संक्षिप्त प्रवचन सुनकर देश-विदेश के विख्यात विद्वान विस्मित रह गए थे और प्रसिद्ध प्राच्य विद्याशास्त्री डॉ. दांडेकर विशेष रूप से बधाई देने भी आए थे।

टी.आर.एस. कालेज, रीवा के छात्र नेता से मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बनने तक इनके अप्रतिहत संघर्ष की कहानी किसी तिलस्मी गाथा से कम कौतुलहलपूर्ण नहीं है। हमारे परिवार की स्मृति के तो आज भी वह मंगलमय मुहूर्त प्रभात के सपने-सा भास्वर है जब जून 1948 को दूल्हे के वेष में घोड़े पर सवार एक सुन्दर युवक किसी स्वप्न लोक के राजकुमार-सा तलवार की नोक से तोरण को बेधने की मुद्रा में प्रतापगढ़ के सिंह द्वार में प्रविष्ट हुआ था। तब किसी को स्वप्न में भी यह आभास नहीं था कि वह कल्पित कथाओं के राजकुमार का नहीं वरन् राष्ट्र के नवनिर्माण के भावी शिल्पी का आगमन हुआ था। हमारे अग्रज मेजर शिवप्रसादसिंह को भी यह अनुमान नहीं था कि उनकी लाड़ली बड़ी बेटी सरोजकुमारी का पुण्य परिणय राष्ट्र के एक होनहार युगपुरुष के साथ सम्पन्न हो रहा है। हम तो इसे पिता तथा पितृत्व प्रातः स्मरणीय जनरल साहब बख्शसिंह परम प्रतापी कैप्टन लालप्रतापसिंह और सन्त साधकलाल भगवान बख्शसिंह की तपस्या का पुण्यफल ही मानते थे। उस समय मैं तो परिवार के नितांत नगण्य सदस्य के रूप में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जीवन संघर्ष का पाथेय जुटाने के उपक्रम में भटक रहा था। कालांतर में हम लोग निकट से निकटतर और निकटतम आते गए और इन्दौर निवास, नेपाल प्रवास तथा अवंतिका-आवास काल में अनेकों मार्मिक घटनाओं के साक्षी बने। जनमानस में तो मेरे अनुज शिवमोहनसिंह सम्प्रति अतिरिक्त एडी.डी.जी. सी.आर.पी. और मुझे श्वसुर के विरद से अधिक विभूषित होना पड़ा। असली श्वसुर मेजर साहब तो अपनी ऐकान्तिक साधना में ही अधिक लीन रहे।

1957 में निर्दलीय विधायक दल के नेता से 1980 में मुख्यमंत्री बनने तक की कहानी अनेकों रोमांचक घटनाओं और आशा-निराशा के अंतर्द्वन्द्वों से अनस्यूत है, जो स्वतंत्र निबंध की अपेक्षा रखती है। इतना अवश्य है कि मुझे भी एक होनहार युवक के विकासक्रम को इतने निकट से देखने का सुयोग मिल गया कि कैसे अपने भावोन्मेष में समस्त सामन्ती सुविधाओं को लात मारकर उसने अभाव और अकिंचनता का मार्ग चुना और ख़ून-पसीने से सिक्त यहाँ तक की दूरी अप्रतिहत आस्था से पूरी की। इनके जीवन का वैविध्य, पत्रकार, कलाकार, विश्वपर्यटक, राजनयिक, शिकारी, दार्शनिक आदि का स्वरूप किसी एक मानदण्ड से नहीं मापा जा सकता। उसके लिए विभिन्न क्षेत्रों के सूक्ष्मदर्शी विशेषताओं के समीकरण की आवश्यकता है। इनके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए इनके पुत्र दीपू (अभिमन्यु सिंह), राहुल (अजयसिंह) और वीणा (पुत्री) की विभिन्न प्रवृत्तियों का विश्लेषण भी विशेष मनोरंजक हो सकता है। परिवेश को समझने के लिए धर्मपत्नी सरोज की मौलिक प्रतिभा, हठी मानसिकता और कर्मठ धर्म-प्रवणता को समझना अनिवार्य है।

जब मैं नेपाल के भारतीय राजदूतावास में सांस्कृतिक और सूचना सचिव था उस समय इनके पत्रकार स्वरूप का प्रथम निदर्शन भी कम विस्मयकारी नहीं था, जब **हितवाद** के विशेष संवाददाता के रूप में महाराजाधिराज नेपाल के प्रीतिभोज में इन्होंने साम्राज्ञी एलीजाबेथ और ड्यूक आफ एडिनबरा से प्रथम साक्षात्कार किया था। भोपाल के मंत्रित्वकाल में भी बर्मा के भूतपूर्व प्रधानमंत्री यू.नू. के प्रति इनकी हार्दिकता राजनयिक सौहार्द्र की अनमोल गाथा है। कलाकार की संवेदनशीलता के ज्वलंत स्मारक के रूप में **भारत-भवन** की विराट कल्पना इनके सांस्कृतिक चक्रवर्तित्व के लिये

पर्याप्त है। यद्यपि जहाँ तक बन पड़ा है, मैंने व्यक्तिगत संदर्भों के उल्लेख से बचने का प्रयत्न किया है पर एक छोटी-सी घटना का संकेत इस आशय से कर देना समीचीन होगा कि कैसे ये राष्ट्र के प्रति उत्सर्गशीलता के उन्मेष में व्यक्तिगत चिंताओं को भीतर ही भीतर मसोसते हुए आगे बढ़ते रहे।

एक बार जब ये राजनीतिक क्षितिज पर उभर रहे थे कि सरोज (श्रीमती अर्जुनसिंह) बहुत बीमार पड़ गई और बचने की कोई आशा न रही। कहीं से डॉ. काटजू को इनकी आसन्न आपत्ति की ख़बर लगी तो उन्होंने अपने विशेष वायुयान से जबलपुर के प्रसिद्ध सर्जन डॉ. कौशल को अंतिम प्रयत्न के रूप में इलाहाबाद भेजा। घनघोर निराशा के उस क्षण में अपनी जीवनसंगिनी के आसन्न वियोग से आशंकित आधी रात के भीगते अंधकार में लिखित इनका करुणाकातर पत्र पवित्र दस्तावेज़ के रूप में मेरे पास सुरक्षित है। डॉ. कौशल सचमुच मसीहा साबित हुए और उन्होंने चौबीस घंटे के भीतर ही एक के बाद एक तीन आपरेशनों द्वारा सरोज को काल के गाल से निकाल लिया। आनंद की उस क्षण अनुभूति में भी अर्जुनसिंह का मौन नहीं टूटा, केवल आँखों की चमक में अंतस का उल्लास रह-रहकर व्यक्त होता रहा। व्यक्तिगत दु:ख दर्द की मार्मिक वेदनाओं को पीकर पचा लेने की इनमें अद्‌भुत क्षमता है।

मेरी दृष्टि से इस महारथी का सबसे महत्वपूर्ण काल, विरोधी दल के नेता के रूप में 1977 से 1980 के बीच में घटित हुआ, जब ये उत्सर्ग की वेदी पर प्रज्ज्वलित हुतात्मा के रूप में स्वयं को होमकर देने के लिए व्यग्र दिखाई पड़ते थे। कहीं हरजिनों को ज़िंदा जला दिया गया है तो उनकी विधवाओं और अनाथ बच्चों के करुणा-कातर क्रन्दन के साथ स्वयं अश्रु विगलित हो रहे हैं, कहीं सूखा पड़ा है तो भूखे-शोषित किसानों को संबोधन देने के साथ-साथ अपने घर का गल्ला भी बाँटे दे रहे हैं। उज्जैन आए तो थकान, टूटन और एलर्जी से होठों और आँखों में ऐसी सूजन कि पहचानना कठिन। फिर भी अविराम काम में जुट जाने की विचित्र बैचेनी और दीवानगी। सीधी में कृष्ण भवन की यात्रा के बाद दिल के दौरे के कारण अस्पताल में भर्ती होने की विवशता के प्रति भी लापरवाही। सौभाग्य से जीवन-मरण के उस संघर्ष से उबर गए तो मुख्यमंत्री बन गए, अन्यथा "कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" के स्वरों में स्वयं को स्वाहा कर देने के लिए तो कृतसंकल्पित हो ही चुके थे।

यद्यपि मुख्यमंत्री के विरद से विभूषित होने के कुछ काल पश्चात् ही **उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान** के उपाध्यक्ष के रूप में लखनऊ चले जाने से मैं उनके तत्कालीन कृतित्व का प्रत्यक्षदर्शी और साक्षी तो नहीं बन सका पर उनके उन्मेषशील अनुष्ठानों की राष्ट्रव्यापी प्रतिध्वनियों से पुलकित अवश्य होता रहा। उनकी राजनैतिक उपलब्धियों के आकलन का तो मैं अधिकारी नहीं पर सांस्कृतिक क्षेत्र में **भारत-भवन** की स्थापना मध्यप्रदेश के लिए ही नहीं समस्त राष्ट्र के लिए अनन्य उपलब्धि मानी जा सकती है। साहित्य, कला, संगीत और संस्कृति के समवाय में ऐसे वैविध्य और समीकरण की तो किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। वस्तुत: **भारत-भवन** के रूप में देश के सांस्कृतिक इतिहास का नया अध्याय शुरू हुआ। 13 फरवरी 1982 को उद्‌घाटन के लिए पधारी इंदिराजी उसके अंतरंग और बहिरंग के अवलोकन से अभिभूत होकर अनायास उद्‌घोष कर बैठी थीं कि "**भारत-भवन** की स्थापना के ब्याज से भोपाल अब तो भारत की सांस्कृतिक राजधानी बन गया है।" तब से शायद ही कोई राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कवि, संगीतज्ञ, चित्रकार, रंगकर्मी, नर्तक अथवा सर्जनाधर्मी कला मर्मज्ञ हो जिसने इस नवनिर्मित सांस्कृतिक तीर्थ की परिक्रमा न की हो। उसकी परिणिति **नेहरू जन्म शताब्दी** के अवसर पर आयोजित (11-17 जनवरी 1989) विश्व कवियों के सम्मेलन के रूप में देखी जा सकती थी जिसमें विश्व के कोने-कोने से— चेकोस्लाविया, घाना, निकारागुआ, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, डेनमार्क, इण्डोनेशिया, नाईजीरिया, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, इंग्लैण्ड, टर्की, अर्जेंटाइना, स्वीडेन, मेक्सिको, स्पेन, चिली, पोलैंड, हंगरी, सोवियत रूस आदि के विश्व विश्रुत कवि भाग लेने

आए थे। भारतीय भाषाओं के लब्धप्रतिष्ठ कवियों का तो इसमें योगदान था ही। इसे भोपाल की भूमि पर अंतरराष्ट्रीय भावनात्मक समन्वय का अभूतपूर्व अनुष्ठान कहा जा सकता है। इसके पूर्व **कविता एशिया** (मार्च 19-24, 1988) के रूप में चीन, जापान, ईरान, संयुक्त अरब अमीरात, इण्डोनेशिया, पाकिस्तान और नेपाल के कवियों के साथ भारत के कवियों का भाईचारा स्थापित हो चुका था।

पंजाब के राज्यपाल के रूप में **राजीव लोंगोवाल समझौते** की सिद्धि को तो छोटा-मोटा करिश्मा ही कहा जा सकता है। आतंक से संत्रस्त लहूलुहान पंजाब से सहज मानवीय आधार पर संवाद की स्थिति स्थापित करना साधारण काम नहीं था। विशेषकर स्वर्ण मंदिर में ब्ल्यू स्टार की कार्रवाई के पश्चात् जब चारों ओर दीन और धर्म के नाम पर भोली-भाली जनता को भड़काने, उत्तेजित करने और पारंपरिक भाईचारे के वक्ष में ख़ंजर भोंकने का पागलपन वातावरण में हावी हो। सौभाग्य से मैं इस सांस्कृतिक सौहार्द्र के संचरण का साक्षी था जब वैशाखी से ठीक एक दिन पूर्व 12 अप्रैल 1985 को हिन्दी, उर्दू और पंजाबी के कवियों का कवि सम्मेलन जलियाँवाला बाग में आयोजित किया गया था जिसकी मिट्टी हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों के सम्मिलित रक्त की जीवंत गाथा बखान करती प्रतीत होती है। आज भी वहाँ पहुँचते ही आज़ादी की बलिवेदी के उस बलिदान का अहसास अनायास जाग्रत हो जाता है। सौमनस्य के जीवंत प्रतीक श्री अर्जुनसिंह ने इसका उद्घाटन पंजाब के अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के कलाकार डॉ. मुल्कराज आनंद से करवाया था। हिंदी कवियों में मेरे अतिरिक्त वीरेन्द्र मिश्र और बालकवि बैरागी के रूप में मध्यप्रदेश के ही कविगण समस्त हिन्दी साहित्य का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, घृणा, आतंक और बर्बरता के इस वातावरण में पंजाबी, उर्दू और हिंदी की कविताओं ने घायल पंजाब के रिसते घावों में मरहम का काम किया था। अधिकांश कवियों ने एकता, भाईचारे और सौहार्द्र के मर्मस्पर्शी गीत सुनाए थे, जिसकी श्रोताओं ने खुलकर दाद दी थी। इस पावन यज्ञ की पूर्णाहुति दूसरे दिन वैशाखी के पुण्य पर्व 13 अप्रैल 1985 को देखने को मिली जब शहादत और सम्मिलन के इस पावन तीर्थ में राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल, सिक्किम और हरियाणा के मुख्यमंत्रियों तथा सभी पार्टियों के नुमाइन्दों ने सम्मिलित समिधा समर्पित की थी। पंजाब की ओर से सरदार दरबारा सिंह और भारत सरकार की ओर से गृहमंत्रीजी तथा बलराम जाखड़ ने श्रद्धांजलि अर्पित की, पर इस सौहार्द्र और आत्मीयता का वातावरण निर्माण करने में स्वागताध्यक्ष के रूप में राज्यपाल अर्जुनसिंह के पंजाबी भाषा में दिए गए भाषण का जादुई प्रभाव काम कर रहा था, अगले दिन प्राय: सभी समाचार-पत्रों में इस भाषण की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की गई थी और पंजाबी में बोलने पर राज्यपाल को हार्दिक बधाई दी गई थी। राज्यपाल के सौहार्द्र की यह कहानी बिजली के करंट-सी सारे प्रदेश में ऐसे संचरित हो गई थी कि अमृतसर से चण्डीगढ़ लौटते समय व्यास नदी के तट पर स्थित राधास्वामी मत के सम्मान्य गुरुजी ने राज्यपाल का भावभीना स्वागत करते हुए उनकी लोकप्रियता की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

जहाँ तक मेरी जानकारी है कुँवर साहब का (घर में हम उन्हें इसी नाम से पुकारते हैं) समस्त जीवन किशोरावास्था से ही चुनौतीपूर्ण और विषमतापूर्ण रहा है, जिसके उतार चढ़ाव का ग्राफ लहरों की तरह ऊँचा-नीचा बनाया जा सकता है। उनके जीवन में किसी भी प्रकार की प्रगति के पूर्व बाधाओं का आना अनिवार्य रहा है। इसी में उनके उत्कर्ष की शक्ति भी अंतर्निहित रही है जिससे समय-समय पर धैर्य की परीक्षा और शौर्य पर शान चढ़ती रहती है। छात्र जीवन के चुनावों की प्रतिद्वन्द्विता, निर्दलीय के रूप में चुनाव जीतकर राजनीति में प्रवेश, पंडित नेहरू के आग्रह पर काँग्रेस में सम्मिलित उदीयमान युवक के रूप में अपनी निष्ठा परिणाम स्वरूप प्रथम बार मंत्रिपद पर अभिषेक, एक बार चुनाव में पराजय भी पं.द्वारिकाप्रसाद मिश्र के मंत्रिमंडल में कृषि राज्यमंत्री के रूप में प्रतिष्ठित, संविदकाल में पुन: शासन

से बाहर, सेठी काल में शिक्षामंत्री के रूप में समासीन, शुक्ल काल में पुनः अधिकारच्युत और सखलेचा काल में विरोधी पक्ष के नेता के रूप में उभरते हुए समस्त अवरोधों को रौंदकर मुख्यमंत्री के पद पर प्रतिष्ठित। इस दौर में आर्थिक क्षेत्र में तेंदूपत्ता के श्रमिकों की शोषण से मुक्ति, सामाजिक क्षेत्र में हरिजनों और झुग्गी-झोपड़ी के निरीह निवासियों को मानवोचित सुविधाएँ प्रदान करने का साहसी अभियान और सांस्कृतिक क्षेत्र में **भारत-भवन** के रूप में अभूतपूर्व नवोन्मेष जाग्रत करने के बावज़ूद द्वितीय मुख्यमंत्रित्व काल के मध्य में ही अधिकारच्युत होने का हादसा। इस प्रकार उत्तरोत्तर उत्कर्ष प्राप्त करने के साथ ही उतार चढ़ाव का अविरत क्रम भी निरंतर चलता रहा। जनता दल के अल्पकालीन संक्रमणकाल में अपदस्थ होते ही अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के कर्णधार के रूप में सर्वथा नये आयाम का अभियान प्रारंभ हो गया।

अक्टूबर 1990 में घटित बाईपास सर्जरी की कहानी तो हृदयद्रावक और मर्मस्पर्शी है, जिसकी याद आते ही आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं उनकी अस्वस्थता का समाचार पाकर रविवार 21 अक्टूबर 1990 को संध्या समय जब मैं एस्कॉर्ट हार्ट इन्स्टीट्यूट और रिसर्च सेंटर कुशल क्षेम पूछने पहुँचा तो उनकी सहधर्मिणी (मेरी भतीजी) सरोज, अनुज सज्जनसिंह और पुत्र राहुल के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ते देखकर पहले तो सहम गया फिर कुँवर साहब की धीर, संयत और मंद-मंद मुस्कान युक्त प्रशांत मुद्रा देखकर आश्वस्त हो उठा। अगले दिन ही होने वाली बाईपास सर्जरी की चिंता से असंपृक्त वे मुझसे नितांत सहज भाव से तुलसी और कबीर पर चर्चा करते रहे और चलते समय अपनी सहज मुस्कान से परसों पुनः आने का आग्रह कर हाथ जोड़ लिये। कल होने वाली दुर्धर शल्यक्रिया की तो उन्होंने मुझे हवा तक न लगने दी। मंगलवार 23 अक्टूबर को लगभग बारह बजे मध्यान्ह जब **नवभारत टाइम्स** के प्रातः स्मरणीय संपादक राजेन्द्र माथुर ने दूरभाष पर सूचना दी कि आपके कुँवर साहब हार्ट के आपरेशन के बाद अभी-अभी बाहर लाए गए हैं और अभी अर्धचेतनावस्था में ही हैं, तो मैं क्षणभर के लिए स्तब्ध रह गया। फिर विशेष विवरण जानने की घबराहट के उत्तर में तो वे इतना ही बता पाए कि अभी तक किसी को भी उनसे मिलने की इजाज़त नहीं है पर इसी क्रम में विस्मय विमुग्ध स्वर में उन्होंने सूचित किया कि आपरेशन थियेटर में प्रवेश के कुछ काल पूर्व ही लिखित **मेरे राम, रहीम और ईसा** तुम कहाँ हो? शीर्षक मर्मस्पर्शी लेख उन्हें प्रकाशनार्थ प्राप्त हुआ है। उस समय तो आसन्न आपदा से आशंकित दिग्विमूढ़-सा, अच्छा के अतिरिक्त कुछ नहीं बोल पाया पर बाद में उनकी स्थितप्रज्ञता के विषय में सोच-सोचकर विस्मित होता रहा।

उसी शाम मुझे मालवा एक्सप्रेस से उज्जैन लौटना था पर इस समाचार से संत्रस्त जब लगभग संध्या 5.30 बजे एसकॉर्ट हार्ट सेंटर पहुँचा तो प्रवेशहाल ही में राहुल और दीपू (उनके दोनों पुत्रों) को स्तब्ध खड़े देखकर विगलित हो उठा। धड़कते दिल से हालचाल पूछने पर उन्होंने बड़े संयतभाव से बताया कि आपरेशन तो सफल हो गया है पर अभी किसी को भी मिलने की अनुमति नहीं है। मुझे भी बुरा नहीं लगा क्योंकि जब उनकी सहधर्मिणी और बच्चों को भी मिलने नहीं दिया गया है तो और किसी के प्रवेश का तो प्रश्न ही नहीं उठता पर इससे परिस्थिति की गंभीरता का आभास अवश्य मिल गया। शंका-कुशंका की बेचैनी में डूबता-उतराता जब 24 अक्टूबर को उज्जैन वापस पहुँचा तो शांति को (धर्मपत्नी को) **नई दुनिया** हाथ में लिए फफक-फफक कर रोते देखकर अवाक् निहारता रह गया। मेरी घबराहट को समझकर उन्होंने तुरंत संबोध देते हुए कहा कि चिंता की कोई बात नहीं है, आज की **नई दुनिया** में कुँवर साहब के लेख को पढ़कर मैं स्वयं को रोक नहीं पाई। इससे मैं प्रकृतिस्थ तो हो गया पर व्यग्रता में बरामदे में खड़ा-खड़ा ही पूरा लेख पढ़ गया और जीवन में पहले-पहल श्री अर्जुनसिंह के उदात्त उत्सर्गशील सर्जक स्वरूप को आत्मसात कर रोमांचित हो उठा। महाकाल की अनुकंपा, पूर्वजों के प्रताप और विशेषकर सरोज के सुहाग के पुण्य से इस दुर्धर्ष

संकट से उनके सकुशल उबर आने से हम लोग हर्षोल्लास से तो आप्लावित हो ही उठे पर इस मरणांतक संघर्ष में उनके अदम्य साहस और उत्सर्गशीलता को देखकर पहले पहल उनके व्यक्तित्व में युगपुरुष का आभास भी पा सके।

प्राणी मात्र के कल्याण के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देने की उत्सर्गशीलता और संवेदनशील सर्जना की आत्म विह्वलता में ही तिलक, गाँधी और जवाहर की मूलभूत महत्ता आधारित है। महात्मा गाँधी भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के मूल निमित्त बने और जवाहर उसके उत्सर्गशील शिल्पी पर ये युगपुरुष यदि राष्ट्र के राजनैतिक जागरण के पुरोधा नहीं भी बनते तो भी संवेदनशील सर्जक के रूप में भी सार्वभौम सम्मान के अधिकारी बन सकते थे। गाँधीजी की आत्मकथा इस विधा की अनमोल उपलब्धि मानी जाती है। उन्होंने गुजराती गद्य को नई शैली दी है। पं. जवाहरलाल अपनी परम संवेदनशील नवोन्मेषी सर्जना के बल पर साहित्य में नोबल पुरस्कार के दावेदार बन सकते थे। अंतर्मथन और उद्वेलन से उद्भूत श्री अर्जुनसिंह का यह मर्मस्पर्शी आलेख उन्हें उसी उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित करता है। अपने युग की प्रवृत्तियों का निरपेक्ष विश्लेषण करते हुए उनका वक्तव्य कि "प्रत्येक धर्म, आस्था, विश्वास और कर्मठता का सुन्दर समन्वय है। हिन्दू धर्म आस्थाओं का पुंज है, ईसाई धर्म विश्वासों की कसौटी पर खरा उतरने का अलौकिक अवसर है और इस्लाम धर्म कठिन से कठिन परिस्थितियों में कर्मठता का प्रमाण देने का माध्यम है। सर्वधर्म समभाव की सारग्राही आस्था का परिचायक है। अंत में बाईपास सर्जरी हेतु आपरेशन थियेटर में प्रवेश के पूर्व अलविदा की मुद्रा में मानवीय मूल्यों की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए उनकी व्यग्रता सारगर्भित भी है और मर्मस्पर्शी भी— "आज इन क्षणों में इसके पूर्व कि बेहोशी दे दी जाय, मैं केवल राम-रहीम और ईसा को खोजना चाहता था और पूछना चाहता था कि आज तुम कहाँ हो जो मेरा प्यारा देश बिना पतवार के, नाविक के सहारे इतिहास के भँवर की ओर तेज़ी से बढ़ता जा रहा है।" यह एक परम संवेदनशील मानव के मानस की करुणाकातर गुहार है जो कठोर से कठोर पत्थर को भी द्रवित कर सकने में समर्थ है, परमात्मा की बड़ी कृपा है कि वे इस सर्वग्रासी अग्नि की लपटों से सही सलामत निकल आए। ध्यान देने की बात है कि जब-जब उन्होंने अग्निपरीक्षा दी है तब-तब स्वर्ण के समान समुज्ज्वल होकर नये ज्योतिर्मय क्षितिज की ओर अग्रसर हुए हैं, कविवर मैथिलीशरण गुप्त की यह उक्ति सदा उनकी मूल प्रेरक रही है कि—

जितने कष्ट कंटकों में है
जिनका जीवन सुमन खिला
गौरव गंध उन्हें उतना ही
यत्र-तत्र-सर्वत्र मिला।

धर्म के मूल तत्वों के आधार पर मानवीय महिमा की प्रतिष्ठा के संकल्प को साकार करने के लिये बड़ी से बड़ी चुनौती को अपनी मंद-मंद मुस्कान से तुच्छ करते हुए वे निर्भीक स्वरों में उद्घोष करते प्रतीत होते हैं कि

"अर्जुनस्य प्रतिज्ञै द्वे, न दैन्यं न पलायनम्।"

अब तक का इतिहास साक्षी है कि उन्होंने न कभी विषम से विषम परिस्थितियों में दयादाक्षिण्य की याचना की और न घोर से घोर संघर्षों में जूझने से आनाकानी।

☐ *शिवमंगलसिंह सुमन— भारत के शीर्षस्थ कवि। नेपाल में भारत के सांस्कृतिक एवं सूचना सचिव। विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के कुलपति। पद्मभूषण से अलंकृत। कालिदास समारोह के स्वप्नदृष्टा एवं संयोजक। दर्जनों काव्य ग्रंथों के रचयिता। जीवन के कर्म और धर्म निर्वहन में शत प्रतिशत गाँधीवादी। श्री अर्जुनसिंह की धर्मपत्नी के चाचाजी। आज हमारे बीच नहीं हैं।*

जैसा मैंने देखा

शिवमोहन सिंह

(श्रीमती सरोजसिंह के चाचाजी : अवकाश प्राप्त आई.पी.एस.)

अर्जुनसिंहजी से मेरा सम्पर्क सन् 1942 से है। जब बालकाल में यह मार्तण्ड स्कूल, रीवा में विद्याध्यन कर रहे थे। इनके अग्रज श्री राव रणबहादुरसिंह मेरे सहपाठी थे। यह मुझसे निचले कक्षा में पढ़ते थे पर खेलकूद में रुचि रखने से प्राय: खेल मैदान में मिलने का अवसर प्राप्त होता था। अर्जुनसिंहजी को विशेषकर क्रिकेट, टेनिस, बैडमिन्टन खेलने का विशेष शौक था। वैसे वे घुड़सवारी करने, गोली चलाने में काफ़ी अभिरुचि रखते थे।

उसी साल सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन देश में शुरू हुआ और कुँवर साहब की प्रवृत्ति राजनीति की तरफ़ बलवती दिखने लगी। वे खादी पहनते थे। और जहाँ भी अवसर मिलता था राष्ट्रीय नेता के विषय में उनके त्याग की महिमा के बारे में चर्चा एवं प्रचार करते थे। उस समय उनकी उम्र व परिस्थिति में यह आश्चर्यजनक लगता था।

ग़रीब लड़कों की सुविधा के लिये घर में एक पुस्तकालय की स्थापना की थी। कई लड़कों को वे स्वयं वित्तीय सहायता भी देते थे। उन्होंने अपने निजी पुस्तकालय की व्यवस्था समिति के पदाधिकारियों का चुनाव कराकर और उसके सुचारू रूप से संचालन की व्यवस्था की थी। श्यामराजसिंह तिवारी इसके सचिव थे व पं. बसन्तप्रसाद पुस्तकालय की देखरेख करते थे।

श्रीमती सरोज कुमारी से अर्जुनसिंहजी का विवाह सन् 1948 में हुआ, वे मेरे बड़े भाई साहब मेजर शिवप्रतापसिंह की पुत्री हैं। वे भी संस्कार की धनी शुरू से थीं। उस समय लड़कियों को लोग पढ़ाने के लिये स्कूल नहीं भेजते थे पर मेरे भाई साहब ने पढ़ाया। रीवा स्टेट में लड़कियों की पढ़ाई को प्रोत्साहन के लिए एक स्कूल बस प्रदान की गई थी। श्रीमती सरोजकुमारी स्कूल में प्रतिभाशाली छात्रा थीं। खेलकूद व पढ़ने में सुयोग्य स्थान प्राप्त किया था। उन्हें कम उम्र से पारिवारिक जिम्मेदारी संभालना पड़ी जो उन्होंने बख़ूबी निभाई। मेरे भाई साहब फौज़ में थे अनुशासन का संस्कार श्रीमती सरोजकुमारी पर भी पड़ा जिनके चिन्ह उनमें आज भी मौज़ूद हैं।

सन् 1948 में कुँवर साहब कॉलेज के चुनाव में खड़े हुये पर असफल रहे। आर.एस.एस. के पक्षधर लड़कों ने विरोध किया। मैंने कुँवर साहब से अनुरोध किया कि आर.एस.एस. के पदाधिकारी मेरे अच्छे मित्र हैं। मैं उनको अपनी ओर ला सकता हूँ पर कुँवर साहब तैयार नहीं हुये उस समय पुरानी रियासतों में आर.एस.एस. का काफ़ी प्रचार-प्रसार था।

दूसरे वर्ष फिर चुनाव में खड़े हुये और दरबार कालेज रीवा के छात्र यूनियन के अध्यक्ष हुये। यह शुरू से समाजवादी विचारधारा के थे और प्रतिभाशील विचारक थे। मुझे कई अवसर देखने को मिले जब वह उस उम्र में भी अपने सिद्धान्त से किसी भी क़ीमत पर समझौता करने को तैयार नहीं होते थे।

उनकी बाक़ी शिक्षा इलाहाबाद में हुई और उन्होंने विधि स्नातक की शिक्षा प्राप्त की और जीवन संघर्ष में लगन, एवं एकाग्रता से लगे रहे।

सन् 1957 में उनका राजनैतिक जीवन तब उभर कर आया जब वे चुनाव में खड़े हुए, पहले वे समाजवादी मंच से खड़े होना चाहते थे। पर वह सफल नहीं हुये व निर्दलीय खड़े हुये और जीत कर आये। वे सबसे कम उम्र के विधायक थे।

सन् 1961 में श्रीमती सरोजकुमारी बीमार हुईं उनके पेट का आपरेशन इलाहाबाद में हुआ। हालत ज़्यादा बिगड़ जाने से डॉक्टरों ने फिर से ऑपरेशन कराने का सुझाव दिया। दूसरी तरफ डॉक्टरों का मत था कि इस हालत में ऑपरेशन कराना उचित नहीं है। यह महत्वपूर्ण निर्णय कुँवर साहब द्वारा ही लिया गया और पुन: ऑपरेशन हुआ जो सफ़ल रहा। इनका आत्मविश्वास तथा कार्यक्षमता विपरीत परिस्थितियों में ज़्यादा प्रखर प्रतीत होती है।

बाद में डॉ. कैलाशनाथ काटजू और पं. जवाहरलाल नेहरू की प्रेरणा से काँग्रेस में आये। कई अवसर पर मुझे उनकी लगन व उत्साह की चरम सीमा देखने को मिली जबकि अभेद्य परिस्थितियों की दीवार देखकर वे कभी विचलित नहीं हुये। कार्यशील बने रहे, लक्ष्य की ओर अकेले बढ़ते रहे और अन्तत:अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्रा व डॉ. कैलाशनाथ काटजू को फिर से वापस लाने में ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित थीं कि सभी उसको असमंजस की श्रेणी में आँक रहे थे पर कुँवर साहब इसमें भी सफल हुये, भले ही डॉ. काटजू फिर मुख्यमंत्री बनने की अपनी इच्छा छोड़ चुके थे। विन्ध्य क्षेत्र से काँग्रेस में वह अपने गुट में अकेले ही थे। सिर्फ़ कुछ साथी सीधी के गणना में आँके जाते थे। वह अकेले ही संघर्ष करते रहे जबकि पार्टी तथा विधानसभा में उनको कठिन संघर्ष करना पड़ रहा था। पर वह अकेले लड़ते रहे व पार्टी में सर्वोच्च श्रेणी में पहुँचे।

सन् 1962 में वह विधानसभा के लिये काँग्रेस से चुनकर आये। उसी वर्ष चीन का युद्ध शुरू हो गया था। देश की जनता ने सोना व दूसरी किस्म के दान खुलकर दिये। कुँवर साहब ने अपनी सेवायें फौज़ के लिये देने का निर्णय लिया। पर भर्ती के समय शारीरिक परीक्षण में नहीं चुने जा सके। विधि विधान में उससे ऊँचे स्थान इनके लिये रिक्त होने जा रहे थे। उस समय मैं आसाम में कार्यरत था। उन्होंने एक पत्र बहुत ही सुन्दर ढंग से मेरे लिए लिखा था, कि देश की माँग एक बार ही मनुष्य के सामने आती है और उसका जवाब उसके चरित्र का प्रकाशक होता है।

सन् 1965 में भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने (तत्कालीन मुख्यमंत्री) कुँवर साहब को कश्मीर भेजा था। पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र जी कश्मीर के प्रति हमेशा चिन्तित रहते थे मुझसे कई बार उन्होंने कश्मीर की जनता में विकसित जनभावना के बाबत् विस्तृत विश्लेषण करते हुये कहा था कि यह दुर्भाग्य है कि भारत सरकार इस समस्या का सतही तौर से निरीक्षण कर रही है। यह देश का नासूर साबित हो सकता है। उनकी यात्रा में श्रीनगर में आर्मी अधिकारियों के बीच एक भोज में जनरल श्री कलान ने कहा था कि मध्यप्रदेश के मंत्री की सूझबूझ उम्र के अनुसार कहीं ज़्यादा प्रतिबिम्बित होती है। श्रीनगर में कुँवर साहब जवानों से मिले और कई सुविधायें देने की सिफ़ारिश की।

सन् 1967 में चुरहट क्षेत्र के चुनाव में सफलता नहीं मिली व उनके प्रतिद्वन्द्वी स्वर्गीय श्री चन्द्रप्रताप तिवारी (समाजवादी) चुने गये। ख़बर पाते ही मैंने दूरभाष से संपर्क किया। संयोगवश कुँवर साहब से ही सम्पर्क हो गया। वह अपने निवास स्थान सांडा (जिला सीधी) में थे उन्होंने हँस कर मुझे उत्तर दिया कि आप इतने चिन्तित क्यों हैं। हार और जीत एक सिक्के के दो पहलू हैं। वह मुझे अपनी पराजय के कारण ज़रा भी चिन्तित मालूम नहीं पड़े। जून 1967 में पुन: विधानसभा क्षेत्र उमरिया से काँग्रेस प्रत्याशी के रूप में चुनकर आये और पं. द्वारिकाप्रसादजी के मंत्रिमंडल में

मंत्री हुये। जुलाई 1967 में पं. द्वारिकाप्रसाद की सरकार गिर गई और ठाकुर गोविन्द नारायणसिंह के नेतृत्व में संविद शासन का गठन किया गया।

इस समय देश में राजनैतिक चक्रवात की उबाल थी, कई जगह संविद सरकारें बनीं। 1969 में संविद सरकार का पतन हुआ और पुनः काँग्रेस की सरकार बनी। इस पूरी भूमिका में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से कुँवर साहब का बहुत बड़ा योगदान था। जब उनका नाम श्री श्यामाचरण शुक्ल के मंत्रिमंडल में नहीं आया तब मुझे आश्चर्य हुआ और तुरन्त मिलने गया। कुँवर साहब ने कहा कि आप तो ईश्वरवाद पर ज़्यादा विश्वास करते हैं। भगवान जो कुछ करता है वह अच्छे के लिये ही करता है और मुझे माउत्से तुंग (चीन) की एक कहानी सुनायी। बाद में वह श्री प्रकाशचन्द्र सेठी के मंत्रिमंडल में मंत्री बने।

सन् 1975 में आपात्काल के समय कई मुद्दों पर श्री सेठीजी की राय से वह सहमत नहीं थे पर यह कभी ज़ाहिर नहीं होने दिया। सन् 1977 में काँग्रेस की सरकार गिर गई व कुँवर साहब विपक्ष के नेता चुने गये। उनके संघर्ष का यह अत्यधिक चुनौतीपूर्ण समय रहा है। उन्होंने पूरे प्रान्त का सघन दौरा किया। उन्होंने आमरण अनशन, क्षेत्र में सूखा पीड़ितों की स्थिति सुधारने के लिये, जनता सरकार के ख़िलाफ़ विरोध स्वरूप प्रारंभ किये। भूख़ हड़ताल के समय जब मैं उनसे मिलने अस्पताल गया उस समय उनकी हालत काफ़ी नाज़ुक बतायी जाती थी। बाद में वह अपने प्रयास में सफल हुये और सरकार ने राहत देने का वायदा किया।

श्रीमती इंदिरा गाँधी की गिरफ़्तारी के बाद उन्होंने कई जगह आन्दोलन किया था मुझे सिर्फ़ जबलपुर संभाग की जानकारी है। क्योंकि मैं उस समय जबलपुर में डी.आई.जी. के पद पर कार्यरत था। जहाँ भारी जन समूह उनके नेतृत्व में उमड़ पड़ा था हालांकि इनको परासिया में एक दिन की सज़ा आज्ञा उल्लंघन करने के लिये अदालत द्वारा सुनाई गई थी। स्थानीय जनता पार्टी ने यह आरोप लगाया कि काँग्रेस के साथ नरमी बरती गई है मेरा स्थानान्तरण हैवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड राँची के लिये सुरक्षा अधिकारी के पद पर कर दिया गया था एवं कई अधिकारियों का भी तुरन्त स्थानान्तर किया गया पर अगर कुँवर साहब का नेतृत्व न होता तो हिंसा की अनेक घटनायें होतीं और पुलिस को गोली चलाना अनिवार्य हो जाता।

सन् 1980 में पुनः काँग्रेस सत्ता में आई और कुँवर साहब मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने। कुँवर साहब जब मुख्यमंत्री आसीन हुये तब मध्यप्रदेश राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था बीमारी की हालत में थी। उस समय मैं डी.आई.जी. रेलवे, भोपाल एवं गुप्तचर विभाग, भोपाल में कार्यरत था। शासनतंत्र चरमरा गया था पुलिस बल में भी आंदोलन चल रहा था। ग्वालियर संभाग एवं रीवा संभाग में डकैती की संख्या असीमित एवं चरम सीमा पर चढ़ रही थी। ग्वालियर के मेले में पुलिस और जनता के बीच संघर्ष हुआ। जनता के लोग घायल हुये एवं एक व्यक्ति जल कर मर गया। व्यापक जन आंदोलन किया गया और पुलिस के विरुद्ध कार्रवाई करना ज़रूरी हो गया। जबकि पुलिस संघ काफ़ी उग्र रूप में था कोई कार्रवाई संभावना से परे दिखाई पड़ती थी। उस समय कुँवर साहब द्वारा पुलिस संघ समाप्त करने का निर्णय लिया गया। बाहर से अर्द्धसैनिक बल बुलाकर ग्वालियर, इंदौर, जबलपुर, भोपाल, रायपुर, सागर, रीवा के शस्त्रागारों की सुरक्षा मज़बूत की गई और रातों-रात अनुशासनहीन पुलिस कर्मियों को गिरफ़्तार कर उनके विरुद्ध आपराधिक प्रकरण पंजीबद्ध किये गये व कई पुलिस कर्मियों को सेवा से भी पृथक् किया गया। पुलिस अराजपत्रित कर्मचारी संघ की मान्यता समाप्त कर दी गई। दूसरी तरफ़ उन्होंने पुलिस को अच्छे वेतनमान, योग्य हाउसिंग और बहुत-सी अन्य कल्याणकारी योजनायें प्रदान कीं जिससे पुलिस का मनोबल फिर से कायम हुआ। दूसरी विकराल समस्या डकैती की थी जिसके लिये भी उन्होंने निर्णायक क़दम उठाया। सभी राजनैतिक दलों को विश्वास में लेकर औपचारिक

एवं अनौपचारिक साधनों से एक ठोस नीति निर्धारित की व डकैतों का साथ देने वालों के ख़िलाफ़ एक नया अध्यादेश राज्य में लागू किये जाने का प्रावधान किया जो भारतवर्ष में डकैतों के ख़िलाफ़ पहला अध्यादेश था। इसके बाद अन्य राज्यों में आया। साथ ही कुँवर साहब ने डकैतों को गिरफ़्तार कराने पर दी जाने वाली पुरस्कार राशि में भी वृद्धि की जो एक लाख रुपये तक किया जाना घोषित किया गया। परिणामस्वरूप अधिकांश डकैतों द्वारा आत्मसमर्पण किया गया। जिसमें डकैत मलखानसिंह का आत्मसमर्पण सबसे महत्वपूर्ण था। इसी धारा में डकैत फूलनदेवी भी बीहड़ों को छोड़कर आत्मसमर्पण के लिये उत्तरप्रदेश से मध्यप्रदेश आई। उनके मुख्यमंत्रित्व काल में राज्य की क़ानून व्यवस्था की स्थिति में अत्यधिक सुधार हुआ।

तीसरा कार्य उन्होंने राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को सुधारने का किया जिसमें प्रत्येक क्षेत्र में काम, सचिवालय तथा सम्बद्ध विभागों का निरीक्षण प्रारंभ कर अधिकारियों और मंत्रियों को उचित प्रोत्साहन दिया। साथ ही त्रुटियों के लिये मंत्रियों व अधिकारियों के ख़िलाफ़ लंबित प्रकरणों में निर्णायक आदेश ज़ारी किये। यहाँ तक कि उन्होंने उच्च पदस्थ अधिकारियों को भी अकुशलता के लिये प्रताड़ित करने का संकल्प लिया। इससे पूरे राज्य शासन तंत्र में उनकी एक अच्छे प्रशासक के रूप में छवि उभर कर सामने आई। उसी समय चौधरी वेतन आयोग की सिफ़ारिशों को नियोजित एवं सुव्यवस्थित ढंग से लागू किया। आई.ए.एस. एवं आई.पी.एस. के अधिकारियों का काडर रिव्यू कर तथा जन प्रतिनिधियों को शासन में ज़्यादा से ज़्यादा भागीदार बनाया जाना, योग्य अधिकारियों को इनका सलाहकार नियुक्त करना आदि शामिल है। उनकी सबसे बड़ी ताक़त उनकी स्मरण-शक्ति है। छोटे-छोटे मसले भी उनकी याददाश्त से ओझल नहीं होते। कई बार ऐसे अवसर आये कि उनकी याददाश्त से ही अधिकारीगण काफ़ी प्रभावित होते थे। समय का सही इस्तेमाल, परिणामजनित समयबद्ध कार्यशैली से वह अच्छे प्रशासक के रूप में शीघ्र ही अपने विभाग में आदर के पात्र बन जाते हैं। प्रशासन तंत्र में एक समग्र विकास का वातावरण तैयार किया विशेषकर आदिवासी क्षेत्र में जहाँ आँचलिक समस्याओं पर विशेष ध्यान केंद्रित किया। मंत्रिमंडल की कई बैठकें उसी क्षेत्र में हुई और महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये। सन् 1982 में जब मैं दिल्ली में प्रतिनियुक्ति पर था एक उच्चतम पुलिस अधिकारी ने मध्यप्रदेश की व्याख्या करते हुए मुझसे कहा था कि "There is only one Administratively Effective Chief Minister and he is Mr. Arjunsingh"

सफ़लता हो या असफ़लता यह उन्हें प्रभावित नहीं करती यदि कार्य करने की प्रणाली संतुलित एवं स्पष्ट है। यह मुझे पुलिस आंदोलन, किसान आंदोलन, महू में साम्प्रदायिक दंगे, छात्र आंदोलन, भोपाल की मूर्ति स्थापना का आंदोलन, राज्य में सूखे के प्रभाव की प्रतिक्रिया के समय देखने का अवसर प्राप्त हुआ। वह प्रत्येक ज़िले की व्यक्तिगत जानकारी रखते थे। छतरपुर की घटना पुलिस द्वारा भीड़ पर गोली चलाने की घटित हुई थी। उसकी ख़बर सिर्फ़! उन्हें पहले लगी थी जबकि किसी प्रशासनतंत्र को भोपाल में इसकी सूचना नहीं मिली। यह उनकी जागरूकता का परिचायक है।

सन् 1985 में मुझे उनके साथ पंजाब में, जब वे राज्यपाल नियुक्त किये गये थे, कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ था। उनका साहस एवं समयानुसार निर्णय लेने की पैनी बुद्धि बहुत ही उपयुक्त साबित होती है। कई अवसर आये जबकि वह अकेले ही पुलिस कार में बैठकर राज्यपाल का पूरा कामधाम छोड़कर, देर रात तक लोगों से चण्डीगढ़ व सुदूर गाँवों में जा-जाकर मिले व सुबह प्रधानमंत्री से दिल्ली में जाकर मिलने के बाद 11 बजे पुनः चण्डीगढ़ वापस आकर अपने कार्यालय में कार्य किये। उनके स्टाफ़ को उनके कार्यक्रम का कोई भी आभास नहीं हो पाता था। ख़तरे की परवाह न करते हुये वह अपने मार्ग में अग्रसर होते रहे।

संत लोंगोवाल को भारत शासन के प्रति विश्वस्त कराने में उनकी अहम एवं अद्वितीय भूमिका रही। पहले यह कार्य असंभव प्रतीत होता था पर अर्जुनसिंहजी के अथक् प्रयास से यह कार्य संभव हो सका। पंजाब में चुनाव के समय वह रात-दिन पंजाब क्षेत्र में घूम-घूम कर छोटी से छोटी जगहों में भी अपनी मौज़ूदगी एवं संकल्प प्रदर्शित करते रहे। जिससे पंजाब में शांतिपूर्ण ढंग से चुनाव सम्पन्न हुये। संत लोंगोवाल की मृत्यु के बाद घटनाचक्र की घड़ी उलटी घूम गई और पंजाब के हालात फिर बिगड़ने लगे। अन्ततः दुबारा राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा। पंजाब के लोग आज भी कुँवर अर्जुनसिंहजी के प्रति बहुत ही सम्मान एवं विश्वास रखते हैं। दिल्ली चुनाव में सिक्खों एवं अन्य समुदायों के लोगों द्वारा दिल्ली आकर अर्जुनसिंहजी की काफ़ी मदद की, परिणामस्वरूप दक्षिण दिल्ली जो सिक्ख बाहुल्य क्षेत्र है से भी वे निर्वाचित होकर संसद में गये व केंद्र शासन में वाणिज्य मंत्री बनाये गये।

उनके द्वारा सर्वधर्म सम्मान करने की कई घटनायें भी मुझे याद हैं। जब उनकी पत्नी के निर्णायक ऑपरेशन की समस्या थी उस समय उन्होंने इलाहाबाद में चर्च में जाकर प्रार्थना की थी। एक दो बार और भी उन्हें उस चर्च में प्रार्थना करते हुये मैंने देखा था। भोपाल में जब मूर्ति स्थापना के पक्ष और विपक्ष में झगड़े खड़े हुए तब भोपाल के शहर काज़ी को उन्होंने प्रत्येक निर्णय में शामिल किया। काज़ी जी को मुख्यमंत्री से संपर्क करने में कोई समय एवं रुकावट नहीं होती थी। वे उनसे सीधे सम्पर्क कर सकते थे। इसी तरह वह हिन्दू धर्म के हर एक धाम में यात्रा करने गये थे और अजमेर शरीफ़ की कई बार यात्रा की। पंजाब में क़रीबन-क़रीबन सभी गुरुद्वारों में गये व व्यास संस्थान में एक पर्व में भाग लिया था। कर्मनिष्ठा, वांछनीय, मिलनसारी हर एक समय समस्याओं के प्रति जागरूकता तथा अपने लक्ष्यों के प्रति हरक्षण सजग रहना, अपने उपलब्ध समय के प्रतिक्षण का सदुपयोग व समाजोपयोगी व्यवहार प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय हैं। राजनैतिक प्रपंच का सामयिक तथा अतीत का मूल्याँकन हर एक घटनाक्रम का उनके उद्देश्यों के प्रति सामंजस्य और भविष्य में उनके प्रतिफल आदि गुणों से उन्हें उत्तरोत्तर सफलता मिलती गई।

सन् 1991 के कठिन बीमारी के पहले भी देश-विदेश की सामयिक घटना चक्र से जागरूक रहते थे। पठन-पाठन का शौक असाधारण है। अत्यन्त व्यस्त रहने पर भी वह कई क़िताबें एक साथ पढ़ते रहते हैं और नवीनतम ज्ञान अर्जित करते रहते हैं। मैंने अपने कार्यकाल में ज्ञान और कर्म का सामंजस्य अर्जुनसिंहजी के व्यक्तित्व में सजीव देखा है। वैसे सबसे महत्वपूर्ण जीवन काल उनका 1985 से शुरू हुआ है पर मैं सेवानिवृत्ति के बाद रीवा में रहता हूँ और भोपाल व दिल्ली की हलचल, दूर होने के कारण कम सुनाई पड़ती है। सम्पर्क भी बहुत कम हो गया है। इससे इधर की घटनाओं के बारे में पूर्ण ज्ञान नहीं है। पर इनकी कार्यशैली अभी भी वही प्रतीत होती है जो पूर्व में थी।

☐ *शिवमोहन सिंह— श्री अर्जुनसिंह के चचिया श्वसुर।*

श्री अर्जुनसिंह

रण बहादुरसिंह
(श्री अर्जुनसिंह के बड़े भाई)

महाभारत के पात्र अर्जुन की तरह श्री अर्जुनसिंह से यदि कोई पूछे कि तुम्हे लक्ष्य में क्या दिखाई पड़ रहा है तो जहाँ महाभारत के अर्जुन को न पेड़ दिखता था, न डाल, न पत्ती, न पक्षी। उसे दिख रही थी केवल पक्षी की दाई आँख की पुतली। उसी प्रकार इन्हें बहुत पहले से लक्ष्य के रूप में दिखता रहा है राजनैतिक क्षेत्र में उत्कृष्टता। जैसे अर्जुन की आँख लक्ष्य पर लगी थी वैसे ही इनकी भी लक्ष्यपूर्ति इन्हीं के सर्व-भावेन समर्पण से होगी।

राजनीति में उत्कृष्टता आज के भी नैतिक वस्तु-स्थिति में दुर्गुणों से नहीं — गुणों से ही मिला करती है। इनमें वही आज के दुर्लभ गुणों में से पर्याप्त गुण, इनकी राजनैतिक सफलता के कारण हैं।

इन गुणों में से प्रमुख गुण है कि जो भी इनसे किसी प्रकार की सहायता माँगने पहुँचता है उसकी यथा संभव सहायता करने की इनकी इच्छा दिखावा नहीं होती। अत: जिसका भी इन्होंने इस प्रकार का भला किया है वह इनसे सदैव के लिये जुड़ जाता है। कृतज्ञ, हितैषी एक विशाल जनसमूह के धनी यह अपने इसी गुण द्वारा हो चुके हैं।

आज का राजनैतिक नेतृत्व केवल ऐसे धन मात्र से उत्कृष्टता नहीं प्राप्त कर सकता। हृदय की विशालता मात्र सहायक नहीं होती। बुद्धि की हर प्रकार की सक्षमता के बिना सफलता की ऊँचाइयाँ नहीं छुई जा सकतीं। इस दृष्टि से भी इनमें पर्याप्त सामर्थ्य है। यह सामर्थ्य इन्होंने दो प्रकार से अर्जित किया है। हर प्रकार की पुस्तकें पढ़ने की इनकी रुचि ने इन्हें राजनैतिक-सामाजिक तथा व्यवहारिक प्रबुद्धता दी है। तथा साथ-साथ राजनैतिक सीढ़ी के प्रथम सतही स्तर से अनुभव प्राप्त करते हुये अपने आज के स्थान पर पहुँचते-पहुँचते इनकी राजनैतिक दृष्टि में ज़मीन से आसमान तक की व्यापकता आती गई है।

राजनीति के एक अंग्रेज़ विचारक ने बहुत पहले लिखा था कि जनतांत्रिक व्यवस्था में राजनैतिक नेतृत्व के स्वरूप का निर्माण मतदाता करता है। आज के भारतीय जनतंत्र के इस शैशवास्था के काल में मतदाता की सामूहिक बाल बुद्धि इसी सिद्धांत के अनुरूप आज के नेतृत्व पर भी थोथी शिल्पक्रिया करती रहती है। इन पंक्तियों के माध्यम से एक ऐसे व्यक्तित्व का अभिनन्दन है जो संभवत: उस काल तक नेतृत्व करके इस प्रदेश को गौरव दिलाता रहेगा जब तक कि यह थोथी शिल्पक्रिया प्रौढ़ता प्राप्त करके उत्कृष्ट वंदनीय मूर्ति नही बनाने लगेगी।

☐ *रणबहादुर सिंह— श्री अर्जुनसिंहजी के ज्येष्ठ भ्राता।*

कामना करता हूँ कि उनका भविष्य उज्ज्वल हो

डॉ. सज्जनसिंह
(श्री अर्जुनसिंह के छोटे भाई)

अर्जुनसिंहजी मेरे अग्रज हैं। अत: बाल्यकाल से लेकर अब तक कई यादें मेरे साथ जुड़ी हुई हैं। कई यादें अच्छी भी हैं और कई बुरी भी। हम बचपन में साथ-साथ पढ़े और ऐसे में कई बार हम लड़ते भी थे, काफ़ी खेला-कूदा भी। हमारा प्रेम सदैव अक्षुण्ण रहा। अर्जुनसिंहजी प्रारंभ से ही मेधावी थे, अध्ययन के साथ-साथ सामाजिक कार्यक्रमों में काफ़ी रुचि लेते थे। कॉलेज के इलेक्शन्स में काफ़ी रुचि लेते थे। कॉलेज में वे कला, साहित्य के क्षेत्र में अपनी ख़ासी पहचान बना चुके थे। जब कभी हमारे स्कूल में कोई कार्यक्रम होता था, उसमें जिस तरह से ये भाग लेते थे और दूसरे लोगों के भाग लेने में काफ़ी भिन्नता थी। इनका भाग लेना जो था वह कुछ परम्परागत गति से हटकर था। उदाहरण के लिए ये समझें कि अगर कोई डिबेट कॉम्पीटिशन हुआ उसमें जो परम्परागत तरीक़ा होता था उससे वे कुछ भिन्नता अवश्य लाते थे। सरस्वती पूजन का एक दृश्य मुझे याद है सबने सरस्वती पूजन किया और जैसे कि प्रसाद वितरण होता ही है किया गया, किन्तु इनके भाव में प्रसाद की अवधारणा जो थी वह यह कि हम बौद्धिक प्रसाद अधिक प्राप्त करें न कि लड्डू या मिठाइयाँ। उनके इस व्यवहार का प्रभाव न केवल विद्यार्थियों पर अपितु अध्यापकों तक पर पड़ता था और वे अर्जुनसिंहजी को चाहते थे, स्नेह करते थे।

विन्ध्यप्रदेश के विकास की अगर हम चर्चा करें तो यहाँ जो कुछ भी विकास हुआ है, जो भी कुछ ठोस कार्य हुआ है, मैं समझता हूँ उन्हीं के माध्यम से हुआ है। यद्यपि विंध्य के विकास में अन्य लोगों की भी भूमिका रही किन्तु अर्जुनसिंहजी का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

अर्जुनसिंहजी ने जहाँ तक हो सका सबकी भलाई का प्रयास किया है। जानबूझकर किसी को दु:ख नहीं पहुँचाया। उन पर समय-समय पर नाना प्रकार के आरोप लगाए जाते रहे हैं, यह सुनकर हम परिवारजनों को बुरा लगता है, लेकिन ये आरोप कितने सत्य हैं तथा कितने झूठ, ये तो ईश्वर ही जानता है। उनका व्यक्तित्व बहुत ऊँचा है, हम तो बहुत छोटे हैं और इस परिप्रेक्ष्य में कोई ख़ास टिप्पणी नहीं कर सकते। उनके प्रति यहाँ विंध्यवासियों की राय तो बहुत अच्छी है और वे सभी जानते हैं कि यहाँ की प्रगति उन्हीं के प्रयासों से हुई है। आज यहाँ की जो प्रगति रुकी हुई है उसमें उनकी अनुपस्थिति एक महत्वपूर्ण कारण है।

विंध्यप्रदेश में शिक्षा के विकास में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। जब वे शिक्षामंत्री थे तब भी और जब वे मुख्यमंत्री हुए तब भी उन्होंने शिक्षा के प्रसार के क्षेत्र में काफ़ी काम किया। तमाम शैक्षणिक संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया, अनुदान दिये, नई संस्थाओं की स्थापना की। चिकित्सा सुविधाओं को मुहैया कराने में भी अर्जुनसिंहजी ने महत्वपूर्ण प्रयास किये। तथापि उनके ये सारे सकारात्मक प्रयास अपूर्ण ही रह गए। इस क्षेत्र की अजीब हालत है कि जब भी कोई सकारात्मक कार्य कोई व्यक्ति करता है तो उसे सहायता देने की बजाए उसकी टाँग खींची जाती है। इसीलिए

मैं समझता हूँ कि यहाँ के काम रुके हैं, सो रुके ही हैं।

वे पहले जब भी रीवा आते थे तब हमारे घर पर ही रुकते थे। शाम को चाय के वक़्त या फिर खाने पर काफ़ी रोचक बातचीत होती थी। खेलकूद के बारे में, शिकार के बारे में, चर्चाएँ होती थीं। हमारे परिवार में काफ़ी हँसी- ख़ुशी का माहौल बना रहता था।

मैं कामना करता हूँ कि उनका भविष्य और उज्ज्वल हो। वे स्वस्थ रहें। उनके जो कर्तव्य देश के प्रति हैं उनके निर्वहन में वे पूर्णत: सफल हों।

☐ *डॉ. सज्जनसिंह— श्री अर्जुनसिंह के छोटे भ्राता।*

मुझे गर्व है कि वे मेरे पिता हैं

श्रीमती वीणासिंह
(श्री अर्जुनसिंह की पुत्री)

मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री, पंजाब के पूर्व राज्यपाल, काँग्रेस के पूर्व उपाध्यक्ष और वाणिज्य तथा संचार के बाद अब मानव संसाधन विकास विभाग के मंत्री श्री अर्जुनसिंह मेरे आदरणीय पिता हैं और मैं यह तो नहीं कहना चाहूँगी कि "मुझे इस बात का गर्व है कि मैं उनकी पुत्री हूँ", किन्तु नि:संदेह मैं यह कहना चाहती हूँ कि "मुझे इस बात का गर्व है कि वे मेरे पिता है।"

हम तीन भाई-बहन है। एक मेरे बड़े भाई अभिमन्युसिंह हैं, जिन्हें घर में हम दीपू कहकर पुकारते हैं और छोटे भाई अजयसिंह को घर ही नहीं– बाहर भी, लोग राहुल के नाम से जानते हैं। हम तीनों भाई-बहन अपने पिता को प्यार और आदर से दाऊ साहब और कभी-कभी दाऊ सम्बोधन से पुकारते हैं। पिता के प्रति यह आदरणीय नाम विंध्यप्रदेश की सांस्कृतिक और पारंपरिक परम्परा का प्रतीक है। हमारे दाऊ साहब के साथ ही हम तीनों भाई-बहनों की शिक्षा-दीक्षा भी बोर्डिंग हाउस वाले कॉन्वेन्ट स्कूल में हुई है, किन्तु रहन-सहन, खान-पान और पारिवारिक चर्चा और व्यवहार में हम सब न केवल विशुद्ध भारतीय हैं, वरन् हमें इस बात का भी गर्व है कि हम अपनों के बीच बघेलखंडी में, जिसे कुछ लोग 'रिम्हाई' भी कहते हैं, बात करते हैं। दाऊ साहब भी घर-परिवार में हम सबसे, स्नेहीजनों से और मध्यप्रदेश के रीवा संभाग के नागरिकों से न केवल 'रिम्हाई' या बघेलखंडी में बातचीत करना पसंद करते हैं, वरन् यदा-कदा, यथा आवश्यकता वे छोटे-बड़े समारोहों में बघेलखंडी भाषा में भाषण भी देते रहे हैं। अपनी भाषा में बतियाना और उसमें डूब कर अपनत्व का आनन्द लेना हमने मम्मा साहब और दाऊ साहब से ही सीखा है।

आप मुझसे यदि कोई स्मरणीय घटना पूछना चाहते हैं तो ऐसा कोई विशेष तो नहीं है जो चिरस्मरणीय हो, किन्तु दाऊ साहब का प्रत्येक हाव-भाव, क्रिया-कलाप, चिंतन-मनन, कार्य-व्यवहार, अध्ययन-अवलोकन यानी जो कुछ मैंने देखा, परखा, समझा बूझा है, उसके अनुसार उनके व्यक्तित्व के रोम-रोम में एक विशिष्टता है और वह विशिष्टता ही उन्हें अन्य साधारणजनों और मैं तो यहाँ तक कहना चाहूँगी कि हमारे परिवार के सदस्यों से भी एक अलग पहचान बनाती है। मेरी अपनी मान्यता है कि मैं उन्हें अपने दृष्टि संसार में मानव के रूप में सर्वश्रेष्ठ फ्रेन्ड, फिलासफ़र और गाईड मानती हूँ। मैं जो किसी से नहीं करा सकती हूँ, वह मैं अपने पिता से करा सकती हूँ। यह जाने कैसा आत्मविश्वास बचपन से ही मुझमें रहा है। वे मेरे मार्गदर्शक भी हैं और आदर्श भी। मुझे उनसे इतना प्यार, आदर, स्नेह और विशेषकर आत्मविश्वास मिला है कि मुझे लगता है कि यदि वे मेरे सामने या स्मृति में नहीं हैं तो मैं कुछ भी नहीं हूँ। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं अपने अस्तित्व बोध से अनभिज्ञ हूँ या मेरा कोई अस्तित्व नहीं है। मेरा अपना व्यक्तित्व है और उसके प्रति अडिग आत्म विश्वास के साथ मैं आश्वस्त हूँ। मेरी इस आश्वस्ति की भावना को बल देने में मेरे पिताजी के व्यक्तित्व की प्रेरणा मूल रूप से है। ऐसा क्यों है, यह तो मैं नहीं कह सकती, किन्तु इतना निश्चित है

कि इस अवधारणा की जड़ें मेरे बचपन से जुड़ी हुई है।

जब मैं 5 वर्ष की थी, तब इलाहाबाद कॉन्वेंट स्कूल के बोर्डिंग हाउस में मेरा एडमीशन करा दिया गया था। जहाँ तक याद है संभवत: 6-7 वर्ष की आयु में मैंने पत्र लिखना आरंभ कर दिया था। मैं नियमित रूप से परिवार के अन्य सदस्यों के साथ ही विशेष कर दाऊ साहब को पत्र लिखती रहती। उन दिनों वे इतनी यात्रा करते थे कि यदा-कदा महीने में एक बार ही उनका पत्र आ पाता था और कभी-कभी तो एक के बजाय 2 महीने में पत्र मिलता था। लेकिन जब कभी भी दाऊ साहब का पत्र प्राप्त होता था तो मुझे कुबेर के खज़ाने मिलने से भी अधिक खुशी अनुभव होती थी। मम्मा साहब और दाऊ साहब औसतन प्रत्येक माह मुझसे मिलने बोर्डिंग हाउस आया करते थे। अनेक विषयों की बातचीत के दौरान मैं बराबर सावधानी से इस बात और मौक़े की तलाश में रहती थी कि किसी प्रकार मम्मा साहब का ध्यान इधर-उधर हो जाये तो दाऊ से 1-2 मिनट अलग से बात करने का मौक़ा मिल सके। इस मौक़े को पाने का रहस्य जो मैंने आज तक किसी को नहीं बताया, वह आज प्रकट कर रही हूँ, और वह भी इसलिये क्योंकि आज जब एक विशाल स्तर पर मेरे पिता– मेरे दाऊ साहब श्री अर्जुनसिंह पर एक विशाल अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है और उसमें पूरे देश के विभिन्न क्षेत्रों के महान मनीषी अपने संस्मरण और विचार प्रकट कर रहे हैं तो मैं चाहती हूँ कि मेरे मन में दाऊ साहब की जो इमेज़ है, जो मेरी कल्पना है, जो मेरी अनुभूति है, जो मैं सोचती हूँ, जो मैं समझती हूँ, उसे खुलकर व्यक्त करना चाहिये। इसी भावना से मैं यह रहस्य बताती हूँ कि दाऊ साहब से कुछ पल को अलग से मिलने या बात करने के बालपन की भावना का रहस्य यह है कि मुझे उनसे कुछ अलग से पॉकेटमनी मिल जाती थी। ऐसा नहीं है कि मम्मा साहब मेरे प्रति उदार नहीं है या कम प्यार करती है या उनने कभी इंकार किया हो; लेकिन इतना ज़रूर है कि मैं जब उनसे एडीशनल पॉकेट मनी माँगती तो सीख देने या मितव्ययी बनने की भावना से अथवा बेटी को सिखाने के दायित्वबोध के कारण मम्मा साहब यह ज़रूर पूछती थीं, क्या काम है, इतने पैसों का क्या करोगी, पिछली बार जो पॉकेटमनी दी थी, उसका क्या हुआ। जब कि दाऊ साहब बग़ैर कुछ पूछे मुस्कुराते हुये मुझे मनोवांछित पॉकेटमनी चुपचाप दे दिया करते थे। मुझे पता नहीं दाऊ साहब घर जाकर मम्मा साहब को बताते थे अथवा नहीं और न मैंने कभी इस बारे में जानने की कोशिश की। मैं आठवीं कक्षा तक इलाहाबाद के बोर्डिंग हाउस में रही, इसलिये अधिकांश समय जो बाल अवस्था का था, वह तो बोर्डिंग हाउस में ही बीता। लेकिन आठवीं पास करने के बाद 1964 के आस-पास मैं भोपाल आ गई थी। उस समय दाऊ साहब पंडित डी.पी. मिश्र के मंत्रिमंडल में कृषि राज्यमंत्री थे। उस समय वे पहली बार मंत्री बने थे और हम तीनों भाई-बहनों को भी, जिनकी आयु 10 से 15 वर्ष के बीच में थी, अपने माता-पिता के साथ एक साथ रहने का मौक़ा मिला था, इसलिये हम लोग एक पल के लिये भी अपने माता-पिता के सानिध्य से दूर नहीं रह पाते थे। वैसे 9 माह होस्टल में और 3 माह हम लोगों के घर-परिवार में बीतते थे। हम यह अनुभव करते थे कि माँ हमारे साथ कुछ सख़्त हैं और पिताजी भी सख़्त होते हुये भी उदार हैं। कुछ ऐसी ही ग़लतफ़हमी हम लोगों के बाल मानस में बनी हुई थी, जबकि अब मैं समझती हूँ कि दोनों ही हम तीनों भाई-बहनों के लिये वह सब कुछ करने को तैयार रहते थे, जिसमें हम ख़ुश रहें या ख़ुशी का अनुभव कर सकें। जो उचित नहीं है या जो कुछ बड़ों की नज़र में अनुचित होता है, उसके लिये अवश्य दोनों ही मना करते थे। पर जहाँ तक मुझे याद है दाऊ साहब ने कभी मुझसे किसी भी बात के लिये न नहीं कहा।

यह सही है कि दाऊ साहब राजनीति में आने से पहले कुछ अन्य क्षेत्रों में सक्रिय होने को उत्सुक थे। मुझे मम्मा साहब और परिवारजनों से भी पता चला कि कभी उन्होंने फिल्म में जाने का भी सोचा था, पत्रकार या वकील बनने की भी उनकी चाह थी। किन्तु नियति या परिस्थिति जो भी कहें, वे राजनीति में सक्रिय हुये और आज जहाँ

भी, जिस मुक़ाम पर भी है, वह उनकी राजनीति की सफलता का परिचायक है। जहाँ तक उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं और कमियों का (माइनस और प्लस प्वाइंट का) प्रश्न है, मैं तो यही समझती हूँ कि उनका सबसे बड़ा प्लस प्वाइंट नेतृत्व करने की क्षमता है। मेरी मान्यता है कि राजनीति में आकर उन्होंने ग़लती नहीं की।

देश के जो हालात आज हैं, जिस तरह की परिस्थितियाँ हैं, एक बुद्धिजीवी होने के नाते कभी-कभी मैं भी चिन्ता और आशंका के बादलों से घिर जाती हूँ। विगत एक दशाब्दी में राष्ट्रीय भावना, सामाजिक मूल्य, धार्मिक परम्परा और यहाँ तक कि हमारी सभ्यता और संस्कृति की धरोहर के प्रति उपेक्षावृत्ति की भावना में जितनी गिरावट आई है, वह चिंतनीय है। मैं कभी-कभी सोचती हूँ कि मेरे पिता जैसे आज और भी कुछ लोग होते तो देश में, हर प्रदेश में निश्चय ही देश की दिशा और दशा कुछ और होती। उनमें नीति, सिद्धान्तों और आदर्शों के प्रति वचनबद्धता और समर्पण भावना, निष्ठापूर्ण कर्तव्यपरायणता—आई मीन टू से ए टोटल डेडीकेशन एण्ड डिवोशन टू दि प्रिंसपल्स एण्ड पॉलीटिक्स. आई मीन ए कम्प्लीट डेडीकेटेड एफर्ट एण्ड स्ट्रगल टू एचीव द् गोल। जैसे देश को अखण्ड बनाये रखने की भावना दुनिया के नक़्शे पर हिन्दुस्तान का नाम रोशन करने, समाज के कमज़ोर वर्ग, पिछड़े वर्ग, हरिजन आदिवासियों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने की ललक, देश के नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना जगाने की अभिलाषा और इस सबसे ऊपर उठकर स्वयं को हर पल समाज की टोटल प्रोग्रेस के लिये डिवोट करने की उनकी स्प्रिट आज बहुत कम लोगों में दिखाई देती है। मुझे राजनीति से कोई लेना-देना नहीं है लेकिन मैं इन्डिपेन्डेंट इंडिया की रिसपांसबिल सिटीजन हूँ एण्ड बीइंग ए सिटीजन आई एम वेरी मच कॉशस एबाउट माई ड्यूटी एण्ड रिसपांसबिलिटी टूवर्डस माई कन्ट्री। मैं अँगुलियों पर तो नहीं गिना सकती, पर जो कुछ मैंने अख़बारों में और मैगज़ीन्स में पढ़ा है, उससे इतना ज़रूर कह सकती हूँ कि उन्होंने मुख्यमंत्री के रूप में मध्यप्रदेश की तस्वीर और ग़रीबों की तक़दीर बनाने और बदलने के लिये बहुत कुछ किया है। जंगल के बीच खुले आसमान के नीचे रहने वाले वनवासियों और आदिवासियों के लिये उन्होंने तेंदूपत्ते के व्यापार का जो राष्ट्रीयकरण किया, वह एक चुनौती भरा बड़ा काम था। रियली इट वाज ए ग्रेट चैलेन्ज अगेन्स्ट दि सोशल एक्सप्लायटर्स। लेकिन वे इसमें सफल रहे और आज प्रदेश के लाखों आदिवासियों को न सिर्फ़ तेंदूपत्ते तोड़ने की मज़दूरी पहले से 10-15 गुना अधिक मिल रही है, बल्कि उन्हें कुछ सौ करोड़ रुपयों में से कुछ करोड़ रुपये बोनस के रूप में बाँटे जा चुके हैं। हम लोग टीचर्स डे मानते हैं लेकिन रियल लाईफ़ में किसी ने उनके लिए बहुत कुछ किया हो ऐसा मेरे देखने-सुनने में नहीं आया। लेकिन दाऊ साहब ने मध्यप्रदेश के लोअर डिवीज़न टीचर और लोअर डिवीज़न क्लर्क इन दोनों पोस्ट पर काम करने वाले क्लर्क और टीचर्स के बीच के डिफरेन्स को न सिर्फ़ कम किया बल्कि पे-स्केल से भी यह साबित कर दिया कि वे जो कुछ पढ़ते हैं, सोचते हैं, बोलते हैं या करते हैं, उसमें जीवन के आदर्श, मूल्य और समाज के प्रति अपने दायित्व की भावना बराबर बनी रहती है। इनके ही निर्णय से अब मध्यप्रदेश में किसी टीचर को लोअर डिवीजन टीचर नहीं कहा जाता, बल्कि उन्हें सहायक शिक्षक नाम दिया गया है और उनका पे-स्केल भी लोअर डिवीजन क्लर्क से ऊँचा किया जा चुका है। किसी के लिए यह बात बहुत छोटी हो सकती है। मॉनीटरी गेन के गणित से हो सकता है कि टीचर्स को बहुत बड़ा गेन नहीं हुआ हो लेकिन जिस तरह की हिप्पोक्रेसी अपने देश में है, जो दिखावटी लफ़्फ़ाज़ी की जाती है, उसके ख़िलाफ़ टीचर्स को उनकी रेपुटेशन देना और बेटर पे-स्केल देना ये दाऊ साहब के आदर्श चरित्र का एक छोटा सा परिचय है और ऐसी ही छोटी-छोटी बातें हैं, जिसके कारण मैं यह सर उठाकर कहती हूँ कि मुझे इस बात का गर्व है कि वे मेरे पिता हैं।

आज दाऊ साहब अपनी आयु के 74वें दौर में प्रवेश कर रहे हैं। आप देखिये। कितने लोग हैं जो आज इतने स्वस्थ दिखते हैं, इतना काम करते हैं, इतने लोगों से मिलते हैं और सुबह की ताज़गी आधी रात तक बनाये

रखते हैं। जो मुस्कुराहट सुबह है वही दोपहर और शाम को भी दिखाई देती है। लोगों से मिलने और मिलते रहने की कुछ ऐसी चाहत इनके मन में है कि ये सभी से मिलते हैं, चाहे थके हों या बीमार हों। आम तौर पर दाऊ साहब मिलने वालों को निराश नहीं करते। दूसरी बात यह है कि न करना इनके बस की बात नहीं है। कोई भी, कुछ भी, कभी भी इनसे माँग सकता है, देने में दिलदार और दरियादिल बहुत कम ऐसे लोग मिलेंगे। कुछ लोग इसका अनुचित लाभ भी उठाते हैं, उठाते रहे हैं लेकिन इसके लिये वे लोग रिसपांसिबिल हैं दाऊ साहब नहीं, कुछ तो ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने परिचय के कुछ दिनों में ही बहुत लाभ उठाया, बड़ी-बड़ी बातें कीं और फिर मौक़ा देखकर मुकर गये, या दूसरे खेमे में चले गये। लेकिन इन सब से दाऊ साहब के नेचर और वर्किंग में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। जब मैं रिव्यू करती हूँ और सोचती हूँ तो यही सोचकर संतोष करती हूँ कि दाऊ साहब ने यदि किसी को कुछ भी दिया या मेहरबानी की तो यह उनका स्वभाव है और यदि किसी ने इनके साथ छल-प्रपंच किया है, धोखा दिया है, या विश्वासघात किया है तो यह उसका चरित्र है। मैं सबको नहीं जानती और न मैं उनके विषय में ज़्यादा जानना चाहती हूँ।

यह सही है कि जब कभी किसी न्यूज़ पेपर या मैगज़ीन में इनके ख़िलाफ़ पढ़ती हूँ तो मुझे पल भर से ज़्यादा कभी बुरा नहीं लगता और अब तो आदत सी पड़ गई है। इसका सिर्फ़ कारण यह है कि हम उस सच्चाई को जानते हैं जो सच है, केवल सच। लोग चाहे कुछ भी लिखें असलियत नहीं समझते, इसी का हमें दुख होता है। अगर कोई खिलाफ़ लिखने से पहले वह कोई भी व्यक्ति हो, उनसे अगर पूछ ले तो बहुत सी बातों का खुलासा हो सकता है और जो अनावश्यक ग़लतफ़हमी पैदा होती है, उससे बचा जा सकता है। चरित्र हनन को मैं पॉलिटिक्स का सबसे गन्दा हथियार मानती हूँ। पर आज कल की पॉलिटिक्स जो है, जैसी है आप सब लोग ज़्यादा जानते हैं। मैं जितना जानती हूँ उससे मैं यही अनुभव करती हूँ कि जो रास्ता देश और समाज सेवा की ओर जाना चाहिये उस रास्ते पर चलने वाले लोग अनेक दिशाओं में भटक रहे हैं, लेकिन सही रास्ते और सही मंज़िल की ओर चलना ही नहीं चाहते। दाऊ साहब की यही विशेषता है कि उन्होंने अपनी मंज़िल तय कर रखी है, उनका रास्ता साफ़ है और चाहे जैसी कठिनाई, चाहे जैसी परेशानी, चाहे जितना कष्ट हो, वे उस रास्ते पर चलते रहना चाहते हैं और चल रहे हैं। मैं तो यह कह सकती हूँ कि जो लोग राजनीति में हैं वे इसे चाहे जितना छोटा या चाहे जितना बड़ा मानें, जहाँ तक मेरा अपना सवाल है, उनका क़द, उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व इतना महान् है कि और लोग इनके सामने बौने नज़र आते हैं।

सन् 1972 में मेरी शादी हुई और 1978 तक मैं सिंगरौली में रही। इस दौरान मेरा दाऊ साहब से पत्राचार होता रहा। उस समय सिंगरौली में टेलीफोन नहीं था। डाकिया भी 2-3 दिन में एक-आध बार आता था। पत्र मिलने न मिलने की कोई गारंटी नहीं, इसलिये हर हफ़्ते दो बार पत्र-वाहक के जरिये दाऊ साहब मुझे पत्र भेजा करते थे। उनके पत्रों से मुझे प्रेरणा मिली है या जो संस्कार मुझे जन्म और विरासत में मिले हैं, शायद उसी का कारण है कि मुझे कभी किसी से मिलने, बात करने या अपने सत्य को स्वीकारने में कभी भय नहीं लगता। मैं पहली बार जब इंदिराजी से मिली थी, तब शायद मेरी उम्र बारह वर्ष के आस-पास थी। यह उम्र छोटी ही मानी जाती है। उस समय इंदिराजी सूचनामंत्री थीं। वे रीवा पैलेस में आयीं थीं। सभी जानते थे कि पी.एम. की बेटी हैं। उनके पिता नेहरूजी का बड़ा नाम था। हम सब बच्चे चाचा नेहरू जिन्दाबाद के नारे लगाते थे। इंदिराजी के सामने मैंने देखा कि सभी लोग डरे-डरे, सहमे से थे। कुछ लोग तो ज़रूरत से ज़्यादा चापलूसी कर रहे थे। लेकिन जब मैं उनसे मिली तो मुझे कुछ भी अनयूजुअल फील नहीं हुआ। एक सैकेण्ड भी घबराहट नहीं आई। उसके बाद 1977 में इंदिराजी फिर रीवा आयी थीं। नाश्ता तैयार करने की ज़िम्मेदारी मुझे दी गई। नाश्ता मैंने तैयार किया, खुद

बनाया, खुद पैक किया और उन्हें दे दिया। मेरे मन में विश्वास था कि नाश्ता उन्हें पसन्द आना चाहिये। हम गेट तक गये, हमने नाश्ते का पैकेट दिया, उन्हें अच्छा लगा या नहीं इसका मुझे कोई सुख-दुख नहीं है, मैंने अपना काम बखूबी पूरा कर दिया था, यह मेरा संतोष है अहम् भाव नहीं।

तीसरी बार 1979 में इंदिरा जी भोपाल आई थीं। उन दिनों हम लोग भोपाल के शिवाजी नगर में सी-19 बंगले में रहते थे। उस समय मेरी बिटिया 15 दिन की थी। इंदिराजी का भोजन सी-19 में ही बना। कुछ चीज़ें मैंने भी बनाई थीं। इंदिराजी सरल-सहज भाव से हमारे परिवार के साथ बैठी रहीं। मुझे तो एक मिनट भी नहीं लगा कि मैं एक्स पी.एम. से बात कर रही हूँ। हालाँकि दाऊ साहब के इन्वीटेशन पर ही वे सी-19 आई थीं लेकिन मैं ऐसी फील कर रही थी कि मानों वे मुझसे मिलने आई हों। मुझसे उन्होंने प्यार से बात की। उनकी बात में कहीं भी यह नहीं महसूस हुआ कि वे इस महान देश की प्रधानमंत्री रह चुकी हैं। या कि यह वह महान महिला हैं जिसे इस देश के करोड़ों नागरिक प्यार और आदर की नज़रों से देखते हैं और आज इन्हें लोग भारत माता कहने में गर्व अनुभव करते हैं। आपको हैरत होगी कि 3-4 मुलाक़ात होने के बाद भी आज तक उनके साथ मेरी एक भी फोटो नहीं है। मेरी कुछ मानसिकता ही ऐसी है कि मैं ऐसा नहीं समझती कि किसी के साथ फोटो खिचवाने से कोई व्यक्ति बड़ा होता है। बड़ा होने के लिये अपना व्यक्तित्व होना चाहिये, अपने पैरों पर खड़ा होकर अपने बल पर जो बड़ा होता है, उसी को देश और समाज बड़ा आदमी, महान आदमी मानता है। मैं फिर कहना चाहूँगी कि इसे मेरा अहम् भाव नहीं माना जाना चाहिये, यह मेरी विनम्र मान्यता है। आपको जानकर हैरत होगी कि दिल्ली में केवल 2-4 लोगों को छोड़कर किसी को यह भी पता नहीं है कि मैं उनकी पुत्री हूँ या अर्जुनसिंहजी मेरे पिता है। मैं मैं हूँ यह काफ़ी है। वैसे मैं इस बात को छिपाती भी नहीं हूँ कि वे मेरे पिता हैं किन्तु मुझे यह कभी नहीं सुहाता कि मैं यह कहूँ कि मैं अर्जुनसिंहजी की पुत्री हूँ।

हाँ मैं यह मानती हूँ कि आप जैसे अनेक लोग मेरे पिता को महान मानते हैं लेकिन मैं समझती हूँ कि आदर्श और महान् बनने के लिये जिन गुणों का होना ज़रूरी है, वे अधिकांश गुण दाऊ साहब में होते हुये भी एक बहुत बड़ी कमी है और वह कमी है स्वयं के प्रति ध्यान नहीं रखना। न वक़्त पर खाते हैं, न सोते हैं, इसी पर मुझे दाऊ साहब पर गुस्सा आता है। जीवन संयम से जीते हैं लेकिन अनुशासित नहीं। सब कामों में समय के पाबन्द हैं लेकिन आराम करने और खाने के लिये समय नहीं है। स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं देते हैं। अमेरिका के प्रेसीडेन्ट भी तो वीक एण्ड मनाने के लिये समय निकाल लेते हैं लेकिन बस यहीं दाऊ साहब मात खा जा जाते हैं।

दाऊ साहब लाईफ़ को एनज्वाय करना नहीं चाहते हों ऐसी बात नहीं है। उन्हें फोटोग्राफी, रीडिंग और म्यूज़िक का बहुत शौक है। फिल्म देखने का तो समय मिलता नहीं लेकिन म्यूजिक कैसेट ज़रूर ख़रीद लाते हैं। काफ़ी अच्छा कलेक्शन है उनके पास लेकिन दिक्क़त वही है कि चाहते हुये भी समय नहीं है। सुबह-सुबह टी.वी. की ओर नज़र उठा लेना या ख़बर सुन लेना ही काफ़ी होता है। अकसर कुछ सोचते रहते हैं पर एक अच्छी बात है कोई भी परेशानी हो, कैसा भी तनाव हो, कोई उसे इनके फेस से रीड नहीं कर सकता। अपनी भावनाओं पर अंकुश लगाने और शांत रहने में ये मास्टरपीस हैं। नो मैच टू हिम।

कभी-कभी मुझे लगता है कि देश के लिये, समाज के लिये इतना सोचने वाला और कोई क्यों नहीं है? इंदिराजी से पहले कितने लोग थे, कितने बड़े-बड़े लोग थे, नेहरूजी, पंतजी, मौलाना आज़ाद, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद कहाँ तक गिने, एक बहुत लम्बी लिस्ट, कई चेहरे आँखों के सामने आते हैं। लगता है कि इस देश के महान संत गाँधीजी के साथ निष्ठावान समर्पित राष्ट्रीय सेवकों की एक सेना जैसी थी। लेकिन जब आज मैं चारों तरफ़ देखती हूँ तो मुझे उस कद का, उस विचार का, उस भावना का दाऊ साहब के अलावा कोई नज़र नहीं आता। होना चाहिये

और ज़रूर होंगे दाऊ साहब जैसे भी और दाऊ साहब से अच्छे भी। हमारा देश महान् है। इसमें महान् व्यक्तियों की कमी नहीं है। चूँकि मेरा दायरा छोटा है, मेरा सर्किल लिमिटेड है इसलिये शायद मैं ज़्यादा लोगों को नहीं जानती। हाँ याद आया जैसे मदर टेरेसा। उनका फील्ड अलग है और हमारे नाना साहब डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन', वे भी एक बड़े कवि हैं, उनके भी विचार महान् हैं। प्रेमचंद और रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे लोग अब कम नज़र आते हैं। खासकर पॉलिटिक्स में गिनना भी चाहें तो ऐसे लोग अब अँगुलियों पर गिनने लायक नहीं है। हमारी चापलूसी, हमारा स्वार्थ, कुर्सी के पीछे पागलपन, सत्ता का संघर्ष यह सब कुछ इतना अधिक बढ़ गया है कि कभी-कभी लगता है कि ऐसा तो नहीं कि ये सत्ता के भूखे लोग देश को बेच देंगे। यह प्रश्न कई बार मन में तैरता उतराता है, गहराई से सोचती हूँ कि नहीं इतना निराश होने से काम नहीं चलेगा। इस देश ने हर संकट की घड़ी में कोई न कोई आदर्श नायक दिया है, एक अच्छा रास्ता दिखाया है और देश हर संकट से जूझकर और निकलकर आगे बढ़ा है। और भी अनेक पार्टियाँ हैं, दल हैं, ग्रुप हैं। हर पार्टी में कुछ अच्छे लोग हैं, बहुत अच्छे लोग हैं, लेकिन करप्ट लोग दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं, अच्छे लोग कम हो रहे हैं। नैतिक स्तर बहुत नीचे गिर चुका है। जो अच्छे लोग बचे हैं, अब उनका वक़्त कितना बचा है, समस्यायें कितनी ज़्यादा हैं, हल क्या है, अब यह सब कुछ कहना मुश्किल है। देश में प्रतिभा की कमी नहीं है। नई पीढ़ी से हमें बहुत आशायें हैं। आवश्यकता इस बात की है कि यह राष्ट्र निर्माताओं पर, देश के नेताओं पर, देश के राजनीतिज्ञों पर और देश के शिक्षकों पर निर्भर है कि वे इन प्रतिभाओं को अवसर देते हैं कि नहीं, उन्हें आगे बढ़ाते हैं कि नहीं। यदि अच्छी प्रतिभाओं को अच्छा मौक़ा मिले तो बहुत बड़ी कमी दूर की जा सकती है।

दाऊ साहब के बारे में बात कह रही थी कि बात करते-करते दाऊ साहब के केनवास से निकलकर देश के विशाल केनवास तक पहुँच गई। मैं फिर दोहराना चाहूँगी कि मेरी रुचि राजनीति में कतई नहीं है लेकिन राजनीति ही देश की दशा और दिशा को सुधार सकती है, बना सकती है, बिगाड़ सकती है। इसलिये उसके बारे में सोचना पड़ता है, विचार करना पड़ता है और चिन्ता होती है। मुझे अपने देश से प्रेम है, मैं दाऊ साहब और देश दोनों से प्रेम करती हूँ। हाँ यह सही है कि मुझे अपने पति, पुत्र और पुत्री, माँ और भाई-बहनों सभी से प्रेम है, बहुत प्रेम है लेकिन आज आपने पूछा है और मैं पहली बार कह रही हूँ– कहने का मौक़ा मिला है; इसलिये कहना चाहती हूँ कि मुझे गर्व है कि मैं भारतीय हूँ – इस महान भारत की बेटी हूँ और मुझे गर्व है कि श्री अर्जुनसिंह मेरे पिता हैं।

साक्षात्कार के आधार पर

☐ *श्रीमती वीणासिंह—श्री अर्जुनसिंह की सुपुत्री*

करुणा के सागर हैं अर्जुनसिंह

बी.पी. सिंह
(श्री अर्जुनसिंह के दामाद)

छोटे-बड़े सभी को सम्मान देने, हर आगत-अतिथि के सुख-दु:ख को ध्यान से सुनने और सभी की सहायता करने में सदा तत्पर रहना कुछ ऐसी विलक्षण विशेषता श्री अर्जुनसिंह में हैं, जो उन्हें अन्य राजनेताओं से अलग एक पहचान बनाने का अवसर उपलब्ध कराती है। वे मेरे दाऊ साहब या श्वसुर हैं इसलिये नहीं बल्कि भारतीय गणतंत्र के एक उत्तरदायी नागरिक के रूप में मैं यह अनुभव करता हूँ कि इस राष्ट्र के लिये जिस प्रकार के नेतृत्व, नायक, चिंतक और लोकसेवक की आवश्यकता है, वे सभी उदात्त गुण दाऊ साहब में पाये जाते हैं। उनके घर-परिवार में और स्नेही-परिजनों के बीच दाऊ साहब का सम्बोधन उनके प्रति आदर और श्रद्धा का मिला-जुला भाव प्रकट करता है। मेरी उनसे पहली मुलाक़ात उनकी पुत्री वीणा से हुये विवाह से पूर्व ही हो चुकी थी। उस समय वे विधायक थे और सीधी, सिंगरौली के जनसम्पर्क दौरे पर यात्रा कर रहे थे। उस समय सामान्य शिष्टाचार और पारिवारिक कुशल-क्षेम से अधिक तो कुछ बात हो नहीं सकी लेकिन मेरे मन-मस्तिष्क पर उनकी शालीनता, विनम्रता और सद्भावना की जो पहली छाप पड़ी, उसे शनैःशनैः मैं चरितार्थ भी होते देखता रहा।

यह सही है कि मैं राजनीति में नहीं हूँ लेकिन समाचार पत्र-पत्रिकाओं में जब कभी, जो कुछ भी उनके बारे में छपता है, उसको पढ़े बग़ैर नहीं रहता। जब कभी उनके ख़िलाफ़ निराधार आरोप लगाये जाते हैं या कटु आलोचना होती है तो यह विचार ज़रूर आता है कि देश में जिसे प्रजातंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है, वह अपने उत्तरदायित्व के प्रति इतना उदासीन क्यों है। आरोप लगाने से पूर्व संबंधित पक्ष को सुना जाना चाहिये और आरोप तथा उत्तर दोनों पक्ष को सही रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिये। यह मेरी अपनी मान्यता है। अब तो धीरे-धीरे कुछ आदत सी पड़ गई है। पहले मुझे बहुत नागवार गुज़रता था, जब कभी मैं दाऊ साहब के ख़िलाफ़ अख़बारों में कुछ पढ़ता था। अब बजाय क्रोध या दु:ख के उसे हम सहज भाव से पढ़ लेते हैं और चूँकि अनेक तथ्यों से हम परिचित हैं इसलिये अब इन निराधार आरोपों को लेकर अख़बारी सुर्ख़ियों में छपने वाले सनसनीख़ेज सुर्ख़ियों से हमारे परिवार के सदस्यों का बग़ैर किसी कटु प्रतिक्रिया होने के हम हँस-बोलकर चर्चा कर संतोष कर लेते हैं।

जिस समय उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में शिकार पर प्रतिबंध नहीं था, उस समय कभी-कभी शिकार पर जाने का इन्हें मौक़ा मिलता रहा है और एक बार ऐसे मौक़े पर मैं भी दाऊ साहब के साथ था। वे न केवल साहसी शिकारी और अचूक निशानेबाज़ हैं बल्कि गहन से गहन संकट के समय पर अपूर्व धैर्य धारण करने की उनमें विलक्षण क्षमता है। हमारे परिवार के एक वरिष्ठ सदस्य ने मुझे बताया था कि एक बार शिकार के समय घने जंगल में एक शेर ने अचानक छलांग लगा दी थी और पल भर को किसी अनहोनी आशंका से पारिवारिक शिकार दल किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया था किन्तु पलक झपकने से पहले ही एक सनसनाती गोली शेर के ठीक मस्तक में लगी और ज़मीन से

छलांग लगाकर उछलता हुआ शेर ज़मीन पर जा गिरा, यह गोली श्री अर्जुनसिंह की थी। इस घटना को जिस विस्तार से हमें बताया गया था, उस पल को याद कर आज भी अच्छे-अच्छों का रोम-रोम काँप उठता है। शासन द्वारा वन्य प्राणी संरक्षण के लिये लगाये गये प्रतिबंध के बाद फिर दाऊ साहब ने न तो कभी जंगल की ओर मुँह किया और न कभी कोई गोली चलाई। शायद अचूक निशानेबाज होने के गुण की ही यह विशेषता है कि वे अपने जीवन के निर्धारित लक्ष्य से कभी विचलित नहीं हुए। अटूट राष्ट्र प्रेम, पार्टी के सदस्यों के प्रति समर्पण, नेताओं और कार्यक्रमों को कारगर रूप से लागू करने की तड़प और समाज के कमज़ोर वर्ग के आँसू पोंछने के लिये हर पल सोचते रहने वाले दाऊ साहब जैसे व्यक्तित्व मुझे दूर तक देखने में कहीं और नज़र नहीं आते।

जब कभी यात्रा के दौरान कुछ बात होती है तो वे न केवल भारत वरन् विश्व साहित्य के महान मनीषियों, लेखकों, कवियों, साहित्यकारों, चित्रकारों और यहाँ तक कि वादक, नर्तक तक के बारे में इतने अधिकारपूर्वक और विस्तार से बताते हैं कि उसे सुनकर यह आश्चर्य होता है कि सतत् क्रियाशील और व्यस्त रहने के बाद ये कब और कैसे इतना अध्ययन करने का समय निकाल लेते हैं। श्रीमती पुपुल जयकर, अमज़दअली खान, हबीब तनवीर, जे. स्वामीनाथन, ए.के. हंगल, लता मंगेशकर, श्री एवं श्रीमती हरवंशराय बच्चन, दिलीपकुमार, मदर टेरेसा आदि ऐसी विशिष्ट विभूतियाँ हैं, जिनसे दाऊ साहब के अत्यन्त आत्मीय और निकट के संबंध हैं। नई से नई किताबों की समीक्षा अच्छे से अच्छे समाचार-पत्र में आने से पहले वह चर्चित किताब आप इनके हाथ में देख सकते हैं। पढ़ने का इन्हें इतना अधिक शौक है कि जब कभी विविध प्रकार के बुद्धिजीवी समूह के बीच जब ये बोलते हैं, तब श्रोताओं को आभास हो जाता है कि उनके बीच कोई राजनेता नहीं बल्कि उनके अपने विषय का अधिकारी विद्वान बोल रहा है। पुस्तकों के अलावा यदा-कदा मैंने इन्हें संगीत के रिकार्ड और कैसेट खरीदते भी देखा है। मूलत: पुरानी फिल्मों के गीत और शास्त्रीय संगीत के प्रति इनकी रुचि है। लेकिन अब समय ही नहीं मिल पाता अपने शौक को पूरा करने का। घूमने-फिरने का भी इन्हें बहुत शौक है। देश के सभी प्रदेशों, सुदूर आदिवासी अंचलों और विदेशों में भी घूमते रहने के कारण इन्हें पूरे देश की सभ्यता और संस्कृति के साथ ही विश्व के मानचित्र पर अंकित अनेक राष्ट्रों के उत्थान-पतन और सामाजिक आचरण, व्यवहार, सभ्यता और संस्कृति आदि सभी का गहन अध्ययन है। जिस प्रकार एक अच्छे पत्रकार के पास "नोज आफ न्यूज" रहती है, उसी प्रकार मात्र देखकर, समझने और ग्रहण करने की अद्‌भुत प्रतिभा आप में है, जिससे बहुत कम लोग परिचित हैं।

समाचार-पत्रों में कुछ ऐसा चित्रित किया जाता है कि मानों राजनीति के कुशल खिलाड़ी होने के साथ-साथ कूटनीति के कौशल से पूर्ण श्री अर्जुनसिंह हर पल राजनीति के ताने-बाने बुनते रहते हैं, लेकिन मैं इससे सहमत नहीं हूँ। उनका चिंतन का क्षेत्र राजनीति से हटकर साहित्य, दर्शन, इतिहास, पुरातत्व, धर्म से लेकर अंतरिक्ष विज्ञान तक विस्तृत आयाम लिये हुये हैं। इन्हें कूटनीति के कुशल चाणक्य कहने वाले लोग यह नहीं जानते कि इनके हृदय में करुणा का अथाह सागर समाया हुआ है और उससे जब कभी कोई धारा निकलती है तो समाज के कमज़ोर वर्ग के लिये यह गंगाजल सी फुहार बनकर उनके दीन-दु:खी जीवन का वरदान बन जाती है।

श्री अर्जुनसिंह चाहे जितना भी काम करें, उन पर कितना ही काम का दबाव हो, आपको कभी हारे-थके नहीं दिखेंगे, चिड़चिड़ाते, क्रोधित होते हुये या आवेश में आकर बोलते हुये मैंने उन्हें आज तक नहीं सुना। वे परिवार के सदस्यों के साथ सहज आत्मीय भाव से मिलते, बतियाते हैं। उनके साथ ही सहयोगी, समर्थक और प्रशंसक तक आत्मविश्वास से परिपूर्ण है कि अर्जुनसिंहजी का नेतृत्व उनके लिये एक संकटमोचक छत्री के समान है। वे अपने कार्यकर्ताओं की भावनाओं और विचारों का सम्मान करते हैं। इस संदर्भ में मुझे एक राजनीतिक घटना का स्मरण है। आप 1972

के चुनाव में 32 हज़ार मतों से जीते थे, किन्तु 1977 के चुनाव के समय अनेक शुभचिन्तकों ने बार-बार अनुग्रह किया और यह समझाने की कोशिश की कि इस समय परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं हैं, इसलिये उन्हें चुरहट के बजाय सीधी या गोपदबनास से चुनाव लड़ना चाहिये। इस विषय पर लगभग एक सप्ताह घनघोर प्रयास किये जाते रहे। इस बीच उन्होंने अपने काँग्रेस कार्यकर्ताओं को आमंत्रित कर जब उनकी राय चाही तो उन लोगों ने चुरहट से ही चुनाव लड़ने का अनुग्रह किया और आपने अन्य सबकी सलाह की बजाय काँग्रेस कार्यकर्ताओं की राय को महत्व देते हुए चुरहट से ही चुनाव लड़ा लेकिन वे इस बार 8 हज़ार मतों से ही जीत पाये। आप अपने स्वयं के चुनाव क्षेत्र में बहुत कम समय देते रहे हैं, जबकि सीधी जिले के प्रत्येक विधानसभा क्षेत्र में घनघोर चुनाव प्रचार करते हुये रीवा संभाग का वे दौरा करते रहे हैं और रीवा संभाग की जनता के बीच उनके प्रति एक चुम्बकीय आकर्षण पाया जाता है। जन्मभूमि होने के कारण चुरहट से उनका भावनात्मक लगाव स्वाभाविक है। इस विषय में एक और घटना याद आती है। जब आप शिक्षामंत्री थे, उस समय विंध्य क्षेत्र में एक पॉलीटेक्निक कॉलेज खोले जाने का निर्णय लिया गया था और इसके लिये सीधी ज़िले के अनेक स्थानों के साथ अनेक कार्यकर्ता चुरहट में ही पॉलीटेक्निक कॉलेज खोलने का अनुरोध कर रहे थे। किन्तु विकास के प्रति समर्पण भावना तथा भावी संभावनाओं के दोहन के लिये बुनियादी सुविधाओं के विस्तार के प्रति उनका अपना वैज्ञानिक दृष्टिकोण है और यही कारण है कि उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश की सीमा पर स्थित सिंगरौली में आपने पॉलीटेक्निक कॉलेज स्थापित करवाया। आज जब सुपर थर्मल पॉवर स्टेशन के साथ ही सिंगरौली एक उल्लेखनीय औद्योगिक केंद्र बन गया है, उसके पीछे श्री अर्जुनसिंह के सतत् प्रयासों को रेखांकित किया जाना आवश्यक है। पूर्व विंध्यप्रदेश राज्य में सिंगरौली राज्य को और विशेषकर उसकी बैढ़न तहसील को कालापानी के नाम से पुकारा जाता था। सिंगरौली या बैढ़न किसी भी कर्मचारी या नागरिक के जाने या भेजे जाने के प्रति आम-नागरिकों में इतना भय और आतंक था कि वे उसे कालापानी की सज़ा के रूप में ही लेते थे। आज भी विंध्य क्षेत्र की महिलायें जो लोकगीत गाती हैं उसमें इसी भावना को लेकर कही गई दो पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं:—

"बड़े टिकुली के भाग,
बलम सिंगरौली से लौटे"

आज परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। अब यह क्षेत्र दाऊ साहब के प्रयासों से इतना अधिक विकसित हो गया है कि इसे देश और प्रदेश की 'ऊर्जा राजधानी' कहा जाने लगा है। यह जिले का सर्वाधिक विकसित तथा समृद्ध क्षेत्र है।

मैं स्वयं सिंगरौली राज्य के राजवंश का सदस्य हूँ। मेरे माता-पिता का स्वर्गवास जब मैं बहुत छोटा था तभी हो गया। बस दादी की गोद में खेलकर बड़े होकर समझ आने पर यही सुना कि जब मैं बहुत छोटा था, तभी मेरे सर से राजा साहब और रानी साहब (मेरे माता-पिता) का साया उठ गया था। चूँकि मैं राज्य का भावी उत्तराधिकारी था इसलिये अधिकांश लोग आज भी मेरे पूर्ण नाम भुवनेश्वर प्रतापसिंह की बजाय पारिवारिक नाम राजा बाबा के नाम से ही जानते-पहचानते और पुकारते हैं। पूर्व सिंगरौली राज्य उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश के मध्य में फैला हुआ था। इसका अधिकांश हिस्सा उत्तरप्रदेश में और कुछ हिस्सा मध्यप्रदेश में था। क्षेत्रफल और आय की दृष्टि से यह बड़े राज्य में गिना जाता था। सिंगरौली राज्य की राजधानी गहरवार गाँव में थी। पुराने बुजुर्ग बताते हैं कि गहरवार गाँव की महल की दीवारों में शीशे जैसी चमकती ईंटें लगी हुई थी, जब रिहन्द बाँध का निर्माण हुआ, उस समय हमारा महल, हमारी ज़मीन, सम्पूर्ण पारिवारिक सम्पदा डूब में आ गई। मेरे आदरणीय स्वर्गीय पिताजी, राजा साहब श्री रामेश्वरप्रसादसिंह को आज भी सिंगरौली क्षेत्र में नागरिक श्रद्धा और आदर से याद करते हैं। मैं तो उस समय लगभग 3-4 वर्ष का था,

जब वे इस असार संसार को छोड़कर नियति के नियम को निभाने के लिये स्वर्गवासी हो गये थे। पहली से छठी कक्षा तक मेरी शिक्षा बनारस में और फिर सातवीं से बारहवीं तक सिंधिया स्कूल, ग्वालियर में हुई और सन् 1972 में श्री अर्जुनसिंह की पुत्री वीणा से मेरा विवाह हुआ।

विवाह के बाद मुझे दाऊ साहब और मम्मा साहब अर्थात् श्री एवं श्रीमती अर्जुनसिंह से मातृ और पितृ सुख और सम्मान प्राप्त हुआ। पहले कुछ दिन तो मुझे अपना संकोच छोड़ने में काफ़ी कठिनाई हुई किन्तु श्री अर्जुनसिंह की स्नेह छाया, उदार भावना और सम्मान युक्त शुभाशीष से शनैः-शनैः झिझक दूर होती गई। कुछ ऐसा संयोग है कि हम दोनों के बीच किसी विषय पर बहुत अधिक बात नहीं हो पाई। अवसर अनेक आये किन्तु विस्तृत चर्चा का लाभ नहीं मिल सका और इसका एकमात्र कारण यह है कि जितना कम बोलने की उनकी आदत है, मैं उनसे पीछे नहीं हूँ। मेरा स्वभाव भी केवल काम की और बहुत कम बात करने का है। आज सचमुच मुझे अच्छा लग रहा है कि उनके जीवन के 74वें बसन्त पूरे होने के अवसर पर उनके सम्मान में इंडियन रायटर्स एसोसियेशन द्वारा एक अभिनन्दन ग्रंथ निकाला जा रहा है। आज मुझे लगता है कि एक अच्छे क्रिकेट खिलाड़ी के बजाय यदि मैं अच्छा लेखक होता तो मैं बहुत विस्तार से दाऊ साहब के बारे में अपनी भावनायें और विचार प्रकट करता, लेकिन अभिनन्दन ग्रंथ कोई क्रिकेट का मैदान नहीं है जहाँ मैं अपनी सेंचुरी बना सकूँ। प्रभु से प्रार्थना यह है कि वह उन्हें अधिक ऊर्जा, अधिक शक्ति, यशस्वी दीर्घ जीवन और सुख-स्वास्थ्य के आशीर्वाद से अनुगृहीत करे ताकि वे लम्बे समय तक इस विशाल देश की दुःखी, दलित, पीड़ित जनता की अधिक से अधिक सेवा कर सकें।

साक्षात्कार के आधार पर

☐ *बी.पी. सिंह— श्री अर्जुनसिंह के दामाद*

यश और गौरव के कीर्ति स्तम्भ

अभिमन्युसिंह
(श्री अर्जुनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र)

क्या यह सहज है कि गुलाब के फूल से उसकी ख़ुशबू पूछी जा सके या शब्दों में उसकी सुंगध समझाई जा सके। प्यास से तड़पते हर प्राणी को पानी, तृप्ति और शांति तो देता है किन्तु कोई भी संतुष्ट प्राणी पानी का स्वाद नहीं बता पाता। इधर उत्तर में नर्मदा को और उधर पश्चिम में गंगा को पतित पावनी-मुक्तिदायिनी-पवित्र नदी कहा जाता है किन्तु नर्मदा या गंगा ने कभी यह नहीं कहा कि उनमें अवगाहन करने से पुण्य या स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है और न ही कभी पारस ने बताया कि उसके स्पर्श से लोहा भी स्वर्ण बन जाता है। मैं भी आज कुछ इसी प्रकार की अन्यमनस्क मन:स्थिति में हूँ।

श्री अर्जुनसिंह अभिनन्दन ग्रंथ समिति की ओर से मुझसे कहा गया है कि अपने आदरणीय पिताजी – श्री अर्जुनसिंह के बारे में एक आलेख लिखूँ। एक विराट व्यक्तित्व को, जिसकी क्षमता और प्रखरता राष्ट्रीय से अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज तक विस्तार पा चुकी हो, क्या उसे शब्दों में बाँध पाना सहज है? मेरे लिए तो यह और भी मुश्किल है क्योंकि हज़ारों समर्पित साथी, लाखों कार्यकर्ता और अनुयायी तथा अनगिनत प्रशंसकों के मन में उनके प्रति कोई न कोई भावना तो है, जो उन्हें सबसे अलग बनाती है। जब कभी दिल्ली से भोपाल आगमन पर श्री अर्जुनसिंह का जो स्वागत मैंने मध्यप्रदेश के विभिन्न नगरों में देखा, स्वयं देखकर भी यह विश्वास नहीं हो पाता था कि इतना विशाल जन सैलाब बार-बार उनकी एक झलक पाने के लिए सड़क पर क्यों उमड़ पड़ता है। हृदय की शल्यक्रिया के बाद 1990 में जब वे भोपाल लौटे तो उन्हें भोपाल विमान तल से घर तक आने में 6 घंटे से अधिक का समय लगा था और इन 6 घंटों में उन्होंने मात्र मुश्किल से 14-15 कि.मी. का रास्ता तय किया। लेकिन कितनों के बीच अपनी मुस्कान बाँट दी, कितनों के पुष्प हार स्वीकारे, कितनों ने उन पर पुष्प वर्षा की, कितनों ने उनके पैर छू लिए और कितनों ने उनसे हाथ मिलाये शायद ही कोई कम्प्यूटर इसकी गणना कर सके, और जब वे घर आकर जीप से उतरे तो सबसे बड़े आश्चर्य की बात थी कि 6 घंटे लगातार असंख्य जनसमूह के बीच स्वागत-सत्कार स्वीकारने के बाद भी उनके चेहरे पर लेश मात्र भी थकावट नहीं थी। यह उनकी शारीरिक शक्ति नहीं अपितु या तो आत्मशक्ति थी या लाखों लोगों का वह स्नेह जो उन्हें शक्ति दे रहा था।

आत्मबल, साहस और धैर्य के साथ हरपल मुस्कराते रहना, राजनीति में समाज में या शासन में कैसा भी तनाव क्यों न हो, घर में सदस्यों के बीच आल्हाद पूर्ण मुद्रा में प्रवेश करना, उठना-बैठना और हँसना, यह उनके अलौकिक व्यक्तित्व का एक अंग है।

यही कारण है कि उनके महान व्यक्तित्व और चरित्र को शब्दों में व्यक्त कर पाना मेरे लिए सरल नहीं है। यह तो मेरी अपनी वस्तुनिष्ठ, सत्य एवं समर्पित अनुभूति और भावना है जिसे मैं केवल अनुभव कर सकता हूँ। मैं

अपनी इस भावना को स्वान्तः सुखाय आनन्द की अनुभूति भी मान सकता हूँ, किन्तु इसकी अभिव्यक्ति कैसे हो, यह मैं नहीं समझ पाता। उनका प्यार और उनकी मानवीय भावनायें हमारे लिये और सबके लिए जिस सहृदयता के साथ हैं, उसे जन सामान्य की भाषा में लिपिबद्ध कर पाना मेरी क़लम की क्षमता से बाहर है। वस्तुतः वे मेरे लिए साकार ईश्वर हैं। जिस प्रकार ईश्वर की महानता को मनुष्य की नश्वर परिधि में नहीं बाँधा जा सकता, उसी प्रकार मेरे लिये यह संभव नहीं है कि मैं श्री अर्जुनसिंह के गौरवशाली व्यक्तित्व और कृतित्व तथा महान् चरित्र के विषय में सिवाय आत्मगौरवपूर्ण अनुभूति के शब्दों में कुछ अभिव्यक्त कर सकूँ।

□ *अभिमन्युसिंह—श्री अर्जुनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र*

हर पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक अलौकिक व्यक्तित्व

श्रीमती सुनीतिसिंह
(श्री अर्जुनसिंह की छोटी पुत्रवधु)

उन दिनों श्री अर्जुनसिंह तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री प्रकाशचंद सेठी के मंत्रिमंडल में शिक्षामंत्री थे। शिक्षामंत्री के रूप में वे महू में एक समारोह में मुख्य अतिथि बनकर आये थे। मैं उस सयम हायर सेकेण्डरी कर रही थी और एक छात्रा के रूप में मैंने उनका भाषण सुना था तथा उन्हें पहली बार देखा था। उसके बाद मध्यप्रदेश निर्माण की रजत जयन्ती के अवसर पर 1 नवम्बर 1980 को बम्बई में एक समारोह आयोजित किया गया था जिसमें श्री ए.आर. अन्तुले बम्बई के मुख्यमंत्री थे तथा श्री अर्जुनसिंह मध्यप्रदेश के। हम अपने पूरे परिवार के साथ इस समारोह में सम्मिलित हुये थे तथा इस बार मैंने अधिक गंभीरता से उन्हें देखा था। दरअसल श्री अर्जुनसिंह के परिवार में पुत्रवधू बनकर आने से पहले यही वह कार्यक्रम था जिसमें मुझे देखने के लिए इनके परिवार के सदस्य बम्बई आये थे तथा हमारे दोनों के परिवार के अधिकांश सदस्य इस समारोह में सम्मिलित हुये थे।

मेरा विवाह श्री अर्जुनसिंह कि छोटे पुत्र श्री अजयसिंह से सम्पन्न हुआ सन् 1981 में तथा उस समय मुख्यमंत्री निवास– श्यामला हिल्स, भोपाल में मैं, पुत्रवधू के रूप में उनके परिवार में सम्मिलित हुई। घर में आपको सभी दाऊ साहब के सम्बोधन से संबोधित करते हैं और वही आदत मुझे भी हो गई। उनको निकट से देखने-सुनने से धीरे-धीरे मेरे मन में उनके प्रति आस्था, विश्वास और अपनत्व की भावना विकसित होती चली गई। यह सही है कि दाऊ साहब का अधिकांश समय राजनीति और प्रशासन में ही बीतता है किन्तु वे अपने पारिवारिक दायित्व के प्रति पूर्णत: सजग रहते हैं। समय की पावन्दी उनके चरित्र का अंग बन चुकी है। घर-परिवार के सदस्यों को यह अनुमान लगाना कठिन है कि दाऊ साहब कब, किस समय कितने अधिक तनाव में हैं। या वे किन घनघोर राजनैतिक घटाओं से घिरे हुये हैं। मुस्कुराहट सदा उनके चेहरे पर खेलती रहती है और सुबह से आधी रात तक उन्हें एक जैसा तरो-ताज़ा देखकर सभी आश्चर्य करते हैं।

बच्चों के प्रति दाऊ साहब के मन में बहुत अधिक स्नेह और आकर्षण है। बच्चों से बात करना, उन्हें प्रोत्साहित करना और उनके विषय में पूरी जानकारी रखना दाऊ साहब के एक अलग व्यक्तित्व का परिचायक है। हमारे 3 बच्चे हैं– बड़ा अरुणोदय और 2 छोटी बच्चियाँ आकृति और अम्बिका। इन सबके प्रति दाऊ साहब का आकर्षण और प्यार कभी कम होते नहीं देखा। यदि बच्चे अस्वस्थ हों तो दाऊ साहब ही की नज़र बीमारी को पहले भाँप लेती है और जब तक बच्चा पूरी तरह ठीक न हो, इन्हें चिन्ता रहती है। बच्चों के विषय में उनकी दृष्टि बड़ी दूरगामी है। वे अपनी राय किसी पर लादते नहीं। परिवार के मसलों पर बोलते बहुत कम हैं लेकिन जब कभी कुछ कहते हैं तो इतना उचित होता है कि उनके कथन को कोई नज़रअदाज़ नहीं कर सकता। क्योंकि वे जो कुछ कहते हैं, सभी यह जानते हैं कि वही सही है और सटीक है। अरुणोदय को बोर्डिंग हाउस में भेजने की बात थी, चर्चा हो रही थी। जिन स्कूलों का विचार हो रहा था उनमें मद्रास के निकट स्थापित त्रिवेणी अकादमी

भी एक थी। इस विषय में जब सब लोग बैठे और बात हुई तो दाऊ साहब ने सिर्फ़ इतना कहा— एकदम से नये स्कूल में बच्चों को नहीं भेजना चाहिए। उनका इतना कहना ही हम लोगों के लिए काफ़ी था और फिर हमने इस विषय में दुबारा कोई विचार नहीं किया। हमारे परिवार में दाऊ साहब से बात करने में बहुत सदस्य संकोच का अनुभव करते हैं किन्तु मैंने कभी ऐसा महसूस नहीं किया। मुझे कभी यह अहसास नहीं हुआ कि मैं एक ऐसे राष्ट्रीय नेता से बात कर रही हूँ जिनके सामने बड़े-बड़े महारथी और विद्वान लोग अपनी बात पूरी तरह नहीं कह पाते। यद्यपि वे बहुत कम बोलते हैं किन्तु उनका मधुर स्वभाव और सहजता इतना अपनत्व पैदा कर देती है कि मैं कभी यह अनुभव नहीं कर पाई कि दाऊ साहब रिश्ते की दृष्टि से मेरे श्वसुर जी है, पिता नहीं। लेकिन मेरे लिए श्वसुर शब्द के साथ बँधी हुई जो सीमा है, वह कभी बीच में नहीं आई। मैंने उन्हें शुरू से दाऊ साहब सम्बोधित किया और करती रही। उनकी दृष्टि इतनी तीव्र है कि यदि अरुणोदय को सर्दी-ज़ुकाम हो जाये तो इसका अहसास मुझे या मम्मा साहब को बाद में होगा, दाऊ साहब की नज़र पहले ही पड़ जाती है। उनका दृष्टिकोण परम्परावादी होते हुए भी नकारात्मक नहीं है। जब कभी घर-परिवार में हम लोग किसी विषय पर राय बनाना चाहते हैं या कोई पारिवारिक भूमिका संबंधी कोई चर्चा होती है तो उस समय मैंने अनुभव किया है कि जब कभी मैं बोलती हूँ तो मुझमें यह आत्मविश्वास रहता है कि मेरी राय महत्व रखती है। इसका कारण मुख्यतः दाऊ साहब का विशाल हृदय और सबकी राय को महत्व देने का है।

दाऊ साहब बड़े से बड़े संकट के समय भी तनावग्रस्त नहीं होते। उनके चेहरे पर दुःख या पीड़ा के भाव जागते कोई नहीं देख पाता। परिवार के सदस्यों के बीच राजनीति की ज़्यादा बातचीत नहीं करते। उनके स्वभाव के अनुसार ही अन्य सभी सदस्य शांत स्वभाव के हैं। न दाऊ साहब उत्तेजित होते हैं और न परिवार का कोई सदस्य। मैं स्वयं बहुत आशावादी हूँ। मुझे एक घटना याद आती है— जब 11 मार्च 85 को दाऊ साहब ने— श्री अर्जुनसिंह ने मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री पद की दूसरी बार शपथ ली थी और दूसरे दिन 12 मार्च को दाऊ साहब के आसपास कई बड़े-बड़े लोगों को मैंने फूट-फूट कर रोते हुए देखा, लेकिन दाऊ साहब बिल्कुल शांत और निर्विकार बने रहे। आनन-फानन में सभी परिचितों, स्नेहीजनों को यह मालूम हो गया कि प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने दाऊ साहब को पंजाब की समस्या हल करने के लिये पंजाब का राज्यपाल बनाकर भेजने का फैसला किया है। पंजाब जाने की बात को लेकर लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। मुझे हैरानी थी कि इसमें परेशानी की क्या बात है। मैं आज भी अनुभव करती हूँ कि यह दाऊ साहब के लिए गर्व की बात थी कि जिस समस्या को पूरी दुनिया में हिन्दुस्तान के लिए सबसे बड़ा संकट माना जाता था, उसको हल करने की ज़िम्मेदारी दाऊ साहब को दी गई थी। इसका साफ़ मतलब था कि राजीवजी की नज़रों में वे योग्य, सक्षम और महत्व के व्यक्ति थे। हमें विश्वास था कि लोग कुछ भी कहें, पंजाब जाकर दाऊ साहब सब कुछ ठीक कर लेंगे। जब राजीव-लोंगोवाल समझौते का समचार मिला, तब ज़रूर आश्चर्य हुआ था, क्योंकि मुझे यह उम्मीद नहीं थी— किसी को भी उम्मीद नहीं थी— कि यह सब इतनी जल्दी संभव होगा।

चुरहट लॉटरी के नाम पर जब अदालत की टिप्पणी पर दाऊ साहब ने मुख्यमंत्री पद से इस्तीफ़ा दिया तब मुझे अफ़सोस हुआ था। राजनीति में जिस तरह के दाँव-पेंच होते हैं और जिस ढंग से चरित्र-हनन किया जाता है, वह सब अच्छा नहीं है। इस्तीफ़ा देने के बाद पूरी जानकारी मिली कि किस तरह चुरहट लॉटरी के बारे में अदालती कार्रवाई हुई। पर्दे के पीछे किन चेहरों ने क्या भूमिका निभाई और किस प्रकार सारा ताना-बाना बुना गया। मेरी व्यक्तिगत राय है कि उस फैसले में दाऊ साहब पर कोई स्पष्ट आरोप नहीं था, फिर भी उनसे इस्तीफ़ा देने को कहा गया और उन्होंने अपने नेता के निर्णय का सम्मान करते हुए मुख्यमंत्री पद से इस्तीफ़ा दे दिया। उस समय

विधायकों का प्रचण्ड बहुमत उनके साथ था। नये और पुराने कई विधायक मुख्यमंत्री पद से इस्तीफ़ा देने के पक्ष में नहीं थे लेकिन दाऊ साहब ने सब कुछ शांत भाव से, सहज मन से स्वीकार किया और विधायकों के प्रति, नेतृत्व के प्रति निष्ठावान् बने रहने और पार्टी के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी करने के लिये तैयार रहने का आह्वान किया। उनकी यह सहजता तथा पार्टी और नेता के प्रति निष्ठा उन्हें अन्य व्यक्तियों से अलग करती है। वे साधारण मनुष्य नहीं हैं। उनमें महान् व्यक्तित्व के गुण हैं और इस विशाल देश के महान् व्यक्तियों में मैं उन्हें एक मानती हूँ।

मेरी राय में हाईकोर्ट के फैसले पर मुख्यमंत्री पद से इस्तीफ़ा देने की ज़रूरत नहीं थी। वैसे हमारे परिवार में इस प्रश्न पर कोई तनाव नहीं रहा। बग़ैर किसी प्रमाण के निर्णय होना और बग़ैर दूसरे पक्ष को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर दिए आरोप लगाना भारत ही नहीं किसी भी देश की न्याय व्यवस्था के लिए उचित नहीं है। देश में ऐसे कई फैसले होते हैं जिनमें कई अधिकारियों और समाज के वरिष्ठजनों के विरुद्ध अधिक कटु और निन्दापूर्ण टिप्पणियाँ की जाती हैं। मुझे तो आश्चर्य है कि ऐसी टिप्पणियों पर किसी स्तर पर न तो कोई प्रतिक्रिया देखी जाती है और न संबंधित व्यक्ति को प्रताड़ित कर दंडित किया जाता है। केवल राजनीति ही ऐसा क्षेत्र है जहाँ अदालत की किसी भी टिप्पणी पर जब जैसा चाहा, उसका अर्थ निकालकर फैसला किया जाता है। जिन देशों में प्रजातंत्र है, वहाँ इस प्रकार की प्रवृत्ति का विकास होना भविष्य के लिए सुखद संकेत नहीं है।

काँग्रेस पार्टी के मंच पर दाऊ साहब ने अनेक पदों पर रहकर पूरी ईमानदारी से अपनी भूमिका निभाई है। उन्होंने अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त की है तथा हर चुनौती और संकट के समय उनके व्यक्तित्व में और अधिक निखार आया है। जब-जब उनके विरोधियों या **प्रतिद्वन्द्वियों** ने उनके रास्ते में खाई खोदकर नीचे गिराना चाहा है, तब-तब न केवल उन्होंने उन सब बाधाओं को पार किया है, बल्कि हर बार उभर कर सामने आये हैं। हर काम में क़ाबिलियत का होना ज़रूरी है। क़ाबिल व्यक्ति को उसके क़ाबिल काम दिये जाने चाहिये। जिसमें जो प्रतिभा है, उसे उस क्षेत्र में उपयोग करना ज़रूरी है। किन्तु हमारे यहाँ इसके प्रतिकूल कार्य होता है। जो परम्परा और व्यवस्था है, प्रतिभाशाली व्यक्ति उसका शिकार बन जाता है। सारी दुनिया में राजनीति एक विकृत परम्परा या अव्यवहारिक व्यवस्था के दौर से गुजर रही है। इसमें बहुत अच्छे लोग बहुत कम बचे हैं और जो हैं उनके विरुद्ध कमज़ोर, अदूरदर्शी और स्वार्थी लोगों का एक समूह दीवार बनकर खड़ा हो जाता है।

मैं राजनीतिक परिवार में पैदा नहीं हुई। फिर भी कुछ ऐसी बातें हैं जो मैं अपने व्यक्तित्व से अलग करके नहीं देख सकती। राजनीति में चाटुकारिता का जो चलन है, वह मुझे कतई पसन्द नहीं है। लोग नेताओं और मंत्रियों के पैर छूते हैं, आदत से कम चापलूसी से ज़्यादा। जब कोई बड़ा नेता या मंत्री किसी भी जगह आता-जाता है तो सैकड़ों लोग उन्हें लेने और बिदा करने जाते हैं कितना समय नष्ट होता है। हार-फूल पर हज़ारों रुपयों और अमूल्य समय नष्ट किया जाता है। यह सब अच्छा नहीं है। उस पैसे को बचाकर किसी अच्छे काम में लगाया जा सकता है।

दाऊ साहब में अपूर्व संगठन क्षमता है। समाज के कमज़ोर वर्ग के प्रति उनके मन में असीम करुणा है। कभी-कभी मैं अनुभव करती हूँ कि काँग्रेस पार्टी ने उनकी सम्पूर्ण क्षमताओं का सार्थक और पूरा उपयोग नहीं किया है। लाखों में एक व्यक्ति होता है जो दूसरों को प्रभावित कर पाता है लेकिन इनमें करोड़ों नागरिकों को प्रभावित करने और उनके सुख-दुःख में सम्मिलित होने की जो क्षमता है, वह आज अन्य लोगों में देखने को नहीं मिलती।

दाऊ साहब हर बिन्दु पर नीति और सिद्धांत के आधार पर निर्णय लेते हैं और यही कारण है कि विगत

ढाई वर्षों में जब-जब कोई विवाद हुआ है तो वह किसी बात को लेकर नहीं, बल्कि उन मुद्दों को लेकर हुआ है जो काँग्रेस पार्टी की नीतियों और सिद्धांतों के संबंध में है। साफ़ बोलना, दो टूक अपनी बात कहना और दृढ़तापूर्वक उस पर अमल करना दाऊ साहब की अपनी विशेषता है। मानव समाज के प्रति उनका जो चिन्तन है, देश के प्रति जो उनकी आस्था है और पार्टी के प्रति जो उनका समर्पण है, उससे मुझे विश्वास है कि उनके व्यक्तित्व और चरित्र की विशेषतायें भारत देश और कांग्रेस पार्टी दोनों के लिए अमूल्य धरोहर साबित होंगी।

साक्षात्कार के आधार पर

□ *श्रीमती सुनीतिसिंह—श्री अर्जुनसिंह की कनिष्ठ पुत्रवधु*

एक अनुकरणीय आदर्श पिता : श्री अर्जुनसिंह

अजयसिंह
(श्री अर्जुनसिंह के कनिष्ठ पुत्र)

नारियल पानी पिया है कभी आपने? नहीं पिया हो, तो नारियल तो देखा ही होगा, और उसकी गिरी (प्रसाद) भी चखी होगी। ऐसे ही थे मेरे दादाजी, बिलकुल नारियल जैसे, ऊपर से कठोर और अन्दर से नरम दिल— मीठे स्वभाव के। मेरा बचपन चुरहट में दादाजी की ही गोद में बीता। दादाजी की उदारता से वे ही परिचित हैं जिन्हें उन्होंने उपकृत किया अन्यथा सभी लोग उनसे बहुत डरते थे। जब भी वे सामने आते सभी सहमें रहते लेकिन मुझे उन्होंने कभी नहीं डाँटा। जो डरे थे वे डरते थे, जो सहमें थे वे सहमें रहते थे। मैं बच्चा और छोटा था और उनका प्यार भी मुझ पर बहुत अधिक था, इसलिये उनसे डरने या सहमने की कोई बात ही नहीं थी। वे मुझसे बतियाते और खेलते थे। उनकी गोद में ही मेरे सारे सुख थे। आज जब बाल्यकाल की रेशमी स्मृतियों के परदे एक के बाद एक हटते जा रहे हैं, तब उनका चेहरा और उनकी बातें चलचित्र दृश्य की भाँति आँखों के सामने आ-जा रही हैं। जब कभी कोई काम होता, कहीं आते-जाते तो स्नेह भाव से वे मुझसे पूछते अवश्य थे। मुझे आज भी याद है कि बरसात का मौसम था। दादाजी और पंडित हरिहर प्रसादजी 'ख़ासक़लम' ने चुरहट से सिमरिया जाने का प्रोग्राम बनाया। नदी पूर (बाढ़) पर थी। उस ज़माने में पुलिया भी नहीं थी। हमसे पूछा-सिमरिया चलने के लिए। हमने कह दिया— "जब तो, लौट न पाऊँ" (जायेंगे तो लौट के नहीं आ पायेंगे) ऐसा ही हुआ। तब से दादाजी मुझे प्यार और दुलार से 'पंडितजी' कहने लगे।

मेरे दादाजी श्री शिवबहादुरसिंह जी के चार पुत्रों में सर्वश्रेष्ठ निशानेबाज मेरे पिताजी— श्री अर्जुनसिंह हैं। दादाजी जानते थे कि उनके किस पुत्र में क्या योग्यता और क्षमता है। आज जब मैं स्वयं लगभग पचास वर्ष का हो गया हूँ, लगता है दादाजी अपने पुत्रों के कैरियर को जज करने वाले श्रेष्ठ पिता थे। उन्होंने चुरहटगढ़ी के पास का निकटतम फार्महाऊस मेरे पिताजी श्री अर्जुनसिंह को दिया था और सिमरिया कृषि फार्म ज्येष्ठ पुत्र श्री रणबहादुरसिंह को दिया और उन्हें कृषि के उच्च अध्ययन के लिये अमेरिका भेजा। मेरे ताऊजी कृषि अध्ययन के दौरान एक वर्ष न्यूयार्क में रहे और संभवत: 1953-54 में मेरे जन्म के पूर्व, अमेरिका से हारवेस्टर ख़रीद कर लाये थे, जो आज भी सिमरिया में है। दूसरा सर्वश्रेष्ठ कृषि फार्म दादाजी ने गंगासिंहजी को, तीसरा सर्वश्रेष्ठ कृषि फार्म अर्जुनसिंहजी को और चौथा सर्वश्रेष्ठ कृषि फार्म डॉ. सज्जननसिंहजी को दिया था। डॉ. सज्जनसिंहजी ने इंदौर से एम.बी.बी.एस. किया और वे रीवा में प्राइवेट प्रेक्टिस करते हुए पीड़ित मानवता की सेवा करते रहे।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा कि मेरे पिताजी— जिन्हें हम सब घर में दाऊ साहब कह कर पुकारते हैं, प्रथम श्रेणी के शिकारी और सर्वश्रेष्ठ निशानेबाज हैं और उनके बाद की पीढ़ी में, सर्वश्रेष्ठ निशानेबाज मैं हूँ। हमें श्री मुण्डवसिंह दादाजी ने शिकार खेलना सिखाया था उनकी यह विशेषता थी कि जिसका भी अच्छा निशाना होता था, उसे वे अपना शिष्य बना लेते थे।

पंडित ब्रजवासीलालजी चुरहट गढ़ी में हिन्दी पढ़ाते थे और पंडित हरिहर प्रसादजी 'ख़ासक़लम' चुरहट जागीर में वस्तुत: ख़ासमख़ास थे। दाऊ साहब के मार्गदर्शक, प्रेरक और चेतना की ज्वाला जलाने वाले। दादाजी की मृत्यु के बाद पंडित हरिहर प्रसादजी ख़ासक़लम' हमारे परिवार के मुखिया थे और वे ही थे जिनकी बात— पारिवारिक बात अंतिम हुआ करती थी। दाऊ साहब ने जब सन् 1980 में मुख्यमंत्री पद की शपथ ली, उस समय पंडित हरिहर प्रसादजी 'ख़ासक़लम' शपथ समारोह में भाग लेने आये थे किन्तु कुछ माह बाद ही उन्होंने इस असार-संसार से बिदा ले ली।

मेरा जन्म सन् 1954 में हुआ था। सन् 1957 में दाऊ साहब एम.एल.ए. चुन लिये गये थे। उस समय न तो एम.एल.ए. रेस्टहाउस था, और न ही वे भव्य बंगले जिनमें आज मंत्री रहते हैं। हमसे नौकर बताते हैं कि सन् 1954-55 के पहले टी.टी. नगर का न्यूमार्केट का इलाक़ा शिकार के लिये प्रसिद्ध था। सन् 1960 में एम.एल.ए. रेस्टहाऊस बना। जहाँ की मुझे बहुत-सी बातें याद हैं। एक यह कि सरदार सितोले हमें बाम्बे स्टोर्स से टॉफी दिलाया करते थे। टॉफी और मिठाई के साथ पिटाई की भी एक घटना याद आती है। वीणा मेरी बड़ी बहन है। गर्मी के दिन थे। मैं और वीणा दोपहर में खेलते हुए बाथरूम में पहुँचे। एक-दूसरे के ऊपर पानी उछालते और ख़ूब हँसते-लड़ते एक-दूसरे को मार रहे थे। शायद मैंने वीणा के गाल पर चपत लगा दी। उसने दौड़कर दाऊ साहब से शिकायत कर दी। मैं डर गया— सहम गया। लेकिन हुआ यह कि वीणा से ही कहा गया— 'चुगली करना अच्छी बात नहीं है। जो कुछ कहना हो साफ़ और सामने ही कहना चाहिये।' इस साधारण-सी घटना के बाद आज तक हम तीनों भाई-बहनों ने कभी किसी की शिकायत या यूँ कहूँ कि चुगली कभी नहीं की। कभी कुछ मत-मतान्तर हुआ भी तो आमने-सामने बात की — सुलह सफ़ाई हो गई और बस।

जीवन में ऐसे बहुत कम अवसर आते है जब मनुष्य एकांत में बैठकर अपने अतीत को देखने की कोशिश करता है। वर्तमान का संघर्ष ही इतना अधिक व्यस्त और त्रस्त कर देता है कि अपने अतीत में झाँकने का अवसर ही नहीं मिल पाता है। विगत कुछ वर्षों से मेरे पिताजी आदरणीय श्री अर्जुनसिंह अर्थात् दाऊ साहब के अभिनंदन ग्रन्थ तैयार किये जाने के संबंध में यदा-कदा सुनता रहा हूँ। दो-चार बार मुझे भी लिखने को कहा गया, किन्तु मैंने कभी इस विषय को गंभीरता से नहीं लिया। उसके दो कारण थे। एक तो यह कि मैं स्वयं अपने व्यवसायिक और राजनैतिक कार्यों की वजह से इतना अधिक व्यस्त रहता हूँ कि साँस लेने की भी फुरसत नहीं मिलती। 15-18 घंटे की भाग-दौड़ के बाद जब घर पहुँचता हूँ तो खाने और सोने के सिवाए कुछ और सोचने का वक़्त ही नहीं रहता और इससे बड़ा दूसरा कारण यह है कि जब कभी मुझसे कहा गया, मेरे मन में यही दुविधा बनी रही कि पुत्र होकर मैं स्वयं पिताजी के बारे में क्या लिख सकता हूँ। आज जब अभिनंदन ग्रन्थ के लोकार्पण समारोह की तिथि में एक माह से भी कम समय बचा है उस समय जब मुझसे पुन: आग्रह किया गया तो मुझे लगा कि जब परिवार के सभी सदस्यों ने अपनी भावनाएँ व्यक्त की हैं तो मुझे भी अपने विचार और संस्मरण लिखना चाहिए।

लगभग पाँच दशकों के राजनीतिक जीवन में सैकड़ों कार्यकर्ताओं, हज़ारों अनुयायियों और लाखों प्रशंसकों के होते हुए भी परिवार और व्यक्तिगत संबंधों का दायरा हमारा बहुत सीमित रहा है। एक ओर जहाँ दाऊ साहब हर आम आदमी के लिए सहज ही उपलब्ध हैं, उसकी भरपूर सहायता करते हैं, कार्यकर्ताओं के कामों में प्राथमिकता से सहयोग प्रदान करते हैं। जिनके व्यक्तिगत सुख-दु:ख का संकट होता है उसमें भी न केवल सहभागी होते हैं वरन् अपना उत्तरदायित्व अनुभव करते हुए हर क्षण उसकी सहायता की कोशिश करते हैं। चूँकि सार्वजनिक जीवन में सार्वजनिक भाषण के अलावा वे बहुत कम बोलते हैं इसलिये वे अधिक लोगों से मिल लेते हैं। व्यक्ति को सुनने, समझने और पहचानने की अद्‌भुत क्षमता होते हुए भी अनेक लोगों से धोखा भी खाते हैं। लेकिन मेरी

मान्यता यह है कि ऐसे लोग जो दाऊ साहब को धोखा देते हैं या स्वार्थ निकलने के बाद विश्वासघात करते हैं, यह तो उनका अपना चरित्र है कि वे अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के बाद बदल जाते हैं या कुछ समय बाद उनका मुखौटा उतरने पर उनका सही चेहरा और चरित्र सामने आ जाता है। ऐसे लोगों की राजनीतिक अथवा सामाजिक जीवन में वैसे भी क़ीमत नहीं होती। लेकिन इसके विरुद्ध गिने-चुने कुछ ऐसे भी लोग हैं जो लगभग 40-45 वर्षों से दाऊ साहब से जुड़े हुए हैं। समय और परिस्थितियों ने चाहे जितना और जैसा भी उतार-चढ़ाव दिया हो, उन लोगों ने कभी भी दाऊ साहब का साथ नहीं छोड़ा। कुछ ऐसे भी उनके साथी और अनुयायी हैं जो दाऊसाहब के अलावा न तो किसी अन्य नेता को नेता मानते हैं और न ही किसी अन्य के द्वार पर दस्तक देने या कार्यक्रमों में स्वागत करने पहुँचते हैं। ऐसे लोगों ने अपने-आपको दाऊ साहब के प्रति समर्पित कर रखा है। दो-चार ऐसे लोगों से मैं भी परिचित हूँ जिनकी मान्यता है कि हमने श्री अर्जुनसिंहजी के साथ राजनीति शुरू की है और हमारी राजनीति जब उनके दरवाज़े से शुरू हुई है तो उनके दरवाज़े पर ही समाप्त हो जाती है। ये लोग भावुक हो सकते हैं लेकिन शत-प्रतिशत समर्पित हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है। मेरी मान्यता है कि शायद ऐसे समर्पित साथियों का सहयोग ही दाऊ साहब की सबसे बड़ी सम्पत्ति है।

सम्पत्ति की बात आने पर मुझे लगता है कि दाऊ साहब ने राजनीति के मैदान में अपनी स्वत: की सम्पत्ति को जिस प्रकार स्वाहा किया है ऐसे राजनीतिज्ञ इस देश में बिरले ही होंगे। बीच-बीच में दो-तीन प्रकरणों को लेकर समाचार-पत्रों में जिस प्रकार एकतरफ़ा, बढ़ा-चढ़ाकर समाचार प्रकाशित कर दाऊ साहब के ऊपर अँगुली उठाई गई। हमने सम्पूर्ण सत्य-निष्ठा और सही आँकड़ों के साथ हर आरोप का जवाब दिया है और समय के साथ जो एकाध बिन्दु शेष रह गये हैं वे भी स्पष्ट हो गये। मुझे आश्चर्य होता है कि ऐसे चरित्र हनन के घृणित प्रकरण, झूठे लांछन और अपयश का प्रचार करने वाले लोगों को दाऊ साहब निकट से जानते पहचानते हैं फिर भी उनकी सहायता करते हैं। उनके अनुकरणीय और आदर्श चरित्र के विरुद्ध यह दुष्प्रचार कर उन्हें क्या लाभ हुआ? यह तो मैं नहीं जानता किन्तु यह सोचकर मन में बहुत पीड़ा होती है। मैंने दाऊ साहब के चरित्र को आदर्श और अनुकरणीय इसलिए कहा है क्योंकि इतना सब होते हुए भी उन्होंने कभी किसी के प्रति न तो कोई नाराज़ी व्यक्त की, न कोई प्रतिहिंसा की भावना और न ही उनके विरुद्ध कुछ कहा न सोचा। ऐसी मन: स्थिति और विशाल हृदय और दु:ख सहन करने की यह शक्ति शायद उन्होंने गौतम बुद्ध या महात्मा गाँधी से ही प्राप्त की है। इस विषय पर अनेक वरिष्ठ मनीषियों ने निश्चय ही कहीं न कहीं अपने लेखों में उल्लेख किया होगा। मेरा अधिक कहना संभवत: अप्रासंगिक होगा।

आज जब मैं दाऊ साहब के बारे में सोच रहा हूँ तो मुझे उनके व्यक्तित्व के अनेक पहलू अलग-अलग दृश्य में दिखाई दे रहे हैं। कहीं पिता का आशीर्वाद और अपेक्षा, कहीं भाई का स्नेह और मार्गदर्शन और कहीं एक साथी जैसी सलाह। जो मैंने अनुभव किया है इस सारे स्वरूप और उदाहरण से हर पल कुछ न कुछ सीखने को मिला है। प्रकृति के वे निकट हैं। शायद सबसे अधिक प्यार भी वे प्रकृति से ही करते हैं। मैंने जब से होश संभाला, यही पाया कि जब कभी भी अवकाश के कुछ क्षण उन्हें मिलते थे, वे हमें जंगल में ले जाते थे वहाँ फल-फूल, पौधों के बारे में भी चर्चा होती थी। वनस्पति विज्ञान का भी दाऊ साहब को अच्छा ज्ञान है। प्रकृति के प्रति वह प्रेम का ही कारण था कि वे अपने अवकाश के क्षण किसी अच्छे बगीचे अथवा घने जंगल में ही बिताना पसंद करते थे। उनके जीवन में अनुशासन का बहुत अधिक महत्व है। बचपन में शिकार के भी अवसर मिले पर इसमें भी उनका अपना सिद्धांत है। जब कभी हम उम्र साथियों के साथ या भाईयों के साथ हम जंगल में शिकार की इच्छा व्यक्त करते थे तो दाऊ साहब की अनुमति लेना एक अपरिहार्य आवश्यकता थी। यदि हमें

एक जानवर शूट करने की परमीशन मिलती थी तो हमें अपनी लक्ष्मण रेखा वहीं खीच देनी पड़ती थी। एक घटना का मुझे स्मरण है। जब मैं अपने भाईयों और हम उम्र साथियों के साथ जंगल में मंगल मना रहा था। तब हमें एक हिरण मारने की अनुमति दी गई थी किन्तु कुछ बालपन और कुछ उत्साह में हम लोगों ने चार हिरण मार गिराये थे। शिकार के बाद हम लोग विश्राम लेने पहुँचे तो रात आधी से ज़्यादा बीत चुकी थी। शायद दो या ढाई बज गये थे लेकिन दाऊ साहब जाग रहे थे। हमने देखा सर्दी के मौसम में अलाव लगाये वे आग ताप रहे थे और उनके चेहरे पर कुछ ऐसी दृढ़ता और नाराज़ी थी जिससे हम सबको यह समझते देर नहीं लगी कि आज हमें निश्चित ही दाऊ साहब का कोपभाजन बनना पड़ेगा। हम सब अपने अपराध बोध से ग्रसित थे।

मेरे जीवन में उन्होंने कभी मुझ पर हाथ नहीं उठाया लेकिन कभी-कभी कुछ ऐसी घटनायें हुई हैं जब उनके इशारे से, या उनके स्वर से, या बिल्कुल न बोलने से, या उनके डाँटने मात्र से भूल अनुभव कर लेते थे कि जो कुछ हमने किया है उससे वे प्रसन्न नहीं है। एक बार मैं अपनी फीयेट कार लेकर स्कूल चला गया। स्कूल में कोई फंक्शन था। घर पर कह गया कि एक घंटे में आता हूँ। मुझे पता नहीं था कि उस दौरान उन्हें कहीं जाना था। स्कूल में समय का पता ही नहीं लगा और जब दो घंटे बीत गये, काफ़ी देर के बाद जब मैं घर लौटा तो दाऊ साहब का चेहरा देखते ही मैंने अपनी ग़लती अनुभव की और मन ही मन भय हुआ कि अब डाँट पड़ेगी लेकिन उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा– "दूसरों का भी समय क़ीमती होता है, उसका ध्यान रखा करो।" उस दिन के बाद मैंने इस बात की गाँठ बाँध ली और यह सबक सीख लिया कि यदि मैंने किसी को समय दिया है तो मेरी पूरी कोशिश यही रहती है कि निश्चित समय पर पहुँच जाऊँ और यदि किसी अतिथि को समय दिया है तो मेरी भरपूर कोशिश होती है कि उन्हें प्रतीक्षा न करनी पड़े।

मैंने उनसे यह भी सीखा कि किसी भी व्यक्ति के सम्मान को पद-प्रतिष्ठा या धन से नहीं आँकना चाहिए। भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में संपत्ति ही सम्मान का आधार बन गई है लेकिन दाऊ साहब के साथ ऐसा नहीं है। वे व्यक्ति की कर्तव्य-निष्ठा आदि के साथ उस व्यक्ति के व्यक्तित्व और चरित्र को महत्व देते हैं। उनकी नज़रों में कोई छोटा या बड़ा नहीं है। वे आगत् अतिथियों का सम्मान-पूर्वक, समान-भाव से स्वागत करते हैं। मुझे याद है जब हम लोग शिकार करने जाया करते थे तब सीधी जिले के महुआ गाँव के निकट के घने जंगल में स्थित फॉरेस्ट रेस्ट हाउस में रुका करते थे। इस क्षेत्र में आदिवासियों का बाहुल्य है। उन दिनों उन आदिवासी भाइयों के मुखिया थे गाँव महुआ के मुखिया। वे इस क्षेत्र के लोकप्रिय और प्रतिष्ठित मुखिया थे। वहाँ उनके पास न तो जीप थी, न कार थी, न मोटर साइकिल, न साईकिल और न ही गाड़ी या घोड़ा। लेकिन आदिवासियों के मुखिया तो वे ही थे। हम जब कभी भी फॉरेस्ट रेस्ट हाउस में गये महुआ गाँव के मुखियाजी दाऊ साहब से मिलने आते थे। आपस में दोनों बातचीत करते थे। उन मुखियाजी के प्रति दाऊ साहब के मन में कितनी आदर भावना थी, इसका अनुभव हमें तब हुआ जब एक बार मुखियाजी ज़मीन संबंधी किसी काम से भोपाल आये थे। उस समय दाऊ साहब संभवत: शिक्षामंत्री थे। किसी नौकर ने आकर बताया कि महुआ गाँव के मुखियाजी आये हैं। दाऊसाहब अपना काम छोड़कर उत्साह के साथ गये, उन्हें साथ लेकर अंदर आये और ड्राइंग रूम में बैठाकर आदेश किया कि वे मुखियाजी के साथ ही भोजन करेंगे। भोजन के बाद दाऊसाहब ने अपने निवास पर ही मुखियाजी को ठहराया। उनका जो भी काम था उसे पूरा कराया और उसके बाद अपनी गाड़ी से उन्हें बस स्टैण्ड तक पहुँचाया और उन्हें विदा करने बाहर तक आये। इस सारी घटना को देखकर मुझे लगा कि मनुष्य को पद और पैसे से नहीं, उसके व्यक्तित्व और चरित्र से सम्मान देना चाहिए। हर व्यक्ति के जीवन में धूप-छाँव आती ही रहती है और राजनीति में विशेषकर सड़क से सिंहासन की दूरी अधिक भी नहीं होती। आज जो सड़क पर है वह कल सिंहासन

पर बैठ जायगा और जो आज सिंहासन पर है वह कब सड़क पर आ जायगा, कुछ नहीं कहा जा सकता है। इसलिए हमारे सामने जो भी व्यक्ति आता है उसका हमें अतिथि सत्कार करना चाहिए।

जब तक मध्यप्रदेश में शिकार पर प्रतिबंध नहीं लगा था उसके पूर्व दाऊ साहब शिकार पर जाते रहे। उनके शिकार और अचूक निशाने की अनेक कहानियाँ हैं यदि उन्हें सुनाना शुरू करूँ तो बहुत वक़्त लगेगा। बस यूँ समझकर — "हरि अनंत, हरि कथा अनंता।" मैं कभी-कभी अनुभव करता हूँ कि शिकार के समय शिकारी साथियों के अलावा जो भी सहयोगी साथ होते थे, जिस जंगल के वनवासियों से मिलते थे और यात्रा के दौरान जो भी दीन-हीन, दरिद्र वर्ग के नागरिकों से सामना होता था, उन सबका दाऊ साहब के चिंतनशील और भावनात्मक मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव है। मुझे कभी-कभी लगता है कि किशोर अवस्था से युवा अवस्था के बीच संभवत: सन् 1960 या 1962 तक शिकार के लिए घने जंगलों में झाँकते हुए जिन आदिवासियों के दु:ख और दर्द की वेदना दाऊ साहब के मन-मस्तिष्क में उमड़ती-घुमड़ती रही होगी, सम्भवत: उसी के प्रकाश में उन्होंने खरसिया आम चुनाव के बाद सन् 1988 में तेंदूपत्ते का राष्ट्रीयकरण कर इस प्रदेश के लाखों आदिवासियों के जीवन में ख़ुशियों का खज़ाना भर दिया। उनका यह निर्णय झुग्गी-झोपड़ीवासियों को भूखण्डों का मालिक़ाना हक़ दिये जाने जैसा ही क्रान्तिकारी निर्णय है, जो इस प्रदेश और देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक इतिहास में स्मरणीय रहेगा।

एक और घटना सन् 1967 की है। उस समय जो भी घात-प्रतिघात हुए किन्तु निर्णय प्रतिकूल रहा और दाऊ साहब चुरहट चुनाव में कुछ सौ मतों से पराजित हो गये। उस समय मेरे बड़े भाई श्री अभिमन्यु सिंह और मामासाहब जिला मुख्यालय सीधी में ही थे। जब सब लोग लौटकर भोपाल आये तो जाने क्यों मैं बहुत अधिक रोया, लेकिन भाई नहीं रोये थे। मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि क्या हुआ और कैसे हुआ। रात को जब भोजन पर बैठे और दाऊ साहब को बताया गया कि मैं दिन में रोया था तो उन्होंने जब मेरा उदास चेहरा देखा तो शांत भाव से एक ही बात कही— "हममें कोई कमी रही होगी, जिसने यह फैसला दिया और जीवन में हमें इससे सबक सीखना चाहिए और फिर काम में जुट जाना चाहिए।" आज उनका यह कथन मेरे लिए प्रेरक प्रसंग बन गया है। मैं चार बार विधानसभा चुनाव जीता और एक बार "भोजपुर" से भाजपा के पूर्व मुख्यमंत्री आदरणीय श्री सुन्दरलाल पटवा से जब पराजित हुआ तो मुझे हारने का कोई दु:ख नहीं हुआ। लेकिन अपने-आपको सोचने, विचारने और चिंतन करने पर ऐसे मोड़ पर खड़ा पाया, जहाँ अनुभव किया कि कुछ भी, कहीं न कहीं, कोई न कोई वजह थी जिसके कारण मुझे इस हार से भी सबक सीखना चाहिए और आगे बढ़कर इन ताक़तों के ख़िलाफ़ और अधिक ताक़त से मोर्चा लेना चाहिए।

जब कभी हम लोग साथ में यात्रा करते हैं या फ़ुरसत में बैठकर बतियाते हैं तब वे कोई न कोई घटना या संस्मरण ज़रूर सुनाते हैं। जब छोटा था तो वे अपनी कहानी सुनाते थे। अनेक प्रकार की ऐसी कहानियाँ, जिन कहानियों में कोई न कोई शिक्षा, महान संदेश, कोई महानतम् प्रेरणा छिपी होती थी। उन्होंने जब भी कुछ कहा, यही समझाया कि ईश्वर ने हमें मनुष्य योनि दी है। हमें उसका शुक्रगुज़ार होना चाहिए। इस मनुष्य जीवन की सार्थकता तभी है जब हम दूसरों के लिए कुछ करें। यह जीवन नश्वर है। इस जीवन को सार्थक कार्यों और दीन-दु:खियों की सेवा में लगाना चाहिए। जब कभी हमारे निर्णय का क्षण हो, धर्मसंकट हो, यही सोचना चाहिए कि हम जो कुछ कर रहे हैं उससे इस समाज का लाभ हो, ग़रीबों का लाभ हो। ग़रीबों का लाभ होता है तो फिर ऐसा फ़ैसला करने में कोई चूक नहीं होनी चाहिए क्योंकि ग़रीब के पक्ष में किया गया हर फ़ैसला उचित होता है और उसे भगवान का संरक्षण और शुभाशीष दोनों ही प्राप्त होते हैं। संभवत: यही कारण है कि उन्होंने जब कभी भी और जितने

भी जन कल्याण के क्रान्तिकारी निर्णय लिए, उन्होंने कभी यह चिन्ता नहीं की कि उसका परिणाम क्या होगा।

प्रातः स्मरणीय पूज्य दादाजी का पैतृक गुण कहूँ या आदरणीय दादी साहिबा की प्रेरणा, लेकिन यह सच है कि दाऊ साहब कभी भी किसी भी व्यक्ति से, चाहे वह कितना ही छोटा आदमी क्यों न हो, उसके लिये दया, सद्भाव और सहयोग या आशीर्वाद अवश्य देते हैं। कभी कोई अनेक वर्षों बाद भी यदि कोई सेवक या परिचित सामने आ जाय तो उससे अत्यधिक आत्मीयता से मिलते हैं। उसके कार्यों में सुख का अनुभव करते हैं और यही आत्मसुख उन्हें अधिक शक्ति प्रदान करता है।

आज मैं राजनीतिक जीवन में जिन सीढ़ियों तक पहुँचा हूँ। क़दम-क़दम पर, पल-पल पर मुझे अपने आदरणीय पिताजी-दाऊ साहब श्री अर्जुनसिंह की प्रेरणा और संबल प्राप्त होता रहता है। वे कभी किसी भी कार्य में, किसी भी निर्णय के किसी क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करते हैं। जब कभी पूछता भी हूँ तो उनकी राय यही होती है– "तुम स्वयं उचित-अनुचित का विचार कर अपने विवेक से निर्णय करो।" हम चाहते हैं कि उनके आदर्श और अनुकरणीय व्यक्तित्व का जितना भी अंश हमें विरासत में मिला है, भरपूर प्रयत्न है कि हम उनके बताये मार्ग पर चलते रहें और कभी कोई ऐसा ग़लत काम नहीं करें जिससे उनकी भावना को ठेस लगे। दाऊ साहब के यशस्वी जीवन को अपने और अपने परिवार के लिए ही नहीं, सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए बहुमूल्य मानते हुए, मैं उनके सुखद, यशस्वी, शतायु जीवन के लिए भगवान् से प्रार्थनारत् हूँ।

☐ *अजयसिंह—श्री अर्जुनसिंह के कनिष्ठ पुत्र*

कुछ आत्मीय उद्‌गार

ਸਾਡਾ ਸਮਿਤਾਏ ਕਲੱਬ

मानवीय गुणों से संपन्न व्यक्तित्व

प्रोफ़ेसर कल्याणमल लोढ़ा
(पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

श्रीमद् भगवद् गीता के सतरहवें अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं –

मन:प्रसाद: सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रह:।
भावसंशुद्धिरित्येत्तपो मानसमुच्यते॥

(मानस तप है, मन: प्रसाद, सौम्य भाव, मौन व आत्म-विनिग्रह के साथ भाव-शुद्धि)

प्रथम बार जब **छपते-छपते** दैनिक के वार्षिकोत्सव में, मैं श्री अर्जुनसिंह से मिला था, तब मन में संकोच था। वे उत्सव का उद्घाटन करने आये थे और मैं अध्यक्षता कर रहा था। लगभग एक घंटे के सान्निध्य में भी मैंने यह अनुभव नहीं किया कि मैं देश के शीर्ष राजनेता के पार्श्व में बैठा हूँ– भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के वरिष्ठ मंत्री के पास। उनकी सरलता, सहजता और सुलभता को देखकर मन ही मन सोचता रहा– 'सबहिं मानप्रद स्वयं अमानी'– तुलसी बाबा ने ठीक ही कहा था कि यही पुरुष की सच्ची परख और पहचान है। मुझे स्वत: श्री कृष्ण का उपयुक्त वचन स्मरण हो आया।

अनेक बार, अनेक अवसरों पर अनेक मूर्धन्य राजनेताओं से, मंत्रियों से मिला हूँ। पूर्व परिचय के बावज़ूद, सत्तारूढ़ होने पर लगा जैसे कोई परिचय ही नहीं है– कृत्रिमता, मिथ्यात्व, अभिमान, (नहीं अहंकार ही कहना चाहिए) एक अलंघ्य दूरी और औपचारिकता कथनी कुछ करनी कुछ। पर श्री अर्जुनसिंह से मिलने पर जो अनुभव हुआ वह नितांत भिन्न था– लगा जैसे मैं अपरिचित नहीं हूँ। न मान, न अभिमान, न अवमान। मन में उनके व्यक्तित्व की छाप पड़ गई।

उन्होंने संक्षेप में अपना उद्घाटन भाषण दिया– सारगर्भित, भाव केंद्रित, विचार-प्रधान पर अनुद्वेग के साथ– न कोई डींग, न थोथे सुझाव। अच्छा लगा, बहुत अच्छा लगा। जब मैंने पास में बैठी हुई श्रीमती वीणा वर्मा से उनके व्यक्तित्व और भाषण की प्रशंसा की, तो उनकी प्रतिक्रिया थी– 'वे ऐसे ही हैं, गंभीर संतुलित आडम्बर रहित पर सौम्य और सरल।' मनस तत्व की इस स्वच्छता ने मुझे मोह लिया।

हठात् मुझे याद आया कि वे भी तो प्रयाग विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। उसी दिन सांध्य काल में कलकत्ता के प्राच्य छात्र संघ का वार्षिकोत्सव था। मैंने उनसे निवेदन किया यदि वे कुछ मिनटों के लिए भी आ सकें, तो उत्सव प्रभावी और प्रेरक बनेगा। मैं जानता था कि यह संभवं नहीं, क्योंकि उनका कार्यक्रम संकुल है– पर सच कहूँ– यह उनकी प्रकृति को जानने और पहचानने का एक उपक्रम मात्र था। आश्चर्य हुआ जब उन्होंने डायरी देखी– सोचा और झट कहा "अभी ही राजभवन जाना है, आना तो चाहता हूँ पर यहीं विलंब हो गया, आप अन्यथा न लें मैंने बात आगे बढ़ाई– आप कुछ संदेश ही दे दें। काग़ज़ उपलब्ध नहीं था, निमंत्रण-पत्र के लिफ़ाफ़े पर ही लिखना प्रारंभ

किया। प्रयाग विश्वविद्यालय की शैक्षिक परंपरा, गौरव संपदा की प्रशंसा करते हुए वर्तमान संक्रमणकाल में उन आदर्शों का स्मरण कर उन्हें जीवन में रूपांतरित करने की अभीप्सा बताई और उत्सव में सम्मिलित न होने की असमर्थता के लिए क्षमा। मैं सुखद आश्चर्य में डूब गया, फिर सुना— आप इसे दे दें और मेरी ओर से क्षमा भी माँग लें। मैं मुग्ध हो गया, मैं ही नहीं समारोह में इस संदेश को सुनकर सभी प्राच्य छात्र मुग्ध हो गये— आह्लादित।

उसी दिन **इंडियन रायटर्स एसोसिएशन** की ओर से एक विचार संगोष्ठी आयोजित की गई थी। विषय था 'वर्तमान युग में गाँधी की प्रासंगिकता'। श्रीमान अर्जुनसिंह मुख्य अतिथि थे और बीज भाषण भी उन्हें ही देना था। वे आये, अँग्रेज़ी में बोले— शुद्ध उच्चारण, मँजी हुई भाषा, सधे हुए विचार, प्रसंगानुकूल महात्माजी के सिद्धांतों का विश्लेषण। संक्षेप में, पर मर्यादित दृढ़ता से अपना पक्ष— "प्रासंगिकता वर्तमान में नहीं सदैव-सदैव रहेगी। अपनी सनातनता के साथ, मानवीय मूल्यों की अवधारणाओं के कारण नैतिक आदर्शों की स्थापना के निमित्त मानवीय अस्मिता की खोज व उपलब्धि के लिए। भावानुवाद मेरा है। प्रबुद्ध श्रोता समाज एकाग्र और दत्तचित्त होकर सुन रहा था। वक्तव्य की समाप्ति पर मैंने उन्हें कहा 'इट इज़ ए ट्रीट टू लिसन टू यू'। उत्तर था 'थैंक यू, आई एम हैपी, यू हैव लाइक्ड इट' और फिर वही सौम्य भाव, 'मुझे शीघ्र जाना है, क्षमा करें, आपको सुन नहीं सकूँगा' सहज और सरल स्थिति के साथ अकृत्रिम अभिव्यक्ति। मैं सोचता रहा— क्या सचमुच मैं राष्ट्र के वरिष्ठ नेता और केंद्र के प्रमुख मंत्री के पास बैठा हूँ— पर कल्पना नहीं, सत्य था।

श्री अर्जुनसिंह **केंद्रीय हिन्दी संस्थान** के अध्यक्ष हैं। श्री शंकरदयालसिंह उपाध्यक्ष। मैं भी उससे संबद्ध हूँ। श्री शंकरदयालसिंह उनकी प्रशंसा करते हैं— हिंदी प्रेम की जागरूकता की, उत्साह की, सरल व्यक्तित्व की कार्य निपुणता की। एक बैठक में मुझे किसी ने स्वत: सम्पर्क कर यह मिथ्या सूचना दे दी कि बैठक में सम्मिलित होने की आवश्यकता या अपेक्षा नहीं है। मैं नहीं गया। दूसरी बार जब बैठक हुई तो माननीय मंत्री ने कहा— आपको पिछली बार किसी ने मिथ्या सूचना दी थी। समीक्षा समिति के प्रतिवेदन की सभी प्रशंसा कर रहे हैं। उपाध्यक्षजी तो गद्‌गद हैं। संस्थान के कार्यकलाप का अध्ययन करने के लिए एक समिति गठित की गई थी— मैं उस समिति का अध्यक्ष था। बैठक के प्रारम्भ में मैंने एक दो प्रस्ताव रखे। 21वीं सदी में शिक्षा पद्धति व भाषा शिक्षण की नूतन विधि पर विचार करना चाहिये। श्रीमान मंत्री (अध्यक्ष) ने उसे तत्काल स्वीकार किया। उपयोगी प्रस्ताव है— क्रियान्वित होना चाहिये। उसी दिन पुन: उनके निवास पर निर्धारित समय से मिला। न प्रतीक्षा, न आव न ताव। उनके रुद्राक्ष की माला के मनके बहुत ही पावन, शुद्ध और श्रेष्ठ लगे। मैंने उनसे कहा कि यह माला अभूतपूर्व है। वे हँसे और धन्यवाद दिया। मुझे लगा कि कहीं अपनी सीमा तो नहीं लाँघ गया, पर नहीं। उनका औदार्य सामने था।

यह सही है कि मेरा श्री अर्जुनसिंह से परिचय अपेक्षाकृत नया है, पर कभी-कभी ऐसा होता है कि परिचय काल खण्ड से नहीं मापा जाता। उसकी अवधि रेखा नहीं होती। वह निर्भर करता है मनुष्य की कृति, प्रकृति और भाव सम्पदा पर। प्रसिद्ध चिन्तक मिलर ने लिखा है— "जो लक्षणों से मानवीय है, अलौकिक नहीं, वह जो मानवीय प्रकृति की गरिमा से युक्त है। सत्ता से ऊपर उठकर वह सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाता है और दूसरों को सर्वाधिक संतोष प्रदान करता है। वही वास्तव में मानववादी है— मानवीयता का मूर्त रूप।" मानवीयता की यह महिमा केवल संतों और सिद्धों की सम्पत्ति नहीं है, वह सहज जिजीविषा से युक्त विवेक की देन है और विवेक एक ऐसा गुण है, जो जीवन को असाधारण क्षमता प्रदान करता है, सत्ता सम्पत्ति वहाँ गौण हो जाती है— मुख्य रहती है धारणा और अवधारणा। ललित विस्तार में कहा गया है—

सुखो विवेश तुष्टस्य श्रुत धर्मस्य पश्यतः।
अव्याध्यं सुखं लोके प्राणि भूतस्य संयम॥

इस संसार में उन ज्ञानियों को ही सुख है, जिनका चित्त विवेकपूर्ण हैं, उन्हीं का सुख अव्याहत है, जो दंभी नहीं है संयमी है, सरल और स्वच्छ। यही शुद्धाचार है।

मैं श्री अर्जुनसिंह के इसी मानुष रूप से परिचित हूँ। उनकी नीति से जानता हूँ वे कुशल प्रशासक हैं, प्रबुद्ध चिंतक हैं 'प्रिय भारत मातरम्' के विश्वासी, दूरदर्शी हैं, कला साहित्य में उनकी गहरी अभिरुचि है, जागरूक नेता हैं, पर मैंने उन्हें जिस रूप में देखा है वह है 'मनुर्भव' की सहज प्रतिष्ठा-सरलता, सौहाद्र, सौमस्य के धनी, मितभाषी नियमबद्ध, वाक् संयमी, उदारचेता एवं संस्कृति के महान् मूल्यों के समर्थक। आज चारों ओर से ऐसे नेता दिखाई देते हैं जो 'ज्ञान लव दुर्विग्ध' होकर भी अहंकारी हैं, संवेदनहीन हैं अथवा वृथा गम्भीर एवं अत्यंत आत्मकेंद्रित। मैं इसे लक्ष्य संधान का साधन नहीं मानता जीवन प्रत्येक अवस्था में मूल्यों की श्रेष्ठता से जुड़ा रहता है। इसी से व्यक्तित्व प्रेरक बनता है, कृतित्व प्रभावी। आत्मविश्वास की यह साधना, ख़लील जिब्रान कहता है– इन सोपानों पर चलती है भक्ति, आस्था, संकल्प और विश्वास जहाँ जीवन बाह्य ही नहीं, आंतरिक पूर्णता भी प्राप्त करता है और यही तो परम लक्ष्य है। श्री अर्जुनसिंह में इन्हीं सोपानों के साथ, मूल्यों की श्रेष्ठता और आंतरिक पूर्णता का व्यक्तित्व देखा है, और यह उपलब्धि भी कम नहीं।

☐ *प्रोफ़ेसर कल्याणमल लोढ़ा— भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति। इंडियन रायटर्स एसोसिएशन, कलकत्ता के चेयरमेन, विद्वान् लेखक, चिन्तक, विचारक। देश के चोटी के समाचार पत्रों, पत्रिकाओं में सतत सामयिक विषयों पर लेखन। प्रकाण्ड विद्वान्-ओजस्वी वक्ता।*

यह एक पड़ाव है, विराम नहीं

मुरारीलाल अग्रवाल

बिलासपुर मेरी और स्वर्गीय श्री श्रीकांत वर्मा की जन्मभूमि है। उन्हीं के वैयक्तिक और पारिवारिक सम्बन्धों के साथ जो आत्मीयता विकसित हुई उसके कारण मुझे चार्टर्ड एकाउण्टेंट के जोड़-घटाने के व्यवसाय के विरुद्ध साहित्य के प्रति अनुराग हुआ। मैं इसका श्रेय आदरणीय भाई श्रीकांतजी को ही दूँगा कि उनसे प्राप्त प्रेरणा के कारण साहित्य के प्रति मेरा अनुराग बढ़ता ही गया।

श्री श्रीकांतजी ने 1982 में इंडियन रायटर्स एसोसिएशन की स्थापना की थी। कलकत्ता की पश्चिम बंगाल इकाई का गठन उनके मार्गदर्शन में ही किया गया था। उनकी इच्छा थी कि सभी विचारधाराओं, सभी जाति-धर्म और भाषाओं के साहित्यकारों को एक मंच पर आना चाहिए। उनके इस स्वप्न को साकार करने के लिए मैं इंडियन रायटर्स एसोसिएशन के गठन के समय से ही इसमें सक्रिय रहा। साहित्यकारों के सहयोग से क्षेत्रीयता, धर्मान्धता और भाषाई दुराग्रह के विरुद्ध संघर्ष करने की दिशा में हमने काफ़ी काम किया है। सभी भाषाओं के लेखकों, कलाकारों और बुद्धिजीवियों को साथ लेकर हमने राष्ट्रीय एकता के स्वर को चारों दिशाओं में फैलाने की कोशिश की है। आज जबकि इंडियन रायटर्स एसोसिएशन अपनी घोषणा के अनुसार केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय श्री अर्जुनसिंह को अभिनंदन ग्रन्थ भेंट करने जा रहा है, मुझे इस बात का सुख और संतोष है कि इंडियन रायटर्स एसोसिएशन जिस लक्ष्य को लेकर सतत क्रियाशील रहा है; उस दिशा में यह एक सार्थक प्रयास है कि हम संस्कृतिधर्मी राजनेता के रूप में ऐसे व्यक्तित्व का सम्मान करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं जिनके साहित्य और संस्कृति के प्रेम में कोई राजनीति नहीं बल्कि राष्ट्रीयता के संदर्भ में संस्कृतिधर्म निर्वाह की भावना है।

जन्म स्थली बिलासपुर होने के कारण परिवार और परिजन बिलासपुर में ही हैं। नियमित यात्राओं के दौरान कई ऐसे अवसर आये जब मुझे श्री अर्जुनसिंह को निकट से देखने और सुनने का अवसर प्राप्त हुआ; किन्तु वे सभी कार्यक्रम राजनीतिक थे। अनेक बार सुनने के बावज़ूद उन्हें समझने का जो पहला अवसर मुझे मिला वह था स्वर्गीय श्री श्रीकांत वर्मा की स्मृति में स्नेहीजनों की बैठक में दिया गया उनका संक्षिप्त किन्तु मार्मिक उद्‌बोधन– जिसे सुनकर मैं अनजाने ही उनके प्रति आत्मीय सम्मानपूर्ण समर्पण भाव से स्वयं को उनसे जुड़ा हुआ महसूस करने लगा। 1988 में जब इंडियन रायटर्स एसोसिएशन की ओर से कलकत्ता में सार्क देशों के साहित्यकारों का सेमीनार आयोजित किया गया तो उसमें संस्था की ओर से हमने श्री अर्जुनसिंह को भी आमंत्रित किया था। उन दिनों वे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे; किन्तु व्यस्तता के कारण वे स्वयं तो नहीं पधार सके; उन्होंने अपने मंत्रिमंडल के एक साथी को इस सम्मेलन में उनका प्रतिनिधित्व करने के लिए चुनकर भेजा। हमारी इस भावना को और अधिक बल मिला कि श्री अर्जुनसिंह न केवल साहित्य और संस्कृति से जुड़े कार्यक्रमों के प्रति अपनत्व अनुभव करते हैं बल्कि उन कार्यक्रमों की गरिमा को बनाए रखने में कोई ख़ामी नहीं छोड़ते हैं। उनके प्रतिनिधि तत्कालीन राज्यमंत्री श्री विष्णु राजोरिया ने सार्क देशों

के साहित्यकारों के सम्मेलन को संबोधित किया और उनके धाराप्रवाह, सरस उद्‌बोधन से सभी श्रोतागण सराहना के स्वर में आश्चर्यचकित रह गये, क्योंकि राजनेताओं के बारे में आमतौर पर यही माना जाता है कि उन्हें सार्वजनिक भाषणों के अलावा साहित्य का भी कोई ज्ञान या अनुभव नहीं होता है। इस सम्मेलन में श्री राजोरिया ने माननीय श्री अर्जुनसिंह का जो संदेश पढ़कर सुनाया था, उसे सुनकर सभी श्रद्धा से अभिभूत हो गये थे।

श्री श्रीकांत वर्मा स्मृति न्यास में श्री अर्जुनसिंह के साथ एक सदस्य मैं भी हूँ। यह केवल श्री अर्जुनसिंह की प्रेरणा का ही परिणाम है कि हम लोग प्रतिवर्ष श्रीकांत वर्मा स्मृति पुरस्कार का आयोजन करते आ रहे हैं और हर आयोजन में श्री अर्जुनसिंह अपने पुराने मित्र को श्रद्धाभाव से स्मरण करने के लिये आते हैं।

सितम्बर 1991 में कलकत्ता में "आज गाँधीजी की प्रासंगिकता" विषय पर इंडियन रायटर्स एसोसिएशन ने परिसंवाद का आयोजन किया था जिसमें मूर्धन्य साहित्यकार श्री सुभाष मुखोपाध्याय, श्री हुसैनउर्रहमान, प्रोफ़ेसर आशिष सान्याल, प्रोफेसर श्री कल्याणमल लोढ़ा आदि साहित्य मनीषी सम्मिलित हुए थे। बुद्धिजीवी और साहित्यप्रेमी श्रोताओं की उपस्थिति में "आज के संदर्भ में गाँधीजी की प्रासंगकिता" विषय पर श्री अर्जुनसिंह ने जो उद्‌बोधन दिया वह संभवत: इस विषय पर अधिकारपूर्वक बोलने वाले अनेक विद्वानों की अभिव्यक्ति से भी अधिक गहराई लिए और विवेचनापूर्ण था। इंडियन रायटर्स एसोसिएशन के माननीय अध्यक्ष एवं महामंत्री से हुई चर्चा तथा अन्य सभी साहित्य सेवियों के विचारों के प्रकाश में हमने संकल्प लिया कि संस्कृतिधर्मी राजनेता श्री अर्जुनसिंह का अभिनंदन किया जाना चाहिए। एक विचार यह था कि संस्था की ओर से उनका नागरिक अभिनंदन किया जाए और दूसरा विचार यह था कि उनके कृतित्व और व्यक्तित्व को लेकर एक अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय। संयोग से इस परिसंवाद के अवसर पर भी श्री अर्जुनसिंह के विश्वस्त और निकटतम साथी श्री विष्णु राजोरिया उपस्थित थे। उनसे चर्चा के बाद यह निर्णय लिया गया कि इंडियन रायटर्स एसोसिएशन की ओर से अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशित किया जाना चाहिए। तद्‌नुसार अभिनंदन ग्रन्थ समिति का गठन किया गया और चूँकि श्री अर्जुनसिंह की मुख्य कर्मभूमि मध्यप्रदेश रही है इसलिए इस समिति का मुख्यालय भोपाल में ही रखा गया।

साहित्यकारों और स्नेहीजनों के सहयोग से लिये गए इस संकल्प को साकार करने की दिशा में एक ओर जहाँ श्री राजोरिया और उनके सहयोगी अनवरत् कार्य करते रहे; वहीं मुझे भी लगातार जानकारी प्राप्त करने के लिए भोपाल आना-जाना पड़ा। जैसे-जैसे सामग्री संकलित होती गई और श्री अर्जुनसिंह के व्यक्तित्व के विविध आयाम सामने आते गए, हम लोगों ने अनुभव किया कि एक विराट व्यक्तित्व को शब्दों के संसार में बाँधना कितना दुष्कर कार्य है।

एक ओर जहाँ श्रीकांत वर्मा स्मृति पुरस्कार में लगातार उन्हें देखता-सुनता रहा; वहीं दूसरी ओर आदरणीय श्रीमती वीणा वर्मा के यहाँ भी ऐसे प्रसंग आये जब उनको निकट से देखने-सुनने का भी मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। सितम्बर 1991 में किये गये अभिनंदन ग्रन्थ प्रकाशन के संकल्प के बाद जब कभी भी मैं और श्री राजोरिया उनसे मिलने के लिए गए तो हम लोगों को समय अवश्य मिलता, किन्तु कभी एक या दो मिनट से अधिक बात नहीं हो पाई। मैं यह देखकर आश्चर्यचकित था कि बहुत कम बोलते हुए भी वे आगन्तुक अतिथि को देखकर ही बहुत कुछ समझ लेते हैं। उनकी पैनी आँखों से कुछ भी छिपाया नहीं जा सकता। सत्यनिष्ठा, व्यवहारकुशलता और अतिथियों के प्रति सम्मान का भाव उनको अन्य राजनीतिज्ञों से बिलकुल अलग परिवेश में स्थापित करता है। मैं उनके पुस्तकों के प्रति प्रेम से भी परिचित हूँ। वे अपनी व्यस्त यात्राओं के दौरान हमेशा अध्ययनरत रहते हैं।

मध्यप्रदेश में निर्माण और विकास के इतिहास में श्री अर्जुनसिंह का मुख्यमंत्रित्वकाल उल्लेखनीय स्वर्णिम अध्याय के रूप में सदैव स्मरणीय रहेगा। उन्होंने शिक्षकों को उनकी गरिमा का पद और वेतनमान दिया। भूमिहीनों को भूखण्ड

नि:शुल्क उपलब्ध कराये। झुग्गी-झोपड़ीवासियों को रातों-रात भूमि का मालिक़ाना हक़ सौंप दिया। उनके अंधेरे जीवन को रोशनी दी। गाँव के कोटवार और शहर के सिपाही दोनों क़ानून-व्यवस्था के सबसे पहली और सबसे छोटी इकाई हैं, जिनके दु:ख-दर्द का निवारण करने के लिए उन्हें अनेक सुविधायें मुहैया कराई। रिक्शा चालकों को ऋण उपलब्ध कराये गये। हरिजन आदिवासी छात्रों की छात्रवृत्ति में वृद्धि कर उनके अध्ययन के समुचित अवसर उपलब्ध कराये तथा उनके लिए मेडिकल और इंजीनियरिंग कॉलेज में अधिक सीट आरक्षित कराई गई। आपने **भारत-भवन** को स्थापित कर भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में एक ऐसा सांस्कृतिक केंद्र स्थापित किया जिसे आज भारतीय संस्कृति का तीर्थस्थल कहा जाता है। विश्व के जितने भी रचनाधर्मी कलाकार हैं वे सब **भारत-भवन** के कारण भोपाल को जानते हैं और वे इससे भी परिचित हैं कि इस विशाल राष्ट्र में एक ही संस्कृतिधर्मी राजनेता है जिसने साहित्य और संस्कृति की स्वायत्तता, मर्यादा और सम्मान अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए आधुनिक संस्कृतितीर्थ की स्थापना की है।

श्री अर्जुनसिंह चिन्तनशीलता और विराट हृदय के साथ ही आकर्षक व्यक्तित्व के धनी हैं। हम अपने संकल्प के प्रति समर्पित हैं किन्तु समय और साधनों के अभाव में जो कुछ भी हम कर सकें हैं; वह लगभग 5000 पृष्ठों में 8 खंडों में विभाजित कर प्रस्तुत कर रहे हैं।

☐ *मुरारीलाल अग्रवाल— चाय बागानों के वरिष्ठ सलाहकार। चार्टर्ड अकाउन्टेंट। साहित्य सेवी। इंडियन रायटर्स एसोसिएशन, कलकत्ता के आधार स्तम्भ। सक्रिय समाजसेवी-उद्योगपति। इस अभिनन्दन ग्रन्थ के संयोजक। सदाबहार सहयोगी। सार्क देशों के साहित्यकार सम्मेलन के संयोजक।*

श्री अर्जुनसिंह : एक अनन्य व्यक्तित्व

आशिस सान्याल

श्री अर्जुनसिंह धीर, गम्भीर, शान्त, विनम्र, विनयशील व्यक्तित्व सम्पन्न राजनेता हैं। उनका प्रथम दर्शन ही मन को हिलोरने लगता है। ऐसा अनुभव होता है कि अनेक उत्तरदायित्वों के बावज़ूद भी उन्हें कोई बाधा अवरुद्ध नहीं कर सकती है। मुझे ठीक इसी प्रकार का अनुभव उस समय हुआ था जब मैंने इंदिराजी, फिर बाद में राजीवजी के प्रथम दर्शन किये थे। उसके बाद जब मुझे कुछ और नज़दीक आने का मौक़ा मिला था, उस समय मैं यह समझ पाया था कि मेरा अनुमान बिल्कुल ठीक है। श्री अर्जुनसिंह के सम्बन्ध में मेरी धारणा इसी के अनुरूप होती जा रही है।

श्री अर्जुनसिंह भारतीय राजनीति में धर्मनिरपेक्षता के प्रतीक हैं। भारतवर्ष को प्रगति के पथ पर आगे ले चलने के लिए, धर्मनिरपेक्षता को छोड़कर और कोई रास्ता नहीं है। 'विचित्रता के बीच एकता की साधना' भारत के अस्तित्व के लिए अत्यन्त आवश्यक है। श्री अर्जुनसिंह आज विशेष रूप से इसी वक्तव्य को जन-साधारण के सामने रखना चाहते हैं। उनके प्रति मेरा आकर्षण का यही एक मुख्य कारण है। साम्प्रदायिकता हम लोगों के समाज में एक बीमारी का रूप ले चुकी है। यह बीमारी हम लोगों के सामाजिक जीवन में गम्भीर रूप से निहित है। किसी-किसी व्यक्ति की यह धारणा है कि इसके लिए कोई अशुभ शक्ति ज़िम्मेदार है। इतनी सरल चिन्ता पर श्री अर्जुनसिंह का विश्वास नहीं है। एक दल को दूसरे दल के विरुद्ध उकसाया जा सकता है- इसी तथ्य पर पहले विचार कर लेना आवश्यक है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बहुत पहले ही सन् 1907 ई. के लगभग "व्याधि और प्रतिकार" नामक निबन्ध में हम लोगों के समाज में अनेकता की मूल समस्या पर हम लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है—

"दोष नहीं मिलने पर शनि प्रवेश ही नहीं कर सकता, अतएव शनि से अधिक दोष पर सावधान होना होगा। हम लोगों के बीच जहाँ पाप है, दोष है, शत्रु वहीं पर हमला करेगा। अत: शत्रु को दोष न देकर पाप का तिरस्कार करना होगा।" रवीन्द्रनाथ की इसी चिन्ता के समरूप जिस प्रकार पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इंदिरा गाँधी या श्री राजीव गाँधी की चिन्तन-धारा में समानता दिखाई दी, ठीक उसी प्रकार की समानता श्री अर्जुनसिंह की चिन्तन-धारा में है। भारतवर्ष की प्रगति की साधना में इस प्रकार की चिन्तन-धारा सबसे अधिक सार्थक है, यही मेरी धारणा है।

राजनीति के क्षेत्र में श्री अर्जुनसिंह का प्रवेश समाजवादी दल के प्रतिनिधि के रूप में है। परवर्ती काल में गाँधीवाद और नेहरूवाद के साथ उनका गंभीर परिचय हुआ। इंडियन रायटर्स एसोसिएशन के तत्त्वावधान में आयोजित 'Relevance of Gandhi Today' शीर्षक के उद्‌बोधन भाषण में उनके वक्तव्य ने मेरे मन में इस धारणा को पुष्ट किया। 21वीं शताब्दी के नये-नये तकनीकी विधाओं के आलोक में हम लोगों की ध्यान धारणा को युग के साथ उपयोगी करने की बात उन्होंने अपने वक्तव्य के माध्यम से उल्लेख की थी। वे युक्तिवादी विज्ञानमनस्क मन के साधक हैं।

संस्कृति स्वयं में कोई सम्पूर्ण वस्तु नहीं है। अध्यापक मॉरटन (Morton) के शब्दों में यह कहा जा सकता है, केवल एक अनुष्ठान से सम्बन्धित धारणा। इतिहास, अर्थनीति और राजनीति के साथ उसका बहुत ही निकट सम्बन्ध है। "**भारत-भवन**" की स्थापना में उनकी चिन्तन-धारा का प्रतिफल सामने आया है। अभी-अभी हाल में, श्री अर्जुनसिंह के भाषण से उनका असामान्य कृतित्व और संस्कृति के प्रति उनके लगाव की पहचान की झलक दिखाई देती है। उन्होंने लिखा है—

"इस संस्थान की परिकल्पना स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गाँधी ने 1972 में हमारी स्वतंत्रता की रजत जयन्ती के उपलक्ष्य में सभी प्रादेशिक राजधानियों में बनाए जाने वाले स्मारक के रूप में की थी। यह हमारे प्रदेश के लिए गौरव की बात है कि यह विचार देश में अन्यत्र कहीं आकार नहीं ले सका, लेकिन यहाँ उसने न केवल गहरी जड़ें जमाई बल्कि सभी सम्बद्ध पक्षों की सहायता से वह यहाँ सम्पूर्ण स्वतंत्रता के परिवेश में कलात्मक अभिव्यक्तियों के विविध और सार्थक रूपकारों के एक मंच और संग्रह के रूप में पुष्पित हुआ।"

यों तो स्वप्न अनेक देखते हैं लेकिन उस स्वप्न को वास्तविकता में कितने व्यक्ति परिणित कर सकते है? श्री अर्जुनसिंह इन व्यक्तियों में अलग हैं। वे स्वप्न को वास्तविकता में बदल सकते हैं। इस दृष्टिकोण से उन्हें कर्मवीर कहा जा सकता है।

भारत की संस्कृति में तीर्थस्थान के रूप में "**भारत भवन**" को एकमात्र वे ही स्थापित करने में सफल हो पाये हैं। यों तो सभी राज्यों के सामने यह अवसर था लेकिन श्री अर्जुनसिंह को छोड़कर और कोई इस कल्पना को साकार नहीं कर सके। शिल्प, साहित्य, लोक-संस्कृति, नाटक एवं संस्कृति के साथ अन्य सभी को इसके साथ सम्मिलित किया जाता है। श्री अशोक वाजपेयी की कुशल सहयोगिता से "**भारत भवन**"- "भारत तीर्थ" के रूप में दिखाई दिया। यह दु:ख का विषय है कि ढाई वर्ष के भाजपा शासन काल में वहाँ काली छाया दिखाई दी थी, जिससे अब वह मुक्त है।

"**भारत भवन**" किस प्रकार सांस्कृतिक तीर्थस्थान होगा, उसे इंगित करते हुए श्री अर्जुनसिंह ने मध्यप्रदेश विधानसभा में कहा था—

संस्कृति कार्यकलापों का एक स्थाई स्वरूप निर्मित करने के लिए और एक ऐसा मंच बनाने के लिए जो न केवल प्रदेश का बल्कि समूचे राष्ट्र के सांस्कृतिक कार्यकलापों का स्थाई मंच बन सके, इस उद्देश्य से इस न्यास की स्थापना की जा रही है। कला के क्षेत्र में अलग-अलग विचार धाराएँ होना न केवल स्वाभाविक है, बल्कि मैं समझता हूँ कि स्वागत योग्य है।

... आधुनिक परिवेश में यह भी अवश्यम्भावी होगा कि इन विचारों का टकराव भी ऐसा लक्ष्य ग्रहण करे जिन पर लोगों को सोचने समझने और निर्णय लेने की आवश्यकता हो। इन सबके बावजूद हम साहित्य और कला को बड़े परिवेश में तभी देख सकते हैं जब इन परस्पर विरोधी विचारधाराओं को सोचने के लिए किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर प्रयास न करें और अगर सामान्य जनों की ओर से प्रयास होता रहेगा तो कोई शक नहीं है कि हमारी संस्कृति जो हमारी अपूर्व धरोहर है, उसको और उत्कृष्ट बनाने में सफल होंगे।

संस्कृति का आन्दोलन राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में विशेष उपादान है। उसके पीछे पड़कर मनुष्य जनों को सम्मिलित करना होगा। संस्कृति यदि केवल कुछ शिक्षित मनुष्यों के बीच सीमित हो जाय तो देश की प्रगति असम्भव है।

हम लोगों के बीच आधुनिक राष्ट्रीयतावाद पर शुरू से ही इस विषय को प्रधानता मिली है। प्रख्यात राजनीतिविद् श्री विपिनचन्द्र पाल ने आधुनिक राष्ट्रीयतावाद को Composite Nationalism कहा था। इसकी विशेषता के सम्बन्ध में उन्होंने सन् 1905 ई. में लिखा था—

संस्कृति स्वयं में कोई सम्पूर्ण वस्तु नहीं है। अध्यापक मॉरटन (Morton) के शब्दों में यह कहा जा सकता है, केवल एक अनुष्ठान से सम्बन्धित धारणा। इतिहास, अर्थनीति और राजनीति के साथ उसका बहुत ही निकट सम्बन्ध है। "**भारत-भवन**" की स्थापना में उनकी चिन्तन-धारा का प्रतिफल सामने आया है। अभी-अभी हाल में, श्री अर्जुनसिंह के भाषण से उनका असामान्य कृतित्व और संस्कृति के प्रति उनके लगाव की पहचान की झलक दिखाई देती है। उन्होंने लिखा है–

"इस संस्थान की परिकल्पना स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गाँधी ने 1972 में हमारी स्वतंत्रता की रजत जयन्ती के उपलक्ष्य में सभी प्रादेशिक राजधानियों में बनाए जाने वाले स्मारक के रूप में की थी। यह हमारे प्रदेश के लिए गौरव की बात है कि यह विचार देश में अन्यत्र कहीं आकार नहीं ले सका, लेकिन यहाँ उसने न केवल गहरी जड़ें जमाई बल्कि सभी सम्बद्ध पक्षों की सहायता से वह यहाँ सम्पूर्ण स्वतंत्रता के परिवेश में कलात्मक अभिव्यक्तियों के विविध और सार्थक रूपकारों के एक मंच और संग्रह के रूप में पुष्पित हुआ।"

यों तो स्वप्न अनेक देखते हैं लेकिन उस स्वप्न को वास्तविकता में कितने व्यक्ति परिणित कर सकते हैं? श्री अर्जुनसिंह इन व्यक्तियों में अलग हैं। वे स्वप्न को वास्तविकता में बदल सकते हैं। इस दृष्टिकोण से उन्हें कर्मवीर कहा जा सकता है।

भारत की संस्कृति में तीर्थस्थान के रूप में "**भारत भवन**" को एकमात्र वे ही स्थापित करने में सफल हो पाये हैं। यों तो सभी राज्यों के सामने यह अवसर था लेकिन श्री अर्जुनसिंह को छोड़कर और कोई इस कल्पना को साकार नहीं कर सके। शिल्प, साहित्य, लोक-संस्कृति, नाटक एवं संस्कृति के साथ अन्य सभी को इसके साथ सम्मिलित किया जाता है। श्री अशोक वाजपेयी की कुशल सहयोगिता से "**भारत भवन**"- "भारत तीर्थ" के रूप में दिखाई दिया। यह दु:ख का विषय है कि ढाई वर्ष के भाजपा शासन काल में वहाँ काली छाया दिखाई दी थी, जिससे अब वह मुक्त है।

"**भारत भवन**" किस प्रकार सांस्कृतिक तीर्थस्थान होगा, उसे इंगित करते हुए श्री अर्जुनसिंह ने मध्यप्रदेश विधानसभा में कहा था–

संस्कृति कार्यकलापों का एक स्थाई स्वरूप निर्मित करने के लिए और एक ऐसा मंच बनाने के लिए जो न केवल प्रदेश का बल्कि समूचे राष्ट्र के सांस्कृतिक कार्यकलापों का स्थाई मंच बन सके, इस उद्देश्य से इस न्यास की स्थापना की जा रही है। कला के क्षेत्र में अलग-अलग विचार धाराएँ होना न केवल स्वाभाविक है, बल्कि मैं समझता हूँ कि स्वागत योग्य है।

... आधुनिक परिवेश में यह भी अवश्यम्भावी होगा कि इन विचारों का टकराव भी ऐसा लक्ष्य ग्रहण करे जिन पर लोगों को सोचने समझने और निर्णय लेने की आवश्यकता हो। इन सबके बावज़ूद हम साहित्य और कला को बड़े परिवेश में तभी देख सकते हैं जब इन परस्पर विरोधी विचारधाराओं को सोचने के लिए किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर प्रयास न करें और अगर सामान्य जनों की ओर से प्रयास होता रहेगा तो कोई शक नहीं है कि हमारी संस्कृति जो हमारी अपूर्व धरोहर है, उसको और उत्कृष्ट बनाने में सफल होंगे।

संस्कृति का आन्दोलन राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में विशेष उपादान है। उसके पीछे पड़कर मनुष्य जनों को सम्मिलित करना होगा। संस्कृति यदि केवल कुछ शिक्षित मनुष्यों के बीच सीमित हो जाय तो देश की प्रगति असम्भव है।

हम लोगों के बीच आधुनिक राष्ट्रीयतावाद पर शुरू से ही इस विषय को प्रधानता मिली है। प्रख्यात राजनीतिविद् श्री विपिनचन्द्र पाल ने आधुनिक राष्ट्रीयतावाद को Composite Nationalism कहा था। इसकी विशेषता के सम्बन्ध में उन्होंने सन् 1905 ई. में लिखा था–

It views India not as belonging either to the Hindus though they were among the earliest colonisers of the country, nor to the Mohammedans, who owned sovereign authority over it for many centuries in the immediate past, but to both of these great communities equally. Nor can we overlook the other comparatively smaller communities, who have from older times shared the common culture, history and civilization.

संस्कृति राष्ट्रीयता के गठन में विशेष श्रेष्ठ उपादान है। इसीलिए किसी व्यक्तित्व के सम्बन्ध में आलोचना करते वक़्त उसकी सांस्कृतिक चिन्तन भावना का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। श्री अर्जुनसिंह के सांस्कृतिक चिन्तन का परिचय मेरी दृष्टि में आया है उसे मैंने यहाँ अभिव्यक्त किया है तथा उनकी आधुनिक चेतना की दिशा को समझने की कोशिश की है।

श्री अर्जुनसिंह आज भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के एक दुर्लभ व्यक्तित्व हैं। उनकी विज्ञानसम्मत, आधुनिक, युक्तिवादी और धर्मनिरपेक्षता की चेतना भारतीय विवेक का प्रतीक है। केवल कुछ ही वर्षों बाद हम लोग नई शताब्दी में पदार्पण करेंगे। नई शताब्दी में मानों, हम लोग भारतीयता की तरह अपने स्थान का अधिकार कर सकते हैं— श्री अर्जुनसिंह हम लोगों को उसी पथ का निर्देश दे रहे हैं।

☐ *आशिस सान्याल— अंग्रेज़ी के प्रोफेसर। बांगला और अंग्रेज़ी साहित्य के लेखक। इंडियन रायटर एसोसिएशन, कलकत्ता के महासचिव। साहित्यिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, सभा, सम्मेलनों, गोष्ठियों के आयोजक। सफल संगठनकर्ता। सम्प्रतिः लेखन को समर्पित।*

जो बचेगा, कैसे रचेगा?

सरला मिश्र
(समाज सेविका, लेखिका)

जानती तो मैं उन्हें पिछले दो दशकों से हूँ लेकिन परिचय के बाद एक कार्यकर्ता के रूप में काम करने का सिलसिला सात-आठ बरस पहले से शुरू हुआ। इस दौरान कम से कम दो मौक़े ऐसे आये जबकि विपरीत परिस्थितियों में श्री अर्जुनसिंह का हौसला देखकर मुझे स्व. श्री श्रीकांत वर्मा की कविता की ये पंक्तियाँ सहसा याद आई–

चाहता तो बच सकता था
मगर कैसे बच सकता था
जो बचेगा
कैसे रचेगा?
इसलिये,
पहले मैं सुलगा
धुँधुआया
चिटखने लगा
कराह सकता था
मगर कैसे कराह सकता था
जो कराहेगा
कैसे निबाहेगा?

उनमें से एक मौक़ा था 1988 में मुख्यमंत्री बदलने के आलाकमान के फ़ैसले से उपजी चार दिन लम्बी आपाधापी का उन परिस्थितियों की गहराई में जाना मैं ज़रूरी नहीं समझती जिनके चलते श्री अर्जुनसिंह को मुख्यमंत्री पद से इस्तीफ़ा देना पड़ा। मैं तो सिर्फ़ उस अनिश्चितता के दौर में श्री अर्जुनसिंह के अप्रतिम साहस की याद दिलाना चाहती हूँ।

क्या वक़्त था। हम सब हताशा में डूबे थे। ऊपर से श्री अर्जुनसिंह के राजनीतिक भविष्य को लेकर उड़ती बेसिर-पैर की अफ़वाहें। मैं गहरे अवसाद से भरी पड़ी थी। पीड़ा के आँसू बमुश्किल पलकों में क़ैद थे। अचानक कंधे पर हाथों का स्पर्श महसूस हुआ। आँख उठाकर देखा कि श्री अर्जुनसिंह खड़े हैं– अविचलित लेकिन थोड़े से मर्माहत। संबल बँधाते हाथों के स्पर्श से उपजी ऊष्मा दिल दिमाग़ से होती आँखों तक पहुँची और पलकों में अटके आँसू बह गये। श्री अर्जुनसिंहजी ने कुछ कहा नहीं। चुपचाप आगे बढ़ गये। मैंने बाद में महसूस किया कि उस मौन सांत्वना का कितना गहरा निहितार्थ था- राजनीतिक नहीं सहज मानवीय– पितृ स्नेहाशीष।

दूसरा मौक़ा था, सूरज कुंड अधिवेशन के तुरन्त बाद का। अधिवेशन में सुबह ऐसा लगा कि, मानो श्री अर्जुनसिंह की सारी राजनैतिक पूँजी एक झटके में तिरोहित हो गई। लेकिन शाम को वही श्री अर्जुनसिंह पूरे आत्मविश्वास के साथ उसी जगह भाषण दे रहे थे और लोग पूरी गम्भीरता से उन्हें सुन रहे थे। सुबह और शाम का अंतराल मैं और मेरे जैसों के लिये प्रकाश की चाहत में किसी अंधी गुफा में हिचकोले खाने जैसा था। लेकिन श्री अर्जुनसिंह के चेहरे पर फिर वही भाव मैंने पढ़े जो 1988 के मुख्यमंत्री परिवर्तन के वक़्त देखे थे। गहरी प्रतीति हुई पर साथ ही हल्की सी खीज भी अपनी कम अक़्ली पर। लगा कि उनकी क़ाबलीयत और हिम्मत को कम आँक कर मैंने अपनी ही राजनीतिक अपरिपक्वता का सबूत दिया है।

फिर कभी ऐसी बचकानी भावुकता में नहीं पड़ने का प्रण लेकर मैं दूसरे दिन श्री अर्जुनसिंह से मिली। मेरे विश्वास की पुष्टि हुई जब उन्होंने होले से मुस्कुराते हुए कहा– "अगर लम्बे समय तक राजनीति करना है तो अपमान और उसकी पीड़ा को सहना सीखना होगा।" व्यवहारिक राजनीति का इससे बड़ा सबक मैंने शायद कोई और नहीं सीखा।

मुझे उनसे सबसे बड़ी सीख यही मिली है – "डिग्निटि अण्डर ड्यूरेस" प्रसिद्ध अँग्रेज़ी लेखक आस्कर वाइल्ड का कहना है कि "मनुष्य वही है जो ड्यूरेस यानि गहरे दबाव के तले अपनी डिग्निटि याने गरिमा को सँजोए रखे।" श्री अर्जुनसिंह मेरी नज़र में ऐसे ही दुर्लभ व्यक्तियों में से एक हैं।

एक और आदत जो मैंने सीखना चाही वह है हर पल का उपयोग। मैंने कहीं विश्व प्रसिद्ध लेखक राहुल सांकृत्यायन के बारे में पढ़ा है कि उन्होंने अपने जीवन काल को काम के लिये मिनटों में विभाजित करना सीख लिया था और सेकण्डों में आगे बाँटने की कोशिश में थे। श्री अर्जुनसिंह के काम करने के तौर-तरीक़ों को देखकर लगता है कि समय के उपयोग में वे राहुलजी की परम्परा के व्यक्तित्व है।

मैंने उन्हें कभी "बस यूँ ही बैठे हैं" वाली मुद्रा में नहीं देखा। फाईलों पर दस्तख़त करते हुए अगर वे आपसे चर्चा करते जा रहे हैं तो ये मत समझिये कि वे ऐसा आपकी हैठी के लिये कर रहे हैं। वे उतनी ही शिद्दत से आपकी बातें सुन रहे हैं जितनी फाईल उनके सामने नहीं होती तब सुनते। कई कामों को एक साथ निपटाना श्री अर्जुनसिंह का विलक्षण गुण है। इस मामले में वे मुझे अद्वितीय लगते हैं।

समय के सदुपयोग की बात का मुझे एक और वाक़्या याद आ गया। तब श्री अर्जुनसिंह दुबारा मुख्यमंत्री बन कर भोपाल आये थे एक दिन मैंने फोन पर सकुचाते हुए उनसे पूछा कि क्या मैं उनके साथ हवाई जहाज से दिल्ली चल सकती हूँ। उन्हें काँग्रेस कार्य समिति की बैठक में हिस्सा लेने जाना था और मेरा प्रधानमंत्री कार्यालय में अपॉइन्टमेंट था। श्री अर्जुनसिंह ने साथ ले जाने के लिये हामी भर दी। 8 सीटों वाले प्रदेश सरकार के उस विमान में हम तीन लोग सवार हुए, मैं, श्री अर्जुनसिंह और श्री बंशीलाल धृतलहरे।

अपनी आदत के मुताबिक़ विमान में बैठते ही श्री अर्जुनसिंह ने एक मोटी सी अँग्रेज़ी की किताब निकाल ली। शायद एल्विन टाफलर की "फ्यूचर शॉक" थी। आगरा के ऊपर उड़ान भरते वक़्त पता लगा कि, दिल्ली का मौसम ख़राब है। विमान उतरना सम्भव नहीं। मुझे लगा ये ते बड़ी गड़बड़ हो गई। अब कैसे दिल्ली पहुँचेंगे? पर अर्जुनसिंहजी के चेहरे पर शिकन तक नहीं थी। जब विमान आकाश में वापस भोपाल के लिये मुड़ रहा था श्री अर्जुनसिंहजी किताब में से सिर उठाकर, हौले से मुस्कुराते हुए बोले– "इट वाज़ ए गुड राइड"। कुछ ज़्यादा पन्ने पढ़ने का मौक़ा मिल गया।" मुझे "गाँधी" फिल्म के उस दृश्य की अचानक याद आ गई जब नेहरू और पटेल बापू से मिलने वर्धा पहुँचते हैं। और गम्भीर राजनीतिक चर्चा के बीच गाँधी अपनी बकरी के घायल पैरों पर मिट्टी के लेप लगाने का ज़िक्र छेड़ देते हैं।

लेकिन हाँ, ऐसा भी नहीं कि श्री अर्जुनसिंह को मैंने विचलित होते देखा न हो। देखा है, और एक बार तो फूट-फूट रोते भी देखा है। भोपाल के अत्यन्त सम्मानीय शहर काज़ी के इंतकाल पर अर्जुनसिंह खूब रोये थे। इस रूलाई में एक हम ख़याल दोस्त, मार्ग-दर्शक और सच्चे धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति से हमेशा-हमेशा के लिये जुदा होने की पीड़ी थी।

दुबारा मैंने उन्हें 8 दिसम्बर 1992 को प्रदेश काँग्रेस कार्यालय में सबके सामने गालों में ढुलक आये आँसुओं को सम्हालते देखा।

मुझे लगता है दोनों रुलाई में कितना गहरा अंतर्सम्बन्ध है। पहली बार के आँसू थे धर्मनिरपेक्ष शख़्सियत का जनाज़ा उठने पर और दूसरी बार धर्म-निरपेक्षता का जनाज़ा उठने पर। दोनों बार आँसू सहज टपके थे। ये बेबसी से उपजा विकल्प नहीं था– पीड़ा की अनायास अभिव्यक्ति थी।

राजनीतिक अस्तित्व पर घोर प्रहार के समय अडिग रहना और मित्र के निधन पर पिघल जाना, ये दोनों बातें मैंने श्री अर्जुनसिंह में देखी हैं। यह ऊपरी तौर पर द्वंद्वात्मक दिखाई देने वाली स्थिति थी। श्री अर्जुनसिंह के स्वस्थ व सहज मानवीय मन का पता देती है। उनके भीतर संवेदनाओं की निर्झरणी है जिसे वे मर्मान्तक पीड़ा के क्षणों में बहने देते हैं लेकिन विवेक का बाँध पार नहीं करने देते।

☐ *सरला मिश्र— मध्यप्रदेश युवक काँग्रेस की सक्रिय गतिशील, प्रभावी युवा नेत्री, जो आज हमारे बीच नहीं हैं। आकाशवाणी-दूरदर्शन पर चर्चा, परिचर्चा, उद्‌बोधन उद्‌घोषिका रहीं। समाजसेवा, नारी कल्याण, युवा नेतृत्व के लिये संघर्षशील व्यक्तित्व, ओजस्वी वक्ता।*

तुम सलामत रहो

ममनून हसन ख़ान
(समाजसेवी)

"हज़ारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा"

मुझसे कहा गया है कि मैं भी जनाब अर्जुनसिंह साहब के लिये कुछ अर्ज़ करूँ। तामील हुकुम में उनकी दिलकश शख़्सियत इल्म व अदब और आर्ट व कल्चर से उनकी दिलचस्पी उनकी सियासी सूझबूझ की बाबत चन्द बातें पेश कर रहा हूँ। ख़ुशकिस्मती से मैंने अर्जुनसिंह साहब को बहुत क़रीब से देखा है क्योंकि जब मैं भोपाल विकास प्राधिकरण का अध्यक्ष था तो मुझे अकसर उनसे बातचीत करने का मौक़ा मिला करता था।

अर्जुनसिंहजी गुल रंग सूरत और दिलकश सीरत के मालिक हैं। उनके चरित्र की सबसे बड़ी ख़ूबी उनकी इन्सान दोस्ती है। उनकी बातचीत में बेहद नरमी और मिठास है। वे सुनते ज़्यादा हैं और बोलते कम हैं और जब बोलते हैं तो बहुत सोच-समझकर बोलते हैं। अर्जुनसिंहजी बड़े ग़रीब-परवर हैं उनमें किसी तरह का ग़ुरूर नहीं है, वे हर छोटे-बड़े से बड़ी इज़्ज़त और प्यार से मिलते हैं! उनमें मज़हबी तास्सुब बिलकुल नहीं है। वे क़ौमी एकता के एक चमकदार सितारे हैं। अर्जुनसिंहजी सही मायनों में एक आला-तालीमयाफ़्ता इन्सान हैं। उनमें वो तमाम ख़ूबियाँ हैं जो आला तरबियत से हासिल होती हैं। इल्म व अदब और आला शायरी और आर्ट और कल्चर में अर्जुनसिंहजी बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। भारतीय संस्कृति के मैदान में उनका कारनामा **भारत-भवन** है। वे एक ऊँचे दर्जे के स्कॉलर हैं। अर्जुनसिंहजी ने भोपाल में महाकवि अल्लामा इक़बाल की यादगार क़ायम करवाकर भोपाल का नाम न केवल सारे भारत में बल्कि सारे विश्व में ऊँचा किया है। उनका यह कारनामा हमारी क़ौमी एकता का निशान है। अर्जुनसिंहजी उर्दू से बड़ा लगाव रखते हैं जिसकी मिसाल विश्व का उर्दू का सबसे बड़ा **इक़बाल सम्मान** एक लाख रुपये सालाना का है। अर्जुनसिंहजी देश की मौजूदा शिक्षा नीति में तबदीली लाना चाहते हैं उनकी दिली आरज़ू है कि देश के मर्द और औरतें लिखना-पढ़ना सीखें! क़ौमी एकता को बढ़ावा मिले और देश प्रेम का जज़्बा हर भारतीय में पैदा हो। ज़बान और धर्म के नाम पर इस देश में झगड़े न हों। शिक्षा नीति में यही परिवर्तन महाकवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथन टैगोर चाहते थे।

अर्जुनसिंहजी बड़े आला दर्ज़े के सियासत-दा हैं। वे आला सियासी कामों में बड़ी सूझबूझ, हिम्मत और सब्र से काम लेते हैं। राजनीति में विरोध तो होता ही है लेकिन अर्जुनसिंहजी अपने विरोध को बड़े ठण्डे दिल से बर्दाश्त करते हैं। और अपने विरोधी की इज़्ज़त करते हैं। हमेशा उनकी कोशिश रहती है कि जिस वजह से उनका विरोध होता है वो वजह बाक़ी न रहे। यह उनकी इन्सानी बड़ाई का एक सबूत है।

अर्जुनसिंहजी ने अपनी खुदादाद सियासी और इन्तेज़ामी सलाहियतों से देश के मुश्किल से मुश्किल मामलों को बड़ी ख़ूबी और कामयाबी से हल किया है। उनका सबसे बड़ा सियासी कारनामा **राजीव-लोंगोवाल समझौता**

है। मेरी राय में पंजाब की हर किस्म की मुश्किलात को इस समझौते को लागू करके हल किया जा सकता है।

मेरी दिली दुआ है कि अर्जुनसिंहजी बड़ी लम्बी उम्र पाये। उनकी सेहत पूरी तरह अच्छी रहे। वे हर अच्छे काम में कामयाबी हासिल करें और हमारे प्यारे देश का नाम सारी दुनिया में रोशन करें। उर्दू शायर ग़ालिब के लफ़्ज़ों में उनकी सलामती के लिये मेरी दुआ है—

तुम सलामत रहो हज़ार बरस।
हर बरस के हों दिन पचास हज़ार।।

☐ *ममनून हसन ख़ान— भोपाल के सुप्रतिष्ठित एडवोकेट। भोपाल विकास प्राधिकरण के अध्यक्ष रहे। अल्पसंख्यकों के कल्याण, उत्थान, विकास को समर्पित प्रगतिशील विचारों के अग्रणी समाज सेवक। नगर निगम के सदस्य एवं अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे। आज हमारे बीच नहीं हैं।*

लक्ष्य को सफल बनाने में सिद्धहस्त

देवेन्द्र उपाध्याय
(विशेष संवाददाता, देशबन्धु, दिल्ली ब्यूरो)

किसी भी राजनेता के बारे में लिखना बहुत दुष्कर कार्य है और वह भी श्री अर्जुनसिंह के बारे में। लेकिन पिछले पाँच-छः वर्षों में जितना मैं समझा पाया हूँ और जान सका हूँ उनमें वे गुण मौजूद हैं जो किसी अनुभवी, सुलझे हुए और सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले राजनेता में होने चाहिये। कम से कम इस समय देश में, राजधानी में, जितने वरिष्ठ राजनेता हैं उनमें से वे शीर्ष पर हैं क्योंकि केंद्रीय मंत्रियों की गिनती कम नहीं है। बल्कि इसलिए कि वे कम बोलते हुए भी जो कुछ बोलते हैं उसमें कहीं कोई लाग-लपेट नहीं होती, किसी को ग़लतफ़हमी में रखना उन्हें अच्छा नहीं लगता।

मराठी उपन्यास **आर्य चाणक्य** के प्रतिनिधि पात्र "आर्य चाणक्य" की जितनी ख़ूबियाँ हैं उनमें से अधिकांश श्री अर्जुनसिंह में दिखाई देती हैं, जो एक निर्धारित लक्ष्य लेकर चलते हैं और उस लक्ष्य तक पहुँचने में सफल रहते हैं। अपने विरोधियों को भी, किस तरह से वश में किया जा सकता है और अपने मित्रों से किस तरह का व्यवहार किया जा सकता है, यह उन्हें ख़ूब मालूम है।

पंजाब के राज्यपाल के रूप में काम किया तो उसमें भी लोकप्रियता अर्जित की—पंजाबवासियों का दिल जीत लिया। उसके बाद काँग्रेस के उपाध्यक्ष बने तो उसमें भी संगठन की ज़िम्मेदारियों को जिस सूझ-बूझ और दूरदर्शिता से निभाया, शायद काँग्रेस कार्यसमिति के तिरुपति चुनाव में सबसे अधिक वोटों से जीतने के पीछे एक कारण यह भी हो। जब पूरे देश के अपने पार्टी नेताओं के साथ उनका आमना-सामना होता था और मिलने वालों का सैलाब जैसे उमड़ा चला आता था। संगठन में उनके कुछ विरोधी माने जाने वाले लोग भी उन्हें **'असली मर्द'** कहते थे, वे भी उनके पीछे चलते थे।

संचार मंत्री बने तो कुछ लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि उनका कद छोटा कर दिया गया है। पर बहुत से पदों के महत्त्व व्यक्ति के कारण बढ़ते हैं, यह उन्होंने संचारमंत्री रहने के दौरान सिद्ध कर दिखाया। श्री पी.वी. नरसिंहराव मंत्रिमंडल में भी उन्हें जब मानव संसाधन विकास मंत्री बनाया गया तब भी उनके बारे में ऐसा ही कहा गया। लेकिन इससे उनका कद छोटा नहीं हुआ बल्कि मंत्रालय की नीतियों और कार्यान्वयन में एक नई जान आई।

इस समय कोई ऐसा राजनेता काँग्रेस में नहीं है जो भारतीय जनता पार्टी के ख़िलाफ़ खुलकर सामने आया हो। भा.ज.पा. के बारे में उन्होंने काँग्रेस के तिरुपति अधिवेशन में अपने राजनीतिक प्रस्ताव में पार्टी के दूसरे बड़े नेताओं को स्पष्ट नीति बनाने के लिए अगर आगे क़दम न बढ़ाये होते तो इस समय भाजपा-काँग्रेस के कुछ नेताओं के बीच बढ़ती हुई प्यार की पींगें कम से कम काँग्रेस के स्वरूप को तो खंडित कर ही देतीं। इसी राजनीतिक प्रस्ताव के कारण भाजपा के कुछ नेताओं की आकांक्षाओं पर तुषारापात हो गया और आज काँग्रेस ने भाजपा के प्रति अपनी स्पष्ट नीति सामने रख दी है। इसकी वजह से भाजपा के कुछ नेता बौखला गये और उनका निशाना काँग्रेस नहीं

बल्कि श्री अर्जुनसिंह हो गये हैं। पर अपने इस स्पष्ट रवैये के चलते वे उस जनमानस के चहेते बन गये हैं जो देश के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को आँच नहीं आने देना चाहता।

श्री सिंह को मैं सिर्फ़ एक पत्रकार के रूप में जानता हूँ, उनके बहुत अधिक क़रीबी होने का दावा करने वालों में, मैं कम से कम नहीं हूँ, पर उनकी गतिविधियों को बहुत क़रीब से देखने का दावा कर सकता हूँ। इसी क़रीब से जानने-समझने के अपने रोज़मर्रा के कार्यों की वजह से मेरे मन में श्री अर्जुनसिंह की जो तस्वीर बनी है वह यही है कि वो जो फ़ैसला लेते हैं उस पर न केवल टिके रहते हैं बल्कि दूसरे भी उस पर चलने के लिए बाध्य होते हैं। ज़माने को बदलने वाले ही वास्तविक जननेता और राजनेता होते हैं।

☐ *देवेन्द्र उपाध्याय— सक्रिय श्रमजीवी पत्रकार। मध्यप्रदेश से प्रकाशित दैनिक देशबन्धु के दिल्ली स्थित कार्यालय के ब्यूरो प्रमुख। सम-सामयिक विषयों पर निरन्तर लेखन। गतिशील समाजसेवी।*

ख़्वाज़ा के अक़ीदतमन्द श्री अर्जुनसिंह

दीपक शर्मा
(पत्रकार)

6 मार्च 1987 को अजमेर स्थित ख़्वाज़ा मोईनुद्दीन हसन चिस्ती उर्फ़ ग़रीब नवाज़ की विश्वविख्यात दरगाह में सालाना उर्स का माहौल तथा जुम्मे का दिन। चारों ओर मोहब्बत, दीवानगी और ग़रीब नवाज़ के प्रति श्रद्धा की भावना का चरम बिंदु। जुम्मे की नमाज़ अदा करने का जायरीनों का उद्देश्य प्राथमिकता पर होता है और इसलिए एक सप्ताह चलने वाले उर्स में शामिल जायरीनों की संख्या उस समय अधिकतम होती है। प्रशासन का इंतज़ाम तथा कड़ी सुरक्षा व्यवस्था की असली परीक्षा इसी दिन होती है। सुबह से नमाज़ पढ़ने वालों की कतारें दरगाह से प्रारंभ होकर सड़कों पर होती हुई दरगाह बाज़ार, नला बाज़ार तथा दरगाह के चारों ओर चप्पे-चप्पे पर बनी होती हैं। आज के दिन दरगाह के आसपास नमाज़ पढ़ने वालों की संख्या प्रशासनिक सूचना के आधार पर 4 लाख है तथा इसी संख्या को ध्यान में रखकर सुरक्षा तथा जायरीनों के इंतजाम का बंदोबस्त प्रशासन ने किया है।

पर माननीय श्री अर्जुनसिंह, केंद्रीय संचारमंत्री के अजमेर आगमन की सूचना से प्रशासन चिंतित है। आज के दिन किसी भी वीआईपी की सुरक्षा प्रशासन के लिए असंभव ही नहीं नामुमकिन हो जाती है। क्योंकि एकबार दरगाह के इलाक़े में दाखिल होने के बाद न तो कोई वीआईपी होता है, न कोई आम आदमी-सब दीवानों की तरह ख़्वाज़ा की जियारत के लिए पागल होते है। तिल रखने की जगह नहीं होती। अत: माननीय सिंह के आगमन तथा उनको जियारत कराने का प्रयत्न एक अग्नि परीक्षा ही लगता है। जुम्मे की नमाज़ के बाद दोपहर में तीन बजे जायरीनों के वापिस लौटने की संभावना है। अत: श्री सिंह को जियारत कराने का समय प्रशासन ने 3 बजकर 30 मिनिट पर रखा है।

3 बजकर 30 मिनिट। सर्किट हाउस में श्री अर्जुनसिंह अपनी जयपुर से अजमेर यात्रा के बाद कुछ क्षण आराम करके तैयार होकर मेन हॉल में आ जाते हैं। उनके हाथ में एक किताब है। मैं उन्हें दरगाह में जियारत के समय 15 मिनिट की परिवर्तन की सूचना देता हूँ। अत: सर्किट हाउस से जियारत के लिए निकलने का समय 3.45 प्रशासन ने तय किया था, मैं 3.45 पर बाहर से अधिकारियों के माध्यम से दरगाह कन्ट्रोल-रूम में संबंध स्थापित करने की कोशिश करता हूँ। वायरलेस पर कन्ट्रोल रूम से सूचना मिलती है वीआईपी को सर्किट हाउस में इंतज़ार करने की प्रार्थना करें। अभी नमाज़ पढ़कर जायरीनों का सैलाब छट नहीं रहा है। कोई भी व्यक्ति दरगाह के अंदर दाखिल नहीं हो सकता। मैं आकर श्री अर्जुनसिंह को वायरलेस की सूचना देता हूँ। वे घड़ी देखते हैं और सोफ़े पर बैठकर किताब पढ़ने लगते हैं। मैं समझ गया था उनकी चिंता समय को लेकर थी क्योंकि जियारत करने के बाद उन्हें सीधे जयपुर पहुँचकर स्पेशल प्लेन से दिल्ली वापिस जाना था जहाँ उन्हें पार्टी की एक महत्त्वपूर्ण बैठक में शामिल होना था।

मैं बाहर आकर अधिकारियों के बीच खड़ा हो जाता हूँ। चार बजे मैं फिर अधिकारियों से बात करता हूँ जो कंट्रोल रूम से संबंध स्थापित करते हैं। कंट्रोल रूम से वही सूचना दोबारा मिलती है कि वीआईपी को इन्तज़ार करने को कहें। मैं प्रशासन की सूचना श्री अर्जुनसिंह को बताता हूँ। उनके चेहरे पर थोड़ा तनाव आता है। मैं बाहर आकर फिर अधिकारियों के बीच खड़ा हो जाता हूँ। एक-एक मिनिट महत्त्वपूर्ण है।

4 बजकर 15 मिनिट पर फिर कंट्रोल रूम से संपर्क स्थापित किया जाता है। इस बार जायरीनों की व्यवस्था से जूझ रहे सुरक्षा तथा पुलिस अधिकारियों का जवाब मिलता है कि वे वीआईपी की सुरक्षा का ज़िम्मा नहीं ले सकते क्योंकि दरगाह के अंदर लाखों लोग जमा है और बाहर नहीं निकल रहे हैं तथा बाहर से लाखों लोग अंदर घुसने के लिए धक्का-मुक्की कर रहे हैं। सारी सुरक्षा व्यवस्था लगभग टूट चुकी है इसलिए शाम के छः बजे तक किसी भी वीआईपी को दरगाह के अंदर ले जाया नहीं जा सकता।

मैं नहीं समझ पा रहा था कि अब क्या किया जाये। श्री अर्जुनसिंह अपने व्यस्ततम कार्यक्रम के बाद दिल्ली से विशेष प्लेन से सिर्फ़ दरगाह की जियारत के लिए ही आये थे। अतः उनके सामने प्रशासन की असहमति होना बहुत मुश्किल है। मैं धीरे से आकर उनको सारी स्थिति की जानकारी देता हूँ। कुछ क्षण के लिए उनके चेहरे पर फिर तनाव आता है फिर शांत भाव से वे कुछ सोचकर कहते हैं 'उनसे कह दीजिये मुझे कोई सुरक्षा व्यवस्था नहीं चाहिए, मैं दरगाह आ रहा हूँ' और वे उठकर चलने को तैयार होते हैं। मैं तेज़ी से बाहर आकर वायरलेस से सुरक्षा अधिकारियों तथा कलेक्टर को सूचना भिजवाता हूँ। अधिकारियों का घबराया हुआ जवाब आता है कि कृपया वीआईपी को रुकने का आग्रह करें। सर्किट हाउस की सीढ़ियों पर श्री अर्जुनसिंह आ जाते हैं। उनकी गाड़ी का ड्राइवर गाड़ी सीढ़ियों पर लगा रहा है। हम लोग भी पीछे वाली गाड़ी में बैठ जाते हैं, तभी शहर एस.एस.पी. श्री जे.पी. मिश्रा पुलिस की गाड़ी में पहुँच जाते हैं। उनको प्रशासन ने वीआईपी को सारी व्यवस्था की जानकारी देकर रुकने के आग्रह के साथ भेजा था परंतु वीआईपी की दरगाह जाने की जिज्ञासा तथा तैयारी को देखकर वे परिस्थितियों की नाज़ुकता को समझ जाते हैं। वे अपनी गाड़ी श्री अर्जुनसिंह की गाड़ी के आगे लगा देते हैं। क़ाफ़िला दरगाह क्षेत्र के लिए रवाना हो जाता है। सर्किट हाउस से बाहर आते ही जायरीनों की भीड़ का सैलाब साफ़ नज़र आ रहा है, चारों ओर इन्सानों के सिर ही सिर नज़र आ रहे हैं। उनके बीच में से गाड़ी का निकालना तो क्या, छोटा-सा वाहन भी नहीं निकल सकता। जे.पी. मिश्रा की गाड़ी धीरे-धीरे रास्ता बनाती है तथा पैदल पुलिस अधिकारी लोगों को रास्ता देने का आग्रह करते हैं। पूरा क़ाफ़िला बड़ी मुश्किल से दरगाह बाज़ार तक पहुँचता है जहाँ से आगे कार नहीं जा सकती और दरगाह के बुलंद दरवाज़े तक पहुँचने के लिए अभी आधा फलाँग की दूरी तय करनी है। सारे अधिकारी तथा श्री अर्जुनसिंह कार से उतरते हैं। मैं कार से उतरकर अधिकारियों से तथा मिश्रा से सलाह करता हूँ।

प्रशासनिक तथा सुरक्षा अधिकारियों ने दरगाह बाज़ार के बीच में एक लोहे के खम्भे के सहारे रस्सियों से एक छोटा-सा रास्ता बनाया हुआ है। पुलिस अधिकारी इसी रास्ते में खड़े होकर सुरक्षा व्यवस्था को कंट्रोल कर रहे हैं। ये पुलिस अधिकारियों की लाइन रास्ते को दो भागों में विभाजित करती है। एक रास्ता दरगाह में अंदर जाने वाले लोगों के लिए है तथा दूसरा रास्ता दरगाह से निकलने वाले लोगों के लिए है। भीड़ तथा लोगों की धक्का-मुक्की इतनी ज़्यादा है कि कोई भी व्यक्ति एक बार जिस दिशा में खड़ा हो जाता है वह मुड़ने लायक़ भी नहीं रह पाता।

श्री जे.पी. मिश्रा तुरंत अधिकारियों को आदेश देते हैं कि वे इस रास्ते से हटकर बाहर की तरफ़ खड़े हो जायें ताकि एक व्यक्ति के जाने लायक़ रास्ता बन जाये। श्री अर्जुनसिंह को कार से उतरता देखकर आश्चर्य तथा श्रद्धा से आवाज़ें आने लगती हैं, 'अर्जुनसिंह- अर्जुनसिंह'— लोग जिज्ञासा से उनकी ओर देखते हुए बढ़ रहे हैं। श्री अर्जुनसिंह

के चेहरे पर तनाव के चिन्ह ग़ायब हैं। वे लोगों की ओर बड़ी आत्मीयता तथा श्रद्धा से देख रहे हैं और उनका मुस्कुराकर अभिवादन स्वीकार कर रहे हैं। जे.पी. मिश्रा आगे खड़े होकर हमें अपने पीछे आने का संकेत करते हैं। सबसे आगे जे.पी. मिश्रा, फिर मैं, मेरे पीछे कमांडों तथा उसके पीछे श्री अर्जुनसिंह, उनके पीछे एक और कमांडों तथा उसके बाद एक अन्य काँग्रेस कार्यकर्त्ताओं की कतार बन जाती है और हम उस सँकरे रास्ते से आगे बढ़ना प्रारंभ कर देते हैं। हमारी दोनों ओर पुलिसवालों की कतारें भीड़ को हमारी ओर बढ़ने से रोक रही है। लोग जिज्ञासा से श्री अर्जुनसिंह का अभिवादन करना चाहते हैं, हाथ मिलाना चाहते हैं, उन्हें छूना चाहते हैं और उन्हें देखना चाहते हैं। इस भीड़ में दाख़िल होकर दरगाह की जियारत का प्रयत्न करना एक जीवट का ही नहीं बल्कि असंभव लग रहा है। श्री अर्जुनसिंह लोगों का अभिवादन स्वीकार करते हुए, हाथ मिलाते हुए कंधों पर बैठे हुए बच्चों को पुचकारते हुए आगे बढ़ रहे हैं। दरगाह बाज़ार के दोनों तरफ़ बने मकानों की खिड़कियों से तथा छतों से लोग इस आश्चर्यजनक दृश्य को देख रहे हैं। हमारा यह क़ाफ़िला दरगाह के बुलंद दरवाज़े पर पहुँच जाता है, परंतु इसके आगे कोई सुरक्षा व्यवस्था नहीं है। दरगाह के अंदर लाखों इन्सानों की भीड़ जिससे पुरुष महिला, बच्चे हिंदू-मुस्लिम भरे पड़े हैं। दरगाह के बुलंद दरवाज़े पर पुलिस का कंट्रोल रूम है जिसमें कलेक्टर, मजिस्ट्रेट तथा अन्य पुलिस अधिकारी इससे पहले श्री अर्जुनसिंह से कोई प्रार्थना करें, श्री अर्जुनसिंह दरगाह के अंदर जाने के लिए अपने जूते उतारने लगते है, उनकी इच्छा साफ़ है। वे जियारत किये बिना वापिस जाने को तैयार नहीं है। श्री जे.पी. मिश्रा इस कार्य का मन बनाकर तुरंत दो-चार पुलिस अधिकारियों को बुलाते हैं और एक छोटी-सी मानव शृंखला बनाकर हम लोग तैयार हो जाते हैं। एक कलेक्टर श्री अर्जुनसिंह के पास आकर प्रार्थना भरे स्वर में कहता है 'सर अंदर की भीड़ वापिस आने को तैयार नहीं है, ऐसी स्थिति में आपका दरगाह के गुम्बद शरीफ़ तक पहुँच कर जियारत करना संभव नहीं है।' पर श्री अर्जुनसिंह उनकी बात को अनसुना करके हम लोगों से कहते हैं- 'चलिए' इसके बाद हमारी मानव शृंखला के बीच श्री अर्जुनसिंह दरगाह के अंदर दाख़िल हो जाते हैं उसके बाद एक आम आदमी की तरह से श्री अर्जुनसिंह और हम लोग जनता के धक्कों के बीच कसमसाते हुए धक्के खाते हुए एक-एक क़दम रखते हुए गुम्बद शरीफ़ की तरफ़ पहुँचते हैं। पाँच मिनिट का रास्ता तय करने के लिए हमको आधा घंटा लग जाता है। गुम्बद शरीफ़ पहुँच कर हम लोगों का हाल बेहाल है। सारे लोग तनावग्रस्त हैं परंतु श्री अर्जुनसिंह के चेहरे पर जियारत की जिज्ञासा और निर्णय अंतिम नज़र आ रहा है। दरगाह के खादिम कमांडोज को जूते और मशीनगन के साथ अंदर जाने का विरोध कर रहे हैं तथा परिस्थिति की नाज़ुकता को देखकर अर्जुनसिंहजी कमांडोज को कहते हैं कि आप लोग अंदर न आइये तथा बाहर निकलने के रास्ते पर मेरा इंतज़ार कीजिये। गुम्बद के रास्ते पर कमांडोज को गुम्बद शरीफ़ से बाहर निकलने के दरवाज़े की ओर इशारा करते हैं। मैं और जे.पी. मिश्रा एक-दो अधिकारियों के साथ श्री अर्जुनसिंह के साथ गुम्बद शरीफ़ के अंदर प्रवेश कर जाते हैं। उसके बाद कैसे जियारत हुई और कैसे हमने प्रवेश किया तथा कैसे हम लोग बाहर आये यह सिर्फ़ ख़्वाज़ा के अलावा कोई नहीं जानता, परंतु जब हम बाहर आये तो एसएसपी जे.पी. मिश्रा के कपड़े तार-तार हो चुके थे। जिन्होंने सिर्फ़ अपने ही बलबूते पर ये सारा काम किया। बाहर आकर श्री अर्जुनसिंह के चेहरे पर जो शांति, सफलता और श्रद्धा के भाव थे वह उनकी इरादे की दृढ़ता से स्पष्ट नज़र आ रहे थे। दरगाह के अंदर जाने की प्रक्रिया से बाहर आने की प्रक्रिया कुछ सरल थी। इस तरह श्री अर्जुनसिंह की चिरपरिचित ख़्वाज़ा की जियारत की इच्छा पूरी हुई, जो मेरे लिए आज तक एक स्वप्न ही है।

☐ *दीपक शर्मा— स्वतंत्र पत्रकार-समाजसेवी*

दीन-दु:खियों की भलाई ही सच्ची ईश्वर सेवा

डॉ. हेमचन्द्र पाण्डेय

प्रजा की निरंतर चिन्ता रखकर काम करने वाले राजा को महात्मा विदुर, चाणक्य, भतृहरि आदि ने श्रेष्ठराजा की संज्ञा अपने नीति वचनों में दी है। यही बात माननीय अर्जुनसिंहजी के व्यक्तित्व में मिलती है। समाज के विकास एवं कल्याण की भावना से किए जाने वाले कार्य के प्रति समग्र निष्ठा और निरंतर कार्य करते रहने की अद्‌भुत क्षमता उनकी विशेषता है। समय के साथ चलने, अपने नियोजित कार्यक्रम को यथासमय पूरा करने की उनकी शैली तो जग जाहिर है ही।

कोई भी व्यक्ति यदि वास्तव में ज़रूरतमंद है तो उसकी सहायता करने में उन्हें बड़ा आनन्द आता है। वे प्राणी मात्र के हृदय में ही ईश्वर का निवास मानते हैं एवं सद्‌कर्मों से परिपूर्ण मानव को ईश्वर की मूर्ति। ईश्वर की प्रार्थना के रूप में जहाँ तक हो सके उन्होंने सबकी भलाई का प्रयास किया है। किसी को दु:ख पहुँचाने की उनकी वृत्ति कभी नहीं रही।

कमज़ोर दीन-दुखियों की सेवा करने को ईश्वर की सेवा करना बताया गया है। इसी उक्ति को चरितार्थ करते हुए समाज के कमज़ोर वर्ग झुग्गी-झोपड़ीवासियों को मालिकाना हक़ दिलाए जाने के सम्बन्ध में विधेयक 1984 में प्रस्तुत करते हुए दीनों की सेवा कर दीन-बन्धु की एक उपासना की है।

उनकी उदारता एवं सहयोग का उदाहरण देकर इस युग को एक दायरे में बाँधने जैसा होगा। वास्तव में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उक्ति चरितार्थ होती है। जो भी व्यक्ति उनसे मिलता है आत्मीयता लेकर ही वापस आता है एवं उनके सद्‌व्यवहार से अपनत्व प्राप्त कर लेता है। कोई भी दुखी व्यक्ति उनके द्वार से बिना सहायता के नहीं लौटा होगा। चश्में के पीछे छिपी आँखें 'अर्जुन' लक्ष्यभेदी बनकर यह भाँप लेती हैं कि वास्तव में यह व्यक्ति दु:खी है और उसे सहयोग की आवश्यकता है। तद्‌नुसार वह सहयोग पा लेता है। कहने का आशय है कि उनके भीतर जो मानवीय गुण छिपे है। वे अवर्णनीय है। धैर्यपूर्वक सबकी समस्याएँ सुनना एवं वास्तविकता से सहमति होने पर उनका यथाशक्ति समाधान करने का प्रयास करना होता है। वे प्रत्येक आदमी से व्यक्तिगत तौर से बहुत ज़्यादा स्नेह रखते हैं। यह उनकी ख़ूबी है।

मेरे पिताजी अध्यापक के पद से सेवा-निवृत्त हुए। जब माननीय श्री अर्जुनसिंह शिक्षामंत्री थे तब मेरे पिताजी इनके वक्तव्य/आयोजित कार्यक्रमों में दिए जाने वाले भाषण के अंश अख़बार की ख़बर में से पढ़कर गाँव में अपने सह मित्रों से चर्चा करते थे कि वास्तव में यही एक व्यक्ति है जो समाज में सामाजिक सुधार का मूल आधार 'समाज शिक्षा' में महत्त्वपूर्ण योगदान देगा। शिक्षकों को सम्मान मिलना चाहिए वह भी मिलेगा और वास्तव में यह बात सच निकली। प्रदेश के मुख्यमंत्री बनने के बाद शिक्षा जगत में शिक्षकों का, शिक्षा का स्तर बढ़ाया। जो सम्पूर्ण समाज को अज्ञान अन्धकार से ज्ञान प्रकाश की ओर अग्रसर करते हैं उनके लिए नई पहल की। उनकी

सेवा-निवृत्ति की आयु सीमा दो वर्ष बढ़ाई तथा वेतन में पृथक् से बढ़ोत्तरी की।

कभी उनके चेहरे पर क्रोध नहीं दिखाई देता। सदैव मुस्कान से चेहरा प्रफुल्लित रहता है। चाहे उनसे मिलने वाला कितना ही गंभीर, चिंतित, क्रोधित ही क्यों न हो। महात्मा विदुर ने अपनी नीति में उल्लेख किया है –

अक्रोधेन जयेत क्रोधम्, असाधुं साधुना जयेत्।

आशय है कि क्रोध को प्रेम से जीते, दुर्व्यवहारी को उत्तम व्यवहार कर जीता जा सकता है। यह कहावत चरितार्थ प्रतीत होती है।

☐ *डॉ. हेमचन्द्र पाण्डेय— ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान्। मध्यप्रदेश महिला समाज कल्याण विभाग में संयुक्त संचालक। विचारक, चिंतक, लेखक, पत्रकार। मासिक ज्योतिष पत्रिका के प्रकाशक संपादक। समाजशास्त्र में डॉक्टरेट। समाजसेवी।*

वे किसी का चेहरा और नाम नहीं भूलते

डॉ. आर.के. बिसार्य
(पूर्व महापौर, नगरनिगम, भोपाल)

इज़राइल, ग्लास्को, एडिनबरा, आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन और अमेरिका आदि देशों से एफ.आर.सी.एस., एफ.आई.सी.एस., एफ.आई.सी.ए. और एम.आई.पी. आदि उपाधियाँ लेकर हृदय शल्य क्रिया की विशेषज्ञता हासिल करने के बाद जब मैं भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स भोपाल के कस्तूरबा चिकित्सालय में हृदय रोग विशेषज्ञ के रूप में पदस्थ हुआ, तब 1965 में मेरा पूरा ध्यान हृदय रोग और शल्य चिकित्सा के बारे में अध्ययन, अनुसंधान करने तक ही सीमित था। कस्तूरबा अस्पताल का प्रबंध संचालन बी.एच.ई.एल. द्वारा किया जाता है, जहाँ भारत के कोने-कोने से आये हुए हर जाति, वर्ण और धर्म के नागरिक सेवारत हैं। इस औद्योगिक क्षेत्र को भारत हृदय भोपाल में लघु भारत माना जाता है। इन सब कर्मचारियों और उनके परिवारों के साथ संबंधों की घनिष्ठता और स्नेह भाव में मेरी धर्मपत्नी का भी सहयोग रहा है क्योंकि वे स्त्री रोग विशेषज्ञ है। एक ओर जहाँ मैं लोगों की धड़कनों की नाप-तौल करता था, वहीं श्रीमती बिसार्य हर नारी की माँ बनने की लालसा की पूर्ति में सहयोग देकर सहज ही ममतामयी माँ की स्नेह की पात्र बनती थीं। इस तरह हम दोनों सहकर्मी और सहधर्मी बी.एच.ई.एल. के अधिकांश घर-परिवारों से पारिवारिक संबंध बनाने में सफल हो गये थे।

सामाजिक क्षेत्र में निरन्तर विस्तार होते रहने के कारण मन में अकसर आता था कि समाज सेवा के क्षेत्र में भी कुछ किया जाय। किन्तु यही सोचकर संतोष कर लेता था कि पीड़ित मानवता की सेवा करने से बढ़कर और दूसरी सेवा क्या हो सकती है और इस सेवा कर्म में हम दोनों 24 घंटे समर्पित भाव से काम कर रहे थे। समय की गति के साथ दशहरा उत्सव, लायन्स क्लब और रोटरी क्लब, बी.एच.ई.एल. आफिसर्स क्लब आदि अनेक ऐसी संस्थाएँ थीं जिनके विभिन्न कार्यक्रमों में कभी अतिथि कभी मुख्य अतिथि के रूप में मुझे सम्मिलित होने का अवसर मिलता रहा है। 1983.... की यह रात मेरे जीवन के लिए एक अविस्मरणीय क्षण है, जब कल्पना के विरुद्ध टेलीफोन पर मुझसे कहा गया कि मुख्यमंत्री अर्जुनसिंहजी बात करेंगे। पल भर को तो मैं स्तब्ध-सा रह गया कि जाने कौन-सी होनी-अनहोनी घटित होने वाली है किन्तु इस बीच दूसरी ओर से जब श्री अर्जुनसिंह का स्वर सुनाई दिया तो वे कह रहे थे डॉक्टर साहब भोपाल नगर निगम के चुनाव होने जा रहे हैं। हम चाहते हैं कि आप भी चुनाव लड़ें। तात्कालिक प्रतिक्रिया में सहज भाव से मैंने जैसी आपकी इच्छा कहकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। इसके आगे न उन्होंने मुझे कुछ कहा और न मुझे बोलने का मौक़ा मिला। किन्तु उस रात मैं कई घंटे यही सोचता रहा कि आख़िर श्री अर्जुनसिंह को मेरे नाम की याद कहाँ से आ गई। उन्होंने मुझे नगर निगम का चुनाव लड़ने के लिये क्यों कहा और कुछ विचित्र-सी मन:स्थिति में कब नींद लगी, कब सवेरा हुआ, पता नहीं चला। किन्तु वह एक नया सवेरा था जहाँ से मुझे सामाजिक और राजनैतिक गतिविधियों की भावी चुनौतियों के लिये स्वयं को तैयार करना था।

नगर निगम के चुनाव सम्पन्न हुए। काँग्रेस को बहुमत मिला और भोपाल नगर निगम के प्रथम महापौर के लिये पार्षदों से जब सलाह-मशविरा किया जा रहा था, तब निर्णय के पूर्व ही मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह के एक सहयोगी ने मुझे यह संकेतात्मक बधाई दी, जिससे लगा कि शायद बहुमत मेरे पक्ष में बन रहा है। इस विषय में मैं विचार करता, इसी बीच स्वयं मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह बाहर आये और वे सभी साथियों को बधाई देते हुए कार में बैठकर रवाना हो गये। हम सब असमंजस में थे कि आखिर हुआ क्या। कुछ स्पष्ट नहीं है किन्तु कानों-कान जाने कैसे यह चर्चा सबके बीच पहुँच गई कि मुझे संभवतः महापौर का अधिकृत उम्मीदवार बनाया जा रहा है और वही हुआ। काँग्रेस पार्टी की ओर से मैं भोपाल के प्रथम मेयर का उम्मीदवार बनाया गया और विजयी होकर मैंने कार्य शुरू किया।

दो वर्षीय कार्यकाल के दौरान अनेक अवसर श्री अर्जुनसिंह से मिलने के आते रहे और उनसे हर मुलाक़ात के बाद मैं कुछ न कुछ सीखने में सफल रहा। मैंने पाया कि वे हर छोटे-बड़े कार्यकर्त्ता की मदद करने को हमेशा तैयार रहते हैं। कोई-कैसा भी आवेदन-पत्र उन्हें प्रस्तुत करता है, तो उस पर वे कुछ न कुछ सकारात्मक टीप अवश्य लिख देते हैं। आम धारणा तो नागरिकों की यह है कि उनके दरबार से कोई खाली हाथ नहीं लौटता। आपकी स्मरण शक्ति भी अद्‌भुत है। उनसे मिलने वाले लोगों के चेहरे और नाम वे कभी विस्मृत नहीं करते।

वैसे तो मैं लगभग हर महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करता रहता था। किन्तु एक ऐसा प्रश्न उपस्थित हुआ जिसके कारण मैं धर्म संकट में पड़ गया। नगरनिगम में हिन्दी और उर्दू को लेकर पार्षदों के बीच दो खेमे बन गये और यह माँग की जा रही थी कि नगरनिगम के प्रशासन में सामान्य लिखा-पढ़ी और सभी प्रकार के पत्रक हिन्दी के साथ-साथ उर्दू में भी तैयार होने चाहिए। या यों कहिए कि उर्दू को भोपाल नगरनिगम प्रशासन की दूसरी भाषा बनाने के लिये बहुत अधिक दबाव था। अंततोगत्वा मैं अर्जुनसिंहजी की शरण में गया और उनको बताया कि यदि उर्दू को नगर निगम के प्रशासन मे दूसरी भाषा के रूप में अंगीकार किया गया तो इससे अनावश्यक खर्च बढ़ जायेगा। वर्तमान परिस्थिति में नगरनिगम में इतनी आय नहीं है कि वह अपना खर्च चला सके। घाटे की अर्थव्यवस्था में यदि इस प्रकार और नये प्रयोग किये गये तो बढ़ता घाटा नगरनिगम को दिवालियेपन की ओर ले जा सकता है। किन्तु तत्काल प्रतिक्रिया देते हुए श्री अर्जुनसिंह ने सलाह दी कि जब कभी कोई निर्णय लेना हो तो हमें व्यापक दृष्टिकोण और विशाल हृदय का होकर कार्य करना चाहिये। अगर उर्दू भोपाल नगरनिगम में दूसरी भाषा नहीं बनाई जा सकती तो भोपाल के अलावा ऐसा कौन-सा नगर है, जहाँ उर्दू को यह सम्मान दिया जा सकता है। जो खर्चा हो, उसकी व्यवस्था की जायेगी, आप अगर निगम में हिन्दी के साथ ही उर्दू के प्रयोग को भी आरंभ कराइएगा। एक ओर मुझे इनके मार्गदर्शन से राहत महसूस हुई, वहीं दूसरी ओर मुझे यह प्रेरणा भी मिली कि निश्चय ही जब कभी ऐसे अवसर आते हैं, तब अर्थ और भावना के बीच हम निर्णय नहीं कर पाते तो निःसंदेह व्यापक जनहित के दृष्टिकोण से सोचना ही सही दिशा में सही क़दम माना जा सकता है।

भोपाल नगरनिगम यद्यपि बड़े तालाब के कारण जाना-पहचाना जाता है किन्तु बढ़ती हुई आबादी के साथ पेयजल संकट के कारण भोपाल का बड़ा तालाब भोपालवासियों की प्यास बुझाने में दिनों-दिन असहाय होता जा रहा है। वर्षों पूर्व यह तय हो चुका था कि कोलार का पानी ही भोपाल की पेयजल समस्या हल कर सकता है। मेरे कार्यकाल में पेयजल समस्या हेतु जब यह योजना प्रस्तुत हुई, उस समय लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग के अधिकारियों ने इसे लगभग सवा सौ करोड़ की लागत वाली योजना बताया था। जिस नगर निगम की वार्षिक आय करोड़ की दहाई तक नहीं पहुँचती हो, वहाँ करोड़ों के सैकड़ों की कल्पना मात्र से रोमांच होना स्वाभाविक है। मुझे लगा कि यदि प्रस्तावनानुसार जीवन बीमा निगम से 100 करोड़ से अधिक की धनराशि क़र्ज़ में लेकर कोलार परियोजना को लागू किया जाता है तो

नगरनिगम, भोपाल तो इसका ब्याज देने में भी समर्थ नहीं होगा। यह एक विषम प्रश्न था। दूसरी ओर नगरनिगम के पार्षदों में उदण्डता और उत्तेजना के स्वर वाले युवा पार्षदों की भीड़ के बीच तर्कसंगत बात करना या औचित्य के आधार पर कोई फ़ैसला कर पाना दिन ब दिन कठिन होता जा रहा था। इस सबसे मुक्ति पाने के लिये अनिर्णय की स्थिति में पुनः मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह से मिला और उन्हें सम्पूर्ण समस्या से अवगत कराया। अर्जुनसिंहजी ने पुनः व्यापक जनहित और मानव जीवन के लिये पेयजल की आवश्यकता का औचित्य बताते हुए कहा कि आप जीवन बीमा निगम से ऋण लेने की तैयारी कीजिएगा। जब जैसे होगा, राज्य सरकार की सहायता से सब ठीक कर दिया जायेगा। इस प्रकार भोपाल नगरवासियों को पेयजल मुहैया कराने के लिये कोलार जल प्रदाय योजना का श्रीगणेश किया जा सका।

मार्च 1984 में मेरा प्रथम कार्यकाल पूर्ण हो चुका था और दूसरे कार्यकाल के लिये अनेक पार्षद उम्मीदवार के रूप में सामने आ चुके थे। मुझको स्वयं को कोई आशा नहीं थी कि मुझे दूसरी बार महापौर बनने का अवसर प्राप्त होगा। पार्षदों में मत वैभिन्य, कटुता की सीमा तक बढ़ चुका था। वैसे तो कहने को केवल दो ही खेमे सामने थे किन्तु गुट के अन्दर गुट बनाकर अनेक गुट सामने आ चुके थे। लगातार एक-दूसरे के यहाँ भोज आयोजित किये जा रहे थे और आधी रात के बाद तक पार्षदों को पक्ष में करने और उन्हें जीतने के सूत्र समेटे जा रहे थे। इनमें से अनेक बैठकों में मुझे भी जाने का अवसर मिला। किन्तु गुत्थी सुलझने के बजाय दिन-प्रतिदिन उलझती जा रही थी। अंततोगत्वा इन सारी परिस्थितियों की जानकारी श्री अर्जुनसिंह को दी गई और उन्होंने सभी पार्षदों से भेंटकर अलग-अलग समझाइश दी और मुझे पुनः दूसरी बार भोपाल का महापौर चुनवा दिया गया। दूसरे टर्म के निर्वाचन के बाद मुझे ज्ञात हुआ कि चुनाव में मेरे नाम के प्रस्ताव से लेकर दूसरी बार चुनाव में महापौर की प्रक्रिया में पर्दे के पीछे जो गतिविधियाँ चल रही थीं, उनमें मेरे नाम का सुझाव देने में तत्कालीन राज्य उद्योग विकास निगम के अध्यक्ष श्री विष्णु राजोरिया का हाथ था।

दूसरी बार महापौर बनने के बाद पार्षदों का एक गुट अधिक कटुता के साथ असहयोग करने लगा और मैं सामंजस्य के लिये सतत् प्रयत्नशील रहा। जब महत्वपूर्ण घटनाचक्र अर्जुनसिंहजी को मालूम हुआ तो उन्होंने पार्षदों की एक बैठक यहाँ बुलाई और इस बैठक में लगभग 4 घंटे का समय देकर सबको सुनने के बाद उन्होंने जो समझाइश दी उसके कारण नगरनिगम के प्याले में आया तूफ़ान मुख्यमंत्री के ड्राइंग रूम में जाकर ठंडा हो गया। इस बैठक में जिस धैर्य से उन्होंने सब पार्षदों को सुना और अंत में बहुत कम शब्दों में जो समझाइश दी, उससे मेरा यह मत विश्वास में बदल गया कि मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह चाहे जितने अधिक व्यस्त रहें उन पर प्रशासकीय कार्यों की सर्वोच्चता का कितना ही दबाव हो किन्तु नागरिक समस्याओं के समाधान और विशेषकर कॉंग्रेस पार्टी के कार्यकर्त्ताओं की शिकवा-शिकायतों को सुनने के लिये वे कभी भी समय निकाल ही लेते हैं।

मार्च 1985 में श्री अर्जुनसिंह दूसरी बार मुख्यमंत्री चुने गये किन्तु दूसरे ही दिन उन्हें पंजाब का राज्यपाल मनोनीत कर दिया गया और वे पंजाब चले गये। चण्डीगढ़ में रहकर उन्होंने पंजाब के नागरिकों का जिस प्रकार हृदय जीता, उसके किस्से भोपाल तक पहुँचने लगे थे। हम सब बहुत उत्सुक थे कि उनका अभिनन्दन किया जाये। आपने बहुत कम समय में 'राजीव-लोंगोवाल समझौता' करवाकर पंजाब समस्या के समाधान की दिशा में इतिहास कायम किया था। यह वह उपलब्धि थी जिसके कारण पूरे देश में उनके नाम की चर्चा सुखद आश्चर्य के साथ की जा रही थी। नगरनिगम भोपाल ने श्री अर्जुनसिंह का दो बार अभिनन्दन किया। एक बार मुख्यमंत्री के रूप में और एक बार पंजाब के राज्यपाल के रूप में।

पंजाब समझौते के बाद अर्जुनसिंहजी संचार मंत्री बने तो भोपाल के नागरिक टेलीफोन के आवेदन पत्र लेकर दिल्ली जा पहुँचे और हर छोटे-बड़े कार्यकर्त्ता को एक के बाद एक टेलीफोन मिलते ही चले गये और यह संख्या सैकड़ों और हज़ारों में कही जा सकती है। दक्षिण दिल्ली से लोकसभा का चुनाव लड़कर जीतना लोहे के चने चबाना था। किन्तु वे इसमें भी सफल रहे। मध्यप्रदेश में 1988 में पुनः उन्होंने तीसरी बार मुख्यमंत्री के पद की शपथ ग्रहण की। साल भर में अनेक ऐतिहासिक निर्णय किये। जिसमें नई आवास नीति, झुग्गी-झोपड़ी वासियों को भूमि के पट्टे देना, एक बत्ती कनेक्शन, साइकिल रिक्शा चालकों को मालिकाना हक़ आदि ऐसे अनेक निर्णय हैं जिन्होंने समाज के कमज़ोर वर्ग कभी नहीं भुला सकेंगे। केंद्र की राजनीति की अँधेरी सुरंग में कब, क्यों कैसे फ़ैसले होते हैं, यह तो मैं नहीं समझ पाया किन्तु फिर हाईकोर्ट के एक निर्णय को आधार बनाकर आपसे मुख्यमंत्री पद से त्याग-पत्र ले लिया गया और प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष बनाया गया। प्रदेश काँग्रेस अध्यक्ष के रूप में आपने प्रदेश के संगठन में नव चेतना का संचार किया। हर कार्यकर्त्ता के आत्मविश्वास को बढ़ाया और संगठन को एक ठोस आधार पर लाकर खड़ा करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। श्री श्यामाचरण शुक्ल के नेतृत्व की वजह से मध्यप्रदेश में काँग्रेस ने जिस शर्मनाक पराजय का सामना किया, वह सभी को ज्ञात है। किन्तु मानव संसाधन मंत्री के रूप में आप न केवल अपने मंत्रालय द्वारा बल्कि राजनैतिक और प्रशासनिक पहल के द्वारा पूरे देश में एक चर्चित राजनीतिज्ञ के रूप में स्थापित होने में सफल रहे हैं। दिल्ली के पत्रकार और समाचार पत्र चाहे उन्हें देश के शीर्षस्थ राजनीति में नम्बर-2 कहते रहें या इस पर विवाद करें किन्तु यह निर्विवाद है कि प्रधानमंत्री श्री राव के बाद काँग्रेस के पास सही दिशा देने वाला यदि कोई चिंतक, विचारक और राजनीतिज्ञ है तो वह केवल श्री अर्जुनसिंह हैं।

□ *डॉ. आर.के. बिसार्य— मध्यप्रदेश के वरिष्ठ, लोकप्रिय हृदय रोग शल्य चिकित्सक। अनेक देशों से एफ.आर.सी.एस.। आर.के. हास्पिटल के संस्थापक-संचालक। भोपाल नगर निगम के प्रथम महापौर। सक्रिय समाजसेवी। चिकित्सा सेवाओं सम्बन्धी वरिष्ठ परामर्शदाता।*

वे देश के गौरव पुरुष हैं

रामग़रीब मिश्र
(समाजसेवी सहकर्मी)

श्री अर्जुनसिंह, जिनको हम यहाँ कुँवर साहब कहते हैं। मेरी पहली मुलाक़ात तब हुई जब मैं इन्टरमीडिएट का विद्यार्थी था। उस समय कुँवर साहब निर्दलीय विधायक थे। 1958 में उनसे मेरी पहली मुलाक़ात हुई थी। अर्जुनसिंहजी के मामा दादू रामपालसिंहजी के दो पुत्र श्री शिवपालसिंह तथा श्री सूर्यपालसिंह के माध्यम से कुँवर साहब से मेरी मुलाक़ात हुई। हम लोग कठहा हाउस में मिले थे। उसी दिन से मैं उनके व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुआ कि तब से मैं उनके साथ रह गया और 44-45 साल से मैं उनके साथ जुड़ा हुआ हूँ। वही निष्ठा, वही प्रेम और उसी डेडिकेशन के भाव के साथ मैं उनके साथ हूँ और मैं चाहता हूँ कि आगे भी जब तक मेरा जीवन है उनके साथ जुड़ा रहूँ। मैं इसी में जीवन व कर्म की सार्थकता एवं सफलता स्वीकार करूँगा। मैंने मुलाक़ात के पहले दिन ही देखा कि वे युवा भावनाओं तथा विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाले युवा हैं। उस ज़माने में वे काफ़ी यंग थे लेकिन एक बहुत ही अनुभवी व्यक्ति की तरह लोगों से मिलते थे, उनकी तक़लीफ़ें सुनते थे। वे उस समय विधायक थे। ग़रीब विद्यार्थियों के दु:ख दर्द को दूर करने का प्रयत्न करते थे। उनकी फीस माफ़ कराने की कोशिश करते थे। जो लोग बेरोज़गार थे उनको रोज़गार दिलाने का भी यत्न किया करते थे। कभी-कभी ज़रूरत पड़ने पर सम्बन्धित अधिकारियों के घर जाकर इस बारे में चर्चा करते थे, उनकी सलाह लेते थे। चूँकि कुँवर साहब में बोलने की अद्‌भुत क्षमता है, उस समय वे बहुत गंभीरता के साथ तथा बड़ी ताक़त के साथ बोलते थे। बहुत वज़न होता था उनके शब्दों में। किसी अधिकारी को यदि किसी काम के लिए कभी वे कहते थे तो सहसा वो न नहीं कह पाता था तथा वो काम ज़रूर करता था।

विद्यार्थी जीवन से ही मेरा रुझान पत्रकारिता की ओर था। रीवा पहले विंध्यप्रदेश की राजधानी थी। बाद में संभाग का मुख्यालय रहा। उस समय रीवा में जितने भी बड़े पत्रकार थे, मैं उन सभी के संपर्क में आया। उन्हीं लोगों के माध्यम से, मार्गदर्शन से मैं पत्रकार भी बना। 1961-62 में अर्जुनसिंहजी ने एक पत्रकार वार्ता आयोजित की थी। उस पत्रकार वार्ता में यहाँ के पत्रकारों में आपस में मतभेद था। इसी संदर्भ में उन्होंने ये पत्रकार वार्ता आयोजित की थी पत्रकार लोग पहले तो सहमत नहीं हुए लेकिन जब उन्हें ज्ञात हुआ कि आपस में मतभेद हैं तब वे इसमें शामिल हुए। विजय शर्मा (आलोक प्रेस के मालिक) और लक्ष्मीकांत शुक्ल (दैनिक जागरण के संपादक) उन लोगों ने अर्जुनसिंहजी से कहा कि भाई रामग़रीब मिश्र से कहिए तो वो पत्रकार वार्ता अच्छी करायेंगे। फिर मैं सबको लेकर उनके घर गया जहाँ उन्होंने बुलाया था। उस दिन बहुत अच्छी पत्रकार वार्ता हुई। तब से कुँवर साहब हमको बहुत मानने लगे।

राजनैतिक जीवन में वे संघर्षों से आगे बढ़े हैं। इस संघर्ष में उनके परिवार जनों ने जितनी सहायता बन पड़ी

हो की होगी। इस बारे में मैं अधिक नहीं बता पाऊँगा। लेकिन इतनी बात ज़रूर है कि चूँकि निर्दलीय उम्मीदवार वे हुए थे पहली बार तो कोई समर्थन उनको प्राप्त नहीं था। उस समय उनके विरुद्ध लोग वातावरण बनाने का ख़ासा प्रयास करते थे। क्योंकि एक इलाक़ेदार के घर से इनका संबंध था यद्यपि कुँवर साहब की विचारधारा प्रारंभ से ही समाजवादी विचारधारा थी। ग़रीबों की मदद करना, हरिजन, आदिवासियों को खेत-ज़मीन दिलवा देना। मुझे तो इस बात की भी जानकारी है कि अपनी ज़मीन पर भी चुरहट में कुछ ग़रीब हरिजन-आदिवासियों को ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा करा दिया था। आप अगर आज भी उनके घर जाएँ तो मुख्य सड़क से लेकर उनके घर तक छोटी-छोटी सैकड़ों झोंपड़ियाँ वहाँ दिखेंगी। उस समय यहाँ उनके पास पार्टी के कार्यकर्त्ता अधिक नहीं थे अत: नये कार्यकर्त्ताओं को ढूँढना, उनसे संपर्क करना, ये सब गतिविधियाँ वे स्वयं चलाते थे। उन्हें बराबर सफलता मिलती गई। आज वे जिस शिखर पर पहुँचे हैं उसमें इन तमाम संघर्षों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हम लोग बुनियाद के रूप में तो हैं ही लेकिन उनका संघर्ष ही प्रमुख है।

अर्जुनसिंहजी हमेशा यह कहा करते थे कि मैं केंद्रीय शासन से अथवा प्रदेश के शासन से ज़्यादा नहीं चाहता लेकिन इतना, ज़रूर चाहता हूँ कि हमारा रीवा संभाग, अथवा सीधी ज़िला विकास की यात्रा में बहुत अधिक न भी जा पाये लेकिन अन्य संभागों अथवा ज़िलों के समकक्ष तो खड़ा हो सके। उनके अथक प्रयत्नों के बावज़ूद रीवा का उतना विकास न हो सका जितनी कि उन्होंने आशा की थी। इसके कारणों की विवेचना समीचीन न होगी। ख़ैर, अपने प्रयासों के क्रम में उन्होंने यहाँ कई शिक्षण संस्थाएँ खुलवाईं। 1959 में मैंने रीवा में मेडिकल कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज तथा अन्य कॉलेजों में कई नई फैकल्टीज़ के लिये यहाँ सात दिन की भूख हड़ताल की थी, ठाकुर रणमतसिंह कॉलेज के हॉल के सामने। इस पर डॉ. शंकरदयाल शर्मा (पूर्व राष्ट्रपति) जो कि उस समय मध्यप्रदेश के शिक्षामंत्री थे उनसे तथा डॉ. काटजू से मिलकर हम लोगों ने हमारी माँगे दोहराई। उन्होंने हमें इस विषय पर बातचीत के लिए भोपाल बुलाया था तथा वहाँ पर आश्वासन दिया कि रीवा में अवश्य ही ये तमाम महाविद्यालय खोले जायेंगे। उस समय अर्जुनसिंहजी ने बड़ी मेहनत की और साथ ही साथ मदद भी।

इस क्षेत्र के लोगों की आम राय यह है कि अर्जुनसिंहजी इस विंध्य भूमि के, मुख्य रूप से रीवा की भूमि के एक कर्मवीर सपूत हैं। वे ही केवल ऐसे समाजसेवी नेता आगे बढ़ पाये हैं जिनका नाम आज देश में है। मुझे याद है कि 1971 में इंदिराजी ने एक रैली आयोजित की थी, दिल्ली में। उस समय मैं युवक काँग्रेस का उपाध्यक्ष था। मैं भी रैली में एक बस अलग से लेकर गया था। उसमें कुँवर साहब के अन्य सहकर्मी व परिचित, सीधी के लोग भी थे। वहाँ मैं काँग्रेस के अध्यक्ष से मिलने गया और उस समय डॉ. संजीवैया अखिल भारतीय काँग्रेस पार्टी के अध्यक्ष थे। जब मैंने मिलने के लिए चिट भिजवाई और फिर उनसे मिलकर हमने कहा कि आप रीवा आइए। उन्होंने कहा कि भई रीवा कहाँ है। हम कैसे आएँ। वहाँ एयरपोर्ट कहाँ है। वहाँ रेल का मार्ग कहाँ है। मैंने बताया कि इलाहाबाद में एयरपोर्ट है वहाँ कार से रीवा आ सकते हैं। रेल्वे स्टेशन सतना में है। रीवा बहुत पिछड़ा हुआ है। तो एक दिन मुझे वो याद है। दूसरी बार 1985 में जब अर्जुनसिंहजी दक्षिण दिल्ली से चुनाव लड़े थे तब मैं उनके प्रचार के लिए गया था। कुँवर साहब चुनाव के पहले रीवा आए थे और उन्होंने स्वयं मुझसे कहा था कि आप दिल्ली चलिए। वहाँ मुझे बारह पोलिंग का काम देखने के लिए मिला था। वहाँ मैं जहाँ भी प्रचार के लिए जाता था। लोग पूछते थे तो मैं बताता था कि मैं रीवा का रहने वाला हूँ तो लोग आश्चर्य से पूछते थे कि क्या आप उसी गाँव के जहाँ के अर्जुनसिंहजी रहने वाले हैं। मुझे वहाँ लोगों का पर्याप्त स्नेह मिला। अर्जुनसिंहजी के प्रयत्नों की वजह से हमारे रीवा का भी नाम देश में रोशन हुआ। देश के नक्शे पर उभर कर सामने आया, लोग इसे जानने लगे। मैं इसे एक बड़ी बात मानता हूँ। मनुष्य का

स्वभाव ही ऐसा है कि वह पूर्णरूपेण कभी भी संतुष्ट नहीं होता लेकिन विंध्य के विकास में अर्जुनसिंहजी की भूमिका से विंध्यवासी काफ़ी हद तक संतुष्ट हैं। 1972 में जब आम चुनाव हुआ तो यहाँ श्री के. हनुमन्तैया– जो कि उस समय भारत सरकार के रेल्वे मंत्री थे– प्रचार के सिलसिले में, आमसभा को संबोधित करने आए हुए थे। उस समय यहाँ हमारी काँग्रेस पार्टी के उम्मीदवार थे श्री मुनिप्रसाद शुक्ल और इन्हीं के प्रचार में रेल मंत्री यहाँ आए थे। लोगों ने मंत्री महोदय से बहुत निवेदन किया कि यदि आप कह दें कि रेल यहाँ आयगी तो यहाँ का चुनाव बिल्कुल जीता हुआ समझिए। लेकिन उन्होंने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। यहाँ पर होता ये था कि लोग बहस करते थे कि रेल क्यों आए यहाँ।

किस काम से आए। यहाँ कोई उद्योग धंधे नहीं हैं। जब उद्योग धंधे की बात करते थे तो उद्योगपति कहते थे कि यहाँ उद्योग धंधे लगाकर क्या फ़ायदा। यहाँ रेल की व्यवस्था है नहीं। अगर हम माल तैयार करेंगे तो कैसे उसे बाहर ले जायेंगे। इस प्रकार का द्वैत यहाँ पर था और कोई ठोस निर्णय नहीं लिया जा रहा था। अर्जुनसिंहजी जब मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने तो उनके ज़ेहन में ये सारी बातें थीं। उन्होंने कहा कि हम दोनों समस्याओं को दूर करने का प्रयास करेंगे। इंदिराजी से इस विषय पर गंभीर बातचीत उन्होंने की और फिर बाद में बड़े प्रयत्नों से इंदिराजी को यहाँ ले आए। 1983-84 में इंदिराजी ने रीवा में रेल्वे की व्यवस्था के कार्य का शिलान्यास किया। इसके बाद अर्जुनसिंहजी ने रीवा में कई कल-कारख़ानों की स्थापना की। सीमेंट की फैक्ट्री की नींव डाली। आज यहाँ जो भी विकास आप देख पा रहे हैं ये सब उन्हीं के कारण हैं।

उन्होंने यहाँ पत्रकारिता के विकास में काफ़ी प्रयत्न किये। वे पत्रकारों से कहते थे कि जब मैं रिक्त रहूँगा, जब मेरे पास कोई काम नहीं रहेगा, तब मैं पत्रकार बन जाऊँगा, और इस काम को करने में मुझे बहुत खुशी होगी। पत्रकारों से वे बहुत स्नेह करते थे। यहाँ श्री रामानुजप्रसाद तिवारी एक समाचार-पत्र निकालते थे जिसका नाम था 'कृषक भारत'। तिवारीजी अर्जुनसिंहजी के विरोधियों में से थे। श्री अर्जुनसिंह जब मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने तो रामानुजप्रसादजी भोपाल गए और वहाँ जाकर उन्होंने अर्जुनसिंहजी से सहायता माँगी। यद्यपि वे अर्जुनसिंह के विरोधी थे तथापि कुँवर साहब ने उन्हें प्रचुर सहायता की। प्रेस खोलने के लिए म.प्र. वित्त निगम से उन्हें सहायता दिलवाई। मशीने दिलवाई, साथ ही भोपाल में जवाहर चौक के निकट एक मकान भी दिलवा दिया। उनके घर में वे गए और उनके अख़बार के रीवा संस्करण का विमोचन किया। अर्जुनसिंहजी के व्यक्तित्व की ये ख़ासियत है कि वे कोई भेदभाव नहीं रखते व्यवहार में। वे अपने विरोधियों की मदद के लिए भी सदैव तत्पर रहते हैं। छोटे-छोटे पत्रकारों को उन्होंने प्रचुर सहायता की। भोपाल, इंदौर, ग्वालियर आदि में तो मैं देखता हूँ कि उन्होंने पत्रकारों को शासकीय भूमि सस्ते दामों पर मुहैया कराई। भोपाल में आज महाराणा प्रताप नगर में जो प्रेस परिसर है वह कुँवर साहब के सद्प्रयत्नों का ही सुखद परिणाम है।

अर्जुनसिंहजी में व्यक्ति की प्रतिभा को परखने की अद्भुत क्षमता है। किसी भी व्यक्ति से एक या दो बार भेंट करके ही वे जान जाते हैं कि अमुक व्यक्ति किस स्तर का व्यक्ति है। कितना बुद्धिमान है। देश के लिए तथा पार्टी के लिए कितना उपयोगी है। किस दृष्टि से उपयोगी है। ये सब परख चुकने के बाद वे उस व्यक्ति के विषय में अपनी राय क़ायम करते हैं और फिर उस पर विश्वास या अविश्वास करते हैं। वे अपने विश्वस्तों के विरुद्ध हुए दुष्प्रचार पर ध्यान नहीं देते या इसकी परवाह नहीं करते। जहाँ तक मेरा और उनका संबंध है, मैं तो समझता हूँ कि इस धरती पर उनके साथ अधिक समय तक रहने वाला साथी मेरे अलावा कोई दूसरा नहीं है। 1958 से अभी मैं उनके साथ हूँ। उनके पास कितने ही लोग आए। उनसे जुड़े वापस लौट गये।

एक बार कम्युनिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी ने ज्योति बसु को पत्र लिखा। पत्र में लिखा कि ग़रीबों के लिए और पिछड़े लोगों के लिए, अल्पसंख्यकों के लिए म.प्र. में जितना अच्छा काम अर्जुनसिंहजी ने किया वैसा काम आपने कम्युनिस्ट पार्टी के नेता होते हुए भी अपने क्षेत्र की जनता के लिए नहीं किया। उन्होंने लिखा कि अर्जुनसिंहजी ने शहर में रहने वाले उन ग़रीबों को– जो दिन भर कड़ी मेहनत से दो चार पैसे कमाते थे और शाम को किसी जगह टूटी-फूटी छोटी-सी झोपड़ी में परिवार सहित रात गुजारते थे– ज़मीन के पट्टे दिलवाये। पानी के लिए हैंडपंपों की व्यवस्था कर दी। एक बत्ती कनेक्शन दिलवाए। ज़मीन का मालिकाना हक़ दिलवाया। ये जो इतना बड़ा काम उन्होंने किया मुझे नहीं लगता इस देश में कहीं पर भी इससे पूर्व किसी ने भी ऐसा काम किया हो। जहाँ शहरों में इस तरह से काम हुआ वहाँ गाँवों में भी देखिए। संजय गाँधीजी के नाम पर उन्होंने यह काम शुरू किया। यहाँ रीवा में बहुत से ग़रीब हरिजन, आदिवासी थे जो कि किसानों के बंधुआ मज़दूर थे और उनके मकानों के पीछे झोपड़ी बनाकर रहते थे तथा उनके खेतों पर काम करते थे। यदि कभी किसी बात को लेकर किसानों से उनका विवाद हो जाता था तो वे बेचारे मध्यरात्रि में सपरिवार अपना डेरा उठाकर भाग जाते थे। ताकि किसान की मार से बच सकें, उसके अत्याचार से निजात पा सकें। इस रीवा राज्य में इन बंधुआ मज़दूरों के लिए इतनी बड़ी परेशानी थी। इस क्षेत्र में अर्जुनसिंहजी ने महान् कार्य किया। उन्होंने आदेश करवाए कि किसान की भूमि पर जो बंधुआ मज़दूर बसे हुए हैं। उन्हें दस डेसीमिल ज़मीन पट्टे के तौर पर दे दी जाए। साथ ही बिजली का एक बत्ती कनेक्शन दे दिया जाए। तो उनका मकान जहाँ बना है उसका मालिकाना हक़ प्रदान करने का जो कार्य कुँवर साहब ने किया वह स्तुत्य है। मेरा ये मानना है कि इतने बड़े कार्य के लिए न केवल म.प्र. वासियों को अपितु अन्य लोगों को भी अर्जुनसिंहजी की सराहना करना चाहिए, उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करनी चाहिए। द्वापर युग में अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी की दैन्य नहीं बनूँगा। हाथ जोड़कर खड़ा नहीं रहूँगा। भीख नहीं मागूँगा। अगर जीवित रहना है तो संघर्ष करके जीऊँगा। कभी किसी को पीठ नहीं दिखाऊँगा। पीठ दिखाकर भागता नज़र नहीं आऊँगा। मैं बलिदान हो जाना बेहतर समझूँगा। कुँवर साहब **अर्जुन की इस प्रतिज्ञा** को जीवन में मूल मंत्र मानकर इसी के सम्बल को ले आगे बढ़ रहे हैं।

अर्जुनसिंहजी जब संचारमंत्री हुए तो उन्होंने रीवा की बहुत बड़ी सेवा की। इससे पूर्व यहाँ पर डाकखाने की बिल्डिग नहीं थी। अर्जुनसिंहजी ने यहाँ पर मुख्य डाकघर के भवन का निर्माण किया। यहाँ टेलीफोन की सुविधा 1986 तक ठीक नहीं थी। तीन-तीन, चार-चार माह तक टेलीफोन डेड रहते थे। उन्होंने यहाँ आटोमेटिक एक्सचेंज की स्थापना की और अब टेलीफोन ख़राब नहीं होते। एस.टी.डी. की सुविधा होने के कारण सभी लोग प्रसन्न हैं। वे मानव संसाधन विकास मंत्री बने तो रीवा में सेंट्रल स्कूल के लिए भवन का निर्माण करवा दिया। इसके पूर्व सेंट्रल स्कूल की स्वयं की बिल्डिग नहीं थी।

उन्नीस सौ अस्सी के पूर्व कुँवर साहब जब भी रीवा आते थे तो आने के पूर्व उनका तार, या टेलीफोन आ जाता था कि अमुक दिन वे रीवा पहुँच रहे हैं अत: मुझे रीवा में ही रहना है ताकि तमाम आवश्यक बातें की जा सकें। उस समय मैं ही एकमात्र एक ऐसा कार्यकर्त्ता था जिस पर कुँवर साहब अगाध विश्वास करते थे। एक बार बैकुण्ठपुर में मैंने कुँवर साहब की बहुत बड़ी मीटिंग आयोजित की। वहाँ से लौटकर आने पर उन्होंने कहा कि कल सीधी जायेंगे। वहाँ पर मीटिंग करेंगे। लेकिन दूसरे दिन राहुल की माताजी का संदेश आया कि कुँवर साहब सीधी में गिरफ़्तार हो गए हैं अत: आप वहाँ जाइए और व्यवस्था संभालिए। मैं वहाँ गया वहाँ कुँवर साहब सहित अनेक कार्यकर्त्ताओं को गिरफ़्तार किया गया था। दूसरे दिन मैं यहाँ से फल वग़ैरह लेकर सेंट्रल जेल गया और हमारे तमाम साथियों को वितरित किये। लेकिन अर्जुनसिंहजी ने कुछ भी नहीं लिया। मुझसे उन्होंने कहा कि मिश्रजी आप अभी न जाइएगा

थोड़े विलंब से जाइएगा। उन्होंने मुझे तार करने के लिए कहा। मुख्यमंत्री, राज्यपाल और प्रधानमंत्री के नाम ये तार थे। उसमें लिखा हुआ था, एक माँग की गई थी उसमें कि म.प्र. में बहुत बड़ा अकाल पड़ा हुआ है। अक्टूबर की बात थी। किसानों की फसल पूरी तरह सूख गई थी। अत: मध्यप्रदेश को अकालग्रस्त घोषित किया जाय। इसी बात को लेकर उन्होंने गिरफ़्तारी के समय से लेकर अनशन शुरू कर दिया। पाँच-सात दिनों तक उन्होंने कुछ नहीं खाया, अनशन करते रहे। श्री सखलेचा उस बात पर अड़े रहे कि मध्यप्रदेश को हम सूखाग्रस्त घोषित नहीं करेंगे। लेकिन अंत में राज्यपाल ने आदेश किया और उनका तार आया कुँवर साहब के पास कि मध्यप्रदेश को अकालग्रस्त घोषित कर दिया गया है। तब जाकर उन्होंने अपना अनशन तोड़ा। वे हार्ट पेशेंट थे लेकिन उस जेल में किसी को ये मालूम नहीं पड़ने दिया उन्होंने कि वे अनशन कर रहे हैं। ये सब कुछ इस प्रकार की अनुभूतियाँ हैं जो अब स्मृति हैं। आज भी जब मैं वो दौर याद करता हूँ रोम-रोम में आज भी पुलक का अनुभव करता हूँ।

उन्नीस सौ तिरासी से उन्नीस सौ छियासी तक मैं मध्यप्रदेश राज्य सहकारी संघ में उपाध्यक्ष रहा। कुँवर साहब जब यहाँ से पंजाब के राज्यपाल नियुक्त होकर चले गये और फिर 'राजीव-लोंगोवाल समझौता' कराने के बाद जब प्रथम बार भोपाल लौटे तब मैंने अपेक्स बैंक के सामने उनका ज़ोरदार स्वागत किया। वहाँ क़रीब 5-7 हज़ार लोग इस अवसर पर उपस्थित थे। इतना अच्छा वह कार्यक्रम रहा वहाँ लोगों ने उन्हें "देश का गौरव" कहा। व्यक्ति की अंतरात्मा से जो आवाज़ निकलती है वह सत्य होती है। देखिए आज अर्जुनसिंहजी देश के गौरव हैं। इतनी ऊँचाई पर वे हैं कि देश में कोई भी महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने के पूर्व उनकी राय ली जाती है। हमारा और इस विंध्यवसुंधरा का सौभाग्य है कि हमारे बीच का एक व्यक्ति जो कि सर्वसाधारण व्यक्ति के रूप में संघर्ष करते हुए आज इतनी ऊँचाई पर है। मैं उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

☐ *रामग़रीब मिश्र— विन्ध्यप्रदेश के प्रतिष्ठित पत्रकार।*

संवेदनशील सांस्कृतिक छवि

पद्मनाभ तैलंग
(वरिष्ठ पत्रकार)

लगता है आज़ादी के बाद क्रमशः क्षय होती हुई भारतीय राजनीति का चरित्र इस बात की कतई मोहलत नहीं देता है कि राजनीति से जुड़े व्यक्ति सुरुचिपूर्ण सांस्कृतिक चेतना और जातीय संस्कृति के प्रति संवेदनशील रह सकें। दरअसल यह एक प्रकार से राजनीतिज्ञों की मजबूरी है कि वे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक धुरी के मध्य अपने आपको खपाते रहें। हुआ ये कि आज़ादी के बाद भारतीय समाज के सर्वांगीण विकास, विशेषकर आर्थिक विकास के स्रोतों की खोज और इसके बीच से उभर रही अवसरवादी राजनीति की चुनौती के चलते, उनके पास ऐसी संवेदनशीलता के लिये वक़्त ही नहीं बचा। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति ही कही जायगी लेकिन जो राजनीतिज्ञ सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जंजालों के बावजूद अपनी सांस्कृतिक समझ और छवि को बरक़रार रख सकें उनमें मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री तथा वर्तमान में केन्द्र सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्री श्री अर्जुनसिंह भी हैं। यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि वे राजनीतिक समझ से जितने लैस और इसके कार्यकरण में जितने कुशल हैं सांस्कृतिक मामलों की गहराई से भी उतने ही परिचित हैं।

पहली बार वे जब प्रदेश के शिक्षामंत्री बने थे, उसी समय से संस्कृति और साहित्य के प्रति संवेदनशीलता की झलक मिली थी। तब से लेकर आज तक उनकी इस संवेदनशीलता में कोई कमी नहीं आई है बल्कि वह और भी अधिक व्यापक और विस्तृत हुई है। भारतीय साहित्य और संस्कृति के प्रति उनकी सतत् अध्ययनशीलता शायद इसकी वजह हो। वैसे यह भी हो सकता है कि स्नातक की पढ़ाई चूँकि उन्होंने इलाहाबाद से की तो उस वक़्त वहाँ की सांस्कृतिक चेतना के फलस्वरूप उनमें संस्कृति के अध्ययन-मनन की रुचि जागृत हुई हो।

अपने शिक्षामंत्रित्व काल में अर्जुनसिंहजी की सांस्कृतिक छवि को विशेष निखार मिला। यही वह समय था जब भोपाल में उत्सव शृंखला की शुरुआत हुई, जिसके ज़रिए मध्यप्रदेश के साहित्य और कला के क्षेत्र से जुड़ी विशिष्ट प्रतिभाओं को उनके विशिष्ट योगदान के लिए सम्मानित करने और ज़रूरी मंच देने का सिलसिला प्रारंभ हुआ। यह सिलसिला आज भी जारी है। एक तरह से यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि **उत्सव** 73 के आयोजन के बाद से ही प्रदेश में साहित्यिक, सांस्कृतिक जागरण का एक अभियान चला और प्रदेश ही नहीं देश के सारे कलाकर्मी भोपाल के सांस्कृतिक मंच में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने आने लगे। देश के सुप्त सांस्कृतिक माहौल को देखते हुए मध्यप्रदेश में एक सुसंस्कृत और कलाप्रिय विनम्र राजनेता के संरक्षण में किये जा रहे सांस्कृतिक जागरण के प्रयास के लिए कलाकर्मियों का आकर्षित और एकत्रित होना स्वाभाविक था। इसी समय देश के तमाम संस्कृति कर्मियों की भावनाओं को मान देने के उद्देश्य से अर्जुनसिंहजी ने **भारत-भवन** जैसी 'कलाओं के एक घर' की परिकल्पना की थी तथा जिसे अपने मुख्यमंत्रित्व काल में, 1982 में उसे वे पूरा कर सके। सांस्कृतिक क्षेत्र में यह सिर्फ़ संयोग कह कर टाल देने जैसी बात नहीं है वरन् यह एक व्यक्ति विशेष की सतत् सक्रियता, कुछ कर गुज़रने की संकल्पशक्ति का परिणाम है। वस्तुतः इसे देश की सांस्कृतिक क्रांति के रूप में ग्रहण किया

जाना चाहिये और इसका श्रेय निःसंदेह अर्जुनसिंहजी को जाता है।

मुख्यमंत्री बनने के तुरंत बाद अपने प्रदेश में पृथक् संस्कृति विभाग की स्थापना कर डाली और इसके माध्यम से अनेक ऐसी-ऐसी योजनाओं के क्रियान्वयन की स्वीकृति दी कि आज मध्यप्रदेश का नाम देश के सांस्कृतिक नक्शे में सबसे पहले आता है। **भारत-भवन** के उद्घाटन के अवसर पर तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने **भारत-भवन** को देखकर इसे आश्चर्यजनक और दूसरे प्रांतों के लिये अनुकरणीय बताया। यह कम बड़ी उपलब्धि नहीं है।

श्री अर्जुनसिंह के राजनैतिक व्यक्तित्व के अनेकों पहलू हैं। उनकी विशेषताएँ भी लोग गिना देंगे। इस क्षेत्र में अर्जित उनकी उपलब्धियाँ भी सैकड़ों हैं। दूरदर्शी वे हैं ही— जुझारू भी ख़ूब हैं। उचित समय पर तत्काल निर्णय लेने तथा ठोक-बजाकर सबको अपना बनाए हुए जागरूक प्रहरी बने रहने की उनमें असाधारण क्षमता है। यही कारण है कि इतनी चुनौतियों के बीच वे केन्द्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं। इसके बावज़ूद सांस्कृतिक सूझ-बूझ से लैस और लेखकों-कलाकारों के हित-चिंतक तथा सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित पोषित और विकसित करने का जो क़दम अर्जुनसिंहजी ने उठाया है वह एक आदर्श पुरुष द्वारा ही संभव है और इस संदर्भ में अर्जुनसिंहजी का योगदान निःसंदेह बहुत बड़ा है इसी वजह से 1991 में उन्होंने श्री पी.व्ही. नरसिम्हारावजी के मंत्रिमण्डल में अपने लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय का दायित्वपूर्ण काम चुना है।

प्रदेश के विगत कुछ वर्षों (अभी 1990 के बाद के वर्षों को छोड़कर) सांस्कृतिक गतिविधियों का ही जायज़ा लिया जाये तो पता चलता है कि अर्जुनसिंहजी ने मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक विरासत को पोसने और संरक्षित करने का जो काम किया वह अभूतपूर्व है। **चक्रधर केन्द्र, ध्रुपुद केन्द्र, भारत-भवन, आदिवासी लोक कला परिषद्, अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादमी, उर्दू अकादमी** जैसे नयी और **साहित्य परिषद्, कला परिषद्, कालिदास अकादमी** आदि पुरानी संस्थाओं की गतिविधियों को भी उन्होंने नये आयाम दिये। देश के सारे बुद्धिजीवी अब इन संस्थाओं की गतिविधियों और उनके कामों से परिचित हो चुके हैं। यह आकस्मिक संयोग से नहीं हुआ कि देश के शीर्षस्थ बुद्धिजीवी किसी न किसी रूप में प्रदेश की किसी न किसी संस्था से जुड़े हुए हैं। प्रदेश में सागर, उज्जैन और भोपाल में क्रमशः **मुक्तिबोध, प्रेमचन्द** और **निराला** सृजन पीठों की स्थापना भी अर्जुनसिंहजी के मुख्यमंत्रित्वकाल में हो सकी है।

यह अर्जुनसिंहजी की संस्कृति के प्रति स्वायत्त और स्वस्थ दृष्टि और उसके कार्यकरण के लिये सतत् जागरूक सद्प्रयत्नों का फल है कि जब तक उनका सीधा संरक्षण रहा, प्रदेश का संस्कृति विभाग देश और प्रदेश के शीर्षस्थ, श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण कलाकारों-रचनाकारों को सम्मानित करता रहा। यहाँ यह उल्लेख भी ज़रूरी है कि देश में पहली बार किसी राज्य सरकार द्वारा कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान के लिये एक लाख रुपये के **कालिदास सम्मान** और 21, 21 हज़ार रुपये के **शिखर सम्मान** प्रति वर्ष देने की परंपरा प्रारंभ हुई है। फिर और कई पुरस्कार हो गए—**कबीर सम्मान** और **मैथिलीशरण गुप्त सम्मान** तथा **इक़बाल सम्मान** जो हिन्दी और उर्दू साहित्य के लिए दिये जाते हैं।

अर्जुनसिंहजी की सांस्कृतिक छवि ने उनकी राजनैतिक छवि को भी हमेशा सक्षम रूप से उभारने का अवसर उपलब्ध कराया है। यहाँ एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा 1985 में जब अर्जुनसिंहजी पंजाब के राज्यपाल नियुक्त हुए तब 'राजीव लोंगोवाल' ऐतिहासिक समझौता संपन्न हुआ था। इस समझौते को लागू कराने के पूर्व अर्जुनसिंहजी ने पंजाब प्रांत की जनता के बीच अपना सतत् और आत्मीय रिश्ता बनाने का काम शुरू किया था। पंजाब के

बुद्धिजीवी और संस्कृतिधर्मी, उनकी सांस्कृतिक-सामाजिक ज़िम्मेदारी को याद करते हुए पंजाब के शीर्ष नेताओं से उनकी चर्चा करवा सके। प्रख्यात पंजाबी कवि-आलोचक डॉ. अत्तरसिंह की कोशिश से अर्जुनसिंहजी तत्कालीन अकाली नेता श्री हरचन्दसिंह लोंगोवाल से चर्चा कर सके। फलस्वरूप अगस्त, 85 में ऐतिहासिक 'राजीव लोंगोवाल' समझौता संपन्न हो सका। यह तथ्य इस बात को रेखांकित करता है कि एक सुरुचि संपन्न मानवीय संवेदनाओं से भरपूर राजनेता, जटिल और पूरी तरह से विपरीत परिस्थितियों में भी अपने विवेक से काम लेते हुए किस प्रकार मानवीय रागों की तलाश करता है और उसके ज़रिए कुछ मूल्यवान पा लेता है। श्री अर्जुनसिंह राजनैतिक जीवन में जितनी सूझ-बूझ से काम लेते हैं देश के प्रति अपने सांस्कृतिक दायित्त्वों के प्रति भी उतने ही सजग और संवेदनशील हैं।

☐ *पद्मनाभ तैलंग— सुप्रसिद्ध समाजसेवी। बीड़ी पत्ता श्रमिकों के हितों के लिये समर्पित संघर्षमय जीवन। चेतना साप्ताहिक समाचार-पत्र के सस्थांपक-प्रकाशक संपादक। सागर के राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम सेनानी।*

वे ग़रीबों के काम पहले करते हैं

नागेन्द्रसिंह
(पूर्व विधायक, रीवा)

अर्जुनसिंहजी के संपर्क में वैसे तो मैं काफ़ी पहले से रहा हूँ। हमारे पारिवारिक संबंध उनसे रहे हैं। मैं राजनीति में 1976 में उनके संपर्क में आया। इमरजेंसी के दौरान मैं रीवा नगरपालिका का अध्यक्ष हुआ करता था और निर्दलीय अध्यक्ष था मैं। उस समय अर्जुनसिंहजी ने मुझसे कहा कि आप काँग्रेस की मिनिस्ट्री में आइए। काँग्रेस को आपकी ज़रूरत है। मैंने कहा कि मैं थोड़े दिन इंतजार करना चाहूँगा ताकि लोग ये न सोचें कि मैं इमरजेंसी के डर से आ रहा हूँ। इसके बाद जब इमरजेंसी ख़त्म हुई तो मैंने उनके माध्यम से काँग्रेस पार्टी ज्वाइन की।

मैं बचपन से ही उनके घर आता-जाता रहा हूँ। मैंने शुरू से ही देखा है कि लोगों के साथ उनका व्यवहार सदैव उत्तम कोटि का हुआ करता है। लोगों से उनके मिलने का तौर-तरीक़ा, उनके काम करने की शैली से मैं प्रभावित हुआ। यदाकदा किसी सोशल वर्क के लिए वे मुझे कहा करते थे, तो मैं इस काम में पूरा सहयोग देता था। यद्यपि मैं उस समय काँग्रेस में नहीं था। वे बहुत ही विशाल हृदय के व्यक्ति हैं, इस बात के कई उदाहरण मेरे पास प्रमाण के बतौर हैं। कई बार क्या होता था कि वे कहीं गए, जाहिर है वहाँ प्रचुर भीड़ उनके स्वागत के लिए उपस्थित रहती है। वे इस भीड़ में भी यह जान जाते हैं कि अमुक व्यक्ति का काम ज़्यादा ज़रूरी है। वे अपने धनाढ्य मित्रों के कार्यों की अपेक्षा ग़रीबों के काम को प्राथमिकता देते हैं। एक बार वे रीवा आए। काफ़ी भीड़ थी। एक बुजुर्ग व्यक्ति उस भीड़ में खड़ा था, भीड़ के दबाव से दबा जा रहा था। वे कार में बैठे थे। सौभाग्य से मुझे उनके पास बैठने का अवसर मिला था। अर्जुनसिंहजी ने कहा कि वे जो बुजुर्ग खड़े हैं, सबसे पहले उनकी अर्जी लीजिए। अर्जी ले ली गई और चौथे दिन ही उनका महत्वपूर्ण कार्य सिद्ध हो गया। ये बुजुर्ग अध्यापक आज भी रीवा में रहते हैं। उनके व्यक्तित्व के ये कुछेक ऐसे पहलू हैं जिन्हें मैंने देखा और जिनकी मैं भूरि-भूरि प्रशंसा करना चाहता हूँ। कई बार उनके साथ राजनीतिक सभाओं में जाने का अवसर मिला। जब इंदिरा जी पावर में नहीं थीं उस समय उन्होंने रीवा का दौरा किया। इस संदर्भ में सारे डीटेल्स अर्जुनसिंहजी वर्क आऊट करते थे। इंदिराजी को पहले सीधी आना था। एयरपोर्ट से नियत स्थान तक जाने में कितना समय लगेगा इसके लिए अर्जुनसिंहजी कार का ट्रायल तक करते थे। यानि ये निर्धारित था कि एयरपोर्ट से मंच तक पहुँचने में एक निर्धारित समय ही लगना चाहिए। गाड़ी चलाने के लिए सर्वश्रेष्ठ ड्राइवर कौन होगा इस बात की बड़ी बारीक़ी से जाँच करते थे। मुझसे भी गाड़ी चलवाकर देखते थे। खुद भी चलाते थे। इंदिराजी को किस वक़्त किसी चीज़ की ज़रूरत होगी इस बात की पूरी तैयारी वे स्वयं करते थे।

बहुत ही संघर्षों में आगे बढ़े हैं श्री अर्जुनसिंहजी। आपने जैसा पूछा कि क्या इस संघर्ष में उन्हें अपने परिवारजनों का सहयोग प्राप्त हुआ अथवा नहीं। परिवारजनों के सहयोग के विषय में मैं कुछ नहीं कहूँगा। लेकिन इतना ज़रूर कहूँगा कि उनके बड़े भाई श्री रणवहादुरसिंहजी ने जो कि मेंबर ऑफ पार्लियामेंट भी रह चुके हैं – अभी पिछले चुनाव में जबकि उन्होंने एम.पी. का चुनाव लड़ा। उस दरम्यान उन्होंने बी.जे.पी. पार्टी ज्वाइन की ऐसा अख़बारों

में पढ़ा। इस घटना से मुझे भारी धक्का लगा। उन्होंने अवश्य ही संघर्षों का सामना करते हुए अपने आपको राजनीति के उच्च शिखरों पर स्थापित किया है। पार्टी के आयोजनों में व्यवस्था संभालते वक़्त कई प्रकार की परेशानियाँ आती थीं। विकट स्थितियाँ निर्मित होती थीं किन्तु मैंने उन्हें कभी विचलित होते नहीं देखा। इस दौरान जैसा भोजन मिला, खा लिया, व्यस्तता की वजह से भोजन नहीं कर पाए तो भी कोई बात नहीं। एक बार हम लोग दौरे से लौटे। उस समय दोपहर के क़रीब ढाई बज रहे थे। सब लोग खाना खा चुकने के बाद आराम कर रहे थे। हम लोग डाइनिंग टेबिल तक गए। मैंने देखा कि अर्जुनसिंह जी खाना लेकर खाने लगे। खाना ठंडा हो चुका था। मेरे आश्चर्य व्यक्त करने पर उन्होंने सहज भाव से कहा कि जैसा भाग्य में लिखा है वैसा ही होगा। कृपया जल्दी भोजन कर लें क्योंकि हमें एक और कार्यक्रम में जाना है। खाना गरम करवायेंगे तो देर हो जायगी। वे समय के बहुत पाबंद हैं। यद्यपि काँग्रेस के बड़े नेताओं ने उनकी बहुत ज़्यादा सहायता तो नहीं की किन्तु उन्होने सभी का बराबर सम्मान किया। कभी-कभी हम जैसे कार्यकर्ताओं को यह लगने लगता है कि जिन लोगों ने उनका हमेशा विरोध किया है वे उनको ज़्यादा सम्मान देते हैं।

वे जब मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री हुए तब से विंध्य क्षेत्र का सही मायने में विकास प्रारम्भ हुआ। उन्होंने इंदिरा जी को यहाँ बुलाकर रेल्वे लाइन का शिलान्यास करवाया जो कि रीवा की बहुत पुरानी माँग है। अब जाकर ये काम पूर्ण हो रहा है। यहाँ आठ सौ बिस्तरों वाला जो अस्पताल बनने वाला है उसके लिए पैसों की व्यवस्था भी उन्होंने ही की। यूनिवर्सिटी को कई प्रकार से मदद की। कई इंडस्ट्रीज की स्थापना में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा जैसे जे.पी. सीमेंट फैक्ट्री – जो कि भारत की बड़ी फैक्ट्रियों में से एक है – उन्हीं के प्रयत्नों से स्थापित हो पाई है। सिंगरौली जिसकी कोई मान्यता नहीं थी कभी भी। सिंगरौली में सात खदानें मध्यप्रदेश की हैं और दो खदानें उत्तरप्रदेश की हैं। लेकिन सारा दोहन उत्तरप्रदेश करता था। सिंगरौली उत्तरप्रदेश के नाम से जाना जाता था। मध्यप्रदेश को इस खदान से फ़ायदा दिलवाना। मध्यप्रदेश में हेडक्वार्टर बनना। वहाँ पर सड़कों का विकास, और सिंगरौली का समुचित विकास जैसी घटनाएँ उन्हीं के प्रयासों का परिणाम है। आज सिंगरौली ऊर्जा की राजधानी है।

अर्जुनसिंहजी ने काँग्रेस पार्टी को मज़बूत बनाने की दिशा में अथक प्रयत्न किये हैं। इस क्रम में कई बार उन्हें कुछ ऐसे निर्णय भी लेने पड़े जो शायद उनके क़रीबी लोगों को अच्छे न भी लगे हों। लेकिन उनके ये निर्णय पार्टी के हित के लिए थे। उन्होंने सदैव कार्यकर्त्ताओं को एकता के सूत्र में बाँधने की कोशिश की।

वे जब मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री थे तो विंध्यप्रदेश में शिक्षा के प्रचार-प्रसार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य उन्होंने किये। उस समय यहाँ यूनिवर्सिटी तो खुल चुकी थी। मेडिकल कॉलेज भी खुल चुका था। इंजीनियरिंग कॉलेज भी था, लेकिन यूनिवर्सिटी को इतना अनुदान नहीं मिलता था कि वह अपना पृथक् टीचिंग डिपार्टमेंट खोल सके। अर्जुनसिंहजी के मुख्यमंत्रित्वकाल में नौ टीचिंग डिपार्टमेंट्स खोले गए। एक पृथक् शोध संस्थान की स्थापना की गई। एक संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना का विचार भी उन्होंने दिया। प्राइमरी शिक्षा की दिशा में सर्वाधिक प्रयास व विकास उन्हीं के दौर में हुआ।

मध्यप्रदेश में अब तक जितने भी मुख्यमंत्री हुए हैं उनमें मैं अर्जुनसिंहजी को नम्बर एक मुख्यमंत्री मानता हूँ। इसके पर्याप्त कारण भी हैं। ये बात मैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि मैं उनके नज़दीक हूँ बल्कि उनके साथ काम करते समय मैंने उन विशेषताओं को अनुभव किया जिनके आधार पर मैं ये बात कह पा रहा हूँ। उनके दौर में जो प्रशासनिक चुस्ती थी वह अभूतपूर्व थी। उन्होंने काँग्रेस के समाजवादी सिद्धांतों के आधार पर जिस ढंग

से व्यवस्था में काम किया वह सराहनीय है। मसलन, झुग्गी-झोपड़ीवासियों को पट्टा दिया, उन लोगों को ज़मीन का मालिकाना हक़ दिलवाया जो कि बंधुआ मज़दूर थे। उनको बिजली का एक बत्ती कनेक्शन दिया। ये सब काँग्रेस के समाजवादी सिद्धांतों का इम्प्लीमेंटेशन था। इसी कारण से वे आम लोगों में लोकप्रिय भी हुए। इसीलिए मैं उनको नम्बर एक पर मानता हूँ।

हम ये कामना करते हैं कि उनका भविष्य उज्ज्वल से उज्ज्वल हो। वे दीर्घायु हों। हमें उनके मार्गदर्शन में कार्य करने का अधिकाधिक मौक़ा मिले।

☐ *नागेन्द्रसिंह — उद्योगपति, पूर्व विधायक*

ग़रीब नवाज़ जनाब श्री अर्जुनसिंह

साजिद अली

(एडवोकेट-पूर्व अध्यक्ष, मध्यप्रदेश पर्यटन विकास निगम)

मैंने आज तक विश्व के जिन महान् व्यक्तियों और विचारकों की जीवनी का अध्ययन किया है, उनमें उल्लेखित समस्त गुणों को एक साथ यदि किसी व्यक्तित्व में देखा जा सकता है तो वह व्यक्तित्व है माननीय श्री अर्जुनसिंह का। सरल, सौम्य व्यक्तित्व के धनी, मृदुभाषी, व्यवहार कुशल तथा आदर्श चरित्र और अनुशीलन योग्य संस्कारों से युक्त श्री अर्जुनसिंह विद्वान्, दृढ़ संकल्पवान्, अथक परिश्रम करने वाले और प्रत्येक कार्य को पूर्णता तक पहुँचाने वाले देश प्रदेश के आदर्श राजनेता हैं। उनकी स्मरण शक्ति अद्‌भुत है। वे हज़ारों प्रशंसकों और परिचितों को नाम से जानते है। दूसरों को सम्मान देने की जन्मजात प्रवृत्ति उनमें है जो बिरले व्यक्तियों में पाई जाती है। मुख्यमंत्री के पद पर आने के बाद भी जब कभी कोई उनके कक्ष में प्रवेश करता या उनसे मिलता है तो वे उसे अपनी ओर से पूर्ण सम्मान देते हैं। महिलाओं और वृद्ध व्यक्तियों के प्रति उनके मन में अपार आदर भावना है। कुछ मौक़े ऐसे भी आये जब काँग्रेस के कटु आलोचकों स्वर्गीय जनाब शाकिरअली ख़ान या स्वर्गीय श्री उद्धवदास मेहता उनसे मिलने आये तो उन्होंने अपने कक्ष से बाहर आकर विरोधी दल के वरिष्ठ नेताओं के आगमन की प्रतीक्षा की और उनकी कार का दरवाज़ा स्वयं खोलकर उन्हें अपने कक्ष तक ले गये। यह आदर्श उनके शिक्षामंत्री काल में, प्रदेश काँग्रेस अध्यक्ष के कार्यकाल में और अन्य परिस्थितियों में भी एक समान रहा। उनके मन में जितनी श्रद्धा हिन्दूधर्म के लिए है उतनी ही श्रद्धा मुस्लिम और सभी धर्मो के लिए है। जनाब राजोरिया साहब की गुजारिश पर भोपाल में ईदगाह पहुँचकर लाखों मुस्लिम भाइयों को मुबारकबाद देने की नई परम्परा की शुरुआत माननीय श्री अर्जुनसिंह ने ही की थी। गुफ़ा मंदिर वाले महंतजी और भोपाल के स्वर्गीय काजी साहब, दोनों का वे समान श्रद्धा भाव से सम्मान करते थे। काजी साहब ने तो उनके दिल में कुछ ऐसी जगह बना ली थी कि उनके इंतकाल के वक़्त श्री अर्जुनसिंह अपनी भाव विव्हलता को नहीं रोक पाये और उनकी आँखों से अनवरत आँसू टपकते रहे।

शिष्टाचार और व्यवहार कुशलता उनका अपना गुण है जो आदर्श भी है और अनुकरणीय भी। एक बार सैकड़ों कार्यकर्ता विमानतल पर नई दिल्ली से भोपाल आये वरिष्ठ राजनेताओं को विदा करने पहुँचे थे। जब सब लोग विमान पर सवार हो गये तो उनमें से किसी ने बहुत धीरे से फुसफुसाया – "सर, चलें!" श्री अर्जुनसिंह का जवाब था, "नहीं जब तक प्लेन टेक ऑफ नहीं कर लेता हमें रुकना चाहिए।" एक और घटना मुझे याद है। आप दिल्ली से रात की ट्रेन से भोपाल आये थे। संयोग या मेरे सौभाग्य से, उनकी कार में कुछ ख़राबी आ गई और मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि मैं माननीय श्री अर्जुनसिंह को उनके निवास तक छोड़ने गया। मैं कार लेकर उनके पास पहुँचा और उनके प्रति आदर व्यक्त करते हुए मैंने अपनी कार का पिछला गेट खोल लिया। यह उनकी महानता और बड़प्पन था कि वे कार की पिछली सीट पर नहीं बैठे बल्कि दूसरी ओर से आकर मेरे बाजू की

अगली सीट पर बैठ गये। बैठते से ही कहा, "आपको रात में बड़ी तक़लीफ़ होगी।" लेकिन वह तो तक़लीफ़ नहीं मेरा सौभाग्य था या यूँ कहें कि मेरी ज़िन्दगी का वह एक तारीख़ी दिन था जिसे मैं कभी नहीं भुला सकता।

मध्यप्रदेश में लोग उन्हें ग़रीबों का मसीहा कहते हैं। दरअसल दीन-हीन, सर्वहारा वर्ग के बेसहारा ग़रीबों के लिए उनके दिल में बहुत मोहब्बत है। अपने मुख्यमंत्रित्व काल में कुँवर साहब सप्ताह में एक दिन आम जनता से भेंट करते थे। ऐसे ही एक दिन की बात है कि जब एक बुजुर्ग मुस्लिम महिला अपनी बेटी के साथ मुख्यमंत्री निवास पर पहुँची और लगातार आसमान की ओर हाथ उठा-उठाकर श्री अर्जुनसिंह के लिए दुआएँ दे रही थी। पूछने पर उसने बताया कि उसके पति का पिछले दिनों बीमारी के कारण देहांत हो गया था। घरवाले के न रहने से पूरा परिवार भुखमरी की कगार पर पहुँच गया था। ग़रीब नवाज़ जनाब श्री अर्जुनसिंह की दरियादिली के किस्से सुनकर वह अपनी बड़ी बेटी को साथ लेकर उनके दरबार में हाज़िर हुई थी। वह अपने साथ एक प्रार्थनापत्र लेकर आई थी। उसने आकर मुख्यमंत्रीजी से अपनी दर्द भरी दास्ताँ सुनाकर अपनी बेटी को नौकरी देने की गुजारिश की थी। माननीय अर्जुनसिंहजी ने उसी वक्त आदेश दिए और उनसे कहा – "अम्माजी, आप अगले हफ़्ते इसी तरह मुझसे मिलने आइयेगा और बताइयेगा कि क्या हुआ।" माँ-बेटी घर चले गये और सप्ताह बीतने से पहले ही उनको घर बैठे ही लड़की की नौकरी का आदेश प्राप्त हो गया। अधिकारियों ने भोपाल के निकट बैरसिया तहसील के एक गाँव में नौकरी दी थी। श्री अर्जुनसिंह के निवास पर माँ-बेटी दोनों उन्हें दुआएँ देने आये थे। सैकड़ों लोगों से मिलते हुए जब श्री अर्जुनसिंह उस बुजुर्ग महिला के पास पहुँचे तो ना जाने कैसे उसे पहचान गये और पूछा – "क्यों अम्मा, बिटिया को नौकरी मिल गई?" अम्माँ की आँखों में आँसू थे और हज़ारों बलायें लेती हुई उसने फूल माला और मिठाई का डिब्बा पेश किया और साथ ही नियुक्ति पत्र की प्रति भी उन्हें दी। जैसे ही उन्हें नियुक्ति आदेश में भोपाल के बजाए किसी गाँव का नाम दिखा तो उनकी पैशानी पर सिलवटें उभर आईं। पास ही खड़े किसी अधिकारी को सम्बोधित कर उन्होंने कहा – "जिस परिवार में कोई पुरुष नहीं है उसकी जवान बेटी अनजान गाँव में किसके सहारे रहेगी?" उन्हें भोपाल में एपाइंट कराएँ। इतना कहकर वे तो आगे बढ़ गये लेकिन जिसने भी सुना वह सुनकर दंग था कि कितनी हमदर्दी, कितना प्यार और कितना अपनापन है उनके मुख्यमंत्री के दिल में ग़रीबों के लिए।

सन् 1990 की पहली तिमाही में मध्यप्रदेश में भाजपा की सरकार बनी थी। भाजपा ने अपने कार्यकाल में हिंसा, प्रतिहिंसा और प्रतिशोध का जो दावानल जगाया और जिस प्रकार ग़रीबों की झुग्गी-झोपड़ी में बुलडोज़र चलाया, उस काले अध्याय का उल्लेख इस ग्रन्थ की महत्ता के अनुकूल नहीं है। मुझे एक घटना याद है। बैरागढ़ में अतिक्रमण हटाने के नाम पर बुलडोज़र से नगर निगम भोपाल द्वारा जबरदस्त तोड़फोड़ की जा रही थी। जैसे ही ख़बर प्रदेश काँग्रेस कमेटी के पास पहुँची, उस समय प्रदेश काँग्रेस के अध्यक्ष पद पर श्री अर्जुनसिंह थे, उन्होंने अपने साथ सभी नेताओं से चलने को कहा और उनके साथ छोटे-बड़े अनेक कार्यकर्ता बैरागढ़ पहुँचे। बैरागढ़ पहुँचकर वे स्वयं ही बुलडोज़र के सामने खड़े हो गये और ऐलान किया कि या तो बुलडोज़र वापस ले जाओ या चलाना है तो पहले मेरे सीने पर चलाओ। इस शांत स्वर में की गई घोषणा का तुरंत असर हुआ और अतिक्रमण विरोधी दस्ता बैरागढ़ से वापस होने के लिए मुड़ गया लेकिन बुलडोज़र और समस्त कर्मचारी पुनः बैरागढ़ वापस आ गये। जैसे ही यह ख़बर प्रदेश काँग्रेस कमेटी को मिली तत्काल पड़ोस में स्थित सी-19 बंगले पर श्री अर्जुनसिंह को सूचित किया गया और वे तत्काल 8-10 लोगों को साथ लेकर बैरागढ़ की ओर रवाना हो गये। दुबारा उनके पहुँचने की देर थी कि पूरा बैरागढ़ सड़क पर उतर आया। चारों ओर नागरिक ही नागरिक थे। बैरागढ़ में कभी

इतना बड़ा जन सैलाब नहीं देखा गया। बुलडोज़र तो नहीं चल पाया, श्री अर्जुनसिंहजी की शख़्सियत बैरागढ़ के निवासियों के दिल में अंकित हो गई।

नेतृत्व और पार्टी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा की कोई दूसरी मिसाल नहीं है। वर्ष 1989 में एक न्यायालयीन आदेश के संदर्भ में हाई कमान द्वारा मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह से त्यागपत्र माँगा गया था। वे 3 दिन मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में अत्यधिक चिन्ता और तनाव के बीच बीते लेकिन उन्होंने जिस धैर्य और गम्भीरता के साथ नेतृत्व के प्रति निष्ठा का परिचय दिया वह बेमिसाल है। ऐसी परिस्थितियों में जब कि वे निर्दोष थे। न्यायालय के निर्णय, विधि वेत्ताओं के लिए विवादास्पद थे, एक नहीं अनेक अर्थ थे किन्तु फिर भी बग़ैर किसी सफ़ाई का अवसर दिये मुख्यमंत्री पद छोड़ने को कहा गया था। उस समय लगभग सभी विधायक आपके साथ थे। तीन दिनों तक रोते-बिलखते विधायकों ने यहाँ तक चाहा था कि वे सब के सब राजभवन जाकर माननीय श्री अर्जुनसिंह को नेता चुनना चाहते हैं। उन्होंने भावुकता में कहा कि हम सब त्यागपत्र दे देंगे। कुछ ने कहा कि हमें बसों में बैठाकर बड़े तालाब में फेंक दीजिये। लेकिन वे स्वयं संयत रहे और शांति से सभी को समझाकर मार्गदर्शन दिया तथा अपने नेता और पार्टी के प्रति वफ़ादारी दिखाते हुए मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया।

उनके चिन्तन, उनकी दूरदृष्टि और उनकी कल्पना शक्ति को इस प्रदेश का हर समझदार कार्यकर्ता अनुभव करता है। हृदयाघात की गम्भीर स्थिति में भी भाजपा नेता आडवाणी की रथ यात्रा और उसमें लगे कमल के निशान को खोजकर उसके विरुद्ध अदालत में दावा दायर करने की तड़फ श्री अर्जुनसिंह के अलावा और किस व्यक्ति में हो सकती है? इसी प्रकार की दूसरी घटना, जिस समय उनके हृदय की शल्य क्रिया हो रही थी, उन्हें गहन चिकित्सा इकाई से ऑपरेशन थियेटर में ले जाया गया तो उन्होंने अपनी आत्मा की आवाज़ लिखी जिसका शीर्षक था "मेरे राम, रहीम, ईसा तुम कहाँ हो?" एक ऐसे समय में जब इंसान को दिल के ऑपरेशन के लिए ऑपरेशन थियेटर पर ले जाया जाता हैं आमतौर पर वह अपने घरवालों, धनदौलत, परिवार, बाल-बच्चों और अपने खानदान संबंधी फ़िक्र से परेशान होता है या उसके बारे में अपनी पत्नी या पुत्रों को निर्देश देता है किन्तु उनके मन में जो आवाज़ थी, जो चिन्तन था वह उन्हें मानव से महामानव तक लाने वाला है। यही कारण है कि जब कभी नारे लगते हैं, ऐसा नारा जो सिर्फ़ अर्जुनसिंह के लिए ही है वह है :— "जिनके एक हाथ में गीता और दूसरे में कुरान है, अर्जुनसिंह वहीं इंसान हैं।"

वह व्यक्ति जिसे नन्हें-मुन्ने बच्चों से प्रेम है, जो स्काउट गाईड के कार्यक्रम में दिखता था। जो युवाओं के लिए आशा और विश्वास की दृष्टि से देखता है, जो महिला वर्ग के करूणा और सम्मान की चिन्ता करते हैं, जिनके दिल में समाज के कमज़ोर वर्ग, अल्पसंख्यक, हरिजन-आदिवासी, शोषित-पीड़ित झुग्गीवासियों, रिक्शा चालक, सर्वहारा वर्ग की समस्याओं के लिए पीड़ा और कसक है उसे इस देश-प्रदेश में किसी और के समर्थन की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने कभी भी शाब्दिक सहानुभूति नहीं दिखाई। सभी के लिए उन्होंने कुछ न कुछ किया है जिसकी इतिहास में कोई मिसाल नहीं है। अल्पसंख्यकों का काँग्रेस में आशा और विश्वास का यदि कोई सहारा है तो वह मात्र श्री अर्जुनसिंह हैं। जो केवल मध्यप्रदेश ही नहीं बल्कि पंजाब, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक हिन्दुस्तान के हर कोने में शोषित-पीड़ित और अल्पसंख्यकों के लिए आशा और विश्वास की किरण हैं और उनके नेतृत्व में हम सबका भाग्य और भविष्य सुरक्षित है।

साहित्य, कला, संस्कृति, निर्माण और विकास के साथ समाज के हर वर्ग के लिए जो कुछ आपने मध्यप्रदेश में किया है उसके प्रमाण के लिए इतना ही कहना पर्याप्त है कि पूरे हिन्दुस्तान में सिर्फ़ मध्यप्रदेश ही एक मात्र

ऐसा प्रदेश है जिसमें 1984-85 के चुनाव में राज्यसभा में सर्वाधिक सदस्य अपने प्रदेश के भेजकर कीर्तिमान स्थापित किया था। आपने इक़बाल के नाम से मशहूर हिन्दुस्तान के शायर अल्लामा डॉक्टर सर मोहम्मद इक़बाल के नाम से इक़बाल मैदान बनवाया। स्वतंत्रता संग्राम सेनानी बरकतउल्लाह भोपाली के नाम से बरकतउल्लाह भवन का निर्माण कराया। भोपाल विश्वविद्यालय का नाम बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय किया। उर्दू की शिक्षा व्यवस्था को नया स्वरूप और नई व्यवस्था दी। एशिया की सबसे बड़ी मस्ज़िद के निकटवर्ती बड़े मैदान का मालिकाना हक़ मस्ज़िद कमेटी को प्रदान किया। मस्ज़िद के अनुदान में वृद्धि की। मस्ज़िद में अज़ान देने वाले कर्मचारियों को नया वेतनमान दिया। उर्दू शिक्षकों की नियुक्ति की गई। तबलीगी इज़्तिमा के लिए स्पेशल ट्रेन आरम्भ कराई गई और इस प्रकार के अनेक कामों को अंजाम देते हुये भोपाल में उर्दू अकादमी की स्थापना कर उर्दू साहित्य और साहित्यकारों को एक स्वतंत्र, आदर्श और सुदृढ़ मंच प्रदान कर उन्होंने अपने हृदय की महानता का परिचय दिया।

आज जब श्री अर्जुनसिंह का अभिनंदन किया जा रहा है, मुझे ख़ुशी है कि इस ग्रंथ को तैयार करने का काम उन्होंने अपने पुराने ऐसे विद्वान पत्रकार साथी को सौंपा है जिसके लिए मध्यप्रदेश का अल्पसंख्यक वर्ग अपने हृदय में विशेष स्नेह और सम्मान रखता है। भोपाल में ऐसे कई मौक़े और मसले आये जब चंद लोगों ने साम्प्रदायिक दंगे फैलाने चाहे और हर मौक़े पर जनाब विष्णु राजोरिया साहब ने पहल की और जनाब श्री अर्जुनसिंह के मार्गदर्शन और आशीर्वाद से सभी मसले हल करते हुए भोपाल में भाईचारे का माहौल बनाये रखा। आज इस ग्रन्थ में मैं बहुत कुछ कहना चाहता हूँ। दिल और दिमाग़ में कई तूफ़ान हैं लेकिन वह सब किसी और वक़्त के लिए रखते हुए मैं अपनी बात ख़त्म करने के पहले उसे एक शेर में दोहराना चाहता हूँ, जो किसी संकट की घड़ी में स्वयं श्री अर्जुनसिंह ने विधायकों के बीच कही थी। जब उन्होंने मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया था और अपने नेता के प्रति अपनी कर्त्तव्य-निष्ठा का प्रमाण देने के लिए स्वयं की साख और राजनीतिक पद छोड़ते वक़्त विधायकों के बीच कहा था, वह कुछ इस तरह का है :—

शमा पै भारी है एक रात जिस तरह,
मैंने तमाम उम्र गुज़ारी है उस तरह॥

☐ *साज़िद अली — अल्प संख्यकों के बीच लोकप्रिय नेता। प्रतिष्ठित स्थापित एडवोकेट। मध्यप्रदेश काँग्रेस कमेटी के उपाध्यक्ष। मध्यप्रदेश पर्यटन विकास निगम के मनोनीत अध्यक्ष रह चुके हैं। सक्रिय समाजसेवी।*

उदारमना व्यक्तित्व

कैलाश अग्रवाल

(शिक्षा एवं समाज सेवी)

स्कूल, कॉलेज और व्यापार के बीच जीवन के पैंतालीस वर्ष बीत चुके हैं। सैकड़ों के संपर्क में आया। जौहरी परिवार में पलने-बढ़ने के कारण हीरे-पन्ना जैसे पत्थरों के साथ ही इन्सानी चेहरों को भी पढ़ने और पहचानने में महारत हासिल होती रही है। मैंने सबसे पहले – बाइस साल पहले, श्री अर्जुनसिंह को शिक्षामंत्री के रूप में नहीं, वरन् एक शिक्षाशास्त्री के रूप में दो अक्टूबर, 1970 को देखा था। भोपाल तब उतना विशाल नहीं था, जैसा आज है। उस समय मैं कैरियर सोसायटी का कोषाध्यक्ष था। बापू जयंती पर कैरियर स्कूल भोपाल में प्रार्थना सभा और बच्चों का कार्यक्रम रखा गया था। वहाँ पहुँचकर जब शामियाना, मंच और चहल-पहल देखी तो कुछ आश्चर्य होना स्वाभाविक था। जब श्री राजोरिया ने बताया कि विधायक श्री अर्जुनसिंह मुख्य अतिथि हैं तो सहज जिज्ञासावश मैं रूक गया। ठीक दस बजे अपनी फियेट कार से श्री अर्जुनसिंह पधारे। उनके साथ थे श्री मुनिप्रसाद शुक्ल। शिक्षिकाओं और बालकों ने अगवानी की। कार्यक्रम हुए। श्री अर्जुनसिंह ने जिस धीर-गंभीर वाणी में बालकों को संबोधित किया उसे सुन सभी भावविभोर हो गये। मैंने स्वयं गाँधी साहित्य का अध्ययन नहीं किया था। समाज शास्त्र में एम.ए. करने के कारण मुझे गाँधी जीवन दर्शन का ज्ञान नहीं था। उनके भाषण के बाद पहला काम जो मैंने किया वह गाँधी साहित्य का अध्ययन था।

कॉलेज जीवन में अनेक विद्वानों और वक्ताओं को देखा-सुना है किंतु जितनी विषयानुकूल सारगर्भित ढंग से धीमे-धीमे अर्जुनसिंहजी अपनी बात कहते हैं वैसा वक्ता मैंने आज तक नहीं सुना। इसके बाद सेठी मंत्रिमण्डल में आप शिक्षामंत्री बने। आप प्रदेश के पहले शिक्षामंत्री थे जिनने शिक्षा जगत की समस्याओं के समाधान के लिये छात्रों, शिक्षकों और शिक्षा शास्त्रियों से चर्चाओं का सिलसिला शुरू किया। अशासकीय शिक्षा संस्थाओं के प्रबंधकों और शिक्षकों की समस्याओं का समाधान, सेवा शर्तों में सुधार, अनुदान के नियम और विशेषकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना उनके उल्लेखनीय कार्य हैं। कालिदास अकादमी, तुलसी अकादमी, बालकृष्ण शर्मा नवीन चेअर की स्थापना आदि ऐसे कार्य हैं जो उनकी शैक्षणिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक अभिरुचि और तत्संबंधी योगदान के परिचायक हैं।

कैरियर सोसायटी विगत पच्चीस वर्षों से शिक्षा और समाजसेवा के क्षेत्र में पूर्व राज्यमंत्री श्री विष्णु राजोरिया के नेतृत्व में समर्पित भाव से कार्य कर रही हैं। कैरियर स्कूल और कैरियर कॉलेज के अनेक समारोहों में श्री अर्जुनसिंह को देखते-सुनते रहा हूँ। उनकी अतिशय उदारता की कहानियाँ भोपाल के सराफ़ा बाज़ार में हातिमताई के किस्सों के समान प्रचलित हैं।

व्यापार में व्यस्त रहने के कारण सक्रिय राजनीति में न रहते हुए भी राजनीति की सक्रियता के प्रति जिज्ञासुभाव सदा बना रहता है। सराफ़ा चौक के पटियों पर रात में अच्छे-अच्छों के बखिये उधेड़े जाते हैं। श्री अर्जुनसिंह ने

जब ताजुल मस्ज़िद के निकट की भूमि के काग़ज़ात शहर काज़ी को सौंपे और भोपाल विश्वविद्यालय का नाम स्वाधीनता संग्राम सेनानी बरकतउल्ला खाँ के नाम पर, "बरकतउल्ला विश्वविद्यालय" रखने की घोषणा की, उस समय सराफ़ा चौक के पटियों पर लोग आग-अंगार उगलने लगे। ऐसा होना अनहोनी नहीं कही जा सकती। पुराना भोपाल आज भी कई विषयों पर हिन्दू-मुस्लिम खेमों में बँटा हुआ है। मज़े की बात यह है कि एक ओर जहाँ सराफा बाजार के भाजपाई विचारधारा के लोग इन क़दमों की कटु आलोचना कर रहे थे, वहीं प्रगतिशील विचारधारा के बुद्धिजीवी और मुसलमान वर्ग के बीच इन निर्णयों को सराहनीय बताया गया। मूलतः यह क़दम श्री अर्जुनसिंह की धर्मनिरपेक्ष दृष्टि और सदाशयता का परिचायक है। यही वे श्री अर्जुनसिंह हैं जिनने सोमवारा बाज़ार भोपाल में दुर्गा उत्सव के मंच पर रखी दुर्गा प्रतिमा विसर्जित नहीं कर— मंदिर बनाने की हठधर्मी को, उदारता से स्वीकार कर, स्वर्गीय भाईजी श्री उद्धवदास मेहता का हृदय जीत लिया था। अर्जुनसिंहजी की यह कोई साधारण सदाशयता नहीं थी। मूर्ति विसर्जित नहीं करना, उसी सार्वजनिक सड़क मार्ग पर मंदिर बनाने की घोषणा, प्रदर्शन, हड़ताल और फिर कर्फ़्यू के बीच पुलिस पर गुरिल्ला छापामार तरीक़े से पथराव के कारण साम्प्रदायिक तनाव चरम सीमा पर था। प्रकरण से संबंधित दर्जनों वार्ड नेता गिरफ़्तार कर लिये गये थे किंतु श्री अर्जुनसिंह के "ट्रबल शूटर" श्री राजोरिया की मध्यस्थता से समस्या का समाधान हुआ था।

कट्टर हिन्दू धर्मान्धता और विशेषकर भाजपाई दुराग्रह की यह अकेली घटना नहीं है जो तत्कालीन विधायक श्री विष्णु राजोरिया की मध्यस्थता से हल की जा सकी थी। रायल मार्केट और ताजुल मस्ज़िद के निकट लोक शिक्षण संचालनालय है। यहाँ कुछ कर्मचारियों ने कार्यालय प्रांगण में पूजा-पाठ और हवन का कार्यक्रम रखा। हवन का धुआँ ताजुल मस्ज़िद के नमाज़ कक्ष तक जा पहुँचा। मुसलमानों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई पथराव और तनाव के बीच राजधानी में अफ़वाहों का बाज़ार गर्म हो उठा। सईदउल्ला ख़ाँ नामक एक स्वयंभू नेता ने इसे जमकर हवा दी। उन्होंने मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह के प्रति अपनी व्यक्तिगत नाराज़गी को इस मुद्दे के ज़रिये भुनाने की कोशिश की। आधी रात को लगभग पाँच सौ नौजवानों की भीड़ लेकर उन्होंने करबला रोड स्थित श्री विष्णु राजोरिया के आवास के द्वार पर दस्तक दी। रात भर ख़ासा हंगामा रहा। अंततोगत्वा राजोरियाजी की पहल पर श्री अर्जुनसिंह ने इस हंगामी हरकत को शालीनता से शांत कर उपद्रव की आग भड़कने से पहले ही उसे ठण्डा कर दिया।

विरोधियों का दिल जीतने में अर्जुनसिंहजी बेमिसाल हैं। एक ओर शहर काज़ी, शहर मुफ्ती और दूसरी ओर गुफा मंदिर के महन्त नारायणदासजी और हिन्दू हितों के लिये संघर्ष करने वाले भाई उद्धवदासजी मेहता तथा उनके निधन के बाद हिन्दू एकता मंच के श्री ओम मेहता, गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के सरदार बलवंतसिंह सलूजा और सरदार भगवानसिंह गुलाटी और भोपाल के आर्क बिशप सभी एक स्वर से उनके प्रशंसक रहे हैं। भाजपा नेता श्री कैलाशनारायण सारंग, श्री बाबूलाल गौर और श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा मंच से या विधानसभा में चाहे जैसे कटु प्रहर करते रहें किन्तु व्यक्तिगत चर्चा में सराफ़ा चौक के पटियों पर वे श्री अर्जुनसिंह की उदारता, शालीनता और दरिया-दिली की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते रहे हैं। कामरेड बालकृष्ण गुप्ता और मोहिनी देवी तो उन्हें सर्वश्रेष्ठ मुख्यमंत्री मानते हैं।

शासकीय कर्मचारियों के कल्याण के लिये भी श्री अर्जुनसिंह का मुख्यमंत्री कार्यकाल सदैव याद किया जायगा। तृतीय वर्ग हो या द्वितीय अथवा चतुर्थ वर्ग, सभी वर्ग के कर्मचारी नेताओं के लिये उनके द्वार सदैव खुले रहते थे। कर्मचारी वर्ग ने उनकी उदारता से बहुत लाभ उठाया। कर्मचारी कल्याण के साथ ही पुलिस कान्स्टेबल और शिक्षकों की सेवा शर्तों और वेतनमान में सुधार की स्वयं उन्होंने पहल की। पहले लिपिक और शिक्षक के लिये दो पदनाम प्रचलित थे— निम्न श्रेणी लिपिक तथा निम्न श्रेणी शिक्षक इनके पद नाम को बदलकर सहायक शिक्षक

किया तथा उनका वेतनमान भी लिपिक से उच्च स्तर पर रखा।

श्री अर्जुनसिंहजी ने प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर जो भी काम किया वह अभूतपूर्व रहा है। **भारत-भवन** के उद्घाटन के अवसर पर तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने भोपाल को भारत की सांस्कृतिक राजधानी कहते हुए श्री अर्जुनसिंह की पहल की प्रशंसा की थी। आज **भारत-भवन** पटवा सरकार की हठधर्मी और संकीर्ण विचारधारा के कारण भले ही चर्चित न हो किंतु संस्कृति की स्वायत्तता के समर्थक श्री अर्जुनसिंह से साहित्यसेवी और साहित्यप्रेमी यह अपेक्षा तो करते ही हैं कि जिस प्रकार राम ने अहिल्या का उद्धार किया था एक न एक दिन श्री अर्जुनसिंह भी **भारत-भवन** का भी उद्धार करने में सफल होंगे।

भोपाल नगर के व्यापारी वर्ग और विशेषकर सराफ़ा बाज़ार के सैकड़ों प्रशंसकों की ओर से मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वह अर्जुनसिंहजी को स्वस्थ, दीर्घायु, यशस्वी जीवन दे ताकि वे समाज के सभी वर्ग की सूनी आँखों के सुख-समृद्धि के सपने साकार करते रहें।

☐ *कैलाश अग्रवाल — समाज सेवा को समर्पित सुशिक्षित प्रतिष्ठित व्यवसायी। भारत स्काउट्स गाइड्स, रामकृष्ण मिशन, अंध, मूक बधिर संघ, गायत्री शक्ति पीठ आदि दर्जनों समाजसेवी संस्थाओं से चार दशक से सम्बद्ध। उच्च शिक्षा को समर्पित कैरियर सोसायटी के सचिव। कैरियर इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइन्सेस भोपाल के कोषाध्यक्ष।*

शिक्षासेवी श्री अर्जुनसिंह

जी.पी. गुप्ता

(अध्यक्ष, म.प्र. शालेय व्याख्याता संघ, भोपाल)

सेवा और अनुशासन का पाठ तो मैंने काँग्रेस सेवादल में सुन और समझ लिया था लेकिन शासकीय सेवा में आने के बाद एक अनुशासित कर्मचारी के रूप में, मैं पार्टी का सदस्य नहीं बन सका था। कुछ दिन इसी ऊहापोह में डूबने उतराने के बाद मैंने निश्चय किया कि बजाय सक्रिय राजनीति करने के क्यों न अपने ही वर्ग के कर्मचारियों के हितों के लिये संघर्ष किया जाय। इसी कारण म.प्र. शालेय व्याख्याता संघ के नाम से गतिशील संगठन में सम्मिलित होकर मैं इसके कार्यकलापों में सक्रिय हो गया। समस्याओं के समाधान के सिलसिले में लगभग दो दशाब्दी पूर्व जब श्री अर्जुनसिंह, सेठी मंत्रिमण्डल में शिक्षामंत्री थे, उस समय मेरी उनसे पहली मुलाक़ात श्री विष्णु राजोरिया के साथ हुई। उनकी सहृदयता, शालीनता और कर्मचारियों के प्रति कल्याण भावना से मैं बहुत अधिक प्रभावित हुआ। पहली मुलाक़ात के बाद जाने कब और कैसे मेरे जीवन का यह क्रम बन गया कि जहाँ कहीं भी श्री अर्जुनसिंह का कार्यक्रम होता, मैं अनिवार्य रूप से वहाँ पहुँच जाता था। मैंने अनुभव किया कि न केवल वे मुझे पहचानने लगे हैं किन्तु उनका स्नेह भाव भी मुझे प्राप्त होता जा रहा है। कालान्तर में वे मुझे नाम से तो जानने ही लगे किन्तु काम को भी ख़ूब पहचानने लगे थे। मेरी विवशता और मेरे नेतृत्व की आवश्यकता थी कि मैं व्याख्याताओं की समस्याओं के समाधान के लिये प्रयास करूँ और यही कारण था कि जब कभी भी मैं उनसे मिलता था तो व्याख्याताओं की समस्याओं के संबंध में कोई न कोई ज्ञापन अवश्य मेरे हाथ में रहता था। ज्ञापन सदैव उन्होंने मुस्कुराकर ग्रहण किया और उनकी मुस्कुराहट में ही मुझे आश्वासन का अहसास होता रहा।

मध्यप्रदेश के स्कूलों के व्याख्याताओं को बेहतर वेतनमान, राजपत्रित अधिकारी संवर्ग पद और उनकी अन्य समस्याओं के समाधान का एकमात्र श्रेय श्री अर्जुनसिंह को है। इन समस्याओं के समाधान में व्याख्याता संघ के पदाधिकारियों का भी सहयोग उल्लेखनीय है। इस कार्य में सबसे अधिक सक्रियता, रुचि और पहल यदि किसी ने की है तो वह अर्जुनसिंह मंत्रिमण्डल के सदस्य श्री राजोरिया ने। मेरा श्री राजोरिया से परिचय 35 वर्षों से है, जब हम लोग काँग्रेस सेवादल और युवक काँग्रेस में कार्य करते थे। वे पत्रकारिता से राजनीति में आ गये और मैं राजनीति से शासकीय सेवा में। किन्तु फिर भी मेरा उनका स्नेह भाव और सम्पर्क बना रहा और यही कारण था कि जब कभी व्याख्याताओं की समस्याओं का प्रश्न होता, हमारी स्थानीय, ज़िला स्तरीय, संभागीय अथवा प्रादेशिक बैठक होती, तब श्री राजोरिया अनिवार्यतः हमारी संस्था में उपस्थित होकर श्री अर्जुनसिंह की ओर से हमें सांत्वना और मार्गदर्शन देते रहते थे। समय-समय पर श्री अर्जुनसिंह को स्मरण दिलाने तथा हमारे पक्ष में सार्थक टीप तैयार कराने में भी उन्होंने जो योगदान दिया, उससे प्रदेश का प्रत्येक शालेय व्याख्याता भलीभाँति परिचित है। वैसे तो प्रत्येक वर्ग के कर्मचारी विशेषकर तृतीय वर्ग और चतुर्थ वर्ग के अध्यक्ष और समस्त पदाधिकारी विगत तीन दशाब्दियों से श्री राजोरिया से जुड़े हुए हैं और ये तीनों संघ उनके माध्यम से अपनी समस्याएँ शासन से हल कराते रहे हैं। कर्मचारियों और शासन के बीच जब-जब संघर्ष का समय आया है, तब-तब श्री राजोरिया

ने समझौते से सेतु के रूप में अपनी भूमिका निभाई है। श्री अर्जुनसिंह स्वयं कर्मचारियों के प्रति विशेष उदार रहे हैं। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि जब श्री अर्जुनसिंह पहली बार विधायक बनकर 1957 में भोपाल में आये थे, उस समय सेवाओं के संविलियन की समस्या बहुत अधिक गंभीर थी। भोपाल, मध्यभारत, महाकौशल, विन्ध्यप्रदेश चारों इकाइयों को मिलाकर बनाये गये मध्यप्रदेश में हर इकाई के अधिकारियों और कर्मचारियों की एक अलग समस्याएँ थीं। इन सब समस्याओं के समाधान के लिये 1957 से 1960 तक श्री अर्जुनसिंह लगातार विधानसभा में न केवल चिन्ता व्यक्त करते रहे, वरन् उन्होंने एकीकृत मध्यप्रदेश के भावनात्मक समन्वय और सेवाओं के एकीकृत संविलियन के लिये अनेक रचनात्मक सुझाव दिये। आज भी मध्यप्रदेश विधानसभा की कार्रवाई के पृष्ठ इसके साक्षी हैं कि श्री अर्जुनसिंह अपने विधायक जीवन के आरंभकाल से ही कर्मचारियों के कल्याण के लिये सतत् चिंतित और प्रयत्नशील रहे हैं।

पंजाब समझौते के कुछ दिन बाद जब दिसम्बर में श्री अर्जुनसिंह दक्षिण दिल्ली से चुनाव में खड़े हुए, तब मैंने निर्णय लिया कि मुझे दिल्ली जाकर इस प्रचार अभियान में सकारात्मक भूमिका निभाना चाहिये। शासकीय कर्मचारी होने के कारण मेरा राजनीतिक मंच से कुछ कहने और करने का तो प्रश्न ही नहीं था किन्तु मैंने शिक्षक मंच को अपना माध्यम बनाया। भाई सुरेन्द्रनाथ दुबे और मैं दोनों दिल्ली पहुँचे और वहाँ – श्री राजोरिया के मार्गदर्शन में हमने पूरे दक्षिण दिल्ली क्षेत्र में स्थान-स्थान पर स्कूल के शिक्षकों और व्याख्याताओं को एकत्रित कर उनकी कमरा बैठक ली और उन्हें अवगत कराया कि किस प्रकार श्री अर्जुनसिंह ने मध्यप्रदेश में शिक्षकों की समस्याओं का समाधान किया है और उन्हें सम्मानित किया है। हमारा कार्य शिक्षकों के बीच यह बताना था कि मध्यप्रदेश में शिक्षा के क्षेत्र में क्या उपलब्धियाँ प्राप्त की जा चुकी हैं। उन दिनों दिल्ली में गज़ब का वातावरण था। एक ओर ठण्डी हवाएँ और रात में बरसात होती थी तो दूसरी ओर राजनीतिक वातावरण दिन-ब-दिन गर्म होता जा रहा था। अफवाह सरगर्म थी कि दिल्ली के चोटी के नेता श्री अर्जुनसिंह को पराजित करवाकर चुरहट पहुँचाना चाहते हैं। वहीं मध्यप्रदेश से आये हुए सैकड़ों कार्यकर्ता दिन-रात एक कर श्री अर्जुनसिंह के प्रचार की बागडोर थामे हुए थे। श्री अर्जुनसिंह विजयी हुए और उन्होंने दिल्ली से अपरिचित होते हुए भी दक्षिण दिल्लीवासियों का दिल जीता, यह मध्यप्रदेश में उनके लिये प्रसन्नता का दिन था। हम लोग भी बधाई देने पहुँचे। मिठाइयाँ बट रही थीं और फोटोग्राफरों के बीच श्री अर्जुनसिंह के चेहरे को कैमरे में क़ैद किया जा रहा था। हम लोगों ने हार पहनाये, बधाई दी और भोपाल लौट आये। कुछ दिन बाद जब घर पर लगातार मुझे बधाई मिलना शुरू हुई तो मैंने बाज़ार से 'सण्डे मैगज़ीन' बुलाकर देखी। देखकर मैं हर्षोन्नत और आश्चर्यचकित रह गया। 'सण्डे मैगज़ीन' के मुख्य पृष्ठ पर श्री अर्जुनसिंह के साथ प्राथमिकता के साथ मेरा चेहरा चमक रहा था। फिर क्या था, उस मैगज़ीन को लेकर मैं सुबह से शाम तक अपने मित्रों और परिचितों के बीच घूमता रहा और उन्हें वह तस्वीर दिखाता रहा जिसमें कि मैं और श्री अर्जुनसिंह दोनों मुस्कुरा रहे हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि श्री अर्जुनसिंह सदैव शिक्षकों और समाज के सभी वर्गों के लिये सद्भाव रखते हुए इसी प्रकार मुस्कुराते रहें।

☐ *जी.पी. गुप्ता— समाजसेवी कर्मचारी नेता।*

सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ इच्छाशक्ति के प्रतीक श्री अर्जुनसिंह

डॉ. रामधनी मिश्र

(आत्मीय सहयोगी मित्र)

आज कुँवर श्री अर्जुनसिंह के जन्म दिवस पर मेरे मन में उनके प्रति मंगल कामनाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मैं उनके सानिध्य में राष्ट्र निर्माण की योजनाओं के बीच उनका एक सहयोगी रहा हूँ इसीलिए मेरे मानस पटल पर आज उनकी स्मृतियों के बादल उमड़-घुमड़ रहे हैं। इतनी स्मृतियाँ घटाटोप-सी छाई हैं कि उन पर एक वृहद् ग्रन्थ ही लिखा जा सकता है। कोई संक्षिप्त लेख नहीं। वे सिद्धान्तों के प्रति निश्चयी कठिन परिस्थितियों में रचनात्मक उपदेशक और ग़रीबी बेरोज़गारी जैसी समस्याओं के प्रति मानवीय सम्वेदनाओं से भरे हुए महासागर हैं। उनके इन्हीं गुणों के कारण वे आज राष्ट्र को प्रेरणा देने की स्थिति में हैं। मैं जीवन की एक इतनी छोटी किन्तु असाधारण स्मृति का उल्लेख कर रहा हूँ।

1971 में लोकसभा चुनाव हो रहा था। सीधी संसदीय क्षेत्र में ही हमारा मऊगंज क्षेत्र भी आता था। मऊगंज तहसील का आधा हिस्सा रीवा संसदीय क्षेत्र में था। रीवा संसदीय क्षेत्र से रीवा के महाराजा मार्तण्डसिंह तथा सीधी सीट से राव रणबहादुरसिंह निर्दलीय उम्मीदवार की हैसियत से प्रथम बार चुनाव मैदान में थे। रीवा महाराजा के ख़िलाफ़ पं. शम्भुनाथ शुक्ल तथा राव रणबहादुरसिंह के ख़िलाफ़ केशवसिंह काँग्रेस के उम्मीदवार थे। केशवसिंह चुनाव के कुछ समय पूर्व ही प्रसोपा छोड़कर काँग्रेस में आये थे और कुँवर अर्जुनसिंह के जन्मजात राजनैतिक विरोधी थे। रीवा और सीधी दोनों सीटों पर निर्दलीय उम्मीदवारों का ज़बरदस्त ज़ोर था। एक दिन कुँवर अर्जुनसिंह रात को मेरे निवास रीवा में आये। उनकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, बाल बिखरे थे। मैंने उन्हें इस हाल में कभी नहीं देखा था। मैं बहुत परेशान था कि ऐसी क्या परेशानी है, जिससे कुँवर साहब सरीखे व्यक्तित्व को इस स्थिति से गुज़रना पड़ रहा है। उन्होंने अकेले में मुझसे कहा कि मऊगंज विधानसभा क्षेत्र के आप काँग्रेस के प्रभारी हैं इसलिए काँग्रेस को वहाँ से जिताइये, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने उनसे कहा कि आपके सगे बड़े भाई चुनाव लड़ रहे हैं उनके विरुद्ध हमारे क्षेत्र में कार्य करने के लिये मेरे साथी तैयार नहीं होंगे और साथ ही केशवसिंह के पक्ष में प्रचार तो संभव नहीं है फिर भी यदि आप कहें तो सामान्य प्रचार किया जा सकता है। कुँवर साहब ने अत्यन्त दृढ़ता के साथ कहा कि मैं इन्दिराजी का वफ़ादार सैनिक पहले हूँ और रणवहादुरसिंह का छोटा भाई बाद में। मैंने इन्दिराजी से वादा किया है कि काँग्रेस के पक्ष में पूरी ताक़त से प्रचार किया जायगा उन्होंने मुझसे कहा कि आप मेरा पूरी तरह से साथ दीजिए। मुझे ऐसा लगा कि इस महामानव में सिद्धांत के प्रति कितनी ज़बरदस्त निष्ठा है। उन्होंने मुझे साथ लेकर मऊगंज निर्वाचन क्षेत्र का सघन दौरा भी किया, हर जगह उन्हें लोग शंका की दृष्टि से देख रहे थे ओर सभी का यह कहना था कि कुँवर साहब दिखावटी प्रचार कर रहे हैं। वहीं पर पहली बार अर्जुनसिंह ने गीता के एक श्लोक – "अर्जुनस्य प्रतिज्ञै द्वे न दैन्यं न पलायनम्"॥ – की हैडिंग के साथ एक बुलेटिन भी प्रकाशित की। मैंने अकेले कई बार उनसे पूछा कि मतदाता एवं काँग्रेस कार्यकर्ता इस बार आपके बड़े भाई के

पक्ष में हैं। इसलिए चुनाव प्रचार में बड़ी कठिनाई आ रही है। उन्होंने बार-बार मुझे यह निर्देश दिया कि दृढ़ इच्छा शक्ति एवं संगठन के प्रति संगठन की भावना यदि नहीं है तो राजनीति छोड़ देनी चाहिए। यही बात उन्होंने हर सभाओं में कही तथा हर सभा में बहुत ही मार्मिक भाषण दिये।

हमारे क्षेत्र में कुँवर साहब के समर्थकों की संख्या उस समय बहुत अधिक थी फिर भी उनके बड़े भाई के विरुद्ध कोई बोल नहीं रहा था। अथक प्रयास के बाद भी केशवसिंह चुनाव नहीं जीत पाये पर कुँवर अर्जुनसिंह के दृढ़ निश्चय और अपने नेता के प्रति समर्पण की बात याद आते ही रोमांचकारी दृश्य उपस्थित हो जाता है। कुँवर साहब अपने जीवन में अनेकों चुनाव लड़े। अधिकांश चुनावों में मैं उनके लिए कार्यकर्ता रहा फिर भी जितना अधिक श्रम उन्होंने इस चुनाव में किया उतना संभवतः अपने चुनाव के लिए कभी नहीं किया।

यहाँ यह उल्लेख करना इसलिए आवश्यक है कि उस चुनाव में कुँवर साहब के विरोधियों ने यह प्रचार किया कि वे दिखावटी काँग्रेसी थे। परन्तु भीतर ही भीतर अपने बड़े भाई के लिए कार्य कर रहे थे। मुझे इस पाखण्डपूर्ण दुष्प्रचार पर बड़ा दुःख हुआ और मैं यह मानता था कि अगर उनके दिल में कोई ऐसी बात होती तो वे निश्चित रूप से मुझे संकेत करते। इसी चुनाव के बाद दोनों भाइयों में मतभेद प्रारम्भ हुआ और आज दोनों दो विपरीत दिशाओं में हैं। कुँवर अर्जुनसिंह को मैं विद्यार्थी जीवन से जानता हूँ और उनके अत्यन्त निकट रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनमें कुछ ऐसे मानवीय गुण हैं जो मुझे आज तक किसी राजनेता में दिखाई नहीं पड़े और मैं समझता हूँ कि इन्हीं मानवीय गुणों के कारण वे सत्ता के सर्वोच्च शिखर के अत्यन्त निकट पहुँच चुके हैं।

उनके मानवीय गुणों, उदारता, सज्जनता और अपनत्व के कारण वे ऊपर से असाधारण दिखते हैं किन्तु उनमें आम आदमी की आत्मा निवास करती है। इसलिए जनसाधारण की भावनाओं को अत्यन्त निकटता से समझते हैं। और उसके अनुरूप चिन्तन कर योजनाएँ बनाते हैं। वे प्रजातंत्र की भावना के प्रतीक हैं इसलिए उनका साथ देने को देश के करोड़ों हाथ हमेशा तत्पर रहते हैं। यही उनके शिखर पर पहुँच पाने का खुला रहस्य है।

□ *डॉ.रामधनी मिश्र— पत्रकार, पूर्व विधायक*

विन्ध्यप्रदेश का विकास उन्हीं के कारण हुआ

लक्ष्मणप्रसाद मिश्र

(महाराज मार्तण्डसिंह, रीवा के सहायक)

कुँवर साहब को तो हम काफ़ी पहले से जानते थे लेकिन नज़दीक से हमने उन्हें 1967 से जाना। जब रीवा महाराज ने श्री डी.पी. मिश्र (काँग्रेस पार्टी) को मदद करने का वायदा किया तबसे हम अर्जुनसिंहजी को नज़दीक से जानने लगे। उस समय जो कुछ भी राजनीतिक गतिविधियाँ हुआ करती थीं उसमें, क़रीब-क़रीब सभी में, जो कि रीवा से सम्बन्धित होती थीं, हम लोग आपस में बातचीत करके काम करते थे। कुँवरजी की काँग्रेस पार्टी के प्रति निष्ठा प्रशंसा के योग्य है। उनका तो ये कहना है कि "हम राजनीति छोड़ सकते हैं पर काँग्रेस नहीं छोड़ सकते।" कुँवरजी अपने सहकर्मियों के हितों का सदैव पूरा-पूरा ख़याल रखते हैं। उनमें कई ख़ासियतें हैं। सबसे बड़ी बात तो ये है कि वे काँग्रेस के लिए तो सब कुछ कर सकते हैं। काँग्रेस पार्टी के लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है। उनके व्यक्तित्व की ये एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि उनका मन बहुत बड़ा है, इसीलिए वे अपने विरोधियों के काम को प्राथमिकता देते हैं। वे काम करते समय ये नहीं मानते कि ये हमारा विरोधी है तो हम इसका काम न करें तथा इससे घृणा करें।

विन्ध्यप्रदेश का जो कुछ भी विकास हुआ है वो क़रीब-क़रीब सब उन्हीं की देन है। मिसाल के तौर पर देखें कि अर्जुनसिंहजी संचारमंत्री जब तक नहीं थे तब तक हम लोग महाराजजी से यहाँ से दिल्ली बात नहीं कर सकते थे, तब महाराज लोकसभा सदस्य थे। जबसे अर्जुनसिंहजी संचार मंत्री हुए तब से संचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ। इसके अलावा यहाँ की शिक्षा के स्तर को सुधारने में भी उन्हीं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। बाणसागर परियोजना तथा सिंगरौली परियोजना का क्रियान्वयन उन्हीं की सद्इच्छा का परिणाम है।

अर्जुनसिंहजी को अपने राजनैतिक जीवन में कड़ा संघर्ष करना पड़ा। वे आज जिस ऊँचाई तक पहुँचे हैं उसमें उनकी मेहनत और लगन का बहुत बड़ा हाथ है। इतना सब कुछ होने के बावजूद वे आज भी हम लोगों से तथा अपने पुराने दोस्तों से ठीक उसी तरह मिलते हैं जैसे वे पहले मिलते थे। जब कभी कहीं भी देख लेंगे, वो बराबर रुक के बात कर लेंगे। म.प्र. में हमने अभी तक जितने मुख्यमंत्री देखे, उनमें अर्जुनसिंहजी को हम सब ऊपर देखते हैं।

कुँवरजी के भविष्य के प्रति हमारी यही शुभकामना है कि वे सुखी जीवन यापन करें। बड़े से बड़े पद को सुशोभित करें। हमारी ये हार्दिक इच्छा है कि वे देश के उस बड़े व सम्माननीय पद को सुशोभित करें जहाँ आसीन हो वे देश का अधिक से अधिक भला कर सकें। उन्हें इस हेतु एक अवसर अवश्य मिलना चाहिए।

☐ *लक्ष्मणप्रसाद मिश्र — विन्ध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध समाजसेवी।*

सिंधी समाज के उद्धारक

गुरुमुखदास खानचन्दानी

(पूर्व पार्षद नगरनिगम, भोपाल)

प्रदेश की राजधानी भोपाल से लगी हुई लगभग एक लाख आबादी वाली बस्ती का नाम बैरागढ़ है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय यहाँ सैनिकों को रखने के लिये बैरक बनाये गये थे। कुछ बैरक आज भी गाँधीनगर वार्ड में जीर्ण-शीर्ण अवस्था में मौज़ूद है। भारत की आज़ादी के साथ देश का जो विभाजन हुआ, उसमें सिंध प्रान्त से आये सिंधी शरणार्थियों को इसी बैरागढ़ के कैम्प में आश्रय दिया गया था। जैसा कि समय के साथ परिवर्तन होता है, सिंध से आये शरणार्थी पुरुषार्थी साबित हुए और न केवल बैरागढ़ को सजाया, सँवारा, निखारा बल्कि थोक व्यापार का एक बहुत बड़ा केन्द्र स्थापित कर दिया।

विभाजन की पीड़ा से किशोर मन पर जो असर होता है, वह मुझ पर हुआ और मैं अपने हम उम्र लड़कों के साथ आर.एस.एस. और जनसंघ की गतिविधियों में दर्शक और श्रोता के रूप में शामिल हुआ और एक अच्छे वक्ता के रूप में स्थापित भी हो गया। समय के साथ सूझबूझ बढ़ी और अख़बारों के साथ ही पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने लगा तो धीरे-धीरे मुझे जनसंघ के पीछे छिपे हुए प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिक और फासिस्ट चेहरे की पहचान होने लगी। कुछ स्थानीय परिस्थितियों ने ऐसा मोड़ लिया कि पूरे बैरागढ़ के सिंधी समाज को जनसंघ और काँग्रेस के बीच दो खेमों में बँटा पाया जिसमें लगभग 75 प्रतिशत लोग काँग्रेस विरोधी अर्थात् कट्टर जनसंघी बन गये। ऐसी विषम परिस्थिति में मैंने अपनी आत्मा की आवाज़ पर काँग्रेस में प्रवेश करना उचित समझा और मैं सन् 1972 में काँग्रेस में शामिल हो गया।

मध्यप्रदेश में काँग्रेस के साथ ही संविद सरकार, जनता सरकार और भाजपा सरकार के रूप में तीन बार काँग्रेस विरोधी सरकारों को देख चुका हूँ। मेरे दिलो-दिमाग़ पर जो गहरा असर हुआ, वह पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र और श्री प्रकाशचन्द्र सेठी के मंत्रिमण्डल का था, जिनके समय में आम जनता के बीच भ्रष्टाचार नाम का शब्द उतना प्रचलित नहीं था जैसा और जितना आज है। श्री अर्जुनसिंह मिश्र मंत्रिमण्डल में कृषि पशुपालन और सूचना प्रकाशन मंत्री थे तथा राज्यमंत्री होते हुए भी उन्हें इन विभागों का स्वतंत्र प्रभार दिया गया था। काँग्रेस क्षेत्रों में यह कहा जाता था कि मिश्र मंत्रिमण्डल में श्री गौतम शर्मा, श्री परमानंदभाई पटेल और श्री अर्जुनसिंह की त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं। गौतमजी मिश्र मंत्रिमण्डल से हटने के बाद पारिवारिक और स्वास्थ्य दोनों कारणों से शनैः शनैः निष्क्रिय होते गये। परमान्दभाई पटेल जबलपुर लौटकर बीड़ी व्यवसाय के साम्राज्य में खो गये किन्तु श्री अर्जुनसिंह सतत् सक्रिय रहे और 1980 में उन्होंने मध्यप्रदेश के ऐसे प्रथम मुख्यमंत्री बनने का सौभाग्य प्राप्त किया जिसने कि अपने कार्यकाल के पूरे 5 वर्ष तक ग़रीबों और दीन-दुखियों की सेवा में अपने को समर्पित कर दिया।

मेरे अग्रज और मार्गदर्शक श्री विष्णु राजोरिया द्वारा 1980 के जून के प्रथम सप्ताह में सदर मंज़िल में श्री अर्जुनसिंह का मुख्यमंत्री के रूप में प्रथम अभिनन्दन समारोह आयोजित किया गया था जिसमें मैंने बैरागढ़

के प्रतिनिधि के रूप में उनका स्वागत करने का सौभाग्य प्राप्त किया। उन्होंने जिस स्नेह भाव से मुझे देखा, उससे मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मानों वे मुझे पहले से ही जानते थे। इसके बाद धीरे-धीरे कभी काँग्रेस की, कभी बैरागढ़ की, कभी सिंधी समाज की और कभी अन्य नागरिक समस्याओं को लेकर मेरा उनसे मिलना-जुलना चलता रहा और उनका स्नेह भाव मुझे लगातार प्रोत्साहित करता रहा। भोपाल नगर निगम के चुनाव में उनके नाम के सहारे ही मैं अपने विरोधी भाजपा प्रतिनिधि को पराजित कर नगर निगम भोपाल का पार्षद बनने में सफल रहा।

श्री अर्जुनसिंह ने सिंधी समाज की समस्याओं को सुनने और हल करने को सदैव सर्वोच्च प्राथमिकता दी। मध्यप्रदेश के इतिहास में वे एकमात्र ऐसे नेता हैं जिन्होंने सिंधी समाज को शाब्दिक सम्मान देने के बजाय उनकी समस्याओं को सर्वोच्च प्राथमिकता से हल करके उन्हें सम्मान दिया है। सिंधी समाज की समस्याओं के अध्ययन के लिये एक समिति बनाकर आपने उस समिति के माध्यम से पूरे प्रदेश की समस्याओं का अध्ययन किया और उन समस्याओं के निराकरण के आदेश प्रदान किये। इससे सबसे बड़ी उपलब्धि जो सिंधी समाज को हुई है, वह यह है कि जो भी सिंधी विस्थापित विभाजन के समय भारत आये थे और जहाँ पर जो रह-बस गया था, उसे वह स्थान आवंटित कर दिये जाने के आदेश दिये गये थे। इससे पूरे प्रदेश के हज़ारों सिंधी लाभान्वित हुए। सिंधी समाज में शिक्षा और साहित्य यद्यपि बहुत प्रचारित और प्रसारित नहीं है फिर भी नई पीढ़ी लगातार शिक्षा की दिशा में प्रगति कर रही है और अब सिंधी समाज से भी केवल व्यापारी वर्ग के बजाय इंजीनियर, डॉक्टर और प्रोफेसर भी समाज में अपना स्थान बनाते जा रहे हैं। इसी प्रगति के क्रम में मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह ने सिंधी अकादमी की स्थापना कर सिंधी साहित्यकारों को सिंधी भाषा के विकास में योगदान देने के लिये एक सशक्त मंच उपलब्ध कराया है।

छोटे कार्यकर्त्ताओं के प्रति आपकी उदारता के सैकड़ों किस्से आज भोपाल में ही नहीं प्रदेश के हर नगर में सुन सकते हैं। छोटे से छोटे कार्यकर्ता की समस्या का समाधान करना, उनकी दुःख-सुख में मदद करना और समय आने पर उसे सम्मानित कर देना आपकी विशेषता है। मुझ जैसे अकिंचन को यह सौभाग्य प्राप्त है कि न केवल मेरे अनुरोध और निवेदन पर वे दर्जनों बार राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक कार्यक्रमों में बैरागढ़ पधारे, बल्कि अभी तक विगत 10 वर्षों में वे 7 बार मेरे निवास पर भी चाय पीने पधार कर मुझ जैसे अकिंचन कार्यकर्ता को अनुग्रहीत कर चुके हैं। भोपाल के वरिष्ठ से वरिष्ठ नेता भी मेरी इस उपलब्धि पर मुझे उलाहना तो देते ही हैं लेकिन यह सत्य है कि अच्छे अच्छों के लिये भी यह ईर्ष्या का विषय है, किन्तु मैं इसे भगवान श्रीकृष्ण का सुदामा को दिया गया आदर ही मानता हूँ।

बैरागढ़ में सड़क पर बैठने वाले छोटे-मोटे सामान विक्रेताओं की पक्की दुकानें बनवाने, पेयजल व्यवस्था के लिये हर वार्ड में हैंड पम्प लगवाने, पूरे नगर में आधुनिक उन्नत विद्युत व्यवस्था करवाने, प्रथम उपाधि महाविद्यालय को स्वीकृति देने तथा वन ट्री हिल्स पर बैरागढ़ के सिंधी नागरिकों को भूखंड उपलब्ध कराने जैसे अनेक जनहितकारी निर्णय ऐसे हैं, जिन्हें हम बैरागढ़वासी कभी नहीं भूल सकेंगे। श्री अर्जुनसिंह के केन्द्रीय मंत्री और राष्ट्रीय मंच पर स्थापित नेता होने के कारण हम लोग उनकी निकटता से वंचित ज़रूर हो गये हैं, किन्तु इस आत्म गौरव से अभिभूत हैं कि कल तक हम सब जिनके निकट थे, वे आज देश के प्रत्येक नागरिक के निकट होते जा रहे हैं।

☐ *गुरूमुखदास खानचन्दानी — पूर्व पार्षद नगर निगम, भोपाल।*

उनका हृदय और आँखें हमेशा पार्टी कार्यकर्ताओं की ओर रहती हैं

मकरन्दसिंह

(भू.पू. सदस्य म.प्र. कनिष्ठ सेवा चयन बोर्ड, भोपाल)

मेरे पितामह स्व. ठाकुर गोपाल शरणसिंहजी हिन्दी जगत के प्रतिष्ठित कवि और नईगढ़ी के इलाक़ेदार रहे हैं। वे अर्जुनसिंहजी के पिता के घनिष्ठ मित्र रहे हैं। इलाहाबाद की सिविल लाइन्स में हाईकोर्ट के पास नईगढ़ी हाउस और चुरहट हाउस अगल-बगल में बने हुए थे। यही कारण है कि दोनों परिवारों की घनिष्ठता तीन पीढ़ियों तक बनी रही। आज भी मुझे अपने बचपन का स्मरण है कि श्री अर्जुनसिंह एक बड़े इलाक़ेदार के पुत्र थे, तथा शान-शौकत में पले थे, लेकिन उनके अन्दर सामन्ती बू नहीं थी। वे बचपन से ही सीधे-सादे रहे तथा शान-शौकत से अलग रहते थे। मुझे याद है कि जब कुँवर साहब इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्ययन करते थे तब ज़्यादातर अपने अध्ययन में व्यस्त रहते थे और अच्छे-अच्छे अँग्रेज़ी लेखकों के उपन्यासों का अध्ययन करते रहते थे। प्रारम्भ से ही आप एक सहृदय और चुपचाप प्रकृति के रहे। कुँवर साहब ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा रीवा के ताल्लुकेदार रणमतसिंह महाविद्यालय में अध्ययन किया और अध्ययन के साथ ही साथ वे कॉलेज के छात्र संगठन के चुनावों में भाग लेते रहे तथा उसी समय से उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन और राजनीति में भाग लिया। कुँवर साहब के पिता एक इलाक़ेदार तथा विन्ध्यप्रदेश के मंत्री थे। इनके बड़े भाई प्रायः बड़ी-बड़ी कारों में जाया करते थे, लेकिन श्री अर्जुनसिंह ने कभी भी यह नहीं दिखाया कि वे एक इलाक़ेदार और मंत्री के पुत्र हैं। वे ग़रीबों के लिए संघर्षरत और उनके हमदर्द रहे तथा सादा जीवन व्यतीत करते थे।

मुझे याद है कि इलाहाबाद में उनके निवास पर कोई वैवाहिक कार्यक्रम था। बड़े-बड़े इलाक़ेदार और राजे-रजवाड़े तथा इलाहाबाद के प्रतिष्ठित लोग एकत्रित थे, मेहमानों को अच्छी शराब दी जा रही थी। और जो बुजुर्गों के सामने शराब नहीं पीते थे, वे लोग कोकाकोला में मिलाकर पी रहे थे। कुँवर साहब प्रथम पंक्ति में बैठे थे, मैं पास ही में खड़ा था, उनके पास कोकाकोला का गिलास आया तो उन्होंने बड़ी विनम्रतापूर्वक कहा कि मुझे यह नहीं चाहिये, आप मुझे नींबू पानी दे दीजिये। उन्होंने अपने को मदिरा आदि से सदैव दूर रखा और काँग्रेस के सच्चे सिद्धांतों पर चलने का संकल्प लिया और आज तक उसका निर्वहन कर रहे हैं।

जब 1971 में लोकसभा के आम चुनाव हो रहे थे तब मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय से क़ानून की परीक्षा पास करके तथा आकाशवाणी इलाहाबाद से अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा देकर अपने ग्राम नईगढ़ी आ गया। मेरे पिताजी ठाकुर सोमेश्वरसिंह भू.पू. विधायक मऊगंज क्षेत्र से रहे हैं। जिन्होंने राजनीति से सन्यास ले लिया था। मैंने अपने राजनैतिक जीवन का प्रारम्भ मऊगंज की अदालत में वकालत के साथ किया था। मुझे याद है कि कुँवर साहब जी ने अपने निवास स्थान से पैदल चलकर काँग्रेस भवन जो पास ही था, श्री रुक्मणीरमण प्रताप सिंह से मेरा

परिचय कराया था और कहा था कि ठाकुरसाहब नईगढ़ी ने इनको आपके और मेरे सुपुर्द किया है। मुझे उनका राजनैतिक संरक्षण और मार्गदर्शन आज तक मिलता आया है।

कुँवर साहब काँग्रेस के सच्चे सिपाही के रूप में आज तक सेवा कर रहे हैं। श्रीमती इन्दिरा गाँधी के संकट के समय में उन्होंने खुलकर साथ दिया। मुझे याद है कि जनता शासनकाल में श्रीमती इन्दिरा गाँधी को गिरफ़्तार कर उन्हें तिहाड़ जेल में बन्द कर रखा था। उस समय समूचे राष्ट्र में प्रदर्शन हुए तथा काँग्रेस कार्यकर्त्ताओं ने जेल भरो आन्दोलन किया था। म.प्र. में श्री अर्जुनसिंह के नेतृत्व में अनके ज़िलों में प्रदर्शन-गिरफ़्तारी दी गई थी। रीवा में श्री सिंह के नेतृत्व में मैंने भी गिरफ़्तारी दी थी। वे और हम सब दो दिन रीवा सेन्ट्रल जेल में रहे। कुँवर साहब जेल में रहकर काँग्रेस कार्यकर्त्ताओं का मनोबल बढ़ाते रहे तथा सभी कार्यकर्त्ताओं के दुःख-दर्द का ख़याल करते थे। जेल में वे पूरे समय अध्ययन करते थे। मुझे याद है कि जब वे रीवा जेल से रिहा हुए तो मुझसे कहा कि तैयार हो जाइये सीधी चलना है, प्रदर्शन के लिए।

यह पहला मौक़ा था जब हमने उन्हें कार चलाते देखा था, मुझे आश्चर्य हुआ। मैं उनके साथ चल दिया, जब क़रीब एक घन्टे चलते हो गये तब उन्होंने अपना मौन तोड़ा क्योंकि आदतन् वे कम ही बोलते हैं। उन्होंने मुझसे यह कहा कि आप इतने समय से पार्टी का कार्य कर रहे हैं, लेकिन आपको विधानसभा का टिकट नहीं मिला, आप पार्टी के लिए निष्ठापूर्वक कार्य करें, शायद कभी आपको इसका प्रतिफल मिले, लेकिन यदि आप इससे वंचित होते हैं तो निराश नहीं होईएगा क्योंकि कितने काँग्रेस कायकर्ताओं ने आज़ादी की लड़ाई लड़ी है तथा आज भी संघर्ष कर रहे हैं, उन्हें कभी टिकट नहीं मिला। इसलिये आप पार्टी के प्रति कर्त्तव्य करते रहें। उन्होंने दूसरी सीख जो मुझे दी वह यह कि आप कभी भी अपनी प्रतिष्ठा को प्रश्न न बनायँ, चाहे आपका कोई कितना भी विरोध करे। आप उसके प्रति नरम रवैया अपनायें तथा अपना उद्देश्य पार्टी के प्रति समर्पित भावना के साथ पूरा करें। आज तक उनके बताये हुए मार्ग पर चलकर पार्टी की सेवा अनवरत रूप से कर रहा हूँ।

कई ऐसी घटनाएँ हैं जिन्हें आज भी स्मरण करता हूँ तो कुँवर साहब के सरल एवं न्यायपूर्ण व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा बढ़ती जाती है। कुँवर साहब जब शिक्षामंत्री थे तब उनके ही निर्वाचन क्षेत्र के बुड़गौना के कामरेड श्री जितेन्द्रसिंहजी जो उनके विरुद्ध चुनाव लड़ते थे। कई लोगों ने प्रयास किया था कि वह विरोध न करें लेकिन उन्होंने किसी की भी बात नहीं मानी। एक बार श्री सिंह के निवास बुड़गौना ग्राम में कोई मांगलिक कार्य था, कुँवर साहब भी आमंत्रित थे। जब कुँवर साहब खाना खा रहे थे तो जितेन्द्रसिंह खाना परोस रहे थे। जैसे ही वे उनके पास आये तो उन्होंने पूछा कि मीट का रसा दें या नली दें। मैंने मज़ाक में कहा कि आप तो राजनीति में कुँवर साहब को हड्डी चबवाते हैं, आज तो प्रेम से खिलायें और मैंने कुँवर साहब से यह भी प्रस्ताव किया कि इन्हें आप काँग्रेस में क्यों नहीं ले लेते। उन्होंने हँसते हुए कहा कि स्वागत है। मैंने कहा कि यह दो दिन में भोपाल आ जायँ। कुँवर साहब ने कहा आ जाए। श्री सिंह भोपाल जाकर काँग्रेस में सम्मिलित हो गये और कुँवर साहब के कट्टर समर्थकों में से एक हो गये। पिछले वर्ष श्री जितेन्द्रसिंह का स्वर्गवास हो गया।

एक घटना का आज भी मुझे स्मरण है कि जब श्री अर्जुनसिंह शिक्षामंत्री थे। वे रीवा के दौरे पर आये थे उस समय के संभागीय शिक्षण अधीक्षक श्री आर.पी. सिंह थे। वे एक ईमानदार अधिकारी थे। उसी समय शिक्षकों का चयन हो रहा था। रीवा ज़िले के कुछ विधायकों ने श्री सिंह पर दबाव डाला कि उनके आदमियों की नियुक्ति करें लेकिन उन्होंने मना कर दिया, इस पर विधायकों ने लोक संभागीय शिक्षण अधीक्षक पर झूठा आरोप लगाकर उनका तबादला वायरलेस से करवा दिया। रीवा ज़िले के शिक्षक संघ के अध्यक्ष और अन्य पदाधिकारी मेरे पास

आये कि यह बहुत बड़ा अन्याय हो रहा है कृपया आप शिक्षामंत्री को अवगत करायें। मुझे याद है कि जैसे ही मैं उनके पास पहुँचा और उनकी पैरवी करना प्रारम्भ किया तो उन्होंने कहा कि उनके विरुद्ध शिकायते हैं, इसके अलावा कोई और बात करें। मैंने निवेदन किया कि यदि आप भोपाल जाकर उनका स्थानान्तरण करते तो अच्छा रहता। यहीं से उन्हें सज़ा दी गई है, जबकि उन्होंने जन प्रतिनिधियों को ग़लत ढंग से शिक्षकों के चयन करने के लिए मना कर दिया है, इसीलिए उन्हें यह सज़ा भुगतनी पड़ रही है। मुझे याद है कि कुँवर साहब ने भोपाल जाकर तथ्यों की जानकारी लेकर, उनके स्थानान्तरण को दो माह तक के लिए रद्द कर दिया था। कुँवर साहब सदैव तथ्यों की जानकारी लेकर, सदैव निर्णय लेते हैं और राजनैतिक दबाव को कभी भी नहीं मानते हैं तथा न्याय का सदैव आदर करते हैं।

एक बार डी.एफ.ओ. की बहुत शिकायत थीं मुझे नहीं मालूम था, उनके रिश्तेदार एक बड़े सामाजिक कार्यकर्ता थे, उन्होंने मुझसे कुँवर साहब से सिफ़ारिश करने के लिए कहा जैसे ही मैंने उनका नाम लिया वह बोले यह आपके पास भी पहुँच गये, यह तो बहुत ही बड़ा भ्रष्ट अधिकारी है, आप ऐसे लोगों के चक्कर में न पड़ें, एक तरह से मुझे डाँटा ही। कोई कुँवर साहब का कितना ही प्रिय या नज़दीक का हो, ग़लत न करने की शिक्षा वे सदैव देते हैं।

कुँवर साहब को पार्टी के प्रति निष्ठा और नेता के प्रति वफ़ादार होने के कारण राष्ट्र की बड़ी-बड़ी ज़िम्मेदारियाँ सौंपी गई। वे कभी विचलित नहीं हुए। कुँवर साहब ने ही श्री राजीव गाँधी को प्रधानमंत्री बनाये जाने का प्रस्ताव सर्वप्रथम म.प्र. काँग्रेस कमेटी में रखा था। कुँवर साहब सदैव पार्टी के नेताओं के आदेशों का पालन करते आये हैं, इसलिये उनकी अन्य राष्ट्रीय नेताओं से अलग पहचान बनी है। जब श्री राजीव गाँधी का स्वर्गवास हुआ तो काँग्रेस एवं राष्ट्र के सामने एक बड़ी समस्या नेता पद के लिए आ गई। सर्वप्रथम कुँवर साहब ने पार्टी के वयोवृद्ध नेता श्री नरसिंहराव को अध्यक्ष बनाने और प्रधानमंत्री बनाने का प्रस्ताव रखा था। इसीलिए श्री नरसिंहराव उनके आदर्शों और त्याग की कद्र करते हैं।

इन दिनों काँग्रेस पार्टी का भारतीय जनता पार्टी के प्रति नरम रवैया होने से पार्टी के धमर्निरपेक्ष सिद्धान्तों पर कुठाराघात हो रहा है और भारतीय जनता पार्टी धर्म की आड़ में देश को विभाजित करने में लगी है, वह मात्र वोट की राजनीति करके दिल्ली की कुर्सी पर बैठना चाहती है। काँग्रेस के आदर्श सिद्धांतों को याद दिलाते हुए श्री अर्जुनसिंह ने जो काँग्रेस कार्यसमिति के सदस्य भी हैं, प्रधानमंत्री श्री राव को एक पत्र उनके राजनैतिक सचिव श्री जितेन्द्रप्रसाद के माध्यम से भेजा है। भारतीय जनता पार्टी के प्रति पार्टी का दृष्टिकोण स्पष्ट करने तथा धर्म के आधार पर देश के विभाजन करने के भारतीय जनता पार्टी के मन्सूबे को राष्ट्र के सामने उजागर किया है। इस पत्र का समूचे राष्ट्र के निष्ठावान काँग्रेसियों ने स्वागत किया है। कुछ चाटूकारों ने उनका विरोध भी किया है।

26921

कुँवर साहब सदैव संघर्ष करते आये हैं और पार्टी के आदर्शों का पालन कराने में सदैव कांग्रेसजनों और राष्ट्र को नई दिशा दी है। आज कुँवर साहब राष्ट्रीय समस्याओं का निदान करने में व्यस्त हैं तथा अपने सहयोगियों और कार्यकर्ताओं को पूरा समय नहीं दे पाते लेकिन पार्टी के कायकर्ताओं को हताश नहीं होना चाहिये क्योंकि कुँवर साहब का हृदय और आँखें सदैव पार्टी के कार्यकर्त्ताओं की ओर रहती हैं।

B.H.E.L. CAREER COLLEGE BHOPAL
ACC.No.....
Book No.....
Date.....

☐ *मकरन्दसिंह— प्रतिष्ठित एडवोकेट।*

वे सबका मनोबल बढ़ाते हैं

गनपतसिंह राजपूत ललन,

(पूर्व अध्यक्ष : विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण, पचमढ़ी)

कुँवर अर्जुनसिंहजी का दिव्य पारस व्यक्तित्व निश्चित ही ईश्वरीय देन है। कुँवर साहब की अलौकिक चमत्कारिक प्रतिभा, आँधियाँ और अन्धकारों में भी, अपना और अपने साथियों का मार्ग प्रशस्त कर, जन आकांक्षाओं का आदर करने में सदा समर्पित रहती हैं। परिस्थितियों एवं घटनाक्रम से उत्पन्न होने वाले निष्कर्षों का पूर्वाभास उन्हें सहज ही हो जाता है। यही कारण है कि उच्छलवेग से कठिनाइयों को पार करती उनकी प्रतिभा, संघर्षों के शिखर को लाँघकर आगे बढ़ती ही जाती है।

अपनी चेतना, सम्पन्नता एवं समन्वयवादी दृष्टि की समग्रता के साथ कठिन मोड़ पर जन-जन की भलाई एवं राष्ट्र की एकता व अखण्डता के लिये कुँवर अर्जुनसिंह ने सदा राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, नेहरूजी, इंदिराजी व श्री राजीव गाँधी के द्वारा प्रतिपादित पथ पर निर्णायक भूमिका के साथ दृढ़ता से अनुगमन किया है।

कर्मनिष्ठ परम आदरणीय कुँवर साहब से मेरी पहली भेंट अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी द्वारा आयोजित, राजनैतिक प्रशिक्षण केडर कैम्प के केडर चयन हेतु साक्षात्कार के समय हुई। तब कुँवर साहब प्रदेश के शिक्षामंत्री थे। मेरे चयन के साथ, सहजता से मुझमें दृढ़ता और समर्पण के भाव जागृत कर जनहित के दृष्टिकोण की व्यापकता का सूत्र उन्होंने समझाया था, जिसमें उनकी समाजवादी विचारधारा के दर्शन होते हैं।

प्रशासनिक नियंत्रण तथा कूटनीतिक कौशल के धनी कुँवर अर्जुनसिंहजी ने मध्यप्रदेश की विधानसभा में विरोधी दल के नेता के रूप में जन-आन्दोलन का ऐसा बवण्डर खड़ा किया कि जिसने तत्कालीन सत्ताधारी दल की चूलें हिला दीं। नर्मदा एवार्ड आन्दोलन में हज़ारों कार्यकर्त्ताओं और नेताओं ने अपनी गिरफ़्तारी देकर, उनके नेतृत्व को गौरव मन्डित किया। यहीं भोपाल जेल में मेरी उनसे दूसरी मुलाक़ात थी। जब कुँवर अर्जुनसिंह ने अपने सभी साथियों को जेल में आकर सम्बोधित किया तथा हर राजनैतिक क़ैदी कार्यकर्त्ताओं से मिलकर, उनका मनोबल बढ़ाया।

मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री के रूप में कुँवर अर्जुनसिंहजी की समाजोन्मुखी भावना, अत्यधिक प्रखर प्रवाह के साथ प्रकट हुई। अपने शासनकाल में, पैनी प्रशासनिक दृष्टि से समाज के अनेक पहलुओं पर अथक परिश्रम के साथ जनोपयोगी निर्णय लिए। जो प्रदेश के विकास में पूर्णरूपेण सहायक हुए।

उनके मानवीय बोध ने ही हरिजन-आदिवासियों के जीवन में फैले आर्थिक और भौतिक अन्धकार को अपनी प्रशासनिक क्षमता से दूर किया। रहने की समस्याओं से जूझते मज़दूर ग़रीब को झुग्गी झोपड़ी का मालिकाना हक़ दिलवाया।

आर्थिक विपन्नता के कारण रिक्शा मज़दूर के उभरे घाव की पीड़ा को आत्मसात कर, मज़दूर के पसीने से विवशता की दुर्गन्ध को दूर कर, उसे रिक्शे का मालिक बनाया। मज़दूर के पसीने को सम्मानित कर उसके श्रम को महका दिया।

तेंदूपत्ता श्रमिकों के शोषण का अन्त किया। उनका पारिश्रमिक बढ़ाया और व्यापार के मुनाफ़े का हक़दार बनाया। यही नहीं फुटकर मज़दूर, हम्माल, रिक्शा चालक के लिए सरकारी खर्चे पर बीमा योजना और बेघरबार मुफ़लिसों के लिए रैन-बसेरा। आदिवासी हरिजन और पिछड़ा वर्ग के छात्रों को अधिक और समय पर छात्रवृत्ति देकर, भारतीय संविधान की भावना को सम्मानित किया। एकीकृत ग्रामीण विकास योजना के तहत हर ग़रीब की दहलीज़ तक मदद की। अनेक जनोपयोगी निर्णय लेकर कुँवर अर्जुनसिंहजी जीवन के अन्तः और बाह्य दोनों पक्षों का स्पर्श कर, क्रान्तिकारी प्रगति को गति देकर प्रदेश ही नहीं, देश के मेहनतकश जन व सर्वहारा वर्ग के हृदय सम्राट बने।

यही कारण था कि 1985 में आम चुनाव में कुँवर अर्जुनसिंहजी के नेतृत्व में मध्यप्रदेश की सभी संसदीय सीटों पर काँग्रेस विजयी हुई और प्रदेश में कुँवर साहब के नेतृत्व को भारी बहुमत मिला। सम-विषम परिस्थितियों से जूझते कुँवर अर्जुनसिंहजी का दायित्व बोध, अनुभव व ज्ञान की अग्नि में तपकर अत्यधिक सम्वेदनात्मक, गतिशील एवं व्यापक हो गया है।

राष्ट्र के प्रति सम्पूर्ण समर्पित, अपराजेय कुँवर अर्जुनसिंहजी को आदरणीय श्री राजीव गाँधी ने काँग्रेस पार्टी की 105 वर्ष की परम्परा से हटकर अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी का उपाध्यक्ष बनाकर उनकी निकटता और सान्निध्य की उपादेयता को स्वीकार किया। अजेय कुँवर अर्जुनसिंहजी जीवन के आरम्भ से ही कठिन संघर्षों के आघातों को ठेलते हुए हर तरह के षड्यन्त्रों और दाँव-घात से जूझते, निरन्तर विजयी हो अपनी छवि को सँवारते रहे हैं।

कुँवर अर्जुनसिंहजी की दिव्य प्रतिभा से प्रकाश की किरण राजनीति के क्षितिज तक फैलेगी उनके कर्म की सुगन्ध समूचे भारत में फैलकर जन-जन को प्रसन्न व प्रमुदित करती रहेगी।

□ *गनपतसिंह राजपूत ललन,— पूर्व विधायक।*

युवा पीढ़ी के प्रेरक मार्गदर्शक

एस.के. माहेश्वरी
(एडवोकेट, पिपरिया)

साठ के दशक में हमीदिया कॉलेज की छात्र गतिविधियों के दौरान विद्यार्थी काँग्रेस के मंच से मैंने छात्र राजनीति में प्रवेश किया था। उस समय हमीदिया कॉलेज में श्री अज़ीज़ कुरैशी, श्री सत्यनारायण अग्रवाल, श्री विष्णु राजोरिया और श्री बी.एम. खुल्लर आदि वरिष्ठ छात्र नेता छाये हुए थे। ये सभी थे तो काँग्रेस पक्ष के ही किन्तु आपसी गुटबाजी की वजह से दो खेमों में बंटे हुए थे। एक खेमा अज़ीज़ कुरैशी और हसनात सिद्दीकी का था और दूसरा श्री सत्यनारायण अग्रवाल और श्री राजोरिया का। इन छात्र नेताओं के अपने-अपने राजनैतिक संबंध थे। श्री सत्यनारायण अग्रवाल, डॉ. शंकरदयाल शर्मा से, श्री विष्णु राजोरिया पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र से तथा श्री अज़ीज़ कुरैशी तख्तमल जैन और मूलचंद देशलहरा से जुड़े हुए थे। हम जूनियर छात्रों के बीच इनकी इमेज प्रोफेशनल स्टूडेंट लीडर्स जैसी बनती जा रही थी। मैं तिलक छात्रावास में रहता था और यह संयोग ही था कि छात्रावास में रहने वाले सभी छात्रों का सहयोग और समर्थन श्री सत्यनारायण अग्रवाल और श्री विष्णु राजोरिया के साथ था। इन्हीं के साथ रहकर पढ़ाई के साथ-साथ छात्र राजनीति और फिर युवक काँग्रेस के प्रति मेरी रुचि और गतिशीलता बढ़ती चली गई।

जब मैं कॉलेज में था, उन दिनों 1963-64 में पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र मुख्यमंत्री थे और श्री अर्जुनसिंह कृषि तथा सूचना प्रकाशन विभाग में राज्यमंत्री। उस समय तख्तमल-देशलहरा गुट की ओर से यह लगातार कोशिश की जा रही थी कि किसी न किसी प्रकार असंतुष्ट गतिविधियों को हवा देकर मिश्र मंत्रिमण्डल को परेशानी में डाला जाय। उन दिनों हमीदिया कॉलेज के छात्र संगठन के चुनाव पूरे शबाब पर थे। कुछ कारणों को लेकर छात्रों में तनाव पैदा हो गया और उस दौरान पुलिस की ज़्यादती के कारण छात्र भड़क उठे। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर श्री अज़ीज़ कुरैशी, श्री हसनात सिद्दीकी, श्री दीपचन्द यादव आदि ने छात्रों को उत्तेजित कर जुलूस निकालने और मुख्यमंत्री निवास पर प्रदर्शन करने की घोषणा की। छात्रों का नेतृत्व इन लोगों के हाथों में जाता देख दूसरा गुट भी सक्रिय हुआ और आनन-फानन में इंतजाम कर 'दैनिक भास्कर' के वर्तमान संचालक श्री रमेशचन्द्र अग्रवाल से जीप प्राप्त की गई। वे उन दिनों हम लोगों के साथ ही छात्र राजनीति में रुचि लेते थे। हमीदिया कॉलेज से छात्रों का जुलूस मुख्यमंत्री पंडित मिश्र के आवास की ओर बढ़ता जा रहा था, उसी समय जाने कैसे छात्रों के बीच से पथराव शुरू हुआ और आकाशवाणी के सामने स्थित तत्कालीन रोडवेज डिपो के अन्दर से आग के गोले छात्रों के बीच आकर गिरने लगे, आकाशवाणी और रोडवेज डिपो से कुछ ही दूरी पर मुख्यमंत्री निवास था और छात्र हिंसक होते जा रहे थे, इसलिए पुलिस ने बल प्रयोग कर छात्रों को खदेड़ना शुरू किया, इससे जहाँ अनेक छात्र भाग खड़े हुए वहीं दूसरी ओर उत्तेजित छात्रों का एक समूह मुख्यमंत्री निवास के द्वार तक पहुँच गया और जाने कैसे छात्रों की जीप से मुख्यमंत्री निवास के प्रवेश द्वार का एक खम्बा क्षतिग्रस्त हो गया। यह ख़बर पहुँचते ही वायरलेस पर जो भी संदेशों का आदान-प्रदान हुआ हो, किन्तु पुलिस के हवाई फायर शुरू हुए और कुछ ही

मिनिटों में कौन कहाँ भाग खड़ा हुआ, किसी को पता नहीं चला। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप पूरे भोपाल में छात्रों की हड़ताल शुरू हो गई तथा यहाँ-वहाँ शासकीय वाहनों को नुकसान पहुँचाया गया। लगभग आधी रात के बाद दूसरे दिन श्री राजोरिया मेरे छात्रावास में आये और मुझसे कहा कि हॉस्टल के सभी छात्रों को समझौते के लिए तैयार करो, कल 12 बजे सर्किट हाउस में कलेक्टर के साथ हमें हर हालत में समझौता करना है। सदैव संघर्ष के तेवर दिखाने वाले समझौते की बात अंधेरी रात में क्यों कर रहे हैं, यह तो मैं नहीं समझ सका, किंतु हम सबके बीच इनकी सूझ-बूझ और दूर दृष्टि की अपनी एक साख बनी हुई थी और हम सभी साथियों के बीच इनकी आवाज़ हमेशा एक असरदार मायने रखती थी, इसलिये उस समय तो मैंने हाँ भरकर छुट्टी पाई लेकिन दूसरे ही दिन सुबह मैंने जब यह जानकारी अन्य साथियों को दी तो वे सब भड़क उठे। उस समय सभी छात्र नेताओं का मूड लौह पुरुष पंडित मिश्र से टकराने का था। अंततोगत्वा हम सब मिले, बैठे, संपूर्ण स्थिति पर विचार किया और जब श्री राजोरिया ने बताया कि यदि हम तोड़-फोड़ के लिये असामाजिक तत्वों को उत्तरदाई बताते हुए उचित मुआवज़े की माँग के साथ समझैता कर लेते हैं तो छात्रों की सभी माँगें एक सप्ताह में पूरी हो जायँगी। यह आश्वासन मुख्यमंत्री पंडित मिश्र ने श्री अर्जुनसिंह की उपस्थिति में दिया है। चूँकि युवक काँग्रेस के संदर्भ में, मैं एक दो बार श्री अर्जुनसिंह से मिल चुका था तथा उनकी शालीनता और सौजन्यता का मुझ पर अमिट प्रभाव था, इस कारण मुझे यह समझते देर नहीं लगी कि यदि अर्जुनसिंहजी छात्रों की ओर मध्यस्थ बन गये तो फिर हमारे हितों पर किसी प्रकार की कोई चोट नहीं होगी और फिर यही हुआ कि नोंक-झोंक और गर्मा-गर्मी के बाद छात्रों और कलेक्टर के बीच समझौता हो गया और कॉलेज दूसरे दिन से खोलने का फ़ैसला किया गया।

इस प्रकार के समझौते छात्र जगत में जिस प्रकार की प्रतिक्रिया को जन्म देते हैं, वह होना स्वाभाविक थी। दूसरे दल की ओर से हम लोगों पर शासन का पिट्ठू और पंडित मिश्र का ग़ुलाम होने का आरोप लगाया गया और हड़ताल जारी रखने की घोषणा की गई। यह एक गंभीर आरोप प्रतिष्ठा का प्रश्न था किंतु हमारे बहुमत, सूझबूझ और समन्वय के कारण हम सफल रहे और कॉलेज खुल गये। अब हमारे ऊपर अधिक बड़ी जवाबदारी थी और वह थी— छात्रों की माँगों को पूरा कराने की। इसके लिये सुबह-शाम करके 5-6 बार हम लोग अर्जुनसिंहजी से मिले और उनके सहयोग से एक-एक कर छात्रों की सभी समस्याएँ हल होती चली गई और मेरे मन का आदरभाव उनके प्रति श्रद्धा से और भरता चला गया।

उन दिनों मध्यप्रदेश में युवक काँग्रेस का कोई निर्वाचित या मनोनीत पदाधिकारी नहीं था। प्रदेश काँग्रेस कार्यालय के एक वरिष्ठ कर्मचारी श्री रामेश्वर अग्रवाल युवक काँग्रेस प्रकोष्ठ का कार्यभार संभालते थे। उन्हें जब, जहाँ, जैसा उचित लगता, किसी न किसी सम्पन्न युवक को वे ज़िला युवक काँग्रेस का अध्यक्ष मनोनीत कर देते थे। पहली बार 1963-64 के दौरान यह हवा सरगर्म हुई कि मध्यप्रदेश में युवक काँग्रेस का संयोजक नियुक्त किया जाना है। इसके लिये प्रदेश के कोने-कोने से भाग-दौड़ शुरू और अंतिम दौर में 4 नाम उभर कर सामने आये। श्री बालकवि बैरागी, मंदसौर, श्री महेश जोशी, इंदौर, श्री बंशीलाल गाँधी, रतलाम और श्री विष्णु राजोरिया, भोपाल। निर्णायक दौर में परिस्थितियों ने ऐसा मोड़ लिया कि तत्कालीन प्रदेश काँग्रेस अध्यक्ष श्री मिश्रीलाल गंगवाल, श्री बालकवि बैरागी के पक्ष में हो गये और श्री विष्णु राजोरिया पंडित मिश्र की पसंद बने। इस बीच उच्च स्तर पर किस प्रकार से समीकरण बने और बिगड़े, यह तो मुझे नहीं मालूम किंतु श्री अर्जुनसिंह मध्यप्रदेश युवक काँग्रेस के प्रथम संयोजक मनोनीत किये गये। प्रदेश के सभी युवकों के बीच एक अनिश्चय की मनःस्थिति निर्मित हुई कि यदि युवक काँग्रेस के संयोजक एक मंत्री हैं तो हम सब सड़क के कार्यकर्ताओं का वर्तमान और भविष्य क्या होगा। किंतु यह धारणा जल्दी ही समाप्त हो गई। श्री अर्जुनसिंह ने प्रदेश का व्यापक दौरा किया। सब जगह युवकों

को अपने साथ लिया और पचमढ़ी में अखिल भारतीय युवक काँग्रेस का भव्य ऐतिहासिक अधिवेशन आयोजित किया। इस आयोजन में और इसकी व्यवस्था में मुझे श्री अर्जुनसिंह को और अधिक निकटता से देखने-सुनने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ। उनके परिश्रम, सूझबूझ और छोटे से छोटे कार्य और कार्यकर्ता पर बारीक़ नज़र कुछ इस प्रकार रहती थी कि उनसे संपूर्ण आयोजन के बारे में छोटी से छोटी चीज़ भी छिपी हुई नहीं थी। श्री अर्जुनसिंह का विशाल हृदय और उनकी उदारता भी मैंने निकट से अनुभव की। युवक काँग्रेस अधिवेशन का उद्घाटन श्रीमती इंदिरा गाँधी ने किया था। उसके पश्चात् मंच से घोषणा की गई कि श्री अर्जुनसिंह अब मध्यप्रदेश युवक काँग्रेस की ओर से प्रकाशित स्मारिका को इंदिराजी को भेंट करेंगे। श्री अर्जुनसिंह उठे, माईक के निकट आये, मंच के दाँये-बायें और फिर प्रवेश द्वार की ओर देखकर उन्होंने घोषणा की कि स्मारिका का संयोजन और सम्पादन हमारे युवा साथी श्री विष्णु राजोरिया ने किया है, इसलिये मैं उनसे अनुरोध करता हूँ कि श्री राजोरियाजी मंच पर आयें और इंदिराजी को स्मारिका भेंट करें। यह सुनकर राजोरियाजी को जो भी अच्छा-बुरा अनुभव हुआ हो, लेकिन मेरे मन पर यह छाप ज़रूर पड़ गयी कि अर्जुनसिंहजी में न केवल विशाल हृदयता है बल्कि इतनी उदारता भी है कि वे यथा-समय अपने छोटे से छोटे कार्यकर्ता को न केवल उपकृत करते हैं बल्कि उसे यश और सम्मान प्राप्त करने का अवसर भी उपलब्ध कराते हैं, और यही कारण रहा कि मैं सदैव उनके पक्ष में कुछ न कुछ करते रहने में ही जुटा रहा।

कुछ समय बाद उज्जैन में छात्रों के हिंसक संघर्ष के बाद एक ओर पूरे प्रदेश में हिंसक छात्र उपद्रव भड़क उठे और दूसरी ओर जगदलपुर में बस्तर के तत्कालीन महाराजा प्रवीणचन्द्र भंजदेव पुलिस गोली के शिकार हो गये। मध्यप्रदेश विधानसभा का सत्र चल रहा था। पंडित मिश्र मंत्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा सरगर्म थी और उस दौरान बस्तर महाराजा की हत्या और उग्र छात्र आंदोलन के कारण जन साधारण में भी लौह पुरुष पंडित मिश्र के विरुद्ध असंतोष की भावना बढ़ती जा रही थी। ऐसे तनावपूर्ण वातावरण में फिर श्री विष्णु राजोरिया ने मुझे अपने आवास पर बुलाया, जहाँ उज्जैन के वरिष्ठ छात्र नेता श्री राजेन्द्र कुमार जैन उपस्थित थे। वहाँ आपस में हुई चर्चा से ज्ञात हुआ कि अर्जुनसिंहजी चाहते हैं कि मध्यप्रदेश के विश्वविद्यालयों के छात्र संगठन अध्यक्षों और बड़े नगरों के कॉलेजों के छात्र संगठन अध्यक्षों और पदाधिकारियों से ऐसे पत्र पर हस्ताक्षर प्राप्त किये जायें जिसमें कि उज्जैन के छात्रों पर हुए गोली चालन के औचित्य का समर्थन करते हुए शासन के पक्ष में विशेषकर मुख्यमंत्री पंडित मिश्र की सराहना करने संबंधी प्रस्ताव हो। मैं तो यह सब सुनकर विक्षिप्त जैसी स्थिति में पहुँच गया और मुझे लगा कि हो न हो अब हमारे छात्र नेता श्री राजोरिया का मानसिक दीवाला निकल चुका है और वह राजनीति के चक्कर में भले-बुरे की पहचान खो चुके हैं। क्योंकि छात्रों के बीच में यह नारा पूरे उछाल पर था कि "बस्तर की गलियाँ सूनी हैं, डी.पी. मिश्रा ख़ूनी है।" और "जो हमसे टकरायेगा, मिट्टी में मिल जायगा", तथा "छात्रों का इस्पाती मोहरा, डी.पी. मिश्रा का ख़ूनी चेहरा"। इन नारों के साथ प्रदेश के सैकड़ों छात्र नेता भोपाल में जमा हो चुके थे। मुझसे कहा गया कि मुझे केवल इतना करना है कि हमीदिया कॉलेज के दोनों हॉस्टलों के छात्रों को अपने निर्देशन में लेकर भारत टाकीज के सामने स्थित कैपिटल होटल के नीचे उपस्थित रहें और यदि किसी प्रकार का तनाव या हिंसक स्थिति उत्पन्न हो तो मदद के लिये सामने आ जायें। शीशमहल से प्रदेश के कोने-कोने में टेलीफोन खटखटाये गये और जैसे-जैसे दूसरे दिन शाम तक प्रदेश के लगभग 70-80 छात्रनेता भोपाल में एकत्रित हो गये। कैपिटल होटल में बैठक शुरू हुई जो रात्रि 9 बजे से सुबह 4 बजे तक चली। इस दौरान श्री राजेन्द्र जैन और श्री विष्णु राजोरिया ने जाने कितने तरीक़े से छात्र नेताओं को डराया-धमकाया,

पुचकारा और पता नहीं उन्हें समझाकर यह चकमा देकर उस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करवा लिये जिसमें कि पुलिस गोली चालन को औचित्यपूर्ण बताते हुए मुख्यमंत्री पंडित मिश्र की सराहना की गई थी। इस बीच यह तय कर लिया गया कि यह पत्र सर्वथा गोपनीय रखा जायगा किंतु दूसरे दिन दोपहर में 4 बजे जब पंडित मिश्र विधानसभा में अविश्वास प्रस्ताव पर भाषण देने खड़े हुए तो सबसे पहले उन्होंने छात्रों के इसी पत्र को हवा में लहराते हुए विधानसभा में घोषणा कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया कि उज्जैन में छात्रों पर हुए गोली चालन को स्वयं छात्रों ने औचित्यपूर्ण बताया है। इस ख़बर को बाहर आते देर नहीं लगी और सभी छात्र नेता उत्तेजित होकर उन दोनों षड़यन्त्रकारी सूरमा नेताओं की खोज मे निकल पड़े, जिन्होनें उनसे हस्ताक्षर कराये थे। संभवतः श्री राजोरिया एवं श्री राजेन्द्र जैन को यह अंदेशा पहले से ही था, इस कारण श्री अर्जुनसिंह को पत्र सौंपने के बाद ये दोनों एक स्कूटर पर बैठकर अज्ञात स्थान को फ़रार हो गये थे।

मध्यप्रदेश के छात्र आंदोलन के इतिहास में यह अविस्मरणीय उल्लेखनीय छात्र आंदोलन था जिसमें श्री अर्जुनसिंह के कौशल और कूटनीति के मार्गदर्शन में श्री राजेन्द्र जैन और श्री विष्णु राजोरिया ने सम्पूर्ण छात्र आंदोलन को छिन्न-भिन्न कर विधानसभा में मुख्यमंत्री पंडित मिश्र के हाथ मज़बूत करने में सफलता पाई थी। इस आंदोलन के बाद हमीदिया कॉलेज में अक्सर कोई न कोई घटना-दुर्घटना आंदोलन का कारण बनती रहती थी और इन सबको लेकर मुझे अनेक बार श्री अर्जुनसिंह से मिलने और चर्चा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अन्य दूसरे कॉलेजों में भी जब कभी छात्र आंदोलन हुए, उनकी समस्याओं को हल करने में मुझे बराबर कोई न कोई उत्तरदायित्व सौंपा जाता रहा और इन सब कारणों से मुझे श्री अर्जुनसिंह को निकट से देखने, समझने और पहचानने का अवसर मिलता चला गया। बीच में राजनीति में कई उतार-चढ़ाव आये, भविष्य ने कई मोड़ लिये और एक लम्बे अंतराल के बाद अर्जुनसिंहजी, सेठी मंत्रीमण्डल में शिक्षामंत्री बनाये गये। इसे मैं मध्यप्रदेश के शिक्षा जगत का स्वर्णकाल समझता हूँ।

1972 में श्री चन्द्रजीत यादव, तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के निकटस्थ सहयोगी थे तथा युवक कॉंग्रेस की ओर से अर्जुनसिंहजी के निमंत्रण पर श्री चन्द्रजीत यादव का भोपाल आगमन हुआ। उस समय कमला पार्क में उनके सम्मान में श्री अर्जुनसिंह की ओर से एक रात्रिभोज का आयोजन किया गया। जिसके आयोजन और संपूर्ण व्यवस्था का कार्यभार श्री राजोरिया के माध्यम से मुझे प्राप्त हो गया था। उस रात कमला पार्क में लगभग एक घंटे श्री अर्जुनसिंह को निकट से देखने और सुनने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ और तभी से जाने किस देवी-भावना से मैं उनका अनन्य भक्त बन गया।

शिक्षामंत्री श्री अर्जुनसिंह ने मध्यप्रदेश के इतिहास में पहली बार शिक्षा संबंधी समस्याओं के समाधान के लिये सीधे छात्रों से चर्चा के द्वार खोले। हर संभागीय मुख्यालय पर छात्र नेताओं से और शिक्षकों से स्वयं उन्होंने मुलाक़ातें की। शिक्षकों, छात्रों और शिक्षा-शास्त्रियों के विचार सुने, उनके सुझाव लिये और संपूर्ण शिक्षा जगत में नवीन चेतना और नव-विश्वास के वातावरण को विकसित किया। अधिकारियों ने अधिक स्वायत्तता अनुभव की। बिगड़ी हुई व्यवस्था के सूत्र समेटे गये। अशासकीय शालाओं के अनुदान के नियम बनाये गये। शिक्षकों की सेवा शर्तों में सुधार किया गया। विश्वविद्यालयों को नीति निर्देश दिये गये। परीक्षा समय पर संचालित करने और नकल रोकने के सार्थक प्रयास किये गये और प्रदेश में पहली बार अनुभव किया गया कि शिक्षा विभाग जैसे विशाल और दुःखी विभाग को भी सही पटरी पर लाकर कोई दिशा दी जा सकती है। हमीदिया कॉलेज से एम.ए.,एल-एल.बी करने तक कुल मिलाकर लगभग 8 वर्ष तक मैं निरंतर श्री अर्जुनसिंह के संपर्क में रहा। उसके बाद पिपरिया में वक़ालत शुरू करने के बाद एक ओर जहाँ भोपाल आना-जाना कम हुआ, वहीं उनसे मुलाक़ातों का सिलसिला

भी कम होता चला गया।

"बड़ो की अगाड़ी और घोड़े की पिछाड़ी" से दूर रहने की नसीहत गाँवों में बहुत लोकप्रिय है। मैं समझता हूँ कि श्रीमती इंदिरा गाँधी और श्री राजीव गाँधी की अधिकतम निकटता के कारण ही बार-बार अर्जुनसिंहजी को गंभीर राजनैतिक उतार चढाव देखने पड़े। उस संपूर्ण परिवर्तनक्रम और राजनैतिक घटनाक्रम को दोहराने की आवश्यकता नही जिनके प्रकाश में उन्हें मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री से पंजाब का राज्यपाल, फिर वाणिज्य मंत्री, फिर काँग्रेस उपाध्यक्ष फिर संचारमंत्री, फिर मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री, फिर प्रदेश के काँग्रेस अध्यक्ष और फिर तीसरी बार मुख्यमंत्री और फिर त्याग पत्र, इन सारे घटनाक्रम में मूलतः उन सब विघ्नसंतोषियों की भूमिका थी, जिनकी अपने क्षेत्र में ज़मीन में जड़ें तो हैं नहीं किंतु चुगली और चापलूसी के बल पर दिल्ली की सत्ता पा कर सत्ता सुख भोगना चाहते हैं और अपने निहित स्वार्थ के लिये पार्टी की नीति और सिद्धांतों को समर्पित नेताओं को शहीद करने में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। उन सब चेहरों से श्री अर्जुनसिंह और प्रदेश के सभी वरिष्ठ नेता भली-भाँति परिचित हैं। विगत 1990 के चुनाव में इन्हीं विघ्नसंतोषियों ने श्री अर्जुनसिंह को कमज़ोर करने की दृष्टि से मुरैना से लेकर बस्तर तक के उनके 60 से अधिक विश्वस्त सहयोगियों को काँग्रेस चुनाव टिकट से वंचित करा दिया था। इससे भले ही 60 अच्छे विधायक विधानसभा में आने से वंचित रह गये हों किंतु उस संपूर्ण हताशा और श्री श्यामाचरण शुक्ल के अल्पकालीन नेतृत्व का यह परिणाम अवश्य निकला कि पूरे प्रदेश में काँग्रेस सत्ता से वंचित होकर शर्मनाक 55 की संख्या पर आकर टिक गई। भाजपा के सत्तारोहण के लिये काँग्रेस के वरिष्ठ नेता ही नहीं तो और कौन उत्तरदाई हो सकता है, यह यक्ष प्रश्न आज भी अनुत्तरित है। यदि 1990 का चुनाव श्री अर्जुनसिंह के नेतृत्व में लड़ा जाता है और उन्हें उचित उम्मीदवार चुनने की पूरी छूट दी जाती तो निश्चय ही मध्यप्रदेश में भाजपा की नहीं वरन् काँग्रेस की सरकार बनना सुनिश्चित था। अब जब कि भाजपा की सरकार को बने 3 वर्ष पूरे हो रहे हैं, यह स्पष्ट हो गया है कि काँग्रेस न केवल कमज़ोर होती जा रही है बल्कि अब ऐसे अवसरवादी तत्त्व सामने आ गये हैं जो भाजपा का मुक़ाबला करने में तो असमर्थ हैं ही, श्री अर्जुनसिंह ने जिस पराक्रम और निष्ठा से प्रदेश में पार्टी को गति और शक्ति दी थी, उसे भी संभालने में वह असफल हैं। स्वयं श्री अर्जुनसिंह राष्ट्रीय मंच पर जिस तेज़ी से अपनी प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व का विस्तार कर रहे हैं, उससे स्पष्ट है कि अब केवल मध्यप्रदेश में ही नहीं बल्कि संपूर्ण देश के काँग्रेसजनों की आशा और निगाहें उनकी ओर हैं। वैचारिक धरातल पर तथा नीति, सिद्धांतों और आदर्श के आधार पर आज काँग्रेस को यदि कहीं से सही दिशा-दर्शन और नेतृत्व मिल सकता है तो वह केवल श्री अर्जुनसिंह से ही संभव है। इंडियन रायटर्स एसोसिएशन द्वारा श्री अर्जुनसिंह के सम्मान में किया जा रहा प्रकाशन कविवर रवीन्द्र की भूमिका सुप्रसाद है। इस अवसर पर मैं श्री अर्जुनसिंह के यशस्वी राष्ट्रीय नेतृत्व की कामना करता हूँ।

☐ *एस.के.माहेश्वरी — काँग्रेस नेता- प्रतिष्ठित एडवोकेट*

वे प्यार के बादल हैं

शब्बीर मास्टर
(पूर्व विधायक)

स्वतंत्रता के पश्चात् राजनैतिक परिदृश्य पर उभरे अनेक नेताओं ने जहाँ अपने कृत्यों से राजनीति को सर्वाधिक हानि पहुँचाई है, वहीं राजनीतिज्ञों की बाढ़ ने नैतिकता, मानवता और प्रतिबद्धता के सभी पुलों को तोड़ दिया है। नेताओं ने जनविश्वास खो दिया और जनता असहाय-सी अपने नेताओं को इधर से उधर प्रतिबद्धताएँ बदलते हुए देख रही है। किंतु ऐसा भी नहीं है कि सभी जगह अंधकार छा गया हो। अब भी कुछ जगमगाते सितारे हैं जो इस घने अंधकार की छाती को चीरते हुए ग़रीबों और असहाय लोगों के लिये आशा की किरण बने हुए हैं उन्हीं में से एक हैं अपने आभा मण्डल से आलोकित करने वाले श्री अर्जुनसिंह अपनी असीम संघर्ष शक्ति से उन्होंने भयावह बीमारी से भी विजय हासिल कर ही ली और प्रदेश के लाखों ग़रीब बेसहारा लोगों की प्रार्थनाओं ने असर दिखाया और अपने मन की मुराद पा ली।

आख़िर ऐसा क्या है अर्जुनसिंहजी के व्यक्तित्व में कि उनसे इस कदर लोग जुड़े हुए हैं। 'आया राम गया राम' 'आते को राम और जाते को बुरा नाम' की इस दुनिया में वे पद पर हों या नहीं उन्हें समान आदर और समान प्यार जनता से क्यों मिलता है? इस प्रश्न का उत्तर किसी किताब में नहीं मिलेगा। वह मिलेगा उनके सान्निध्य में। मैं उस क्षण को नहीं भूल सकता जब 12 अक्टूबर 90 को जन-जन के लाड़ले नेता श्री अर्जुनसिंह एक असहाय और बेबस मरीज़ की हैसियत से हमीदिया अस्पताल के सघन चिकित्सा कक्ष से दिल्ली ले जाने के लिये बाहर लाये गये थे। जब भारी भीड़ उनके दर्शनों के लिये जमा थी और उसी समय एक गैस पीड़ित मरीज़ व्हील चेयर पर अपने नेता के दर्शनों के लिये आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा था। भीड़ की धक्का-मुक्की में लगभग गिर से गये उस व्यक्ति को देखकर अर्जुनसिंहजी ने सिक्यूरिटी के एक सदस्य से कहा, क्या करते हो, आने दो उन्हें, हटिए एक तरफ़। और फिर उस गैस पीड़ित को मुँह माँगी मुराद मिल गई। उसने अपने प्रिय नेता को माल्यार्पण किया और अपने नहीं उनके स्वास्थ्य के लिये दुआ माँगी है। यह है लाखों के चहेते नेता श्री अर्जुनसिंह और ऐसे हैं उनके चाहने वाले जिनके प्रेम का दरिया इस दोहे में सिमट गया—

अकथ कहानी प्रेम की कछु कही न जाय।
गूँगे केरी सरकरा खाबे और मुस्काय।

अर्जुनसिंहजी का राजनीतिक जीवन चुनौतियों और उनके सफल संघर्ष की कहानी है। उन्हें पंजाब का अब तक का सबसे सफल राज्यपाल माना जाता है। मध्यप्रदेश की धरती और अपने साथियों से दूर भी अपनी विशिष्ट शैली के आधार पर उन्होंने पंजाब की जनता का दिल भी जीत लिया था। अनेक आशंकाओं के कोहरे में लिपटे वे पंजाब गये थे और विजयी मुस्कान के साथ वहाँ से वापस आये। जब रूसी राष्ट्रपति श्री गोर्बाच्योव दिल्ली आये तो अनेक मंत्रियों और स्वागत करती भीड़ के बीच वे श्री अर्जुनसिंह से बोले, आप से तो मैं पहले भी

मिल चुका हूँ। मिले तो और भी बहुत से लोग होंगे मगर क्या कारण था कि श्री गोर्वाच्योव अर्जुनसिंहजी को नहीं भूल पाये। उत्तर सिर्फ़ एक है और वो है सहजता, जो हर मिलने वाले के दिल पर असर करती है और वह उन्हें भूल नहीं पाता। मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने अनेक जनहितकारी निर्णय न केवल लिये, अपितु उन्हें लागू भी करवाया। विगत वर्ष जब काँग्रेस अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने का प्रयास कर रही थी, उनकी गंभीर बीमारी काँग्रेसजनों के लिये असहनीय आघात था। उनके बिना युवा शक्ति दिशाहीन भटकाव की ओर अग्रसर थी। मगर जब 10 फरवरी को बैरागढ़ विमानतल पर उन्होंने क़दम रखा तो हज़ारों का जनसमूह उनके दर्शनार्थ उपस्थित था। अपने संक्षिप्त भाषण में उन्होंने कहा कि — "कठिन से कठिन समय में और गहरे अंधकार में, आप सभी के आशीर्वाद ने मेरी सहायता की है।" इन शब्दों को सुनकर उपस्थितजनों की आँखे भीग गईं। मैं आशा करता हूँ, श्री अर्जुनसिंह का मार्गदर्शन सभी काँग्रेसजनों को लगातार और लम्बे अर्से तक मिलता रहेगा और साम्प्रदायिकता तथा वैमनस्यता की इस जलन में वे एक प्यार का बादल सिद्ध होंगे।

☐ *शब्बीर मास्टर— पूर्व विधायक।*

याददाश्त

इक़बाल अहमद

(समाजसेवी)

1986 के मार्च की तीन तारीख़ को आल इंडिया क़ौमी एकता कमेटी की मध्यप्रदेश इकाई का मुझे सूबाई सदर नामज़द किया गया। यह ओहदा मुझसे पहले म.प्र. कॉंग्रेस कमेटी के एक सूबाई जनरल सेक्रेट्री के पास था उनसे पहले दो पार्लियामेंट मेम्बर इस ओहदे पर रह चुके थे।

उस वक़्त मेरे लिये बड़ा एजाज़ था मगर उससे ज़्यादा चैलेन्ज था जिसको मैंने कुबूल करने की हिम्मत की थी। उस वक़्त मेरे ज़ेहन में किसी शायर का एक मिसरा आया — "मैं एक क़तरा सही अपना अलग वजूद तो है।"

अपने वजूद को साबित करना मैंने तय कर लिया। क़ौमी एकता के काम को इबादत की तरह अनजाम देना अपना फ़र्ज़ मानकर आगे बढ़ा, बिना किसी ठोस सहारे के बिना किसी रसूख के। अपनी थोड़ी-सी ज़मीन बेची और,

"हम अकेले ही चल दिये राही,
हौसला था हमारे साथ अभी"

बस इसी हौसले के सहारे पूरे प्रदेश के दौरे पर रवाना हुए। 72 दिनों के बाद जब घर लौटा तो हौसला बुलंद हो चुका था और ज़ेहन पुरसकून। मैंने साफ़ ज़ेहनों की तलाश में काफ़ी कामयाबी पा ली थी। मगर मुझे एक तल्ख़ तजुरबा ज़रूर हुआ, के बड़े सयासी रहनुमाओं की जैर सदारत इस पाकिज़ा काम के लिये कुछ भी नहीं था विरासत में मुझे कुछ नहीं मिला।

आहिस्ता-आहिस्ता पूरे सूबे में एक टीम तैयार हुई, काम आगे आया, ज़रूरत का एहसास जागा। मुझे फ़ख़्र है यह लिखते हुए कि राष्ट्रपति महामहिम ज्ञानी जैलसिंहजी से लेकर कई मरकजी बुजरा मुख़्तलिफ़ सूबों के वज़ीरे आला जैसे गुजरात के अमरसिंह चौधरीजी, राजस्थान के वज़ीरे आला जनाब शिवचरण माथुरजी, म.प्र. के जनाब मोतीलाल वोराजी और जनाब अर्जुनसिंहजी वग़ैरह ने क़ौमी एकता के मुख़्तलिफ़ प्रोग्रामों में शिरकत फरमाई।

1989 में पहली बार वज़ीरे आला म.प्र. जनाब अर्जुनसिंहजी ने रवीन्द्र भवन में हमारे प्रोग्राम में शिरकत फरमाई। अपनी पहली तकरीर में ही उन्होंने अपने आपको, क़ौमी एकता का एक छोटा सिपाही कहा। हम लोग मुतासिर हुए ज़रूर मगर फिर भूल भी गये।

भोपाल के प्रोग्राम के दो हफ़्ते बाद ही इंदौर में भी कमेटी ने एक प्रोग्राम किया **अर्जुनसिंह साहब से दरख़ास्त की गई तो ख़िलाफ़ उम्मीद उन्होंने कबूल कर ली और आये भी।**

इंदौर के प्रोग्राम के कुछ ही दिन बाद उज्जैन में प्रोग्राम होना था यह सोचकर कि एक चीफ मिनिस्टर बार-बार क्या आ पायेंगे। रस्मी दरखास्त की गई मगर अपने कौल के पक्के अर्जुनसिंहजी ने वहाँ भी आकर हम सबको

हैरत में डाल दिया। पहली बार यह एहसास हुआ कि क़ौमी एकता पर हमारी मेहनत बर्बाद नहीं हुई।

उज्जैन में पहली बार जनाब अर्जुनसिंह को ग़ौर से देखा। उनके लिये दिल में कशिश पैदा हुई — यकीन तुममें कोई बात होगी।

"यह दुनिया यूँ ही तो पागल नहीं है।"

पहली बार यह दरमियाना क़द काठी का नेता मुझे बहुत बड़ा दिखाई दिया, एक दम फ़रिश्ता सूरत। मैंने बहुत ग़ौर से जब उनकी तरफ़ देखा, चेहरे पर जिहानत के साथ शराफ़त, मुर्रब्बत और साथ मासूमियत भी दिखाई दी जो हर अदना और आला को **बेतहाशा** मुतासिर किये बग़ैर नहीं रह सकती। उस दिन के ताआसुर में महसूस तो आज भी करता हूँ मगर उनको अल्फ़ाज़ में नहीं ढाल सकता। मैं बेइंतहा, अपनी मंजिल पा ली हो, इस तरह मुतमईन भी हो चुका था। यह इनतेहा थी मगर इबतेदा से ही उन्हीं की शख़्सियत थी, जिनके सामने मैं खुलकर कभी बोल ही न सका।

उस दिन से ही मैंने अपने अंदर तबदीली-सी महसूस कि जैसे ज़िंदगी में एक ठहराव आ गया हो, सकून हासिल हो गया। मैंने महसूस किया कि बिलाइरादा मेरा उठने वाला हर क़दम कुँवर साहब की तरफ़ जाता है।

यह दायरा भी आहिस्ता-आहिस्ता तंग होता गया, मैं हर वक़्त उनके क़रीब तर जाने की कोशिश करने लगा। उनको पढ़ने, उनको समझने और उनको जानने के लिये। यह सब कुदरती तौर पर होता गया। मैंने उनकी एक तस्वीर ख़रीदी और उस पर अपने हाथ से लिखा —

"मेरी निग़ाह में इनसानियत ही मज़हब है
हुदुदो देरो हरम से गुज़र गया हूँ मैं।"

फिर इस तस्वीर को फ्रैम करा ली और उन्हीं को भेंट भी कर दी।

भोपाल की ताजुल मसज़िद का मामला हो या पीर गेट के मंदिर का। या फिर जलहरी वाला मामला हो उनकी तस्वीर पर लिखा हुआ शेर मुझे ऐसे लगता था जैसे उनके दिल पर लिखा हो।

मेरे एहसासात में कुँवर साहब का रुतबा आदमियत ही हुदूद को पार कर इनसानियत की हद में दाखिल हो चुका था। अब वह एक अज़ीम इनसान के रूप में मेरे ज़ेहन पर छा चुके थे। उनकी शख़्सियत अज़ीम से अज़ीम तर होती चली जा रही थी और उनको समझने की मेरी जुस्तजू और बढ़ने लगी थी।

मैं हर उस शख़्स की बेइंतहा इज़्ज़त करने लगा था जो उनको क़रीब से जानता था। मैं हर उस शख़्स को अपने घर कभी खाने पर, कभी चाय पर मदू करता था। महज़ इसलिये कि साहब के बारे में मेरी मालूमात में इज़ाफा हो। मैं हर वह रिसाला और अख़बार ख़रीद लिया करता हूँ जिसमें साहब की तस्वीर हो या कुछ लिखा हो। चौक बाज़ार के हमीद मिस्त्री तो उनकी दुकान पर आई कोई किताब या रिसाला दो-तीन माह तक मेरे लिये छुपाकर रख लेते हैं जिसमें साहब का ज़िक्र हो। मैं साहब से कुछ इतना वावस्ता हो चुका था कि मेरा पूरा घर ही नहीं क़रीब-क़रीब पूरा खानदान "अर्जुनसिंहमय" हो चुका है। मेरी बुजुर्ग अम्मी भी तो अपनी हर इबादत में उनके लिये हुआ गौ रहती हैं। मुझे याद है उनके दिल के आपरेशन के दौरान तो वह दस दिन "मशकपे" में भी बैठी थीं? आपरेशन की कामयाबी की ख़बर मालूम करके ही बाहर आईं।

हमारे बरगुजिदा बुज़ुर्ग मरहूम काज़ी वजीदउलहुसैनी साहब की शराफ़त और इनसानियत के क़ायल थे वह कहते थे "इस शख़्स की ज़रूरत हिन्दुस्तान को बहुत दिनों तक रहेगी।"

वक़्त गुज़रने के साथ उनकी ज़िन्दगी में कई उतार चढ़ाव आये मगर वे एक चट्टान की तरह अपने मकसद

की तरफ़ रुख़ किये खड़े रहे। मैंने महसूस किया कि उनके सीने में तो करोड़ों दिलों की धड़कनें हैं। वो तो हर उसके हैं जिसको उनकी ज़रूरत है। भोपाल में चारों तरफ़ ग़रीबों की बस्तियाँ इस बात का अमली सबूत और उनकी बेपनाह हर दिल अज़ीज़ी की गवाह बनकर खड़ी हैं। जिनको आज तबाह करने की कोशिश की जा रही है। भाजपा की सरकार की बरबरता की कार्रवाई से बेइंतहा मुतासिर होने वाले यह अज़ीम शख़्स न केवल हमको संघर्ष करते रहने की ताक़ीद करते हैं बल्कि खुद भी अमल करते हैं।

पिछले साल ख़बर मिली कि पुराने भोपाल में तोड़फोड़ जारी है। बजाते खुद मुआयना किया। बैरागढ़ से खबर आई कि वहाँ तो हद से ज़्यादा हो गया। गर्मियों की भरी दोपहरी को साहब का क़ाफ़िला बैरागढ़ पहुँचा। चलते हुए और धूप में जलते हुए बुलडोज़रों के सामने खड़े हो गये बुलडोज़र रुक गये वादा किया गया कि ख़िलाफ़ क़ानून कोई कार्रवाई नहीं होगी। वहाँ से क़ाफ़िला रवाना हुआ झुग्गी-झोपड़ियों की तबाही देखने पहुँचा। उस जगह की तबाही देख उनके चेहरे पर फ़िक्र और गम की परछाईयाँ साफ़ दिखाई दीं—
बकौल शायर—

"अजीब है रिश्ता सारे जहाँ से उलफ़त का"
"गिरे किसी का मकाँ अपना घर लगे है मुझे"

उनकी बेपनाह मक़बूलियत का राज़ भी शायद यही है।

तीर चार घंटों में साहब के पूरे कपड़े पसीने में तर हो चुके थे। हम सब भी थक के चूर हो चुके थे। हुकुम हुआ बंगले चलो। हमारी जान में जान आई। बंगले पहुँच गये अभी पानी वग़ैरा ही पी रहे थे कि फिर ख़बर आई कि बैरागढ़ में तोड़फोड़ फिर चालू हो गई। हम सब आने वाले अंदेशे से सहम गये। हमारे साथ एक बुजुर्ग लीडर भी थे हमने उनसे कहा कि शायद साहब बैरागढ़ जाने की बात फिर कहेंगे। आप उनको समझाइए कि कल दौरा कर लिया जाय। उन्होंने साहब से कहा भी मगर साहब यह कहते हुए कार में बैठ गये कि "मैं कोई काम अधूरा नहीं छोड़ता, जो न जाना चाहें वह न जाय।" मजबूरन हम सब फिर से पीछे हो लिये।

दिल की बीमारी के तहत अस्पताल में दाख़िल हुए। डाक्टरों ने मुकम्मल आराम करने को कहा, मगर वहाँ भी आडवाणीजी की रथ पर कमल का फूल नज़र आ गया जो यकीनन् ग़ैर क़ानूनी था। अस्पताल से ही चुनाव कमीशन को शिकायत पहुँचा दी। इस अजमत पर दूसरा कौन है जो पहुँच सकता है। इसीलिये शायद किसी शायर ने कहा है—

"हुस्ने सुलूक जज़्बे ख़िदमत पे नाज़ है।
एहले वतन को तेरी शराफत पे नाज़ है।
सीने में तेरे लाखों दिलों की धड़कनें
ऐ, दर्दमंद तेरी कयादत पे नाज़ है।"

दिल्ली में आपरेशन होने को था। बिस्तरेमरग पर खड़ा एक इनसान जो कुछ ही लम्हों बाद आपरेशन थियेटर में जायगा। अपनी अवाम के नाम राम-रहीम और येशु के मारफ़त ख़त लिखना इस बात का खुला सबूत है कि सामने चाहे मौत ही क्यों न हो संघर्ष और कुव्वते इरादी से वह भी पस्पा हो सकती है। गौ कि भोपाल की तारीख़ में शायद पहली दफ़ा किसी ग़ैर मुस्लिम शख़्सियत के लिये न सिर्फ़ मस्जिदों में दुवाएँ हुईं बल्कि वजीफ़े भी पढ़े गये। मंदिरों और गिरजाघरों और दूसरी इबादतगाहों में एक अज़ीम इनसान की सेहत के लिये दुआएँ माँगी गईं। एस्कॉर्ट बहुत बड़ा अस्पताल है, अच्छे-अच्छे डॉक्टर भी हैं, मगर मेरा ईमान है कि साहब को सिर्फ़ दुआओं ने

अच्छा किया है।

"मुझको तारीख़ फरामोश करेगी कैसे।
मेरा किरदार मोहब्बत है ज़माने वालो"।

साहब की शख़्सियत में उनकी गहरी आँखें एक्सरे की तरह अंदर तक उतर जाने वाली तो हैं ही, मगर आईने की मानिन्द भी हैं जिसमें सामने वाले को अपना सही अक्स-हूब-हू नज़र आ जाता है।

मैं तो अब तक यही समझ पाया हूँ। न तो मैं नम्र निगार हूँ और न ही मुझे लिखना ही आता। मैंने तो अब तक उस अज़ीम इनसान का नाम भर ही लिखना सीखा है। लिखना जानता हूँ, चाहता हूँ और चाहूँगा — भी हमेशा।

इसलिये मेरा ईमान है कि दुनिया से इनसानियत मिट नहीं सकती जब तक दुनिया में ऐसे अज़ीम और मुकम्मिल इनसान मौज़ूद हैं— हमारी दुआ है कि दुनिया में इनसानियत और ऐसे इनसान क़ायम रहें — आमीन।

"न ग़रज़ किसी से न वास्ता, मुझे काम अपने काम से,
तेरे ज़िक्र से तेरी फ़िक्र से तेरी याद से तेरे नाम से"

☐ *इक़बाल अहमद— समाजसेवी।*

धर्मनिरपेक्षता और लोकतांत्रिक समाजवाद में गहरा विश्वास

डॉ. (कु.) नुज़हत शाहीन

(सहायक प्राध्यापक, सेफ़िया महाविद्यालय, भोपाल)

देश में जहाँ कहीं भी धर्मनिरपेक्षता पर प्रहार होता है या सांप्रदायिक शक्तियाँ शक्तिशाली हुई हैं, श्री अर्जुनसिंह ने सदा उनके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई। राम जन्मभूमि और बाबरी मस्ज़िद पर उनका स्पष्ट दृष्टिकोण इस बात का सबूत है। सांप्रादायिकता के कट्टर विरोधी श्री अर्जुनसिंह आज हरिजनों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों के मसीहा कहे जाते हैं। वह ऐसे अकेले नेता हैं जो इन लोगों के हितों के लिये लड़ रहे हैं। राजनीति में वह भा.ज.पा. का सांप्रदायकिता के आधार पर कड़ा विरोध कर रहे हैं। उनका यह विरोध जनता के बीच और संसद दोनों में जारी है। उन्होंने देश के लिये ऐसी शक्तियों का कड़ाई से विरोध करने का एक दृढ़ संकल्प काँग्रेस के 79 में तिरुपति अधिवेशन में भी घोषित करवाया था जिसका उद्देश्य काँग्रेस को सैद्धांतिक प्रखरता प्रदान करना था।

राष्ट्रीय स्तर पर उनकी एक मान्य और मज़बूत छबि देश में नेहरूवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक समाजवादी की है। इसका अनुमान उनकी सभी रैलियों में उनके द्वारा दिये गये भाषणों तथा उसमें उनके समर्थकों की उपस्थिति द्वारा लगाया जा सकता है जो न केवल पार्टी व पार्टी कार्यकर्ताओं का मनोबल बढ़ाती हैं बल्कि देश को सिद्धांतवादी राजनीति की ओर ले जाती है जो आज की सांप्रदायिक और जातिवादी राजनीति के बीच एक अच्छी बात है।

आज भारत में उन्हें दूसरा प्रधानमंत्री कहा जा रहा है या यूँ कहा जा रहा है कि वे प्रधानमंत्री की कुर्सी की दौड़ में हैं। भारत एक लोकतांत्रिक देश है इसलिये विकल्प तो उभरते ही रहते हैं और यह बात श्री अर्जुनसिंह ने अपने एक साक्षात्कार में स्वीकार की थी कि विकल्प उभरना तो एक स्वस्थ दलीय पद्धति का प्रतीक है। इसलिए यदि कभी ऐसे दिन आए कि काँग्रेस अपना उत्तराधिकारी ढूँढे तो श्री अर्जुनसिंह एक स्वाभाविक नेता के रूप में अवश्य स्वीकार कर लिये जायेंगे।

बहरहाल ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो श्री अर्जुनसिंह के लिये प्रधानमंत्री की कुर्सी मछली की आँख की तरह मानते हैं और उनके सांप्रदायकिता विरोध एवं लोकतांत्रिक समाजवाद के समर्थन के अभियान को व्यक्तिगत छबि बनाने के लिये मानते हैं। पर वास्तविकता यह है कि उनके यह दो सिद्धांत धर्मनिरपेक्षता और लोकतांत्रिक समाजवाद — ही उनकी परिपक्व राजनीति के अचूक फार्मूले हैं जिन्हें अपनाकर वह अपने शालीनता भरे व्यवहार के द्वारा अपनी अलग पहचान बनाये हुए हैं।

☐ *नुज़हत शाहीन— उर्दू साहित्य की सुप्रतिष्ठित लेखिका। शायर। उर्दू अकादमी मध्यप्रदेश की पदाधिकारी रहीं। महाविद्यालय में उर्दू की प्रोफ़ेसर। प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़ी जुझारू महिला नेत्री/ समाजसेवी।*

स्मृति के बिखरे मोती

मुकुन्ददास माहेश्वरी

''वह मुझसे भी आगे .....'' — पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र ''तुम फोन लगाओ, मैं अर्जुनसिंह को बधाई देना चाहता हूँ। जिस बुद्धिमत्ता चातुर्य एवं राजनयिक कुशलता का उसने प्रदर्शन किया है, उससे मैं कह सकता हूँ कि वह मेरे से भी आगे निकल गया। मैं तुम्हारे विषय में उससे बात करना चाहता हूँ।'' यह शब्द हैं पं. द्वारिकाप्रसाद मिश्र के।

आज भी ये शब्द मेरे मानस पटल पर अंकित हैं। यह कथन है पंडित मिश्र का जून के दूसरे सप्ताह में उस दिन जब श्री अर्जुनसिंह मध्यप्रदेश कांग्रेस विधायक दल के नेता चुने गये थे। मैं उपस्थित था उत्तरायण, जबलपुर में। श्री अर्जुनसिंह ने अपना मंत्रिमंडल बनाया था, दूसरे दिन पूर्वाह्न लगभग दस बजे शपथ ग्रहण समारोह भोपाल में आयोजित होने वाला था। लौह व्यक्तित्व पं. मिश्र की आज्ञा हुई — "अरजेंट ट्रन्क लगाओ। मैं बधाई देना चाहता हूँ अर्जुन को।" आज्ञा पालन कर तुरंत ट्रंक लगाया गया। कुछ समय बाद घंटी घनघनाई। श्री अर्जुनसिंह शपथ ग्रहण कर केरवा कोठी जा चुके थे। केरवा कोठी का नंबर ज्ञात न होने के कारण फोन पुनः नहीं लग पाया। इस बीच पंडितजी अपने अन्य कार्य में तल्लीन हो गये और आगे कोई वार्तालाप न हो सका।

हाँ, चलते-चलते उन्होंने इतना अवश्य कहा — "जब भी भोपाल जाओ, अर्जुनसिंह को यह संदेश अवश्य दो कि जबलपुर आकर उनसे अवश्य मिले।" यह संदेश सहर्ष मेरे द्वारा श्री अर्जुनसिंह के पास पहुँचाया गया। उन्होंने बड़ी विनम्रता से कहा— "जिस दिन से शपथ ग्रहण की है, उसी दिन से पंडितजी से मिलना चाहता हूँ, उनका आशीर्वाद लेना चाहता हूँ किंतु कुछ व्यस्तताओं के कारण विवशतायें आ जाती हैं। लेकिन समय तो निकालूँगा ही।"

समय अपनी गति से चलता रहा। आरोह-अवरोह आते रहे। प्रदेश में सन् 1990 में भाजपा की सरकार बन गई। माननीय श्री श्यामाचरण शुक्ल प्रतिपक्ष के नेता बने, श्री अर्जुनसिंह दिल्ली में केंद्रीय मंत्री थे साथ ही साथ मध्यप्रदेश काँग्रेस कमेटी (इ) के अध्यक्ष भी। किसी कार्यवश, एडवोकेट श्री शौकतउल्ला उस्मानी के साथ-दिल्ली गया तथा अध्यक्ष श्री अर्जुनसिंह से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मिलते ही उन्होंने कहा — "सुंदरलाल पटवा से डरोगे तो नहीं।" काँग्रेस के एक अनुशासन प्रिय एवं निडर सिपाही की तरह मैंने तुरंत उत्तर दिया। "बिल्कुल नहीं।" आदेशानुसार मैंने पंचायत चुनाव स्थागित कराने हेतु हाईकोर्ट में पिटीशन दायर कर दी, स्थागनादेश में विजयश्री पाई और पूरे मध्यप्रदेश में पंचायत चुनाव स्थगित हो गये, कालान्तर में भाजपा सरकार चुनाव करा ही नहीं पाई।

यदि उस समय सन् 1991 में पंचायत चुनाव हो गये होते तो ? निश्चित ही प्रतिक्रियावादी ताकतों की जड़ें गाँव-गाँव गहराई तक फैल जातीं। आज जो नक्शा प्रदेश का हमारे सम्मुख निर्मित हुआ है — वह शायद

न बन पाता। 1993 के चुनाव में गाँवों की जो उज्जवल तस्वीर हमारे सामने आई है, वह शायद नगरों की नहीं बन पाई।

मैं, माननीय श्री अर्जुनसिंह का हृदय से विशेष प्रशंसक हूँ, प्रशंसा करता हूँ उनकी जन-हितैषी भावनाओं की, उनकी शिक्षा के प्रति विशेष कृपा दृष्टि की, उनकी राष्ट्र के प्रति समर्पित जागरूकता की। आभारी रहूँगा उनका सदा। माननीय अर्जुनसिंहजी केन्द्र में सूचना एवं प्रसारण मंत्री के रूप में आसीन थे। मैंने छोटा सा निवेदन किया — "जबलपुर नगर व ग्रामीण अंचलों में नर्मदा नर्सरी व माहेश्वरी विद्या निकेतन के नाम से पाठशालाएँ चला रहा हूँ, लगभग 6-1/2 हजार बच्चे इन शालाओं में अध्ययन कर रहे हैं, शालाओं में फोन की अत्यंत आवश्यकता है।" निवेदन के तत्काल बाद केवल 15 दिन में दो-दो फोन एक साथ शालाओं में लग गये। शालेय-परिवार उनकी इस अनुकम्पा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

गुरु और शिष्य-श्रद्धा का ऐसा अनुपम उदाहरण मेरे संस्मरण में शायद मुझे कहीं देखने को नहीं मिला। पं. मिश्र पंचतत्वों में विलीन हो चुके थे,एक गहरा — आघात प्रदेश पर आ पड़ा था। इतनी व्यवस्तताओं के बावज़ूद भी श्री अर्जुनसिंह ऐसे प्रथम व्यक्ति थे जो मृतात्मा को अपनी आदरांजलि समर्पित करने सबसे पहले पं. मिश्र के पार्थिव अवशेष लेने विमानतल पहुँचे थे तथा अपने पूज्य गुरुवर के सभी अन्य कार्यक्रमों में सम्मिलित होकर अपने श्रद्धा सुमन गुरुचरणों में अर्पित किये थे।

नवीन मध्यप्रदेश के निर्माता, राजनीति, इतिहास, पुरातत्व, धर्म, दर्शन आदि विषयों के मर्मज्ञ, पं. मिश्र इस देश के अनूठे उपहार थे। अनेक उभरती प्रतिभाओं के साथ श्री अर्जुनसिंह को काँग्रेस का कर्मठ योगी बनाने का श्रेय भी उन्हें ही है। दूसरे शब्दों में उन्हें देश के उज्ज्वल इतिहास का निर्माता कहा जा सकता है। ऋणी हूँ इस आत्मा का और ऋणी रहूँगा जीवन भर। उनके निवास उत्तरायण में लगभग 07 वर्ष प्रति मंगलवार की रात्रि उनसे सत्संग करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सत्संग में उनकी विशद ज्ञान-गरिमा के कुछ कण ही बटोर सका। आज वे कण ही जीवन में प्रगति पथ के उन्नायक सिद्ध हो रहे हैं। पं. मिश्र ने अनेक प्रतिभाओं को राजनैतिक क्षितिज में स्थापित किया और उनमें से प्रथम पंक्ति पर पहुँचे श्री अर्जुनसिंह।

☐ *मुकुन्ददास माहेश्वरी— समाजसेवी- एडवोकेट - उद्योगपति।*

श्री अर्जुनसिंह इस युग की ज़रूरत

मंजर भोपाली

(विश्व प्रसिद्ध शायर)

इस युग में सच्चाई ज़हर पीती हुई और सलीब पर टँगी दिखाई देती है। इसके मुक़ाबले में झूठ आम जीवन में हर तरफ़ और सत्ता की मसनदों पर दिखाई देता है। यह मसला सिर्फ़ हिन्दुस्तान का ही नहीं बल्कि सारी दुनिया का मसला है। धर्म, जाति, भाषा और राज्यों के नाम पर अंग्रेज़ों के द्वारा एक - दूसरे को नफ़रत के अलाव पर झोंकने वाली नीतियाँ फल फूल रही हैं। इस साज़िश के शिकार हिन्दुस्तान में भी बड़ी संख्या में मौज़ूद हैं, जिन्होंने भाषा, धर्म, इलाक़ा और इस तरह की आड़ बनाकर इस देश में चारों तरफ़ नफ़रत का माहौल बना रखा है और धीरे- धीरे उनके हाथ सत्ता की कुर्सी के क़रीब पहुँच रहे हैं।

इधर चन्द वर्षों से साफ़-सुथरी विचारधारा रखने वाले ज़हन और फ़िरकापरस्तों के ख़िलाफ़ उठने वाली आवाज़ मुसलसल शिकस्त खा रही है। देश की समस्याएँ बढ़ती जा रही है। कभी राज्यों के नाम पर, कभी अलगाववाद के नाम पर, कभी भाषा के नाम पर और कभी धर्म के नाम पर हम देश की पवित्र ज़मीन पर नफ़रत के पौधे लगा रहे है। क्या कभी हमने सोचा है जिस माँ ने हमको जन्म दिया है उस माँ को हमने क्या दिया है? ये फ़िक्र बहुत कम लोगों को है।

अगर ऐसे वक़्त में कोई शख़्स सामने आता है, और देश को नफ़रत के पंजों से छुड़ाता है, तो वही हमारा सच्चा हमदर्द और ईश्वर है। अगर आप मुझसे पूछो तो हिन्दुस्तान में सियासत को काफ़ले की इमामत के लिये फिलहाल एक ही नाम नज़र आता है जिसमें तमाम विशषताएँ मौज़ूद हैं। जो बेहतरीन सियासतदाँ है, देश की समस्याओं के लिये, संजीदा, पिछड़ी जाति के लोगों की आवाज़ अल्पसंख्यकों के हक़ दिलाने और तहफ़फ़ुज का अहसास दिलाने और उनकी समस्याओं को हल करने, बहुसंख्यक और दीगर हिन्दुस्तानियों के बीच एकता के और इत्तेहाद के पुल का काम करने की विशषता है। वह नाम केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री कुँवर अर्जुनसिंह साहब का है। जिन्होंने मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री की हैसियत से प्रदेश की उन्नति के लिए अलग-अलग नीतियाँ तैयार कीं। पिछड़ी जातियों को उनका हक़ दिलाया। 20 सूत्रीय कार्यक्रम को बड़ी ख़ूबी से अमली जामा पहनाया। शिक्षा और बेरोज़गारी के मैदान में भी भरपूर कोशिशों के ज़रिये नये रास्ते खोले। लघु उद्योगों को भी हौसला अफ़ज़ाई की। बीड़ी पत्ता मज़दूरों को उनका हक़ दिलाया। भोपाल में एम.आई.सी गैस प्रभावित लोगों की मदद की और बेसहारा होने वाली महिलाओं के लिए सिलाई सेन्टर और दीगर वर्कशॉप केन्द्र-सरकार की मदद से शुरू कराये।

श्री अर्जुनसिंह ने प्रदेश के मुख्यमंत्री की हैसियत से बेहतरीन कार्य किया। उनके शासनकाल में राष्ट्रीय एकता और भाईचारे की प्रथा के चिराग रोशन रहे। उन्होंने फ़िरकापरस्ती के जज़्बात को भड़काने वाले लोगों के ख़िलाफ़ कठोर कार्रवाई की।

उनका प्रशासन चुस्त होने की वजह से कभी क़ानूनी ख़राबियाँ नही पैदा हुई। वह एक अच्छे मुख्यमंत्री साबित हुए। श्री सिंह ने मुख्यमंत्री के पद को एक नया गरिमामय सम्मान दिया। प्रदेश के अल्पसंख्यकों को इन्साफ़

श्री अर्जुनसिंह इस युग की ज़रूरत

मंजर भोपाली

(विश्व प्रसिद्ध शायर)

इस युग में सच्चाई ज़हर पीती हुई और सलीब पर टँगी दिखाई देती है। इसके मुक़ाबले में झूठ आम जीवन में हर तरफ़ और सत्ता की मसनदों पर दिखाई देता है। यह मसला सिर्फ़ हिन्दुस्तान का ही नहीं बल्कि सारी दुनिया का मसला है। धर्म, जाति, भाषा और राज्यों के नाम पर अंग्रेज़ों के द्वारा एक - दूसरे को नफ़रत के अलाव पर झोंकने वाली नीतियाँ फल फूल रही हैं। इस साज़िश के शिकार हिन्दुस्तान में भी बड़ी संख्या में मौज़ूद हैं, जिन्होंने भाषा, धर्म, इलाक़ा और इस तरह की आड़ बनाकर इस देश में चारों तरफ़ नफ़रत का माहौल बना रखा है और धीरे- धीरे उनके हाथ सत्ता की कुर्सी के क़रीब पहुँच रहे हैं।

इधर चन्द वर्षों से साफ़-सुथरी विचारधारा रखने वाले ज़हन और फ़िरकापरस्तों के खिलाफ़ उठने वाली आवाज़ मुसलसल शिकस्त खा रही है। देश की समस्याएँ बढ़ती जा रही है। कभी राज्यों के नाम पर, कभी अलगाववाद के नाम पर, कभी भाषा के नाम पर और कभी धर्म के नाम पर हम देश की पवित्र ज़मीन पर नफ़रत के पौधे लगा रहे है। क्या कभी हमने सोचा है जिस माँ ने हमको जन्म दिया है उस माँ को हमने क्या दिया है? ये फ़िक्र बहुत कम लोगों को है।

अगर ऐसे वक़्त में कोई शख़्स सामने आता है, और देश को नफ़रत के पंजों से छुड़ाता है, तो वही हमारा सच्चा हमदर्द और ईश्वर है। अगर आप मुझसे पूछो तो हिन्दुस्तान में सियासत को काफ़ले की इमामत के लिये फिलहाल एक ही नाम नज़र आता है जिसमें तमाम विशषताएँ मौज़ूद हैं। जो बेहतरीन सियासतदाँ है, देश की समस्याओं के लिये, संजीदा, पिछड़ी जाति के लोगों की आवाज़ अल्पसंख्यकों के हक़ दिलाने और तहफ़्फ़ुज का अहसास दिलाने और उनकी समस्याओं को हल करने, बहुसंख्यक और दीगर हिन्दुस्तानियों के बीच एकता के और इत्तेहाद के पुल का काम करने की विशषता है। वह नाम केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री कुँवर अर्जुनसिंह साहब का है। जिन्होंने मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री की हैसियत से प्रदेश की उन्नति के लिए अलग-अलग नीतियाँ तैयार कीं। पिछड़ी जातियों को उनका हक़ दिलाया। 20 सूत्रीय कार्यक्रम को बड़ी ख़ूबी से अमली जामा पहनाया। शिक्षा और बेरोज़गारी के मैदान में भी भरपूर कोशिशों के ज़रिये नये रास्ते खोले। लघु उद्योगों को भी हौसला अफ़ज़ाई की। बीड़ी पत्ता मज़दूरों को उनका हक़ दिलाया। भोपाल में एम.आई.सी गैस प्रभावित लोगों की मदद की और बेसहारा होने वाली महिलाओं के लिए सिलाई सेन्टर और दीगर वर्कशॉप केन्द्र-सरकार की मदद से शुरू कराये।

श्री अर्जुनसिंह ने प्रदेश के मुख्यमंत्री की हैसियत से वेहतरीन कार्य किया। उनके शासनकाल में राष्ट्रीय एकता और भाईचारे की प्रथा के चिराग रोशन रहे। उन्होंने फ़िरकापरस्ती के जज़्बात को भड़काने वाले लोगों के ख़िलाफ़ कठोर कार्रवाई की।

उनका प्रशासन चुस्त होने की वजह से कभी क़ानूनी ख़राबियाँ नहीं पैदा हुईं। वह एक अच्छे मुख्यमंत्री साबित हुए। श्री सिंह ने मुख्यमंत्री के पद को एक नया गरिमामय सम्मान दिया। प्रदेश के अल्पसंख्यकों को इन्साफ़

और हिफ़ाज़त का माहौल दिया। सत्ता में अल्पसंख्यकों को हिस्सेदार बनाया और उनके लिये नुमाया काम भी अंज़ाम दिये। भोपाल में डॉक्टर इक़बाल की यादगार के तौर पर इक़बाल मैदान की तामीर कराई। उर्दू के साहित्यकारों के लिए अल्लामा इक़बाल के नाम से एक लाख रूपये के एवार्ड की घोषणा की। जंगे आज़ादी के हीरो और ज़िला वतन हुकूमते हिन्द के पहले प्रधानमंत्री बरकतउल्ला भोपाली के नाम पर बरकतउल्ला भवन के नाम से एक यादगार कायम की। साथ ही भोपाल यूनिवर्सिटी को बरकतउल्ला यूनिवर्सिटी का नाम दिया।

उर्दू भाषा को सम्मान देते हुए मध्यप्रदेश के बजट में बढ़ोत्तरी की। स्कूलों मे उर्दू शिक्षा विकलांग हो चुकी थी, जिसे पुनः प्रारम्भ किया। मसज़िद कमेटी भोपाल के कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि की। अन्तर्राष्ट्रीय तबलीग़ी इज़्तेमा और एशिया के अज़ीम मसज़िद ताजुल मसज़िद की ज़मीन के उलझे हुए मामलों को सुलझा कर इस्लाम धर्म के मानने वालों की भावनाओं की कद्र की।

कुँवर अर्जुनसिंहजी के शासनकाल में आवासहीन ग़रीब झुग्गीवासियों को ज़मीन के पट्टे दिए और उनको एक बत्ती कनेक्शन देकर उनके जीवन को रोशनी से नवाज़ा ताकि वे निर्भीक जीवन व्यतीत कर सकें। उनके कामों की सूची इतनी बड़ी है कि अगर उसका ज़िक्र किया जाए तो कई किताबों की ज़रूरत पड़े। श्री अर्जुनसिंह ने पंजाब के राज्यपाल की हैसियत से पंजाब को न सिर्फ़ शांत बनाने की कोशिश की बल्कि वहाँ जनता को विश्वास दिया। उन्हीं की कोशिशों के परिणाम में राजीव-लोंगोवाल संधि सामने आई।

मध्यप्रदेश काँग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने काँग्रेस पार्टी को हर स्तर पर मज़बूत करके उसे भाजपा की हुकूमत के मुकाबले चट्टान की तरह खड़ा किया और आम चुनाव में राज्य से 27 सांसदों को जिताकर भाजपा के शिविर में हलचल मचा दी। यही वजह है कि आज काँग्रेस की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में उनके व्यक्तित्व को चुनौती देने वाला कोई नज़र नहीं आता।

केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री के रूप में भी उनका कार्य क़ाबिले ज़िक्र है, वे जहाँ भी रहे देश की जनता के लिए ज़बरदस्त कार्य किए।

भारत गंगा-जमनी तहज़ीब का देश है, संस्कृति और साहित्य की उन्नति के लिए कलाकारों तथा कला प्रेमियों के लिए भारत भवन जैसा प्रगतिशील केन्द्र निर्मित कराया। उनके इस कारनामें की वजह से मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल भारत के ही नहीं बल्कि विश्व के कलाकारों का केन्द्र बनी हुई है। नाटक, संगीत, शायरी, चित्रकला, मूर्तिकार, नृत्य, लोक-कलाओं के ख्याति प्राप्त कलाकार यहाँ शिक्षा देते भी हैं तथा शिक्षा ग्रहण भी करते हैं। भारत भवन को राष्ट्रीय एकता का प्रतीक कहा जाता है।

अर्जुनसिंहजी को पहली बार मेरी आँखों ने 14-15 वर्ष की आयु में देखा था उस समय वह मध्यप्रदेश शासन में मंत्री थे। कुछ धुंधला सा याद पड़ता है, प्राथमिक शाला में पढ़ने वाले एक विद्यार्थी की यह मुलाक़ात उन्हें तो क्या याद रहती मगर उनके व्यक्तित्व ने मुझे जो प्रभावित किया वो मेरी यादों के एलबम में सुरक्षित है। धीरे-धीरे श्री अर्जुनसिंह राजनीति के क्षितिज पर एक सितारा बनकर चमकने लगे। मेरी यह इच्छा हमेशा मुझे उकसाती रही कि मैं उन्हें किसी तरह देखूँ और उनके साथ कोई तस्वीर खिचवाऊँ। इसी मध्य शायरी के शौक ने मुझे एक नई पहचान दी। खुदा की महरबानी से मंज़र भोपाली अपने शहर भोपाल की वादियों से निकलकर पहले देश की जनता तक पहुँचा और फिर भारतवासियों और भोपाल के लोगों की हौसला अफ़जाई के साथ ही माता-पिता की दुआओं ने इस ज़र्रे को चमकाकर सारी उर्दू दुनिया तक पहुँचाया। इस शेरी यात्रा के दौरान सियासी दिलचस्पी ने मुझे सियासत की तरफ़ झुकाया। मैं काँग्रेस के जलसों में अपनी शायरी सुनाता रहा। डॉ. शंकर दयाल शर्मा, इन्दिराजी, राजीवजी से लेकर काँग्रेस के लगभग सभी शायरी से मोहब्बत करने वाले काँग्रेसी नेताओं ने

मेरी हौसला अफ़जाई की। इसी दौरान श्री अर्जुनसिंह से मुलाक़ातें हुई। उन्होंने जब भी मेरे शेर सुने बहुत पसंद किये। मुलाक़ातों का यह सिलसिला मुझे याद आता है दिल्ली के मुशायरों से शुरू हुआ और मैं अर्जुनसिंहजी के क़रीब आता रहा। चुनाव के दरमियान उनका मेरा काफ़ी साथ रहा और इसी बीच मैंने उन्हें काफ़ी क़रीब से देखा और उनको समझा। इसी दौरान जब मेरी ज़िन्दगी में एक अहमतरीन मोड़ आया और मैं अपनी शादी का कार्ड लेकर अर्जुनसिंहजी के पास गया, उस वक़्त अर्जुनसिंहजी मध्यप्रदेश काँग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे उनके पास समय बहुत कम था मगर मैंने जब उनसे गुज़ारिश की कि वह इस तकरीब में शामिल हों तो मेरी इज़्ज़त अफ़जाई होगी, उन्होंने कार्ड पढ़कर मुस्कुराते हुए कहा कि जिस तरह तुम अपनी शायरी में आकाश से चाँद सितारे तोड़कर उन्हें सजाते हो इसी तरह भोपाल से इतनी दूर बहराईच में शादी कर रहे हो, फिर अपने सचिव को बुलाकर कहा कि मंज़र की शादी में ज़रूर शिरकत करना है इस दिन के जो भी कार्यक्रम हों वह केंसिल कर दो। 26 फरवरी 90 को वलीमे की दावत हुई, अर्जुनसिंहजी ने मुझे 11.00 बजे दिन का समय दिया था मगर अचानक वर्षा होने के कारण कार्यक्रम को एक घंटे आगे बढ़ाना पड़ा। मैंने उनसे फोन पर निवेदन किया कि वह एक घंटे के लिये मुझ पर मेहरबानी और कर दें तो कृपा होगी। 12.00 बजे दिन में अर्जुनसिंहजी मेरे सरपरस्त की तरह बिना तक़ल्लुफ़ मुझे और मेरी धर्मपत्नी को आशीर्वाद देने के लिये तशरीफ लाये। लगभग डेढ़ घंटा मेरे परिवार के साथ रहे उस वक़्त मुझे यह सब सपना लग रहा था, ऐसा लग रहा था कि इस महान् व्यक्तित्व के आने से सारे संसार की खुशियाँ सिमटकर हमारे क़दमों में आ गई। मैं सोच रहा था कि वह शख़्सियत जिसके पास समय का अभाव रहता है मुझे सम्मान दे रही है तथा मेरी हौसला अफ़जाई कर रही है। जाते वक़्त दुआएँ और आशीर्वाद देते हुए श्री अर्जुनसिंह ने कहा था कि खुदा तुम दोनों की ज़िंदगी को फूलों से भर दे और तुम्हारा जीवन खुशी से भरा रहे। बचपन का यह सपना पूरा होते हुये मैं देख रहा था और मुझे ऐसा लग रहा था कि आज जीवन की बहुमूल्य चीज़ प्राप्त हो गई।

इन सुंदर लम्हात के बाद भी देश के विभिन्न हिस्सों में मुशायरों, सियासी जलसों और सम्मेलनों में मुलाक़ातें होती रहीं। हर बार उन्होंने बड़े प्यार से मेरी हौसला अफ़जाई की और जब भी मिले उन्होंने कहा— "जीवन को जीवन की तरह जीओ। हमेशा सच्चाई के रास्ते पर चलो और अपनी शायरी के इस लहजे को बरक़रार रखो।"

1991 के सितम्बर में श्री अर्जुनसिंह ने अपने विभाग की ओर से मुझे 2200/- रुपये प्रतिमाह के वजीफ़े से नवाज़ा, यह भी उनके साहित्यिक प्रेमी होने का सच्चा नमूना है। अमेरिका के सफ़र पर जाते वक़्त भी उनकी मदद और दुआएँ मेरे हम सफ़र रहीं। और उसके बाद अनेकों बार श्री अर्जुनसिंह से दिल्ली और भोपाल में मिलता रहा और मैंने महसूस किया कि मुझे एक बेहतरीन सियासी रहनुमा और अख़लाक़ से भरपूर समन्दर जैसा दिल रखने वाली अज़ीम शख़्सियत की सरपरस्ती हासिल है। आज जब मुझे उस अज़ीम शख़्सियत के बारे में लिखने को कहा तो मेरे पास अल्फ़ाज़ कम पड़ गये और क़लम ने मेरा साथ छोड़ दिया। मेरी सोच मुझसे बिछुड़ गई और मैं अपने आपको बहुत बौना महसूस करने लगा। आख़िर में इस दुआ के साथ अपना मजमून ख़त्म करता हूँ :

उम्र तेरी खुदा दराज़ करे,
तुझ पे हिन्दुस्तान नाज़ करे।

☐ *मंजर भोपाली— विश्व प्रसिद्ध शायर।*

एक अलौकिक व्यक्तित्व के धनी श्री अर्जुनसिंह

बी.एन. श्रीवास्तव

(पूर्व शिक्षा अधिकारी)

लगभग तीस वर्ष पूर्व की बात है। भोपाल में मेरे एक मित्र ने, जो श्री अर्जुनसिंह की जन्मस्थली में रह चुका था, एक लाल रंग की खुली कार इंगित करते हुए कुछ उत्तेजित स्वर में कहा, "देखो देखो, अर्जुनसिंह जी जा रहे हैं। क्या व्यक्तित्व पाया है। बिल्कुल प्रिंस जैसे लगते हैं, प्रिंस।" तब तक गाड़ी निकल चुकी थी मैं उन्हें देख न पाया। मित्र के शब्दों से अधिक प्रभावित न हुआ। स्वतंत्रता के बाद संज्ञा-प्रिंस की गरिमा घटने लगी थी। प्रतिक्रिया अनुकूल न होकर कुछ प्रतिकूल होती थी।

तथाकथित प्रिंस से प्रथम साक्षात्कार सन् बहत्तर में हुआ। तब वह शिक्षामंत्री थे और मैं जिला शिक्षा अधिकारी बन सतना आया ही था। वह सीधी प्रवास से लौटते हुए सतना होकर भोपाल जा रहे थे। उन्हें भेजने आए प्रशंसकों के कारण रेल्वे प्लेटफार्म पर चहल-पहल सामान्य से बहुत अधिक थी। उस भीड़ में उनकी अलग से अपनी पहचान थी – एक तेज़पूर्ण, आकर्षक, प्रभावशाली चेहरा। मित्र की बात याद आई – लगते तो प्रिंस ही हैं।

प्रिंस हैं तो लोगों से इतना घुल-मिल क्यों रहे है? लोगों को इतना समीप क्यों आने दे रहे हैं? प्रिंस तो ऐसा नहीं होने देता? नहीं। यह कोई सामन्ती राजकुमार नहीं है। परमात्मा ने रूप राजकुमार का भले ही दिया हो पर व्यवहार पूर्णतः आत्मीय स्वजन जैसा - समाज से कटा हुआ नहीं, सबसे जुड़ा हुआ।

शिक्षक संघों के नेतागण अवसर खोज अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत करने में जुटे थे। उनमें से अनेक के सम्बन्ध में जनधारणा अच्छी नहीं थी। वे एक-दूसरे के विरोधी थे और कतिपय के विरुद्ध गम्भीर शिकायतें भी थीं। एकान्त मिलने पर प्रतीक्षालय में मुझे बुलाया गया। पहुँचते ही वह बोले, "बैठिए, डी.ई.ओ. साहब।" मेरे लिए यह अप्रत्याशित था। कहाँ मंत्री, कहाँ कर्मचारी। मत पुष्ट हुआ कि राजकुमार नहीं, अपनों में एक हैं। झिझकते हुए बैठ जाने पर उन्होंने प्रश्न किया, "दोषी को निलंबित क्यों नहीं करते?" मैंने उत्तर दिया, "सर जाँच पश्चात् कार्रवाई तर्कसंगत होगी।" मेरा तर्क मान्य करते हुए उन्होंने निर्देश दिया, "ठीक है। जाँच पश्चात् उचित कार्रवाई करें।"

भेंट के पूर्व कुछ लोग जिन्हें कुँवर साहब का, इस क्षेत्र में ही नहीं अन्यत्र भी उन्हें स्नेह और सम्मानवश कुँवर साहब कहकर ही सम्बोधित किया जाता है, समीपी कहा जाता था। मुझे बताते रहे थे कि दौड़-धूप करने वाले शिक्षकों की बड़ी पहुँच है। उन्होंने मुझे मार्गदर्शन भी दिया था कि निलम्बित किया जाय तो किसे। उन्होंने डराया भी कि वैसा न होने पर कुँवर साहब अप्रसन्न हो सकते हैं। परन्तु मेरे द्वारा प्रक्रिया का उल्लेख किये जाने पर स्वीकृति मिली। प्रिंस का हुक्म सो हुक्म पर वह तो नियमित कार्रवाई के हामी हैं। वह प्रिंस हो ही नहीं सकते।

मेरे सम्भागीय अधिकारी क्षुब्ध थे कि मैं सामन्जस्य स्थापित न कर विभाग के लिए समस्याएँ खड़ी करता हूँ। मुझे पद से हटा दिया जाना चाहिए था परन्तु संघर्षमय जीवन के अनुभवी कुँवर साहब मुझे अपने गृह ज़िले सीधी ले गये।

तब कुँवर साहब का कार्यक्षेत्र कम विस्तृत न था फिर भी वह सीधी भ्रमण हेतु पर्याप्त समय निकाल लेते थे। भ्रमण में वह आदिवासी अंचल को प्राथमिकता देते थे। सिंगरौली से सरई होते हुए कुसमी के घनघोर वन मार्ग का तीन दिवसीय दौरा अविस्मरणीय रहा। उस क्षेत्र में वनवासी न्यूनतम स्तर का अभावग्रस्त जीवन-यापन किस प्रकार करता है, मेरे लिए प्रत्यक्ष अनुभव का प्रथम अवसर था। झुण्ड के झुण्ड आदिवासी कुँवर साहब को भेंट करने आते। उनकी आँखों में आशा की नई किरण झलकती दिखाई देती। अब उनकी समस्याओं का निदान होगा, विषमताएँ कम होंगी, उनके हृदय में विश्वास पैठता गया और कुँवर साहब ने उस दिशा में काफ़ी कुछ किया भी।

सरई के समीप घने जंगल में उबड़-खाबड़ दुर्गम मार्ग पर जीप जवाब देने लगी। क़ाफ़िला तीन जीप का था। पहले एक बिगड़ी। अमला दो में सवार हुआ। थोड़ा आगे बढ़ने पर दूसरी भी बेकार हो गयी। अब सब एक में न बन सकते थे। किसी तरह मैं कुँवर साहब वाली जीप में समा गया। तत्कालीन जिलाध्यक्ष श्री जोगी ड्राइव कर रहे थे। गाड़ी झटके देने लगी। लगा कि वह भी बेकाम होने वाली है। कुँवर साहब बोले, "जोगीजी, लाइये मैं चलाता हूँ।" कुँवर साहब ने स्टीयरिंग सम्भाला, गियर बदला और गाड़ी आगे चल पड़ी। "गाड़ी कौन से गियर में कब डालना है, ध्यान रखना चाहिए। गियर होता किसलिये है।" — कुँवर साहब ने टीप दी। बात साधारण लगती है पर है बहुत महत्वपूर्ण। कुँवर साहब जीवन की गाड़ी में सही समय पर सही गियर डालने में सिद्धहस्त हैं।

उसी दौरे में हम लोग एक प्राथमिक शाला के समीप से गुज़रे। वहाँ पदस्थ शिक्षक स्वागत द्वार सजाने में आदिवासियों को सहयोग दे रहे थे। कुँवर साहब रुक गये। एक आदिवासी अभिभावक ने शिकायत की कि शिक्षक ने उसके पुत्र का नाम शाला पंजी से ख़ारिज कर दिया था और पुनः प्रवेश नहीं दे रहे थे। शिक्षक ने स्पष्टीकरण दिया कि नाम अनुपस्थित रहने के कारण काटा गया, वह नियमित रूप से शाला न आने का आदी था। कुँवर साहब ने निर्देश दिया कि छात्र को प्रवेश दिया जाय और अभिभावक को समझाया कि वह अपने पुत्र की शाला में उपस्थिति का ध्यान रखें। कुछ आगे जाने पर उन्होंने टिप्पणी की कि "बड़ी कठिनाई है। शर्ट-पैंटधारी यह शहरी शिक्षक आदिवासी परिस्थितियाँ समझ नहीं पाते।" पिछड़े क्षेत्र में किस मानसिकता के कार्यकर्ता की आवश्यकता है, उसे किस समर्पित भावना से काम करना चाहिए, कुँवर साहब को व्यावहारिक अनुभव है। उनका जन्म ही आदिवासी जिले में हुआ। आदिवासियों के प्रति उनका सतत् सेवा भाव अगाध है और पिछड़े क्षेत्रों में उनकी यह विशेषता उन्हें अत्यधिक लोकप्रिय बनाये हैं और शहर में भी उनका सानी नहीं है।

कुँवर साहब के गृह ग्राम शिवराजपुर से लगा एक ग्राम है हर्दिहा। यह गाँव दो टोलों में बसा है — उत्तरी और दक्षिणी। ग्राम शाला उत्तरी टोले में लगती थी। शाला भवन बनने के लिए शासकीय अनुदान स्वीकृत हुआ। उसके पहले शाला एक ठाकुर साहब के घर लगती थी। दक्षिणी टोला वाले बच्चों को वहीं जाना पड़ता था। उन्हें शिकायत थी कि उनके साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार होता है। दक्षिणी टोला वालों ने दोनों टोलों के मध्य भवन निर्माण प्रस्तावित किया। विवाद उठ खड़ा हुआ। ठाकुर साहब का कहना था कि वर्षों शाला निःशुल्क उनके घर में लगती रही और अब जब शासकीय भवन बनने का प्रावधान हुआ तो दक्षिणी टोला वाले शाला उत्तरी टोला से हटाने की बात करते हैं — यह नहीं होने दिया जायगा। दोनों पक्ष कुँवर साहब के लिये समान थे। किसे ख़ुश करें — किसे नाराज़। स्थल चयन करने का दायित्व मुझ पर डाल दिया गया।

मैं हर्दिहा गया। वहाँ अभिभावक बड़ी संख्या में आये। उत्तरी टोला में साईट उपयुक्त न था। मुझे कहना पड़ा कि भवन कहीं और बनना चाहिए। ठाकुर साहब बिफर गए और बोले कि मैं दक्षिणी टोला वालों का पक्ष

ले रहा था। उन्होंने क्रोधित हो कहा कि यदि स्कूल हटा तो फर्शे-भाले उठ जायँगे, भले ही दो चार मर जाएँ। कुछ ने हाँ में हाँ मिलाई। वे अपने आपको अत्यधिक अपमानित महसूस कर रहे थे। मेरे मुँह से निकल गया, "आप लोग गिरफ़्तार हो जायगे, सज़ा होगी।" गनीमत रही कि बात बढ़ी नहीं। ठाकुर साहब ने मात्र इतना कहा, "देते रहिए आप अपनी रिपोर्ट, हम कुँवर साहब से सीधी बात कर लेंगे। वे कुँवर साहब के पास गए। उन्होंने शिकायत कुछ इस प्रकार की, "अच्छा डी.ई.ओ. भेजा आपने। वह हमें गिरफ़्तार कराने की धमकी देता है। कहाँ से ले आए आप यह जंगली?" मुस्कुराते हुए कुँवर साहब बोले, "अपने जिले में जंगल बहुत है, एक जंगली और सही। पर बात तो बताओ।" उन्होंने शाला भवन उत्तरी टोला में ही बनवाये जाने की जिद्द दुहरायी। कुँवर साहब ने कहा, "मैं देख लूँगा।" अलग से उन्होंने मुझसे पूछा – "विवाद का हल क्या हो सकता है?" मैंने विनम्र सुझाव दिया, "श्रीमान्, शाला में तीन अध्यापक कार्यरत् है जो छात्र संख्या के अनुपात में अधिक हैं। दक्षिण टोला वालों ने एक भवन बना रखा है। एक अध्यापक वहाँ जाकर पठन-पाठन का कार्य चला सकता है। उत्तरी टोला वाले जहाँ चाहे, भवन बनवाते रहें। सुझाव मान्य हुआ। उत्तरी टोला में भवन निर्माण झमेले में पड़ा रहा। यह जंगली सीधी में बना रहा। समयानुसार दक्षिणी टोला की शाला स्वतंत्र स्वीकृत हो गई।

कौन नहीं चाहता कि बड़ों के साथ उसके चित्र खिंचे। मैंने भी यह चाहा पर संकोच और सम्मानवश अवसर न पा सका। 1974-75 में सिंगरौली केन्द्रीय स्कूल के उद्घाटन समारोह में कुँवर साहब मुख्य अतिथि थे। बाद में स्टाफ सहित छायांकन की व्यवस्था पृथक् से थी। केन्द्रीय स्कूल के प्राचार्य ने मुझे महत्व न दिया। कुँवर साहब ने आभास करते हुए कहा, "डी.ई.ओ. साहब कहाँ हैं?" प्राचार्य ने मुझे ग्रुप में स्थान दिया और स्मृति के लिए एकमात्र चित्र उपलब्ध हो गया।

एक-दूसरे के प्रति सद्भावपूर्ण आदर हेतु कुँवर साहब पहल करते हैं। किसी के मन की बात परखने में उनकी दृष्टि पैनी है।

सीधीवासी स्वर्गीय श्री चन्द्रप्रताप तिवारी राजनीति के क्षेत्र में कुँवर साहब के प्रतिद्वन्द्वी थे। एक ही ज़िले से दोनों केबिनेट मंत्री थे। ऐसी स्थिति में शासकीय कर्मचारियों का शक का शिकार बनना सामान्य बात है। सीधी में मेरा पदांकन कुँवर साहब ने चाहा था इसलिये मुझे उनका आदमी माना गया। वास्तविकता यह रही कि मैं एक अधीनस्थ कर्मचारी मात्र था। इस आरोप से बचने के लिए ही कि वे अपने आदमियों को प्रश्रय देते हैं, वह एक अपरिचित को सीधी लाए। उन्हें योग्य परिचित की कमी न थी परन्तु उन्होंने प्रशासनिक तटस्थता बरती। कुँवर साहब ने भूले बिसरे ऐसा कुछ करने का संकेत नहीं दिया जो आदरणीय तिवारी जी को क्षुब्ध होने का अवसर दे। मैंने भी तटस्थ रहने का हर सम्भव प्रयास किया पर श्री तिवारी जी को संतुष्ट न कर पाया – गुमराह करने वालों ने मेरी पीठ पर बिल्ला जो चिपका दिया था। पूर्वाग्रहों से निजात पाना अच्छों-अच्छों के लिए कठिन है। श्री तिवारी की दृष्टि में कुँवर साहब सामंतवादी रहे जबकि तथ्य कुछ और ही थे। परिणाम, मेरे संदर्भ में, वही हुआ जो होना था। कुँवर साहब के शिक्षामंत्री न रहते ही मेरा स्थानान्तरण अन्यत्र करा दिया। ऐसी थी मानसिकता पंडित चन्द्रप्रताप तिवारी की।

लोग इसे दो पाटों के बीच पिसना कह सकते हैं परन्तु वास्तविकता यह है कि कुँवर साहब पाट थे ही नहीं मुझे एक पाट ने ही ध्वस्त किया था।

सन् 80 में मेरा पदांकन सीधी में पुनः हुआ। कुँवर साहब मुख्यमंत्री बने। सीधी वासियों का मनोबल बढ़ा। अनेक ने अपेक्षा की कि उनके मन मुताबिक काम हो। अपने स्थानान्तरण हेतु मैंने कुँवर साहब से निवेदन किया।

उन्होंने पूछा, "बात क्या है?" मैंने स्थिति स्पष्ट की कि अनेक की आकांक्षा पूर्ति हेतु अनियमित कार्रवाई करना मेरे बूते के बाहर है। मुझे अपनी क्षति होने की आशंका है। कुँवर साहब ने निर्देश दिया, "जो ठीक हो, वही करो।"

दूसरे दिन कुँवर साहब के पुत्र और दामाद ने व्यक्तिगत रूप से आश्वस्त किया कि प्रशासन में कोई दखलअन्दाज़ी न देगा और मैं निर्भीकतापूर्वक कार्य करूँ। स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि कुँवर साहब इतने सक्रिय हो अपने निकटतम परिवारजन तक को ऐसा संकेत देंगे कि प्रशासन से दूर रहें। जन प्रतिनिधियों से मन मतान्तर हुआ, अनेक ने धमकाया भी पर कुँवर साहब ने जाँच करने कराने के सिवाय ग़लत कार्य करने को कभी नहीं कहा। निरंतर सात वर्ष तक सीधी में ही पदस्थ रहा।

छोटे से छोटे को, यदि वह सत्य मार्ग पर है तो, कुँवर साहब प्रोत्साहन देने में कोताही नहीं बरतते। वह कर्त्तव्य को परिचय की अपेक्षा अधिक महत्व देते हैं।

बीस वर्ष की सम्पर्क अवधि में कुँवर साहब ने व्यक्तिगत रूप से मुझसे लगभग बीस वाक्य में ही अपना मन्तव्य व्यक्त किया। वह मितभाषी हैं परन्तु मौन की भाषा में पारंगत। उनके शब्द स्मृतिपटल पर अमिट हैं – प्रतिकूल परिस्थितियों में संघर्ष का सम्बल।

जन्म से सब समान हैं परन्तु अनुरूप नहीं। जन्म से ही प्रत्येक को प्रकृति एक प्रभामंडल प्रदान करती है। उस मंडल की प्रबलता क्षीणता के अनुपात में देश, काल, पृष्ठभूमि अनुसार व्यक्तित्व का विकास होता है। यह मंडल ईश्वरीय देन है। इस संदर्भ में श्री अर्जुनसिंह का प्रभामंडल चुम्बकीय है, अति प्रबल है। मत भिन्न हो सकते हैं परन्तु एक बात में सभी सहमत प्रतीत होते हैं कि वह हैं एक बड़े आदमी।

☐ *बी.एन श्रीवास्तव— पूर्व शिक्षा अधिकारी।*

कुछ आत्मीय उद्‌गार

मोहतरम अर्जुनसिंह जी साहब ने अपनी विज़ारते तालीम के ज़माने में जबकि क़ल्मदाने विज़ारत उनके पास था उन्होंने नाक़ाबिले फ़रामोश और तसल्ली बख्श इकदाम (कार्य) किए। मुझे जाती तजुर्बा है के उन्होंने मेरी सिफ़ारिश ज़ाइज कामों में ज़रूर कुबूल फरमाई और मेरी फ़ज़ीराई की और अब विज़ारते आला के ओहदे पर मुतमकिन (बैठकर) होकर मौसूफ़ ने मध्यप्रदेश के सूबे के लिए जो तरक़्क़ियाती और हरनुमायाना कारहाएनुमायाँ अंज़ाम दिए हैं उन्हें झुठलाया नहीं जा सकता है जो अज़हरे मिनसशम्स की तफ़सील है।

—हज़रत कैफ़ भोपाली
(उर्दू शायर)

श्री अर्जुनसिंह से अनेक बार घनिष्ठ संपर्क हुआ और विस्तृत चर्चा होती रही है। कुलपति के रूप में काम करते हुए प्रायः मुझे उनसे मिलना पड़ता और अनेक बार दूरभाष पर वार्तालाप होता रहता था। उस समय के सम्पर्क से मुझे लगा था कि वे स्वानुशासित, वाक्संयमी, गुणों की क़द्र करने वाले, शालीन और कल्पनाशील शिक्षा मंत्री थे। शिक्षा के क्षेत्र में उस समय उन्होंने बहुत कुछ किया। श्री अर्जुन सिंह ने शिक्षा मंत्री के रूप में शिक्षा-विस्तार के स्थान पर शिक्षा को सुगठित, व्यवस्थित एवं गुणात्मक बनाना चाहा और बहुत कुछ इस दिशा में कार्य किया। मैं नहीं जातना कि अध्यापक चयन और नियुक्तियों के प्रसंग में कभी भी उन्होंने चयन समितियों पर कोई दबाव डाला हो। मेरे साथ हुई बातचीत में उन्होंने एक बार स्पष्ट कहा था कि – "मैं चाहता हूँ कि विद्वान-बौद्धिक वर्ग को शिक्षा के प्रबंध और व्यवस्था-कार्य में भी हाथ बँटाना चाहिये।"

—डॉ. भागीरथ मिश्र
(साहित्य मर्मज्ञ)

..... मिनिस्ट्री की इज़्ज़त श्री अर्जुन सिंह से है, मिनिस्ट्री उनके लिए किसी ख़ास इज़्ज़त का सबब नहीं; बल्कि आवामी मुहब्बत और अक़ीदत उनकी इज़्ज़त का सबब है, जिसे कोई नहीं छीन सकता। उनके मुतअल्लिक जितना भी अज़हार अक़ीदत किया जाये, वह कम है।

—शेरी भोपाली
(उर्दू शायर)

..... स्वभाव और बुद्धि से श्री अर्जुनसिंह एक 'स्कालर' हैं, जो कि अनचाहे राजनीति के क्षेत्र में आ गए है। फिर भी विधानसभा के निर्दलीय सदस्य के रूप में, प्रतिपक्ष के नेता के रूप में, मंत्री के रूप में तथा मुख्यमंत्री के रूप में, राज्य की छवि सँवारने में उनका योगदान, स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। वे एक ऐसे राजनीतिज्ञ हैं, जो

न केवल राज्य की समस्याओं की बारीक़ियों से पूर्णतः परिचित हैं, वरन् जिन्होंने राज्य की राजनीतिक गतिविधियों में सदैव अपनी सही भूमिका अदा की है।

—डॉ. रामायणप्रसाद
(अवकाश प्राप्त अधिकारी)

सामाजिक न्याय की दिशा में उनकी पहल ठीक उसी प्रकार रही है जिस प्रकार अमेरिका के भूतपूर्व यशस्वी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन की। गहन विरोध, गृहयुद्ध और आलोचना की चिन्ता किये बगैर लिंकन ने जो साहसिक क़दम गुलामी की प्रथा को समाप्त करने की दिशा में उठाया ठीक उसी प्रकार श्री अर्जुनसिंह ने हरिजन, आदिवासियों के उत्थान की दिशा मे किया है। उन्हें अपनी आलोचना का किंचित् भी भय नहीं। उनकी शैली लिंकन शैली है। बीसवीं सदी के श्रेष्ठतम समझे जाने वाले राजनीतिज्ञ चर्चिल की वाक्पटुता, कार्यशैली और दूरदृष्टि को सभी जानते हैं। श्री अर्जुनसिंह में सौ फ़ीसदी चर्चिल का गुण मौजूद है। सही व्यक्ति और सही आस्था श्री अर्जुनसिंह का चारित्रिक गुण है। कुसमय में इन्दिरा गाँधी का अनेक बड़े राजनेताओं ने साथ छोड़ दिया था और प्रायवेट कक्षों में वे श्रीमती इन्दिरा गाँधी की आलोचना करने लगे थे लेकिन श्री अर्जुनसिंह ने व्यक्तित्व की महान, कुशल राजनैतिक, देश की पीड़ा और उसकी अंतरात्मा को समझने वाली श्रीमती इन्दिरा गाँधी का साथ नहीं छोड़ा क्योंकि वे जानते थे कि देश का उत्कर्ष, उसकी प्रतिष्ठा और उसकी प्रगति को आज की विषम परिस्थितियों में एक सही और ठोस धरातल कोई प्रदान कर सकता है तो वह है श्रीमती इन्दिरा गाँधी और उनका परम्परागत चारित्रिक वैभव। उन्होंने 'कुसमय' में साथी बनने की अपनी भूमिका को भविष्य में सत्ता प्राप्ति का विनियोग शायद ही समझा हो बल्कि उनका दर्शन राजनैतिक जीवन में कर्म और आचरण की पवित्रता का उदाहरण है।

—विजय के. तिवारी
(समाजसेवी, लेखक)

श्री अर्जुनसिंह को जिन लोगों ने भी समीप से देखा है — वे अच्छी तरह जानते हैं कि उनका जीवन, एक कर्मयोगी की तरह है। यह कर्मयोग तबसे चला आ रहा है जब वे अपने छात्र-जीवन में थे और वही सिलसिला अब भी कायम है। सामाजिक, राजनीतिक और पारिवारिक जीवन में भी वे एक समदृष्टि वाले और दूरदर्शिता वाले व्यक्ति, नेता और राजनेता रहे हैं। हर मनुष्य के जीवन में कोई न कोई अच्छा और उल्लेखनीय गुण होता है, जो उसे परोक्ष या अपरोक्ष रास्ते से ऊँचाई तक ले जाता है। श्री अर्जुनसिंह के जीवन में भी ऐसे कई गुण हैं जो उन्हें इस हैसियत तक लाये हैं। उनमें जो स्पर्धा भावना है वह अच्छे गुणों के लिए है। वे अपने विरोधी के भी अच्छे गुणों को स्वीकार करने वाले नेता हैं। वे उतने ही गुणग्राही भी हैं जितना कि एक सूझबूझ वाले नेता को होना चाहिए। श्री अर्जुनसिंह में दूरदर्शिता और विवेक का जो समन्वय है वह कम लोगों में पाया जाता है। वे समस्या को विवेक और सूझबूझ की आधार भूमि पर सुलझाते हैं। उस समय उनमें कोई स्पर्धा या ईर्ष्या नहीं होती।

प्रो. अक्षयकुमार दुबे
(कवि-लेखक, प्राध्यापक)

वास्तव में श्री अर्जुनसिंह की उन सभी बातों में गहरी पैठ है, जो एक सफल जननेता में होनी चाहिए; जिन्हें कभी ऐसा मौक़ा मिला हो, जब वे विन्ध्यप्रदेशियों से उनकी ही बोली में आत्मीयता से बतिया रहे हों, वे मेरी इस बात की पुष्टि करेंगे।

नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी
(कवि एवं पत्रकार)

वे मित्रों के मित्र हैं और शत्रु को भी कायल करने की कला में सिद्धहस्त। उनके आभिजात्य के सम्मुख उद्दंडता अपने आप नतमस्तक हो जाती है।

—श्याम कटारे
(पत्रकार)

श्री अर्जुनसिंह सत्ता पक्ष में रहें, मंत्रिमंडल में रहें या कि विपक्ष में रहें, उनके प्रति सीधी वासियों की याद में कोई अन्तर नहीं आता। लोगों को उन पर इतना अधिक विश्वास है कि अपने छोटे-से-छोटे काम के लिए भी वे उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहते हैं। अपना दुःख-दर्द उनके सामने व्यक्त करके सीधी निवासी असीम आत्मसंतोष का अनुभव करते हैं। यह स्थिति उनके राजनैतिक या सत्तारूढ़ व्यक्तित्व के कारण नहीं, वरन् उनके चुम्बकीय व्यक्तित्व के कारण बनी है। यही कारण है कि वे सदा आम आदमियों से घिरे रहते हैं। ये सम्बन्ध सत्ता से लाभ उठाने के लालच से नहीं, आत्मीयता के कारण है, क्योंकि सीधी ज़िले का हर आदमी यह जानता है कि कुँवर साहब के किसी से चाहे कितने घनिष्ठ सम्बन्ध क्यों न हों, वे जनहित के विरूद्ध कभी कोई काम नहीं कर सकते। उनका स्वभाव ही कुछ ऐसा बन गया है कि वे सही और स्पष्ट दिशा में ही सोचते हैं तथा अपनी आत्मा की आवाज़ पर ही काम करते हैं।

—शोभाराम श्रीवास्तव
(अवकाश प्राप्त अधिकारी, लेखक)

उर्दू ज़बान की फ़लाह व तरक़्क़ी के लिए श्री अर्जुनसिंह की ज़ाती दिलचस्पी मध्यप्रदेश उर्दू अक़ादेमी के इन्तेज़ामिया में चुस्ती और दाएरा अमल में वुसत पैदा करने से ज़ाहिर होती है। जिसे एक सियासी अक़दाम नहीं बल्कि सही मायनों में सेकूलरअनम की देन कहा जाना चाहिए। जो ईमानदारी और नेकनीयती पर ज़ुबनी है। जनाब श्री अर्जुनसिंह को उर्दू से बेलोस लगाव है। श्री अर्जुनसिंह सियासत में जब कहीं बिला किसी मुक़ाम के मालिक रहें मेरा ज़ाती ख़्याल है कि उनके दिलो-दिमाग़ क्या उर्दू से मोहब्बत का ज़ज्बा हमेशा मोजज़्म रहेगा। और क्यों न हो जबके उर्दू ज़बान सरज़मीन हिन्द पर पैदा हुई है। जहाँ तक जनाब अर्जुनसिंह की इन्तेज़ामिया परगिरिफ़त का सवाल है। इसमें कोई शक नहीं के वह ज़हीन वासलाहियत और मेहनती मुन्तज़िम है।

—नईम कौसर
(उर्दू शायर)

चरित्रजीवी राजनेता राजनीति के वश में नहीं होते, बल्कि राजनीति उनके वश में होती है। ऐसे ही चर्चित-प्रशंसित व्यक्तियों में आते हैं — श्री अर्जुनसिंह। राष्ट्रीय-चरित्र उनका केन्द्र बिन्दु है। विद्रूपताओं के विरुद्ध उनका संघर्ष

अनुकरणीय है। कला, साहित्य एवं सांस्कृतिक चेतना के नियामक, स्पष्टवक्ता, रचनात्मक सक्रियता के धनी श्री अर्जुनसिंह निःसंदेह दरिद्रनारायण के पक्षधर हैं।

—लाला जगदलपुरी
(छत्तीसगढ़ के सुप्रसिद्ध लेखक)

अर्जुनसिंहजी ने विरोधी दल के नेता के रूप में जिस अदम्य साहस, दृढ़ निश्चय एवं लगन के साथ पार्टी के ऊपर मँडराते हुए काले बादल, बिखरती हुई स्थिति एवं दमन चक्र का सामना किया वास्तव में वह बेजोड़ था। उस अवधि में उन्होंने न सिर्फ़ विधानसभा में सबल नेतृत्व प्रदान किया वरन् प्रदेश के कोने-कोने में जाकर पार्टी कार्यकर्ताओं के गिरते हुए मनोबल को बनाये रखा। शायद ही ऐसा कोई कस्बा एवं क्षेत्र छूटा रहा होगा जहाँ उन्होंने छोटे-से-छोटे कांग्रेस कार्यकर्ता, जनता पार्टी द्वारा प्रताड़ीत ग़रीब एवं शोषित जनता से सम्पर्क न किया हो, उनकी समस्या न सुनी हो तथा उनकी मदद के लिए कार्य न किया हो। ग्राम कनाड़िया, ग्राम नंदनी एवं अन्य जगहों में हरिजनों के ऊपर अत्याचार तथा प्रदेश में व्याप्त शताब्दी के सबसे भयंकर अकाल की स्थिति में जनता पार्टी द्वारा समय पर राहत कार्य न खुलवाने की समस्याओं पर विधानसभा के भीतर उनके नेतृत्व में धरना आन्दोलन देखते ही बनता था। उनके साथ विधानसभा के अन्दर एवं बाहर कन्धा से कन्धा मिलाकर कार्य करने में उत्साह एवं गौरव अनुभव होता था। उसी के प्रतिफल विगत लोकसभा एवं विधानसभा के चुनाव में प्रदेश में काँग्रेस को अप्रत्याशित सफलता मिली। पार्टी के उक्त दुर्दिन की अवधि में उन्होंने कभी भी संयम एवं साहस को नहीं खोया तथा सबल नेतृत्व प्रदान करते रहे। उनके इसी गुण एवं योग्यता को देखते हुए पार्टी के अन्दर व्याप्त गुटबन्दी से ऊपर उठकर आदरणीय इन्दिरा जी ने मध्यप्रदेश का भार मुख्यमंत्री के रूप में उनके सबल कंधों पर सौंपा।

—भवानीलाल वर्मा
(पूर्वमंत्री — मध्यप्रदेश शासन)

प्रादेशिक राजनीति और सत्ता के सर्वोच्च प्रतीक मुख्यमंत्री पद पर पहुँचकर आत्मसंयम, उदारता और विनम्रता की रक्षा करना आजकल की स्थिति में एक अग्नि परीक्षा से गुज़रने जैसा है। अपने थोड़े से अनुभवों के आधार पर मैं अपनी ही बात कह सकता हूँ कि विभिन्न अवसरों और प्रसंगों पर मैंने उन्हें आत्मसंयमित, उदार व विनम्र रहते ही देखा है। किसी त्रुटि या भूल पर, भ्रम में या शंका में, आक्रोश व्यक्त करना, झल्ला जाना, डाँट-डपट करना, चेहरे पर तनाव की मुद्राएँ प्रकट करना उनके लिये शायद सम्भव नहीं है। इसके लिये उनका तरीक़ा ही कुछ अलग और उनका अपना है।

—कैप्टन जयपालसिंह
(पूर्व उपगृहमंत्री — मध्यप्रदेश शासन)

अपने संसदीय जीवन में जिस रूप में भी वे सार्वजनिक जीवन में आये, उन्होंने हमेशा जन-साधारण का अपार स्नेह प्राप्त किया है। यही कारण है कि सफलता ने सदैव उनके क़दम चूमे। श्री सिंह के प्रभावशाली व्यक्तित्व में सौम्यता, शालीनता और सरलता परिलक्षित होती है। उन्होंने अपनी तुरन्त निर्णय लेने की प्रवृत्ति के कारण जन-साधारण के मन में एक अलग छवि बना ली है।

—दुर्गादास सूर्यवंशी
(पूर्वमंत्री — मध्यप्रदेश शासन)

उनके व्यक्तित्व में कई ख़ूबियों का ऐसा अद्‌भुत और सुसंतुलित मिश्रण है कि वे एक परिपूर्ण और बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी बन गये हैं। उनके मस्तिष्क में लगभग प्रत्येक समस्या का निदान है। सौम्यदर्शी होते हुए भी समस्याओं पर उनकी पकड़ और प्रभावपूर्ण प्रशासनिक निर्णयों की त्वरा से उनकी स्वभावगत दृढ़ता परिलक्षित होती है।

– रघुनन्दनप्रसाद वर्मा
(पूर्व विधायक)

जो लोग श्री अर्जुनसिंह को निकट से जानते हैं, वे इस सत्य से इंकार नहीं कर सकते कि उनमें राजनीतिक सूझबूझ के अलावा राजनीतिक संयम और धैर्य की प्रचुर विद्यमानता है। वास्तव में वे "समभाव और समदर्शी" गुणों के एक परिपक्व नेता हैं। नेतृत्व की शक्ति हर एक को नहीं मिलती लेकिन जो कसौटी पर स्वयं को कसने का आदी बन जाता है – वह नेतृत्व का धनी होता है। पक्ष और विपक्ष का सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी इस सत्य से अनभिज्ञ नहीं है कि श्री अर्जुनसिंह की भूमिका जनता पार्टी के ढाई वर्ष के शासनकाल में एक प्रतिपक्षी नेता के रूप में कितनी अविस्मरणीय रही है। श्री अर्जुनसिंह में ही यह साहस था कि उन्होंने प्रतिपक्ष के नेता के रूप में ढाई वर्ष के कार्यकाल में, मध्यप्रदेश विधानसभा को जीवंत बनाए रखा। सदन में जब वे विरोधी नेता थे तब भी उनका संयम व्यक्तित्व और विवेकशीलता न केवल गरिमा के अनुकूल थी वरन् तत्कालीन सत्ताधारियों के लिए भी पाथेय थी।

वासुदेव चन्द्राकर
(पूर्व विधायक)

श्री अर्जुनसिंह को अवसर सामन्तवादी कहकर उनका विरोध किया जाता रहा है पर जो व्यक्ति गाँधी, नेहरू के चरण-चिन्हों पर चलने का संकल्प लेता है वह सामन्त-पुत्र होने मात्र से निन्दा का पात्र है या प्रशंसा का?

केशवप्रसादसिंह
(पूर्व विधायक)

श्री अर्जुनसिंह में अद्‌भुत गतिशीलता है। गंभीर और पेचीदे प्रकरणों में वे पारदर्शी आँख से झाँकते हैं तथा शीघ्र ही निर्णय लेते हैं। श्री अर्जुनसिंह ऐसे व्यक्तित्व के धनी हैं जिन्हें विरोधी भी हृदय से सम्मान देते हैं। उनकी गंभीरता, उनका हँसमुख व्यवहार, शालीनता, सहनशीलता, गतिशीलता एवं उनका संयम बिरले ही व्यक्तियों में देखने को मिलता है। राजनीति में श्री अर्जुनसिंह धीरे-धीरे विकसित हुए।

डॉ. लालताप्रसादखरे
(पूर्व विधायक)

श्री अर्जुनसिंह जी ने कर्मचारियों के लिए अनेक कल्याणकारी कार्य किये हैं, इसलिए सब लोग उन पर यकीन करते हैं। यही हाल साहित्यकारों और पत्रकारों का है कि वे किसी भी विचारधारा के हों, अर्जुन सिंह जी पर उनको भरोसा है। इस तरह मैं यह कह सकता हूँ कि मध्यप्रदेश के हर वर्ग के लोग, हर व्यवसाय के लोग, हर धर्म के लोग और हर धर्म के लोग और हर विचारधारा के लोग अर्जुनसिंहजी के नेतृत्व में पूर्णतः विश्वास व्यक्त करते हैं।

– दामोदर पाटिल
(पूर्व विधायक)

श्री अर्जुनसिंह ऐसे प्रखर व्यक्तित्व हैं जिन्होंने परिश्रम से, सेवा और संवेदना की भावना से ख्याति अर्जित की। अर्जित कीर्ति को अक्षुण्ण और जीवन्त बनाए रखने के लिए उन्होंने मात्र सेवा की। उनका जीवन-प्रभात सुरम्य एवं सुख-श्री से परिपूर्ण था। जीवन-तरु पर आशाओं और कामनाओं के विहंगमों का मेला था। जीवन प्राची पर उल्लास ने मंगल कुंकुम बिखरा दिया था। इतना सब होते हुए भावी जीवन की स्वर्णिम संभावनाओं को बिदा दे, उन्होंने सेवा, तपस्या और त्याग का जीवन स्वीकार किया। उनके उत्सर्ग के इस पथ पर संकट के शूल बिछे थे। त्याग का मंत्रोच्चार गूंज रहा था। आत्माहुति की समिधा राष्ट्रप्रेम की संकल्प वेदिका पर क्षण-क्षण समर्पित हो रही थी। श्री अर्जुनसिंह क्षतशीश हो जाना पसंद करते थे, किन्तु नतशीश नहीं। उन्होंने अपने जीवन कुसुम को बलिपंथ पर निःसंकोच समर्पित कर दिया। अध्ययन-क्षेत्र से लेकर कर्म-क्षेत्र तक उनके व्यक्तित्व की विराटता को विस्मृत नहीं किया जा सकता। श्री अर्जुनसिंह के जीवन के अनेक अवसर मेरी यादों के ठहराव हैं, मैं वहाँ हठात् रुकता हूँ और सुप्त स्मृतियाँ उभर आती हैं।

– हीराराम वर्मा

(पूर्व विधायक)

माननीय अर्जुनसिंह जी के हृदय में ग़रीबों-पीड़ितों के लिये कुछ करने की अदम्य जिज्ञासा एवं उत्कृष्ट भावना है। यही कारण है कि उनका अधिकांश समय निर्धनों एवं निसहायों के उत्थान के प्रति समर्पित है। इसी कारण इस पिछड़े प्रदेश में अनेक बड़ी योजनायें, आज मूर्त रूप ले सकीं हैं, जिनसे निश्चय ही निर्धनों एवं पिछड़े लोगों का हित होना प्रारम्भ हो चुका है।

—हरिचरन वर्मा

(पूर्व विधायक)

श्री अर्जुनसिंह : शब्द, सत्ता और संवेदना

[illegible]

श्री अर्जुनसिंह ने हमेशा संवेदनशील प्रशासन की कामना की है। वे प्रशासन को सभी स्तरों पर मानवीय गुणों से परिपूर्ण देखना चाहते हैं। अपने मंत्रिमण्डल के सहयोगियों, प्रशासन के उच्च अधिकारीगणों और कर्मचारियों से उन्होंने अन्तरंग रिश्ता जोड़कर हमेशा विचार-विमर्श किया है। मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने मध्यप्रदेश के नागरिकों और केन्द्रीयमंत्री के रूप में भारतवासियों से आत्मीय चर्चा की है। यहाँ उनके कुछ चुने हुए विचार प्रकाशित हैं—

प्रदेश की जनता के नाम पहला संदेश

मैं आपके मुख्य सेवक की हैसियत से आपसे दो शब्द निवेदन करना चाहता हूँ।

मध्यप्रदेश के विधानसभा के चुनाव हाल ही में संपन्न हुए हैं और अपने प्रजातांत्रिक अधिकार का उपयोग कर प्रदेश के नागरिकों ने एक स्पष्ट जनादेश दिया है। इसी के फलस्वरूप नई सरकार ने 9 जून 1980 को अपना कार्यभार ग्रहण किया है। मैं राज्य की समूची जनता का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ और इस प्रदेश के विकास को तीव्र करने और ख़ासकर उसके ग़रीब वर्गों के लिये कारगर काम करने का जो अवसर आपने हमें दिया हैं उसके लिये अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। मुझे इस बात का अहसास है कि आपने हमें चुनकर हम पर समाज के पुनर्निर्माण करने और बिगड़ी हुई अर्थ-व्यवस्था को ठीक कर समाज के सर्वहारा वर्ग के तेज़ी से उन्नयन की भारी ज़िम्मेदारी सौंपी है। मैं अत्यन्त विनयपूर्वक यह ज़िम्मेदारी स्वीकार करते हुए, आप सबसे अपेक्षा करूँगा कि हमें निश्चित समय में सुविचारित नीतियों के अनुसार इस जनादेश का पालन करने के लिए लगातार आपकी हिस्सेदारी, समर्थन और सहयोग मिलेगा। सिर्फ़ चुनाव के अवसर पर सक्रियता काफ़ी नहीं है। मेरा आपसे विनम्र आग्रह है कि आप सब नागरिक बन्धु लगातार सजग और चौकन्ने रहकर नई सरकार को नैतिक समर्थन और दिशा-निर्देश दें और उसकी नीति और कार्यक्रमों की समीक्षा करते रहें। ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जिसमें आपके सक्रिय समर्थन के बिना सरकार सफल हो सके। मुझे यह कहने की इजाज़त दीजिए कि जिस सरकार को आपने अपने स्वतंत्र और निर्भीक निर्णय से चुना है, उसे सफल बनाने में आपकी भी ज़िम्मेदारी है।

हमारी यह कोशिश होगी कि हम राज्य में निष्पक्ष और संवेदनशील प्रशासन की स्थापना करें जो व्यापक जनहित को सबसे निर्णायक मूल्य समझे। पिछले दिनों ऊपर से नीचे तक सबकों अपनों और ग़ैरों में बाँटकर सिर्फ़ अपनों के लिए शासन करने की जो दुर्भाग्यपूर्ण परिपाटी बनी, उसे हम तुरन्त समाप्त करना चाहते हैं। सरकारी तंत्र के स्वाभिमान और निष्पक्षता की पुनर्स्थापना करते हुए, हम उसके मनोबल को बढ़ाना चाहते हैं। छोटे-से-छोटे और साधनहीन सामान्य नागरिक को सामाजिक विकास में शामिल करने और उसकी आम हालत को स्थाई रूप से सुधारने के लिये प्रशासन को अधिक सक्षम और अधिक सजग बनाना भी हमारा उद्देश्य है। जो जनादेश हमें दिया गया है उसे ऐसी सरकार बनाकर ही पूरा किया जा सकता है, जो आम आदमी के दुःख दर्द से जुड़ी हुई, सभी वर्गों और धर्मों के हितों के काम करने वाली हो और जो हर स्तर पर ग़रीबों की हालत सुधारने,पिछड़े वर्गों को आगे बढ़ाने और समाज में आर्थिक समता और सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए बिना थके लगातार काम करने वाली हो। आज हमें ऐसे प्रशासन की ज़रूरत है जो शक्तिशाली और सम्पन्न के आगे झुके नहीं और जिसके दरवाज़े और दिल-दिमाग़

ग़रीब और शोषित के लिए हमेशा खुले हों। जात-पाँत, वर्ग-भेद और बदले की भवना से ऊपर उठकर हम एक ऐसा वातावरण बनाने में आपका सहयोग चाहते हैं जिसमें प्रजा और तंत्र के बीच कोई टकराव न हो और दोनों ही अपनी स्थिति की ठीक समझ रखते हों। हम ऐसी नीति लागू करेंगे जिनसे प्रजातंत्र और उसकी संस्थाएँ समाज के सबसे वंचित वर्गों और पिछड़े तत्वों के लिए सच्ची और सार्थक बन सकें।

मेरी सरकार की यह हार्दिक इच्छा है कि हर स्तर पर नागरिकों और सरकार के बीच बराबर घनिष्ठ संपर्क और सम्वाद बना रहे, हमारे प्रदेश की प्राकृतिक और मानवीय सम्भावनाएँ अपार हैं और उसकी अधिकांश ग़रीब जनता वर्षों से इन सम्भावनाओं के उचित दोहन द्वारा अपने जीवन स्तर को बेहतर बनाने का सपना देखती रही है। अनेक कठिनाइयों के बावज़ूद हम इस सपने को सच कर सकें, यह हमारा संकल्प है। हम इतिहास के एक नए और निर्णायक मोड़ पर हैं। सच्चा इतिहास तभी बन सकता है जब इस प्रदेश में रहने वाले ग़रीब से ग़रीब और नामहीन नागरिक को यह अहसास हो कि समाजिक परिवर्तन में उसका भी कोई हिस्सा है।

आपकी इस सरकार का शिखर और मापदण्ड दोनों ही आम आदमी तथा सर्वहारा होगा। मैं आश्वस्त हूँ कि इसके लिए, उसके हित में हम जितनी जल्दी और जितना काम कर पाएँगे वही हमारी सफलता और सार्थकता की कसौटी होगी, जो अपने अधिकार के लिए लड़ नहीं सकता उसके अधिकार सुरक्षित रहें, इसकी ज़िम्मेदारी हम पर है।

इस समय प्रदेश का एक बहुत बड़ा हिस्सा भीषण सूखे की चपेट में है। उन क्षेत्रों में व्यापक रूप से जो राहत कार्य चल रहे हैं उन्हें तब तक जारी रखा जायेगा जब तक वहाँ के लोगों को रोज़गार की ज़रूरत होगी साथ ही सूखे से निपटने के लिए कुछ स्थाई उपाय करने की गरज़ से दीर्घकालीन नीति भी बनाई जायगी। मानसून हमारे प्रदेश में प्रवेश कर चुका है और सभी किसान भाइयों के साथ मेरी भी यह शुभाकाँक्षा है कि इस वर्ष अच्छी बारिश हो और अच्छी फसल हो। किसानों को खेती की पैदावार बढ़ाने, उपज का उचित मूल्य, बाज़ार की सुविधाएँ, बीज, खाद और ऋण आदि समय पर आसानी से मिलने की व्यवस्था को गतिशीलता दी जा रही है। इस सिलसिले में प्रक्रिया आदि की जो उलझनें आती हैं उन्हें हम दूर करेंगे और ऐसा प्रबन्ध करेंगे कि खेती के लिए किसान को जो चीज़ें और सुविधाएँ ज़रूरी हैं वे सब एक ही जगह से और उसके गाँव के आसपास ही मिल सकें और उसे कई लोगों और कई जगहों पर न भटकना पड़े।

मध्यप्रदेश का 80 प्रतिशत से अधिक कास्त रकबा असिंचित है। सिंचाई और लघु सिंचाई के साथ इसे बढ़ाने का एक बड़ा कार्यक्रम लागू होगा। पर असिंचित ज़मीन पर निर्भर रहने वाले किसानों को उसके सामने आने वाली कठिनाइयों का विशेष समाधान आवश्यक है। उस क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने के लिये अनुसंधान और वैज्ञानिक खोज को ध्यान में रखते हुए एक नई समग्र कृषि नीति अपनाई जाएगी। मेरी सरकार का यह प्रयत्न होगा कि प्रदेश के बहुसंख्यक किसानों को अपने खेतों में बीज और आमदनी बढ़ाने के लिए नई तकनीकी और सुविधाओं का लाभ मिल सके। प्रदेश का विकास देहातों के विकास को प्राथमिकता देकर ही किया जा सकता है। जब तक हमारे देहात ख़ुशहाल नहीं होते तब तक हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती। हम चाहते हैं कि राज्य के लिए जो रुपया ख़र्च किया जाए उसका अधिकांश भाग देहातों पर ख़र्च हो, जहाँ हमारे प्रदेश की अधिकांश जनता रहती है।

श्रीमती इंदिरा गाँधी के क्रांतिकारी निर्देशन में विशेषतः पिछड़े वर्गों, ग़रीबों और शोषितों के जीवन में बुनियादी परिवर्तन लाने की योजना 20 सूत्रीय कार्यक्रम के माध्यम से लागू की गई थी जिसे बाद की सरकार ने ख़त्म कर दिया। 20 सूत्रीय कार्यक्रम को हम फिर से तत्परतापूर्वक लागू करेंगे और इसके माध्यम से स्थानीय लोगों को बिना

लालफ़ीताशाही में फँसे, जो प्रजातांत्रिक अनुभव हो रहा था उसका फिर से अवसर जुटायेंगे।

मध्यप्रदेश के नैसर्गिक साधनों की विपुलता का उल्लेख ज़माने से होता आया है। लेकिन यह भी सही है कि इन साधनों का पूरा दोहन होना बाक़ी है। हम औद्योगीकरण इस तरह से करना चाहेंगे कि उद्योग-धंधों में स्थानीय लोगों को रोज़गार मिले और स्थानीय पहल और क्षमता को पूरा महत्व दिया जाय। पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगिक विकास को प्राथमिकता दी जायेगी और पारम्परिक कला-कौशल और कारीगरी को बढ़ावा दिया जायगा।

दुर्भाग्य से हमारे प्रदेश में पिछले कई वर्षों से विकास इस तरह हुआ कि कुछ क्षेत्र तो प्रगतिशील हैं, पर कुछ क्षेत्र बड़े पिछड़े हुए हैं। मेरी सरकार पिछड़े क्षेत्रों के विकास की विशेष योजनाएँ बनाकर उन पर शीघ्रता से अमल करेगी ताकि क्षेत्रीय असंतुलन दूर हो और राज्य के सभी अंचलों का समन्वित विकास हो सके। क़ानून और व्यवस्था की स्थिति पर हम पूरा नियंत्रण रखेंगे और यह सुनिश्चित करेंगे कि साधारण से साधारण नागरिक के जान-माल, सम्मान और सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा हो। किसी भी व्यक्ति पर चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, अत्याचार न हो। ख़ासकर दूरदराज़ इलाक़ों में रहने वाले ग़रीब और हरिजन आदिवासियों की शिकायतें सुनी जाए और उन पर तत्परता से कारगर कार्रवाई हो। इसके लिए क़ानून व्यवस्था की मशीनरी को चुस्त बनाया जायेगा और उसे आवश्यक संपर्क साधन सुलभ कराए जायेंगे।

हमारे प्रदेश में विकास का केन्द्र बिन्दु हरिजन और आदिवासियों का विकास है और मेरी सरकार उनके उत्थान के लिए सभी सम्भव प्रयत्न इस कार्य को प्राथमिकता देकर करेगी। इसी दृष्टि से मैंने यह निश्चय किया है कि आदिम जाति और हरिजन कल्याण विभाग मैं स्वयं अपने पास रखूँगा।

सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा का महत्त्व है। उसके विस्तार के साथ ही उसे स्थानीय परिवेश के अधिक उपयुक्त और आत्मनिर्भरता विकसित करने वाली बनाने के लिए अधिक जीवनोपयोगी बनाया जायगा। प्रदेश में शिक्षा के महत्वपूर्ण क्षेत्र में विकास की संभावनाओं को पूरी तरह से विकसित करने का दायित्व यह शासन स्वीकार करता है, और इस प्रदेश के नवयुवकों को प्रबुद्ध नागरिक बनने में भरपूर साधन व अवसर उपलब्ध कराने के लिए कृतसंकल्पित है।

हमारे प्रदेश की समरस संस्कृति में अल्पसंख्यकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हमारे राज्य में भाषा, धर्म आदि आधारों पर जो भी अल्पसंख्यक निवासी हैं उन्हें सम्मानपूर्वक पूरी सुरक्षा और सुविधा के साथ अपने धर्म, संस्कृति आदि का पालन करने की सुविधाएँ दी जायेंगी। किसी भी तरह की साम्प्रदायिकता को प्रश्रय न मिले ऐसा वातावरण हम बनाने की कोशिश करेंगे। अगर कोई तत्व साम्प्रदायिकता भड़काने की कोशिश करते हैं तो उन्हें पूरी शक्ति के साथ दबाया जायगा।

जैसे कि सारे देश में, मध्यप्रदेश में भी सार्वजनिक जीवन में युवा शक्ति ने एक क्रान्तिकारी भूमिका निभाना शुरू किया है। प्रदेश के तेज़ी से और समग्र विकास के लिए हमारे नौजवानों की प्रतिभा और कुछ कर गुज़रने की ललक एक बहुत कारगर माध्यम बन सकती है। हम पूरा प्रयत्न करेंगे कि समाज का कायाकल्प करने और विशेष कर पिछड़े और शोषित वर्ग की मुक्ति तथा उन्नयन में युवकों के उत्साह, निश्छलता और रचनात्मक शक्ति का भरपूर उपयोग किया जाए।

संस्कृति और कलाओं में मध्यप्रदेश की प्रतिभाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हमारा प्रयत्न होगा कि कलाकर्मियों को स्वतंत्रता और सम्मान के साथ अभिव्यक्ति के नए अवसर मिलें और नागरिकों को रसास्वादन प्राप्त हो।

आर्थिक रूप से हमारा राज्य पिछड़ा है। लेकिन अब यह अवसर आया है कि हम संकल्प, लक्ष्य की एकाग्रता, ईमानदार कोशिश और पहल में पिछड़े न रहकर आगे बढ़ें। इस नई पहल में अगर आप हमारे साथ आगे आते हैं तो मुझे पूरा भरोसा है कि हम सदियों से चले आ रहे पिछड़ेपन से मुक्त होकर एक सम्पन्न और समृद्ध प्रदेश जल्दी ही बना सकते हैं। हमारा लक्ष्य ऐसी सम्पन्नता है जो कुछ ख़ास लोगों तक सीमित न रहकर वंचित और शोषित वर्गों तक व्यापक रूप से पहुँचे और उन्हें सामाजिक न्याय के लिए लड़ने और अपनी हालत बदलने के लिए इच्छा और सामर्थ्य दें। मैं प्रदेश के नागरिकों को, बुजुर्गों और युवकों को, किसानों और मज़दूरों को, बुद्धिजीवियों को, कलाकारों और कारीगरों को, हरिजन-आदिवासियों, महिलाओं, अल्पसंख्यकों सबको इस नई पहल में शिरकत करने के लिए अपनी पूरी आस्था के साथ आज आमंत्रित करता हूँ।

19 जून, 1980 को जनता के नाम संदेश।

आम आदमी का विश्वास अर्जित करें

मैंने आप सबको यहाँ आने का कष्ट इसलिए दिया है ताकि कुछ बातों पर मैं अपने विचार तथा अपनी भावनाएँ आप सबके समक्ष रख सकूँ। यहाँ जो आए हैं और जो नहीं भी आ पाए हैं, चाहे प्रशासनिक सेवा में हों या जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि, सबके सामने समान लक्ष्य है और वह यह कि प्रदेश को एक कार्यक्षम तथा जनसंवेदी सरकार प्रदान की जाय। पिछले 14 महिनों में यह तीसरा अवसर है जब हम सब यहाँ मिल रहे हैं। प्रारंभ में, मैं पुनः एक बार वह सब दुहराना चाहता हूँ जो मैं पहले भी कह चुका हूँ। कारण यह है कि आज राष्ट्र-व्यवस्था के हर स्तर पर एक प्रकार का सिनिसिज़्म (Cinicism) घर कर गया है।

यह राजनैतिक स्तर के लिए भी उतना ही सच है जितना कि प्रशासनिक स्तर के लिए। इस संदर्भ में शब्द अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं और उनके द्वारा वह अर्थ अब सम्प्रेषित नहीं होते, जो अभीष्ट हैं। मैं इसके लिए किसी को दोष नहीं देता क्योंकि जब सिनिसिज़्म (Cinicism) फैलता है तब हर चीज़ को एक दूसरी ही दृष्टि से देखा जाने लगता है। मेरा आशय यह नहीं है कि इस समस्या पर कोई सार्वजनिक सम्वाद प्रारंभ किया जाए, हालाँकि व्यक्तिगत रूप से मैं समझता हूँ कि इस बात का भी समय आ गया है अगर और किसी कारण से नहीं तो कम से कम इसीलिए कि ऐसा करने से सरकारी कार्यप्रणाली में अवरुद्ध वातावरण में एक नई चेतना का प्रवेश हो सकता है। प्रश्न व्यक्तियों का या व्यक्तियों के संघर्ष का नहीं है और न एक दूसरे से श्रेष्ठता का है और न इसका कि किसकी समझ दूसरे से बेहतर है। जब मैं यह कह सकता हूँ तब मैं प्रदेश के मुख्यमंत्री की हैसियत से नहीं कहता क्योंकि यह तो प्रजातांत्रिक व्यवस्था एक संयोग है और मैं इसको विशेष महत्व नहीं देता। मैं आपके सामने एक चिन्तित नागरिक की हैसियत से सब कह रहा हूँ और मेरा विश्वास है कि आप सब भी विचार के क्षणों में ऐसा ही सोचते होंगे। मैं यह भी मानने के लिए तैयार हूँ कि शायद किन्हीं समस्याओं पर आप मुझसे अधिक चिन्तित हों।

यह शायद आपको संदर्भ से अलग लग सकता है कि आज स्वतंत्रता प्राप्ति के 34 वर्षों बाद मैं आपसे यह सब कह रहा हूँ। लेकिन मैं समझता हूँ कि चीज़ों को उनके सही परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए यह व्यर्थ नहीं होगा अगर आपको यह याद दिलाया जाय कि स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद क्या स्थिति थी। अंग्रेज़ों के जाने के साथ ही उस समय जो वातावरण था और जो भावनाएँ स्वाभाविक रूप से उस समय उद्वेलित हो रही थीं, उन्होंने अंग्रेज़ी राज्य की पूर्ण स्वामिभक्ति के साथ सेवा करने वाली प्रशासनिक सेवा की उपयोगिता के संबंध में एक गंभीर सार्वजनिक बहस को जन्म दिया था जो कटु भी हो जाती थी, मुझे विश्वास है कि कुछ बुजुर्ग लोग जो यहाँ उपस्थित हैं उन्हें यह सब अच्छी प्रकार स्मरण होगा, सेवा के ढाँचे को संपूर्ण रूप से बदलने और उसे एक स्वतंत्र देश की सेवा के लायक़ बनाने के सुझाव सामने आए थे। उस बहस का क्या नतीजा निकला यह अब इतिहास की धरोहर है और यह सब केवल मेरी याद्दाश्त की बात नहीं है। जहाँ एक ओर इस सेवा के ढाँचे में आमूलचूल परिवर्तन की माँग उठाई

जा रही थी वहीं हमारी क्रान्ति के नेताओं और संविधान निर्माताओं ने इस सम्बन्ध में संयम का रास्ता अपनाया, चूँकि राष्ट्र उन नेताओं का कृतज्ञ था इसलिए उनके लिए यह सम्भव हो सका कि समस्या के समाधान का कोई बीच का रास्ता निकाल सके। आप कह सकते हैं कि यह एक अच्छा हल था। नतीजा यह हुआ कि जिन्होंने हमारे वरिष्ठ नेताओं को गिरफ़्तार किया था और उन पर मुक़दमा चलाया था, वे लोग भी बाद में शासन के उच्च पदों पर आसीन हुए। राष्ट्र जो उस समय नये युग की प्रसव वेदना से गुज़र रहा था, ने सभी को एक ईमानदारी भरा अवसर प्रदान करने का निश्चय किया ताकि वे स्वतंत्र भारत की सेवा कर सकें। जब भारत का संविधान बना तब उसमें भी इस भावना को समाहित किया गया।

पिछले 34 वर्षों पर एक नज़र डालते हुए मैं यह विश्वास के साथ कह सकता हूँ और मेरे साथ बहुत लोग भी यह कहेंगे कि लोकसेवा की क्षमता में हमारे नेताओं ने जो विश्वास व्यक्त किया था उसे अनेक कठिन स्थितियों में भी लोकसेवा ने बरक़रार रखा। यहाँ यह स्मरण रखना उचित होगा कि कालान्तर में जैसा विश्व के हर अधिकारी तंत्र में होता है, हमारे यहाँ भी लिखित शब्द ही अंतिम निर्णायक बन गया और पद-प्रतिष्ठा, विशेषाधिकार और सुरक्षा ही मुख्य ध्येय होकर रह गई। मेरा इरादा किसी की भावना को ठेस पहुँचाने का नहीं है लेकिन यह कहने के लिए क्षमा चाहूँगा कि भारत में लोकसेवा को मिलने वाले विशेषाधिकार तथा अन्य सुविधाएँ, मेरे विचार से संविधान की धारा 311 से प्रसूत नहीं हैं। ये तो भारत के लोगों ने लोकसेवा में जो विश्वास व्यक्त किया उसके कारण हैं। वह जनविश्वास, मैं यह मानता हूँ और आप भी मानेंगे कि लोगों ने केवल, 'यथास्थिति' बनाये रखने के लिए व्यक्त नहीं किया था क्योंकि स्पष्ट है कि भारत यथास्थिति बनाये रखने के लिए स्वतंत्र नहीं हुआ था। अगर ऐसा होता तो स्वतंत्रता आन्दोलन की कोई आवश्यकता ही न होती, विश्व का अंत समीप नहीं आ रहा था। कुछ लोगों को पहले ही बहुत से विशेषाधिकार, पद-प्रतिष्ठा एवं सुविधाएँ मिली हुई थीं। उस स्थिति को बनाए रखने के लिए स्वतंत्रता की आवश्यकता नहीं थी। स्वतंत्रता का महत्व यथास्थिति को बनाए रखने में नहीं वरन् इसमें था कि कोटि-कोटि लोगों ने जिन्होंने स्वाधीनता के लिए कुर्बानियाँ दीं और कष्ट उठाए, उनकी आकांक्षाओं के अनुरूप राष्ट्र का पुनर्निर्माण किया जाय। इस कार्य के लिए ही लोकसेवा में विश्वास एवं आस्था व्यक्त की गई थी।

इस पृष्ठभूमि में हमारे नेताओं ने लोकसेवा में केवल विश्वास एवं आस्था ही व्यक्त नहीं की वरन् उसको देश में, जहाँ असमता एवं दमन को धार्मिक निर्देशों की तरह ही मान्यता प्राप्त हो, एक न्यायसंगत समाज व्यवस्था की रचना के कार्य में सहभागी भी बनाया। आज भी कभी-कभी जनता की आवाज़ और न्याय की उसकी पुकार लोकशाही की इन्द्रजालिक व्यवस्था में दबा दी जाती है या कुण्ठित कर दी जाती है। मैं यह कहने के लिए विवश हूँ कि ये कुण्ठित एवं बेबस आवाज़ें अभी भी सत्ता के चमकते गलियारों में गूंजती हैं। मैं यह सोच नहीं पाता हूँ कि जनता, जिसके नाम पर यह सब कुछ किया गया, वह क्यों उठ नहीं खड़ी होती और राजनीतिक एवं प्रशासनिक दोनों ही नेताओं से जवाब-तलब क्यों नहीं करती। जैसा कि मैंने अभी आपसे कहा कि हमने 34 वर्ष पहले एक सहकारी भागीदारी कायम की थी, इसलिए हम दोनों का ही कर्त्तव्य है कि हम इन प्रश्नों के उत्तर तलाश करें। ये उत्तर अकेले नहीं ढूँढे जा सकते, न तो केवल निर्वाचित जन-प्रतिनिधियों द्वारा और न केवल प्रशासनिक सेवा द्वारा, यदि हम इन प्रश्नों का समाधान नहीं ढूँढ पाए तो न केवल हमें, वरन् समस्त राष्ट्र को इसकी बहुत बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ सकती है क्योंकि इतिहास क्षमा नहीं करता और किसी का इन्तज़ार भी नहीं करता। इसलिये इस स्थिति में जिन्हें जो कार्य

सौंपा गया है उन्हें वह कार्य सम्पादित करना ही है। यदि असफलताएँ दुर्भावनाजन्य नहीं हैं तो ग़लतियाँ ठीक भी की जा सकती हैं, और उनसे राष्ट्रीय स्तर पर कभी-कभी बहुत हलका स्पन्दन मात्र होता है। लेकिन जिन्हें कार्य सौंपा गया है, वे जन आकाँक्षाओं के विपरीत या उससे हटकर कार्य करें तो इतिहास साक्षी है कि इससे विप्लव जन्म लेते हैं और उससे सारी व्यवस्था नष्ट हो जाती है। राष्ट्र के समक्ष वास्तव में यही प्रश्न है।

एक जमी-जमाई व्यवस्था का अन्त हो चुका है और यह ठीक ही हुआ क्योंकि उस व्यवस्था में असमता की ताक़तों को बढ़ावा मिलता था और आततायी को सुरक्षा। अब इस पीढ़ी को चाहे वह किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो, एक नई राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था के निर्माण का भार वहन करना है। हम इसे कैसे करते हैं, यही मूल बात है। आप अपने कार्यालय में बैठकर जो कार्य करते हैं, या हम लोग बाहर जाकर सार्वजनिक क्षेत्र में जन समर्थन प्राप्त कर आपके कार्यालयों के बग़ल में बैठकर जो कार्य करते हैं, दोनों ही स्थितियों में यही मूल बात प्रासंगिक होती है। मेरा उद्देश्य यहाँ किसी प्रश्न पर कोई भाषण करना नहीं है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि आपमें से अनेक मुझसे अधिक योग्य हैं शैक्षणिक योग्यता में भी और शायद अनुभव की दृष्टि से भी। लेकिन कुछ ऐसा है कि इस समय नियति के संकेत से मैं इन प्रश्नों से कुछ अधिक आक्रान्त हूँ। मैं समझता हूँ कि यह मेरा कर्त्तव्य है कि जैसा मैं पहले बता चुका हूँ उन कारणों से वह सब बातें आप के समक्ष रखूँ जो मैं इस वक़्त कह रहा हूँ। यह हमारा सौभाग्य है कि इस समय राष्ट्र में एक सशक्त, स्थिर एवं आदर्शोन्मुख कल्पनाशील नेतृत्व विद्यमान है। यदि केवल शक्ति हो और कल्पनाशीलता एवं आदर्शों का अभाव हो तो एक प्रकार की निर्मम ताक़तें जन्म लेती हैं जो लोगों की भावनाओं का निर्दयतापूर्वक हनन करती हैं और यदि केवल कल्पनाशीलता हो और शक्ति का अभाव हो तो केवल एक दिवास्वप्न जन्म लेता है जो आँखें खुलते ही अदृश्य हो जाता है। जब शक्ति और कल्पनाशीलता दोनों का संगम होता है तब राष्ट्र आगे बढ़ता है। यह हमारा सौभाग्य है कि स्वतंत्रता के पिछले 34 वर्षों में बहुत समय तक राष्ट्र का नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथों में रहा है जो शक्तिशाली भी थे और दूरदृष्टि सम्पन्न कल्पनाशील भी। यही कारण है कि इतने कम समय में भारत ने इतनी तरक्की की जिसकी मिसाल किसी भी अन्य देश के इतिहास में मिलना मुश्किल है।

श्रीमती गाँधी ने हमें एक कार्यक्रम दिया है और एक निश्चित दिशानिर्देश भी और चूँकि उनकी मनीषा इतिहास की पदचापों के प्रति संवेदनशील है, इसलिये उन्होंने सचेत भी किया है कि देश को सशक्त बनाने के लिये हमें क्या करना चाहिये और अगर हम देश की प्रगति चाहते हैं तो हमें क्या नहीं करना चाहिये। मुझे इन सब बातों का विशद विवेचन नहीं करना है। मैं तो केवल इतना चाहता हूँ कि हमें मध्यप्रदेश की अपनी समझ एवं योजनानुसार इस कार्य को इस प्रकार सम्पादित करना है जिससे देश आगे बढ़े और हमारी आपकी पद-प्रतिष्ठा, अधिकार सुविधाएँ और उपलब्धियाँ प्रासंगिक बन सकें। इन सब की प्रासंगिकता केवल इस बात में निहित है कि प्रदेश का आम आदमी यह महसूस करे कि जो कुछ भी किया जा रहा है उससे उसकी स्थिति में सुधार होगा। मैं यह सब किसी की आलोचना करने के उद्देश्य से नहीं कह रहा हूँ। मैं यह इसलिये कह रहा हूँ कि मैं स्वयं अपनी भावनाओं और अपनी सीमाओं के प्रति सचेत हूँ और मैं चाहता हूँ कि इस संबंध में आप स्वयं भी सचेत हों। सचेत होने का अर्थ है कि मैं अतिरिक्त जागरूकता के साथ प्रयासशील रहूँगा जिसके कारण उस पद की, जिस पर मैं आज हूँ, गरिमा और अधिक बढ़ेगी।

जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ कि अपने दैनंदिन कार्य संपादन में हमें कुछ बातों को अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिये। अक्सर पुलिस विभाग या लोकसेवा के क्षेत्र में राजनीतिक हस्तक्षेप का आरोप लगाया जाता है। यह ऐसा आरोप है जो जीवन में शामिल हो चुका है और मैं इससे पूर्णतः इनकार भी नहीं कर सकता। लेकिन मैं किंचित्

संतोष के साथ यह अवश्य कह सकता हूँ कि मैने अपनी तरह से अपनी सीमानुसार यह प्रयास अवश्य किया है कि पुलिस और लोक-प्रशासन दोनों ही जहाँ तक बन पड़े राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त होकर कार्य कर सकें, चाहे यह आज की कार्यप्रणाली के कितने ही विपरीत क्यों न हो। मुझे अकसर अपने राजनैतिक साथियों का कोपभाजन भी बनना पड़ा है। लेकिन मैंने ऐसा इसलिये किया कि मैं जानता हूँ कि कोई भी सरकार असरदार ढंग से नहीं चल सकती अगर उसके निर्णय या संकल्प किसी राजनीतिक व्यक्ति की कल्पना या तरंग पर आधारित हों, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो। संविधान में यह प्रावधान किया गया है और हमने उसे स्वीकार किया है कि राजनीतिक; कार्यकारी सरकार का मुखिया होगा। आप जैसा उचित समझें अपनी राय देने के अधिकारी है, आपको निर्दिष्ट करने के लिये नियम तथा अधिनियम हैं और जहाँ कोई बात नियमों, अधिनियमों के अन्तर्गत नहीं आती, वहाँ आप अपने विवेक से काम ले सकते हैं।

मैं यहाँ यह पूछना चाहूँगा कि क्या प्रदेश में एक भी ऐसा व्यक्ति है जो मेरे मुँह पर यह कह सके कि मैंने उससे मेरी इच्छानुसार राय देने के लिए कहा हो। मैं यह कहूँ कि मैं तो यहाँ तक बेवकूफ़ी करता हूँ कि ऐसे निर्देश देता हूँ कि अगर मैंने कोई कार्य करने के लिये कहा है और वह नियमानुसार नहीं है तो उसे करने के बजाय मुझे बताना चाहिए कि उसमें क्या उचित है और क्या अनुचित। सिर्फ़ इसलिये कि वह मुख्यमंत्री का आदेश है, उसे नहीं किया जाना चाहिये। मुझे ऐसे बहुत से वाक़िये मालूम हैं, क्योंकि मैं पिछले 25 वर्षों से मध्यप्रदेश में हूँ और तब स्थितियाँ आज से भिन्न थीं। एक गंभीर वित्तीय मामले में जिसमें एक आदेश की वैधता का प्रश्न समाविष्ट था, फाइल पर केवल एक प्रविष्टि अंकित की गई कि इस प्रश्न का विवेचन वित्त विभाग से भी करवा लिया जाए। फाइल पर इस प्रकार की प्रविष्टि लिखने के कारण उस राजपत्रित अधिकारी को इसी मध्यप्रदेश में अपनी नौकरी से क़रीब-क़रीब हाथ धोना पड़ा था। हमें ऐसी प्रणाली विकसित करनी चाहिये कि जब भी कोई समस्या उपस्थित हो उस समय उस समस्या से प्रभावित होने वाला व्यक्ति भी हमारे समक्ष उपस्थित रहे। अभी कार्यप्रणाली इतनी जटिल है कि आम आदमी हमारे समक्ष आकर अपना पक्ष प्रस्तुत नहीं कर पाता। आपके सामने हर चीज़ एक निर्वैयक्तिक रूप में आती है और क़लम के झटके से उस व्यक्ति को दया भी मिल सकती है, उसे जेल भी भेजा जा सकता है, उसे पुरस्कार भी दिया जा सकता है और उस पर अनेक आफ़तें भी ढाई जा सकती हैं। जब आप अपनी क़लम का इस्तेमाल करते हैं तब मुझे नहीं मालूम कि आपकी आँखों के सामने कभी उस व्यक्ति का चेहरा झलकता है या नहीं। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ कि मेरे साथ ऐसे कई दृष्टांत हैं। मैं एक उदाहरण देता हूँ। पिछले वर्ष एक बहुत प्रगतिशील किस्म का क़ानून बनाया गया जिससे हज़ारों आदिवासी प्रभावित होते थे। एक विभाग से दूसरे विभाग में फाइलें सरकती रहीं और उस क़ानून के ज़रिये जो लाभ आदिवासियों को मिलना चाहिये था, उसकी तारीख़ हमें छह महिने आगे बढ़ानी पड़ी। इस प्रकार की बातें हैं जिससे मेरे सामने एक प्रश्न उपस्थित होता है और जो मैं आपके समक्ष रख रहा हूँ। आख़िर आप किसके लिये काम कर रहे हैं। इस तरह की सुरक्षा आपकी कहाँ तक सहायता करेगी? शायद एपलबी (APPLEBY) ने, अगर मुझे ठीक से याद है, कहा था कि लालफ़ीते में स्वयं की अपनी सुरक्षा समाविष्ट रहती है। एपलबी जैसा कि जानते हैं, लालफ़ीता-शाही के आलोचकों में रहे हैं। उनकी अनेक रिपोर्टों पर अपने देश में भी अमल किया गया है। उन्होंने दो दशक पूर्व स्वर्गीय पंडित नेहरू के अनुरोध पर हमारी प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन भी किया था। लालफ़ीता केवल आपके अनामत्व (ANONIMITY) को बरक़रार रखता है लेकिन उसमें 'सेना' को कोई सुरक्षा प्राप्त नहीं होती क्योंकि कभी न कभी जनता की निगाहें उस पर पड़ जाती हैं।

प्रजातांत्रिक व्यवस्था में जिस पर हम सभी को गर्व है, किसी प्रश्न पर सही या ग़लत का अंतिम निर्णय देने का अधिकार न आपका होता है और न मेरा। वह सिर्फ़ देश के आम आदमी का होता है। यदि वह आप पर या मुझ पर अनेक किये, अनकिये कार्यों, हमारी उदासीनता, हमारी ग़लतियाँ या नासमझी का आरोप लगाता है तो मेरी समझ में उससे बड़ा कोई अभियोग नहीं हो सकता। वह आपकी गोपनीय रिपोर्टों में लिखे शब्दों से, जो कभी प्रकाशित नहीं होते, भी बड़ा होता है। मैं नहीं समझता कि केवल अच्छी रिपोर्ट और अंत में पेंशन ही किसी को पूरा संतोष दे सकती है, आप सोच रहे होंगे कि ऐसा क्या हुआ कि मैं अचानक आप सबसे यह सब कहने पर विवश हुआ। ऐसा कुछ नहीं है जैसा आप सोच रहे हैं। यहाँ आपको बुलाने और यह सब कहने के पीछे जो कुछ किया गया है या जो नहीं किया गया है उसका कोई हाथ नहीं है। वास्तव में प्रेरणा यह है कि मैं स्वयं अपने से ही संतुष्ट नहीं हूँ। मैं समझता हूँ कि जनता ने जो अधिदेश, जो मैनडेट श्रीमती गाँधी को ही दिया है और उसके द्वारा हम सबसे उसका समुचित क्रियान्वयन नहीं हो रहा है। मैं समझता हूँ कि हमें जो कुछ करना था हम उसे दृष्टि से ओझल करते जा रहे हैं। सत्ता में आना या सत्ता से बाहर जाना, कुछ लोगों के लिए यह एक अन्तिम ध्येय हो सकता है, लेकिन मेरे लिए नहीं। मेरे शिक्षक ने तो मुझे यही सिखाया है कि वही व्यक्ति सुखी होता है जिसके पास रोटी के एक टुकड़े का इन्तज़ाम सदा के लिए हो। यही मेरा आदर्श वाक्य है और सदा से रहा है। जो समय हमें दिया गया है वह इसके लिए नहीं है कि हम अपने को और श्रीमंडित कर लें, या और प्रभावी हो जायें या और शक्तिशाली हो जाये, यह जो समय हमें मिला है वह इसलिये कि हम जो उचित समझते हैं वह करें और वह इस तरह कि उसमें हमें सभी का सहयोग प्राप्त हो, उनका भी जो हमारे ज़बरदस्त विरोधी हैं। कम से कम इतना तो करें ही कि जो लक्ष्य हमारी सरकार के सामने हमारी नेता तथा हमारी पार्टी ने रखा है उसके संबंध में हम व्यापक जनसमर्थन तथा जागरूकता पैदा कर सकें। जिस हद तक यह काम नहीं हो पायगा मैं असंतुष्ट रहूँगा और जैसा कि मैं पहले ही आपसे कह चुका हूँ कि हम इस कार्य में सहभागी हैं, मैं आपके सामने यह सब बातें कहने के लिए विवश रहूँगा।

आज यहाँ जो लोग आए हैं उनमें बहुत से ऐसे हैं जिनका जन्म स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुआ। उन्हें यहाँ देखकर मुझे ख़ुशी है। यह उनका सौभाग्य है कि वे स्वतंत्र देश में जन्मे और स्वतंत्र देश की सेवा का अवसर उन्हें मिला। हम जो कुछ भी कार्य करेंगे उस सब की जवाबदेही हम सब पर है और इस कार्य में, मैं आपका न सिर्फ़ सहयोग चाहता हूँ वरन् आलोचना तथा आपकी सम्मति का भी स्वागत है। हमारा उद्देश्य साफ़ है। मैं ऐसा कोई कारण नहीं देखता कि सफलता का तत्व हमें और आपको संतोष क्यों नहीं प्रदान कर सकता। यही एक कारण है जिसके कारण मैंने आप सबको यहाँ आने का कष्ट दिया है। मैं मुख्य सचिव से, जो प्रशासनिक सेवा के प्रमुख हैं अनुरोध करूँगा कि वे हमारे कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए निर्देशक सूत्र तैयार करें। हर स्तर पर अनुशासन की भावना और अधिक होनी चाहिए। मैं नहीं समझता कि हम में से किसी को भी यह नैतिक अधिकार है कि किसी को सज़ा दे सकें यदि हम स्वयं सज़ा भुगतने के लिए तैयार नहीं हैं। यदि आप यह कहते हैं कि राजनीतिज्ञों का हस्तक्षेप आपके कार्यों में नहीं होना चाहिए तो यह भी आवश्यक है, शायद अधिक आवश्यक है कि लोकसेवा के लोग भी राजनीति से दूर रहें। मुझे ऐसा विश्वास नहीं है कि ऐसा नहीं हो रहा है। मैं जानता हूँ लेकिन मैं इसका यहाँ प्रदर्शन नहीं करना चाहता क्योंकि ऐसे लोगों की जो राजनीतिक गतिविधियों में संलग्न हैं, संख्या नगण्य है।

विभागों की समीक्षा के दौरान हमने कार्यप्रणाली बनाई है और कुछ उपायों का सुझाव भी दिया है। मैं जानना चाहूँगा कि उन पर किस हद तक कार्य हुआ है। नियमों और अन्य स्वशासी संस्थाओं के कार्य करने के तरीक़ों के सम्बन्ध में समीक्षा के दौरान एक निश्चित प्रकार की कार्यप्रणाली का सुझाव दिया गया है। मैं समझता हूँ कि अब

समय आ गया है जब हमें यह पता लगाना चाहिये कि वे सुझाव कहाँ तक क्रियान्वित किए गए हैं। क़ानून और व्यवस्था के क्षेत्र में एक कठिन स्थिति विद्यमान है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। मुझे यह देखकर ख़ुशी है कि कठिन स्थिति के होते हुए भी ज़िलाधीशों, आयुक्तों, पुलिस अधीक्षकों (एस.पी), डी.आई.जी. और पुलिसकर्मियों ने काफ़ी अच्छा कार्य किया है। अगर वर्तमान स्थिति में हम यह कह सकने में समर्थ हों कि स्थिति पहले से बेहतर है तो यह भी कम उपलब्धि नहीं होगी। यहाँ यह आवश्यक है कि इस बात का ध्यान रखा जाए कि कोई भी मसला विकृत न होने दिया जाए। उदाहरण के लिए दस्यु उन्मूलन अभियान के तहत ज़िलाधीशों और पुलिस को बहुत व्यापक शक्ति एवं अधिकार दिए गए हैं जो आवश्यक भी हैं। हमने यह जानबूझकर खुली आँखों से किया है। इसलिए जिनको यह अधिकार दिए गए हैं उनकी ज़िम्मेदारी हो जाती है कि इन अधिकारों और शक्तियों का दुरुपयोग न हो और इनका प्रयोग किसी को भी परेशान करने या दमन करने में न किया जाए। यदि इस सम्बन्ध में कहीं कोई ग़लती हो गई हो और उसके पीछे सदाशयता हो तो उसे नज़रअन्दाज़ किया जा सकता है। लेकिन अगर ऐसा नहीं है और उस ग़लती में दुराशय झलकता हो तो मैं नहीं समझता कि मनोबल न गिरने देने के सिद्धांत के तहत उसे माफ़ करने से पुलिस बल या सरकार की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। यह एक ऐसी बात है जिसे मैं कभी नहीं समझ पाया। यदि कोई ग़लती हुई है और अधिकारी के विरूद्ध कार्रवाई की जाती है तो यह कहना कि इससे प्रशासनिक सेवा का मनोबल गिरेगा, यह मेरी समझ के बाहर की बात है। अगर ऐसे लोगों का मनोबल गिरता है तो यह तो देश और प्रशासन दोनों के लिए ही अच्छी बात है। मैंने इसका ज़िक्र इसलिए किया क्योंकि कुछ ऐसे मामले सामने आए हैं।

अगले 17 या 18 दिन हम लोग विधानसभा में व्यस्त रहेंगे और आप सब पर भी काम का बोझा रहेगा। इसलिए जैसे ही विधानसभा का सत्र समाप्त होगा हम फिर से इस प्रकार का कार्यक्रम आयोजित करेंगे। लेकिन सचिवालय स्तर पर नहीं वरन् ज़िला स्तर पर, जहाँ अब तक जो कुछ हुआ है उसकी जाँच की जाएगी और कार्य निष्पादन के मापदण्ड पर अभी तक के कार्यों के प्रति उत्तरदाई होंगे। आप सब यहाँ आए इसके लिए धन्यवाद। हालाँकि यह बात परम्परा से कुछ अलग हट कर होगी, फिर भी मैं यह सुझाव देना चाहूँगा कि सरकार के हर स्तर पर सम्वाद ज़ारी रहना चाहिए जिससे प्रशासन अधिक संवेदनशील और जीवंत बन सके और किसी भी परिस्थिति में तत्परता के साथ क्रियाशील रह सके। यहाँ मैं इस सम्बन्ध में कि यह सब कैसे किया जाय कोई सुझाव नहीं देना चाहूँगा क्योंकि मैं अपनी राय बाद के लिए सुरक्षित रखूँगा। लेकिन मैं चाहूँगा आप सुझाव दें, जहाँ तक हो सके लिखित रूप में और चाहें तो मौखिक भी, कि अन्तःविनिमय (Interaction) की प्रणाली किस प्रकार विकसित की जाए ताकि विकास एवं प्रगति के मार्ग में आने वाले अवरोधों की हमें हर स्तर पर जानकारी मिलती रहे और हम केवल फाइलों के आगे-पीछे ऊपर-नीचे और कभी-कभी तो वर्तुलाकार संचालन में ही न उलझे रह जाएँ। मैं जानता हूँ कि जो मैं कह रहा हूँ वह प्रशासन में प्रचलित सिद्धांतों के विपरीत है। लेकिन मैं किसी चीज़ को तोड़ना चाहता हूँ ऐसा नहीं है। किसी भी चीज़ को बनाए रखते हुए भी उसमें सुधार की हमेशा संभावना बनी रहती है। मैं चाहता हूँ कि लोकसेवा के उस स्तर से लेकर जो यहाँ इस समय उपस्थित है निचले स्तर तक, हर स्तर से हमें इस प्रकार सुझाव मिलें कि आज जो कार्यक्रम चल रहे हैं उन्हें और अच्छी तरह किस प्रकार किया जा सकता है। मैं इस बात के लिए उनका कृतज्ञ रहूँगा।

बाहर से कोई व्यक्ति उन्हें भाषण दे इससे कहीं अधिक अच्छी बात यह होगी कि वे स्वयं इन प्रश्नों पर सोचना प्रारंभ करें, और यह अपने आप में एक सुखद अनुभव होगा। मैं चाहूँगा कि सचिव लोग अपने विभागों में चर्चा करें

और सुझाव तैयार करें और बतायें कि क्या सुझाव हैं। विधानसभा सत्र के बाद हम लोग पुनः मिल सकते हैं और उन सुझावों पर मुक्त चर्चा कर सकते हैं। आपने स्वयं अनुभव किया होगा कि आज हर स्तर पर एक प्रकार की निष्प्रभावी असंगति व्याप्त हो गई है। उदाहरण के लिए मुख्य-सचिव के लिए किसी जटिल समस्या पर किसी अवर सचिव के विचार जानना क्यों सम्भव नहीं हो पाता। मै उसकी बात नहीं कर रहा कि जो कुछ फाइल में लिखा गया है क्योंकि फाइल में जो कुछ भी लिखा गया है वह बहुत सोच-विचार कर लिखा गया होता है और वह शायद ही लिखने वाले के वास्तविक विचार होते हैं, हालाँकि मैं चाहता हूँ कि ऐसा होना चाहिए और कुछ मामलों में ऐसा होता भी है। लेकिन नीचे से जो कुछ भी ऊपर आता है वह हमेशा सबसे अच्छा नहीं होता। इसप्रकार के अन्तःविनिमय (Interaction) के संसार में आने से अग्रगामी प्रतिष्ठानों के विकास में सहायता मिली है क्योंकि वहाँ एक विभाग की समस्या पूरे प्रतिष्ठान की समस्या बन जाती है। जन समस्या पूरे प्रतिष्ठान की बन जाती है तो फिर वह केवल एक विभाग तक सीमित नहीं रह जाती और सब मिलकर उसका समाधान ढूँढ लेते हैं। जब तक समस्या केवल सचिव तक सीमित रहती है तब तक समस्या उसी व्यक्ति की रहती है। सबसे सरल तरीक़ा यह है कि फाइल पर हस्ताक्षर करके उसे आगे बढ़ा दिया जाए। तब वह समस्या उसकी नहीं रह जाती। मेरा विचार है कि इस संबंध में हमें कुछ करना चाहिए। सुझाव देने वालों में मैं अकेला नहीं हूँ इसीलिए मैं कोई सुझाव नहीं दे रहा हूँ लेकिन यदि सब मिलकर इस समस्या पर विचार करें तो अन्तःविनिमय (Interaction) की कोई प्रणाली अवश्य विकसित की जा सकती है जिससे सही अर्थो में एक दूसरे पर निर्भरता प्राप्त की जा सकती है।

प्रशासन के उच्च अधिकारियों को सम्बोधन - फरवरी 1984

लोक प्रशासन का दायित्व

यह मेरा कहना नहीं है कि आप जानते नहीं हैं या आपकी जानकारी नहीं है। जानकारी से मेरा मतलब शब्दकोष के अर्थ से नहीं वरन् उस जानकारी से है, अहसास से है जो वास्तव में जानकारी है, क्योंकि असली जानकारी ही वह बिन्दु है जहाँ से आगे की सारी बातें शुरू होती हैं। यह हमारा नया अधिकारिक कार्यक्रम है जो उन नीतियों के तहत है जिनका अनुमोदन राज्य की और देश की जनता ने किया है और इसीलिए समय-समय पर दिए गए नीति-निर्देशों के अनुरूप है। लेकिन यह केवल शासकीय कार्यक्रम नहीं है और इस बात का ध्यान रखना मैं समझता हूँ, अत्यन्त आवश्यक है। कल, आज और आने वाले कल पर बिना किसी प्रकार का आक्षेप किए मैं यह कहना चाहूँगा कि 'शासकीय' तो केवल चालू शब्द मात्र है जो दिन प्रतिदिन, वर्ष प्रति वर्ष चलता रहता है। आज कोई है यहाँ, कल दूसरा हो सकता है और परसों तीसरा। यह तो शासकीय व्यवस्था का एक ढंग मात्र है। लेकिन जब कुछ नीतियाँ और कार्यक्रम राज्य या देश की पूरी जनता को सीधे प्रभावित करते हैं तो वह केवल शासकीय नहीं रह जाते। मुझे विश्वास है कि आप सब मुझसे सहमत होंगे कि यह ऐसा ही एक कार्यक्रम है जो देश के हर क्रिया-कलाप को हर स्तर पर प्रभावित करता है। अगर कार्यक्रम के सभी अंगों पर नहीं तो कम से कम सभी महत्वपूर्ण अंगों पर तो शासन का ध्यान अधिक जाना ही चाहिए। यहाँ मैं कोई मिसाल देना नहीं चाहता क्योंकि यह मेरा अभिप्राय नहीं है। मैंने तो सिर्फ़ जागरूकता की आवश्यकता पर जोर दिया है और मुझे विश्वास है कि एक बार यह जागरूकता यदि आपमें आपके स्तर पर हो गई तो फिर आपके द्वारा औचित्य और विवेक के आधार पर यह जागरूकता नीचे के स्तरों तक भी फैल जायगी। यह सब आप पर निर्भर करता है क्योंकि साफ़ बात है कि इस प्रकार की जागरूकता नीचे से ऊपर की ओर नहीं आती। उसे तो ऊपर से ही नीचे की ओर जाना पड़ता है।

इधर पिछले कुछ महीनों में प्रधानमंत्रीजी ने अपने कई पत्रों में इस बात पर ज़ोर दिया है कि इन कार्यक्रमों पर नज़र रखने (MONITORING) का कोई तरीक़ा अपनाया जाय। जो कुछ भी हो रहा है उसमें आने वाली अड़चनों और असफलताओं को हम लोगों से अधिक और कोई नहीं जानता। फिर भी मैं समझता हूँ कि कार्यक्रमों पर नज़र रखने का हमारा जो तरीक़ा है उसमें और अधिक सुधार की ज़रूरत है। यह सब अपने आप ही नहीं हो जायगा। यह सही है कि इसमें कुछ यंत्रीकरण की आवश्यकता है। मैं तो उस दिन का इंतज़ार कर रहा हूँ जब श्री शिवरामन मुझसे कहेंगे कि यह सब कम्प्यूटर पर कर लिया जाए, हालाँकि इस पर काफ़ी कुछ विवाद हो सकता है, फिर भी मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। लेकिन जब तक यह सम्भव हो पाये तब तक ज़रूरत इस बात की है कि निर्णय लेने के हर स्तर पर इस प्रकार की व्यवस्था विकसित की जाए कि कार्यक्रम पर पूरी नज़र रखी जा सके। यह संभव नहीं है कि कोई व्यक्ति भोपाल में बैठा रहकर या रायपुर, बिलासपुर, इन्दौर या उज्जैन में बैठा रहकर एकाएक यह जान ले कि प्रदेश में क्या कुछ हो रहा है। यह तभी हो सकता है कि जबकि कार्यान्वयन के हर स्तर पर, सबसे नीचे के स्तर से ज़िला स्तर तक और ज़िला स्तर से कमिश्नर स्तर तक और वहाँ से राज्य स्तर तक अच्छी-बुरी हर जानकारी मुक्त रूप से प्राप्त होने की व्यवस्था हो। यहाँ मैं इस बात पर ज़ोर देना चाहूँगा कि ऐसी बातें या सूचनाएँ जो अच्छी

न लगने वाली हों, उनको छिपा लेने की प्रवृत्ति अच्छी नहीं है इससे स्वयं का ही नुक़सान होता है और किसी का भी भला नहीं होता। कम से कम इससे कार्यक्रम और उसके क्रियान्वयन में तो फ़ायदा नहीं ही होता। इससे उस व्यक्ति को भले कुछ लाभ हो और जो औरों से यह छिपाना चाहता है कि वह कुछ नहीं कर पाया। कम से कम आप मुझे तो उनमें शामिल मत कीजिए।

मैं आपसे, राज्य की जनता से और विशेष रूप से अपनी प्रधानमंत्री से कुछ भी छिपाना नहीं चाहता, अगर मैं कुछ नहीं कर पाया या कुछ ग़लत कर गया तो मेरा प्रयत्न होगा कि मैं उसमें सुधार करूँ और यह तभी सम्भव हो सकेगा जब आप सबका सहयोग इस काम में मुझे मिले। इसलिए मैं समझता हूँ कि कार्यक्रम में मॉनिटरिंग की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इसके अभाव में हम ऐसे अनेक कार्यों की सही सूचनाएँ, जिनका हमको श्रेय मिलना चाहिए था, समय पर नहीं दे पाए। मैं उनकी बात नहीं कर रहा हूँ जो हम नहीं कर पाए वरन् उनके जो कार्य हमने किए हैं, उनकी सूचनाएँ भी नहीं दी जा सकीं क्योंकि जहाँ पर यह कार्य हुआ वहाँ मॉनिटरिंग की उचित व्यवस्था न होने से आपको भी पता नहीं लगा और जब आपको ही पता नहीं तो मुझे भी मालूम नहीं हुआ और इसीलिए प्रधानमंत्री सचिवालय तक भी बात नहीं पहुँच पाई। इसलिए मैं मुख्य सचिव से यह कहूँगा कि 20 सूत्री कार्यक्रम के क्रियान्वयन में जो भी विभाग संलग्न हों उनमें क्षेत्र से लेकर सचिवालय तक जानकारी प्राप्त होने की उचित व्यवस्था की जाए और इस संबंध में कार्य विभाजन करके, जो भी कठिनाई सामने आयें उनका प्राथमिकता के आधार पर निराकरण किया जाए।

अब मैं समस्या के एक दूसरे पहलू पर आता हूँ। यह पहलू है व्यक्तिगत साझेदारी या अभिरुचि का जो मेरे विचार से हम सभी में होता है कि हम जो भी कर रहे हैं या कर सकते हैं या करेंगे उसमें व्यक्तिगत अभिरुचि और ज़िम्मेदारी होती है। यह एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि सरकारी व्यवस्था या कार्यप्रणाली निर्वैयक्तिक होती है और यह ऐसी ही रहनी चाहिए इसमें मतभेद की गुंज़ाइश नहीं है। जब आप और मैं इस व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक सुविधाओं का उपयोग कर रहे हैं तो मैं समझता हूँ कि यह हम सबकी ज़िम्मेदारी हो जाती है कि हम अपने कार्यों में कुछ अधिक व्यक्तिगत अभिरुचि का प्रदर्शन करें जिससे मेरे विचार से सरकारी कामकाज कुछ अच्छा चलाने में मदद मिलेगी। मैं आपसे किसी व्यक्ति विशेष में, या किसी विशेष प्रोजेक्ट में, किसी के स्थानान्तर या पदस्थापना या इसी तरह की बातों में अभिरुचि लेने के लिए नहीं कहता, लेकिन ऐसे कार्यक्रम जो हमारे देश और समाज के लिए महत्वपूर्ण हैं उनमें अगर व्यक्तिगत अभिरुचि और साझेदारी की भावना से काम किया जाए तो बहुत कुछ हो सकता है। अब यह कैसे किया जाए यह व्यक्तिगत प्रश्न है और मैं यह आप पर ही छोड़ता हूँ। मेरा अभिप्राय तो सिर्फ़ इस ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना था।

इसके बाद सवाल आता है अनुशासन का। इतने वरिष्ठ जनसेवा के अधिकारियों के समक्ष जो यहाँ उपस्थित हैं मैं अनुशासन जैसे विषय पर बात कहाँ से शुरू करूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। फिर भी मैं समझता हूँ कि सतीत्व (CHASTITY) का तरह अनुशासन भी घर से ही शुरू होना चाहिए और इस संबंध में क्या किया जाना चाहिए वह सचिवालय से ही प्रारंभ होना चाहिए। इसलिए यहाँ मैं आप सबके सामने मुख्य सचिव महोदय जो कि राज्य में जनसेवा के मुखिया हैं, यह कहना चाहूँगा कि यह बुनियादी तौर पर उन्हीं का मामला है और इस संबंध में वह जो भी क़दम उठाएंगे उसमें मेरी पूरी सहमति एवं समर्थन मिलेगा। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में और कुछ मैं नहीं कहना चाहता क्योंकि वह उनके अधिकार एवं विवेक पर अतिक्रमण होगा।

इसके बाद जो बात मैं आपके समक्ष रखना चाहता हूँ वह अनेक बार उठाई जा चुकी है और उस पर कुछ

करने का प्रयत्न भी हुआ है लेकिन मुझे लगता है कि हम लोग उस बात की गहराई तक नहीं पहुँचे हैं। यह बात हमारे प्रशासनिक कार्यों के कामकाज की प्रणाली पर असर डालती है या यों कहें कि उन कार्यों से किसको क्या फ़ायदा-नुक़सान हुआ इसकी जानकारी भी ज़रूरी है। कभी-कभी ऐसे कार्यों से राज्य के नागरिकों का बहुत अधिक नुकसान भी हो जाता है और उसका हमारे कार्यों पर असर होता है। हम इस प्रकार के सभी कार्यों के असर की जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि यह एक प्रकार से असंभव है। लेकिन हमें यह जानना आवश्यक है कि हमारी मूल नीतियों या प्रमुख कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का या क्रियान्वयन न हो पाने का जनता पर क्या असर पड़ा है और उसकी प्रतिक्रिया क्या है। मेरी छोटी बुद्धि के अनुसार यह काम दो प्रकार से हो सकता है। एक तो यह कि अफसरगण स्वयं क्रियान्वयन के स्तर पर उन लोगों से जिनके लिए यह कार्यक्रम लागू किया जा रहा है बहुत नज़दीक का सम्पर्क रखें। लेकिन इसमें ख़तरा भी है और नई समस्याएँ भी खड़ी हो सकती हैं, एक ऐसा समय भी था जब अफसरों को इस बात की पूरी जानकारी रहती थी कि उनके चारों तरफ़ क्या हो रहा है।

मैं समझता हूँ कि आप इस बात से असहमत नहीं होंगे कि जब आपको यह बताना पड़ता है कि आपके चारों तरफ़ क्या हो रहा है और यह इस बात को भी उजागर करता है कि अब हमारे कर्त्तव्य कितने संशिलष्ट हो गये हैं, काम का बोझ कितना बढ़ गया है कि हम उस जानकारी से भी कट कर रह गये हैं जो एक प्रजातांत्रिक और संवेदनशील सरकार को चलाने के लिए नितान्त आवश्यक है। ऐसे अनेक मामले हैं जिन पर हम जो करना चाहते थे, आप जो करना चाहते थे और जो उन मामलों में उचित था, क्रियान्वयन की मंज़िल पर पहुँचते-पहुँचते कुछ का कुछ हो गया और उसके वह नतीजे समाने आए जो हम नहीं चाहते थे। यहाँ एक मिसाल लें वन विभाग की। प्रधानमंत्री से लेकर नीचे तक हम सभी यह चाहते हैं कि वनों की सुरक्षा की जाए और इसे अत्यावश्यक समस्या के रूप में क्रियान्वित किया जाय इस सम्बन्ध में जो कुछ भी किया जाय उसका असर सब पर होगा, मतलब यह कि वनों की सुरक्षा के प्रति हम सभी एक मत से क़दम उठाना चाहते हैं। लेकिन क्या आप जानते हैं कि इस सम्बन्ध में क्या हो रहा है और उसका लोगों पर क्या असर है, उनकी प्रतिक्रिया क्या है? सवाल यह है कि वनों की सुरक्षा का प्राथमिक भार किस पर है? वनों की सुरक्षा के लिए जो ज़िम्मेदार हैं उनको आप क़ायम करने के लिए डरा-धमका सकते हैं अच्छे काम के लिए इनाम दे सकते हैं, ग़लतियों के लिए सज़ा भी दे सकते हैं लेकिन बुनियादी तौर पर यह भार उन लोगों पर है जो वनों के चारों तरफ़ रहते है और वही वनों की सुरक्षा कर सकते हैं। आप कितनी भी पुलिस, सेना या अफसरों की फ़ौज इस कार्य के लिए लगा लो, वह कुछ भी नहीं कर पायगे जो यह जनता कर सकती है। अब अगर ये लोग इस कार्यक्रम से अलग रखें जाएँ या उनको यह जानकारी न हो कि आप जो कर रहे हैं उसका उद्देश्य क्या है तो उनकी प्रतिक्रिया यह होगी कि उनके दैनिक जीवन का या उनके हितों का अतिक्रमण हो रहा है। अब आप समझ सकते हैं कि इससे किस प्रकार की समस्या खड़ी हो जायगी। वास्तविकता यह है कि आज यही स्थिति है।

मेरी यह मान्यता है, न केवल जो कुछ मैं आपसे सुन रहा हूँ उसके आधार पर, वरन् मेरे अपने सम्पर्क सूत्रों द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर भी कि हमारी वन नीति पूरी तरह असफल हो रही है, सिर्फ़ इसलिए कि बुनियादी तौर पर वनों की सुरक्षा जिनके सहारे संभव है हमारा इस सम्बन्ध में उनसे सम्पर्क बिलकुल नहीं के बराबर है। यह स्थिति अन्य क्षेत्रों में भी हो सकती है। जब तक जनता से आदान-प्रदान की नीति पर अमल नहीं होगा हमारा कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। आप कुछ लोगों को कहीं और काम करने के लिए मना लेंगे लेकिन जब तक जनता का जिस पर बुनियादी भार है, वनों की सुरक्षा के लिए पूर्ण सहयोग नहीं प्राप्त होगा तब तक कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता। मैं नहीं जानता कि आप इस समस्या से कैसे निपटेंगे। आप में से कुछ जो इस कार्यक्रम से जुड़े हैं उन्होंने शायद

इस ओर कुछ सोचा हो लेकिन कम से कम मुझ तक अभी यह बात नहीं आई कि आप इस दिशा में कोई प्रयास कर रहे हैं। वन रक्षकों की संख्या बढ़ाने या उन्हें 12 बोर की बन्दूकें देने या बाद में मशीनगन देने से इस समस्या का निदान नहीं हो सकता। मैं समझता हूँ कि वनों की सुरक्षा का यह रास्ता नहीं है। उलटे इससे और नई समस्याएँ भी खड़ी हो सकती हैं। मैं सिर्फ़ इस महत्वपूर्ण समस्या का एक उदाहरण आपके सामने रख रहा हूँ.... इसलिए इस सम्बन्ध में भी मैं मुख्य सचिव से आग्रह करूँगा कि हर ज़िले में सचिवालय और विभागाध्यक्ष के स्तर पर जहाँ भी लोगों का जनता से सम्पर्क होता है, इस प्रकार की व्यवस्था प्रारम्भ की जाए और थोड़े से प्रयासों से मैं समझता हूँ कि यह काम मुश्किल नहीं होगा।

अब यहाँ सचिवालय की कार्यप्रणाली पर आएँ। यह एक नाज़ुक मामला है। मैं भी यहाँ सचिवालय में बैठता हूँ इसलिए जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसका थोड़ा बहुत लक्ष्य मुझ पर भी हो सकता है। लेकिन इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि उसका लक्ष्य किस पर है मुझ पर या किसी पर भी, जो बात सार्वजनिक हित में है उसे कहा ही जाना चाहिए क्योंकि वह महत्त्वपूर्ण है। यहाँ यह पता ही नहीं चलता कि क्या हो रहा है? केवल सचिवालय के बाहर की बात नहीं, सचिवालय के अन्दर भी क्या हो उसका कुछ पता नहीं चलता, यह एक त्रासदाई स्थिति है। कभी कहा जाता है कि फाइल यहाँ है। कभी वहाँ.... किसी-किसी विभाग में अवर सचिव (UNDER SECRETARY) के स्तर तक कोई उपलब्ध नहीं होता। तब सेक्शन क्लर्क से पूछो तो वह बताता है कि फाइल अवर सचिव के पास होगी या उपसचिव या सचिव के पास और संयोग से वे सभी दौरे पर होते हैं। इस सम्बन्ध में, मैं भी कुछ कसूरवार हूँ और अब इस नए वर्ष में, मैं प्रयत्न करूँगा कि महीने में सात दिनों से अधिक दौरे पर न जाऊँ। मैं कोशिश करूँगा कि जब तक अत्यावश्यक न हो न जाऊँ और क्या इस संदर्भ में, मैं कम से कम अपने वरिष्ठ सचिवों से अनुरोध करूँ कि वे जब तक अत्यावश्यक न हो भोपाल के बाहर न जायँ और अगर जहाँ विशेष सचिवों के जाने से काम चल सकता हो, वहाँ उन्हें ही भेजा जाए और अगर भोपाल में रहकर काम चल सकता हो तो बाहर से लोगों को यहाँ बुला लिया जाए। यह बाहर जाने के मुक़ाबले अधिक सुविधाजनक रहेगा। मैं समझता हूँ कि इससे प्रशासन के सुधार पर एक अच्छा असर पड़ेगा और काम में बहुत अन्तर आयगा, काम के समय में और नियमितता में। मैं समझता हूँ कि यह सब समझते हैं लेकिन आपकी उपस्थित से सचिवालय के शासकीय कार्य पर निश्चय ही अच्छा असर पड़ेगा।

अब एक बात और जो सामयिक भी है और अत्यन्त महत्वपूर्ण भी। वह है हमारे कार्यों में बचत का प्रश्न। मुझे उम्मीद है आप समझेंगे अगर मैं अनौपचारिक ढंग से यह कहूँ कि कभी-कभी मैं यह महसूस करता हूँ कि मुझे किसी काम को करना चाहिए और उसमें सार्वजनिक कोष (PUBLIC EXCHEQUER) से ख़र्च होना होता है तो जब मुझे श्री शिवरामन यहाँ बताते हैं कि यह ख़र्च मुझे नहीं करना चाहिए। मुझे दुःख होता है और मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या इसमें वह कुछ नहीं कर सकते? अब यह सब बातें तो ऊपरी हैं। हम यह समझते हैं कि किस ख़र्च में बचत की जा सकती है और उस बचत का पैसा किस विकास कार्य में ख़र्च होना चाहिए। लेकिन यह सब हमारे दैनिक कार्यकलापों में परलक्षित नहीं होता। मुझे विश्वास है कि प्रत्येक सचिव, प्रत्येक विभागाध्यक्ष इस तरह के मुद्दों पर बिना किसी हिचक के ऊँगली रख सकते हैं कि कहाँ ख़र्च में कमी की जा सकती है और सरकारी धन की बचत हो सकती है। लेकिन यह क्यों नहीं संभव हो पाता वह भी मैं समझता हूँ; क्योंकि कभी-कभी कुछ ऐसी मजबूरियाँ होती हैं कि ख़र्च रोका नहीं जा सकता और कभी आप तो रोकना चाहते हैं लेकिन आप से निचले स्तर पर जो हैं वह आपकी तरह नहीं सोचते। नतीजा सामने है। मेरे विचार से व्यय वाले उन सभी विभागों में जैसे सिंचाई, सार्वजनिक निर्माण विभाग, वन विभाग या और भी इस तरह के विभागों के सम्बन्ध में सचिवालयीन स्तर पर इस समस्या का गहन

विचार-मंथन होना चाहिए क्योंकि हमारी योजना के स्रोत सूखते जा रहे हैं। इसके अनेक कारण हो सकते हैं लेकिन हम अपने योजना सम्बन्धी प्रयत्नों में ढील नहीं आने दे सकते और यह तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक हम अपने साधनों को बढ़ायँगे नहीं और जो साधन हैं उनकी उचित रक्षा नहीं करेंगे जिससे इन स्रोतों में उनका इस्तेमाल उन योजनाओं पर हो सके जो योजनाएँ सीधे जनता को लाभ पहुँचाने वाली हैं। मैं इसमें नहीं जाना चाहता कि कितनी बचत की जा सकती है— इस संबंध में मंत्रिमण्डल के निर्णय आपके सामने हैं, सरकुलर भी हैं, सब कुछ है— उसे वहीं रहने दें। मैं तो इस सम्बन्ध में आपके व्यक्तिगत प्रयत्नों की बात कर रहा हूँ।

मुझे विश्वास है कि आप सब यह निर्णय ले सकते हैं कि किसी मद में कौनसा ख़र्च इस समय आसानी से रोका जा सकता है, इस वर्ष या अगले वर्ष। मेरा मतलब यह नहीं है कि वह बचत का पैसा आपके अपने ही विभाग से ले लिया जायगा। लेकिन आपके अपने ही विभाग में ऐसे भी कार्य हो सकते हैं जिन पर किसी वजह से ध्यान नहीं दिया जा रहा होगा और इस धन से जो इस प्रकार कम महत्त्वपूर्ण मदों पर ख़र्च होने से बचाया गया है वे कार्य पूरे किए जा सकेंगे। इसलिए इस सम्बन्ध में कोई भ्रम नहीं होना चाहिए कि जो बचत आप करेंगे वह आपके विभाग से लेकर किसी दूसरे विभाग को दी जाएगी। वह धन आपके अपने ही विभाग में अधिक अच्छी प्रकार ख़र्च किया जा सकेगा। क्योंकि यह तो आप सब जानते हैं कि पैसा कम है और कार्य बहुत अधिक। इसलिए मैं चाहता हूँ कि यह प्रयत्न किए जाएँ क्योंकि अगले दो वर्ष आय के साधनों के संबंध में बहुत कठिन वर्ष होंगे और जब तक हम इस प्रकार साधनों का विकास नहीं करें तब तक काफ़ी मुश्किल का सामना करना पड़ेगा।

मैं समझता हूँ कि कुछ कार्यों में व्यावसायिक दक्षता की आवश्यकता है और यह व्यावसायिक कार्यक्षमता निश्चय ही विकसित की जा सकती है। हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि जिन कार्यों में व्यावसायिक दक्षता की आवश्कता होती है उनमें वह परलक्षित हो। यह बात उन सभी विभागों पर लागू होती है जो विकास कार्यों में संलग्न हैं। मुझे प्रसन्नता होगी अगर वरिष्ठ सचिव और विभागाध्यक्ष मिल बैठकर इस सम्बन्ध में अनौपचारिक ढंग से चर्चा करें- मैं अनौपचारिकता पर ज़ोर इसलिए दे रहा हूँ कि औपचारिकता के तहत फिर कुछ नहीं हो पाता। वे विचार करें और हमें बतायें कि वे क्या सोचते हैं फिर हम लोग इस सम्बन्ध में 15-20 दिन बाद विचार-विमर्श करके कुछ व्यवस्था कुछ ढाँचा ऐसा प्रस्तुत करें जिससे यह सब हो सके।

ये कुछ ख़ास-ख़ास बातें थीं जो मैं आपके समक्ष रखना चाहता था। अंत में, मैं कहीं फिर दुहराना चाहूँगा कि जो मैंने पिछली बार की बैठक में कहा था कि हम सब उस प्रयत्न के साझीदार हैं जो सिर्फ़ पारम्परिक विचार-विमर्श नहीं वरन् ज़िन्दगी और मौत का सवाल है- शाब्दिक अर्थों में नहीं, कम से कम भावनात्मक रूप से राज्य की जनता के लिए, वे लोग पिछड़े हुए हैं क्योंकि उनके पास धन का अभाव है, वे अपढ़ हैं और इसलिए हमसे कुछ संवेदनशीलता की आशा की जाती है। जहाँ तक हमारा सवाल है, प्रजातांत्रिक व्यवस्था ने हमें एक उत्तरदायित्व सौंपा है और आपको जो जनसेवा के सम्मानित सदस्य हैं एक कर्त्तव्य कि हम उनकी आशाओं और आकाँक्षाओं को मूर्त रूप दें। आशा, जैसा कि आप जानते हैं कि एक बहुत बड़ा अस्त्र होती है और उससे बड़े करिश्में संपन्न हो सकते हैं। साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि निराशा और हताशा जनित दुःसाहस भी उतने ही बड़े प्रेरणा के स्त्रोत होते हैं। इन दोनों के संतुलित संमिश्रण ने, इतिहास साक्षी है कि बहुत से राष्ट्रों का हुलिया ही परिवर्तित कर दिया, विश्व का इतिहास अनेक बार बदल दिया, लेकिन अगर यह संतुलन बिगड़ गया तो इसका उलटा भी उसी आवेग के साथ घटित हुआ है और जो व्यवस्थाएँ अपने को बहुत महत्त्वपूर्ण समझती थीं और शायद अपने चारों ओर होने वाले घटनाक्रमों से अवगत नहीं रहीं, उन्हें चुपचाप इतिहास के गर्त में ढकेल दिया गया।

यह जो कुछ मैं कह रहा हूँ इसे आप केवल वाक्पटुता के रूप में न लें। यह हमारी आपकी नियति है जिससे हम और आप बँधे हैं जिसे आप चाहें पसन्द करते हों या मैं पसन्द करता हूँ यह अपने आप में नगण्य है। बात सिर्फ़ इतनी है कि हमें अवसर मिला है कुछ उपलब्ध करने के लिए अपने लिए नहीं क्योंकि आज कौन कह सकता है कि हमारे आपके सामने ज़रूरतों को पूरी करने की समस्या है जिस देश में उसको भाग्यवान समझा जाता है जिसको प्रतिदिन एक रोटी नसीब हो जाती हो, वहाँ मैं समझता हूँ कि हम उन देशवासियों से अच्छी स्थिति में हैं। लेकिन इसीलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि हम यह समझें कि हमें जो अवसर मिला है वह अपने लिए नहीं, लोगों के लिए कुछ करने के लिए है, उन लोगों के लिए जिनके प्रति अपने-अपने तरीक़े से हम और आप ज़िम्मेदार हैं। हम उनके प्रति ज़िम्मेदार तो हैं लेकिन उनके ऊपर नहीं हैं। यह प्रवृत्ति कि सायं पाँच बजे के बाद सबेरे के 10.30 के बीच कुछ भी होता हो हम ज़िम्मेदार नहीं हैं। इस देश में नहीं चल सकती। यह प्रवृत्ति अमरीका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, या अन्य देशों में भले ही चल जाए लेकिन भारत में जिसके हम नागरिक हैं बिलकुल नहीं चल सकती और अगर इस संदर्भ में हम अकेले पड़ गए, अकेले दूरी के अर्थ में नहीं, भावनाओं में, अपनत्व में, वोटों में और साधारण-जन के लिए हमें जो कुछ करना चाहिए उसे न करने के अर्थ में, तो आप अपनी पेंशन तो कमा लेंगे और मैं भी अपना कार्यकाल पूरा कर लूँगा लेकिन देश जहाँ था वहाँ का वहीं रह जायगा।

मुझे विश्वास है कि प्रबुद्ध और समर्पित लोग होने के नाते आप इस स्थिति से संतुष्ट तो नहीं होंगे और मैं तो कतई नहीं। इसी कारण से समर्पण तथा विश्वास के साथ अतिरिक्त प्रयत्नों की आवश्यकता है। कभी-कभी यहाँ-वहाँ यह कहा जाता है कि मैं लोक सेवा के लोगों के विरुद्ध हूँ, या मैं उनका उतना आदर नहीं करता जितना करना चाहिए या यह कि मेरा बर्ताव उनके प्रति एक प्रकार से सनक भरा होता है। विश्वास मानिए कि मुझसे बड़ा मित्र आपको नहीं मिलेगा। मैंने एक नहीं लोक सेवा की दो-दो पीढ़ियों के साथ कार्य किया है। पिछले 25 वर्षों में जो लोग लोक सेवा में आए हैं, जो आज यहाँ नहीं हैं और जो मेरे साथ काम कर चुके हैं वह यह जानते हैं कि यह सच नहीं है। दूसरे इंसानों की तरह मुझ में भी कुछ कमज़ोरियाँ हैं, हो सकता है दूसरों से दस प्रतिशत अधिक हों लेकिन यह सब तो मानव स्वभाव की बात है। उन्हीं कमज़ोरियों के कारण मैं कुछ बातें बिलकुल बर्दाश्त नहीं कर पाता महत्त्वपूर्ण मामलों में जो केवल इसीलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि आप लोक सेवा में हैं मानव होने के नाते भी, ऐसे मामलों में उदासीनता या लापरवाही बरतना जैसे कहीं अन्याय हो रहा हो या निरंकुश व्यवहार का मामला हो, बर्दाश्त नहीं कर पाता। ऐसे मामलों में यह कहना या सोचना कि हमें क्या पड़ी है या हम क्यों परेशान हों, ग़लत है। किसके लिए परेशान न हों? हम अपने लिए तो लापरवाह हो सकते हैं लेकिन उनके लिए जिन्होंने अपना हित आपके हाथों में संरक्षण के लिए दिया है कैसे लापरवाह हो सकते हैं, उनके कष्टों के प्रति उनके हितों के प्रति हम कैसे उदासीन हो सकते हैं। मुझे दुःख, के साथ कहना पड़ता है कि यदि ऐसा होगा तो उस स्थिति में, मैं किसी का भी ख़याल नहीं रख पाऊँगा।

मैं एक अपनी व्यक्तिगत बात आपको बताता हूँ जिससे आप मेरे इस स्वभाव को अच्छी तरह समझ सकें। बहुत दिन पहले 1956 में जब मैं राजनीति में आया भी नहीं था एक मामले में मैंने सोचा कि शायद मेरे पिताजी ने एक साधारण आदमी के साथ अन्याय तथा निरंकुश वर्ताव किया है। मैंने न्यायालय में अपने पिता की उपस्थिति में उनके विरुद्ध गवाही दी। अगर न्यायालय ने मेरी गवाही मान ली होती तो मेरे पिता को तीन वर्षों का कारावास भी हो सकता था। तब आप कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि मैं इस तरह की बातें बरदाश्त करूँगा? अगर कोई यह उम्मीद करता है तो मेरा कहना है कि मुझे क्षमा कीजिए, अब काफ़ी देर हो गई है, मैं बदल नहीं सकता। इस तरह की बातों को छोड़कर बाक़ी सब तरह की सलाह, सब तरह के सुझाव सब तरह के विचार-विमर्श के लिए मैं तत्पर

यह जो कुछ मैं कह रहा हूँ इसे आप केवल वाक्पटुता के रूप में न लें। यह हमारी आपकी नियति है जिससे हम और आप बँधे हैं जिसे आप चाहें पसन्द करते हों या मैं पसन्द करता हूँ यह अपने आप में नगण्य है। बात सिर्फ़ इतनी है कि हमें अवसर मिला है कुछ उपलब्ध करने के लिए अपने लिए नहीं क्योंकि आज कौन कह सकता है कि हमारे आपके सामने ज़रूरतों को पूरी करने की समस्या है जिस देश में उसको भाग्यवान समझा जाता है जिसको प्रतिदिन एक रोटी नसीब हो जाती हो, वहाँ मैं समझता हूँ कि हम उन देशवासियों से अच्छी स्थिति में हैं। लेकिन इसीलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि हम यह समझें कि हमें जो अवसर मिला है वह अपने लिए नहीं, लोगों के लिए कुछ करने के लिए है, उन लोगों के लिए जिनके प्रति अपने-अपने तरीक़े से हम और आप ज़िम्मेदार हैं। हम उनके प्रति ज़िम्मेदार तो हैं लेकिन उनके ऊपर नहीं हैं। यह प्रवृत्ति कि सायं पाँच बजे के बाद सबेरे के 10.30 के बीच कुछ भी होता हो हम ज़िम्मेदार नहीं हैं। इस देश में नहीं चल सकती। यह प्रवृत्ति अमरीका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, या अन्य देशों में भले ही चल जाए लेकिन भारत में जिसके हम नागरिक हैं बिलकुल नहीं चल सकती और अगर इस संदर्भ में हम अकेले पड़ गए, अकेले दूरी के अर्थ में नहीं, भावनाओं में, अपनत्व में, वोटों में और साधारण-जन के लिए हमें जो कुछ करना चाहिए उसे न करने के अर्थ में, तो आप अपनी पेंशन तो कमा लेंगे और मैं भी अपना कार्यकाल पूरा कर लूँगा लेकिन देश जहाँ था वहाँ का वहीं रह जायगा।

मुझे विश्वास है कि प्रबुद्ध और समर्पित लोग होने के नाते आप इस स्थिति से संतुष्ट तो नहीं होंगे और मैं तो कतई नहीं। इसी कारण से समर्पण तथा विश्वास के साथ अतिरिक्त प्रयत्नों की आवश्यकता है। कभी-कभी यहाँ-वहाँ यह कहा जाता है कि मैं लोक सेवा के लोगों के विरुद्ध हूँ, या मैं उनका उतना आदर नहीं करता जितना करना चाहिए या यह कि मेरा बर्ताव उनके प्रति एक प्रकार से सनक भरा होता है। विश्वास मानिए कि मुझसे बड़ा मित्र आपको नहीं मिलेगा। मैंने एक नहीं लोक सेवा की दो-दो पीढ़ियों के साथ कार्य किया है। पिछले 25 वर्षों में जो लोग लोक सेवा में आए हैं, जो आज यहाँ नहीं हैं और जो मेरे साथ काम कर चुके हैं वह यह जानते हैं कि यह सच नहीं है। दूसरे इंसानों की तरह मुझ में भी कुछ कमज़ोरियाँ हैं, हो सकता है दूसरों से दस प्रतिशत अधिक हों लेकिन यह सब तो मानव स्वभाव की बात है। उन्हीं कमज़ोरियों के कारण मैं कुछ बातें बिलकुल बर्दाश्त नहीं कर पाता महत्त्वपूर्ण मामलों में जो केवल इसीलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि आप लोक सेवा में हैं मानव होने के नाते भी, ऐसे मामलों में उदासीनता या लापरवाही बरतना जैसे कहीं अन्याय हो रहा हो या निरंकुश व्यवहार का मामला हो, बर्दाश्त नहीं कर पाता। ऐसे मामलों में यह कहना या सोचना कि हमें क्या पड़ी है या हम क्यों परेशान हों, ग़लत है। किसके लिए परेशान न हों? हम अपने लिए तो लापरवाह हो सकते हैं लेकिन उनके लिए जिन्होंने अपना हित आपके हाथों में संरक्षण के लिए दिया है कैसे लापरवाह हो सकते हैं, उनके कष्टों के प्रति उनके हितों के प्रति हम कैसे उदासीन हो सकते हैं। मुझे दुःख, के साथ कहना पड़ता है कि यदि ऐसा होगा तो उस स्थिति में, मैं किसी का भी ख़याल नहीं रख पाऊँगा।

मैं एक अपनी व्यक्तिगत बात आपको बताता हूँ जिससे आप मेरे इस स्वभाव को अच्छी तरह समझ सकें। बहुत दिन पहले 1956 में जब मैं राजनीति में आया भी नहीं था एक मामले में मैंने सोचा कि शायद मेरे पिताजी ने एक साधारण आदमी के साथ अन्याय तथा निरंकुश बर्ताव किया है। मैंने न्यायालय में अपने पिता की उपस्थिति में उनके विरुद्ध गवाही दी। अगर न्यायालय ने मेरी गवाही मान ली होती तो मेरे पिता को तीन वर्षों का कारावास भी हो सकता था। तब आप कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि मैं इस तरह की बातें बरदाश्त करूँगा? अगर कोई यह उम्मीद करता है तो मेरा कहना है कि मुझे क्षमा कीजिए, अब काफ़ी देर हो गई है, मैं बदल नहीं सकता। इस तरह की बातों को छोड़कर बाक़ी सब तरह की सलाह, सब तरह के सुझाव सब तरह के विचार-विमर्श के लिए मैं तत्पर

हूँ। ऐसा शायद एक भी अवसर नहीं होगा जब मैंने किसी मामले में किसी के उचित विचारों को अनसुना किया हो, क्योंकि मैं जानता हूँ कि किसी भी मामले में अन्तिम निर्णय मेरा ही नहीं होगा आप भी उसमें बराबर के भागीदार होंगे। इसलिए मैं आप जो कहना चाहते हैं वह कहने से क्यों रोकूँ जबकि मैं जानता हूँ कि निर्णय लेने के मामले में आप भी भागीदार हैं।

मैंने आपसे यह सब कहने का अवसर इसलिए निकाला कि अभी लगभग दो सप्ताह पूर्व बातचीत के दौरान प्रधानमंत्री जी ने हमसे कहा था कि अब इधर-उधर की बातें करके या दिखावा करके कि हम कुछ कर रहे हैं, जनता जिसकी सेवा का व्रत हमने लिया है, आकाँक्षाओं पर पानी नहीं फेरा जा सकता और न ही उन्हें भुलावे में रखा जा सकता है। अब हमें परिणाम दिखाने का प्रयत्न करना है और इन प्रयत्नों में राज्य की लोक सेवा को महत्त्वपूर्ण एवं प्रयत्नों में आपको पूर्ण एवं बिना शर्त सहयोग प्राप्त होगा और मुझे विश्वास है कि जो ज़िम्मेदारियाँ मुझ पर हैं उनको पूरा करने में मुझे आपका भी बराबर का सहयोग प्राप्त होगा।

प्रशासन के उच्चाधिकारियों को फरवरी 1984 में दिया गया उद्‌बोधन।

इस क़दम का उद्देश्य दुर्बल न हो जाए

आप सबसे आज यहाँ आने का निवेदन इसलिए किया गया है कि आप इस अभ्यास में सीधे शिरकत कर सकें जो केवल कार्यालयीन अभ्यास नहीं है, वरन् ऐसा अभ्यास है जिसमें लाखों लोगों की आशा और निराशा गुँथी हुई है।

इसीलिए सरकारी स्तर पर इस अभ्यास की समाप्ति केवल उस बिन्दु पर नहीं होनी चाहिए कि दिन का काम समाप्त होने के साथ कर्त्तव्य की इतिश्री हो जाये। आपसे जो अपेक्षा है वह सामान्य कर्त्तव्य निर्वाह से कहीं आगे है क्योंकि जैसा कि मैंने कहा, इससे न केवल हमारे साथी नागरिक जुड़ते हैं, वरन् वे नागरिक भी जुड़ते हैं ज़ो, अब तक लगभग क़ानून के दायरे से अछूते रहे हैं, जिनके लिए क़ानून का मूर्त्तन उजाड़ने वाले दस्ते के रूप में होता था, या उन लोगों के रक्षक के रूप में जो उनकी ग़रीबी पर पनपते थे।

यह कहा गया है कि हमने परिणामों की परवाह किए बिना जल्दबाज़ी में क़दम उठाया है, यह शब्दशः भले ही सही न हो लेकिन मैं यह स्वीकार करता हूँ कि रूपकात्मक दृष्टि से यह सही है क्योंकि इसका विकल्प यह था कि हम क्या सही और क्या ग़लत है अथवा क्या किया या नहीं किया जा सकता, इस पर मंथन करते हुए कार्रवाई टालते जाये, जैसा कि हमने पिछले अनेक वर्षों से किया है।

मैं नहीं कह सकता कि आप में से कितने लोगों को यह स्मरण होगा कि प्रत्येक आवास और शहरी विकास के लगभग हर सम्मेलन या बैठक में मैंने बार-बार यह बात दोहराई कि इस दिशा में प्रयास करते हुए हमारी पहली चिन्ता इन्हीं लोगों के प्रति होनी चाहिए।

शायद हमारी व्यवस्था ऐसी बातों को सुने जाने के अनुरोध की अनदेखी करती है। इसीलिये जानबूझकर और पूरी तरह विचार करने के बाद हमने यह नई पहल करने का निर्णय लिया जो दूसरे सिरे से शुरू होती है, उस सिरे से जहाँ हमारे नागरिक वस्तुतः रहते हैं।

हमने इस बात का पहले परीक्षण किया और तब दिया। वह अब उनका है और अब हम सबको यह सुनिश्चित करना है कि जो उन्हें दिया गया है वह उनसे न छीने। पहली और दूसरी पहल में यही अन्तर है।

यह संभव है कि कुछ लोग ऐसा अनुभव करें कि यह पहल ग़लत है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी राय बनाने का अधिकार है, लेकिन सच यह है कि यह सरकार की राय नहीं है।

मैं नहीं जानता कि आप में से कितने लोगों को उस घटना का स्मरण होगा जो आज से लगभग 30 साल पहले घटी थी— आज़ादी के कुछ वर्षों बाद ज़मींदारी समाप्त करने का कार्यक्रम शुरू हुआ, पूरे देश में अक्षरशः ऐसे करोड़ो लोगों को उस ज़मीन का स्वामित्व मिल गया जिसे वे तब तक केवल शिकमी काश्तकारों कि तरह जोतते थे।

मुझे वह दिन याद है और मैं उस अनिश्चय, संदेहों और भय से वाक़िफ़ हूँ जो तब व्यक्त किए गए थे। देश के कुछ बड़े अर्थशास्त्रियों ने कहा था कि इससे भारत की खेती-किसानी चौपट हो जायेगी, जोतों का बँटवारा

हो जायेगा, जो साधनहीन हैं वे जोतों के मालिक बन जायेंगे और देश भूखों मर जायगा।

मैं यह बात अपनी दलील के समर्थन में नहीं कह रहा हूँ लेकिन जैसा कि मैंने कहा वह यदि आप याद कर सकें, देश में चारों ओर यही बात कही गई थी, अब जबकि हमारे हिम्मती किसानों ने अनाज के मामले में देश को, आत्मनिर्भर बना दिया है, मुझे विश्वास है कि दुर्दिन की भविष्यवाणी करने वाले अंधेरे में डूबे हुए वे लोग इस कहानी से अब कुछ तो सबक लेंगे।

आज फिर वही पुरानी बात दुहराई जा रही है कि शहर गंदी बस्तियाँ बन जायगें और धीरे-धीरे बड़े साहब लोगों के लिये उनके बगीचों तरण-तालाबों और बड़े मकानों के लिए कोई जगह कहीं नहीं रह जायगी। कुछ भी ऐसा नहीं बचेगा जो हमारे पर्यावरण में सुन्दर होगा।

मैं केवल इतना ही कहूँगा कि ठीक इसी स्थिति को रोकने के लिए इस क़दम की आवश्यकता थी क्योंकि समृद्धि का एक छोटा द्वीप ग़रीबी के समुद्र के बीच बहुत दिनों तक क़ायम नहीं रह सकता। यह द्वीप महाद्वीप नहीं बन सकता, वह समुद्र में विलीन अवश्य हो सकता है।

मैं केवल विरोधी दलों की बात नहीं कर रहा जो स्वाभाविक ही किसी भी बात को लेकर हमारी निंदा या आलोचना करने लगते हैं यद्यपि इस मामले में उनकी भी ज़बान दबी हुई है और उसका स्वरूप बदला हुआ है और इस बारे में, मैं चर्चा करूँगा क्योंकि हमें उससे भी निपटना है। यह सब इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि मैं यह देख रहा हूँ कि दुर्भाग्यवश यह आवाज़ जो उन खेमों से आ रही है जिनसे यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे सही स्थिति समझेंगे।

मैंने आप सबको यहाँ इसलिये नहीं बुलाया कि आप सबको भाषण दूँ और बताऊँ कि आपको क्या करना है बल्कि जैसा कि मैंने शुरू में कहा है कि आपको ऐसे सरकारी काम में संलग्न करना है जो मेरे अनुसार आपके नैमित्तिक कर्त्तव्यों से बड़ा है और जब मैं कहता हूँ कि मैंने आपको इसमें जुड़ने के लिए बुलाया है तो इसका मतलब यह है कि यह तादात्म्य पूरा होना चाहिए और इस कार्यक्रम की रूपरेखा निर्भीकतापूर्वक विचार-विमर्श के बाद मानसिक निषेधों से मुक्त होकर तय होना चाहिये।

आपकी कठिनाइयों को हल करने में हम पूरी तरह से आपका साथ देंगे और कठिनाइयों को हल कर जनहित में इस कार्यक्रम को अच्छी तरह चलाने में आपको जिन अधिकारों और दूसरी सुविधाओं की ज़रूरत होगी उन्हें हम पूरा करेंगे।

आप लोगों की जैसी राय बनेगी उसके अनुरूप सभी क़ानूनों, विनियमों आदि में यथावश्यक संशोधन किया जायेगा लेकिन इस बिन्दु पर कोई समझौता नहीं होगा कि इस क़दम का मूल उद्देश्य किसी भी तरह दुर्बल हो जाये। इस बारे में किसी को कोई संदेह नहीं होना चाहिये।

मैंने कई मौक़ों पर यह बात कही है और अब मैं उसे दोहराना चाहूँगा क्योंकि मैं समझता हूँ कि इसे दुहराना ज़रूरी है। नागरिक सेवाओं की भूमिका स्पष्ट रूप से व्याख्यायित है और इस सेवा के शीर्षस्थ लोगों के बीच यह बात कहना कुछ अनावश्यक लगता है लेकिन जैसा कि मैंने कहा यह दोहराना ज़रूरी है कि आपकी सहायता और सलाह आपकी आलोचना और सुझाव का बिना किसी निषेध के स्वागत है और उन पर गम्भीरता से विचार किया जायगा लेकिन राजनीतिक कार्यपालिका के निर्णय लेने के बाद मन में कोई गाँठ रहने या विपरीत टीका-टिप्पणी करने की ऐसी कोई गुंजाइश नहीं रहती जिससे क़ानून के अमल में बाधा आये।

कई भूमिकाएँ करने का आकर्षण बड़ा लुभावना होता है, हो सकता है कि मैं मुख्य सचिव की भूमिका का निर्वाह करना चाहूँ अथवा मुख्य सचिव मुख्यमंत्री की भूमिका निभाना चाहें, लेकिन मेरी राय में यदि हममें से कोई भी ऐसा करता है तो वह न तो अपनी भूमिका के प्रति न्याय कर सकेगा और न ही दूसरे की।

आप सब लोग इस बात को बहुत अच्छी तरह समझते हैं कि मेरा आशय क्या है, जो समस्याएँ आने वाली हैं वे जटिल परिस्थितियों की वजह से ही आयेंगी यदि यह कोई सीधा-साधा कार्य होता तो हममें से कोई भी इसे कर सकता था परन्तु बात ऐसी नहीं है।

मैं उन कठिनाइयों को कम नहीं आँक रहा हूँ जो आप सबके सामने आयेंगी। कुछ सीमा तक कठिनाइयाँ इसलिये खड़ी होंगी क्योंकि इस समस्या के परिप्रेक्ष्य में कई पेचीदगियाँ हैं, कई परिस्थितियाँ हैं जिनका हमें पूर्वाभास नहीं हो सकता। कार्यक्रम की कार्यान्विति में ऐसी परिस्थितियाँ आयेंगी ही। एक दूसरे के प्रति विरोधी बातें भी उठ खड़ी होंगी क्योंकि हम उन नागरिकों के मामलों को हाथ में ले रहे हैं जो अपने समूचे जीवन में 'मालकियत' की भावना से ही अनभिज्ञ थे। उसके लिए किसी सम्पत्ति का, चाहे वह कितनी ही थोड़ी क्यों न हो, मालिक बनने से स्वाभाविक है कि कुछ ऐसी परिस्थितियाँ बनेंगी जिन्हें हमें उदार दृष्टिकोण से देखना है और इस नज़र से देखना है कि वे हमारे प्रदेश की जीवनधारा में सहज ही समाहित हो जायँ।

ऐसी कुछ थोड़ी बातें हैं जिन पर हमें ध्यान देना है। सबसे पहले यह देखना है कि जितना संभव हो, उतना उन्हें काग़ज़ी लिखा-पढ़ी से दूर रखा जाये। आपकी चर्चा के दौरान ये सब बातें आएँगी, परन्तु इन बातों की ओर आपका ध्यान इसलिये दिला रहा हूँ कि आप इन मसलों पर चर्चा केंद्रित कर सकें।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ वह यह है कि स्वामित्व के अधिकार का प्रमाण आख़िर क्या होगा? यह स्पष्ट रूप से परिभाषित होना चाहिये जिससे कि वे छोटे कर्मचारियों अथवा बीसियों ऐसे लोगों के शिकार न हो जाए जो इनसे होने वाली अपनी आमदनी खो बैठे और अब इनके चक्कर लगा रहे हैं।

पुलिस उप-महानिरीक्षकों को मैंने यहाँ इसलिए बुलाया है कि मैं नहीं चाहता हूँ कि कलेक्टर और पुलिस अधीक्षक एक साथ अपने ज़िले से बाहर रहें।

क़ानून की सुरक्षा राज्य के नागरिकों के लिए होगी ऐसा मेरा विश्वास है। परन्तु फिर भी हमें निष्ठा और ईमानदारी से इन लोगों के हित के लिए कार्य करना है। क़ानून की सुरक्षा उन्हीं लोगों को मिल सकती थी जो उस तक पहुँचने में समर्थ थे।

ये लोग इसकी पहुँच के बाहर हैं। इसलिए उनकी सुरक्षा के लिए यह क़ानून उनकी मदद करेगा। इस कार्य में पुलिस को अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाना है। हमारे पास इस बारे में कुछ सुझाव आए हैं और आपसे भी इस बारे में विचार सुनना चाहते हैं और जैसा कि मैंने कहा कि हम इनके लिए कुछ कर सकेंगे इन चर्चाओं का ही नतीज़ा होगा।

कुछ दिन पहले मेरे एक मित्र मुझसे मिले और कहा कि आप कुछ भी कहें या करें, क़ानून और व्यवस्था में लगे लोग इन लोगों की सुरक्षा के लिए कभी भी आगे नहीं आयेंगे। मैंने उन सज्जन से पूछा कि आपकी ऐसी विचारधारा क्यों है? सचमुच इन सब पर कई तर्क किए जा सकते हैं। उनमें से कुछ का तो मैं जवाब दे सकता हूँ परन्तु कुछ का नहीं। अपने-अपने संभागों के प्रभारी होने के नाते मैं आपसे केवल इतना ही आग्रह कर सकता हूँ कि आप कम से कम अपने संभाग और ज़िले के उच्चाधिकारियों से आपसी चर्चा में कहें कि इन तर्कों का जवाब हम चाहें बातों से न दे सकें, काम से अवश्य दे सकें।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रतिबद्धता और समर्पण की भावना आप अपने अधिकारियों में जगा सकेंगे। उससे यह लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा। शासन का वरदहस्त ग़रीब, ज़रूरतमंद और सताए हुए लोगों के सिर पर रहेगा यह वचन मैंने पदभार ग्रहण करने के बाद अपने पहले प्रसारण में जनता को दिया था।

मैंने अपने प्रसारण में जो कहा था वह महज शब्दजाल नहीं था। प्रत्येक शब्दों से मेरा आशय वही था जो मैंने कहा था।

इस प्रदेश के प्रशासन में मेरे सहभागी होने के नाते मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि आप यह सुनिश्चित करें कि मैंने जो वचन दिया था वह पूरा हो।

मध्यप्रदेश नगरीय क्षेत्रों के भूमिहीन व्यक्ति अधिनियम 1984 पर विचार करने के लिए 27 अप्रैल 1984 को प्रदेश के ज़िलाध्यक्षों और पुलिस उप-महानिरीक्षकों को सम्बोधन।

विधायकों के सरकारी अधिकारियों के साथ संबंध

यह अच्छा हुआ कि अध्यक्ष महोदय ने मुझे यह विषय बोलने के लिए दिया क्योंकि यदि सही अर्थों में देखें तो विधायक चुने जाने के बाद अपनी भूमिका निभाने का जो दायित्व हमको मिलता है उसकी सार्थकता इसी कसौटी पर कसी जाती है। वह सार्थकता विधानसभा के अन्दर प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं होती, वह तो क्षेत्र में प्रमाणित होती है। क्योंकि मूलतः हम और आप उन मतदाताओं के प्रतिनिधि हैं, जिन्होंने अपने मत का उपयोग करके हमें एक निश्चित भूमिका निभाने के लिए भेजा है। इसलिये यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि हम अपने निर्वाचन क्षेत्र में किस प्रकार की भूमिका को निभायें, जिसका दायित्व हमें दिया गया है। इस कार्य के लिए दो बातों को समझना बहुत आवश्यक हैं— पहली तो यह कि हमें उन सीमाओं को भलीभाँति समझ लेना चाहिए, जिनके अंदर हमें काम करना है वरना अकसर हम महसूस करते हैं, कि हम चुनकर आते हैं इसलिए सर्वशक्तिमान हैं। इस अहसास के साथ हम विधानसभा में आते हैं और बाहर भी काम करते हैं, लेकिन प्रजातांत्रिक पद्धति किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को सर्वशक्तिमान बनाने का ज़रिया नहीं बन सकती, वह तो प्रत्येक व्यक्ति या प्रत्येक तंत्र को कुछ सीमाओं के अन्दर अपने-अपने दायित्वों का निर्वहन करने का अवसर और अधिकार देती है। यदि हमने सर्वशक्तिमान होने के नाते अपने अधिकारों का प्रयोग शुरू किया तो निश्चित रूप से हमें ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ सकता है, जहाँ न तो हमारी शक्ति रहेगी और न ही दायित्वों का निर्वहन हो सकेगा।

जब मैं सीमाओं की बात कह रहा हूँ तो मेरा तात्पर्य उस प्रशासनिक तंत्र से है जिसमें शासकीय अधिकारी, कर्मचारी आते हैं, जो प्रजातंत्र के एक अभिन्न अंग हैं और उनके भी दायित्व और अधिकार स्पष्ट रूप से सीमित और परिभाषित हैं। यह काम हमेशा बहुत उत्तेजना वाला काम नहीं होता, क्योंकि इसको एक बार समझ लें तो फिर हम अपनी सीमाओं के अन्दर प्रभावी ढंग से काम कर सकते हैं। प्रशासकीय अधिकारी, हमारे देश के, विधान और जो नियम, क़ानून, क़ायदे हैं, उनसे उद्‌भूत उनके अधिकार हैं और उसे हमें बहुत बारीक़ी से देख लेना चाहिए। चाहे वह किसी भी स्तर का अधिकारी हो, गाँव के पटवारी से लेकर प्रदेश के मुख्य सचिव तक जो शृंखला से, जनप्रतिनिधि होने के नाते हम लोगों का जीवंत संपर्क रहेगा और उस संपर्क के माध्यम से हमें अपने मताधिकारों के हितों की रक्षा करनी है और जनप्रतिनिधि होने के नाते हमारा जो व्यापक दायित्व है उसका निर्वहन करना है। मैंने कई बार ऐसा अनुभव किया है कि जहाँ कभी टकराव हुआ है, उसके मूल में दोनों तरफ़ से यह बात आई है, अधिकारियों की तरफ़ से भी और जनप्रतिनिधियों की तरफ़ से भी। अधिकारी भी ऐसा महसूस करते हैं कि वे तो स्थाई हैं और स्थाई होने के नाते पाँच साल के लिए जो जनप्रतिनिधि आते हैं इनकी सीमाओं को वे समझते हैं। जनप्रतिनिधि भी ऐसा समझते हैं कि हम तो जनशक्ति के आधार पर चुनकर आए हैं और वह जनशक्ति सार्वभौमिक है, लेकिन आपके माध्यम से उस सार्वभौमिकता पर एक सीमा तक ही अमल किया जा सकता है। उस सीमा को समझ लेना बहुत ज़रूरी है, फिर आप कभी भी ऐसी स्थिति में नहीं आयेंगे जिसमें कि आपको अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने में निराशा हो। मैं आपको अनुभव के आधार पर एक प्रत्यक्ष उदाहरण देता हूँ— हमारा सीधी ज़िला बहुत पिछड़ा और ग़रीब है, वहाँ बहुत बड़ी संख्या

आदिवासियों और पिछड़े वर्ग के लोगों की है। पहली बार मैं चुना गया तो मेरे मन में भी बात थी कि मैं जनप्रतिनिधि हूँ और हर स्तर पर अपनी बात को मनवाना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। उस समय हमारे ज़िले के, कलेक्टर श्री एस.के. सेन थे, उनका देहांत हो गया है। वे बंगाल के बहुत बड़े प्रसिद्ध स्वतंत्रता संग्राम सेनानी परिवार के सदस्य थे और इसीलिए देश के प्रजातंत्र की स्थापना के प्रति उनकी भी प्रतिबद्धता थी जो बात सामान्य कर्मचारियों में नहीं होती हैं। किसी विषय को लेकर जो सीधें आदिवासियों के जनजीवन से संबंधित था हमारे उनके मतभेद हुए और विधानसभा में आकर मैंने अपने अधिकारों का प्रयोग करके उस पर एक विशेष चर्चा के लिए अध्यक्ष महोदय से अनुरोध किया। उनकी अनुमति से विशेष चर्चा हुई और बहुत खुलकर मैंने अपनी बात रखी। चर्चा के बाद उस समय मुख्यमंत्री डॉ. कैलाशनाथ काटजू थे, उन्होंने शाम को मुझे बुलाया। जब मैं उनके पास गया तो उन्होंने कहा कि आज विधानसभा में आपने लच्छेदार भाषण दिया। मैंने कहा कि सर मेरा तो काम है। उन्होंने कहा आपने देखा कि वहाँ पर आपने क्या कहा था। मैंने कहा अगर मैंने कोई ऐसी बात कही हो जिससे कि नाराज़गी हो तो उसके लिए मैं माफ़ी चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि मेरे बारे में मुझे तो कुछ नहीं कहा गया लेकिन आपने एक बहुत बड़ी भूल कर दी। आपने अपने ऊपर सब ज़िम्मेदारी ले ली जो ज़िम्मेदारी आपकी नहीं है, आपने उसका यहाँ पर बखान कर दिया। तो जो आपकी ज़िम्मेदारी नहीं है, उसके बारे में कहने का अधिकार क्या है? ऐसी भाषा जब उन्होंने कही तो मेरा दिमाग़ ठनका कि मुझसे भूल हुई है। मैंने देखना चाहा कि मेरा अधिकार क्या है, हमारे प्रतिनिधि होने के नाते हमारे अधिकार में है जो नीति या कार्य शासन के हों, उनके बारे में अपनी स्वयं की जो हमारी मान्यताएँ है, उनके अनुसार हम उन पर अपने विचार व्यक्त करें, उनकी आलोचना करें या उनकी तारीफ़ करें और जिन लोगों के ऊपर ज़िम्मेदारी है, उस नीति के कार्यक्रम को क्रियान्वयन करने की, या तो उनको हम अपने दृष्टिकोण से संतुष्ट करके प्रभावी करें ताकि हमारे दृष्टिकोण और प्रशासनिक अधिकारियों के दृष्टिकोण एक ही हों, जनहित को आगे बढ़ाना। भूलें हमसे भी हो सकती हैं, उनसे भी हो सकती हैं, लेकिन उद्देश्य तो हमारे एक हैं। फिर जाकर एस.के. सेन साहब से मैंने बात की तो उन्होंने कहा कि इसके लिए विधानसभा में कहने की क्या ज़रूरत है। यह आप मुझे पहले कहते तो हम उस आधार पंर काम करते। इसलिए मैं उल्लेख कर रहा हूँ कि हर तरफ़ तलवार लेकर तलवार भाँजने की ज़रुरत नहीं है, क्योंकि तलवार का काम केवल वही होना चाहिए जहाँ पर उसकी ज़रूरत है, जब सब बातें समाप्त हो जायें तो वहाँ केवल तलवार बजे, जहाँ पर केवल वार होने का सवाल हो।

दूसरी बात यह है कि हमें यह मानकर चलना चाहिये कि कर्मचारी भी आखिर हमारे ही समाज के अंग हैं। हम अपने ऊपर सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक दबाव की परिस्थितियों से ऊपर उठकर बोलते हैं और यह आशा करते हैं कि उसी स्तर पर वो लोग भी अपना काम करें तो यहाँ पर विरोधाभास जन्म लेता है। हम सब चाहे किसी दल के हों, चाहे किसी विचारधारा के हों, समाज के अंग हैं, उसकी प्रेरणाओं से प्रेरणा लेते हैं, उसके अनुसार अपना रास्ता चुनते हैं। इससे प्रभावित शासकीय कर्मचारी भी हैं, वे भी उन्हीं तत्वों से उभरकर, अंतःकलह से उभरकर आते हैं। फ़र्क़ इतना है कि प्रशासनिक सेवा में आने के बाद उनको एक संरक्षण मिल जाता है, एक नियम से बँधे हुए अगर चलते चले जायें तो 30 वर्ष तक सेवा में रहेंगे, उनकी तनख़्वाह— सुविधाएँ बरक़रार रहेंगी, लेकिन हमारे आपके लिए यह बात लागू नहीं होती। अगर हम अपनी ज़िम्मेदारी को ठीक से पूरा नहीं कर पाते तो 5-6 वर्ष बाद मतदाता को अधिकार है कि वह दुबारा हमें न चुने। इसकी वजह से हम लोगों के मन में हर दम ऐसा लगता है कि हमारे पास 5 साल का समय है और हमको इतना कार्य करना है। इस काम में कौन हमको सहायता कर रहा है, कौन अड़चन डाल रहा है, इसकी वजह से हमारे आचरण पर असर पड़ता है। कभी-कभी रूककर यह सोचना आवश्यक

है, कि आख़िर कौन से कारण हैं कि जो हम चाहते हैं उसे प्रशासनिक अधिकारी नहीं कर पा रहे हैं। यह अनुभव की बात है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ धीरे-धीरे वो स्थिति भी आपके सामने आ जाएगी जब आप अपने स्वयं के कर्त्तव्य निर्वहन में शासकीय कर्मचारियों को सामान्यतः सहयोग देंगे।

तीसरा प्रश्न यह है कि चाहे आप विधायक हो जायें, चाहे प्रजातांत्रिक पद्धति में और किसी पद पर आ जायें, एक भूल नहीं करनी चाहिए, कि हम किसी प्रशासनिक अधिकारी को अपने व्यक्तिगत हितों के लिए उपयोग करने का प्रयास करें। हम सब अलग-अलग मामलों में व्यक्तिगत हितों से जुड़े रहते हैं। अगर किसान हैं तो ज़मीन का मामला होगा, अगर व्यापारी हैं तो व्यापार के सिलसिले में सवाल आयेगा या कोई और भी कार्य करते हैं तो उसके सिलसिले में प्रशासनिक अधिकारियों से पाला पड़ता है, लेकिन किसी बात को आप संभाल ले जायें तो बहुत इज़्ज़त आपको मिलेगी और इसका प्रभाव उसी अनुपात में बढ़ जायेगा। अकसर मंत्री बनने के बाद सार्वभौमिकता की बात दिमाग़ में रहती है, वह बहुत बढ़ जाती है और मुख्यमंत्री बन गए तो जिधर निगाह की वह अपनी चीज़ महसूस करते हैं, लेकिन वहीं पर संयम को बनाये रखने की भी ज़रूरत है। मैंने यह अलिखित नियम सदैव बनाकर रखा और इसका एक भी अपवाद नहीं होगा। मेरी ऐसी मान्यता है कि किसी प्रशासनिक विषय पर, नस्ती पर, फाईल पर या और किसी स्तर पर जब सलाह ली जाती है तो पहले से किसी अधिकारी को यह कभी भी नहीं कहना चाहिये कि मैं ऐसा करना चाहता हूँ इसलिए आप इस तरह का सुझाव फाईल पर लिखकर लाइये। उन्हें अपनी ओर से, अपनी बुद्धि के हिसाब से स्पष्ट रूप से अपनी राय देने का, अपनी बात कहने का अधिकार है। आपको अधिकार है कि आप उनकी राय को नहीं माने और जो आपका मत है, जो आपका निर्णय है वह लिखें उसके बाद उस अधिकारी का कर्त्तव्य है कि आपके फ़ैसले को वह क्रियान्वित करे। उसके बाद उसे यह अधिकार नहीं है कि वह असहमत हो और आपके फ़ैसले को क्रियान्वित नहीं करे, लेकिन कभी-कभी अधिकारी इस प्रकार की बातें करते हैं कि जिनके पास राजनीतिक शक्ति है, वे आपसे कहते हैं कि आप क्या चाहते हैं वही हम फाईल पर लिख देंगे। उन्होंने लिखकर दे दिया और हमें सिर्फ़ दस्तख़त करना है। जहाँ पर यह परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं वहाँ पर कई विसंगतियाँ पैदा होती जाती हैं और आगे चलकर कुछ परेशानियाँ भी पैदा होती जाती हैं। मैंने थोड़ी-सी जो बातें कहीं हैं, मूल केवल एक ही चीज़ है कि हम सब प्रजातंत्र के पुजारी हैं, प्रजातंत्र में विश्वास रखते हैं और प्रजातांत्रिक पद्धति से इस प्रदेश के शासन को चलाने की हमारी और आपकी ज़िम्मेदारी है। यदि हम एक सामान्य व्यक्ति की हैसियत से इस ज़िम्मेदारी का पालन करने का प्रयास करें तो कभी भी कोई ऐसी बड़ी परिस्थिति पैदा नहीं होगी जहाँ पर तलवार निकालने की ज़रूरत हो, क्योंकि प्रजातंत्र एक व्यक्ति या समूह को दूसरों के ऊपर अपनी बात लादने का अधिकार नहीं देता है। विचार-विमर्श करके आपको उस राय में शामिल करने का अधिकार देता है। यह भी अधिकार देता है कि आप उस राय से सहमत नहीं हों तो भी आप अपनी ज़िम्मेदारी को उसी तरह से निभा सकते हैं। कोई व्यक्ति चाहे वह विधायक के रूप में हो जाय या प्रशासनिक सेवक के रूप में हो जाय, प्रजातंत्र के इस मूल मंत्र को हमें क्रियान्वित करने का अवसर मिलता है। यह तथ्य और मूल अगर हम कभी पूरी तरह से नज़र-अंदाज़ नहीं करें तो मेरी समझ में वह परिस्थितियाँ कभी भी नहीं आएगी जहाँ पर नौकरशाही ही आपके ऊपर हावी हो जाय, क्योंकि यदि आप किसी विचार से सहमत या असहमत होने के लिये तैयार हैं तो यदि आप सहमत होंगे तो फिर ऊपर आने का सवाल ही नहीं और यदि असहमति का अधिकार अपने लिए भी रखते हैं तो दूसरों के लिए भी मानते हैं तो यह बात नहीं आएगी कि यह व्यक्ति हमसे असहमत है इसलिए हमारा दुश्मन है। मै अध्यक्ष महोदय का आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे अवसर दिया।

मध्यप्रदेश विधानसभा में प्रबोधन कार्यक्रम के अंतर्गत 14 मई 1990 को दिया गया भाषण।

सभी को विकास के समान अवसर मिलें

स्वतंत्रता दिवस की 33वीं वर्षगाँठ पर मैं प्रदेश के नागरिकों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

आज का पर्व हमें उन स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की याद दिलाता है जिन्होंने भारत को आज़ाद कराने के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। इस अवसर पर मैं सबसे पहले देश के इन वीर सपूतों के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता हूँ। इन वीर आत्माओं का पुण्य-स्मरण हमें इस देश में लोकतंत्र को मज़बूत बनाने, सभी स्तरों पर शोषण समाप्त करने तथा नई आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए प्रेरित करता रहेगा। इसी सन्दर्भ में हमने इन सेनानियों के प्रति अपनी आदरांजलि के रूप में वे सब सुविधाएँ बहाल कर दी हैं जो कुछ दिनों पूर्व तक उन्हें उपलब्ध होती रही हैं।

यह अवसर हमें उन संकल्पों की भी याद दिलाता है जो हमने 15 अगस्त् 1947 को लिए थे और जिनके आधार पर हमने नए भारत के निर्माण का संकल्प किया था और पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में देश के पुनर्निर्माण का सिलसिला शुरू हुआ था। पंडित नेहरू की दूरदर्शिता,सर्वहारा वर्ग के प्रति संवेदनशीलता और राष्ट्र के प्रति अनन्य समर्पण के कारण ही देश में हर क्षेत्र में विकास की नई शृंखला प्रारंभ हुई। इसी शृंखला की एक कड़ी के रूप में बीस सूत्रीय कार्यक्रम से देश में पहली बार यह कोशिश शुरू हुई कि दलित, उत्पीड़ित और कमज़ोर वर्ग के लोगों के जीवन में स्थिरता, सुरक्षा और सम्मान की भावना को साकार किया जाय। उन्हें हर तरह की मदद पहुँचा कर उनकी आर्थिक परेशानियों को दूर करने और सामाजिक न्याय पाने लायक़ बनाने के लिए भी भरपूर कोशिश की गई किन्तु पिछले ढाई सालों में यह सिलसिला रूक गया। सिर्फ़ रूका ही नहीं, बल्कि अब तक का बना सुदृढ़ आर्थिक ढाँचा भी चरमरा गया। अब जनता ने एक बार फिर श्रीमती इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में भरपूर आस्था व्यक्त की है और बिगड़ी हुई अर्थ-व्यवस्था को ठीक करने, समाज के पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाने तथा नई समाजिक संरचना तैयार करने की ज़िम्मेदारी हमें सौंपी है।

हम मध्यप्रदेश में ऐसा वातावरण तैयार कर रहे हैं जिसमें आर्थिक विकास और सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया सहज रूप से चल सके तथा अपार संभावनाओं वाले इस प्रदेश में सचमुच में समृद्धि आ सके। ऐसा करते हुए हमारा ध्यान इस बात पर है कि विकास के फलस्वरूप आने वाली सम्पन्नता का लाभ सबसे ज़्यादा उस वर्ग को मिले जो सबसे ज़्यादा पिछड़ा और ग़रीब है। इसी वजह से हमने बीस सूत्री कार्यक्रम के अमल को प्राथमिकता दी है। हमें इस बात का अहसास है कि मध्यप्रदेश तब तक विकसित नहीं हो सकता, जब तक इस प्रदेश की हरिजन-आदिवासी आबादी तक़लीफ़ में है। इसी बात को मद्देनज़र रखकर हमने हरिजन-आदिवासियों के कल्याण कार्यक्रम को नई दिशा देने का प्रयास किया है। पिछड़े क्षेत्रों में विकास के कामों को ज़्यादा तेजी से करने का निर्णय लिया है।

इसी सिलसिले में मध्यप्रदेश शासन का यह क़दम है कि ग्रामीण इलाक़ों में जिन भूमिहीन भाइयों का आवास के लिए ज़मीन पर पिछले एक साल से यदि क़ब्ज़ा है तो वह उन्हें दे दी जाय। इस निर्णय के क्रियान्वयन से प्रदेश के दस लाख से अधिक मज़दूर-किसानों की ज़िंदगी में एक नया अध्याय शुरू हुआ है। अब हमारा यह प्रयास है कि

ज़मीन जोतने वाला किसान अपनी ज़मीन का हक पा सके। ऐसे किसानों को ज़मीन का हक दिलाने की ज़िम्मेदारी क्षेत्रीय अधिकारियों पर रहेगी। अब तक जो शोषित रहे हैं उन्हें अब कोई परेशान नहीं कर सकेगा। इस मौक़े पर मैं यह भी बताना चाहूँगा कि हमने देहाती इलाक़ों में ऋणग्रस्तता समाप्त करने के लिए कठोर क़दम उठाये हैं और इस तरह अब देहाती इलाक़ों में कमज़ोर वर्ग का शोषण नहीं हो सकेगा।

हरिजन आदिवासी भाई अपने पैरों पर खड़े हों, इसलिए अनेक क़दम उठाए गए है। इनके तहत ऋण और विपणन, वन, श्रम, प्रशिक्षण और भर्ती के लिए बहुत उदार नीति लागू कर दी गई है। एक महत्वपूर्ण निर्णय के द्वारा सरकार ने तय किया है कि आदिवासियों की भूमि की रक्षा के लिए 2-10-1959 के बाद के सभी हस्तान्तरण जब तक भूमिधारी उसे उचित सिद्ध न करे, अवैधानिक क़रार दिए जायँ। उनकी नई पीढ़ी जागरूक बने, इसलिए हमने हरिजन-आदिवासी बच्चों की पढ़ाई-लिखाई की सुविधाओं को बढ़ा दिया है। उन्हें मिलने वाले वज़ीफे की राशि बढ़ा दी गई है और यह राशि अब हर माह के पहले हफ्ते में बैंक की मार्फ़त उन्हें मिला करेगी। राज्य की वार्षिक योजना में हरिजनों के लिए पहली बार 3.29 करोड़ रुपयों का अलग से प्रावधान किया गया है। पिछड़े इलाक़ों में खेती-बाड़ी, सिंचाई, दवादारू, पीने के पानी और रोज़गार के लिए भरपूर और तुरन्त व्यवस्था के लिए नए क़दम उठाए जा रहे हैं। मुझे विश्वास है कि आपने हम पर जो ज़िम्मेदारी सौंपी है, उसे हम आपकी मदद से ज़रूर पूरा कर सकेंगे।

आदिवासी क्षेत्रों के विकास के लिए शासन आदिवासी प्रधान ज़िलों में प्रशासनिक तंत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर रहा है। बस्तर जिले में आदिवासियों की प्रगति के लिए एक आदिवासी प्राधिकरण की स्थापना की जा रही है जिसके अध्यक्ष आयुक्त स्तर के अधिकारी होंगे और उन्हें सचिव के अधिकार प्राप्त होंगे। यह प्राधिकरण जिले के विकास की सम्भावनाओं का आकलन कर स्थानीय प्रतिनिधियों के परामर्श के माध्यम से उन्हें मूर्तरूप देगा। शासन आदिवासी प्रधान ज़िलों में इस प्रकार के चार प्राधिकरण और स्थापित करना चाहता है। इसके साथ ही शासन आदिवासी बहुल ज़िलों के प्रशासन तंत्र में इस प्रकार परिवर्तन करना चाहता है जिससे इन जिलों के बहुसंख्यक आदिवासी स्वयं की प्रेरणा से अपने विकास के लिए आगे बढ़ें। शासन अधिकारियों को सज़ा देने के लिए उनका तबादला आदिवासी क्षेत्रों में करने की प्रथा बंद कर रहा है। इसके बदले हरिजन-आदिवासियों के कल्याण में रूचि रखने वाले युवा एवं उत्साही अधिकारियों तथा कर्मचारियों को इन जिलों में पदस्थ किया जायगा। इन कर्मचारियों की सुविधाओं का ध्यान रखा जायगा ताकि वे लगन से इन वर्गो के उत्थान के कार्य में संलग्न हों।

अपने प्रदेश की अधिकांश जनसंख्या खेती पर निर्भर रहती है। इस बात को ध्यान में रखकर ही सिंचाई की सुविधाओं में तेज़ी से विस्तार करने के लिए एक बड़ा कार्यक्रम लागू किया जा रहा है। असिंचित ज़मीन पर निर्भर रहने वाले किसानों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए एक समग्र कृषि नीति अपनाई जायगी। हमारी यह कोशिश है कि किसानों को खेती की नई तकनीक और सुविधाओं का लाभ मिल सके, जिससे कि हमारे देहात ख़ुशहाल बन सकें। इसी बात को ध्यान में रखकर किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य, बाज़ार की सुविधाएँ, बीज, खाद और ऋण आदि समय पर आसानी से दिलाने के काम में तेज़ी लाई गई है और अब यह सब सुविधाएँ किसानों को एक ही जगह से, बिना भटके और परेशान हुए दिलाने की कोशिश की जा रही है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस वर्ष जितनी मात्रा में ख़रीफ़ बीज तथा खाद का वितरण किया गया है, वह पिछले वर्षो की तुलना में एक नया कीर्तिमान है। फसल बीमा योजना लागू करने के प्रश्न पर सक्रिय रूप से विचार किया जा रहा है।

अपने प्रदेश की नैसर्गिक सम्पदा का इस तरह दोहन करने की नीति लागू की गई है जिससे पर्यावरण-संतुलन बना रहे तथा नए उद्योग क़ायम हो सकें। ऐसे उद्योगों की स्थापना में पिछड़े क्षेत्रों, स्थानीय लोगों और क्षमताओं को

प्राथमिकता दी गई है। आधुनिक उद्योगों के साथ-साथ पारस्परिक कला-कौशल और कारीगरी को भी बढ़ावा दिया जा रहा है।

पिछले वर्ष हमने प्रदेश में शताब्दी का सबसे भयानक सूखा देखा है। इस सूखे से राहत दिलाने के लिए जो काम चालू किए गए थे उन्हें तब तक चालू रखा जायगा जब तक कि वहाँ के लोगों को रोज़गार की ज़रूरत होगी। मौसम को ध्यान में रखकर राहत के लिए भिन्न प्रकार के काम हाथ में लिए जायँगे। सूखे की समस्या का स्थाई समाधान ढूँढने के लिए भी दीर्घकालीन कार्यक्रम अपनाया जायगा।

अपने प्रदेश के लिए यह महत्वपूर्ण बात है कि वह देश के बीचों-बीच स्थित है। इसी वजह से अपना प्रदेश विभिन्न संस्कृतियों और भाषाओं का मिलन-स्थल भी है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर हम एक ऐसा वातावरण बनाना चाहते हैं, जिसमें भाई-चारा और सद्भावना फले-फूले। हमारे लिए यह गौरव की बात है कि प्रदेश में अल्पसंख्यक और कमज़ोर वर्ग अब अपने आपको पूरी तरह सुरक्षित महसूस करने लगे हैं। हमें इस भावना को और सुदृढ़ और स्थाई बनाना होगा। मुझे विश्वास है कि हमारे प्रदेश के नागरिक इस बात के प्रति पूरी तरह जागरूक हैं।

मैं इस मौक़े पर प्रदेश की युवा शक्ति से भी कुछ कहना चाहता हूँ। आप जानते ही हैं कि हाल ही में जो राजनीतिक क्राँति हुई हैं उसमें युवा वर्ग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्व. श्री संजय गाँधी के नेतृत्व में नौज़वानों ने देश को आगे ले जाने का काम हाथ में लिया था। मैं चाहूँगा कि श्री संजय गाँधी ने जो काम शुरू किया था और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के यज्ञ में नौज़वानों को सहभागी बनाया था वह कार्य चलता रहे। राष्ट्रीय कार्यक्रमों से जुड़कर और देश के निर्माण के काम को तेज़ी से करने में सहयोग देकर ही हम स्व. श्री संजय गाँधी के प्रति सच्ची श्रृद्धांजलि दे सकते हैं। मुझे विश्वास है कि हमारे प्रदेश के युवक पूरे उत्साह शक्ति और ओज के साथ इस कार्य में जुटे रहेंगे।

मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि इस प्रदेश में अब हरिजन-आदिवासी ग़रीब भाईयों के शोषण तथा उत्पीड़न के दिन समाप्त होकर सर्वहारा वर्ग के विकास तथा प्रगति का एक नया अध्याय प्रारम्भ होगा। मुझे विश्वास है कि हमें इस कार्य में सभी वर्गों तथा क्षेत्रों से पूरा सहयोग तथा समर्थन मिलेगा, जिससे हम प्रधानमंत्री श्रीमती गाँधी की कल्पना के अनुरूप शोषण तथा उत्पीड़न से विहीन समाज की रचना कर सभी को प्रगति तथा विकास के समान अवसर उपलब्ध करा सकेंगे।

मैं इस अवसर पर एक बार फिर आप सबका अभिनन्दन करता हूँ और आशा करता हूँ कि सभी वर्गों के भरपूर सहयोग से हम आगे बढ़ेंगे और प्रदेश के बहुमुखी विकास की गति को और तेज़ कर हम इस प्रदेश को समृद्ध बनाने में सफल होंगे।

स्वतंत्रता की 33 वीं वर्षगांठ पर प्रदेश के नागरिकों को संबोधन 15 अगस्त 1980।

हमारी यात्रा में कोई विराम नहीं है

मध्यप्रदेश अपनी स्थापना के 25 वर्ष पूरे कर रहा है। ये 25 वर्ष परिवर्तन के स्वप्न और संघर्ष के अनुभव और कठिनाइयों के भी 25 वर्ष रहे हैं। किसी भी राज्य के इतिहास में 25 वर्षों का समय अधिक नहीं है, लेकिन इस ज़माने में हर चीज़ की गति इतनी तेज़ हो गई है कि यह समय कम भी नहीं कहा जा सकता। हमें और आपको मिल-बैठकर आज यह सोचना है कि एक नए राज्य की स्थापना के पीछे लोगों ने इस प्रदेश के असंख्य नागरिकों ने जो उम्मीद बाँधी थी उसे किस हद तक पूरा किया जा सका और किस हद तक हमारे बुनियादी स्वप्न अभी तक हमारे सामने हैं।

मध्यप्रदेश देश के मध्य में है, और बीचों-बीच बसा है। भूगोल ने हमें जो केन्द्रीयता दी है, मध्यप्रदेश का इतिहास भी उसे चरितार्थ करता रहा है। प्रागैतिहासिक गुफाएँ, बौद्धकालीन स्तूप, खजुराहो के मंदिर, माण्डू के स्मारक आदि ने मिलकर मध्यप्रदेश को भारतीय इतिहास की एक अत्यन्त समृद्ध परम्परा दी है। कालिदास, तानसेन, उस्ताद अलाउद्दीन ख़ाँ आदि अनेक महान-पुरुष मध्यप्रदेश के हैं और उन्होंने धरती और उसके लोगों से जुड़कर नई अर्थवत्ता प्रदान की है। सात राज्य हमारे पड़ोसी हैं और उनमें से हरेक ने इस प्रदेश की मिली-जुली संस्कृति में अपना योगदान दिया है। मध्यप्रदेश ने अपने दरवाज़े, अपने रास्ते हमेशा खुले रखे हैं। यह खुलापन और ग्रहणशीलता एक तरह से हमारी सबसे सच्ची पहचान ही बन गई है।

आज से 25 वर्ष पहले जब मध्यप्रदेश का नया राज्य पुनर्गठित हुआ था तो महाकौशल, छत्तीसगढ़, भोपाल, विन्ध्यप्रदेश और मध्यभारत की इकाईयों के आपस में तालमेल भावनात्मक एकीकरण आदि की अनेक समस्याएँ थीं। कई लोगों के मन में यह सन्देह भी निश्चय ही था कि यह प्रदेश इतनी सारी इकाईयों को मिलाकर शायद आगे नहीं चल सकेगा। यह सही है कि इकाईयों की अलग-अलग परम्पराएँ थीं और इनका कुछ न कुछ बोझ नये प्रदेश के संगठन पर पड़ा भी, पर यह उतना ही सही है कि हालाँकि बहुत सारे मामलों में हमारे प्रदेश में बहुत कुछ करना बाक़ी है, सभी अंचलों के लोग हिम्मत और भरोसे के साथ सबसे ग़रीब बन्धुओं के बेहतर ज़िन्दगी दे सकने के संघर्ष में साथ-साथ लगे रहे हैं।

खेती का रक़बा बढ़ा है, गल्ले की पैदावार भी। सिंचाई के साधन बढ़े हैं और जहाँ 25 साल पहले कुल 179 गाँवों में बिजली थी, अब 25,400 गाँवों में बिजली पहुँच गई हैं। भिलाई का इस्पात कारख़ाना, भोपाल का बिजली के भारी सामान बनाने का कारख़ाना, कोरबा का एल्युमीनियम कारख़ाना आदि ऐसे विशाल बुनियादी उद्योग है जिन्होंने न सिर्फ़ मध्यप्रदेश की बल्कि देश की अर्थ-व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

बहुत सारे आँकड़े देकर यह सिद्ध किया जा सकता है कि उद्योग, खेती, यातायात, स्वास्थ्य, सिंचाई, आदिम जाति कल्याण आदि अनेक बुनियादी क्षेत्रों में मध्यप्रदेश ने पिछले ढाई दशकों में अनेक प्रभावशील उपलब्धियाँ अर्जित की हैं। मैं इस अवसर पर उन सब नागरिकों का अभिनन्दन करना चाहता हूँ जिनकी हिस्सेदारी से यह सब सम्भव

हुआ है। वे साधारण नागरिक हों, किसान या मज़दूर, छात्र या डॉक्टर, वैज्ञानिक या कलाकार, लेखक या अध्यापक, सरकारी कर्मचारी या सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, जिन्होंने भी अपनी निजी दुनिया तक सीमित न रहकर अपने आसपास और दूसरे लोगों के लिए कुछ भी सोचा या किया है उन्होंने मध्यप्रदेश की प्रतिष्ठा और निष्ठा दोनों को ही आगे बढ़ाया है।

हर अंचल की अपनी स्थानीयता होती है और बहुत दुर्भाग्य की बात होगी अगर छत्तीसगढ़ की पण्डवानी, बस्तर के बैल मेटल के मूर्ति शिल्प, मालवा का माच, बुन्देलखण्डी लोकगीत, बघेली की कहावतें, चन्देरी की साड़ियाँ और झाबुआ के भगोरिया नृत्य आदि के जो बिलकुल स्थानीय रूप हैं, वे मिट जाये या कमज़ोर पड़ जाये। एकता का अर्थ एकरसता नहीं है। मध्यप्रदेश का लोकजीवन इन विविधताओं से समृद्ध और रंगारंग होता है। ऐसे समय में जब दुर्भाग्य से आधुनिकता सबको एक जैसा बनाने पर उतारू है, हमारा यह सौभाग्य है कि हम इस एक जैसे पन से बचे हुए हैं।

जंगल, पहाड़, नदी, मंदिर, मस्ज़िद, पुराने खण्डहर, नई बस्तियाँ, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, विस्तीर्ण राजमार्ग, ये सब मध्यप्रदेश के आदमी की ज़िन्दगी में आज एक साथ हैं। ये सब उसको अर्थ देते हैं। प्रकृति के साथ नज़दीक का और गहरा रिश्ता बनाये रखने का हमें ऐतिहासिक सौभाग्य मिल पाया है। आज सारे संसार में पर्यावरण को लेकर गंभीर चिन्ता व्यक्त की जा रही है। यह सुःखद संयोग है कि मध्यप्रदेश में मनुष्य अपने स्वाभाविक पर्यावरण से बिलकुल कट नहीं पाया है और प्रकृति के साथ एक संतुलित संबंध आज भी क़ायम है।

इन सारी विविधताओं का स्पन्दन इस प्रदेश के जैसे स्वभाव में ही है। रहन-सहन, बोलियों, पहनावे, खान-पान, आचार-व्यवहार की जितनी बहुलता हमारे प्रदेश में है इतनी अन्यत्र दुर्लभ है। यह बहुलता और इसके प्रति हमारा उत्कृष्ट लगाव किसी हद तक हमारी संवेदनशीलता बढ़ाता है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यह संवेदनशीलता बहुत बड़ी राहत है, इसमें शक नहीं।

लेकिन यहीं रुककर यह याद कर लेना भी ज़रूरी है कि प्रदेश की अधिकांश जनता को ग़रीबी के नर्क से उबारने, अपने अधिकारों को पहचानने और उनके लिए लड़ सकने की शक्ति देने और एक शोषणमुक्त समाज क़ायम कर पाने का सपना अभी सच होने से बहुत दूर है। यह तो सही है कि शायद आज पहले के मुक़ाबले उन लोगों की संख्या कई गुना बढ़ गई है जो एक बेहतर ज़िन्दगी की इच्छा करते हैं और उसके लिए संघर्ष करने को तैयार हैं। हमारे प्रदेश में पढ़े-लिखे, नाम कमाने वाले, बाहर जाकर अपनी प्रतिभा का सिक्का जमाने वाले नागरिकों की संख्या पहले से बहुत अधिक बढ़ी है। सदियों के शोषण से जिनकी आकांक्षाएँ मर चुकी थीं ऐसे पस्त हिम्मत और उदास लोगों में आगे बढ़ने की उमंगें ज़रूर जागी हैं। यह भी मानना होगा कि वातावरण में विकास और परिवर्तन के लिए बेचैनी और अधीरता है। मैं इसे भी अनेक कठिनाइयों और उलझनों से घिरे नये प्रदेश की उपलब्धि ही मानता हूँ।

ज़िन्दा और जागरूक लोग बहुत देर तक इन्तज़ार नहीं करते। हमें भी किसी और की मदद, किसी और के निर्देशन का इन्तज़ार नहीं करना है। हमें खुद पहल करनी है और खुद अपने प्राकृतिक और मानवीय साधनों की बहुचर्चित संभावनाओं को साकार करना है। हमारा सपना अपना है। उसे सच बनाने की ओर हर भाई या बहन के लिए सच बनाने की, जो दूरदराज के जंगलों, खेतों, कारख़ानों में हैं, ज़िम्मेदारी हमारी है। मध्यप्रदेश का होने का अगर कोई सामाजिक, नैतिक दर्शन हो सकता है तो यही कि हम खुले दिल, खुले दिमाग़, खुले दरवाज़ों वाले लोग हैं जो एक जैसे नहीं हैं, पर हर एक के साथ हैं।

मध्यप्रदेश को भूगोल ने केन्द्रीयता दी है और इतिहास ने उसे यह अवसर दिया है कि वह इस केन्द्रीयता को

अपने सभी नागरिकों के लिये सार्थक रूप से सुलभ बनाये। मध्यप्रदेश की रजत जयंती के अवसर पर विनम्रता और आत्मविश्वास के साथ मैं आप सबको इस महान् प्रयत्न में शिरकत के लिये आमंत्रित करता हूँ।

हम सबका सौभाग्य है कि अपनी आरम्भिक कठिनाइयों और उलझनों को पार कर हमारा प्रदेश जब एक वयस्क राज्य के रूप में नई चुनौतियों और समस्याओं का सामना साहस, आत्मविश्वास और स्वप्नदर्शिता के साथ करने को खड़ा है तब हम उसके नागरिक हैं।

पृथक्तावादी आवाज़ें अपनी व्यर्थता स्वीकार कर चुप हो चुकी हैं। एक समूची नई पीढ़ी इस नये प्रदेश में ही पैदा होकर उसकी नई एकीकृत अस्मिता का अहसास कर रही है।

जब इस नए राज्य का पुनर्गठन हुआ था तब इस देश को पंडित जवाहरलाल नेहरू जैसे महान स्वप्नदर्शी राजनेता का नेतृत्व प्राप्त था। आज जब हम अपनी रजत जयन्ती मना रहे हैं तो हमें श्रीमती इंदिरा गाँधी जैसी महान् कर्मठ राजनेता का प्रेरणादायी निर्देशन प्राप्त है। हमारी यात्रा के ये ध्रुवान्त हमारे क्षितिज को नया विस्तार देते हैं। इतिहास ने हमें यह दुर्लभ अवसर दिया है कि हमारा प्रदेश लोकतंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के राष्ट्रीय आदर्शों को हर छोटे-बड़े नागरिक के लिये सच और सुलभ बना सके।

जिस तरह का आपसी सद्भाव, विभिन्न समुदायों का शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व और सामान्य सुरक्षा की भावना आज हमारे प्रदेश में व्याप्त है उससे यह स्पष्ट है कि लोक और तंत्र के बीच परस्पर सम्मान और समझ के रिश्ते हमारे यहाँ विकसित हो सकें हैं। अराजकता, हिंसा और अत्याचार की शक्तियाँ अगर आज अपना सिर उठाने में घबराती हैं तो इसीलिए कि हमारे लोक ने उन्हें किसी तरह का समर्थन देने से इनकार किया है।

अगर प्रदेश की बिरादरी में आज मध्यप्रदेश अपना सिर ऊँचा रखकर बात कर सकता है और उसकी आवाज़ ध्यान से सुनी जाती है तो इसीलिए कि आप सबने उसके लिए प्रयत्न किया है। हमारा आगे का रास्ता कठिन है पर हमारी हिम्मत और हौंसला ऊँचा है। हमारी दृष्टि साफ़ और खुली है और हमें अपने सबसे ग़रीब बन्धु की बराबर चिन्ता है। सतपुड़ा और विन्ध्याचल, नर्मदा-चम्बल-सोन-महानदी आदि सब हमारे सहयात्री हैं।

रजत जयन्ती एक पड़ाव भर है और हमारी यात्रा में कोई विराम या विश्राम नहीं है। मैं एक विनम्र सहयात्री के रूप में कामना करता हूँ कि आपका पथ शुभ हो, आपकी यात्रा जन-जन के मंगल तक पहुँचे और आपका अन्वेषण इस प्रदेश को समृद्ध करे।

मध्यप्रदेश की स्थापना के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने पर 31 अक्टूबर, 1981 को प्रदेश की जनता के नाम संदेश।

बियाबान में नए संसार की रचना

आज जबकि मैं आपके सामने एक बहुत सुःखद कर्त्तव्य निभाने के लिए खड़ा हुआ हूँ तो मेरा मन 15 वर्ष पहले उस समय की ओर वापस जाता है जब दिनांक 9 फरवरी 1960 को मैं मध्यप्रदेश की विधानसभा में नैसर्गिक साधन मंत्री से यह पूछने खड़ा हुआ था कि क्या उन्हें इस बात की जानकारी है कि संसार का दूसरा सबसे बड़ा कोयले का भण्डार सिंगरौली में पाया गया है और उससे लाभ उठाने की क्या योजना है? उत्तर यह था कि सरकार के पास कोई योजना नहीं है। तबसे प्रगति के चक्र ने एक परिक्रमा पूरी कर ली है और आज मुझे मध्यप्रदेश सरकार के प्रतिनिधि के रूप में यहाँ खड़ा होकर सिंगरौली कोयला क्षेत्र के सुसंगत और सुव्यवस्थित विकास के लिए बनाए जा रहे विशेष क्षेत्रीय विकास प्राधिकार की पहली बैठक का उद्घाटन करने का सौभाग्य मिला है। इस क्षेत्र की भारी सम्भावनाओं को इस प्रकार मान्यता देने के लिए हम प्राथमिक रूप से माननीय मुख्यमंत्री श्री प्रकाशचन्द्र सेठी के आभारी है और प्राधिकार की स्थापना से इस मान्यता को संस्थागत रूप देने के लिए मैं अपनी ओर से श्री महेश नीलकण्ठ बुच को धन्यवाद देना चाहूँगा जो मध्यप्रदेश के नगर और ग्रामीण नियोजन विभाग के सचिव हैं और आधुनिक मध्यप्रदेश के प्रमुख निर्माताओं में से एक के रूप में जिन्हें बहुत समय तक याद किया जाएगा।

इस मौक़े पर पिछले अनेक वर्षों का घटनाचक्र याद आना स्वाभाविक ही है। मुझे इस पठार पर सोलह वर्ष पहले बिताई गई वह पहली रात अभी भी याद है जो मैंने यहाँ कही, जहाँ आज आधुनिक मकान बने है, लगाए गए तम्बुओं के छोटे केम्प में बहुत थोड़ी सुविधाओं में हिस्सेदारी करते हुए बिताई थी। तब मैंने केम्प फायर की हल्की आँच और गर्मी में बहुत ध्यान से जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के चीफ माइनिंग ऑफिसर श्री जोशी से उनकी कहानी सुनी थी। श्री जोशी ने सभ्यता के आधुनिक चिन्हों से दूर इस वीहड़ इलाक़े में महीनों जी तोड़ परिश्रम कर यह स्थापित किया था कि यहाँ कोयले का विपुल भण्डार है। मैं बहुत विनम्रता के साथ उस क्षण की उत्तेजना और विलक्षणता में आपको सहभागी बनाना चाहूँगा जब ज़िन्दगी और मेहनत, पसीने, कोशिश और उपलब्धियों से धड़कते हुए एक प्रगतिशील औद्योगिक केन्द्र का दृश्य मेरे मन में कौंध गया था और जिसने मुझे एक नई प्रेरणा से भरकर यह दृढ़ संकल्प करने के लिए बाध्य किया था कि इस सपने को सच बनाने के लिए लगातार प्रयत्न किया जाए। हर एक उपलब्धि एक सपने से शुरू होती है और जनता के दृढ़ संकल्प और सभी सम्बन्धित व्यक्तियों के सहयोग से यह सपना साकार होता है। इस क्षेत्र की प्रगति की कहानी दृढ़ संकल्प और सहयोग की ऐसी ही एक गौरवगाथा है। मेरा अनुरोध है कि उस स्थान पर जहाँ श्री जोशी ने पहले पहल अपना तम्बू लगाया था इस विपुल सम्पदा के खोजने में जिन व्यक्तियों ने मदद की है उनके परिश्रम और संकल्प की स्मृति में एक स्मरण पट्टिका स्थापित की जाए। ऐसे भी अवसर आए थे जब इन खदानों पर विकास आगे कभी के लिए स्थगित किये जाने लगें और कटनी, पिपरी रेल्वे लाइन का काम लगभग बन्द कर दिया गया। तब इस क्षेत्र की जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के फिर वे किसी भी राजनैतिक मत के क्यों न रहे हों संयुक्त प्रयास और दृढ़ इच्छा के कारण ही काम की गति को धीमा नहीं पड़ने दिया

गया। मैं उन सब साथियों के प्रति गहरा आभार व्यक्त करता हूँ, मैं यह भी अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि इस अवसर पर बहुत कृतज्ञता और प्रशंसा के साथ उन छोटे किसानों और आदिवासियों को, जो इस क्षेत्र के मूल निवासी हैं, याद करूँ जिन्होंने अपने खेतों और घरों को मिट्टी में मिल जाने दिया ताकि समूचे राष्ट्र के कल्याण के लिए इस रत्नगर्भा धरती से उसके अमूल्य भंडार का उत्खनन किया जा सके। उनके नाम भले ही आज अज्ञात हों लेकिन आज जो कुछ हुआ है बिना उनके अद्वितीय उत्सर्ग के सम्भव नहीं होता।

इसलिए यह उपयुक्त होगा कि उन कठिनाइयों और तक़लीफ़ों को ध्यान में रख जिनमें से होकर हम विकास के इस वर्तमान चरण पर पहुँचे हैं और अपने आगे का मार्ग निर्धारित कर रहे हैं। हमें यह स्वीकार करना होगा कि मध्यप्रदेश में हम अभी लगातार प्रगति के लिए अनिवार्य साधनों के अल्पकालीन और दीर्घकालीन पक्षों पर अधिक ध्यान नहीं दे पाए हैं। इसलिए इसमें कोई अचरज की बात नहीं है कि कोयला भंडार की भौगोलिक स्थिति के बावजूद हमारे प्रदेश को वे अनेक लाभ नहीं मिल सके हैं जो उसे स्वाभाविक रूप से मिलना चाहिये थे। यह हार्दिक प्रसन्नता की बात है कि अब हम पूरी गंभीरता से इस बारे में सक्रिय हो रहे हैं, इस क्षेत्र के विकास की योजना बनाने और इस तरह के प्रयत्नों के तालमेल बैठाने के लिए उद्योग, सिंचाई और बिजली, लोक निर्माण और नगर और ग्रामीण नियोजन विभागों के सचिवों का एक टॉस्क फोर्स बनाया गया है। मैं इस सिलसिले में टॉस्क फोर्स बनाने के सुझाव से तत्काल सहमत होने के लिए मुख्य सचिव श्री सुशीलचन्द्र वर्मा को धन्यवाद देना चाहूँगा। इस उच्च स्तरीय समिति के कुछ सदस्य आज यहाँ उपस्थित भी हैं।

मैं संक्षेप में इस अवसर पर इस क्षेत्र के भविष्य के बारे में अपनी कुछ धारणाएँ बताना चाहूँगा। कोयले के विपुल भंडार और उत्पादन बढ़ाने के सघन प्रयत्न आने वाले वर्षों में औद्योगिक विकास के नए क्षितिज खोलेंगे। बताया गया है कि योजना आयोग ने फैसला किया है कि नए प्रोजेक्टों के साथ कोयले की वाशरीज़ भी खोली जाए। इससे कोयले पर आधारित अनेक उद्योग खोले जा सकेंगे, जिनके बारे में अभी तक इसलिए नहीं सोचा गया था क्योंकि यहाँ पाये जाने वाले कोयले की किस्म निचले ढंग की है। पहले से ही उत्तरप्रदेश की तरफ़ वाले हिस्से में 3000 मेगावाट की क्षमता वाले दो सुपर थर्मल पावर स्टेशन बनाए जा रहे हैं और शुरुआत के तौर पर हमारा प्रदेश भी 200 मेगावाट का एक पावर स्टेशन बनाने पर विचार कर रहा है। मुश्किल सिर्फ़ पानी की है। जाहिर तौर से कुल दो साधन हैं या तो रिहंद जलाशय या फिर गोपद नदी की डायवर्शन कनाल नहर— इस बारे में जल्दी ही कुछ करना होगा अगर व्यापक राष्ट्रीयहित में कोई नई दिशा हमें खोजनी है। मध्यप्रदेश सरकार ने गोपद योजना के सर्वे के आदेश दे दिए हैं, इन सभी प्रमुख उद्योगों और राष्ट्रीय कोयला विकास निगम की ज़रूरतों से सहायक और छोटे उद्योग धंधों के लिए अनेक अवसर यहाँ उपलब्ध होंगे। रोज़गार और खुद के धंधों के लिए भी सम्भावनाएँ बहुत विस्तृत होंगी और गत् वर्ष स्थापित औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान विभिन्न किस्म की नौकरियों के लिए प्रदेश के युवक-युवतियों को आवश्यक प्रशिक्षण उपलब्ध करेगा। सड़कों और रेल संबंधों का भी जाल यहाँ बिछाना होगा क्योंकि निकट भविष्य में ही सिंगरौली, सरगुजा और कोरबा मिलकर छोटे और भारी उद्योगों का एक बड़ा क्षेत्र बन जायेंगे जिसके साथ नई समस्याएँ भी पैदा होंगी जैसा कि प्रगति के साथ हमेशा होता है। आज तो यहाँ की आबादी कुल लगभग 10 हज़ार है लेकिन अगले 5, 7 वर्षों में ही यहाँ लगभग 1 लाख व्यक्तियों के आवास आदि की व्यवस्था करना ज़रूरी होगा। इतने लोगों के लिए आवास और अन्य नागरिक सुविधाओं की व्यवस्था करना एक चुनौती है।

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि हम आज इस क्षेत्र के लिए उत्तेजक और साहसिक युग के प्रथम सोपान पर खड़े हुए हैं। यह हम पर निर्भर करता है कि हम इस अवसर का अच्छे से अच्छा उपयोग करते हैं या इस मौक़े

को भी चूक जाने देते हैं और आने वाली पीढ़ियों के साथ विश्वासघात करते हैं। यह कोई छोटी-मोटी समस्या नहीं है और कमज़ोर दिल या उलझे हुए दिमाग़ वाले उन चुनौतियों को समझने और उनसे जूझने में समर्थ नहीं हो सकते जो आगे आने वाली हैं। बियावान में से एक नये संसार की रचना का हम सबको जो अवसर मिला है उसके लिए असाधारण इच्छा और दायित्व भावना ज़रूरी होगी।

इस अवसर पर हमें वेद के वे वाक्य स्मरण आते हैं जिनमें कहा गया है कि:

"जो व्यक्ति सोता है, उसका भाग्य भी सोता है, जो व्यक्ति उठकर बैठता है, उसका भाग्य भी उठकर बैठता हे, जो व्यक्ति उठकर चल देता है, उसका भाग्य भी परछाँई की भाँति उसके साथ-साथ चलता है।"

आइये, हम पूरी विनम्रता के साथ संकल्प करें कि इस चुनौती को हम स्वीकार करेंगे। संसार में ऐसा कोई लक्ष्य नहीं जिसे मनुष्य की आस्था एवं अध्यवसाय प्राप्त नहीं कर सकता। इस ऐतिहासिक दिन पर हमें केवल ईश्वर के आशीर्वाद की आवश्यकता है जिससे वह साहस व निष्ठा हममें उत्पन्न हो सके जिसके द्वारा हम आने वाली पीढ़ी के लिए एक प्रगतिशील और सुनहरा भविष्य विरासत में छोड़ सकें।

सिंगरौली क्षेत्र विकास प्राधिकरण की प्रथम बैठक में उद्घाटन भाषण - 11 सितम्बर 1975

प्रतिभा की पहचान का परिवेश बने

आज हमारे लिए बड़े गौरव का दिन है। कलाओं के एक नए केन्द्र का उद्घाटन आज प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा सम्पन्न होने जा रहा है। हमारी संस्कृति के बुनियादी मूल्यों और जीवन-शक्ति की वे सबसे प्रखर प्रतीक हैं। आज जब भोपाल में बड़े तालाब के किनारे हम कलाओं के संरक्षण और सम्मान की एक नई शुरुआत करने जा रहे हैं तो हमारा यह चाहना बहुत स्वाभाविक है कि उसे इंदिराजी अपनी उदारता और आशीर्वाद से आरम्भ करें। इस नये केन्द्र का नाम **'भारत-भवन'** है और भारत के कलाकार-समुदाय को इसे इंदिराजी समर्पित करें इससे अधिक सार्थक संयोग दूसरा नहीं हो सकता। हम मध्यप्रदेश के नागरिकों और कलाकारों की ओर से श्रीमती गाँधी का अत्यन्त कृतज्ञता से हार्दिक स्वागत करते हैं। इस तरह के प्रयत्न के पीछे भी उनकी महान प्रेरणा रही है। भारत की एकता उसके हर अंचल में प्रतिबिंबित हो यह एक तरह से सभी मानते हैं। मध्यप्रदेश तो फिर देश का मध्यवर्ती राज्य है। यह इंदिराजी के ही प्रोत्साहन का प्रतिफल है कि हम कलाओं के माध्यम से सारे देश की विविधता और एकता का एक केन्द्र आज यहाँ शुरू कर पा रहे हैं। यह और भी सौभाग्य की बात है कि यह उद्घाटन मध्यप्रदेश की रजत जयंती वर्ष के दौरान हो रहा है।

संस्कृति का क्षेत्र बहुत संवेदनशील है— उसमें कुछ करने के पहले इस बात का ख़्याल रखना ज़रूरी है कि कलाकारों, लेखकों आदि को अपना मनचाहा काम करने की स्वतंत्रता हो और उन्हें समाज में सम्मान का स्थान मिले। मध्यप्रदेश में हमारी कोशिश का मुख्य आधार यही सम्मान और स्वतंत्रता सुनिश्चित करना रहा है। हमने विचारधारा और प्रादेशिक संकीर्णता के विचारों से इस क्षेत्र को मुक्त रखा है। हमारे प्रदेश के कलाकार और कलाप्रेमी लोग समूचे देश में जो महत्त्वपूर्ण हो रहा है उसके सम्पर्क में आ सकें और स्वयं मध्यप्रदेश में साहित्य और कलाओं की जो महान परम्परा रही है उसे जान-पहचान सकें, हमारी कोशिश यही है। देश के बींचों-बीच बसे होने के कारण भी मध्यप्रदेश की संस्कृति में खुलेपन और ग्रहणशीलता का वातावरण रहा है। यहाँ की प्रकृति में, आकाश में और दूर-दूर तक फैले विस्तार में मुक्ति का सहज आह्वान है, विनम्र स्वीकार्य है। देश में कहीं भी जो कुछ स्थाई और मूल्यवान रचता है हमारी आकांक्षा है कि हम उसे बता सकें कि वह समाज के लिए कुछ ज़रूरी कर रहा है और समाज को उसकी परवाह है। प्रतिभा की पहचान का परिवेश बने और व्यापक सामाजिक मान्यता हमारे कलाकारों, लेखकों को मिले तभी वे अपना श्रेष्ठतम समाज को दे सकते हैं। ज़ाहिर है यह बड़ा काम है और इसके लिए बहुत साधन और अनेक स्तरों पर चलने वाला एक व्यापक अभियान ज़रूरी है। इस क्षेत्र में हमारे जितने साधन हैं उनका उपयोग कर हम महान कलाकारों से लेकर साधारण नागरिकों तक की रचनात्मकता को **भारत-भवन** में एकत्र कर रहे हैं। हमारी यह उम्मीद है कि लोग इस बात को साफ़-साफ़ देख सकेंगे कि भारत में रचनात्मकता कितने अधिक स्तरों पर लगातार सक्रिय है। हम पर बाहरी दुनिया का काफ़ी प्रभाव पड़ता रहा है और अक्सर हमारी आधुनिकता पश्चिम की ओर देखने वाली आधुनिकता रही है। मुझे यह विनम्रतापूर्वक कहने की इजाज़त दीजिए कि जैसे आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में भारत

पिछले दशकों में आत्मनिर्भरता की ओर लगातार बढ़ता गया है वैसे ही संस्कृति के क्षेत्र में आज नया आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता है। **भारत-भवन** किसी हद तक इसी आत्मविश्वास को प्रकट करने का एक माध्यम है।

इस केन्द्र में हम एक ललित कला संग्रहालय रूपंकर एक रंगमण्डली मध्यप्रदेश रंगमण्डल, भारतीय कविता का पुस्तकालय वागर्थ और शास्त्रीय और लोकसंगीत संग्रहालय अनहद स्थापित कर रहे हैं। हमारी कोशिश यह है कि विभिन्न कलाओं के बीच जो आदान-प्रदान युगों से भारतीय परिस्थितियों में होता रहा है उसे आज के संदर्भ में फिर सार्थक ढ़ंग से सक्रिय किया जाए। मुझे यह कहते हुए बड़ी ख़ुशी है कि संस्कृति के क्षेत्र में हमारे प्रयत्न को देश और प्रदेश के कलाकारों, लेखकों आदि का बड़ा भारी और उत्कट समर्थन मिला है। हमारे यहाँ संस्कृति की नीति बनाने, उसे कार्यरूप में परिणित करने और मूल्याँकन करने के काम में कलाकारों और विशेषज्ञों की निर्णायक भूमिका है। देश के श्रेष्ठ कलाकार श्री जे.स्वामीनाथन् और विख्यात रंगकर्मी श्री ब.व. कारन्त **भारत-भवन** में स्थित दो संस्थाओं के निर्देशक हैं। हम जो कुछ भी थोड़ा बहुत कर पाये हैं वह कला-जगत की इस उदारता और सहयोग से ही संभव हो पाया है। मध्यप्रदेश ने कलाओं के लिए खुला मंच उपलब्ध कराया है जहाँ वैचारिक स्वतंत्रता और सृजनात्मकता के लिए पूरा अवसर है। **भारत-भवन** तो एक भवन है पर इसे कलाओं के लिए आत्मीय घर बनाने का सारा काम क़लाकारों के ज़िम्मे है। मुझे यह कहते हुए बड़ी प्रसन्नता है कि, जैसे अभी प्रधानमंत्री जी ने स्वयं देखा, उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारी बड़े उत्साह, लगन और परिश्रम के साथ निभाई है। मैं अपनी ओर से और मध्यप्रदेश शासन की ओर से इन सभी कलाकार बन्धुओं का बहुत आभार व्यक्त करता हूँ।

हमारी उम्मीद **भारत-भवन** को एक ऐसा केन्द्र बनाने की है जहाँ हम अपनी परम्परा और समकालीनता दोनों को पूरी विविधताओं में देख सकें और जहाँ नये और प्रयोगशील कुछ करने का भी पूरा मौक़ा हो। **भारत-भवन** के उद्घाटन के अवसर पर देश, विदेश और प्रदेश के अनेक श्रेष्ठ कलाकार, रंगकर्मी, संगीतकार, नृत्यकर्मी, आदि कृपापूर्वक आज यहाँ पधारे हैं। उनके सहयोग से हमारे प्रयत्न की सार्थकता बढ़ती है। मैं विशेष रूप से पेरिस से आये ब्रिटिश रंगकर्मी श्री पीटर ब्रुक का उल्लेख करना चाहूँगा जो यहाँ हमारे निमंत्रण पर आये हैं और जो अभिनेताओं की एक वर्कशॉप **भारत-भवन** के अन्तर्गत संचालित करेंगे। पहले नौ दिनों में **भारत-भवन** में आधुनिक नागर कला, मध्यप्रदेश के आदिवासी और लोककलाओं की एक प्रदर्शनी, दो एकल प्रदर्शनियाँ आयोजित हैं। बंगला, असमिया, मणिपुरी और उड़िया के विख्यात कवि अपनी कविताएँ प्रस्तुत करेंगे। देश के तीन प्रख्यात बुजुर्ग संगीतकार अपना संगीत प्रस्तुत करेंगे। मध्यप्रदेश की लोकनाट्य शैलियों के प्रदर्शन होंगे और मध्यप्रदेश रंगमण्डल अपने सबसे पहले पाँच नाटक प्रस्तुत करेगा। मध्यप्रदेश के संगीतकारों, नृत्य और साहित्य पर नौ पुस्तकों का प्रकाशन होगा, मध्यप्रदेश के चार कलाकारों की प्रतिकृतियाँ जारी की जायेंगी।

वास्तुकार श्री चार्ल्स कोरिया ने **भारत-भवन** के लिए एक ख़ूबसूरत डिज़ाइन बनाई है। राजधानी परियोजना के इंजीनियरों ने और यहाँ के सैकड़ों मज़दूरों ने रात-दिन एक कर बहुत मेहनत से इसे पूरा किया है। इस अवसर पर ये सभी हमारी प्रशंसा के पात्र हैं। यह एक सुखद संयोग है कि **भारत-भवन** के उद्घाटन के अवसर पर ही मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित कलाओं के राष्ट्रीय पुरस्कार कालिदास सम्मान और राज्य स्तरीय शिखर सम्मान के अलंकरण भी इंदिरा जी के कर-कमलों द्वारा सम्मान्य कलाकारों को दिये जा रहे हैं।

*13 फरवरी, 1982 को प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा भोपाल में **भारत-भवन** के उद्घाटन के अवसर पर श्री अर्जुनसिंह द्वारा दिया गया स्वागत भाषण।*

पूज्य मदर टेरेसा: मूर्तिमान करुणा के सामने

मुझे अपने जीवन का यह क्षण एक सपना लग रहा है— एक ऐसा सपना जो बहुत-सी निजी और आत्मा पर खरोंच छोड़ने वाली व्यथा के एक क्षण में प्रगट हुआ था और जो ईश्वर की अनुकम्पा और मेरी नेता श्रीमती इंदिरा गाँधीजी की कृपा से अब साकार होने जा रहा है, एक ऐसे व्यक्ति के हाथों जो स्वयं मूर्तिमान करुणा और विनम्रता है। जो भावनाएँ और आवेग मुझे इस समय अभिभूत कर रहे हैं उन्हें व्यक्त करने में भाषा असमर्थ है। मैं सिर्फ़ यही कह सकता हूँ कि अपनी सौम्य उपस्थिति से आज आप एक और घायल आत्मा को राहत देने वाला स्पर्श दे रही हैं जो समूचे संसार में फैली आपकी उस अक्षौहिणी से जुड़ जाएगी जिसने आपकी दयामय चेष्टाओं, मातृवत् चिन्ता और करुणामय दान से सांत्वना और गतिशीलता पाई है। निजी व्यथा और सार्वजनिक यत्न के तीस वर्षों का आज सुबह यहाँ उपसंहार हो रहा है— इस विशाल सोन नदी के किनारे जो अपनी अँधेरी गहराई में उस घटना का रहस्य भी छिपाए है जो 14 जनवरी, 1952 को घटित हुई थी और जो आज के इस सादे और निराडम्बर आयोजन की प्रेरणा और कारण दोनों ही है।

जब स्वतंत्र भारत के सबसे पहले आम चुनाव में प्रचार कार्य अपने शिखर पर था। दो अबोध आत्माएँ, दस वर्ष का एक अंधा बालक और ग्यारह वर्ष की उसकी बहन, अकेले, अनचाहे और अगली सुबह के प्रति शंका से भरे, तीन और चार वर्ष की कच्ची आयु में अपने माता-पिता के हैजे से मर जाने के कारण अनाथ हुए, बेघरबार छूट गये थे और रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के भयानक थपेड़ों में इधर-उधर भटक रहे थेः न उनका नाम था, न स्थान। ऐसी घोर निराशा की स्थिति में 10 जनवरी, 1952 को यहाँ से बीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित कंधवार गाँव में ठण्ड की एक ठिठुरती शाम ये दो आत्माएँ मेरे कैम्प में आई। उस शाम आग तापते हुए मैंने उनकी करुण कथा सुनी, जिस हद तक वे उसे समझे और समझा सकते थे उसने मेरा मर्मस्थल छू लिया। मैंने उन्हें धीरज बँधाया और प्रेम और सहानुभूति दी। उन्हें आश्वस्त किया कि उनकी निराश यात्रा अब समाप्त हो गई है और उनकी वैसी ही देखभाल की जाएगी जैसी मेरे परिवार के किसी बच्चे की की जाती है। हर शाम चुनाव-प्रचार के बाद जब मैं लौटता तो अधिक से अधिक समय उनके साथ बिताता। उन्हें वे योजनाएँ बताता जो मेरे मन में उनके भविष्य के लिए थीं और वे प्रसन्न होते। उनके चेहरों पर निराशा और निराश्रय की जो काली छाया थी उसका स्थान आशा और आश्रय की चमक ने ले लिया।

लेकिन भाग्य ने कोई और ही योजना बना रखी थी, जिस पर उसने 14 जनवरी को, मेरे इन नन्हें देवदूतों को हृदयंगम करने के कुल चार दिनों बाद ही, क्रूर सक्षमता के साथ अमल किया। ये बच्चे अपनी बदली स्थिति समझने लगे थे और उन्होंने मुझसे शिकारगंज के संक्रान्ति के मेले में जाने देने के लिए पूछा। मैं फ़ौरन राजी हो गया। मैंने उन्हें कुछ थोड़े से पैसे भी दिये ताकि वे मेले में और बच्चों की तरह ख़र्च कर सकें और ख़ुश हो सकें। वे मेरे

कैम्प से सुबह 9 बजे गये। बालिका अपने अन्धे भाई को रास्ता दिखाती हुई, स्थिर और आश्वस्त क़दमों से चलती हुई, मेले में सहज़ और उल्लसित अनुभव करने की चाहत लिये और मेले की रंगारंग भव्यता अपने अन्धे भाई को किसी कदर सम्प्रेषित करने के लिए अधीर। वे दूर जाते गये और मैं इस संतोष में खड़ा रहा कि मैं दो जनों के जीवन में आशा और आस्था ला सकने का माध्यम बन सका हूँ। आशा की यह यात्रा विधि ने बीच में ही समाप्त कर दी। उस शाम वे मेरे कैम्प और आग के पास वापस नहीं आये। उस दोपहर भारी बारिश हुई थी - यह कोई असामान्य बात नहीं थी। उनके बारे में काफ़ी पूछताछ करने के बाद जो बात पता चल सकी वह यह थी कि उन्हें अंतिम बार तेज़ी से पूर में आये एक नाले को पार करते हुए देखा गया था। उसके बाद उनका कुछ पता नहीं चला। जो चंचल भाग्य उन्हें इस संसार में लाया था वही उन्हें लील गया और उनका नामोनिशान बाक़ी नहीं रहा। मैंने अपनी ज़िन्दगी में अपने को इतना अकेला और निस्सहाय कभी महसूस नहीं किया जितना उस दिन। मैं अपना दुःख किसी से बाँट भी नहीं सकता था क्योंकि मन में डर था कि कोई समझेगा नहीं। वे बिना किसी नाम के मेरे घर आये थे: मैंने उन्हें नाम दिये थे, बालिका को आशा और बालक को विश्वास। दोनों को जैसे निर्धारित अवश्यंभाविता के साथ बुझा दिया गया।

पर मनुष्य के हृदय में आशा समाप्त नहीं होती, उमड़ती रहती है और उसे संपोषित करने वाली और सारतत्व देने वाली आस्था विश्वास से उपजती है। ट्रैजडी और विषाद की कुल्हिया में तपा-ढला ऐसा ही विश्वास मेरे हृदय में एक आशा को साकार कर रहा है - ऐसे बच्चों के लिए एक घर बनाने की आशा जो बेघर हैं, जो विकलांग और निराश्रित हैं उन्हें जीवंत और अंग की सुंविधा उपलब्ध कराने की। ताकि जहाँ तक मेरे लिए सम्भव है, हमारे देश की धूल के फूल बेपरवाही से न कुम्हलायें, न मुरझायें, न तोड़ लिये जायें। जहाँ तक मैं समझ सका हूँ स्वर्गीय श्री संजय गाँधी की ज़िन्दगी में भी यह एक मिशन था और उसे अपनी छोटी और घटनापूर्ण ज़िन्दगी में पूरा करने के लिए विकल थे इसीलिए इस संस्था का नाम उन पर रखा गया है।

परम पूज्य मटर टेरेसा, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप ईश्वर के इस घर का शिलान्यास करें और आशीर्वाद दें ताकि यह ईश्वर के बच्चों का घर बन सके और उनकी वैसी देखभाल कर सकें जैसी परमपिता अपने बच्चों के लिए चाहेगा। जो लोग यहाँ कामकाज चलायेंगे उन्हें अपने उस व्यक्तित्व की स्फूर्ति का संस्पर्श दें जो इस संसार में सब कुछ में जो श्रेष्ठ, सत्य, शिव और सुन्दर है उसका शिखर-प्रतीक है।

28 जनवरी, 1982 को संजय गाँधी शिशु एवं परिवार कल्याण केन्द्र, चुरहट, का मदर टेरेसा द्वारा शिलान्यास के अवसर पर प्रारंभिक वक्तव्य।

हम किसी के मोहताज़ न रहें

मध्यप्रदेश राज्य की सत्ताइसवीं वर्षगाँठ के शुभ अवसर पर अपने प्रथम सेवक से अभिनन्दन व शुभकामनाएँ स्वीकार करें। एक नवम्बर 1956 को कई राज्यों को मिलाकर इस विशाल प्रदेश की स्थापना की गई थी और यह आशा बँधी कि विकास की असीम सम्भावनाओं को मूर्तरूप देकर यहाँ के नागरिकों को एक बेहतर जीवन-यापन का अवसर मिलेगा। पिछले सत्ताइस वर्षों में अनेकों कठिनाइयों और चुनौतियों के बावजूद आपने विकास की कई मंज़िलें तय की हैं और इन आशाओं को साकार किया है। इस श्रेय के हक़दार प्रदेश के किसान, मज़दूर, व्यापारी और वे निष्ठावान व्यक्ति हैं जिन्होंने उपलब्ध सीमित साधनों का उपयोग करके अपने श्रम व त्याग से कई नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। यह सब इसलिए भी सम्भव हुआ क्योंकि इन वर्षों में हमारे सौभाग्य से राष्ट्रनायक पंडित नेहरू व श्रीमती इंदिरा गाँधी जैसे दूरदर्शी राष्ट्र निर्माताओं का सक्रिय मार्गदर्शन हमें मिला। इसी बीच एक नई तरुण पीढ़ी भी तैयार हुई है जिनका जन्म एक नवम्बर, 1956 के बाद हुआ है और जो इस प्रदेश की प्रगति के साथ बड़े होकर आज इसके निर्माण में हिस्सा बँटाना चाहते हैं और उसके समस्त साधनों पर अपना न्यायिक अधिकार चाहते हैं। यह क्षण आत्मविश्वास, महत्त्वाकाँक्षा और शोषण के विरुद्ध संघर्ष की भावनाओं से ओत-प्रोत उत्तेजक क्षण हैं जिसकी अनुभूति हममें से प्रत्येक को होना ही चाहिये क्योंकि इसके बग़ैर हम उन चुनौतियों का सामना नहीं कर सकते जो भविष्य के निर्माण में हमें करना पड़ेगा।

यह प्रदेश किसानों का प्रदेश है, खेतिहर मज़दूरों का प्रदेश है, आदिवासी हरिजन और पिछड़े वर्ग के लोगों का प्रदेश है। जो इसकी आत्मा हैं, शरीर हैं और जिनके विकास में ही प्रदेश का विकास निहित है इन लोगों ने काफ़ी तरक्क़ी की है लेकिन अभी यह नहीं कह सकते कि शोषण, अज्ञान और अन्याय की काली छाया से यह पूरी तरह मुक्त हो गये हैं। हमें उन कारणों की खोज करनी पड़ेगी जिनकी वजह से अभी तक यह सम्भव नहीं हो सका है और फिर बिना किसी हिचक या भेदभाव के वे प्रयास करने पड़ेंगे जिससे इन लोगों को राहत दिलाई जा सके, शोषण व अन्याय के तानेबाने को तोड़ा जा सके और एक उन्मुक्त समाज की संरचना को मूर्तरूप दिया जा सके। ऐसा नहीं है कि इस दिशा में अभी तक कुछ नहीं किया गया है। कई क़ानून बने हैं, प्रक्रियाएँ निर्धारित हुई हैं और काफ़ी हद तक सफलता भी मिली है, लेकिन मैं यह स्वीकार करना चाहता हूँ कि अभी कुछ करना शेष है। स्वर्गीय महाकवि मुक्तिबोध के शब्दों में "हमारी भूल व ग़लतियों ने ही ज़िरह बख़्तर पहन रखी है" आपके सेवक के नाते मैं यह अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ कि बिना व्यक्तिगत अहंकार व पूर्वाग्रह के इन ग़लतियों को स्वीकार करूँ व उन भूलों को सुधारने का निष्ठा से प्रयास करूँ जिससे सामान्य जन-जीवन में विश्वास और संतोष उत्पन्न हो सके।

इस संदर्भ में अन्य बातों के साथ-साथ मैं सबसे ज़्यादा प्राथमिकता किसानों के अधिकारों को पूर्ण संरक्षण देने व भ्रष्टाचार के विरुद्ध हर स्तर पर निरंतर अभियान चलाने को देता हूँ। यह कौन नहीं जानता कि हमारे किसान भाई धूप, पानी व सर्दी में कठोर परिश्रम करते हैं, अपने जीवन की एक तरह से आहुति देते हैं ताकि देश का उत्पादन बढ़े, हम खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर बनें और किसी के मोहताज़ न रहें। पिछले एक दशक की उपलब्धि उनके

का बहुवाचकता के प्रति समर्पित है।

प्रयासों का प्रतीक है जिस पर हर भारतीय को गर्व है। श्रीमती इंदिरा गाँधी ने किसानों की मेहनत का और उनकी आर्थिक स्थिति का सही मूल्यांकन करके उनकी उपज का वाज़िब मूल्य दिलाने का भरसक प्रयास किया है और प्रदेश में भी उनकी इच्छा को मूर्तरूप देने का सफल प्रयास किया गया है। किसानों की दूसरी महत्त्वपूर्ण समस्या भूमि पर उनके अधिकारों के सही रेखांकन से संबंधित है। ग्रामीण अंचल के किसानों को पटवारी क़ानूनगो से अपने अधिकारों से संबंधित ख़सरे की नक़ल लेने में कितनी परेशानी होती है सबको मालूम है। इस दिक़्क़त को दूर करने के लिए शासन ने यह निर्णय लिया है कि प्रत्येक खाते के संबंध में बजाय पंचवर्षीय ख़सरे के, प्रत्येक वर्ष के लिए ख़सरे तैयार किये जायँगे। किसानों को इस अधिकार आलेख की नक़ल प्रत्येक वर्ष उपलब्ध कराने के लिये आधुनिकतम उपकरण कम्प्यूटर का इस्तेमाल किया जाएगा और अगले चार वर्षों में प्रत्येक ज़िले में इस माध्यम से यह अभिलेख प्रत्येक वर्ष हर किसान को उपलब्ध कराया जाएगा। मुझे आशा है कि किसान बंधु रोज़ की परेशानी से बच सकेंगे और उनके अधिकारों के ग़लत इन्द्राज से जो मुक़दमेबाज़ी होती थी, उससे राहत मिलेगी।

पिछले दो वर्षों से प्रदेश में भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक सघन अभियान चलाया है क्योंकि एक स्वच्छ प्रशासन देने का वचन हमारी नेता श्रीमती इंदिरा गाँधी ने प्रदेश के नागरिकों को दिया है और उसे पूरा करना हम अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते हैं। इस संदर्भ में हमने कई क़ानून बनाये हैं और उन पर कठोरता से अमल करने का भी प्रयास किया है लेकिन अभी भी बहुत कुछ और करना आवश्यक है। इतने बड़े प्रदेश के शासनतंत्र को सदैव जनोन्मुख बनाकर रखना और भ्रष्ट आचरण को प्रतिबंधित करते रहना बहुत आवश्यक है क्योंकि विकासशील योजनाओं का सही लाभ और नागरिकों के हितों का सही संरक्षण उसके बग़ैर सम्भव नहीं है। सुदूर अंचलों में निवास करने वाला किसान अपने अधिकारों की रक्षा के लिये और साधनों के लिये जिस शासकीय सेवक के पास जाता है उससे उसे क्या मिलता है, यह महत्त्वपूर्ण है कि वन क्षेत्रों में अपने दैनिक जीवन में आदिवासी बंधु शासकीय तंत्र को अपना सहायक समझते हैं या बाधक यह देखना ज़रूरी है और सामान्य नागरिक शासनतंत्र के जिस स्तर से भी सम्पर्क करना आवश्यक समझता है, वहाँ उसे राहत मिलती है या शोषण व आतंक का शिकार होना पड़ता है इसे समझना नितांत आवश्यक है। हम प्रत्येक वर्ष करोड़ों रुपये जो इस प्रदेश के नागरिक काफ़ी कष्ट सह करके, कर के रूप में देते हैं उसका उपयोग सिंचाई के बाँध व नहर, सड़कों, भवनों के निर्माण में ख़र्च करते हैं और नागरिकों का यह अधिकार है कि अपने करों के सही उपयोग को सुनिश्चित होते देखें। यह सब तभी सम्भव है जब हम एक ऐसा वातावरण निर्मित करें जहाँ जन-धन का दुरुपयोग करने वाले व्यक्ति और सामान्यजन को प्रताड़ित करके धन-उपार्जन करने वाले व्यक्ति को चाहे वे कितने ही बड़े व प्रभावशील क्यों न हों, कड़ी सज़ा दी जा सके और उन्हें समाज से बहिष्कृत किया जा सके।

प्रशासन में कार्य कर रहे बहुसंख्यक शासकीय सेवक ईमानदारी व निष्ठा से प्रदेश की जनता की सेवा कर रहे हैं किन्तु यह भी उतना ही सही है कि थोड़े से भ्रष्ट और अनुत्तरदायी लोग जन-धन की हानि व नागरिकों को प्रताड़ित करने से भी नहीं चूकते। इस संदर्भ में नियमों का कड़ाई से पालन किया जाना ज़रूरी है। मैंने आदेश दिये हैं कि शिक्षकों और अनुसचिवीय स्टॉफ को छोड़कर सभी शासकीय सेवक और अधिकारी दिनांक 31 मार्च 1983 तक अर्जित अपनी सम्पत्ति का विवरण शासन को दिसम्बर, 31 तक प्रस्तुत करें। तत्पश्चात् इन विवरणों की जाँच करके यह सुनिश्चित किया जाएगा कि किसने अपनी उचित आमदनी से ज़्यादा क़ीमत की सम्पत्ति अर्जित की है और फिर जो भी दोषी पाये जायँगे उनके विरुद्ध प्रभावी कार्रवाई की जाएगी। भ्रष्टाचार विरोधी सभी कार्रवाइयों की सतत निगरानी करने के लिये और आवश्यक पड़ने पर उचित क़दम उठाने के लिये मेरे स्वयं के सचिवालय में एक उच्चस्तरीय प्रकोष्ठ क़ायम किया जाएगा जिसके माध्यम से मैं आपके प्रति अपनी ज़िम्मेदारी निभाऊँगा।

यह सब प्रयास तभी सफल हो सकते हैं जब आपका मुझे सक्रिय सहयोग मिले ताकि भ्रष्टाचार के विरुद्ध इस निर्णायक अभियान में जागृत जनमत सबसे प्रभावी अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया जा सके। भ्रष्ट कर्मचारी, भ्रष्ट राजनैतिक कार्यकर्त्ता और भ्रष्ट व्यापारी के अपवित्र गठबंधन को तोड़ना बहुत सरल काम नहीं है।

मैं जानता हूँ कि इसके लिए कई जोखिम उठाने पड़ेंगे। कई प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रहार सहने पड़ेंगे और हो सकता है, व्यक्तिगत क्षति भी उठानी पड़े लेकिन मैं आज इस शुभ दिन पर आपके सेवक के नाते वचन देता हूँ कि जनहित से जुड़े इस प्रयास के लिये जो भी सहना पड़े मैं सहर्ष उसके लिए तत्पर हूँ लेकिन अब मैं यह सहन करने को तैयार नहीं हूँ कि जो ग़रीब स्वयं अपने जीवन के बोझ से दबे हैं उन्हें अन्याय, शोषण और भ्रष्टाचार के बोझ से भी लादा जाए।

अपने प्रदेश को समृद्धशाली बनाने, जनजीवन को शांत और सुव्यवस्थित रखने, ग़रीब और असहाय लोगों को सार्थक जीवन के आधार उपलब्ध कराने के लिए आज संकल्प दिवस है और इसे निष्ठा व समर्पण की भावना से यथार्थ के रूप में परिणित करने के लिए प्रदेश की तरुणाई को मैं आह्वान करता हूँ।

मध्यप्रदेश की स्थापना की 27 वीं वर्षगाँठ पर प्रदेश के नागरिकों को संबोधन 1 नवम्बर, 1983 ।

ग़रीबों को घर और ज़मीन का अधिकार सौंपने का क्षण

प्रदेश के नागरिकों के प्रथम सेवक के नाते इस गरिमामय सदन में वक्तव्य देते हुए, मेरे लिए यह विनम्र भावातिरेक का क्षण है।

सदन के समक्ष पिछले लगभग चार साल से इसके नेता की हैसियत से सार्वजनिक महत्त्व के कई मुद्दों पर कुछ कहने का और इस सदन के संरक्षण और समर्थन के लिए प्रार्थना करने का मुझे मौक़ा मिला है। परन्तु अभी तक जो भी कुछ मैंने कहा है, उससे कहीं बड़ी मानवीय संवेदना आज जो वक्तव्य दे रहा हूँ उसमें है।

सदन जानता ही है कि बड़े शहरों और ज़िला मुख्यालयों पर पिछले तीन दशकों में कई कारणों से आबादी का विस्तार हुआ है। उनमें कई लोगों ने अपने मकान खुद अपने साधनों से बनाये हैं, अपनी माली हालत सुधारने के लिये आगे आये हैं और मुनाफ़े का धंधा करने के बाद अब ये लोग शहरों के आलीशान इलाक़ों में रहते हैं। इन सब नागरिकों के लिए मेरे मन में शुभकामनाएँ ही हैं, परन्तु हमें इसके साथ ही इस हक़ीक़त की भी अनदेखी नहीं करनी चाहिए कि हज़ारों दूसरे लोग भी शहरों की ओर खिंच आए हैं, सारी सुविधाओं में अपने लिए महज़ थोड़ी-सी जगह पाने और ख़ुशहाली का थोड़ा-सा हिस्सा पाने के लिए। शहरों में आलीशान निजी और सार्वजनिक इमारतें तामीर करने के लिए प्रदेश के कोने-कोने से ये लोग आए हैं। वे इस उम्मीद से भी आए हैं कि उन्हें भी खुले आसमान के नीचे थोड़ी-सी जगह सिर छुपाने को इन शहरों में नसीब होगी। इनका पसीना और परिश्रम और अकसर कमर-तोड़ परिश्रम जो वे शहरों को सँवारने में दे सकते थे, उसे हमने लिया है, परन्तु उन्हें उसकी एवज़ में जिस उम्मीद और आश्रय की तलाश में वे अपने सर्वस्व को छोड़ शहरों की ओर निकले थे, क्या हम उनकी इच्छा के अनुरूप कुछ कर सके हैं। अपने आरामदेह मकानों में रहते हुए हमारे लिए, झुग्गी-झोपड़ियों और गंदी बस्तियों के उस भूमिगत संसार की हक़ीक़त को भुला देना बहुत आसान है, जिसमें ये लोग बसते हैं। हममें से कितने होंगे जो अपनी मर्ज़ी से उनसे जगह बदलना चाहेंगे।

जो कठोर और निर्मम नाटक इन बस्तियों में दिन-रात होता है, वह अकसर हमारे गणराज्य की बुनियादी मान्यताओं, न्याय, समानता और स्वाधीनता का मखौल उड़ाता है। इस घिनौनी दृश्यावली में अक्सर बिचौलियों और शोषकों की एक ऐसी ज़मात भी शामिल होती है, जो अपनी सामाजिक स्थिति और इज़्ज़तदारी के दबदबे की आड़ में और कभी-कभी छोटे कर्मचारियों की साँठ-गाँठ से, ग़रीबी के कारण पैदा होने वाले कदाचरण और कमज़ोरियों पर अपनी राक्षसी भूख को मिटाती है। इन हालातों में सुधार लाने के कई प्रयास हुए हैं और पिछले कुछ वर्षों में कहीं-कहीं बहुत अच्छा काम भी हुआ है, परन्तु हमें ईमानदारी से यह मानना होगा कि समस्या की विकरालता को देखते हुए जो कुछ किया गया है, वह पर्याप्त नहीं है और स्थिति दिनोंदिन बिगड़ती जा रही है।

इस सरकार ने इसलिए तय किया है कि इस समस्या को देखने के नज़रिये में बुनियादी परिवर्तन की आवश्यकता है। इसीलिए आज एक विधेयक हम सदन में ला रहे हैं जिसका उद्देश्य झुग्गी-झोपड़ियों और गंदी बस्ती के बाशिंदों को, जिस सरकारी ज़मीन पर वे आबाद हैं उसका मालिक़ाना हक़ देना है। यह हक़ उसी को दिया जाएगा

जो वास्तव में उस जगह काबिज़ है। बिचौलियों और शोषकों को इस हक़ में ख़लल डालने का मौक़ा नहीं दिया जाएगा और जो इन बाशिंदों को उनके हक़ से वंचित करने की कोशिश करता है उसे दो साल तक की सज़ा दी जा सकेगी। अगर ऐसे लोगों को हटाना आवश्यक होगा तो उन्हें उतनी ही ज़मीन जितने पर वे काबिज़ हैं, एवज़ में कहीं और दी जायगी तभी उन्हें उनकी जगह से हटाया जा सकेगा। प्रदेश में अब ऐसे विस्मृत और वंचित नागरिक नहीं रहेंगे जिन्हें अपने घर-आँगन पर अधिकार न हो। उनके हक़ों की चौकस पहरेदारी राज्य की शक्ति अब अपनी पूरी सामर्थ्य से करेगी। शहरों के मास्टर प्लानों में ऐसा संशोधन किया जाएगा जिससे न्यूनतम नागरिक सुविधाओं समेत ऐसी जगह तय हो, जहाँ शहरों में आने वाले ऐसे तबके अपने कामचलाऊ झोपड़े बना सकें। सभी माननीय महापौरों को और नगर निगमों के प्रशासकों को चिट्ठी भेजकर अनुरोध किया गया है कि वे ऐसा प्रस्ताव पारित करें जिससे इस क़दम का फ़ायदा उन लोगों को भी मिल सके जो नगर निगमों की ज़मीनों पर रहते हैं। इसी तरह नगर-पालिकाओं को भी संबंधित क़ानून के तहत निर्देश दिये जा रहे हैं जिससे यह क़ानून उनके क्षेत्रों में भी लागू हो।

माननीय सदन मुझसे सहमत होगा कि इस क़दम से, पूरी तरह नहीं तो काफ़ी हद तक, हम प्रदेश के लगभग 40 लाख नागरिकों की ज़िन्दगी में स्थिरता और सुरक्षा का थोड़ा-सा आश्वासन जगा सकेंगे। ये वे लोग हैं जो क़ानून के संरक्षण से अब तक वंचित थे और जिन्हें अकसर अपमानित किया जाता था और कहीं बसने के बुनियादी अधिकार से वंचित किया जाता था। प्रशासन तंत्र के क़ानूनों की भूल-भुलैया अब उनके इन हक़ों को कुचल नहीं पायेगी और न ही दबा सकेगी। कुछ लोगों को ऐसा लग सकता है कि समस्या के सभी पहलुओं पर विचार किए बग़ैर हम जल्दीबाजी में कोई क़दम उठा रहे हैं। ऐसे लोगों से मैं कहना चाहूँगा, ठीक है तथाकथित समझदारी और सतर्कता से परिभाषित होकर इस समस्या के निदान के लिए छुट-पुट प्रयास तो हमने बहुत कर लिए, अब हमने तेज़ी से कार्रवाई करने का फैसला किया है और उसके सारे परिणाम भोगने को तैयार बैठे हैं, क्योंकि हमारा यह क़दम उन लोगों की भलाई से जुड़ा है जिनके हित-संरक्षण के लिए हम प्रतिबद्ध हैं। कुछ दूसरों की, सौन्दर्यबोध जनित भावनाओं को, इससे ठेस लग सकती है और उन्हें लग सकता है कि शहरों की ख़ूबसूरती को नष्ट किया जा रहा है। मैं खुद भी सौन्दर्य-बोध और ख़ूबसूरती के सभी पहलुओं का क़द्रदान हूँ, परन्तु मैं उस सौन्दर्य-बोध की प्रासंगिकता को मंजूर नहीं कर सकता जो मानवीय गरिमा के पतन पर पनपती है।

हमारी नेता श्रीमती इंदिरा गाँधी की ग़रीब और वंचित तबकों के प्रति लगातार चिंता, और करुणा को साकार करने और उसे अर्थवत्ता देने के लिए इस सरकार ने पूरी निष्ठा से यह क़दम उठाया है।

मैं इस माननीय सदन से आग्रह करता हूँ कि इस प्रयास को अपना समर्थन दें और इस विधेयक को आज ही क़ानून बनाने की स्वीकृति दें ताकि यहाँ मौज़ूद आम जनता के नुमाइंदों के उदारमना प्रयासों से सारे नगरों के अंधेरे माहौल में 18 अप्रैल, 1984 की सुबह, आशा, आस्था और आत्मविश्वास की नई किरणें फैल सकें।

मध्यप्रदेश विधानसभा में 17 अप्रैल 1984 को दिया गया भाषण।

[चर्चा के पश्चात् 'मध्यप्रदेश नगरीय क्षेत्रों के भूमिहीन व्यक्ति (पट्टाधृति अधिकारों का प्रदान किया जाना) विधेयक 1984' 17 अप्रैल 1984 को ही सर्वसम्मति से पारित हुआ। 17 अप्रैल, 1984 को राज्यपाल महोदय की अनुमति प्राप्त हुई; अनुमति 'मध्यप्रदेश राजपत्र' (असाधारण) में, 17 अप्रैल, 1984 को ही प्रकाशित की गई। इस प्रकार ग़रीबों और वंचित तबको के हित में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण क़ानून का जन्म हुआ। मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह का स्वप्न और संकल्प साकार हुआ और सारे नगरों के अंधेरे माहौल में 18 अप्रैल, 1984 की सुबह, आशा, आस्था और आत्मविश्वास की नई किरणें फैल गईं।]

किसी बलिदान को बड़ा नहीं मानूँगा

प्रदेश के आदरणीय नागरिकगण,

आज मैं आपको शासन के एक ऐसे क़दम की जानकारी देना चाहता हूँ, जिसका सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में प्रदेश के प्रत्येक नागरिक से है, चाहे वे दूर-दराज ग्रामीण अंचलों में निवास करते हों या नगरों में। आपको ज्ञात है कि हमारे देश की आदरणीया प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने देश को स्वच्छ और संवदेनशील प्रशासन देने का वचन दिया है और उनके इस पवित्र संकल्प को मूर्त्तरूप देने का प्रयास पिछले दो वर्षों से हम इस प्रदेश में भी कर रहे हैं। उन्हीं प्रयासों की शृंखला में माननीय राज्यपाल महोदय ने एक अध्यादेश प्रसारित किया है, जिसके द्वारा भ्रष्टाचार व कदाचरण पर तीखा और प्रभावशील प्रहार करने का मार्ग प्रशस्त होगा।

आपको विदित ही है कि आधुनिक प्रशासन का दायित्व अब केवल शांति-व्यवस्था क़ायम रखना और कर की वसूली करके प्रशासन-तंत्र को संचालित करना मात्र नहीं है। व्यापक जनहित के पोषण के लिए अब प्रशासन को विभिन्न और विविध कार्यक्रमों को पूर्ण करने की ज़िम्मेदारी उठानी पड़ती है और इस ज़िम्मेदारी को निष्ठापूर्ण, सामयिक और ईमानदारी से निर्वहन कर ही जनकल्याणकारी राज्य अपनी सार्थकता प्रतिपादित कर सकता है। इस प्रयास में जागरूक जनमत और निष्ठावान व जनहित के प्रति संकल्पित प्रशासन-तंत्र के बीच सामंजस्य और सहयोग की मज़बूत कड़ी का होना नितान्त आवश्यक है। हम इस तथ्य पर गौरव अनुभव करते हैं कि आज़ादी के पिछले 34 वर्षों में देश की जो प्रगति हुई है, उसके पीछे इसी सामंजस्य और सहयोग की अहम् भूमिका रही है। मुझे आपसे यह कहते हुए विशेष हर्ष है कि इस प्रदेश में भी प्रशासन-तंत्र ने इसी निष्ठा व ईमानदारी का परिचय दिया है और जनसहयोग प्राप्त करके प्रगति के कई सोपान तय किये हैं।

इस पृष्ठभूमि में यह और भी आवश्यक है कि इस निष्ठा, सामंजस्य व परस्पर विश्वास की कड़ी को कमज़ोर करने वाले तत्वों के विरुद्ध, जो संख्या में कम होते हुए भी आज हमारे राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व प्रशासनिक ढाँचे को प्रभावित करने का प्रयास कर रहे हैं, जनमत जागृत करके कठोरता से कार्रवाई करने के लिये क़ानून बनाये जायँ। चूँकि जनतंत्र में जनादेश पर आधारित शासन की प्रमुख कड़ी राजनैतिक सत्ताधारी होते हैं, इसलिये कुछ दिनों पूर्व लोकायुक्त की स्थापना करके हमने उनके विरुद्ध जाँच व कार्रवाई करने के लिये अधिनियम बनाया है और इस क़ानून की परिधि में स्वयं अपने को भी शामिल किया है। मुख्यमंत्री के नाते मैं अपने को आपका प्रथम सेवक ही मानता हूँ और इसलिये यह और भी अनिवार्य है कि मेरा आचरण संदेह से परे हो और मेरे ख़िलाफ़ कदाचरण की जाँच करवाने के लिये प्रदेश के किसी भी नागरिक को अधिकार व अवसर हों। आपके सेवक की हैसियत से मैं आपको वचन देना चाहता हूँ कि यदि कभी भी लोकायुक्त महोदय द्वारा मेरे विरुद्ध लगाये गये किसी आरोप में सत्यता पाई गई, तो मैं अपने पद से हटने में एक क्षण का भी विलम्ब नहीं करूँगा।

इसी संदर्भ में कल्याणकारी प्रशासन की व्यापक गतिविधियों में संलग्न उन सभी व्यक्तियों के विरुद्ध, जो

लोकहित के बजाय अपने निजी स्वार्थ को ज़्यादा महत्त्व देते हैं और उसकी पूर्ति के लिये, नियम, प्रक्रियाओं व मापदण्डों की खुली अवहेलना करते हैं, कठोर कार्रवाई करने के लिये इस नये अध्यादेश को प्रसारित किया गया है। इस नये क़ानून की परिधि में वे सभी लोग आयेंगे, जो वनों की अवैध कटाई में व वनोपज की चोरी में सहयोग देते हैं, ज़हरीली शराब बनाते व बेचते हैं, निर्माण के कार्यों में निर्धारित मापदण्डों के विपरीत निर्माण करते या कराते हैं, नागरिकों की दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं के लिए समुचित प्रबंध में बाधा उत्पन्न करते हैं, विक्रयकर की चोरी करते हैं, या करवाने में सहयोग देते हैं, शहरी अंचलों में अवैध उपनगरों का निर्माण करते हैं या उसमें मदद देते हैं, डूब में आई हुई या अन्य प्रकरणों में किसानों की भूमि का अनुचित मुआवज़ा निर्धारित करते हैं और जो अपनी पदोन्नति या स्थानान्तर के लिए निर्धारित प्रक्रिया से हटकर प्रयास करते हैं। ये कुछ प्रमुख उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त भी कई अन्य कार्य इस अध्यादेश के तहत दण्डनीय बताये गए हैं। इस क़ानून में विभिन्न अपराधों के लिये 6 महीने से लेकर आजीवन कारावास और मृत्युदण्ड भी देने का प्रावधान है। हमारा यह प्रयास होगा कि इस क़ानून का इस तरह से क्रियान्वयन हो कि सही काम करने वालों को पूर्ण संरक्षण व संबल मिल सके और जनहित के विपरीत आचरण करने वालों के विरुद्ध कठोरतम कार्रवाई की जा सके।

जनतंत्र में किसी भी कार्य या प्रयास की सफलता उसे प्राप्त व्यापक जनसहयोग पर ही निर्भर करती है। आज मैं आपके सेवक की हैसियत से इसी सहयोग के लिए प्रार्थना करना चाहता हूँ, ताकि प्रदेश के जनजीवन में कदाचरण के कोढ़ पर प्रभावी अंकुश लगाया जा सके और आदरणीया इंदिराजी की अपेक्षानुसार प्रदेश की प्रगति और स्वच्छ प्रशासन देने में उत्पन्न अवरोधों को दृढ़ता से दूर करके आपके उज्जवल भविष्य के त्वरित निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया जा सके।

मुझे इस बात का अहसास है कि इस प्रयास में हमें अनेक कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना विभिन्न स्वरूपों में करना पड़ेगा। लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि आपके अधिकारों की रक्षा के लिए, और प्रदेश के प्रशासनतंत्र को जनहित का पोषक बनाने के लिये, मैं सदैव इन सब चुनौतियों का सामना करने के लिए तत्पर हूँ और आपके प्रति अपने दायित्व के निर्वहन के लिये किसी कार्य को छोटा या किसी बलिदान को बड़ा नहीं मानूँगा।

9 सितम्बर, 1982 को मध्यप्रदेश विनिर्दिष्ट भ्रष्ट आचरण निवारण अध्यादेश 1982 के संबंध में नागरिकों के नाम सम्बोधन।

राष्ट्रीय विकास परिषद् से लोगों के हित में आग्रह

आदरणीय प्रधानमंत्री, केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के माननीय मंत्रीगण, योजना आयोग के माननीय सदस्यगण और गणमान्य साथियों,

सन् 1980-81 से जब हमारी पार्टी ने केन्द्र में तथा अधिकांश राज्यों में भी शासन की बागडोर सम्भाली हमने अपनी प्रधानमंत्री के सबल नेतृत्व में इस देश की ग़रीबी को दूर करने के लिए एक ज़ोरदार अभियान चलाया है। इस सम्बन्ध में हमारी उपलब्धियाँ ग़रीबी को दूर करने, कृषि उत्पादन, औद्योगिक विकास तथा टेक्नालॉजी सम्बन्धी प्रगति के क्षेत्र में उल्लेखनीय रही है। इस बात पर दो राय नहीं हो सकती कि हमारे सभी प्रयासों के बावज़ूद हमें अभी भी एक लम्बा रास्ता तय करना है। तेज़ी से बदलती हुई टेक्नालॉजी अधिकांशतः युवा पीढ़ी की बदलती हुई आकांक्षाओं, यथासम्भव कम से कम समय में कार्यक्रमों तथा योजनाओं को क्रियान्वित कराने की जनप्रतिनिधियों की चिंता तथा आतुरता को दृष्टिगत रखते हुए हमें सातवीं योजना की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को विकसित करने के सम्बन्ध में हमारे प्रयासों के अच्छे परिणाम निकले हैं। उपलब्धियाँ और अधिक हुई होतीं यदि क्षेत्र में कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए प्रशासन की एक अधिक आधुनिकीकृत तथा जवाबदेह प्रणाली रही होती।

यह बात सभी राज्यों में देखने में आई है कि अब तक बहुत से कार्यक्रम तथा परियोजनाएँ उनको चलाए रखने के लिए ठोस आर्थिक आधार और संसाधन को खोजे बिना विभिन्न प्रकार के दबावों में क्रियान्वित की गई हैं। इसके फलस्वरूप देश के हर क्षेत्र में बड़ी संख्या में योजनाएँ अधूरी पड़ी रहती हैं जबकि योजना आयोग तथा भारत सरकार के मार्गदर्शन में यह सुनिश्चित करने के लिए कि इस तरह की गड़बड़ी ऊर्जा के क्षेत्र में न हो, गंभीर प्रयास किया गया है, ऐसी ही सख़्ती विकास के अन्य क्षेत्रों में नहीं बरती गई। एक तख़मीनें के अनुसार मध्यप्रदेश में हमने यह देखा है कि चालू सिंचाई योजनाओं को पूरा करने के लिये हमें वर्तमान मूल्य स्तर पर 2000 करोड़ रुपये से अधिक की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार आवागमन के क्षेत्र में चालू परियोजनाओं को पूरा करने के लिए एक बड़ी धनराशि की आवश्यकता है। देश में ऐसी अधूरी परियोजनाओं के लिए कई हज़ार करोड़ रुपयों के विनियोजन की आवश्यकता हो सकती है इसमें संदेह नहीं कि इस देश में पूँज़ीगत उत्पादन का अनुपात बढ़ता रहा है। इसलिए सातवीं योजना के लिए हमें इन अधूरी आयोजनाओं में यथासम्भव अधिक से अधिक योजनाओं को पूरा करने के लिए पहले उपलब्ध अधिक से अधिक संसाधन निर्धारित करना चाहिए। केवल बचे हुए संसाधनों को ही नई योजनाओं तथा परियोजनाओं के क्रियान्वयन के लिए अलग रखा जाना चाहिए।

योजना आयोग द्वारा वितरित किए गए सातवीं योजना के उद्देश्य पत्र में मतभेद की कोई गुंज़ाइश नहीं है। उससे यह आभास होता है कि सातवीं योजना इस प्रकार निर्मित की जाएगी जिससे रोज़गार और अधिक आय के स्रोत बढ़ें, आम लोगों की आर्थिक उन्नति हो सके। इन योजनाओं को पूरा करने के लिए निर्माण कार्य अधिकतम शक्ति से चालू किए जायेंगे जिससे रोज़गार की अधिकाधिक क्षमता उत्पन्न होगी और आर्थिक उन्नति के लिए आवश्यक आय

के साधनों का विकास सम्भव हो सकेगा। बड़ी संख्या में सीमांत और लघु कृषकों को सिंचाई योजनाओं के पूरे होने पर लाभ मिलेगा इससे कृषि क्षेत्र में उत्पादकता— वृद्धि के साथ-साथ खाद्यान्नों का उत्पादन भी बढ़ेगा। यदि कृषि में विकास की अपेक्षाकृत तीव्र गति को प्राप्त करना है तो परियोजनाओं के कमाण्ड क्षेत्रों के गहन विकास पर और शुष्क खेती की परियोजनाओं पर हमें ध्यान देना होगा। इसलिए मैं इस परिषद के सामने यह बात रखना चाहूँगा कि सातवीं पंचवर्षीय योजना में उनको यथोचित महत्त्व दिया जाना चाहिये।

इस देश में आर्थिक विकास को गति देने में उद्योग तथा विद्युत की भूमिका को कम नहीं किया जा सकता, औद्योगिकीकरण की दिशा में अधिक पूँजी निवेश, उच्च तकनीक वाले उद्योग और निम्न तकनीक वाले लघु तथा कुटीर उद्योग से संबंधित संतुलित पहल अपनाई जाना चाहिए। राज्यों को उद्योग के हर क्षेत्र में संतुलित विकास की स्वतंत्रता दी जाने पर भी विचार किया जाना चाहिए। अब समय आ गया है कि हम अपनी नीतियों में इस प्रकार से परिवर्तन लाने पर विचार करें जिससे छोटे और मध्यम उद्योगों की स्थापना में आने वाली कठिनाइयों को दूर किया जा सके।

जहाँ तक ऊर्जा क्षेत्र का सम्बन्ध है पारेषण और वितरण में होने वाली क्षति को दूर करते हुए वर्तमान क्षमता के बेहतर उपयोग पर ज़ोर दिया जाना आवश्यक है। इस दिशा में विशेष प्रयास ज़रूरी है और इस काम के लिये पृथक् से धनराशि का विनियोजन होना चाहिए। इसके साथ ही पिटहेड उत्पादन की क्षमता वाले स्थानों पर, जहाँ काफ़ी मात्रा में बिजली पैदा होने की संभावना है, सुपर बिजली संयंत्र लगाने के लिए अधिक राशि का विनियोजन किया जाना आवश्यक है।

समाज सेवा क्षेत्र के अन्तर्गत मैं विशेष तौर से मध्यप्रदेश जैसे राज्यों को केन्द्रीय शासन की उदार सहायता दिए जाने का आग्रह करूँगा जो अपने सतत प्रयासों के बावजूद प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण तथा अपने लोगों को बुनियादी स्वास्थ्य सुविधा सुलभ कराने की दिशा में पिछड़े हुए हैं। इस देश में विकसित और अपेक्षाकृत पिछड़े प्रदेशों के बीच इस मायने में काफ़ी अंतर है। साक्षरता का ऊँचा स्तर तथा अच्छी स्वास्थ्य रक्षा सुविधाएँ प्रभावशाली जनसंख्या नियंत्रण के लिए बुनियादी ज़रूरत है। चूँकि इन दो क्षेत्रों में शिक्षकों, डॉक्टरों, नर्सों के रूप में बड़ी जनशक्ति और फर्नीचर, भवनों तथा उपकरण के लिए पूँजी विनियोग की आवश्यकता होती है। इसलिए आवर्ती और साथ ही अनावर्ती व्यय भी काफ़ी होते हैं। मध्यप्रदेश जैसे राज्य में हम इस तथ्य से अवगत हैं कि इस क्षेत्र में अभी तक हुए विनियोजन की अपेक्षा और अधिक विनियोजन की गुंज़ाइश है, परन्तु बिजली और सिंचाई की बढ़ती हुई माँग के कारण हम ऐसा करने में असमर्थ रहे हैं। फिर भी इस स्थिति को अब और अधिक जारी नहीं रहने दिया जा सकता। इसलिए मैं इस परिषद से निवेदन करता हूँ कि वह मध्यप्रदेश जैसे राज्य की जो प्राथमिक शिक्षा और बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाएँ सुलभ कराने में राष्ट्रीय औसत से बहुत पीछे है, इस स्थिति में सहायता की जाए जब हमारी योजना में इन कामों के लिए ज़रूरी न्यूनतम राशि आवंटित करना संभव नहीं हो सका है।

हाल के वर्षों में निराश्रितों, अपंग तथा विकलांग व्यक्तियों की परवाह करने और माताओं तथा बच्चों को पौष्टिक आहार सुलभ कराने पर राज्य में ख़ास ज़ोर दिया गया है। इसके लिए पर्याप्त राशि का प्रावधान आवश्यक है और यह व्यय परम्परागत अर्थों में उत्पादक नहीं समझे जाते हैं। अन्य उत्पादक क्षेत्रों की सीमा के मुक़ाबले में इसकी न्यायोचित माँगे पीछे छोड़ दी जाती हैं। मध्यप्रदेश जैसे पिछड़े राज्यों में, जहाँ इन श्रेणियों में आने वाले लोगों की संख्या काफ़ी बड़ी है। हमें ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है, जहाँ इस दिशा में हमारे प्रयास अंततः गम्भीर रूप से अवरुद्ध हो जायँगे। चूँकि उद्देश्य पत्र में असहाय समूहों को सहायता बढ़ाने पर ज़ोर दिया गया है, भारत सरकार को इस बात पर विचार करना चाहिए कि अपेक्षाकृत कमज़ोर राज्यों को इन कार्यक्रमों को बढ़ाने के लिये सहायता दी जा सकती है या नहीं।

देश में मध्यप्रदेश के समान कुछ राज्यों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों या अन्य पिछड़े लोगों की संख्या काफ़ी बड़ी है। उनकी संख्या सकल जनसंख्या के 75 प्रतिशत से भी अधिक आँकी जा सकती है। जबकि यह सत्य है कि इन लोगों में से कुछ लोग आर्थिक दृष्टि से बेहतर हो सकते हैं किन्तु इस जनसंख्या के एक बड़े प्रतिशत के जीवन स्तर में सुधार के लिए विशेष व्यवस्था किए जाने की आवश्यकता है। सातवीं योजना अवधि के दौरान ग़रीबी मिटाने के लिए अपनाए जाने वाले कार्यक्रमों का लक्ष्य यह होना चाहिए कि समाज के कमज़ोर वर्गों को अधिक अधिकार प्राप्त हों जिससे कि वे और अधिक तेज़ी से अपना जीवन सुधारने के लायक़ बन सकें।

उद्देश्य पत्र में मानवीय तत्व, विशेषकर हमारे प्रबंधन तथा प्रशासनिक प्रणालियों को बदलने की आवश्यकता के महत्त्व को समझा गया है। इस दिशा में सक्रिय प्रयास किया जाना है ताकि प्रणाली बेहतर ढंग से कार्य कर सके। इस संदर्भ में, मैं इस पवित्र संस्था का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित करूँगा कि मूल्यों में वृद्धि तथा देश में प्रचलित मँहगाई भत्ता प्रणाली के कारण योजना की वित्त व्यवस्था के लिए उगाहे गए अतिरिक्त संसाधनों का एक बड़ा हिस्सा वेतन व महँगाई भत्ता वृद्धियों पर ख़र्च हो जाता है। एक ऐसा चक्र है जिससे महँगाई भत्ते की दरें बढ़ते ही बाज़ार में क़ीमतें बढ़ जाती हैं, मेरी राय में, यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत सरकार इस समस्या का अध्ययन करने और एक ऐसा तरीक़ा सुझाने के लिए, जिसके द्वारा यथोचित स्थिर क़ीमतों पर शासकीय कर्मचारियों की बुनियादी आवश्यकताओं का ध्यान रखा जा सके, विशेषज्ञों का एक समूह गठित करें। यदि प्रतिरक्षा कर्मचारियों के लिए उपलबध योजना के समान योजनाएँ सभी शासकीय कर्मचारियों के लिए खोजी जाती है तो शायद वेतन दरों में आये दिन वृद्धियाँ की जाना ज़रूरी नहीं होगा। इससे वाज़िब मूल्य स्थिरता आयगी। इसके फलस्वरूप अनवरत आर्थिक विकास सुनिश्चित किया जा सकेगा। यह मामला धीरे-धीरे एक राजनैतिक रूप भी अख़्तियार कर रहा है क्योंकि आम आदमी अब इतना जागरूक हो गया है कि वह उन उपयोगों के बारे में सोचने लगा है जिनमें करदाताओं के धन को लगाया जा रहा है।

इसके पहले कि मैं अपना भाषण समाप्त करूँ मैं पर्यावरण तथा कुछ ख़ास विकास योजनाओं के बीच टकराव से संबंधित एक मुद्दा उठाना चाहूँगा। विभिन्न विकास योजनाओं के निर्माण में पर्यावरण एवं परिवेश के संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, फिर भी उसे विकास कार्यों के लिए तब तक बंधक नहीं माना जाना चाहिए जब तक दोनों के बीच संतुलन स्थापित किया जा सके। एक ऐसी स्पष्ट प्रक्रिया निर्धारित की जाना चाहिए जिससे कि परियोजनाओं का पर्यावरणीय अनुमोदन निर्धारित समय सीमा में किया जा सके। पर्यावरण सुधार के लिए कभी-कभी मौक़े की जाँच आदि कार्यों में इतना समय लग जाता है कि इससे विकास कार्यों में रुकावट पैदा होने लगती है। मैं यह उल्लेख करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि व्यावहारिक दृष्टिकोण के अभाव में इसी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दे से पूर्ण रूप से विपरीत पक्ष देश के विशालतम जनजाति क्षेत्र में अपना प्रभाव जमाने लगते हैं और ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति बन सकती है ज़िनमें ऐसे मसलों पर तत्काल निर्णय लिए जाने की आवश्यकता पड़े।

मैं इस अवसर पर योजना आयोग की सातवीं पंचवर्षीय योजना को एक अत्यंत व्यावहारिक तथा सार्थक उद्देश्य प्रदान करने के लिए बधाई देता हूँ। हमें विश्वास है कि माननीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी की प्रबल राजनैतिक इच्छा शक्ति और उसे कार्य रूप देने की हम सबकी प्रतिबद्धता से सातवीं पंचवर्षीय योजना हमारे राष्ट्रीय प्रयासों के विकास को उस स्तर पर ला सकेगी जो इस देश को एक महान् और संपन्न राष्ट्र के रूप में स्थापित करने में सक्षम होगा।

राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक (12-13 जुलाई 1984) नई दिल्ली में दिया गया भाषण।

कोई भी ऐसा नहीं जिसके लिए हमने कुछ न किया हो

आज से चार साल पहले आपके प्रथम सेवक के रूप में सबसे पहली बार आपसे बात करने का मुझे सम्मान मिला था। उस समय मैंने यही निवेदन किया था कि हमारी नेता श्रीमती इंदिरा गाँधी को जो व्यापक समर्थन आपने दिया था, उसी के अनुसार इस प्रदेश के करोड़ों नागरिकों के सपनों को साकार करने के लिए मुझसे जो हो सकेगा, वह मैं करने का प्रयास करूँगा। मैंने यह भी कहा था कि हमारी सफलता उसी हद तक मानी जा सकती है, जिस हद तक हम आम आदमी के हितों का संरक्षण और संवर्द्धन कर पाते हैं। आज चार साल बाद, अपनी पूरी विनम्रता से मैं अर्ज़ करना चाहता हूँ कि अनेक बाधाओं और कठिनाइयों के बावज़ूद, हम समाज के प्रत्येक वर्ग की ज्वलंत समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में कुछ न कुछ सार्थक पहल कर सके हैं। हर एक वर्ग को पूरी तरह परितुष्ट हम कर पाए हों, या न कर पाए हों, लेकिन हम यह कह सकते हैं कि कोई भी वर्ग ऐसा नहीं है जिसके लिए हमने कुछ न कुछ न किया हो।

अपने पहले ही भाषण में मैंने इस बात का भी ज़िक्र किया था कि हम एक ऐसी व्यवस्था चाहते हैं जिसमें प्रजा और तंत्र के बीच टकराव न हो। हमारी सारी संस्थाएँ चाहे वे लोकमत के आधार पर बनी हों या सरकारी प्रक्रियाओं से जन्मी हों, उन्हें जनोन्मुख और जिन लोगों के लिए वे संस्थाएँ हैं उनके प्रति लगातार ज़िम्मेदार बनाने की हमने सिलसिलेवार कोशिश की है। दुर्भाग्य से पूर्ववर्ती शासन ने लोकमत की संस्थाओं का भी एक तरह से सरकारीकरण कर दिया था। पंचायतों, नगरपालिकाओं, नगर निगमों, सहकारी संस्थाओं सभी में नौकरशाही को हावी कर दिया गया था। आज हमें ख़ुशी है कि हमने श्रृंखलाबद्ध कार्य से इन सभी संस्थाओं में चुनाव कराए हैं और कुछ संस्थाओं के चुनाव की प्रक्रिया अभी भी जारी है।

लोकमत के आधार पर चलने वाली संस्थाओं में जनता के नुमाइन्दों को रखना एक महज़ सैद्धांतिक बात नहीं है। नौकरशाही अपने दायरे में काम करे तो वह भी अपने आप में कोई बुरी चीज़ नहीं। परन्तु हमारी इन संस्थाओं में जो प्रजातांत्रिक आस्था है उसका व्यावहारिक आधार भी है। हमारे इस विशाल भू-भाग, में जनकल्याणकारी योजनाएँ वल्लभ भवन भोपाल में बैठकर नहीं चलाई जा सकतीं और न ही हमारे कलेक्टरों या अन्य अधिकारियों के द्वारा चलाई जा सकती हैं चाहे हमारे अधिकारी कितने भी सक्षम और कर्त्तव्यनिष्ठ क्यों न हों। इसलिए इन संस्थाओं में लोकमत का प्रवाह एक नए रक्त का प्रवाह है, जो इन संस्थाओं को और आगे ले जाता है और जनहित के पोषण का सशक्त माध्यम बनता है। इन व्यापक चुनावों से न केवल प्रजातंत्र का आधार मज़बूत हुआ है, परन्तु इनसे प्रदेश के विकास में लाखों लोगों की सक्रिय भागीदारी भी जुड़ी है। इसलिए प्रदेश में पिछले 4 साल में जो कुछ हुआ है, इसका हमसे कई गुना ज़्यादा श्रेय इन संस्थाओं मे चुने गए लाखों नुमाइंदों को और उन करोड़ों नागरिकों को जाता है जिन्होंने इनको चुनकर अपनी प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया है।

हमारे प्रदेश को आगे बढ़ाने में प्रशासन तंत्र ने बहुत ही महती भूमिका निभाई है परन्तु प्रशासन तंत्र के लोगों की समस्याओं को समझने और सुलझाने में वैसा प्रयास नहीं हो पाया था जिससे वे अपना सर्वोत्कृष्ट जनता के लिए

कर सकें। हमने उनकी निजी और संस्थागत दिक्क़तों का समाधान करने के लिए सिलसिलेवार प्रयास किए हैं। चौथे आयोग के अनुसार वेतन देने, महँगाई भत्तों की किश्तें केन्द्र के अनुवर्ती करने व अन्य कई छोटे-बड़े उपायों से निजी समस्याओं का समाधान करने की कोशिश की है। हाँ, दूसरी ओर, जटिल प्रशासकीय प्रक्रियाओं मे हमने आमूल परिवर्तन किए हैं जिससे हर स्तर पर कर्मचारी अपने कार्य को ज़्यादा सक्षमता से पूरा कर सकें। आपको जानकर ताज़्जुब होगा, जब से प्रदेश का गठन हुआ था तब से सचिवालय के जो कार्य नियम हैं, वे वैसे ही पिछले साल तक बने चले आए थे। हमने पहली बार इन नियमों में संशोधन कर अधिकारों और दायित्वों का विकेन्द्रीकरण किया है। इसी तरह से वित्तीय और प्रशासनिक अधिकारों के लिए दो मैनुअल भी तैयार किए। वर्षों से विभिन्न स्तरों पर, तो अधिकार चले आए थे उनमें व्यापक वृद्धि हुई है और हर स्तर पर कार्य की रफ़्तार बढ़ी है। इसी तरह से प्रदेश के गठन से ही जो लोक निर्माण का मैनुअल था उसे नए सिरे से बनाया गया है, जिससे हमारे निर्माण कार्यों में एक ओर जहाँ गति आई है वहाँ उन कार्यों का स्तर भी सुधरा है।

मैं इन बातों का ज़िक्र करना इसलिए ज़रूरी समझता हूँ कि इन क़दमों से जो लाभ होंगे वे हमारे कार्यकाल तक सीमित नहीं होंगे परन्तु आगे आने वाले कई वर्षों तक इनसे प्रत्येक क्षेत्र में हो रहे शासन के कार्यों को एक नई गतिशीलता मिलेगी। दरअसल कोशिश यह रही है कि हम प्रशासन के कार्य में दिलचस्पी लें, जिससे वह ज़्यादा से ज़्यादा कारगर और जनोन्मुख हो सके। ये क़दम उसी प्रतिबद्धता के कारण हैं।

हमारे प्रदेश की आधी से ज़्यादा जनसंख्या हरिजन, आदिवासी और पिछड़ी जाति की है। हमारा यह प्रयास रहा है कि इनकी समस्याओं को हमेशा ध्यान में रखा जाए। किसी भी क्षेत्र में जो भी क़दम उठाए गए उनसे आनुपातिक लाभ इन वर्गों को मिले, ऐसे हमने प्रयास किए हैं। पिछड़ी जातियों को पहली बार हमने मान्यता दी और विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें आगे बढ़ने के लिए हरिजन आदिवासी भाइयों के अनुरूप ही छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की गई। आदिवासी क्षेत्रों के विकास के लिए आदिवासी विकास प्राधिकरणों का गठन किया गया और वहाँ पर अच्छे और कुशल अधिकारी और कर्मचारियों को काम करने के लिए विशेष प्रोत्साहन वेतन देने की व्यवस्था की गई है। आदिवासी उपयोजना और हरिजन विशेषांश योजना में पहले से कई गुना ज़्यादा रकमों का प्रावधान किया गया है।

शिक्षा के महत्त्व को सर्वोपरि मानकर, सभी वर्गों को इसके लिए अवसर व साधन प्रदान करने के व्यापक प्रयास किये गए हैं। पूरे प्रदेश में स्कूल तक की शिक्षा इनके लिए निःशुल्क की गई है और लड़कियों के लिए पूरी शिक्षा मुफ़्त की गई है। अल्पसंख्यकों की शैक्षणिक समस्याओं की ओर विशेष ध्यान देकर नई रिआयतें दी गई हैं और उनकी आवश्यकता के अनुसार सुविधाओं का विस्तार किया जा रहा है।

कल-कारख़ानों में शांति और उत्पादन में लगातार वृद्धि इन चार वर्षों में परिलक्षित हुई है। मेहनतकशों को उचित मज़दूरी मिले इसके लिए अलग-अलग काम-धन्धों में लगे श्रमिकों के लिए न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित की गई है। न्यूनतम वेतन को पहली बार अखिल भारतीय मूल्य सूचकांक से जोड़ा गया है।

खेतिहर मज़दूरों का न्यूनतम वेतन 1982 में पाँच रुपये से बढ़ाकर सात रुपये प्रतिदिन कर दिया गया था। मूल्य सूचकांक से जोड़ने से गत दो वर्षों में चार बार पुनरीक्षित होकर 1 जनवरी, 1984 से रुपये 8.60 प्रतिदिन हो गया है।

इस प्रदेश का भाग्य यहाँ के लाखों किसान भाइयों की ख़ुशहाली और समृद्धि से जुड़ा हुआ है। पिछले चार वर्षों में किसानों के हितों को ध्यान में रखकर ही समस्त विकास की योजनाओं को क्रियान्वित करने का प्रयास किया गया है। किसान राहत कोष की स्थापना, कृषि उपज का उचित न्यूनतम मूल्य दिलाने की कोशिश, सिंचाई के लिए

बिजली की उपलब्धता और उसकी दरों में वृद्धि न करने का निर्णय, अच्छे बीज व उर्वरक का वितरण, फसलों की बीमा योजना की शुरुआत, इसी दिशा में हमारे विनम्र प्रयास है और उसी का परिणाम है कि इस वर्ष प्रदेश के इतिहास में सबसे ज़्यादा खाद्य का उत्पादन उन्होंने किया।

राष्ट्रनायक पं. जवाहरलाल नेहरू ने देश के किसानों को सदियों के शोषण से मुक्ति दिलाई थी और उन्हें अपनी भूमि का मालिक और अपने श्रम का खुद फ़ायदा लेने का अधिकार दिलाया था और आदरणीय श्रीमती इंदिरा गाँधी ने न्यूनतम मूल्य की नीति को लागू करके व आधुनिक कृषि के लिए साधन उपलब्ध कराके किसानों को इस बात के लिए सक्षम बनाया कि वे पूरे देश की जनता के लिए पर्याप्त खाद्यान्न पैदा कर सकें। फिर भी हम इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि प्रदेश के किसानों का आर्थिक आधार अभी भी कमज़ोर है और प्रकृति का प्रकोप कभी-कभी उसे और भी क्षीण कर देता है। मुझे इस बात का एहसास है कि छत्तीसगढ़ व महाकौशल के मैदानी क्षेत्रों में कृषक, विन्ध्य की पर्वतीय घाटियों में जीवन के संघर्ष में रत ग्रामीणजन, मालवा की उर्वरा भूमि के प्रसाद को आम नागरिकों के उपभोग के लिए प्रस्तुत करने वाले भाई और चम्बल के कछारों में कठिन परिस्थितियों के बावज़ूद उत्पादन की वृद्धि करने वाले कृषक और भी राहत के हक़दार है। उनके सबल कन्धे हल और बख़्खर के बोझ को उठा सकते हैं, सबके लिए अनाज पैदा करने के लिए कठोर परिश्रम कर सकते हैं लेकिन कभी-कभी आर्थिक कठिनाई के बोझ को सहन करने में उन्हें अत्यधिक कष्ट होता है। मैं अपना प्रथम कर्त्तव्य समझता हूँ कि प्रदेश के अन्नदाता के इस बोझ को कुछ हद तक कम करूँ। इस संदर्भ में शासन ने कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये हैं:

प्रदेश में कुल 56 लाख़ खातेदार हैं। इनमें से 42 लाख खातेदारों के पास 10 एकड़ या उससे कम ज़मीन है। 30 मार्च, 1974 को इनके ऊपर क़रीब 37.75 करोड़ रुपये की राशि तक़ाबी की बक़ाया थी। यह पूरी राशि माफ़ की जा रही है। शेष 14 लाख 10 एकड़ से ऊपर के खातेदार सदस्यों पर 30 जनवरी, 1974 का जो 8 करोड़ रुपये की राशि बक़ाया थी उसे शासन द्वारा समितियों को किसानों की ओर से भुगतान किया जाएगा।

सहकारी समितियों द्वारा दिए गए फ़र्जी ऋण प्रकरणों की पिछले चार वर्षों में गहनता से जाँच की गई है। 21 जिलों में जाँच का कार्य पूर्ण हो गया है। यह निर्णय लिया गया है कि जाँच में पाए गए 22.19 लाख रुपये के फ़र्जी ऋण से मुक्त करने के लिए यह राशि शासन द्वारा भर दी जाए। शेष 24 ज़िलों में भी जाँच का कार्य 30 सितम्बर, 84 तक पूरा कर लिया जायेगा और 2 अक्टूबर तक इन ज़िलों मे भी फ़र्जी ऋण के बक़ायादारों को पूरी तरह मुक्त कर दिया जाएगा। इस निर्णय से मूलतः ग़रीब आदिवासी व हरिजन कृषकों को राहत मिलेगी।

इन निर्णयों से प्रदेश के सभी 56 लाख कृषि खातेदारों को कुल 66 करोड़ 60 लाख़ रुपये की राहत मिलेगी और वे लाखों किसान जो अभी ऋण के पात्र नहीं रह गए थे वे पुनः पात्र बन जाएँगे और अपनी कृषि की उन्नति के लिए साधन पा सकेंगे। शासन का यह प्रयास होगा कि ऋण मुक्ति का प्रमाण-पत्र सभी किसान भाईयों को राष्ट्रनायक पं. नेहरू के अगले जन्म दिवस 14 नवम्बर 1984 तक प्रदान कर दिया जाए।

हमारे प्रदेश की विकास की सम्भावनाएँ आप सबके प्रयासों से साकार रूप ग्रहण करती जा रही हैं। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि यह प्रक्रिया और भी तेज़ होती जाएगी। इस अग्रगामी यात्रा को एकता और निष्ठा से जारी रखने के लिए मैं आपका आह्वान करता हूँ और आपकी हर सम्भव सेवा के लिए विनम्रता से अपने को प्रतिबद्ध करता हूँ।

सरकार के चार साल पूरे होने पर प्रदेश के नागरिकों को संबोधन, 9 जून 1984

सविनय निवेदन है कि ....

माननीय अध्यक्ष महोदय,

मै इस सम्माननीय सदन का कुछ समय और कृपापूर्वक आपकी अनुमति सार्वजनिक महत्त्व के एक विषय पर एक वक्तव्य देने के लिए चाहता हूँ।

25 अगस्त को प्रतिपक्ष के माननीय नेता श्री पटवा अपने दल के कुछ अन्य सदस्यों के साथ भारत के महामहिम राष्ट्रपति जी से मिले और उन्होंने व्यक्तिगत रूप से मेरे और मेरी सरकार के कुछ अन्य माननीय सदस्यों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों का एक ज्ञापन उनके समक्ष प्रस्तुत किया। यह सही है कि प्रतिपक्ष को जैसा कि इस प्रदेश के किसी भी नागरिक को यह अधिकार है कि वह किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध आरोप लगा सकता है, लेकिन मुझे विश्वास है कि यह सदन मुझसे सहमत होगा कि इस तरह के आरोप लगाने का कोई तथ्यपुष्ट आधार होना चाहिए क्योंकि अन्ततः इस तरह के आरोप प्रजातांत्रिक संस्थाओं की विश्वसनीयता को ही प्रभावित करते हैं। दूसरी ओर मैं यह भी स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मेरा दृढ़ विश्वास है कि हमारी प्रजातांत्रिक संस्थाओं की निष्ठा और विश्वसनीयता बनाए रखने की बुनियादी ज़िम्मेदारी उन पर है जो हर स्तर पर अधिकार और विश्वास के पदों पर बैठे हैं।

सार्वजनिक जीवन में निःसंदेह यह मुश्किल है कि कोई संघर्ष और झूठे आरोपों की खरोंच से बचा रहे लेकिन हरेक को यह अवसर मिलता है कि वह सही मार्ग अपनाने की दिशा में ईमानदारी से और निष्ठापूर्वक प्रयत्न करे। इस प्रयत्न में हमारा एक मात्र मार्गदर्शक अपना स्वयं का अन्तःकरण है। हमारी स्मृति का एक मात्र कवच हमारे कर्म की ईमानदारी और औचित्य है। जीवन में बिना ऐसे कवच के चलना बहुत ही अविवेकपूर्ण होगा क्योंकि बहुधा हमारी आशाओं की विफलता हमारा उपहास करती है, पर इस कवच के साथ, किस्मत कोई भी करवट क्यों न ले, हम हमेशा ईमान और सम्मान की पंक्ति में चल सकेंगे। मुझे यह अनुमति दी जाए, अध्यक्ष महोदय, कि मैं पूरी विनम्रता से कह सकूँ कि मुझे इस सम्मानीय सदन में बैठने और काम करने का सौभाग्य 25 वर्ष पहले से अर्थात् उसकी स्थापना के समय से ही मिला। ये 25 वर्ष मेरे वयस्क जीवन का प्रायः पूरा अंश हैं। ईश्वर की कृपा और देश की नेता श्रीमती इंदिरा गाँधी की अनुकम्पा से इस अवधि में एक साधारण सदस्य के रूप में, लब्धप्रतिष्ठ मुख्यमंत्रियों की मंत्रिपरिषद् के सदस्य के रूप में, प्रतिपक्ष के नेता के रूप में और अब इस सदन और इस राज्य के लोगों के प्रथम विनम्र सेवक के रूप में मुझे अपने दायित्वों का निर्वहन करने का सुअवसर मिला है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने इस दौरान ग़लतियाँ की होंगी, निर्णय की ऐसी त्रुटियाँ हुई होंगी जिनसे किसी का अहित हुआ होगा लेकिन विनम्रता से किन्तु ऊँची आवाज़ और दृढ मन से मैं यह कहना चाहता हूँ कि मैंने इस सदन द्वारा प्रदत्त किसी भी अवसर या विशेषाधिकार का उपयोग सार्वजनिक हित के प्रतिकूल किसी निजी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कभी नहीं किया है। इसलिए जब इस तरह का आरोप लगाया गया है तो न केवल मैं आहत और दुःखी हूँ बल्कि मेरा कर्तव्य मुझे विवश करता है कि मैं स्वयं इन आरोपों की जाँच के लिए प्रथम पहल करूँ। हमें इस संसार में जो मिला है उसमें सबसे मूल्यवान जीवन है पर उस जीवन का भी मेरे लिए कोई मूल्य नहीं अगर हमारे सम्मान पर धब्बा लगता है।

इसलिए मैं इस सदन को यह सूचित करना चाहता हूँ कि मैंने माननीय प्रधानमंत्री और इस राष्ट्र की नेता श्रीमती इंदिरा गाँधी को एक पत्र लिखकर उनसे यह निवेदन किया है कि वे इन आरोपों की ऐसी विधि से और उस रूप में जैसी कि वे उचित समझें जाँच करवायें। अगर मेरे सहयोगियों में से किसी के विरुद्ध कोई आरोप सिद्ध पाया गया तो इस बारे में उनके निर्देशानुसार उपयुक्त कार्रवाई की जाएगी।

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैंने आदरणीय प्रधानमन्त्री को अपने पद से अपना त्याग-पत्र आज भेज दिया है और उनसे निवेदन किया है कि जैसे किसी निजी लाभ के लिए अपने पद का दुरुपयोग करने का कोई मामला माननीय प्रधानमंत्री जी द्वारा कराई गई जाँच से प्रकट हो, मेरा त्याग-पत्र तुरन्त स्वीकार कर लिया जाए। इस सम्मानित सदन की सदस्यता से भी मैंने अपना त्याग-पत्र उनके पास भेजा है और उनसे विनयपूर्वक यह निवेदन किया है कि इस सदन से त्याग-पत्र भी कृपापूर्वक अपने पास रखें और ज्यों ही वे मेरे वर्तमान इस पद से मेरा त्याग-पत्र मंजूर करती हैं इस सदन की सदस्यता से मेरा त्याग पत्र माननीय अध्यक्ष महोदय के पास स्वीकार करने के लिए अग्रेषित करने का कष्ट करें।

मै प्रतिपक्ष के नेता और उन सब लोगों को जो इस मामले में दिलचस्पी रखते हों यह स्पष्ट करना चाहूँगा कि मैंने यह क़दम निरी साहसिकतावश नहीं उठाया है और न ही किसी को मैं चुनौती दे रहा हूँ। मैंने यह क़दम सिर्फ़ इस वज़ह से उठाया है कि मैं इस देश के दूसरे करोड़ों देशवासियों के समान श्रीमती इंदिरा गाँधी का एक विनम्र सैनिक माना जाने में गर्व और सौभाग्य महसूस करता हूँ। देश की सेवा में पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इंदिरा गाँधी और नेहरू परिवार का एक सैनिक होना कोई साधारण बात नहीं है और जीवन में कुछ भी विना दिए हम कुछ नहीं पा सकते हैं। इस सौभाग्य के लिए मूल्य चुकाना होगा और यह मूल्य ख़ून पसीना बहाकर, परिश्रम ईमानदारी और निष्ठा से जनसेवा और कोई भी बलिदान कर सकने के लिए निरन्तर तत्परता के रूप में ही हो सकता है। अध्यक्ष महोदय, मैंने अभी जो क़दम उठाने की घोषणा की है उनके माध्यम से मैं यही कहने की कोशिश कर रहा हूँ कि अगर ज़रूरत पड़ेगी तो पूरी विनम्रता के साथ पर विपुल मात्रा में, मैं अन्तिम मूल्य चुकाने को तैयार हूँ ताकि श्रीमती इंदिरा गाँधी के गतिशील और प्रेरणादायी नेतृत्व में मैं लोगों का एक विनम्र सेवक कहलाने के अपने विशेष अधिकार को सुरक्षित रख सकूँ।

मध्यप्रदेश विधानसभा में दिया गया वक्तव्य।

पंचायत प्रतिनिधियों को बधाई

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के पुण्य जन्मदिवस पर इस प्रदेश की 43 ज़िला पंचायतों के गठन के साथ पूर्ण रूप से पंचायतीराज की स्थापना हो गई है। मैं इस शुभ अवसर पर ज़िला पंचायतों के नव निवार्चित सभापतियों, उपसभापतियों और सदस्यों को पदभार ग्रहण करने पर हार्दिक बधाई देता हूँ।

आज़ादी मिलने के बाद देश की प्रशासन व्यवस्था में ग्रामीण अंचलों की भागीदारी के लिए पंचायतीराज की स्थापना एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इस सपने को साकार करने के लिए सारे देश में प्रयास हुए। हमारे प्रदेश में भी पंचायती राज की स्थापना के लिए कार्य किया गया, लेकिन कुछ कारणों से ज़िला स्तरीय पंचायतों का गठन हो सका। 1980 में आदरणीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने प्रदेश में त्रि-स्तरीय पंचायतीराज को पूरी तरह क़ायम कर सत्ता के विकेन्द्रीकरण का वचन दिया था। हमें हर्ष है कि प्रदेश के ग्रामीण बंधुओं के सहयोग से प्रधानमंत्री के वादों को हम पूरा कर सके हैं।

आदरणीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने ग्रामीण अंचलों और उनमें भी ख़ासतौर पर समाज के कमज़ोर और पिछड़े वर्गों की भलाई के काम को तरज़ीह देने के लिए 20 सूत्रीय कार्यक्रम देश को दिया है।

इस कार्यक्रम के अमल में हमारे प्रदेश में भी उल्लेखनीय काम हुआ है। हमारी ग्राम पंचायतों और जनपद पंचायतों ने इस कार्यक्रम में सक्रिय सहयोग कर गाँवों में लाखों परिवारों को ग़रीबी की रेखा से ऊपर उठाने और अपने पैरों पर खड़ा होने में बड़ी मदद पहुँचाई है। प्रदेश में विधिवत् ग्राम पंचायतों को अधिकार देकर इस कार्यक्रम को अमल में लाने की ज़िम्मेदारी भी सौंपी गई है।

ज़िला पंचायतों के बन जाने से अब इस कार्यक्रम के समन्वय में भी जनप्रतिनिधियों की भागीदारी होगी जिससे यह और भी कारगर बनेगा।

पंचायती राज जनता को प्रशासन से सीधे जोड़ने वाली व्यवस्था है और यही हमारे लोकतंत्र का आधार है। इसीलिए हमने पंचायती राज की बुनियादी इकाई ग्राम पंचायतों के चुनाव सबसे पहले कराने की व्यवस्था पूरी की और मई से जुलाई 1983 के बीच प्रदेश की 18,801 ग्राम पंचायतों के चुनाव पूरे हुए। हम चाहते थे कि जन आस्था पर आधारित पंचायती राज की बुनियाद मज़बूत हो, इसलिए हमने मध्यप्रदेश पंचायत अधिनियम में आमूल संशोधन किया और त्रि-स्तरीय पंचायती राज को पूरी तरह लागू करने की व्यवस्था की।

नये अधिनियम में ग्राम पंचायतों को अधिक अधिकार दिए गए है और उनके आर्थिक साधनों को भी सुदृढ़ किया गया है। हमने पहली बार ग्राम पंचायतों की योजनाओं को वित्तीय सहायता देने के लिए मध्यप्रदेश पंचायती-राज वित्त निगम का गठन किया है।

विकासखण्ड हमारी प्रशासनिक व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण इकाईयाँ हैं। इस स्तर पर कार्यक्रम बनाने और उन पर अमल के काम से जन प्रतिनिधियों को जोड़ने के लिए जनपद पंचायतों के चुनाव इस वर्ष मई में पूरे हुए। प्रदेश में अब पहली बार ज़िला पंचायतें बनी हैं जिन्हें ज़िले की प्रतिनिधि संस्था का स्वरूप प्रदान किया गया है। ज़िला पंचायतें

अपने क्षेत्र की जनपद पंचायतों का मार्ग दर्शन करने और उनकी योजनाओं को समन्वित करने के साथ ज़िले में चल रहे विकास कार्यों सामाजिक वानिकी, परिवार कल्याण, निराश्रितों की सहायता, महिलाओं और बच्चों के कल्याण, युवक कल्याण, खेलकूद आदि के क्रियान्वयन में सक्रिय भूमिका निभाएँगी।

इन संस्थाओं के सदस्यों पर रचनात्मक कार्यक्रमों को बढ़ावा देने और उन पर सही अमल कराने की बड़ी ज़िम्मेदारी है। मुझे विश्वास है कि ज़िला पंचायतों के सभापति, उप-सभापति और सदस्य इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने में कोई कसर नहीं उठा रखेंगे और आने वाले वर्षों में हमारे प्रदेश की पंचायतें राष्ट्रपिता की कल्पना के अनुसार सत्ता का सही अर्थों में विकेन्द्रीकरण करने में सक्षम सिद्ध होंगी।

ज़िला पंचायतों के सभी सम्मानित सभापतियों, उप-सभापतियों और सदस्यों का मैं अभिवादन करता हूँ और उन्हें अपने दायित्व के निर्वहन में सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ।

प्रदेश में ज़िला पंचायतों के गठन पर, 2 अक्टूबर 1984 को प्रसारित सन्देश।

विकास और पर्यावरण का सह-अस्तित्व बनाए रखना होगा

विकास की अंधी दौड़ में नये उद्योग लगाने, नई बस्तियाँ बसाने, जंगलों की अविवेकपूर्ण कटाई करने या दूसरी बड़ी परियोजनाएँ बनाने में पर्यावरण पर पड़ने वाले उनके प्रभाव का ध्यान न रखने के कारण मानवीय सभ्यता कई जगह अस्तित्व-संकट के कगार पर पहुँच गई है। भौतिक सुःख-सुविधाओं में गले तक डूबने के बाद, पश्चिम के लोगों ने पर्यावरण पर हुए अनिष्ट की गम्भीरता को समझा है और अपने पर्यावरण को निर्मल और स्वास्थ्यकर बनाने में सचेष्ट हुए हैं। इस प्रयास में अकूत धनराशि ख़र्च करने के बाद ही कुछ सफलता मिली है और प्रदूषण की अनेक गम्भीर समस्याएँ अब भी बरक़रार हैं।

भारत में पर्यावरण उस सीमा तक अभी प्रदूषित नहीं हुआ है लेकिन इसका ख़तरा निश्चय ही गम्भीर बन गया है। सच तो यह है कि देश के अनेक भागों में प्रदूषण वह सीमा लाँघ चुका है। जहाँ प्रकृति स्वयमेव उसे दूर कर लेती है। कुछ ही वर्षो पहले बम्बई के निकट समुद्र के प्रदूषण ने गम्भीर रूप धारण कर लिया था। अन्यत्र अनेक नगरों और उद्योग-समूहों में पर्यावरण का प्रदूषण विकराल रूप ले चुका है। ऐसे स्थानों में पर्यावरण की रक्षा कर उसे निर्मल बनाने का यदि समय रहते प्रयास नहीं किया गया तो निश्चित ही इसके गम्भीर दुष्परिणाम होंगे।

इस लिहाज़ से मध्यप्रदेश सौभाग्यशाली है। कि यहाँ अभी प्रदूषण की समस्या इतनी गम्भीर नहीं हो पाई है। यह सच है कि हम उद्योग, बिजली, खनन, खेती-किसानी आदि सभी क्षेत्रों में उस सीमा तक आगे नहीं बढ़ पाए हैं जितना इस प्रदेश में उपलब्ध संसाधनों के दोहन के लिए वाँछनीय है, लेकिन दूसरे लिहाज़ से यह ठीक ही रहा है, क्योंकि विकास की जो भी योजनाएँ हम बना रहे हैं उनमें समय रहते यह सुनिश्चित कर पायँगे कि उनके नतीजे में पर्यावरण का बिगाड़ न हो और विकास के बावज़ूद वह अनुकूल बना रहे।

इस प्रदेश में जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम 1974 में सबसे पहले लागू हुआ और इस अधिनियम का पालन कराने के लिए जल प्रदूषण निवारण और नियंत्रण मण्डल की स्थापना हुई। यह मण्डल जल प्रदूषण निवारण की दिशा में आरंभ से ही सचेष्ट रहा है और इसने नियंत्रण की दिशा में कारगर पहल की है।

मानव परिवेश के बिगड़ने का ग़रीबी बहुत बड़ा कारण है। गाँव हो या शहर ग़रीबी की विवशताओं से पर्यावरण प्रदूषित होता है और चूँकि शहरों में ग़रीबी सीमित क्षेत्रों में घनीभूत है, इसलिए वहाँ यह संकट अधिक गम्भीर है । गंदी बस्तियों का सुधार और गाँवों में सुरक्षित पानी पीने की व्यवस्था पर्यावरण सुधार की दिशा में सरकार द्वारा उठाए गए दो महत्त्वपूर्ण क़दम हैं। हमारा यह निरन्तर प्रयास होगा कि हम गाँवों और शहरों के परिवेश में इतना सुधार अवश्य करें कि वह लोगों के स्वास्थ्य के लिए हानिकर न हों।

मध्यप्रदेश में बड़े उद्योगों की स्थापना हाल ही के वर्षों में शुरू हुई है और यह शुभ है कि नया उद्यमी समाज पर्यावरण को निर्मल बनाए रखने के महत्त्व के प्रति जागरूक हो चला है। प्रदूषण के नियंत्रण और निवारण के लिए

सरकार ने भी कारगर व्यवस्था की है। हमें आशा है कि प्रदेश में भविष्य में होने वाले औद्योगिक विकास से प्रदूषण का संकट उपस्थित नहीं होगा।

प्रदेश में बड़े बिजली घरों, सीमेंट के कारख़ानों, काग़ज़ बनाने वाली मिलों और बड़ी आसवनियों से यहाँ-वहाँ प्रदूषण का जो स्थानीय संकट उत्पन्न हुआ है, उसके प्रति जागरूक है और उसके निवारण के निश्चित प्रयास किये जा रहे हैं।

मुझे आशा है कि पर्यावरण को स्वास्थ्यकर बनाए रखने की आवश्यकता के प्रति भविष्य में जनमानस अधिक जागरूक और सचेष्ट होगा और हम सोद्देश्य सामाजिक और आर्थिक विकास करते हुए यह सुनिश्चित कर सकेंगे कि हमारी नदियों का पानी निर्मल हो, वायुमण्डल स्वास्थ्यकर बना रहे और हरीतिमा का आच्छादन निर्मूल न हो पाए।

पर्यावरण की चिंता - जून 1981 ।

हमेशा से अधिक हमें उनके स्नेह और धूप की आवश्यकता है

विद्वत् मण्डली के बीच अपने को पाना निश्चय ही एक बिरला सौभाग्य है। और मैं आभारी हूँ कि इस वर्ष के इंडियन फिलॉसफिकल कॉंग्रेस के सत्र की उद्घाटन बैठक में मुझे उपस्थित होने का मौक़ा मिला है। लेकिन ऐसे विद्वत् समुदाय के समक्ष भाषण देने का जो सुअवसर मुझे मिला है वह विडम्बना भी है। पहले ऐसे अवसरों पर राजनेता या शासक अपने ज्ञानवर्धन अथवा ऋषियों और पंडितों की सलाह लेने के लिए उपस्थित होते थे। राजनेता का काम मौन और श्रद्धा की विनम्रता को छोड़कर हम राजनीतिज्ञों से भाषण करने को कहा जाता है।

पिछले कुछ हफ़्तों में भोपाल और बाक़ी दुनिया को एक दहला देने वाले अनुभव से गुज़रना पड़ा है। इसने हमारे दृष्टिकोण और अब तक के संचित ज्ञान को विशृंखलित कर दिया है और यदि आप मुझे कहने की इजाज़त दें, तो वास्तविकता की हमारी समझ को भी विसंगत बना दिया है। भोपाल के बाद हमारे समग्र ज्ञान और दृष्टिकोण को तुरंत समसामयिक बनाना ज़रूरी हो गया है। 'मैं हूँ इसलिए मेरी सत्ता है' अथवा 'मेरा अस्तित्व है इसलिए मैं हूँ' इस प्रश्न पर हमारे फलसफ़ों में तर्क-वितर्क होता रहा हैं। अब हमारे सामने एक नई समस्या तत्काल प्रश्नवाचक बन गई है कि क्या जिन लोगों की मौत हुई वे अपनी मौत से ही हक़ीक़त बन सके हैं। और मौत भी कैसी? एक तकनीकी चक्र के विशृंलित हो जाने के कारण हुई मौत या उन लोगों द्वारा लाई गई मौत जो तकनीक को समझते नहीं थे, या तकनीक की अप्रत्याशित ख़ामियों को स्वीकार करने या उनके निदान के बार में सोचने में उन्हें झिझक होती थी। हमारे ज़माने के ये नए सवाल हैं, जिन पर भोपाल के हादसे के कारण इतने दर्दनाक तरीक़े से हमारा ध्यान बरबस खिंचा है। लेकिन तकनीक की बेहतरी और ज्ञान-विज्ञान की प्रगति की नीति व्यवस्था के सहज यशोगान के पीछे ये प्रश्न हमेशा छिपे रहे हैं। मेरी राय में एक सहज हल यह होगा अगर विज्ञान और तकनीक को खलनायक बताकर, उन्हें दोषमुक्त कर दिया जाए जो इनका उपयोग धन-लाभ के लिए या अधिक से अधिक विकास के प्रति छद्म आस्था जाहिर करने के लिए है। सारे नतीजों के लिए आख़िरकार आदमी की जवाबदेही के सवाल पर आना होगा क्योंकि आदमी द्वारा बरपी विपदा के लिए आदमी ही जवाबदेह होगा और उसे ही इसका प्रायश्चित करना होगा।

मैं इस बात का दम नहीं भरता कि मैंने जो सवाल उठाए हैं वे दार्शनिक है। लेकिन, मैं शिद्दत से यह महसूस करता हूँ कि अगर इन सवालों का जवाब हमारे दार्शनिक और विचारक हमें न देंगे, तो हम इस ऊल-ज़लूल अहसास में डूब जायँगे कि आदमी के अंतहीन सवालों का जवाब दुनिया जहान की ख़ामोशी में है।

दार्शनिकों ने सदियों से हमें दुनिया समझाई है। पिछले कुछ अर्से से मानवीय नियति को बदलने की रूपरेखा विकसित करने में वे मददगार भी हो रहे हैं। यदि इस संदर्भ में देखें तो इस अधिवेशन में चर्चा के

लिए जो दो मुद्दे चुने हैं वे बड़े उत्साहवर्धक हैं। 'राजनीतिक उत्तरदायित्व का आधार' और 'राष्ट्रीय समन्वय और दर्शन' ऐसे विषय हैं जो हमारे वर्तमान विश्व को कुछ और अधिक समझने में सहायक हो सकते हैं। हमारे लाखों देशवासियों की नियति को बदलने के हमारे संकल्प को पूरा करने में ये चर्चाएँ मददगार होंगी। ये बुनियादी तौर पर मानवीय सवाल हैं, दार्शनिक नहीं, गोया इन दोनों नज़रियों में कोई फ़र्क़ भी हो सकता हो।

साठ साल पहले रवीन्द्रनाथ ठाकुर फिलॉसफ़िकल काँग्रेस के पहले अध्यक्ष थे। उनकी एक छोटी-सी कविता मुझे बरबस याद आती है जिसमें उन्होंने यह आश्वासन दिया था - 'मेरा प्रेम तुम्हें धूप की तरह घेर ले और तुम्हें रौशन आज़ादी दे।' यह मानने का कोई कारण नहीं है कि हमारे विद्वत्जन इस आश्वासन को पूरा नहीं करेंगे। हमेशा से अधिक हमें उनके स्नेह और धूप की आवश्यकता है और हमेशा से अधिक हमें आज़ादी और रोशनी की ज़रूरत है।

इंडियन फिलॉसफ़िकल काँग्रेस के जबलपुर अधिवेशन में 28 दिसम्बर 1984 को दिया गया भाषण।

अंधकार में प्रकाशित कुछ शब्द

विधि की कैसी विडम्बना है कि मध्यप्रदेश की सालगिरह के दिन हम एक सर्वव्यापी अंधकार में डूबे हैं। आप सभी को मालूम है, हमारे प्रदेश से स्वर्गीय इंदिराजी को कितना अनुराग था। अभी पिछले पखवाड़े में ही उन्होंने पूरब से पश्चिम तक प्रदेश में व्यापक दौरा किया था। प्रदेश के लाखों लोग उनकी नज़दीकी की उत्तेजना और उल्लास को संयत भी नहीं कर पा रहे थे कि सिरफिरे लोगों ने हमारी आस्था और आशा पर क्रूर मज़ाक किया है।

इंदिराजी हमारे बीच में पिछले कई बरसों से आती रही हैं। हमेशा प्रदेश की छोटी-बड़ी समस्या के बारे में सोचती थीं, बात करती थीं और जहाँ भी हमें कोई दिक्क़त आती थी वे कोई-न-कोई निदान कर देती थीं। चाहे इस प्रदेश के आदिवासियों का प्रश्न हो, हरिजनों का प्रश्न हो, समाज के कमज़ोर तबकों का मसला हो, झुग्गी-झोपड़ी के बाशिंदों का सवाल हो, रिक़्शा चलाने वालों का सवाल हो, इन सबके लिए उनके पास एक अनंत संवेदनशील समय था और कुछ-न-कुछ इन सबके लिए कर देने की दृष्टि थी और वह असीम धैर्य था, जिससे समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता हो। विकास के सवालों को लें तो इस पूरे प्रदेश की अनंत सम्भावनाओं को वे जानती थीं और हमेशा इसी बात से परेशान रहती थीं कि हम उतनी तेज़ी से वह कुछ क्यों नहीं कर पा रहे हैं, जिसे करने के लिए हम समर्थ हैं।

उन्होंने पहली बार प्रधानमंत्री सचिवालय में मध्यप्रदेश के लिए एक विशेष प्रकोष्ठ बनाया जो लगातार हमारी समस्याओं का समाधान निकालने में जुटा रहता था। कितनी सारी चीज़ें जो हमें उनके निजी हस्तक्षेप के कारण मिलीं आज उनके ब्यौरों में जाने की मनःस्थिति न मेरी है न आपकी। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि उनकी व्यापक करुणा और संवेदना का सबसे अधिक विस्तार मध्यप्रदेश में ही हमें मिला है। इसलिए हम सब बेसहारा और असहाय महसूस कर रहे हैं।

किस्मत ने हमारे साथ बहुत बड़ा गुनाह किया है। हम क्षुब्ध हैं। स्वर्गीया इंदिराजी की व्यापक करुणा और संवेदना के परिप्रेक्ष्य में यही दुःख, यही क्षोभ, हमें इस सर्वग्रासी अंधकार के दूसरे छोर पर ले जा सकती है क्योंकि इस परिप्रेक्ष्य में इन सभी उद्वेलित मनःस्थितियों का हम उन आदर्शों और सपनों के लिए उपयोग कर सकते हैं जिसके लिये इंदिराजी ने अपनी बेमिसाल शहादत दी है। इसलिए हमारा सबसे बड़ा संबल स्वर्गीया इंदिराजी की याद है। यह संबल बहुत बड़ा है, हमारे पास और कोई सहारा नहीं है। सिरफिरे लोगों की तात्कालिक ताक़त और अनिष्ट करने की क्षमता क्षणिक है, पर हमें उनसे जूझना है और भावावेश में ऐसा कुछ नहीं करना है जिससे उन्हीं चीज़ों पर चोट पहुँचे जिनके लिए इंदिराजी आख़िरी दम तक लड़ती रहीं। सबसे बड़ी ज़रूरत आपसी सद्भाव और विश्वास की है क्योंकि इतने बड़े दुःख और वज्रपात को सहने के लिए हमें एकजुट रहना ही होगा और एक-दूसरे को सहारा देना ही होगा। अंधकार की शक्तियाँ कोशिश करेंगी कि किसी तरह आपसी सद्भाव कम हो, सांप्रदायिक तनाव फैले क्योंकि

उनके मंसूबे इंदिराजी की हत्या भर से पूरे नहीं होंगे। पर इंदिराजी व्यक्ति नहीं थीं, उनका एक अंश उन्होंने उनके सब समकालीनों को दिया है और हम सभी में वे अभी भी जीवित हैं, सक्रिय हैं और देश की एकता और अखण्डता को बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

इसी अंश के प्रतीक श्री राजीव गाँधी के हाथों ने देश की मशाल उठाई है। एक नई पीढ़ी ने सेवा और संघर्ष का नया संकल्प लिया है। भारत के प्रत्येक नागरिक का आज यह कर्तव्य है कि संकट और विपदा के इन क्षणों में उनके नेतृत्व को संबल और विश्वास प्रदान करें।

श्रीमती इंदिरा गाँधी के आकस्मिक निधन पर प्रदेश के लोगों को संदेश— 1 नवम्बर 1984 की रात।

आस्था को फिर से स्थापित करना है

यूनियन कार्बाइड में ज़हरीली गैस को निष्प्रभावी बनाने के लिए की जाने वाली कार्रवाई के लिए तैयारी पूरी हो चुकी है। मैं कल रात कारख़ाने में गया था। वहाँ किए गए प्रबंध और सुरक्षा उपायों को मैंने देखा। मेरे साथ डॉ. वर्द्धराजन थे। यद्यपि वास्तविक संचालन की पूरी ज़िम्मेदारी यूनियन कार्बाइड के लोगों द्वारा की जाना है, इस संबंध में कार्रवाई करने का निर्देश हमारे द्वारा दिया जाना है, हमारे द्वारा याने मेरे द्वारा।

इसमें शंका नहीं कि यह मेरे द्वारा लिए जाने वाले सर्वाधिक कठिन और पीड़ादायक निर्णयों में से एक है परन्तु कर्तव्य निर्वहन में मेरे लिए कोई विकल्प नहीं है। इस कार्य में, मैं जितनी भी प्रतिबद्धता जुटा सका हूँ और जितनी प्रबुद्धता ला सकता हूँ उतने के साथ मैं महसूस करता हूँ कि इस घातक संकट से इस शहर को छुटकारा दिलाने के लिए हमें निश्चित ही आगे बढ़ना है।

इस तरह के सर्वोच्च अकेलेपन के क्षणों में हमें सृष्टा में अपनी आस्था से ज़्यादा प्रेरित करने वाली बात और कोई नहीं होती। इस सृष्टा को आप चाहें जो नाम या अभियान दें वही हमारी नियति का अंतिम चरम निर्णायक है।

यद्यपि मानव मन में आस्था का ग्रोत सनातन बना रहता है पिछले दिनों की भयावह घटनाओं से इस क्षण वह बुरी तरह से डगमगा गया है। इस आस्था को फिर से स्थापित करना है। वह फिर से स्थापित होगी और यह बात और कोई नहीं वरन् ईश्वर सुनिश्चित करेगा।

इस कार्रवाई को इसीलिए आस्था कार्रवाई कहा जायगा। आइये हम इसकी सफलता के लिए प्रार्थना करें।

त्रासदी में डूबे भोपाल शहर के लोगों के नाम आस्था के शब्द - 16 दिसम्बर 1984 ।

शिक्षा : स्वाधीनता, स्वराज्य, संस्कृति और समता के लिए

15 सितम्बर 1992 को जेनेवा (स्विटज़रलैण्ड) में यूनेस्को द्वारा 'सांस्कृतिक विकास के लिए शिक्षा' विषय पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता के रूप में मूलतः हिन्दी में दिया गया भाषण। श्री अर्जुनसिंह ने इस सम्मेलन के उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता भी की।

अध्यक्ष महोदय, महानिदेशक महोदय,
महामहिमगण, सामान्य प्रतिनिधिगण,
देवियों और सज्जनों,

आरम्भ में, अध्यक्ष महोदय, मुझे अनुमति दीजिये कि मैं अपने सम्माननीय सहयोगियों के स्वर में स्वर मिलाकर आपको इस सम्मेलन के अध्यक्ष चुने जाने पर हार्दिक बधाई दूँ। मैं इस अवसर पर महानिदेशक महोदय, आपको अपने कल के प्रेरक उद्बोधन के लिए धन्यवाद देता हूँ।

पिछले छः दशकों से अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा ब्यूरो ने शिक्षा सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण मुद्दे उठाए हैं। लेकिन मेरा प्रतिनिधिमण्डल वर्तमान सम्मेलन के लिए जो विषय चुना गया है उसे लेकर विशेष रूप से प्रसन्न है। सबके लिए शिक्षा के अपने अभियान में हमें शिक्षा की प्रक्रियाओं और विषयवस्तु का लगातार परिष्कार करने की ज़रूरत है। सांस्कृतिक विकास में शिक्षा के योगदान का अध्ययन इस खोज का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

यों तो शिक्षा और संस्कृति लगभग अविभाज्य ढंग से एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और अक्सर हम एक की चर्चा या विचार दूसरे को याद किए बिना कर ही नहीं सकते हैं। फिर भी अगर इस महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान ने इस बार अपना समूचा अधिवेशन ही शिक्षा, संस्कृति और विकास पर केन्द्रित करने का निश्चय किया है तो इसका स्पष्ट आशय यह है कि इन तीनों की अन्तर्निर्भरता को फिर से जीवन्त-सक्रिय करने और उस पर बल देने की ज़रूरत है। शायद शिक्षा को लोकव्यापी बनाने के उत्साह में और विकास के लिए अपनी अथक दौड़ में हम इस बात को नज़रअन्दाज़ करने लग गए हैं कि बिना ठोस सांस्कृतिक तत्व के शिक्षा और विकास न सिर्फ़ आधे-अधूरे हैं बल्कि उनकी कोई टिकाऊ और दीर्घकालीन उपलब्धियाँ संभव नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, इस उथल-पुथल पर शताब्दी के अन्त के नज़दीक हम फिर पहचान रहे हैं कि सार की बात यही है कि पूरी तरह से शिक्षित और विकसित आदमी का सुसंस्कृत होना भी उतना ही ज़रूरी है। और यह भी कि हालाँकि शिक्षा की स्पष्ट सांस्कृतिक परिणतियाँ हैं और विकास की अपनी संस्कृति है, अगर इन्हें ध्यान में न रखा गया और विभिन्न समाजों की अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं को सम्पुष्ट-सक्रिय न किया गया तो इनके बीच एक ज़बरदस्त फाँक पैदा हो सकती है जो अनेक सामाजिक विकृतियों को जन्म दे सकती है। शिक्षा, या कि विकास, बिना सजग सांस्कृतिक पक्ष के अपना मानवीय चेहरा नहीं पा सकते और न ही मानवीकरण

की प्रक्रिया में सहायक और विमानवीकरण में अवरोधक हो सकते हैं। कहा तो यह भी जा सकता है कि अन्ततः शिक्षा और विकास का लक्ष्य संस्कारी व्यक्ति और संस्कार समाज बनाना है जिसमें खुलापन और ग्रहणशीलता हो पर अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक छवि भी। अगर शिक्षा और विकास की प्रक्रियाएँ उस पक्ष को प्रबल नहीं करतीं जिसे कि 'सब कुछ की संस्कृति' कहा गया है तो वे ऐसे नागरिक बना रही होंगी जिनके पास कौशल होगा पर दृष्टि नहीं, क्षमता होगी पर रचनात्मक कल्पना नहीं, साधन होंगे पर मूल्यबोध नहीं। मुझे उम्मीद है कि इस अधिवेशन में हम एक समग्र मनुष्य की अवधारणा को सामने रखकर शिक्षा और विकास की ऐसी समावेशी धारणा और पद्धतियाँ विकसित करने की ओर ठोस क़दम उठाने की सिफ़ारिश करेंगे जो हिंसा और अतिचार, अभाव और असहिष्णुता के इस भयावह समय में सारी चुनौतियों से जूझने में समर्थ, मानवता का विस्तार करने में सहायक हो सकें।

संचार, यातायात, टेक्नॉलॉजी आदि को मिलाकर सारे संसार को एक विश्व-ग्राम में बदल दिया गया है। पर यह विश्व उपभोग, शोषण, हिंसा और लालसा का एक विराट द्वीप बनता जा रहा है। एक दुष्प्रभाव यह है कि सारे संसार में नकलची, अपनी जड़ों से कटे, प्रभुत्वशाली समुदाय विकसित हो रहे हैं। जैसा कि हमने हाल ही में देखा है कि छोटे से छोटे समुदाय को उसकी इच्छा के विरुद्ध अपनी पहचान खोने या किसी विराट् पहचान में उसे तिरोहित करने को विवश नहीं किया जा सकता। इसलिए अब ऐसा मुकाम आ गया है कि हम एक ऐसी विश्व-व्यवस्था बनाने की ओर प्रवृत्त हों जिसमें देशों और समाजों को अपना-अपना व्यक्तित्व विकसित करने के पूरे अवसर हों। जिसके नागरिक अपनी गहरी मानवीयता में हिस्सेदार होते हुए भी अलग-अलग रंगतों और पहचानों के हों- जिनके पास रचना के लिए, सुन्दरता और विविधता के लिए, सूक्ष्मता और जटिलता के लिए धीरज और फ़ुरसत हो। जिनके कर्म और विचार में समरसता हो जो आज़ादी, बराबरी और न्याय के युद्ध को दूर से देखने के बजाय उसमें हर क्षण शामिल हों, जिन्हें आत्मविस्तार और सच्ची सामुदायिकता में रुचि हो।

किसी भी समय में शायद मनुष्य की क्रूरता, हिंसा और निर्दयता से संसार पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकता। लेकिन ऐसा संसार हम ज़रूर बना सकते हैं जिसमें क्रूर और हिंसक होने वालों का लगातार प्रतिरोध बढ़ता चले। यह सही है कि बीसवीं शताब्दी में कई महान पुरुष हुए हैं पर जब तक हम मनुष्य हैं और जब तक हमें अपनी परम्पराओं और उत्तराधिकार का सांस्कृतिक संस्पर्श सुलभ है, हम मनुष्य की स्वाधीनता, उसके सच्चे समतामूलक स्वराज का सपना देखना छोड़ नहीं सकते। हमारे महाकाव्य **महाभारत** में उसके रचयिता **व्यास** ने कहा है कि मनुष्य से बड़ा कोई और सत्य नहीं है। चाहे शिक्षा हो, चाहे विकास सबका लक्ष्य यही परम सत्य, यही मनुष्य है। मनुष्य ही संस्कृति निर्माता है और संस्कृति अनेक दृष्टियों से उसका परिभाषक आविष्कार है। हर संस्कृति में मनुष्य की उसकी सारी विविधताओं के साथ समग्रता की अवधारणा केन्द्रीय है। पर यह समग्रता यह समावेशिता अपने पर्यावरण, अपने समुदाय और परिवार, अपने विश्वासों और मूल्यों के प्रति सजग रहकर ही सम्भव है। जो स्वाधीन है, जो विषमता और शोषण से मुक्त है, जो आत्मविश्वास है लेकिन परहित में हमेशा सजग है वही समग्र हो सकता है।

शिक्षा और विकास के क्षेत्र में जो अनेक परिवर्तन कौशलों और उपकरणों आदि में आ रहे हैं उनसे निश्चय ही गति तेज़ हो रही है। लेकिन उस तेज़ी में यह समग्रता छूट न जाये या आँख से ओझल न हो जाये इसका जतन ज़रूरी है।

मेरा यह परम सौभाग्य है कि मैं आज यहाँ आपके सम्मुख जिस देश की ओर से कुछ कहने के लिए खड़ा हूँ उस देश की लम्बी परम्परा इसी अनेकान्त समग्रता की रही है। भारत में समयसिद्ध परम्पराओं और नए परिवर्तनों

के बीच कभी विरोध या विकृति नहीं आई। जहाँ तक मैं समझता हूँ इसका कारण सिर्फ़ यही नहीं है कि भारतीय परम्पराएँ परिवर्तन की ओर निरन्तर ग्रहणशील रही हैं बल्कि यह भी सत्य और सच्चाई को समझने की भारतीय दृष्टि हमेशा ही अनेकान्त रही है। यह बहुलता, अनेक विकल्पों की सम्भावना और अन्य दृष्टियों का आदर हमारी संस्कृति का मूलाधार रहे हैं। हमारी यह कोशिश है कि यह मूलाधार पुष्ट और सशक्त रहे और हमारी शिक्षा-पद्धति उससे प्राणरस पाती रहे।

इन दिनों व्यापक विचारविमर्श के बाद जो निर्धारित करने जा रहे हैं उसमें भी शिक्षा की सांस्कृतिक परिणतियों और संस्कृति की शैक्षणिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखा गया है। हमारी औपचारिक शिक्षा-व्यवस्था और देश की समृद्ध और विविध सांस्कृतिक परंपराओं के बीच जो अलगाव है, हम उसे दूर करना चाहते हैं। किसी भी सन्तुलित व्यवस्था में विसंस्कृतीकरण, अमानवीकरण और अलगाव का प्रतिरोध होना ही चाहिये। इस दिशा में हमने एक व्यापक और सुचिन्तित कार्ययोजना तैयार की है। कोशिश यह है कि शिक्षा के सभी स्तरों पर, प्रायमरी से उच्च शिक्षा तक, सांस्कृतिक तत्वों को सशक्त किया जाय। कुल मिलाकर लगभग 75 उपाय सोचे गए हैं और स्थानीय स्तर पर नवाचार और पहल के लिए पूरी गुंजाइश रखी गई है। शिक्षकों का उन्मुखीकरण, पाठ्यक्रमों का संशोधन और उन्नयन, सांस्कृतिक अनुभव के लिए कम ख़र्चीले और स्थानीय सामग्री का इस्तेमाल, स्थानीय समुदायों की सक्रिय हिस्सेदारी, विभिन्न संस्कृतिकर्मियों की (फिर वे आधुनिक पद्धति के हों या पारंपरिक) शिक्षा व्यवस्था में भागीदारी, छात्रों को अपने स्थानीय परिवेश के प्रति उत्सुक बनाना और उनमें सौन्दर्य, तालमेल और परिष्कार के प्रति संवेदनशीलता जगाना आदि शामिल है। मुझे पूरी उम्मीद है कि भारत का विशाल कला समुदाय (फिर वे शास्त्रीय कलाकार हों या, साहित्यकार या कि जंगलों-देहातों में फैले लोक-कलाकार) हमारी मदद के लिए उत्साहपूर्वक सामने आयेगा। इस प्रक्रिया को तेज़ करने के लिए अनेक प्रमुख संस्थाओं की भूमिका भी निश्चित की गई है जिनमें राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, सांस्कृतिक स्रोत और प्रशिक्षण केन्द्र, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, क्षेत्रीय संस्कृति केन्द्र, स्काउट आन्दोलन, राष्ट्रीय केडेट कोर, राष्ट्रीय सेवा योजना, नेहरू युवक केन्द्र आदि शामिल हैं।

अध्यक्ष महोदय, इस वर्ष, भारत में हम अपने स्वतंत्रता संग्राम के एक निर्णायक चरण की स्वर्ण जयन्ती मना रहे हैं और यह अवसर है कि हम याद करें कि बुनियादी शिक्षा हमारे संग्राम का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था। दरअसल हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने औपनिवेशक शक्ति के विरुद्ध अपना महासमर जारी रखते हुए भी अपने देश के लिए प्रासंगिक एवं वैकल्पिक शिक्षा पद्धति विकसित और प्रसारित करने का जतन किया था। यह आकस्मिक नहीं है कि भारत के संविधान में 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए अनिवार्य और मुफ़्त शिक्षा की व्यवस्था की गई है। राज्य की ज़िम्मेदारी को एक निर्देशिक सिद्धांत के रूप में शामिल किया गया। यह हमारे स्वतंत्रता-संघर्ष का उत्तराधिकार ही था और इस बात का स्वीकार भी कि बिना शिक्षा के विकास और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण सम्भव नहीं है। "शिक्षा: स्वाधीनता, स्वराज, संस्कृति और समता के लिए" हमारा नया नारा हो सकता है।

शिक्षा के लोकव्यापीकरण में हमने कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ पाई हैं। 1991 की जनगणना में यह पहले-पहल हुआ है कि भारत में साक्षरों की संख्या निरक्षरों से अधिक है और साक्षरता की दर 52.11 प्रतिशत हुई है। हम कृतसंकल्प है कि इस शताब्दी के अन्त तक प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण का लक्ष्य हम पा लेंगे। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की लगभग नाटकीय सफलता ने हमें उत्साहित किया है और यह मिशन भारत में साक्षरता प्रसार में अब केन्द्रीय

भूमिका निभा रहा है। उसने अब एक जनान्दोलन का रूप धारण कर लिया है और मुझे इसमें सन्देह नहीं कि जब भारतीय जन साक्षर होने के लिए जागे हैं तो हमारा अभियान सफल होकर ही रहेगा।

यह सही है कि विकास के अन्य क्षेत्रों की माँगों के रहते शिक्षा और संस्कृति के लिए भारत जैसे देश में पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं जुटा पाते हैं। पर हम मानते हैं कि अन्ततः शिक्षा और संस्कृति का सबसे समृद्ध, सबसे विश्वसनीय और असमाप्य संसाधन स्वयं मनुष्य है। हम मानते हैं कि शिक्षा और संस्कृति में विनिवेश, सार में भविष्य में, मानव विकास में, मनुष्य के मन में सृजनात्मकता की निरन्तरता और टिकाऊपन में विनिवेश है। इस विनिवेश के लिए अपनी प्रतिबद्धता और उसमें अपनी आस्था हम एक बार फिर दुहराते हैं।

समकालीन भारत की समस्याएँ और इतिहास

भारतीय इतिहास काँग्रेस से सम्बद्ध होना मेरे लिए गर्व की बात है। विशेष तौर पर इस अधिवेशन में, जिसका आयोजन असाधारण परिस्थितियों में हो रहा है। मैं उन कुछ ऐसे सामयिक चिंतन के विचारों पर आपके साथ विचारों का आदान-प्रदान करना चाहता हूँ, जो मैं समझता हूँ हमारा सब का तथा विशेष रूप से पेशेवर इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं।

इतिहास मात्र भूतकाल का पुनर्निर्माण नहीं है, यह वर्तमान के लिए कारणत्व और प्रेरणा भी है और भविष्य पर इसका प्रभुत्वकारी प्रभाव भी होता है। इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि इतिहास के बारे में जो आज कुछ माँगे की जा रही हैं वे माँगे वर्तमान को दूषित करने की दृष्टि से ही केवल नहीं की जा रही हैं बल्कि आने वाली पीढ़ियों के मस्तिष्कों को विकृत करने के लिए भी की जा रही हैं। वास्तव में आश्चर्यजनक तो यह है कि इसका मात्र दिखावा नहीं किया जा रहा — एक असभ्य और खुला प्रयास हमारे सामने है।

क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूँ कि ऐसी माँगें वह लोग करते हैं जो इतिहास के बारे में अधीर हैं। यह व्यग्रता इसलिए है क्योंकि ऐतिहासिक असत्य कभी भी पेशेवर इतिहासकारों की कसौटी पर खरे नहीं उतर सकते और इतिहासकारों के छिद्रान्वेषण से कुछ ऐसी काल्पनिक बातों की पोल खुल जायगी जिनसे ऐतिहासिक प्रमाणों को युगान्तरित किये जाने के प्रयास किए जाते हैं। हमने यह सब देखा है जब उन्हें दुराग्रही दावों के समर्थन में तथ्य तथा प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता है, तो वे इन्हें प्रस्तुत करने के बजाय इतिहासकारों की तर्क-विचार शक्ति पर ही प्रश्नचिन्ह लगाने लगते हैं। इसलिए, क्योंकि सत्य की खोज कठिन कार्य है और उपहास तो एक आसान कार्य है न।

कोई भी यह नहीं मान सकता कि हम अपने कल के इतिहास पर गौरवान्वित न हों। निस्संदेह प्रत्येक भारतवासी को अपने इतिहास पर गौरवान्वित होने का अधिकार है। भारत की सभ्यता अन्य अनेक सभ्यताओं से अधिक पुरातन है, शायद यह मिस्र, मेसोपोतामिया और चीन जितनी पुरानी है। भारतीय इतिहास एक अनन्त सातत्य है। इसके प्रत्येक चरण की घटनाएँ एक महासागर की लहरों की तरह रही हैं। क्या कोई एक लहर महासागर की जलधारा के समस्त वैभव अथवा स्वभाव के लिए किसी अन्य से अधिक श्रेय का कभी दावा कर सकती है। जो भारत के महान इतिहास के किसी भी चरण को अलग करने का प्रयास करेगा वह तो इतिहासकारों के समुदाय में कोई सहज और भोला व्यक्तित्व ही हो सकता है।

परन्तु वे इतने सहज अथवा भोले नहीं हैं, क्योंकि वे जानते है कि भारतीय इतिहास के महान सातत्य को बदरंग, विकृत अथवा विभाजित करना बहुत कठिन है। तथापि वे यह भी जानते हैं कि इस महान विस्तार को योजनाबद्ध तरीक़े से दूषित किया जा सकता है और किसी चुनौती के अभाव में तो ये विकृतियाँ धीरे-धीरे समय में

समाहित हो ही जायँगी। पीढ़ियों के उपरान्त इतिहास के ये प्रदूषित भविष्य के नागरिकों और विद्वानों के ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अपने रंग में रंग देंगे। इस प्रकार काल्पनिक आँधियों की मनगढ़त कथाओं पर ऐतिहासिक सत्य की मुहर लगा दी जायगी।

ये ताक़तें अव्यवस्था फैलाने के लिए ऐतिहासिक मंचों और ऐतिहासिक विश्लेषण के उपकरणों का इस्तेमाल करती हैं। अतः निस्संदेह, इन प्रयासों को बुद्धिजीवियों को और विशेष रूप से पेशेवर इतिहासकारों को ही चुनौतियाँ देनी होंगी। परन्तु क्या इन ताक़तों को चुनौती देने वालों के प्रयासों के प्रति समाज मूकदर्शक ही बना रहेगा। क्या हम तर्क-विचार शक्ति के साथ अनादर और खिलवाड़ को निराश देखते रहेंगे और उसके विरुद्ध आवाज़ और रोष नहीं व्यक्त करेंगे। हालाँकि मूक बने रहने का विकल्प आसान है फिर भी मुझे विश्वास है कि यह आसान विकल्प आप जैसे प्रमुख विद्वान और इतिहासकार अपनाना नहीं चाहेंगे क्योंकि ऐसा आप अपनी पेशेवर प्रकृतियों की क़ीमत पर ही कर सकते हैं और सार्वजनिक जीवन से जुड़े व्यक्तियों के लिए ऐसा विकल्प अपनाने की क़ीमत होगी भावी इतिहासकारों द्वारा पूर्णरूपेण उपेक्षा।

मैं एक ऐसे मुद्दे की बात भी करना चाहता हूँ जिससे मैं एक विनम्र प्रयास के बतौर सम्बद्ध रहा हूँ, जिससे हाल ही में कुछ विवाद भी जुड़ गए। स्वातंत्र्योत्तर काल के भारतीय इतिहास को उजागर करने और उसे विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करने से कुछ प्रत्याशित विवाद उत्पन्न हुए हैं। इतिहास तो विवाद और तर्क-वितर्क का क्षेत्र है ही। यह हमें अपनी सीमाओं से पार के शोर से निर्विघ्न, निर्बाध वृत्तान्त का अधिकार नहीं देता।

यह भी स्वागत योग्य है कि इससे शिक्षाविदों के बीच भी परिसंवाद प्रारम्भ हो गया है जिससे मुद्दे सुस्पष्ट हो सकेंगे और वर्तमान के प्रति हमारी समझ और बेहतर होगी। इस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस मुद्दे से जुड़े तीन मूल प्रश्न हैं। पहला तो यह कि क्या अपने इतने निकट के समय की इतिहास-रचना सम्भव है और उसका प्रयास किया जा सकता है। दूसरा, यदि ऐसा इतिहास संभव है तो क्या वह विद्यालयों और महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित करने योग्य है, और यदि उपरोक्त दोनों प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक है तो ऐसे इतिहास के लेखन का सबसे बेहतर तरीक़ा क्या है?

स्वाभाविक रूप से ऐसा प्रतीत हो सकता है कि हाल ही के इतिहास को तो आने वाली पीढ़ियों के लेखन पर छोड़ दिया जाना चाहिए। दूसरी ओर क्या इतिहासकार किसी भी समय काल की अपनी धारणाओं को अनदेखा कर सकते हैं। क्या इस विस्मयकारी वास्तविकता से कुछ अर्थपूर्ण इतिहास बन सके, इसका प्रयास नहीं होना चाहिए और, सामयिक विश्व की समस्याओं के प्रति युवकों का आत्मविश्वास बढ़े, इस ओर कोई प्रयास नहीं होना चाहिए। या फिर क्या हम केवल किसी सुदूर भविष्य का इंतजार करें जहाँ की सुरक्षित ऊँचाइयों से तथ्यों और मिथ्याओं की परतें अलग करते रहें। हमने इस समस्या को शिक्षाविदों और सार्वजनिक जीवन के कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के सामने रखा। जब उन्होंने यह देखा कि यह परियोजना अमल में लाने लायक़ है तो हम आगे बढ़े। भारतीय स्वातंत्र्योत्तर काल एक वास्तविकता है जो हमारे युवकों के मस्तिष्कों को आंदोलित करती रहती है, भले ही हम उन्हें इसका प्रामाणिक विवरण दे पायें या नहीं। इसलिए, भारतीय स्वातंत्र्योत्तर काल का इतिहास एक आवश्यक उपक्रम है, हालाँकि इसके विवेचनात्मक अवगुणों से ग्रसित होने की संभावना बनी रहती है, फिर भी अपने वर्तमान के विश्व को जोड़ने वाले निकट के कल के इतिहास के बारे में अपने बच्चों को रिक्त और अनभिज्ञ रखना हमारे लिए ख़तरे से खाली नहीं है। इस बारे में विचारकों की सहमति थी कि ऐसा इतिहास लिखा जाना चाहिए और यह कार्य उन सक्षम व्यक्तियों को सौंपा जाए जिन्होंने समकालीन भारत की समस्याओं से निपटने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित की है। कुछ

इतिहासकारों द्वारा इस कार्य में सम्बद्ध होने को अनुचित मानना वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है। हालाँकि हम उनके दृष्टिकोण की क़द्र करते हैं, परन्तु हमें संदेह नहीं है कि भले ही वे इस कार्य को करने वाली समिति में नहीं हैं फिर भी वे भारतीय स्वातंत्र्योत्तर काल के इतिहास की समस्याओं को समझने के लिए अपना समय और योगदान समाज को देते रहेंगे क्योंकि उनके इस सहयोग से हमारे बच्चों के लिए भविष्य के अर्थपूर्ण दर्शन को उजागर करने में मदद मिलेगी।

जैसा कि मैंने पहले कहा, इतिहास एक प्रकार के वाग्युद्ध का क्षेत्र है, और सामयिक इतिहास तो और भी- जहाँ वास्तविकता और कल्पना, मिथ्या और तथ्य ऐतिहासिक प्रासंगिकता के दावे प्रस्तुत करने में आपस में जूझते रहते हैं। जो अलग खड़े हो जाते हैं; वे हालाँकि अप्रासंगिक तो नहीं बनते, परंतु उनके लिए हमारे भविष्य के कुछ संकेत चिन्हों को जानना, कुछ घटनाक्रमों को समझना असंभव हो जाता है। मेरा विश्वास है कि ऐसी स्थिति किसी का भी उद्देश्य नहीं हो सकती।

भारतीय इतिहास काँग्रेस सदैव एक महत्त्वपूर्ण वार्षिक आयोजन माना गया है, यह एक महत्त्वपूर्ण बौद्धिक पर्व है। आज के इस अधिवेशन ने तो कुछ हद तक जनता का बहुत अधिक ध्यान आकर्षित किया है और शायद कई आशाओं का सूत्रपात भी हुआ है। मैं भारत के इतिहासकारों को नस्लवाद, सम्प्रदायवाद और फासिज़्म की ताक़तों के ख़िलाफ़ अथवा संघर्ष में उनके साहसपूर्ण और देशभक्तिपूर्ण विचार और तर्कसंगत भावना के लिए बधाई देना चाहता हूँ। वर्तमान शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सामंतवाद और नस्लवाद की चुनौती से जूझने में उन्होंने शानदार योग दिया था और हाल के वर्षों में उन्होंने इतिहास के प्रति साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के दुस्साहस का ज़बरदस्त पर्दाफाश किया है। यही कारण है कि भारतीय इतिहास काँग्रेस राष्ट्र के बौद्धिक जीवन का एक सुव्यवस्थित अंग बन सकी है जबकि प्राथमिक रूप से यह अतीत से संबंधित शोध के विभिन्न पहलुओं से सम्बद्ध रही है।

हम अपने इतिहास के विषमतम काल से गुज़र रहे हैं और इस कठिन समय का सामना करने के लिए हमें बुद्धिजीवियों के मार्गदर्शन की ओर अधिक आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि यह 52वाँ अधिवेशन पिछले अधिवेशनों की तरह अपना प्रेरणादायक प्रयास जारी रखेगा। मैं आशा करता हूँ कि आपके इस अधिवेशन में भाग लेने से लाभदायक विचार-विमर्श होगा और मैं आपके सुखद दिल्ली प्रवास की कामना करता हूँ।

भारतीय इतिहास काँगेस के नई दिल्ली में आयोजित 52वें अधिवेशन पर केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री के रूप में भाषण - 21 फरवरी 1992

CAREER COLLEGE
ACC.No.....
Book No.....
Date.....
B.H.E.L., BHOPAL
26921

श्री शेख अब्दुल्ला को याद करते हुए

हम आज भारत के उस महान् सपूत के जन्म दिवस को मनाने के लिए एकत्रित हुए हैं जिसने देश के इतिहास में बहुत गंभीर मोड़ पर निर्णायक भूमिका निभाई। यद्यपि मुझे व्यक्तिगत रूप से शेख साहब से मिलने का अवसर कभी नहीं मिला, परन्तु देश के एक नौजवान नागरिक के नाते मुझे आज़ादी प्राप्त होने के तुरन्त बाद धर्मनिरपेक्षता एवं राष्ट्रवाद की ताक़तों को समृद्ध करने में उनके ऐतिहासिक योगदान की पूरी जानकारी थी। 14 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि को संविधान सभा में दर्शक के रूप में उपस्थित होने का मुझे अद्वितीय गौरवपूर्ण अवसर मिला जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भावुक स्वर में भारत माता की नियति को दिशा प्रदान की। यह एक ऐसा क्षण था जो किसी व्यक्ति की बात छोड़िए किसी देश के जीवन काल में भी विरला ही होता है। इस घटना से पूर्व और बाद का घटनाक्रम विभीषिका जैसा था। छः दशकों के ऐतिहासिक तथा अद्वितीय स्वतंत्रता संघर्ष के बाद दुर्भाग्यपूर्ण बँटवारे ने शताब्दियों से एक रहे राष्ट्र के मज़बूत ढाँचे को छिन्न-भिन्न कर दिया। दो राष्ट्रों के विनाशकारी सिद्धांत ने भाई को भाई से अलग कर दिया और जिन्होंने इसका विरोध करने का साहस किया उन्हें निर्दयता से तलवार से क़लम कर दिया गया। लगता था कि जैसे पूरा राष्ट्र ही हिंसा और घृणा की ज्वाला में धधकने लगा हो।

इस पृष्ठभूमि में शेख साहब से यह फ़ैसला करने के लिए कहा गया कि क्या कश्मीर धर्मनिरपेक्ष भारत के साथ अथवा कट्टरपंथी पाकिस्तान के साथ रहेगा। जो लोग उस समय निर्णय लेने में लगे हुए थे, उनके मनोभावों का विश्लेषण करना आज हममें से बहुत लोगों के लिए आसान प्रतीत होता है। उस समय कश्मीर में घुसपैठियों के खतरे और चुनौती से जूझने और कश्मीरियों को निःसंकोच भारत की नियति के साथ जोड़ने का श्रेय शेख साहब और उनके सहयोगियों को जाता है। ऐसा निर्णय केवल ऐसे लोग ही ले सकते हैं जिनके पास ऐसी विचारधारा पर अडिग रहने का साहस और विश्वास हो और जो उस विचारधारा की रक्षा के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने को भी तत्पर हों। वास्तव में निष्ठापूर्वक कार्य स्वतंत्रता के बाद भारत का पहला रचनात्मक क़दम था जिससे भारत राष्ट्र को सुदृढ़ बनाए रखने की प्रक्रिया शुरू हुई। उसके बाद से कश्मीर तथा शेष भारत में कुछ सुखद तथा दुःखद घटित हो चुका है, परन्तु कश्मीर के विलय का वह क्षण राष्ट्रीय एकता की अवधारणा की सशक्त आधारशिला बन गया है जिसे हमने कभी-कभी बहुत बड़ी क़ीमत अदा करके भी सुरक्षित एवं संरक्षित रखने का प्रयास किया है।

अब 40 वर्ष से भी अधिक समय गुज़र गया है। देश ने अनेक क्षेत्रों में शानदार प्रगति की है। एक राष्ट्र के रूप में हम विजयोल्लास और आपदाओं का सामना करने में समक्ष हैं।

हमने जो लोकतांत्रिक प्रणाली अपनाई, वह कई प्रकार के तनावों और दबावों के बावजूद चाहे उनका कारण कोई ख़ामियाँ अथवा अभिकल्पना रही हों, काफ़ी हद तक अपने आप को बनाए रखने में सक्षम रही है। भारत की पश्चिमी जनता को पूरी सुविधाएँ भी नहीं मिली हैं लेकिन बेहतर प्रबंध व्यवस्था के लिए उनकी संघर्ष क्षमता में

बहुआयामी वृद्धि हुई है और वह दिन दूर नहीं जब देश पूरी तरह आत्मनिर्भर हो जायगा, अपनी नियति का स्वयं मालिक होगा, शांति की ओर स्वयं अग्रसर रहने के साथ-साथ विश्व को भी इसके लिए प्रेरित करेगा।

तथापि हम सबको यह समझ लेना चाहिए कि यह सब इतनी आसानी से और अपने आप नहीं हो पाएगा। हमारे राज्यतंत्र को अभी भी कुछ ऐसी ताक़तों से ख़तरा है जो उन लोगों द्वारा प्रेरित हैं जो देश की अलग-अलग रूपरेखाएँ मानकर रात-दिन एक कर हमारे देश की वास्तविक एकता की क़ीमत पर राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अग्रता हासिल करना चाहती हैं। हमें ऐसे ख़तरों के स्वरूप की बहुत ही बारीक़ी से जाँच करनी चाहिए और सभी अवसरों पर उनसे निपटने के लिए भले ही हमें जो भी त्याग करना पड़े एक नीति तैयार करनी चाहिए।

पहला ख़तरा तो हमारे देश की लोकतांत्रिक प्रणाली को है। यदि लोकतंत्र के प्रसार को संकीर्ण, सांप्रदायिक और धार्मिक विवादों से दूषित करने की अनुमति दी जाती है जैसा कि चुनाव में समर्थन प्राप्त करने के लिए देश के क़ानूनों के अनुसार किसी भी राजनीतिक दल को नहीं करना चाहिए, तो हमारे देश के लोकतंत्र की विश्वसनीयता को बहुत नुकसान पहुँचेगा।

तथापि, हम देख रहे हैं कि कुछ दल ऐसे मुद्दों का प्रयोग क़ानून के विरुद्ध जाकर, वोटों को हथियाने के लिए कर रहे हैं और यहाँ तक कि वे निर्लज्जता पूर्वक इस आशय की उद्घोषणा भी कर रहे हैं कि उन्होंने मस्ज़िद को गिराने और मंदिर को बनवाने के लिए लोकतांत्रिक जनादेश प्राप्त कर लिया है। इस संबंध में पहला प्रश्न तो यह है कि क्या इस देश के निर्वाचक-क़ानूनों के अन्तर्गत इस आशय का कोई जनादेश प्राप्त किया जा सकता है और दूसरे क्या भारत की जनता ने किसी दल को ऐसा कोई जनादेश प्रदान किया है। इन दोनों प्रश्नों का जवाब 'न' में ही होगा। न तो क़ानून ही ऐसे जनादेश को प्राप्त करने की इजाज़त देते हैं और न ही जनता ने ऐसा कोई जनादेश प्रदान किया है। वर्ष 1989 और 1991 के संसदीय चुनावों के परिणामों से यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि भारत के मतदाताओं ने इस प्रकार के प्रस्ताव को निर्णायक तौर पर ठुकरा दिया है। इस सब के बावज़ूद हम देख रहे हैं कि इन मुद्दों पर भावनाओं को भड़काने के प्रयास किए जा रहे हैं, जिसका सीधा अर्थ है— लोगों द्वारा प्रदत्त जनादेश को चुनौती दिया जाना। क्या ऐसे लोगों द्वारा इस देश में लोकतंत्र की सच्चे अर्थों में सेवा की जा सकती है जो लोकतांत्रिक जनादेश के प्रति इतना कम सम्मान रखते हैं। समय की माँग यह है कि उन सभी को, जो लोकतंत्र के बुनियादी सिद्धांतों के प्रति वास्तविक रूप से प्रतिबद्ध हैं, बेहिचक ऐसे सभी व्यक्तियों का भंडाफोड़ करना चाहिए जो, लोकतंत्र के प्रति दिखावटी सहानुभूति दिखाते हुए, जनता को निष्ठाहीन बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

आज विश्व भर में हो रहे दूरगामी परिवर्तनों को हम देख रहे हैं। राजनैतिक एवं आर्थिक ढाँचे की प्राचीन आस्था एवं सिद्धांतों में मौलिक बदलाव आ रहा है। आम जनता की आकाँक्षाओं को एक नया आयाम मिल रहा है, राष्ट्रीय प्रयास के लिए नए लक्ष्य निर्धारित किए जा रहे हैं, वित्तीय एवं राजनीतिक विषयों को नई परिभाषाएँ मिल रही हैं, राष्ट्रीय नेता स्थितियों से निबटने के लिए तौर-तरीक़े विकसित करने के बेहद प्रयास कर रहे हैं और राष्ट्र की क्षमताओं के नए मानदण्ड स्थापित किए जा रहे हैं।

एक राष्ट्र के नाते हम संसार में हो रहे परिवर्तनों की ओर से आँखें नहीं मूँद सकते। बुद्धिमत्ता और व्यावहारिकता की माँग यह है कि हम अपने मूल सिद्धांतों से पूरी तरह विचलित हुए बिना आधारभूत और नीतिगत बदलाव लाएँ। जब कभी आज के युग का इतिहास लिखा जाएगा तो पंडित जवाहरलाल नेहरू की बुद्धिमत्ता के प्रति हमें नतमस्तक

होना होगा, क्योंकि उन्होंने हमारे राष्ट्र निर्माण के प्रयासों के प्रारंभिक चरणों में पूर्ण आत्मनिर्भरता के अंतिम लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए मिश्रित अर्थव्यवस्था की ठोस नींव रखी थी। उनकी यह नीति हमारे देश पर आर्थिक आधिपत्य जमाने की किसी अन्य देश की कोशिश के लिए अवरोधक सिद्ध होगी और साथ ही तेज़ आर्थिक विकास के लिए ठोस आधार प्रदान करेगी। नेहरूजी द्वारा प्रतिपादित विकास का आदर्श अभी भी प्रासंगिक नहीं हुआ है, भले ही कुछ लोग ऐसा मान लेते हैं। सच तो यह है कि इस कारण हमें अधिक विश्वास और लचीलेपन के साथ अपने विकल्पों का प्रयोग करने का अवसर प्राप्त हुआ है।

आज के भारतवर्ष के समक्ष अनेक समस्याएँ है जो कभी-कभी इसके संपूर्ण अस्तित्व के लिए ख़तरा बन जाती है। निश्चय ही, अधिकारों का प्रयोग करते समय हमें और अधिक सावधानी बरतनी होगी, कि कहीं ऐसा न हो कि हम अलगाव की ओर न मुड़ जाएँ। हमें यह स्वीकार करना होगा कि पिछले चार दशकों के अनुभव से यह स्पष्ट पता चलता है कि केन्द्र-राज्य संबंधों को नई परिभाषा देना आवश्यक है।

यदि देश की एकता को बनाए रखने की इच्छा को फलीभूत करना है तो हमें देश के विभिन्न भागों के लोगों को यह विश्वास दिलाना होगा कि हमारे संविधान और नियमों में, सभी क्षेत्रीय आकाँक्षाओं, भले ही उनका स्वरूप और प्रबलता कुछ भी हो, को अपने भीतर सँजोने की पर्याप्त गुंजाइश है। हमें यह साफ़-साफ़ समझ लेना होगा कि राज्य शक्तियों को बल के एक उपकरण के रूप में प्रयोग में लाए जाने की सीमाएँ हैं। देश के किसी भाग के लिए अपेक्षित राजनीतिक व्यवस्था के संबंध में एकमत होने के लिए सभी संभावनाओं का पता लगाया जाना चाहिए। इसकी एकमात्र सीमा यह होनी चाहिए कि देश की प्रभुसत्ता अथवा धर्मनिरपेक्ष स्वरूप को क्षति पहुँचाने वाला कोई काम नहीं किया जाएगा। हम पूर्वी यूरोप और सोवियत संघ में हाल ही की घटनाओं से सीखे जाने वाले सबकों को अनदेखा करने का जोख़िम नहीं उठा सकते हैं। हमारे संविधान के अनुच्छेद-370 को रद्द किये जाने की माँग बेतुकी और घृणित दोनों ही है तथा यह कुल मिलाकर झूठे वायदों पर आधारित है।

हमने सुना है कि भारत की एकता को सुदृढ़ करने के लिए देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक की यात्रा के लिए एक रथ सजाया जा रहा है। पिछली रथ यात्रा का कटु अनुभव अभी तक हमारे दिमाग़ों में विद्यमान है। वस्तुतः देश की एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए किसी भी प्रकार की रथ यात्रा ज़रूरी नहीं है। आज आवश्यकता इस बात की है कि लोगों के दिमाग़ और दिलों का मिलन हो और फूट पैदा करने वाले तत्वों से बचे रहने का दृढ़ संकल्प लिया जाए तथा अपनी समस्याओं को सभ्य एवं लोकतांत्रिक ढंग से हल करने के हर संभव प्रयास किए जाएँ। यदि देश की एकता बनाए रखने की सच्ची भावना है तो लम्बे चौड़े भाषण की ज़रूरत नहीं है। न ही किसी को विनम्र बनाने के लिए कटु निंदा या धमकाने की ज़रूरत है। यदि यह भावनाओं को उभारने तथा राजनीतिक लाभ के लिए हमारी राजनीतिक व्यवस्था को और विभाजित करने का एक और घृणित प्रयास है तो सदियों से राष्ट्र का निर्माण करने वाले मूल्यों को हृदय में सँजोने वाले प्रत्येक भारतीय को न केवल दृढ़ रहना होगा बल्कि राजनीतिक मायाजाल के स्वार्थी खेल को रोकने के लिए आगे बढ़ना होगा। 26 जनवरी 1992 को कश्मीर की धरती पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने के कुछ तत्वों द्वारा नाटक करने की कोई ज़रूरत नहीं है। पिछले 45 वर्षों से कश्मीर में तिरंगा झंडा शान से लहरा रहा है और किसी भी भारतीय के जीवन की अंतिम साँस तक यह झंडा उसी शान से लहराता रहेगा।

यह दिन हमारे अतीत की समृद्ध विरासत को सुरक्षित रखने की सर्वोच्च आवश्यकता और अपने लोगों को सामाजिक न्याय प्रदान करने के अथक प्रयासों को जारी रखने को रेखांकित करता है। मात्र इसी से हमारे देश की

एकता मज़बूत हो सकती है। हमारी विरासत ऐसी नहीं है जिसको हर कोई खंडित और परिभाषित कर सके। न तो इसका समय निर्धारण किया जा सकता है और न ही इसमें दरार डाली जा सकती है। यह हज़ारों वर्षों के हमारे इतिहास, धार्मिक उदारता और सांस्कृतिक विविधता का समन्वित स्वरूप है जो भविष्य को सार्थक बनाने के लिए वर्तमान को परिष्कृत एवं समृद्ध करती है। इस प्रकार यह संस्कृति का आदर्श रूप है। इसी भविष्य को प्राप्त करने के लिए सुब्रह्मण्यम भारती ने हमें इन शब्दों में प्रोत्साहित किया—

यह भारत एक प्राचीन देश है।
यह मत भूलो, आप इसकी संतान हो,
यह देश सभी राष्ट्रों का अलंकार है।
यह मत भूलो, आप इसकी संतान हो।

स्व. श्री शेख अब्दुल्ला के जन्म दिवस पर आयोजित समारोह के अवसर पर दिल्ली में दिया गया भाषण— 5 दिसम्बर 1991

लिख-लिख भेजी पाती

ਜਿਲਾ ਸਿਖਿਆ ਦਫਤਰੀ-ਫਤਹਿਗੜ੍ਹ

मंत्रिपरिषद् के सहयोगियों को पत्र

मैं आशा करता हूँ कि प्रदेश के सभी स्तर के शासकीय सेवकों को जो अनेक पत्र मैंने लिखे हैं उन्हें आपने पढ़ा होगा। सर्वहारा वर्ग के उत्थान के लिये पूरी तरह प्रतिबद्ध, स्वच्छ और सक्षम शासन मध्यप्रदेश में अपने सामूहिक और सर्वोत्तम प्रयासों द्वारा सुनिश्चित करने की आवश्यकता की ओर उनका ध्यान विशेष रूप से केंद्रित करने के प्रयास के रूप में मैंने ये पत्र लिखे हैं। इन पत्रों की कुछ आलोचना भी हुई है और यहाँ तक कहा गया है कि यह पत्राचार द्वारा शासन करने का प्रयास है। मैं यह स्पष्ट करना चाहूँगा कि यह पत्राचार निरर्थक नहीं है। लोकसेवक की भूमिका लोगों की अपेक्षाओं और उनके कल्याण के लिये हमारी प्रतिबद्धता के मूल्याँकन को सही परिप्रेक्ष्य में रखने का वस्तुतः यह प्रयास है। वास्तव में यह प्रजातांत्रिक व्यवस्था में हम सबकी प्रतिबद्धता और व्यवहार के लिये सार्वजनिक रूप से मानक निर्धारित करने और उन्हें बरतने की कोशिश है। यह तो जनता ही फ़ैसला करेगी कि हम सफल हुए हैं अथवा नहीं। यह कहना अनावश्यक है कि शासन के सदस्यों के रूप में इन दायित्वों के निर्वहन की मुख्य ज़िम्मेदारी हमारे ऊपर है। प्रदेश की जनता ने हमारी नेता श्रीमती इंदिरा गाँधी पर विश्वास रख अपने विवेक से यह ज़िम्मेदारी हमें सौंपी है। इसलिए यह ज़रूरी है कि कुछ प्राथमिकताएँ और बुनियादी ज़िम्मेदारियाँ स्पष्ट रूप से रेखांकित की जायें जिससे की छठी पंचवर्षीय योजना के इस अंतिम वर्ष में प्रदेश के सर्वहारा लोगों के उत्थान के प्रयासों को अधिक से अधिक सफलता मिले।

आप जानते हैं कि इसी माह में योजना आयोग ने मध्यप्रदेश के लिए 1074 करोड़ रुपये की वार्षिक योजना मंजूर की है। मध्यप्रदेश के लिये अभी तक जितनी भी वार्षिक योजनाएँ बनी हैं उनमें किसी वर्ष में इतनी राशि की बढ़ोत्तरी कभी नहीं हुई है। यह अब तक देश में प्रदेशों के लिए स्वीकृत योजनाओं में तीसरी सबसे बड़ी वार्षिक योजना है। मुझे आशा है कि आगामी मार्च में जब विधानसभा में बजट प्रस्तुत होगा तब यह राशि भी और बढ़ जायेगी। हमने 1983-84 वर्ष लगभग 60 करोड़ रुपये के घाटे से शुरू किया था और मार्च से जुलाई 83 के बीच हमारा ओवर ड्राफ्ट 100 करोड़ रुपये के आसपास रहा। वार्षिक योजना को अंतिम रूप देने के समय हम कठोर वित्तीय अनुशासन और समुचित वित्तीय प्रबंध का चित्र प्रस्तुत कर सके। इस प्रकार रोकड़ में घाटा न केवल मिटा वरन् जून 83 के बाद ओवर ड्राफ्ट लेने की ज़रूरत भी टल गई। वास्तव में वर्ष 1984-85 के लिए हमारे प्रदेश को वार्षिक योजना के लिए जो इतना बड़ा आवंटन मिला है वह इन सबका परिणाम है और योजना आयोग ने भी उचित मान्यता दी है। प्रतिपक्ष विधानसभा और इसके बाहर यह कहता रहा है कि इस सरकार की प्रशासन पर कोई पकड़ नहीं है आप यह अच्छी तरह समझ सकते हैं यदि मंत्रिपरिषद् द्वारा इस संबंध में समय-समय पर निर्धारित नीति-निर्देशों के अनुसार प्रशासन ने सही ढंग से काम न किया होता तो अधिकतम बचत करना, फिज़ूलख़र्ची पर रोक लगाना और साधनों का सोद्देश्य उपयोग कैसे संभव होता है। वास्तव में इस सफलता का पूरा श्रेय आप सबको और राज्य के प्रशासन तंत्र को है। आप मुझसे सहमत होंगे कि वित्तीय प्रबंध और अनुशासन की इस नीति को आगामी वित्तीय वर्ष में और अधिक ताक़त से लागू किया

जाना चाहिए। दूसरी बात, जिस पर आपको निरन्तर ध्यान देना है वह यह है कि हर स्तर पर कड़ी निगरानी और मार्गदर्शन के ज़रिये आपको सौंपे गये कार्यक्रमों पर सही ढंग से अमल हो जिससे हमारी योजना के वित्तीय लक्ष्यों की प्राप्ति में हमारे यह प्रयास अन्ततः प्रतिबिम्बित होंगे। जहाँ कहीं भी ढील-ढाल अथवा उदासीनता नज़र आये उससे सख्ती से निपटा जाए।

हमने हर स्तर पर भ्रष्टाचार को प्रभावी ढंग से रोकने के लिए कई निर्णय लिये हैं और क़ानून बनाये हैं। यह समस्या जो इस कदर बढ़ रही है वह समाज के हितों के लिए घातक हो सकती है। इससे निपटने में, मैं आपकी सहायता और निरन्तर प्रयास की अपेक्षा करता हूँ। मुझे विश्वास है कि इस संबंध में आपके कार्य उसी उच्च स्तर पर बने रहेंगे जिनकी अपेक्षा हमारी नेता श्रीमती इंदिरा गाँधी हममें से प्रत्येक से करती हैं। इस मामले में कभी कोई समझौता नहीं हो सकता है। इसमें आप सबसे मुझे जो सहयोग मिला है उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ और मुझे विश्वास है कि यह सहयोग मुझे आगे भी मिलता रहेगा।

हमारे कार्यक्रमों के अमल में सभी स्तर पर शासकीय सेवाएँ सार्थक भूमिका अदा करती है इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि इनकी समस्याओं और कठिनाइयों पर सिलसिलेवार तत्परतापूर्वक और निष्पक्ष भाव से ध्यान दिया जाये ताकि हम उनसे पूरे सहयोग की आशा कर सकें। हर काम पैसे से नहीं होता। यदि उनकी कठिनाइयों के संबंध में सहानुभूतिपूर्ण रुख़ बरता जाए तो उनकी समस्याएँ काफ़ी हद तक दूर हो सकती हैं।

राजनीतिक स्तर पर शासन के सदस्य होने के नाते हमारी पहली और सबसे महत्त्वपूर्ण ज़िम्मेदारी है कि हम अपनी पार्टी के सदस्यों के बीच एकता और लगाव की भावना बनाये रखें, वे चाहे किसी पद पर हों अथवा न हों। इस बारे में मैं अपने विचार आपके सामने रखना चाहता हूँ। जैसा कि मैं पहले कई बार कह चुका हूँ कि मध्यप्रदेश में काँग्रेस पार्टी के किसी भी सदस्य के प्रति मेरी कोई दुर्भावना, पूर्वाग्रह या शिकायत नहीं है।

एक साथी कार्यकर्त्ता के रूप में मेरा यह प्रयास रहा है और हमेशा रहेगा कि हमारी नेता और हमारे दल को जो जनादेश लोगों ने उदारतापूर्वक दिया है, उसे पूरा करने में जो भी सहयोग आवश्यक हो वह मैं उन्हें दूँ और वह मुझे मिले। यदि इस संबंध में मैंने कोई ग़लती की हो तो मुझे उसे स्वीकार करने, अपने तरीक़े में सुधार करने और यदि ज़रूरत हुई तो पार्टी के किसी भी कार्यकर्त्ता से क्षमा माँगने में कोई हिचक नहीं होगी। लेकिन आप यह भी मानेंगे कि मैं अकेले दम पर यह पूरा भार नहीं ढो सकता जब तक इसमें भागीदार सभी लोग हाथ न बँटाये। मेरा यह आत्मीय आग्रह है कि ज़िलों में जहाँ आपकी मुख्य राजनीतिक गतिविधियाँ हैं, आप मतभेद के छोटे या बड़े मुद्दों को दूर करने का ऐसा प्रयास करें कि एकता और परस्पर समझ पूरी तरह बनी रहे क्योंकि यह आज की सबसे बड़ी ज़रूरत है। मेरे मन में ज़रा भी शक नहीं है वरन पूरा विश्वास है कि मध्यप्रदेश में किसी भी चुनाव में अथवा किसी अन्य मौक़ों पर भारतीय जनता पार्टी अथवा किसी अन्य पार्टी की चुनौती का किसी भी समय निर्णायक रूप से सामना करने में काँग्रेस पार्टी पूरी तरह सक्षम है। राष्ट्र के व्यापक संदर्भ में अपने नेता और अपनी पार्टी के प्रति हमारी यह सामूहिक ज़िम्मेदारी है कि हम मध्यप्रदेश में अपने उद्देश्य और पहल की इस एकता को बनाये रखें।

मुझे विश्वास है कि हम प्रत्येक स्तर पर अपनी गतिविधियों को इस तरह चलायेंगे कि प्रदेश के लोगों के प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है उनका हम पूरी निष्ठा से निर्वाह कर सकें।

अर्जुनसिंह
मुख्यमंत्री

जनवरी 1984 में लिखा गया पत्र।

जनप्रतिनिधियों के नाम पत्र

प्रिय बन्धु,

मैं बड़े भारी मन से आपको यह चिट्ठी लिख रहा हूँ। सहसा विश्वास नहीं होता कि हमारी आदरणीया श्रीमती इंदिरा गाँधी हमारे बीच नहीं हैं। देश की नेता को कुछ सिरफिरे नृशंस हत्यारों ने हमसे छीन लिया है लेकिन क्या वे सचमुच हमारे बीच से उठ गयी है? नहीं, क्योंकि हममें से हरेक में, हर भारतीय में उनका अंश आज भी मौज़ूद है।

हम सब अपने देश से प्यार करते हैं। हम सब चाहते हैं कि वह सदा-सर्वदा के लिए अखण्ड बना रहे, शक्तिशाली हो और दुनिया में उसका नाम रोशन हो।

अपनी आख़िरी साँस तक इंदिराजी इसी कोशिश में लगी रहीं। उन्होंने अपना सर्वस्व देश के लिए न्यौछावर किया और इसे वह गरिमा दी जिस पर हर देशवासी को नाज़ है। उनकी विराट आत्मा अब देश के 70 करोड़ लोगों में समा गयी है। वह अमर है। दुनिया की कोई ताक़त उसे मिटा नहीं सकती।

यह संतोष की बात है कि हम पर जो गाज़ गिरी वह हमें मिटा नहीं पायी। कुछ समय के लिए हम अचेत अवश्य हुए लेकिन हमारी चेतना लौट आयी है। हमें यह समझना है कि हत्यारों के निर्दयी हाथ केवल इंदिराजी पर नहीं उठे, वे सारे देश की एकता, अखण्डता, सर्वधर्म समभाव और भाई-चारे पर उठे हैं।

उनका वार अब भी खाली जायेगा यदि हम उन मूल्यों को बनाये रखें जिनके लिए इंदिराजी ने अपना जीवन होम दिया, जिनकी रक्षा में वे आखिरी साँस तक लगी रहीं।

हमारा देश बड़ा है। ग़रीबों के बलिदान की मज़बूत नींव पर खड़े हमारे देश ने सारी दुनिया के परतंत्र देशों को आज़ादी के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी है और उन्हें रास्ता दिखाया है। ऐसी अनेक शक्तियाँ अपनी आज़ादी को सार्थक बनाने के लिये इंदिराजी की अगुवाई में गुटबाजी से दूर, आपसी सहयोग कर, शांति से पुनर्निर्माण में जुटी हुई है।

दु:ख की बात यह है कि हमारी यह अगुवाई कुछ लोगों को फूटी आँखों नहीं सुहाती। वे चाहते हैं कि हम बिखर जायें, कमज़ोर हों और लाचार होकर उनके खेमें में चले जायें। वे लगातार एक के बाद एक फ़रेब करते रहे हैं और अपनी दाल न गलते देख आख़िर में इंदिराजी पर वार किया है।

हमें उनके नापाक मंसूबों को विफल करना है हम यह तभी कर सकते हैं जब हम इंदिराजी के बताये रास्ते पर चलें। हम हमेशा एक रहे हैं और एक ही रहेंगे। धर्म, जाति, प्रान्त या फिरके हमें बाँट नहीं सकते। वे तो हमारी रंगारंग बनावट के अंग है जो भारतीयता की पहचान है। हमारा देश रंग-बिरंगे फूलों का बाग है और यही उसकी सुन्दरता है।

भारत की धरती पर जन्मा हर आदमी भारतीय है फिर चाहे वह कहीं रहता हो, उसका चाहे जो धर्म हो, वह चाहे जो भाषा या बोली बोलता हो, उसका लिबास, खान-पान चाहे जैसा हो, वह उसी माँ का बेटा है जिसकी औलाद

हम सब है। फिर भाई-भाई या भाई-बहिन में भेद कैसा? क्या हम अपने ही दूध को लजायेंगे?

इंदिराजी ने कहा था, ज़रूरी नहीं कि विदेशी खतरा हमेशा सैनिक हमले के रूप में ही हो। कई दूसरे तरीक़े भी हैं जिससे देश में अस्थिरता पैदा की जाती है और राष्ट्रीय ढाँचे को कमज़ोर बनाया जाता है। विदेशी तत्व हमारे देश में फूट डालने वाले आंदोलनों को भड़काते और उन तत्वों को प्रोत्साहन देने में दिलचस्पी लेते दिखायी देते हैं, जो हिंसक कार्रवाईयाँ करते हैं। हमें ऐसे तत्वों से सावधान रहना है और साम्प्रदायिक शक्तियों से भी जो किसी भी धर्म, भाषा या क्षेत्र के नाम पर वैमनस्य फैलाती है।

ऐसे दबे पाँव आक्रमण का हमें हर शहर, हर गाँव, हर घर में सामना करना होगा और पूरी ताक़त से उसका संगठित प्रतिरोध करना होगा। हम ऐसा तभी कर सकते हैं जब हम अपने शोक और आवेश पर काबू पाये और जितनी जल्दी हो सके अपने-अपने काम में मन लगायें। चाहे हम खेतों में काम करते हों, या कारख़ानों में या दफ़्तरों में, चाहे हम गाड़ी चलाते हों, माल ढोते हों, या स्कूल-कॉलेजों में पढ़ते हों, हमें अपने काम पर लौटना है और पहले से ज़्यादा मुस्तैदी से उसमें जुटना है।

जिन्होंने इंदिराजी पर गोलियाँ दागी उनका उद्देश्य महज़ एक व्यक्ति की हत्या का नहीं था। उनका उद्देश्य है कि देश बँट जाये, यहाँ की खेती में फसलें न लहरायें, कल-कारख़ाने बंद हो जायें, सामाजिक न्याय और शोषणविहीन समाज रचने का हमारा अभियान धीमा हो जाये। हम पहले से अधिक उत्पादन कर, पहले से अधिक तेज़ी से श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा चलाये कार्यक्रम पर अमल कर, इन प्रतिक्रियावादी ताक़तों को अब भी पूरी तरह से मात दे सकते हैं।

यह हमारा सौभाग्य है कि देश की अगुवाई करने का भार हमारे युवा नेता श्री राजीव गाँधी के सशक्त कंधों पर आया है जिन मूल्यों की रक्षा करते हुए इंदिराजी ने अपने प्राण होम दिये, वे श्री राजीव गाँधी को विरासत में मिले है।

प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने अपनी नीतियों की घोषणा करते हुए राष्ट्र को अपने पहले संदेश में कहा है "भारत की एकता और अखण्डता से बढ़कर कुछ नहीं, फ़िरक़ापरस्ती का जवाब फ़िरक़ापरस्ती नहीं है। भारत एक है, हम सबका है। हमारा आज का निर्माण हमारा कल बनेगा।.... (हम) प्रगति के रास्ते की रुकावटों का मिलकर मुक़ाबला करेंगे। एक मजबूत प्रतिभा सम्पन्न और महान भारत मिलकर बनायेंगे।"

आइये हम सब मिलकर प्रधानमंत्री के हाथ मज़बूत करें। जनता के प्रतिनिधि होने के नाते हम सब पर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है कि हम लोगों का मनोबल बनाये रखें और सांप्रदायिक तथा प्रतिक्रियावादी ताक़तों के ख़िलाफ़ व्यापक जनसंघर्ष का नेतृत्व करें।

आपका

अर्जुनसिंह

मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

जनप्रतिनिधियों को नवंबर 1984 में लिखा गया पत्र।

शासकीय कर्मचारियों के नाम पत्र

आज यह पत्र मैं आपको एक जनसेवी सहयोगी की हैसियत से लिख रहा हूँ। कई दफ़े यह विचार हुआ कि किसी माध्यम से इस विशाल प्रदेश के कोने-कोने में कार्यरत जनता के सेवकों से सीधा संवाद हो लेकिन व्यावहारिक कठिनाइयाँ सदैव बाधक रहीं। मैंने फिर यही उचित समझा कि आप में से प्रत्येक को मैं इस पत्र द्वारा ही अपनी बात कहने की कोशिश करूँ हम और आप दोनों इस प्रदेश के करोड़ों नागरिकों के सेवक ही हैं और मूलत: इसी संदर्भ में आपसे नि:संकोच कुछ कहना चाहता हूँ।

हमारा प्रदेश आकार में भारत का सबसे बड़ा प्रदेश है और प्रकृति ने विकास की हर संभावनाओं को साकार बनाने के लिये साधन भी भरपूर दिये है। आज़ादी के पिछले पैंतीस वर्षों में इन साधनों का उपयोग करके प्रदेश के विकास की कई मंज़िलें भी पूरी की गई हैं, जिसका श्रेय यहाँ के नागरिकों के साथ-साथ आप में से प्रत्येक को है। लेकिन हमें यह भी स्वीकार करना चाहिये कि बढ़ती हुई जन आकाँक्षाओं को पूरा करने के लिये एवं प्रदेश के पिछड़ेपन को दूर करने के लिये अभी हमें बहुत कुछ करना है। यह सब कैसे हो सकता है और इस कार्य में हमारी और आपकी क्या भूमिका है और होनी चाहिये। ये बहुत महत्त्वपूर्ण है। हमारे प्रदेश की दो-तिहाई जनसंख्या आदिवासी, हरिजन और पिछड़े वर्ग की है जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत कमज़ोर है लेकिन इस प्रदेश की प्रगति का सही आकलन इन्हीं लोगों की उन्नति से ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। प्रदेश के 90 प्रतिशत लोगों का जीवन खेती पर आधारित है। इसलिये किसान और खेतिहर मज़दूरों की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन लाकर ही हम समृद्धि की ओर बढ़ सकते हैं। मुझे विश्वास है कि आप सब इन वस्तुस्थितियों से पूर्णतया भिज्ञ हैं।

इस सन्दर्भ में हम सबसे इस प्रदेश के करोड़ों नागरिक क्या अपेक्षाएँ रखते हैं और उनको पूरा करने के लिये हमें क्या करना है यह गंभीरता से विचार करने और निष्ठा से निर्णय करने का विषय है जिसे हम टाल नहीं सकते। कुछ तथ्य भी ऐसे हैं जो हमें निष्ठा से कर्त्तव्य पालन के लिये विवश करते हैं।

प्रदेश में कुल शासकीय सेवक (जिन्हें मैं जनसेवक कहना ज़्यादा उपयुक्त समझता हूँ) की संख्या आज 5.91 लाख है। प्रदेश की जनसंख्या 1981 की जनगणना के अनुसार 5.21 करोड़ है, अर्थात् जनसंख्या के अनुपात में जनसेवकों की संख्या 1.13 प्रतिशत है। आज नये वेतनमानों के आधार पर किसी भी जनसेवक का न्यूनतम वार्षिक वेतन 4560 रुपये से कम नहीं है जबकि आज प्रदेश के आम नागरिक की औसत वार्षिक आय 1217 रुपये है। हमारे प्रदेश का आज (1983-84) सम्पूर्ण वार्षिक बजट 2330 करोड़ रुपये है। इसमें से प्रति जनसेवक पर 9880 और प्रति नागरिक पर, जिनके हम सेवक है, 335.20 रुपये व्यय होते हैं। 1983-84 में केवल महँगाई भत्ते के रूप में अभी तक 34.50 करोड़ रुपये दिये जा चुके हैं जबकि आम नागरिक जिनके ऊपर महँगाई का प्रभाव कहीं ज़्यादा पड़ता है, उनको इससे राहत देने के लिये प्रत्यक्ष रूप से हम एक रुपया भी नहीं दे पाते हैं जनहित से सीधा संबंधित सिंचाई विभाग, लोक निर्माण विभाग, लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग और स्वास्थ्य विभाग का 1983-84 का वार्षिक बजट क्रमश: 203 करोड़

रुपये, 115 करोड़ रुपये, 82 करोड़ रुपये और 93 करोड़ रुपये है जबकि नागरिकों को मिलने वाली सीधी सेवाओं और शुद्ध निर्माण कार्यों पर क्रमशः 179 करोड़ रुपये, 103 करोड़ रुपये, 63 करोड़ रुपये तथा 57 करोड़ रुपये ही व्यय होंगे, शेष वेतन इत्यादि पर व्यय होगा।

ये आँकड़े मैं अपनी ओर से बनाकर नहीं दे रहा हूँ और न ही मेरा उद्देश्य किसी की आलोचना करना या और कोई कार्यवाही तत्काल करने का है, लेकिन यह भी संभव नहीं कि हम वस्तुस्थिति से नागरिकों को अनभिज्ञ रखें प्रजातंत्र में जनमत ही प्रशासन का मूल आधार है और जनमत के निर्माण के लिये वस्तुस्थिति से भिज्ञता भी अनिवार्य है। उपरोक्त तथ्यों के संदर्भ में जब यदाकदा यह नारे लगते हैं कि 'हमारी माँगे पूरी हों चाहे जो मजबूरी हो' तो यदि विवेकशील नागरिक यह सोचने के लिये विवश हो कि किसकी माँगे हैं और किसकी मजबूरी है, तो किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिये। हाँ यह ज़रूर है कि हम और आप संगठित है और समाचार साधनों तक पहुँचने में ज़्यादा सक्षम हैं जिसकी वजह से हमारी बातें प्रमुख रूप से सामने आती है एक खोखले जनमत का रूप ग्रहण करके निर्णय की पृष्ठभूमि बनाती हैं और निर्णय लिये भी जाते हैं। पर, आप विचार करें कि यदि शुद्ध बहुमत के हितों के संरक्षण के लिये कोई जनमत निर्माण हो सके तो उपरोक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि में वह कैसा होगा, हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। क्या एक सेवक के नाते हमारा और आपका यह दायित्व नहीं है कि ऐसी स्थिति का हम निर्माण ही न होने दें और धैर्य व आस्था की उन सीमाओं को टूटने से बचायें जो अभी तक अनेक विषमताओं से घिरे इस प्रदेश के नागरिकों को प्रगति की ओर ले जाने में सहायक रही है।

संविधान, क़ानून और अनेक प्रक्रियाओं ने हमारे और आपके हाथों में अनेक अधिकार दिये हैं और उनके उपयोग के लिये अवसर भी इंगित किये हैं। यही नहीं इन अधिकारों के प्रयोग के समय हम निश्चिंत रहें, दबाव में न आयें, अनुचित रूप से प्रभावित न हों, इसके लिये विशेषाधिकार भी दिये गये हैं और काफ़ी हद तक संरक्षण भी प्रदान किया गया है। इस स्थिति में आम नागरिक का यह जानना और स्पष्ट अपेक्षा करना स्वाभाविक है कि ये अधिकार कैसे और किसके हित में उपयोग किये गये हैं। जनतंत्र में शासित और शासक के परस्पर संबंधों व स्थितियों में केवल औपचारिक भेद है। वस्तुतः दोनों एक-दूसरे के पोषक हैं जो परस्पर सहयोग और सद्भावना से समाज का निर्माण व नियंत्रण दोनों करते हैं। इस व्यापक संदर्भ में जब सुदूर अंचलों में निवास करने वाला किसान अपने अधिकारों का संरक्षण नहीं पाता और पटवारी या राजस्व विभाग के किसी अधिकारी की स्वेच्छाचारिता का शिखार हो जाता है, या वनों में और उस पर आधारित रहने वाला ग़रीब आदिवासी वन विभाग के कर्मचारियों से अपनी समस्याओं के समाधान के लिये सहानुभूति की बजाय उपेक्षा या अत्याचार का व्यवहार पाता है जबकि उसकी आँखों के सामने वही अधिकारी वनों की अवैध कटाई जैसे राष्ट्रघाती कार्य में सम्पन्न लोगों की सहायता करते हैं, या जब ग्राम का भूमिहीन हरिजन भूमि पाने के बाद भी बड़े भूमिपतियों के प्रशासन तंत्र पर प्रभाव की वजह से भूमिहीन ही बना रहता है तब एक कुंठा और क्रोध का वातावरण निर्मित होता है जिसकी वजह से परस्पर सहयोग और सद्भावना के विचार छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और उसका स्थान संदेह व दुर्भावना ले लेते हैं। यदि इस सबके साथ-साथ भ्रष्टाचार का बोझ भी इन निरीह कंधों पर लाद दिया जाता है तब क्या मनःस्थिति बनती होगी, कल्पना के परे है। प्रत्यक्ष में कुछ दिखे या न दिखे लेकिन ऐसी भावना व वातावरण अंततः देश में प्रजातंत्र की जड़ों को कमज़ोर ही करती है जिसके माध्यम से हमारे और आपके अधिकार प्रदत्त होते हैं और जिसको अक्षुण्ण बनाये रखने का सामूहिक संकल्प हम सबने किया है चाहे कुछ भी हो भारत में प्रजातंत्र के लिये उत्पन्न ख़तरे का सामना करने के लिये हम कुछ भी उठा नहीं रख सकते।

पत्र के माध्यम से यही भावनाएँ आप तक पहुँचाना चाहता था क्योंकि जैसा मैंने पूर्व में ही कहा है, हमारी

और आपकी सार्थकता या यों कहिए कि अस्तित्व का औचित्य ही इस बात पर निर्भर करता है कि इस प्रदेश के नागरिक हमें अपने सच्चे सेवक के रूप में स्वीकार करें और राष्ट्रीय उत्थान की जो महान योजनाएँ देश की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने चलाई है उन्हें मूर्तरूप देने में हम सर्वहारा वर्ग के सहायक और सहयोगी की भूमिका ईमानदारी से निभा सकें। संत तुलसीदास ने कहा था - 'सब से सेवक धर्म कठोरा'। मैं तो इसे अपना सौभाग्य मानता हूँ कि भारत के नवनिर्माण के महान प्रयासों में हम सबको भी अपनी सीमित शक्ति व बुद्धि के सहारे योगदान करने का अवसर प्राप्त हुआ है। हम में से जो जहाँ है वहीं जिसकी भी सेवा कर सकता है करने का संकल्प लेना है और करना है, यही एक मात्र उद्देश्य हो सकता है। जब इस भावना से हम अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे तो जनहित के पोषण में कोई भी कार्य हमें छोटा नहीं दिखेगा और इस प्रयास में कोई भी त्याग बड़ा है, वह आभास भी नहीं होगा और सेवक का कठोर धर्म हमारे जीवन का एक अंग बनकर हमें इस प्रदेश के नागरिकों की सेवा उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप करने के लिये सक्षम बनायेगा।

अर्जुनसिंह

मुख्यमंत्री

प्रदेश के शासकीय कर्मचारियों के नाम पत्र, फरवरी 1984 ।

किसानों के नाम चिट्ठी

प्रिय बन्धु,

आपको विदित ही होगा कि प्रदेश शासन ने हाल ही में 56 लाख कृषि खातेदारों को तक़ावी और अल्पावधि सहकारी ऋणों में लगभग 66 करोड़ 60 लाख रुपये की राहत देने का निर्णय लिया है। शासन का यह निर्णय राष्ट्रनायक पं. जवाहरलाल नेहरू के किसानों को शोषण से मुक्ति दिलाने, उन्हें अपनी भूमि का मालिक बनाने और अपनी मेहनत का फ़ायदा दिलाने के अधिकार की भावना तथा आदरणीया प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के, किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य दिलाने और उन्हें आधुनिक कृषि के लिये साधन उपलब्ध कराने की नीति को ध्यान में रखकर लिया गया है।

छत्तीसगढ़, महाकोशल, मालवा तथा विन्ध्य अंचल के किसान भाइयों ने कृषि उत्पादन बढ़ाने में कोई कसर नहीं उठा रखी है और इन्हीं प्रयासों का यह फल है कि प्रदेश में इस वर्ष सबसे ज़्यादा खाद्यान्न का उत्पादन हुआ है। किन्तु कभी-कभी प्राकृतिक प्रकोप उनके इन प्रयासों से तुषारापात कर उन्हें असहाय बना देता है। उनकी इस कठिनाई को दूर करना और उन्हें नया उत्साह देना हम सबका फ़र्ज़ है और शासन का यह निर्णय इसी पृष्ठभूमि में लिया गया है :—

(1) प्रदेश में कुल 56 लाख खातेदार हैं। इनमें से 42 लाख खातेदारों के पास 10 एकड़ या उससे कम ज़मीन है। 30 मार्च, 1974 को इनके ऊपर क़रीब 37.75 करोड़ रुपये की राशि तक़ाबी की बक़ाया थी। यह पूरी राशि माफ़ की जा रही है।

(2) दस एकड़ से ऊपर के शेष 14 लाख खातेदारों पर 30 मार्च 1974 को 11.00 करोड़ रुपये की तक़ाबी बक़ाया थी। इस राशि का 50 प्रतिशत और पूरे ब्याज की राशि माफ़ कर दी जायेगी। इससे उन्हें 8.45 करोड़ रुपये की राहत मिलेगी।

(3) इसी तरह प्रदेश के 56 लाख खातेदारों में से जिसने भी 1 अप्रैल 74 से 31 मार्च 82 तक तक़ाबी ली है और अगर 31 मार्च 85 तक वे मूल ऋण राशि 50 प्रतिशत और उस पर साधारण ब्याज जमा कर देते हैं, तो ऋण राशि का 50 प्रतिशत माफ़ कर दिया जायेगा। जो कि लगभग 12 करोड़ रुपये होगी।

(4) इसी सिलसिले में शासन ने यह भी निर्णय लिया है कि सहकारी समितियों के 10 एकड़ तक के खातेदार सदस्यों पर 30 जनवरी 1974 को जो 8 करोड़ रुपये की राशि बक़ाया थी उसे शासन द्वारा समितियों को किसानों की ओर से भुगतान किया जायेगा।

(5) सहकारी समितियों द्वारा दिए गए फ़र्जी ऋण प्रकरणों की पिछले चार वर्षों में गहनता से जाँच की गई है। 21 ज़िलों में जाँच का कार्य पूर्ण हो गया है। यह निर्णय लिया गया है कि जाँच में पाए गए 22.91 लाख रुपये के फ़र्जी ऋण से मुक्त करने के लिए यह राशि शासन द्वारा भर दी जाए शेष 24 ज़िलों में भी जाँच का कार्य 30

सितम्बर, 84 तक पूरा कर लिया जाएगा और 2 अक्टूबर तक इन ज़िलों में भी फ़र्जी ऋण के बक़ायादारों को मुक्त कर दिया जायेगा। इस निर्णय से मूलतः ग़रीब आदिवासी व हरिजन कृषकों को राहत मिलेगी।

आपको यह पत्र लिखने का मेरा मक़सद यह है कि ऋण मुक्ति का यह एक ऐसा व्यापक कार्यक्रम है जिसकी सही परिप्रेक्ष्य में जानकारी किसानों तक पहुँचे। जो वास्तविक क़र्ज़दार हैं, उनके नाम ऋण मुक्ति के लिए पटवारी हलक़ा और तहसीलदार सूचियों में जाएँ। यह तभी संभव है जबकि आप अपने क्षेत्र के किसानों से सघन संपर्क कर शासन के इस कल्याणकारी कार्यक्रम की जानकारी उन तक पहुँचाएँ।

इसके साथ ही संबंधित राजस्व अधिकारियों से संपर्क रख सूची के बारे में समय-समय पर जानकारी भी लेते रहे। आप यह भी देखें की जिनका क़र्ज़ माफ़ किया गया है या अन्य प्रकार की छूट दी गई है, उन्हें इस विषय में कोई परेशान न करे।

किसानों को ऋण मुक्ति के इस कार्यक्रम का उद्देश्य उन्हें इस बात के लिये फिर से सक्षम बनाना है कि वे अपनी खेती बाड़ी के लिये दूने उत्साह से कार्य करें और अपनी ज़रूरत के अनुसार शासन, सहकारी समितियों और बैंकों से खेती की उन्नति के लिये क़र्ज़ा लेकर कृषि उत्पादन को और भी बढ़ा सकें।

ऋण मुक्ति के प्रमाण-पत्र राष्ट्रनायक पं. जवाहरलाल नेहरू के पुण्य जन्मदिवस 14 नवम्बर 1984 तक सभी संबंधित कृषक भाइयों को वितरित करने का हमने निर्णय लिया है। इस कार्य को एक अभियान के रूप में दिनांक 30 सितम्बर, 1984 से प्रारंभ किया जावेगा। मुझे आशा है कि इस कार्य में आपकी सक्रिय भूमिका से प्रदेश के लाखों किसान भाइयों को राहत पहुँचाने में हम सफल होंगे।

2 जुलाई'84

अर्जुनसिंह
मुख्यमंत्री

प्रति,
संसद सदस्य,
विधायकगण,
सहकारी समितियों के अध्यक्ष,
जनपदअध्यक्ष,
सरपंच

सिर्फ़ चाहने भर से उद्देश्य पूरा नहीं होता

(काँग्रेस अध्यक्ष के राजनैतिक सचिव को लिखा गया पत्र)

मुझे उम्मीद है कि आपको याद होगा कि 21 जुलाई, 1992 की शाम को काँग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक में मैंने और अन्य कई सदस्यों ने विशेषत: उत्तरभारत में भाजपा की अगुवाई में सांप्रदायिक शक्तियों द्वारा दी जा रही चुनौतियों का सामना करने के लिए पार्टी को तैयार करने का मुद्दा उठाया था। इस पर भी ज़ोर दिया गया था कि विपक्ष द्वारा शासित राज्यों में काँग्रेसजनों को परेशान और प्रताड़ित किया जा रहा है लेकिन उनके सामने, निजी या सामूहिक मुद्दों पर सरकारों के विरुद्ध संघर्ष की परिस्थिति में, कार्रवाई की कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं है। काँग्रेस अध्यक्ष ने इस बात से सहमत होते हुए और कुछ करने के लिए आपको और अन्य महासचिवों को इस बारे में कार्रवाई की एक योजना बनाने का निर्देश दिया था। उसी समय पर मैंने यह सुझाव भी दिया था कि अधिक व्यावहारिक कार्ययोजना तभी बनाई जा सकती है जबकि प्रदेश काँग्रेस समितियों के अध्यक्ष, काँग्रेस विधायक दलों के नेता और इन प्रदेशों के कुछ वरिष्ठ काँग्रेस नेता मिल बैठकर विचार करें। काँग्रेस अध्यक्ष भी इससे सहमत थे। लगभग एक सप्ताह पहले मैंने फोन पर आप से इस बारे में पूछा था और आपने बताया था कि आप इस मामले में कुछ पहल कर रहे हैं। मैंने अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के दफ़्तर से भी जानने की कोशिश की कि इस सिलसिले में क्या ठोस क़दम उठाये जा रहे हैं। मुझे कोई निश्चित उत्तर नहीं मिल सका। मेरी विनम्र राय में इस कार्ययोजना को फ़ौरन तैयार किया जाना चाहिए ताकि उत्तर भारत में तथा विपक्ष शासित राज्यों के काँग्रेसजन को स्पष्ट दिशा निर्देश दिया जा सकें जिससे वे अपना कर्त्तव्य निभा सकें। चूँकि समय का बहुत महत्त्व है, मैं यह पत्र आपको इस आशा से लिख रहा हूँ कि जल्दी ही ऐसे क़दम उठाये जायें जिनसे काँग्रेस अध्यक्ष के निर्देशों का पालन हो सके।

आपने देखा होगा कि 9 जुलाई, 1992 के बाद से, जब भाजपा गठबंधन ने अचानक अयोध्या में बाबरी मस्ज़िद के चारों ओर समूचे देश में उत्तेजना बढ़ाते हुए निर्माण कार्य शुरू कर दिया तो काँग्रेसजन यह तय नहीं कर पाये कि इस परिस्थिति में उनकी क्या प्रतिक्रिया हो। यह काँग्रेसजनों के विवेक पर छोड़ दिया गया कि वे स्वेच्छा से टिप्पणी और कार्य करें। इसका यह परिणाम हुआ कि यह धारणा बनी कि काँग्रेस पार्टी की कोई निश्चित और सुसंगत प्रतिक्रिया ही नहीं है। आप मुझसे सहमत होंगे कि काँग्रेस वर्किंग कमेटी में काँग्रेस अध्यक्ष ने जो चिंता प्रकट की वह अत्यंत सामयिक थी।

तब से घटना चक्र बहुत तेज़ी से चला है और देश में गंभीर सांप्रदायिक संकेतों से भरा एक संकट तीव्रतर होते देखा है जो एक ऐसे दल की कारस्तानी है जिसे हमारी राज्य व्यवस्था के अडिग, समयोचित और कल्पनाशील पहल ने तनाव कम किया और इस उलझी समस्या के सद्भावपूर्ण समाधान के लिए आपसी बातचीत या क़ानूनी फ़ैसले द्वारा मार्ग प्रशस्त किया है। जहाँ हमें एक ओर वह सब कुछ करना है जिसमें प्रधानमंत्री की यह पहल मज़बूत हो,

वहीं दूसरी ओर हम कॉंग्रेस पार्टी के सदस्यों के रूप में अपना कर्तव्य पूरा करने में असफल होंगे, यदि यह समझने और प्रगट करने में विलम्ब करेंगे कि भारतीय जनता पार्टी किस प्रकार असत्य और घातक आधारों का सहारा लेकर बेरहमी से राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए प्रयास कर रही है। भले ही देश के लिए इस असंगत प्रयास के कोई परिणाम क्यों न निकलें।

1991 के मध्य में आम चुनावों के दौरान श्री राजीव गाँधी की हत्या के बाद घटनाक्रम पर एक नज़र डालना प्रासंगिक होगा। आतंकवादी, संकीर्णतावादी और सांप्रदायिक शक्तियों द्वारा हमारे देश को अस्थिर करने की यह सबसे ताज़ा कोशिश थी। शायद उन्होंने सोचा था कि यह भयानक घटना कॉंग्रेस पार्टी को भौंचक्का कर देगी और उसके परिणामस्वरूप जो भ्रम का वातावरण बनेगा उसमें वह अपना हित साध सकेंगे। वस्तुत: जैसा कि इस देश का इतिहास ही रहा है, ऐसी हर घटना ने, कॉंग्रेस को किंकर्तव्यविमूढ़ करने के बजाय उसे देश को उत्प्रेरित करने का अवसर दिया है कि वह अपने इच्छित आदर्शों और सिद्धांतों की रक्षा कर सके। श्री नरसिंहराव के नेतृत्व में कॉंग्रेस पार्टी एक बार फिर अवसर के अनुकूल एक ऐसी कॉंग्रेस सरकार बनाने में सफल हुई जो राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और सामंजस्य के उन सूत्रों को निर्भीकतापूर्वक फिर संजो सके, जो श्री राजीव गाँधी ने छोड़े थे। इस दु:खद घटना के बाद विपक्ष के नेता के रूप में श्री लालकृष्ण आडवाणी ने अपनी भावना को किस तरह व्यक्त किया था, यह हमें एक पल के लिए भी नहीं भूलना चाहिए। उन्होंने कहा था कि अब कॉंग्रेस विरोध विपक्ष की क्रिया-प्रतिक्रिया को शामिल नहीं करेगी, क्योंकि राष्ट्र के विकास के लिए कॉंग्रेस पार्टी ने जो नेहरू मॉडल अपनाया था उसे स्वयं कॉंग्रेस ने त्याग दिया है। सिर्फ़ भोले लोग ही इस वक्तव्य के अनर्थकारी तर्क को अनदेखा कर सकते हैं।

इसके बाद हमने देखा कि कैसे भाजपा ने एक महीन सा अभियान ख़ुद ही शुरू किया कि कॉंग्रेस अब उससे सहयोग लेने में संकोची नहीं है। और दरअसल उन्होंने यह प्रसारित करने की कोशिश की कि वे हमारे सबसे अच्छे मित्र हैं। यह और बात है कि यह राजनीतिक वितण्डा पूरी तरह से चल नहीं पाया। हालाँकि वे पार्टी के अंदर कुछ भ्रम फैलाने और देश के लोगों में कुछ संदेह उपजाने में कामयाब हुए। फिर भी उन्होंने एक भी ऐसा मौक़ा नहीं चूका जबकि जहाँ वे चाहते हों चोट पहुँचाने के लिए उन्होंने वार न किया हो। वे अगर सफल नहीं हुए तो श्री नरसिंहरावजी की सतर्कता और संसद के कॉंग्रेस सदस्यों और अन्य कॉंग्रेसजन के दृढ़ निश्चय के कारण। चूँकि यह हाल का ही इतिहास है, मुझे ब्यौरों में जाने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन मैं इस पर बल देना चाहूँगा कि भाजपा के नेतृत्व में सांप्रदायिक शक्तियों की इस देश में भूमिका के बारे में किसी प्रकार की अस्पष्टता में कितने ख़तरे निहित है। इसका कॉंग्रेस पार्टी को पूरा अहसास हो गया।

अपने 107 वर्षों के घटनापूर्ण इतिहास में कॉंग्रेस जिन बातों के लिए खड़ी रही है वह सब ख़तरे में पड़ जाएगी, अगर हमने देश के कल्याण की उपेक्षा की। इसी पृष्ठभूमि में 16 अप्रैल 1992 को राजीव गाँधी नगर, तिरुपति में संपन्न कॉंग्रेस पार्टी के पूर्ण अधिवेशन में राजनैतिक प्रस्ताव पर विचार कर उसका अनुमोदन किया गया था।

मैं उस ऐतिहासिक प्रस्ताव के दो पैराग्राफ़ उद्धृत करना चाहूँगा जो कि देश की राजनैतिक परिस्थिति और पार्टी की दिशा को उचित परिप्रेक्ष्य में रखते हैं। भारतीय जनता पार्टी उस सांप्रदायिक राजनीतिक कार्यक्रम का नवीनतम अवतार है जिसका सूत्रपात 1925 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की अगुवाई में किया गया था। इस आंदोलन द्वारा फैलाये ज़हर ने भारत के इतिहास में सबसे मूल्यवान हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की जान ले ली। पहले आम चुनावों से ही ऐसे सांप्रदायिक तत्त्वों द्वारा समर्थित राजनैतिक तत्त्वों ने सत्ता हथियाने की कोशिश की है और वह सिर्फ़ भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस ही है जिसने भारतीय जनसंघ जैसी सांप्रदायिक पार्टियों का डटकर मुक़ाबला किया है। भारतीय जनसंघ पार्टी

का जन्म पहले आम चुनाव के ठीक पहले हुआ था और भारतीय जनता पार्टी इसी की साख से 1977 में पैदा हुई। इसी प्रस्ताव के एक दूसरे हिस्से में यह फिर दोहराया गया है कि भारतीय काँग्रेस सांप्रदायिकता के हर रूप से लड़ने को वचनबद्ध है चाहे यह दानव कहीं भी सर उठाए। 1952 में ही आम चुनावों के बाद जनता को धन्यवाद देते हुए अखिल भारतीय काँग्रेस समिति के कलकत्ता अधिवेशन में 22-23 मई को यह बात कही गई थी। यह नहीं समझना चाहिए कि सांप्रदायिक प्रवृत्तियों का ख़तरा समाप्त हो चुका है। सांप्रदायिक, अलगाववादी प्रवृत्तियाँ अभी वहीं हैं अनेक रूपों में और हमें इनसे लड़ने के लिए सतर्क रहना पड़ेगा। चाहे यह कहीं से प्रकट हों। हिन्दू, मुस्लिम, सिख या किसी अन्य संप्रदाय से। इसी बात पर ज़ोर दिया था, चूँकि इस विषय पर कुछ ग़लतफ़हमियाँ पैदा हुई हैं। अखिल भारतीय काँग्रेस समिति यह घोषणा करती है कि काँग्रेस का किसी बुनियादी तौर पर सांप्रदायिक चरित्र या कार्यप्रणाली वाले किसी भी संगठन के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई भी गठबंधन, समझौता या सहकार नहीं होना चाहिए। भले ही इसका नामकरण कुछ भी क्यों न हो। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस इस घोषणा को दोहराती है और पुष्ट करती है। तिरूपति की यह घोषणाएँ और अपने अध्यक्षीय भाषण में काँग्रेस अध्यक्ष श्री नरसिंहराव द्वारा उनका भावपूर्ण विस्तार किसी भी काँग्रेसजन को और मैं चाहूँगा कि किसी भी भारतीय को, किसी संदेह में नहीं रखते कि हमारे गणतंत्र के सामने सच्चे ख़तरे क्या हैं। प्रस्ताव और अध्यक्ष का भाषण काँग्रेस के उस संकल्प को भी प्रकट करते हैं कि यह पार्टी उन धर्मनिरपेक्ष और प्रजातांत्रिक लक्ष्यों की रक्षा के लिए, जिसके संवैधानिक आधार पर हमारा गणतंत्र स्थापित है, चल रहे संघर्ष में शामिल होने और गिने जाने के लिए तैयार है। दरअसल तिरुपति अधिवेशन ने इस देश के मामलों को, काँग्रेस क्या राजनैतिक दिशा देना चाहती है इस बारे में फैलाये जाने वाले भ्रम के अभियान को रोका है। इस अधिवेशन में भाजपा को आज के राजनैतिक परिदृश्य में राजनैतिक महत्त्व को भी हाशिए में ला खड़ा किया है, जिसका नतीजा यह है कि सभी प्रमुख मुद्दों पर वह अलग-थलग पड़ गई है। हो सकता है कि मैं ग़लत हूँ, पर मेरा यह दृढ़ मत है कि इस दुर्गति के कारण ही भाजपा ने अयोध्या में तनाव की लपटों को बढ़ाया ताकि वे भारतीय राजनैतिक दृश्य के रूप में केंद्र में फिर आ सके। अयोध्या में जो हुआ, उसके निहितार्थ और उसने जो प्रभाव पैदा किया, वे सभी इसी तर्क को सत्यापित करते हैं। मैंने यह सब विस्तार से बताने की ज़हमत इसलिए की है कि हम भाजपा की चुनौती को स्पष्ट समझ सकें और कल्पनाशीलता और स्पष्टता से ऐसी रणनीति बना सके कि एक राजनैतिक दल के रूप में हम सफलता से उसका सामना कर सके।

हाल ही में दिल्ली में हुई एक बैठक में जिसमें सभी राजनैतिक दलों के नेता शामिल थे। जो लोकसभा में बढ़ती हुई उत्तेजना को कम करने के लिए प्रयासरत थे, विपक्ष के नेता लालकृष्ण आडवाणी ने स्पष्ट रूप से कहा कि हम उनसे अयोध्या का मसला छोड़ने की कैसे उम्मीद कर सकते है जबकि यह प्रदर्शित हो चुका है कि उसी के कारण उनकी लोकसभा में 1985 की दो सीटें बढ़कर 1992 में 119 हो गई। इससे अधिक बेबाक़ आत्म स्वीकृति कोई और हो ही नहीं सकती कि भारत में बैलेट बॉक्स के माध्यम से सत्ता हथियाने के लिए भाजपा धार्मिक भावनाएँ भड़काना चाहती है जबकि चुनाव संबंधी क़ानूनों में इसकी सख़्त मनाही है। इसका सीधा मतलब यही है कि जो वे चाहते हैं उसे पाने में ग़ैर-संवैधानिक उपायों को अपनाने में उन्हें रत्ती भर हिचक नहीं है। इस इरादे की ताज़ातरीन अभिव्यक्ति तब हुई जब हाल ही में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अयोध्या में अधिग्रहीत भूमि पर निर्माण कार्य रोकने का जो आदेश दिया था उसका पालन करने में टालमटोल की गई। प्रधानमंत्रीजी द्वारा सौहार्द्रपूर्ण समाधान के लिए की गई पहल के बाद जब अयोध्या में निर्माण कार्य बंद हो गया तो भारतीय जनता पार्टी, विहिप और बजरंग दल ने परस्पर विरोधी

बयान अंतिम समाधान को मानने के बारे में दिये है। उनसे वे अड़चने स्पष्ट होती है जो समाधान के रास्ते में है। इसलिए यह स्पष्ट समझने की ज़रूरत है कि इस समय की मुद्रा के लिए भाजपा की जो भी विवशता हो, एक ऐसे मुद्दे के सहारे जो कि क़ानून प्रतिबंधित है सत्तारूढ़ होने की इच्छा पूरी तरह बरक़रार है।

भाजपा एक-दूसरे मोर्चे पर भी सक्रिय है। यह प्रयासरत है कि जिस तरीक़े का भी इस्तेमाल करना पड़े, काँग्रेस पार्टी व राष्ट्र के महान नेताओं पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इंदिरा गाँधी और राजीव गाँधी की छवि को नष्ट किया जाए। इरादा इसके पीछे उस गौरवपूर्ण अध्याय को धूमिल करना है जो भारत के इतिहास में इन महान नेताओं के प्रेरणास्पद नेतृत्व से जुड़ा है। दरअसल वे हमारे उत्तराधिकार को ही नष्ट करना चाहते हैं। कोई भी स्वाभिमानी काँग्रेसी ऐसा होने की इजाज़त नहीं देता। पर सिर्फ़ चाहने भर से उद्देश्य पूरा नहीं होता है। इस पर सोच विचार की ज़रूरत है और सुस्पष्ट मानसिकता से निष्ठापूर्वक प्रयास की ज़रूरत है। तभी हम इस निकृष्ट इरादे को सफल होने से रोक सकते हैं।

जिन राज्यों में विपक्षी दलों की सरकारें हैं वहाँ क्या परिस्थितियाँ हैं, इसकी विस्तार से समीक्षा करने की ज़रूरत है तभी हमें पता चल सकता है कि किस तरह की कठिनाइयों और अड़चनों के बीच काँग्रेसजन वहाँ काम कर रहे हैं। एक राजनैतिक दल के रूप में जहाँ हम सभी संवैधानिक मर्यादाओं का पालन करेंगे, वहीं हम अपनी पार्टी के लोगों की तक़लीफ़ों से मुँह नहीं फेर सकते और न मूक व निष्क्रिय दर्शक भी बने रह सकते। विशेषत: तब जब कि पार्टी के लोग उन लक्ष्यों और आदर्शों के लिए संघर्ष कर रहे हैं जो काँग्रेस पार्टी के हैं जिनका संबंध समाज के कमज़ोर वर्गों के हितों के संरक्षण में है।

इस संपूर्ण पृष्ठभूमि में काँग्रेस पार्टी को विशेषत: उत्तरभारत में जहाँ भाजपा का राजनैतिक आधार है, उन सभी मुद्दों को पहचानने, विश्लेषित करने और उनका राजनैतिक रूप से प्रतिकार करने के लिए प्रभावशाली उपाय खोजने पड़ेंगे। इस दायित्व से मुकरना इस महान संस्था के साथ घोर अन्याय होगा जिसका इतिहास इस देश के एक शताब्दी से ज़्यादा के इतिहास से गुँथा हुआ है।

मेरा आपसे अनुरोध है कि अगस्त 1992 के पहले हफ़्ते में एक बैठक बुलाएँ जिसमें सभी प्रादेशिक अध्यक्ष, काँग्रेस विधायी पार्टियों के नेतागण और उन प्रदेशों के प्रमुख काँग्रेसजन आमंत्रित हों, जहाँ भाजपा और अन्य विपक्षी दल सत्ता में हैं। इस बैठक के विचार-विमर्श से एक स्पष्ट समदृष्टि और सक्रिय रूपरेखा उभर सकती है।

हमारी स्वतंत्रता, हमारा गणतंत्र और हमारी प्रजातांत्रिक राज्य व्यवस्था उन असंख्य स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के कारण है जिन्होंने सभी भारतीयों के एक बेहतर भविष्य के वास्ते अपना वर्तमान होम दिया था। उन महान नेताओं में, जिन्होंने हमारे महान संघर्ष को नेतृत्व दिया था, गाँधीजी, पंडित जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, लोकमान्य तिलक, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, लालबहादुर शास्त्री और इंदिरा गाँधी शामिल है। उनमें से तीन गाँधीजी, श्रीमती इंदिरा गाँधी और राजीव गाँधी ने इस संघर्ष के माध्यम से, हमने जो उपलब्ध किया था, उसे बचाए रखने के लिए अंतिम बलिदान भी दिया है। व्यक्ति, समाज, दल और राष्ट्र के जीवन में एक ऐसा क्षण आता है जब नियति द्वारा निर्धारित कर्त्तव्य की पुकार तेज़ और स्पष्ट सुनाई देती है। स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने वालों को जिस आस्था और प्रतिबद्धता ने प्रेरित किया था वह किसी तात्कालिक लाभ से नहीं जुड़ी थी। बल्कि वह संघर्ष और बलिदान की भट्टी में ढली थी। कर्त्तव्य की वह पुकार भारतीयों को और विशेषत: काँग्रेसजन की इस पीढ़ी को फिर बुला रही है कि वे अपने मतभेद समाप्त कर हमारे इस नवजात गणतंत्र के सामने जो सांप्रदायिक, अंधविश्वास और विघटनकारी शक्तियाँ खड़ी हैं, उनसे निरंतर संघर्ष करें। इतिहास की इस पुकार को हम अनसुना नहीं कर सकते।

इसका हम कैसे उत्तर देते हैं, यह सिर्फ़ वर्तमान की घटनाओं का ही रूप नहीं बल्कि आज के बाद लंबे समय की घटनाओं को भी प्रभावित करेगा। मुझे यह कहने में कोई संकोच अनुभव नहीं होता कि हम पुकार का निश्चित और स्पष्ट कर्म द्वारा उत्तर देने में समर्थ है। निर्णय चुनने और कार्रवाई की रूपरेखा बनाने की ज़िम्मेदारी हमारी है। पूरी विनम्रता से हमें काम शुरू करना चाहिये।

आपका

अर्जुनसिंह

प्रति,
श्री जितेन्द्र प्रसाद
काँग्रेस अध्यक्ष के राजनैतिक सचिव,
24, अकबर रोड, नई दिल्ली

भारत-भवन के आजीवन न्यासी पद से त्यागपत्र

प्रिय श्री पटवा जी,

यह पत्र मैं आपको बड़े दु:ख के साथ संबोधित कर रहा हूँ और वह भी इस दु:खद नतीजे पर पहुँचने के बाद कि आप और आपकी सरकार ने **भारत-भवन** को नष्ट करने का निश्चय कर लिया है जो कि एक ऐसा संस्थान है जिसने अपने जीवन के आठ वर्षों की अल्पावधि में ही अपनी रचनात्मक गतिविधियों के लिए देश के कला-परिदृश्य पर एक अद्वितीय स्थान हासिल किया है।

इस संस्थान की परिकल्पना स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गाँधी ने 1972 में हमारी स्वतंत्रता की रजत जयंती के उपलक्ष्य में सभी प्रादेशिक राजधानियों में बनाए जाने वाले स्मारक के रूप में की थी। यह हमारे प्रदेश के लिए गौरव की बात है कि यह विचार देश में अन्यत्र तो कहीं आकार नहीं ले सका, लेकिन यहाँ उसने न केवल गहरी जड़ें जमाई बल्कि सभी संबद्ध पक्षों की सहायता से वह यहाँ सम्पूर्ण स्वतंत्रता के परिवेश में कलात्मक अभिव्यक्तियों के विविध और सार्थक रूपाकारों के एक मंच और संग्रह के रूप में पुष्पित हुआ। हमारे प्रदेश के हर नागरिक ने गर्व का अनुभव किया जब 13 फरवरी, 1982 को प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने **भारत-भवन** का उद्घाटन करते हुए कहा कि इस प्रयत्न ने भोपाल को भारत की सांस्कृतिक राजधानी बना दिया है।

देश के सांस्कृतिक संसार के और विविध कलानुशासनों की मूर्धन्य विभूतियों की गरिमामय उपस्थिति में इस उद्घाटन समारोह में श्रीमती गाँधी ने कहा था कि इस तरह की संस्थाएँ बनाना आसान होता है, लेकिन उन्हें विकसित होने देना और उन्हें नियंत्रण और हस्तक्षेप के विभिन्न रूपों से बचाना कठिन है। राज्य शासन ने तभी तत्काल यह प्रतिश्रुति दी थी कि एक न्यास बनाया जाएगा और उसे अपनी गतिविधियों के लिए पूरी स्वायत्तता दी जाएगी। 29 अगस्त, 1982 को एक अध्यादेश द्वारा यह न्यास बनाया गया जिसे बाद में 27 अक्टूबर, 1982 को अधिनियम के रूप में मध्यप्रदेश विधानसभा ने सर्वसम्मति से अनुमोदित किया। राज्य शासन ने न्यास की स्थाई निधि में 255 लाख रुपये दिए और केंद्र सरकार ने 100 लाख रुपये। राज्य शासन द्वारा लगभग 20 लाख रुपये का वार्षिक अनुदान भी दिया जाता है। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इसके अलावा न्यास ने अपने विवेकपूर्ण वित्तीय प्रबंध द्वारा 50 लाख रुपये की बचत की और इस राशि को स्थाई निधि में वेष्टित किया है।

न्यास को समय-समय पर देश के सृजन समुदाय के कुछ विख्यात व्यक्तियों को न्यासी के रूप में पाने का सौभाग्य मिला। इनमें कुछ हैं सुश्री यामिनी कृष्णमूर्ति, श्रीमती पुपुल जयकर (न्यास की वर्तमान अध्यक्ष), सर्वश्री कुमार गंधर्व, हबीब तनवीर, बिरजू महाराज, मणिकौल, कृष्ण खन्ना, मक़बूल फ़िदा हुसैन, जगदीश स्वामीनाथन, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', पु.ल. देशपाण्डे, डॉ. अतरसिंह और स्वर्गीय श्रीकांत वर्मा (सांसद्)। सामान्य कार्य संचालन के लिए एक प्रबंध समिति है जिसमें दो न्यासियों के अलावा श्री महेश नीलकण्ठ बुच, निराला सृजनपीठ के निदेशक श्री कमलेश, मध्यप्रदेश शासन के वित्त सचिव और आवास पर्यावरण सचिव भी सदस्य हैं। **भारत-भवन** की विभिन्न गतिविधियों

के चार प्रभाग है : **रूपंकर, रंगमण्डल, वागर्थ और अनहद।** हर प्रभाग के लिए सलाहकार समिति है जिसमें संबंधित कलानुशासन से संबंधित प्रमुख कलाकार और विशेषज्ञ सदस्य शामिल हैं।

भारत-भवन की गतिविधियाँ बहुत प्रसिद्ध है और उन्हें गिनाना मेरे लिए ज़रूरी नहीं है। फिर भी कुछ आयोजन जैसे कि एशियाई और विश्व कविता समारोह, कला की राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय द्वैवार्षिक प्रदर्शनियाँ, राष्ट्रीय नुक्कड़ नाटक समारोह, कामनवेल्थ थियेटर लेबोरेटरी, जापान में भारतीय आदिवासी कला की पहली प्रदर्शनी, सारंगी मेला, देश की सभी भाषाओं के लगभग 100 लेखकों के शिविर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बहुत सारी अन्य संस्थाओं द्वारा आयोजित गतिविधियों के लिए भी **भारत-भवन** एक मंच है और आप जानते ही होंगे कि कालिदास सम्मान, तुलसी सम्मान, इक़बाल सम्मान, कबीर सम्मान, शिखर सम्मान आदि का हमारे देश के कलाजगत में बहुत महत्त्व है और उन्हें पाने वाले समकालीन भारतीय संस्कृति संसार के महान नाम है।

मुझे यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि यह सब रातोंरात नहीं हो गया है। यह सैकड़ों व्यक्तियों के समर्पित कार्य और बहुत बड़ी संख्या में लेखकों, कवियों, कलाकारों, संगीतकारों और अन्य कलाकर्मियों के समर्थन और भागीदारी का परिणाम है। यह साफ़ समझने की बात है कि यह सब इसलिए संभव हुआ है कि **भारत-भवन** की सक्रियता का समूचा परिवेश सर्वथा अराजनैतिक रहा है और उसके सभी अंगों को पूरी स्वायत्तता रही है।

इसलिए मुझे राज्य के वित्तमंत्री श्री रामहित गुप्त के 21 जून, 1990 को विधानसभा में दिए गए वक्तव्य से आश्चर्य हुआ जिसमें उन्होंने कहा कि **भारत-भवन** पिछले वर्षों में अनेक प्रकार की चर्चाओं का केंद्र है और हमारी सरकार का निश्चय है कि हम **भारत-भवन** को किसी की निजी सम्पत्ति कदापि नहीं बनने देंगे तथा इसकी व्यवस्था और संचालन तंत्र में आवश्यक सुधार करेंगे। आपकी सरकार के इस क़ानूनी अधिकार को कोई चुनौती नहीं दे सकता है कि आप संविधान सम्मत जो भी क़दम चाहें उठाएँ परन्तु इसे रेखांकित करना समीचीन होगा कि ऐसी किसी भी कार्रवाई के पीछे स्पष्ट दृष्टि और उसका सुपरिभाषित उद्देश्य होना चाहिए। बिना पूरी और निष्पक्ष जाँच किए कैसे यह नतीजा निकाला जा सकता है कि **भारत-भवन** विवादग्रस्त है और किसी भी निजी सम्पत्ति की तरह उसका उपयोग हो रहा है। पहले आपको किसी व्यक्ति या किन्हीं व्यक्तियों को जो अनिभियोज्य विश्वसनीयता के हों, नियुक्त करना चाहिए जो कि इस संस्थान के कार्य के सभी पक्षों की जाँच करें और देश के लोगों को उन लोगों के किए-अनकिए का लेखा-जोखा दें जिन पर उनकी पीठ पीछे दोषारोपण किया जा रहा है। जैसा मैंने कहा है, इस संस्था से देश के प्रसिद्ध कलाकर्मी बहुत निकट से जुड़े रहे हैं और इस तरह बिना किसी आधार के उन्हें सामूहिक रूप से अपमानित करना सर्वथा अशोभनीय व निंदनीय है।

मैं आपके और आपके दल के मेरे प्रति अंधे और अतार्किक द्वेष भावना से अच्छी तरह परिचित हूँ। आपको याद होगा कि लगभग दो महीने पहले मैंने स्वयं यह मुद्दा आपके साथ उठाया था और यह पेशकश की थी कि मैं अपने को न्यास से असम्बद्ध करने को तैयार हूँ अगर मेरी उपस्थिति ही सारी झंझट की जड़ है। क्योंकि मैं मानता हूँ कि संस्था का हित हर परिस्थिति में सर्वोपरि है। आपने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया।

इस पृष्ठभूमि में आप और आपकी सरकार के अन्य प्रवक्ता जो कपटपूर्ण आक्षेप लगा रहे हैं उनसे एक ही नतीजा निकलता है कि किसी न किसी बहाने इस संस्थान के वर्तमान ढाँचे को नष्ट कर उसे शासन के शिकंजे में कसना चाहते हैं। अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अधिनायकवादी शक्तियों द्वारा अज्ञान और असत्य का हथियार की तरह इस्तेमाल सदैव होता रहा है। इसलिए मुझे यह देखकर जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ है कि भारतीय जनता पार्टी की सरकार अपनी विचारधारा के अनुकूल सांस्कृतिक नियंत्रण की चेष्टा कर रही है।

विधानसभा में आपका प्रचण्ड बहुमत इस चेष्टा में आपकी सहायता कर सकता है लेकिन इस चेष्टा का सबको प्रतिशोध करना होगा, जो इस देश की उदार और प्रगतिशील प्रकृति में विश्वास रखते हैं और जो उसे हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित देखना चाहते हैं। मैं स्वयं एक बहुत साधारण व्यक्ति हूँ लेकिन संस्था के निर्माण और विकास से जुड़े रहने का जो गौरव मुझे मिला है उसके दायित्वों को मैं किसी हालत में विस्मरण नहीं कर सकता और उसे निभाने में अपनी सीमित शक्ति के अनुरूप सभी प्रयास करूँगा चाहे उसके लिए कोई भी परिणाम भुगतना पड़े। **भारत-भवन** से सम्बद्ध सभी लोगों पर अवांछनीय छींटाकशी और देश के आदरणीय कलाकारों की मर्यादा व विश्वसनीयता पर प्रश्नचिन्ह लगाने के कुण्ठित प्रयासों का डटकर मुक़ाबला करना ही पड़ेगा। फासिस्ट शक्तियाँ सदैव आधारहीन लांछन व अपशब्दों के द्वारा ही अपने नापाक इरादों के विरुद्ध, संघर्ष करने वालों की संकल्प शक्ति को कमज़ोर करने का प्रयास करती आई है लेकिन आप आश्वस्त रहें, इस विषय से ऐसा कुछ नहीं होने वाला है।

आपके और आपके शासन की इस द्वेषपूर्ण और अप्रजातांत्रिक कार्रवाई के विरोध स्वरूप मैं **भारत-भवन** के आजीवन न्यासी के पद से अपना त्याग-पत्र तत्काल प्रभाव से पेश कर रहा हूँ और कलात्मक अभिव्यक्ति की आज़ादी पर अंकुश लगाने के आपके प्रयासों के विरुद्ध अनवरत् संघर्ष करने के लिए अपना संकल्प और प्रतिबद्धता रेखांकित करना चाहता हूँ।

अर्जुनसिंह

प्रति,
श्री सुन्दरलाल पटवा
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश